गीता दर्शन, भाग चार

अनुक्रम

अध्याय 8
1. स्वभाव अध्यात्म है...3
2. मृत्यु-क्षण में हार्दिक प्रभु-स्मरण...23
3. स्मरण की कला..41
4. भाव और भक्ति..60
5. योगयुक्त मरण के सूत्र..75
6. वासना, समय और दुख...94
7. सृष्टि और प्रलय का वर्तुल..112
8. अक्षर ब्रह्म और अंतर्यात्रा...130
9. जीवन ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन--उत्तरायण पथ..150 10...दक्षिणायण के जटिल भटकाव
.... 168
11..तत्वज्ञ--कर्मकांड के पार
.... 186

अध्याय 9
1. श्रद्धा का अंकुरण...201 12...अतर्क्य रहस्य में प्रवेश
.... 221
13..जगत एक परिवार है
.... 239
14..विराट की अभीप्सा
.... 256
15...दैवी या आसुरी धारा
.... 275
16..ज्ञान, भक्ति, कर्म
.... 296
17...मैं ओंकार हूं
.... 314
18..जीवन के ऐक्य का बोध--अ-मन में
.... 330
19...वासना और उपासना
.... 346
20...खोज की सम्यक दिशा
.... 364

21..कर्ताभाव का अर्पण
....384
22...नीति और धर्म
....401
23..क्षणभंगुरता का बोध
....420

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
पहला प्रवचन

स्वभाव अध्यात्म है

श्रीमद्भगवद्गीता
अथ अष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच
किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।। 1।।
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।। 2।।
श्रीभगवानुवाच
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।। 3।।
अर्जुन बोला, हे पुरुषोत्तम, जिसका आपने वर्णन किया, वह ब्रह्म क्या है, और अध्यात्म क्या है तथा कर्म क्या है, और अधिभूत नाम से क्या कहा गया है तथा अधिदैव नाम से क्या कहा जाता है?
और हे मधुसूदन, यहां अधियज्ञ कौन है, और वह इस शरीर में कैसे है, और युक्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा अंत समय में आप किस प्रकार जानने में आते हो?
श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, परम अक्षर अर्थात जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सच्चिदानंदघन परमात्मा तो ब्रह्म है और अपना स्वरूप अर्थात स्वभाव अध्यात्म नाम से कहा जाता है तथा भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला जो विसर्ग अर्थात त्याग है, वह कर्म नाम से कहा गया है।

अर्जुन के प्रश्नों का कोई अंत नहीं है। किसी के भी प्रश्नों का कोई अंत नहीं है। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मनुष्य के मन में प्रश्न लगते हैं। और जैसे झरने नीचे की तरफ बहते हैं, ऐसा मनुष्य का मन प्रश्नों के गड्ढों को खोजता है।
कृष्ण जैसा व्यक्ति भी मौजूद हो, तो भी प्रश्न उठते ही चले जाते हैं।
और शायद उन्हीं प्रश्नों के कारण अर्जुन कृष्ण को भी देख पाने में समर्थ नहीं है। और शायद उन्हीं प्रश्नों के कारण अर्जुन कृष्ण के उत्तर को भी नहीं सुन पाता है।
जिस मन में बहुत प्रश्न भरे हों, वह उत्तर को नहीं समझ पाता है। क्योंकि वस्तुतः जब उत्तर दिए जाते हैं, तब वह उत्तर को नहीं सुनता; अपने प्रश्नों को ही, अपने प्रश्नों को ही भीतर गुंजाता चला जाता है।
कृष्ण कहते हैं जरूर; अर्जुन तक पहुंच नहीं पाता है। दुविधा है; लेकिन ऐसी ही स्थिति है। जब तक प्रश्न होते हैं मन में, तब तक उत्तर समझ में नहीं आता। और जब प्रश्न गिर जाते हैं, तो उत्तर समझ में आता है। और प्रश्न से भरा हुआ मन हो, तो कृष्ण भी सामने खड़े हों, साक्षात उत्तर ही सामने खड़ा हो, तो भी समझ के बाहर है। और मन से प्रश्न गिर जाएं, तो पत्थर भी पड़ा हो सामने, तो भी उत्तर बन जाता है।
निष्प्रश्न मन में उत्तर का आगमन होता है। प्रश्न भरे चित्त में उत्तर को आने की जगह भी नहीं होती। इतनी भीड़ होती है अपनी ही कि उत्तर के लिए प्रवेश का मार्ग भी नहीं मिलता है।
अर्जुन पूछे चला जाता है। ऐसा भी नहीं है कि समझने की कोशिश न करता हो; पूरी कोशिश करता है। लेकिन बहुत बार समझने की कोशिश ही समझने में बाधा बन जाती है। जब भी मन कोशिश करता है, तो तनावग्रस्त हो जाता है, खिंच जाता है। उस खिंची हुई, तनी हुई हालत में कुछ भी समझ नहीं आता है।
समझने की कोशिश भी जहां नहीं है, सिर्फ पी लेने का भाव है; पूछने का भी जहां ख्याल नहीं है, जो मिल जाए, उसे प्राणों में संजो लेने की आकांक्षा

3

है; खींच लेने की भी आतुरता नहीं है कि यही मैं खींच लूं, जान लूं, पा लूं, द्वार खोलकर प्रतीक्षा करने की जहां हिम्मत है, वहां उत्तर चुपचाप, बिना पदचाप किए भीतर चला आता है।
और बड़े-बड़े प्रश्न पूछने से उत्तर मिल जाएगा, ऐसा भी नहीं है। मन बड़े- बड़े प्रश्न खड़े कर देता है। लेकिन जब तक मन प्रश्न खड़े करता रहता है, तब तक छोटा भी उत्तर नहीं मिलता, क्योंकि मन ही बाधा है।
अर्जुन प्रश्नों की एक कतार खड़ी करता है। इसके पहले कृष्ण उत्तर देते रहे हैं। पिछले सात अध्यायों में उन्होंने बहुत उत्तर दिए हैं। वह घूम-घूमकर नए-नए प्रश्नों के नाम से फिर पुरानी-पुरानी बातें खड़ी कर लेता है। वह फिर पूछता है। और एक बात भी नहीं पूछता, यह भी थोड़ी समझ लेने जैसी बात है।
वह पूछता है, हे पुरुषोत्तम, ब्रह्म क्या है?
प्रश्न का अंत नहीं होता, यद्यपि समस्त प्रश्नों का अंत ब्रह्म के प्रश्न के साथ हो जाता है। उसके बाद प्रश्न बचते नहीं। ब्रह्म के बाद भी कोई प्रश्न शेष रह जाएगा? ब्रह्म तो दि अल्टिमेट क्वेश्चन है, आखिरी सवाल है। इसके बाद पूछने को क्या बचता होगा? लेकिन पूरी कतार है।
अर्जुन पूछता है, ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत क्या है? अधिदैव क्या है? यहां अधियज्ञ कौन है? इस शरीर में वह कैसे है? और युक्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा अंत समय में आप किस प्रकार जानने में आ जाते हो?
ऐसा भी नहीं लगता कि किसी भी एक प्रश्न में उसकी बहुत उत्सुकता होगी!
वह इतनी त्वरा से, इतनी तीव्रता से सवाल पूछ रहा है कि लगता है, सवाल पूछने के लिए ही सवाल पूछे जा रहे हैं। अन्यथा ब्रह्म के बाद कोई सवाल नहीं है। और ब्रह्म के बाद जो सवाल पूछता है, वह कहता है, ब्रह्म में उसकी बहुत उत्सुकता और जिज्ञासा नहीं है। अन्यथा एक सवाल काफी है कि ब्रह्म क्या है? दूसरा सवाल उठाने की अब कोई और जरूरत नहीं है। इस एक का ही जवाब सबका जवाब बन जाएगा। एक को ही जानने से तो सब जान लिया जाता है। लेकिन जो सबको जानने की विक्षिप्तता से भरे होते हैं, वे एक को भी जानने से वंचित रह जाते हैं। ब्रह्म के बाद भी अर्जुन के लिए सवाल हैं। इससे एक बात साफ है कि कोई
भी जवाब मिल जाए, अर्जुन के सवाल हल होने वाले दिखाई नहीं पड़ते हैं। जो ब्रह्म के बाद भी सवाल पूछ सकता है, वह हर सवाल के बाद, हर जवाब के बाद, नए सवाल खड़े करता चला जाएगा।
असल में हमारा मन जब भी एक जवाब पाता है, तो उस जवाब का एक ही उपयोग करना जानता है, उससे दस सवाल बनाना जानता है।
पूरे मनुष्य जाति के मन का इतिहास नए-नए प्रश्नों का इतिहास है। एक भी उत्तर आदमी खोज नहीं पाता। हालांकि हर दिए गए उत्तर के साथ दस नए सवाल खड़े हो जाते हैं।
अगर हम पीछे लौटें, तो आदमी के उत्तर जितने आज हैं, उतने ही सदा थे। कृष्ण के समय में भी उत्तर वही था; बुद्ध के समय में भी उत्तर वही था; आज भी उत्तर वही है। लेकिन सवाल आज ज्यादा हैं। अगर कोई प्रगति हुई है, तो वह एक कि हमने और ज्यादा सवाल पैदा कर लिए हैं; जवाब नहीं। और ज्यादा सवालों की भीड़ में जो हाथ में जवाब थे, वे भी छूट गए हैं और खोते चले जाते हैं।
यह बात उलटी मालूम पड़ेगी कि जहां बहुत सवाल होते हैं, वहां जवाब कम हो जाते हैं; और जहां सवाल बिल्कुल नहीं होते, वहीं जवाब, उत्तर, दि आंसर, एक ही उत्तर सारी ग्रंथियों को, सारी उलझनों को तोड़ जाता है।
बादरायण का ब्रह्म-सूत्र एक छोटे-से सूत्र से शुरू होता है। और एक छोटे-से सवाल का ही जवाब पूरे बादरायण के ब्रह्म-सूत्र में है। छोटे-से दो शब्दों से शुरू होता है ब्रह्म-सूत्र, अथातो ब्रह्म जिज्ञासा--यहां से ब्रह्म की जिज्ञासा शुरू होती है। पर यह आखिरी सवाल है; अब इसके आगे सवाल नहीं हो सकते। हेंस दि इंक्वायरी आफ दि ब्रह्म; यहां से शुरू होती है ब्रह्म की जिज्ञासा। बस, अब कोई सवाल नहीं उठ सकते; आखिरी सवाल पूछ लिया गया।

अर्जुन भी पूछता है, ब्रह्म क्या है? लेकिन क्षणभर रुकता नहीं, जरा-सा अंतराल नहीं है। पूछता है, अध्यात्म क्या है? अगर कृष्ण ने लौटकर पूछा होता कि अर्जुन, अपने सवाल को फिर दोहरा, तो जैसे मुझे उसका कागज हाथ में रखना पड़ा, ऐसा उसे भी रखना पड़ता। बहुत संभावना तो यही है कि वह दुबारा अपना सवाल वैसा का वैसा न दोहरा पाता। और यह भी संभावना बहुत है कि उसमें ब्रह्म और अध्यात्म चूक सकते थे, भूल जा सकते थे।
ऐसा मेरा रोज का अनुभव है। आता है कोई, कहता है, ईश्वर के संबंध में कुछ कहें। अगर मैं दो क्षण उसकी बात को टाल-मटोल कर जाता हूं, पूछता हूं, कब आए? कैसे हैं? वह फिर घंटेभर बैठकर बात करता है, दुबारा नहीं पूछता उस ईश्वर के संबंध में, जिसे पूछते हुए वह आया था!
ऐसे सवाल भी हम कहां से पूछते होंगे? ये हमारे हृदय के किसी गहरे तल से आते हैं या हमारी बुद्धि की पर्त पर धूल की तरह जमे हुए होते हैं? ये हमारे प्राणों की किसी गहरी खाई से जन्मते हैं या बस हमारी बुद्धि की खुजलाहट हैं? अगर यह बुद्धि की खुजलाहट है, तो खाज को खुजला लेने से जैसा रस आता है, वैसा रस तो आएगा, लेकिन बीमारी घटेगी नहीं, बढ़ेगी।
अर्जुन की बीमारी घटती हुई मालूम नहीं पड़ती। वह पूछता ही चला जाता है। वह यह भी फिक्र नहीं करता कि जो मैं पूछ रहा हूं, वह बहुत बार पहले भी पूछ चुका हूं। वह यह भी फिक्र नहीं करता कि मैं केवल नए शब्दों में पुरानी ही जिज्ञासाओं को पुनः-पुनः खड़ा कर रहा हूं। वह इसकी भी चिंता नहीं करता कि कृष्ण उत्तर देते जा रहे हैं, लेकिन मैं उत्तर नहीं सुन रहा हूं।
शायद वह इस ख्याल में है कि कोई ऐसा सवाल पूछ ले कि कृष्ण अटक जाएं! शायद वह इस प्रतीक्षा में है कि कोई तो वह सवाल होगा, जहां कृष्ण भी कह देंगे कि कुछ सूझता नहीं अर्जुन, कुछ समझ नहीं पड़ता। इस प्रतीक्षा में उसका गहरा मन है। उसका अनकांशस माइंड, उसका अचेतन मन इस प्रतीक्षा में है कि कहीं वह जगह आ जाए, या तो कृष्ण कह दें कि मुझे नहीं मालूम; या कृष्ण ऊब जाएं, थक जाएं और कहें कि जो तुझे करना हो कर; मुझसे इसका कुछ लेना-देना नहीं है! तो अर्जुन जो करना चाहता है, उसे कर ले।
लेकिन कृष्ण जैसे लोग थकते नहीं। यद्यपि यह बिल्कुल चमत्कार है। अर्जुन जैसे थकाने वाले लोग हों, तो कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी थक ही जाना चाहिए। लेकिन कृष्ण जैसे व्यक्ति थकते नहीं हैं। और क्यों नहीं थकते हैं? न थकने का कुछ राज है, वह मैं आपसे कहूं, फिर हम कृष्ण के उत्तर पर चलें।
न थकने का एक राज तो यह है कि कृष्ण यह भलीभांति जानते हैं कि अर्जुन, तुझे तेरे प्रश्नों से कोई भी संबंध नहीं है। और अगर अर्जुन इस दौड़ में लगा है कि हम प्रश्न खड़े करते चले जाएंगे, ताकि किसी जगह तुम्हें हम अटका लें कि अब उत्तर नहीं है। कृष्ण भी उसके साथ-साथ एक कदम आगे चलते चले जाते हैं कि हम तुझे उत्तर दिए चले जाएंगे। कभी तो वह क्षण आएगा कि तेरे प्रश्न चुक जाएंगे और उत्तर तेरे जीवन में क्रांति बन जाएगा।
कृष्ण को भलीभांति पता है, अर्जुन को प्रश्नों से प्रयोजन ज्यादा नहीं है, अन्यथा वे कहते कि यह तो तू पूछ चुका। कृष्ण जानते हैं कि अर्जुन का सवाल सवाल नहीं है, अर्जुन की बीमारी है। उसे जवाब नहीं चाहिए, उसे रूपांतरण चाहिए, उसे ट्रांसफार्मेशन चाहिए; उसका आमूल जीवन बदले, ऐसी घड़ी चाहिए। लेकिन उस स्थिति तक लाने के लिए भी उसे फुसलाना पड़ेगा, उसे राजी करना पड़ेगा; अर्जुन की ही भाषा में बोलना पड़ेगा।
सुना है मैंने कि एक गांव में पहली ही बार कुछ लोग एक घोड़े को खरीदकर
ले आए थे। उस देश में घोड़ा नहीं होता था और उस गांव के लोगों ने घोड़ा देखा भी नहीं था। जो लोग ले आए थे परदेश से, वे घोड़े के शरीर से, उसकी दौड़ से, उसकी गति से प्रभावित होकर ले आए थे। लेकिन उन्हें घोड़े के संबंध में कुछ भी पता नहीं था। एक बात पक्की थी, उन्हें घोड़े की भाषा बिल्कुल पता नहीं थी। बहुत मुश्किल में पड़ गए। घोड़े को उन्होंने चलते देखा था हवा की रफ्तार से। गांव में लाकर उन्होंने पाया कि चार आदमी आगे से खींचें और चार आदमी पीछे से धकाएं, तब कहीं वह मुश्किल से कुछ-कुछ चलता है। बड़ी मुश्किल में पड़ गए कि अगर घोड़े को चलाने के लिए आठ आदमियों की जरूरत पड़े, तो यह घोड़ा है

किसलिए! बहुत उन्होंने कहा कि हमने देखा था तुझे हवा से बातें करते! घोड़ा खड़ा सुनता रहा, वैसे ही जैसे अर्जुन सुनता रहा होगा।
कृष्ण की भाषा और है। एंड देअर इ.ज सच ए बिग गैप आफ लैंग्वेज, ऐसा बड़ा अंतराल है कि घोड़ा भी आदमी की भाषा समझ ले, कृष्ण की भाषा समझना अर्जुन को मुश्किल है। घोड़े और आदमी के बीच इतना अंतराल नहीं है। कुछ लोग तो कहते हैं, उतना ही अंतराल है, जितना गधे और घोड़े के बीच होता है। मगर उनकी बात सही न भी हो, फिर भी आदमी और घोड़े के बीच बहुत अंतराल नहीं है। कृष्ण और अर्जुन के बीच अंतराल ज्यादा है।
पर मुश्किल में तो पड़ ही गए, अंतराल कम हो तो भी। और घोड़ा रोज सूखने लगा और दुबला होने लगा, क्योंकि उन्होंने पूछा ही नहीं था कि उसे भोजन भी देना है! अब चलना रोज-रोज मुश्किल होता चला गया। चार की जगह आठ और आठ की जगह दस और दस की जगह बारह, रोज-रोज आदमी बढ़ाने पड़ते जब उस घोड़े को चलाना पड़ता। पूरा गांव दिक्कत में पड़ गया। लोगों ने कहा, तुम यह क्या ले आए हो? ऐसा वक्त आ जाएगा जल्दी कि पूरे गांव को इसे चलाना पड़ेगा! लेकिन फिर चलाने से फायदा क्या है? ठीक था; एक दिन तमाशा हो गया; लोगों ने चलाकर भी देख लिया, फिर क्या करेंगे?
गांव में एक अजनबी उस रात रुका था, उसने भी देखा यह खेल कि पूरा गांव धक्का देता है, घोड़े को चलाता है, घोड़ा चलता नहीं। उसने कहा कि पागलो, क्या तुम्हें घोड़े की भाषा बिल्कुल भी पता नहीं? उन्होंने कहा, हम इसी मुश्किल में पड़े हैं। वह आदमी सिर्फ घोड़े के सामने घास का एक छोटा-सा पूला लेकर चलने लगा। और घोड़ा इतना कमजोर था, तो भी तेजी से उसने गति पकड़ ली। वह आदमी दौड़ने लगा, तो घोड़ा दौड़ने लगा। घास का एक छोटा-सा पूला हाथ में लेकर! घोड़े को घास का पूला समझ में आया।
कृष्ण जैसे लोग भी हजार तरह की कोशिश करते हैं अर्जुन जैसे व्यक्तियों के सामने, जो उनकी समझ में आ जाए, उसे रखने की। लेकिन अर्जुन होशियार घोड़ा है, जल्दी उलझाव में नहीं आता। वह कहता है, होगा। यह ठीक है। लेकिन अभी कुछ और सवाल बाकी हैं, अभी उनका जवाब चाहिए। वह असल में ध्यान नहीं देता कि कृष्ण उसके सामने क्या रख रहे हैं।
शायद वह अपने को बचाने के लिए ही यह कर रहा है। कहीं कृष्ण की बात सुनाई न पड़ जाए, इसलिए वह जल्दी सवाल पूछता है। वह इतने जल्दी सवाल पूछता है, जितने जल्दी कृष्ण जवाब भी नहीं दे पाते। इधर कृष्ण का जवाब समाप्त नहीं होता और अर्जुन के सवाल खड़े हो जाते हैं। यह बिल्कुल असंभव है।
अगर मैं आपसे कुछ बोलूं, बोल भी न पाऊं और आपका सवाल खड़ा हो जाए, तो इसका मतलब सिर्फ एक हुआ कि जब मैं बोल रहा था, तब आप सवाल तैयार कर रहे थे। और ऐसा भी नहीं लगता कि वे सवाल, कृष्ण जो बोलते हैं उससे पैदा होते हों। वे सवाल अर्जुन के अपने ही हैं; कृष्ण का बोलना इररेलेवेंट है, असंगत है। कृष्ण के बोलने को कहीं सुना ही नहीं जा रहा है।
लेकिन फिर भी कृष्ण जैसे व्यक्ति उत्तर देते हैं, इस आशा में कि शायद किसी क्षण में थका हुआ अर्जुन का मन नए प्रश्न न खोज पाए, नए सवाल न उठा पाए और शायद एक किरण भी प्रकाश की उसके भीतर पहुंच जाए। उत्तर का एक छोटा-सा स्वाद भी उसे आ जाए, तो वह फिर घोड़े की तरह घास के पीछे चल सकता है। इस आशा में पूरी गीता कही गई है। और कृष्ण जैसा उत्तर देने वाला आदमी बहुत मुश्किल से होता है; बहुत मुश्किल से होता है।
बुद्ध बहुत-से प्रश्नों के लिए इनकार कर देते थे। वे कहते थे, ये सवाल पूछो ही मत। मैं इनके जवाब दूंगा ही नहीं। क्योंकि वे कहते थे, ये सवाल तुम्हारे सवाल ही नहीं हैं; ये तुम्हारे प्राणों से कहीं पूछे ही नहीं जा रहे हैं। तुम वही पूछो, जो सच में तुम जानना चाहते हो। मत पूछो वह, जो तुम जानना नहीं चाहते हो।
अब एक आदमी बुद्ध के पास आता है, वह पूछता है कि मृत्यु क्या है? बुद्ध कहते हैं, तू मृत्यु को जानना चाहता है? वह आदमी कहता है, जानना इसलिए चाहता हूं, क्योंकि बचना चाहता हूं। और जानने का कोई प्रयोजन नहीं है। अगर यह मृत्यु कुछ है, तो मैं जान लूं, ताकि बच जाऊं। पर बुद्ध कहते हैं, जानना हो तो मृत्यु में प्रवेश करना पड़ेगा, उसके अतिरिक्त जानने का कोई उपाय

नहीं है। तो तू छोड़; यह सवाल तू छोड़। तू कुछ और सवाल पूछ, जो तू जानना चाहता हो प्रवेश करके।
वह आदमी जरा मुश्किल में पड़ गया है। सोच-समझकर वह कहता है कि ठीक, तो कुछ ध्यान के संबंध में मुझे कह दें।
यह मजबूरी में पूछ रहा है। अब फंस ही गए हैं। अब बुद्ध कहते हैं, मृत्यु के बाबत बताऊंगा नहीं, क्योंकि तू मृत्यु में घुसने को राजी नहीं।
छोड़। कुछ और पूछ ले। अब वह यह भी नहीं कह सकता, इतनी भी ईमानदारी नहीं है कि अब मैं नहीं पूछना चाहता, बात खतम हो गई; मैं नहीं पूछूंगा। यह भी नहीं है। इतनी आनेस्टी भी, इतना भी व्यक्तित्व का बल नहीं है कि कह दे कि नहीं।
अब बुद्ध कहते हैं, अब मिल ही गए, तो पूछ ही लो। तो वह पूछता है, ध्यान क्या है? बुद्ध कहते हैं, तू ध्यान किसलिए चाहता है? वह आदमी कहता है कि मैं आपसे पूछने आया हूं, कि आप मुझसे पूछे चले जाते हैं! मैंने मृत्यु पूछा, तो आप पूछने लगे कि किसलिए? ध्यान पूछता हूं, तो आप पूछते हैं, किसलिए? बुद्ध कहते हैं, जब तक मैं यह न जान लूं कि सच में तू जानना चाहता है, तब तक मैं उतर नहीं देता हूं।
शायद--क्योंकि बुद्ध की करुणा में कृष्ण की करुणा से रत्तीभर भी भेद
तो नहीं है--लेकिन शायद कृष्ण और अर्जुन की बातचीत का अनुभव बुद्ध के लिए काफी महंगा पड़ा है। उस अनुभव के कारण शायद अब वे राजी नहीं हैं कि इतनी लंबी गीता चले; वही सवाल आदमी बार-बार पूछता रहे।
साक्रेटीज के पास अगर कोई पूछने जाता था, तो फिर दुबारा पूछने नहीं जाता था। क्यों? क्योंकि साक्रेटीज उत्तर तो देता ही नहीं था। आप पूछकर अगर फंस बैठे, तो आपसे इतने प्रश्न पूछता था कि दुबारा आप कभी उस रास्ते नहीं निकलते, जहां साक्रेटीज रहता है। साक्रेटीज को एथेंस के लोगों ने जहर दिया, उसमें सबसे बड़ा कारण यही था कि साक्रेटीज ने एथेंस के हर आदमी को अज्ञानी सिद्ध कर दिया था, प्रश्न पूछ-पूछकर।
अगर आप पूछते कि ईश्वर है? तो साक्रेटीज पहले पूछता, ईश्वर से आपका क्या अर्थ है? अब आप फंसे। आप कहेंगे, अर्थ ही मालूम होता, तो हम पूछते ही क्यों? साक्रेटीज कहता है, जिस शब्द का अर्थ ही नहीं मालूम, उसका तुम प्रश्न कैसे बनाओगे?
एथेंस के एक-एक आदमी को उसने उलझन में डाल दिया था। आखिर एथेंस गुस्से में आ गया। उस नगर ने कहा कि यह आदमी इस तरह का है कि जवाब तो देता नहीं, और उलटे हम सबको अज्ञानी सिद्ध कर दिया है।
छोटी-मोटी बातों पर अज्ञान सिद्ध हो जाता है। कोई पूछता नहीं, इसीलिए आपका ज्ञान चलता है। इसलिए छोटे बच्चे बहुत परेशान करने वाले मालूम पड़ते हैं। इसलिए नहीं कि वे आपसे कुछ भी अनर्गल पूछते हैं। असल में वे ऐसे सवाल पूछते हैं कि पूछते से ही आपके जवाब डगमगा जाते हैं। कोई पूछता नहीं है, इसलिए चलता है।
संत अगस्तीन कहता था कि कई सवाल ऐसे हैं कि जब तक तुम नहीं पूछते, तब
तक मुझे जवाब मालूम होते हैं। तुमने पूछा कि जवाब गया! वह कहता था, मुझे अच्छी तरह पता है कि व्हाट इ.ज टाइम--समय क्या है, मैं जानता हूं। बट दि मोमेंट यू आस्क मी; पूछा नहीं तुमने कि सब गड़बड़ हुआ!
आप भी जानते हैं कि समय क्या है। लेकिन आपको पता होना चाहिए, आइंस्टीन
भी उत्तर नहीं दे सकता कि व्हाट इ.ज टाइम? समय क्या है? और आप सब जानते हैं कि समय क्या है। हम सबको पता है। समय से ट्रेन पर पहुंचते हैं, समय से घर आते हैं, दफ्तर जाते हैं। कौन ऐसा आदमी होगा जिसको पता नहीं कि समय क्या है! लेकिन आइंस्टीन भी जवाब नहीं दे सकता कि समय क्या है। पूछ लो, तो मुश्किल खड़ी हो जाती है।
अज्ञान छिपा-छिपा चलता है, जब तक कोई पूछता नहीं। पूछना कोई शुरू कर दे, अज्ञान के अतिरिक्त हाथ में कुछ नहीं रह जाता।
सुकरात ने लोगों को पूछकर दिक्कत में डाल दिया। जवाब तो दिए नहीं। शायद सुकरात बुद्ध से भी ज्यादा अनुभवी हो चुका था। उसने सोचा कि इसके पहले कि तुम पूछो, बेहतर है कि हम ही पूछ लें!

लेकिन कृष्ण इस लिहाज से अदभुत हैं। शायद गैर-अनुभव के कारण ही, क्योंकि वे ज्यादा प्राचीन हैं! वे उत्तर दिए चले जाते हैं। वे अर्जुन को टोकते भी नहीं कि तू क्या पूछ रहा है? क्यों पूछ रहा है? और इसका जवाब मैं दे चुका हूं। नहीं, वे फिर से उत्तर देने को राजी हो जाते हैं। कृष्ण ने जो उत्तर दिया है, वह हम समझें।
अर्जुन का पहला प्रश्न है, ब्रह्म क्या है? कृष्ण ने कहा, जिसका कभी नाश न हो।
फिर तो साफ हो गई बात कि इस जगत में ब्रह्म कहीं भी नहीं है। यहां तो
जो भी है, सभी का नाश है। आपने कोई ऐसी चीज देखी है, जिसका कभी नाश न हो? कभी कोई ऐसी चीज सुनी है, जिसका कभी नाश न हो? कभी कोई ऐसा अनुभव हुआ है, जिसका कभी नाश न हो?
यहां तो जो भी है, सभी नाशवान है। यहां तो होने की शर्त ही विनाश है। होने की एक ही शर्त है, न होने की तैयारी। जन्म होने के साथ मृत्यु के साथ समझौता करना पड़ता है। जन्म के साथ ही दस्तखत कर देने होते हैं मौत के सामने कि मरने को तैयार हूं।
यहां तो कुछ पाया कि खोने के अतिरिक्त और अब कुछ होने वाला नहीं है। यहां तो कोई मिला, तो बिछुड़ना होगा। यहां गले मिलने का इंतजाम, सिर्फ गले को अलग कर लेने के लिए है। यहां सभी कुछ नाशवान है। यहां जो बनता हुआ दिखाई पड़ रहा है, एक तरफ से देखो तो मालूम होता है बन रहा है, दूसरी तरफ से देखो तो मालूम होता है कि बिगड़ रहा है।
एक धर्मगुरु के एक छोटे लड़के ने उससे पूछा है एक दिन कि यह आदमी कैसे बना? और यह आदमी जब मिटता है, तो क्या हो जाता है? तो उस धर्मगुरु ने कहा, डस्ट अनटु डस्ट; मिट्टी में मिट्टी मिल जाती है। मिट्टी से ही आदमी बनता है, मिट्टी में ही आदमी गिर जाता है।
दूसरे ही दिन सुबह वह धर्मगुरु अपने तख्त पर बैठकर अपनी किताब पढ़ता है। उसका छोटा बेटा आया, तख्त के नीचे घुस गया, और उसने वहां से चिल्लाया कि पिताजी, जरा नीचे आइए। ऐसा लगता है कि या तो कोई बन रहा है, या तो कोई मिट रहा है! एक मिट्टी का ढेर लगा हुआ है। तख्त के नीचे धूल इकट्ठी हो गई है। बेटे ने कहा कि या तो कोई बन रहा है, या कोई मिट रहा है; जल्दी नीचे आइए! धूल के ढेर को, अगर आदमी सिर्फ धूल है, तो दोनों तरह से देखा जा सकता है--या तो कोई बन रहा है, या कोई मिट रहा है। असल में जब भी कोई बन रहा है, तभी कोई मिट भी रहा है। और कहीं दूर नहीं, वहीं। जहां बनना चल रहा है, वहीं मिटना चल रहा है।
यहां तो सभी कुछ विनाश है। यहां ठहराव नहीं है। यहां तो सभी कुछ नदी
की धार की तरह बह रहा है। छू भी नहीं पाते किनारा कि छूट जाता है। मिलन हो भी नहीं पाता कि विदा की घड़ी आ जाती है।
और कृष्ण कहते हैं, वह जिसका विनाश नहीं है, वह है ब्रह्म।
अर्जुन शायद ही समझ पाए। असल में अर्जुन तो मान ही यह रहा है कि मैं इन लोगों को अगर मारूं जो सामने खड़े हैं, तो विनाश के लिए मैं जिम्मेवार हो जाऊंगा। लेकिन कृष्ण यह कह रहे हैं कि यहां तो जो है, वह सभी विनाशवान है। और अगर तू अविनाश में ठहरना चाहता है कि तुझसे विनाश न हो, तो तुझे ब्रह्म में ठहरना पड़ेगा।
लेकिन वह ब्रह्म कहां है? वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि आंख जिसे देख सकती है, वह नष्ट होगा। वह कहीं सुनाई नहीं पड़ता; क्योंकि कान जिसे सुन सकते हैं, वह खो जाएगा। उसका कहीं स्पर्श नहीं होता; क्योंकि हाथ जिसे छू सकते हैं, वह नष्ट होगा ही। इंद्रियां जिसे जान सकती हैं, वह विनाश का क्षेत्र है।
असल में इंद्रियां जान ही उसे सकती हैं, जो बन रहा है या मिट रहा है। उसे नहीं, जो है, दैट व्हिच इ.ज; उसे नहीं, जो है। अगर उस है को जानना है, तो उसे जानने का उपाय इंद्रियां नहीं हैं। स्वयं के अंतस में उस जगह को खोज लेना है, जहां इंद्रियों की कोई गति नहीं होती है। लेकिन वह कहां है? भीतर भी अगर हम देखने जाएं, तो भी तो वह नहीं मिलता। भीतर देखने जाएं,
तो मन दिखाई पड़ता है, वह भी विनाशवान है।

सुबह मेरे पास कोई आता है और कहता है, अपरिसीम आनंद में हूं। और उसकी बात मैं सुनता हूं और उसकी आंखों में झांकता हूं और सोचता हूं, कितनी देर लगेगी कि यह आकर मुझे कहेगा, वह उदासी फिर आ गई! ज्यादा देर नहीं लगेगी। भीतर भी मन में जो बनता है, वह भी बिगड़ता रहता है। और हम मन के अतिरिक्त कुछ जानते नहीं।
कृष्ण कहते हैं--और बड़ी छोटी परिभाषा, इससे छोटी और क्या परिभाषा होगी--कि वह, जिसका नाश नहीं होता है, वह ब्रह्म है।
क्या है वह जिसका नाश नहीं होता है? कहां है? कौन है? दो-तीन बातें समझ में ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।
एक तो, जहां भी आप विनाश देखें, वहां एक बात गौर से देखना, सिर्फ रूप विनष्ट होता है, रूपायित नहीं। आकार विनष्ट होता है, लेकिन जो आकार के भीतर था, वह नहीं। दि कंटेनर तो नष्ट हो जाता है, बट दि कंटेंट, वह नष्ट नहीं होता। पानी को भाप बना दो, तो पानी तो विनष्ट हो गया; लेकिन क्या सच ही पानी विनष्ट हो गया? तो फिर भाप में कौन है? भाप को ठंडा कर लो, भाप विनष्ट हो गई; लेकिन क्या सच में ही विनष्ट हो गई? क्योंकि अब जो पानी है, उसमें कौन है? नहीं; विनाश सिर्फ रूप होता है, आकार होता है; रूपायित, रूप से जो घिरा है, वह नहीं।
लेकिन हमें रूप ही दिखाई पड़ता है, क्योंकि इंद्रियां रूप को ही देख सकती हैं। वह जो रूप में घिरा है, वह नहीं। जब आप जल को देखते हैं, तो आप उसको कभी नहीं देख पाते, जो जल के भीतर छिपा है। सिर्फ रूप! फिर गर्मी दे दी, रूप बदल गया। भाप बन गई। भाप को भी जब आप देखते हैं, तब फिर एक रूप, एक फार्म, एक आकार! फिर भी वह नहीं दिखाई पड़ता, जो भीतर छिपा है। वह जो भीतर छिपा है, वह तो विनष्ट नहीं होता।
विज्ञान कहता है, कोई भी चीज विनष्ट नहीं होती। यह बहुत मजे की बात है। विज्ञान की तीन सौ वर्षों की खोज कहती हैं कि कोई भी चीज विनष्ट नहीं होती। और कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, जो विनष्ट नहीं होता, वही ब्रह्म है। क्या विज्ञान को कहीं से कोई गंध मिलनी शुरू हो गई ब्रह्म की? क्या कहीं से कोई झलक विज्ञान को पकड़ में आनी शुरू हुई उसकी, जो विनष्ट नहीं होता? झलक नहीं मिली, लेकिन अनुमान मिला है। नाट ए ग्लिम्प्स, बट जस्ट एन इनफरेंस। एक अनुमान विज्ञान के हाथ में आ गया है। उसको एक बात ख्याल में आ गई है कि सिर्फ रूप ही बदलता है।
ध्यान रहे, विज्ञान को अभी उसका कोई पता नहीं चला जो नहीं बदलता है, लेकिन एक बात पता चल गई कि सिर्फ रूप ही बदलता है। लेकिन रूप के पीछे कुछ है जरूर, जो नहीं बदलता है। उसका कोई पता नहीं है। इसलिए विज्ञान की खोज निगेटिव है, नकारात्मक है। उसे एक बात पता चल गई कि जो बदलता है, वह रूप है। लेकिन रूप के भीतर कुछ न बदलने वाला भी सदा मौजूद है, अन्यथा रूप भी बदलेगा कैसे? किस पर बदलेगा? बदलाहट के लिए भी एक न बदलने वाला आधार चाहिए। परिवर्तन के लिए भी एक शाश्वत तत्व चाहिए। और दो परिवर्तन के बीच में जोड़ने के लिए भी कोई अपरिवर्तित कड़ी चाहिए।
क्या आपने कभी ख्याल किया कि जब पानी भाप बनता है, तो जरूर बीच में एक क्षण होता होगा, एक गैप, इंटरवल, जब पानी भी नहीं होता और भाप भी नहीं होती। लेकिन अभी विज्ञान को उस गैप का, उस अंतराल का कोई पता नहीं है। विज्ञान कहता है, पानी हम जानते हैं; गर्म करते हैं; फिर एक क्षण आता है कि भाप को हम जानते हैं।
लेकिन पानी और भाप के बीच में कोई एक क्षण जरूरी है; क्योंकि जब तक पानी पानी है, तो पानी है; और जब वह भाप हो गया, तो भाप हो गया। लेकिन कोई एक क्षण चाहिए, जब पानी के भीतर की जो वस्तु है, जो कंटेंट है, जो आत्मा है, वह पानी भी न हो। क्योंकि अगर वह पानी होगी, तो भाप न हो सकेगी। और भाप भी न हो, क्योंकि अगर वह भाप हो चुकी होगी, तो पानी न होगी। एक क्षण के लिए न्यूट्रल...
जैसे कोई आदमी गाड़ी के गेयर बदलता है, तो अगर पहले गेयर से दूसरे गेयर में गाड़ी डालता है, तो चाहे कितनी ही त्वरा से डाले, कितनी ही तेजी से डाले, चाहे आटोमैटिक ही क्यों न हो गेयर, आदमी को डालना भी न पड़े, पर बीच में एक

न्यूट्रल, एक तटस्थ क्षण है, जब गेयर ऐसी जगह से गुजरता है, जहां वह पहले गेयर में नहीं होता और दूसरे में पहुंचा नहीं होता। यह जरूरी क्षण है, यह कड़ी है।
लेकिन इस कड़ी का विज्ञान को अनुमान भर होता है। और वही कड़ी ब्रह्म है।
लेकिन इंद्रियों के द्वारा अनुमान भी हो जाए तो बहुत है।
कृष्ण कहते हैं, वह जो नहीं नाश को उपलब्ध होता है, वही ब्रह्म है।
कहां है वह ब्रह्म? अगर आप रूप को देखते रहेंगे, तो वह ब्रह्म कभी भी दिखाई नहीं पड़ेगा। लेकिन अरूप को कैसे देखें? कहां देखें?
पानी दिखता है, भाप दिखती है, बीच का वह अरूप तो दिखाई नहीं पड़ता। अगर उसे देखना हो, तो सबसे पहले व्यक्ति को स्वयं में ही उस अरूप को देखना पड़ता है।
जब आपका एक विचार जाता है और दूसरा आता है, तो दोनों विचारों के बीच में भी फिर वही कड़ी होती है, जब कोई विचार नहीं होता। विचार एक रूप है, दूसरा विचार दूसरा रूप है--थाट फार्म है--विचार की अपनी आकृतियां हैं।
यह जानकर आप हैरान होंगे कि विचार भी आकृतिहीन नहीं हैं। जब आप क्रोध में होते हैं, तब आपके चित्त की आकृति भिन्न होती है। जब आप प्रेम में होते हैं, तब आपके चित्त की आकृति भिन्न होती है।
कभी आपने ख्याल किया, जब आप कंजूसी से भरे होते हैं, तो सिर्फ कंजूसी नहीं होती, भीतर भी कोई चीज सिकुड़ जाती है। जब आप किसी को प्रेम से कुछ देते हैं, तो सिर्फ देना बाहर ही नहीं घटता, भीतर भी कुछ फैल जाता है। आकार है। जब हम कहते हैं कंजूस, तो उस शब्द में भी सिकुड़ने का भाव है; कोई चीज सिकुड़ गई है। जब हम कहते हैं दानी, देने वाला, प्रेमी, बांटने वाला, तो कोई चीज बंटती है और फैल जाती है।
प्रत्येक विचार का आकार है। और आपके भीतर प्रतिपल आकार बदलते रहते हैं। आपके चेहरे पर भी आकार छप जाते हैं। जो आदमी निरंतर क्रोध करता है, वह जब नहीं भी क्रोध करता है, तब भी लगता है, क्रोध में है। वह निरंतर क्रोध की जो आकृति है, उसके चेहरे पर स्थायी हो जाती है और फिर चेहरा उसको छोड़ता नहीं। क्योंकि चेहरे को पता है कि कभी भी अभी थोड़ी देर में फिर जरूरत पड़ेगी। वह पकड़े रखता है, जस्ट टु बी इफिशिएंट, कुशल होने की दृष्टि से। अब ठीक है, जब बार-बार जरूरत पड़ती है, तो उसको हटाने की आवश्यकता भी क्या है! जब तक हटाएंगे, तब तक पुनः आवश्यकता आ जाएगी। तो रहने दो। तो फिक्स्ड इमेज बैठ जाती है चेहरे पर, सभी लोगों के। और कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि पीछा ही नहीं छोड़ता।
हजरत मूसा के संबंध में सुना है। हजरत मूसा दुनिया के उन थोड़े-से लोगों में एक हैं, कृष्ण या बुद्ध या महावीर जैसे। एक सम्राट ने अपने चित्रकार को कहा कि तू जा और हजरत मूसा का एक चित्र बना ला। हजरत मूसा जिंदा थे। वह चित्रकार गया और चित्र बना लाया।
सम्राट ने चित्र देखा और उसने कहा कि जो कुछ हजरत मूसा के संबंध में मैंने सुना है उसमें और इस चित्र में बहुत फर्क मालूम पड़ता है। यह चित्र देखकर मालूम पड़ता है कि किसी बहुत दुष्ट, हिंसक, क्रोधी आदमी का चित्र है। इसमें हजरत मूसा की खबर नहीं मिलती।
उस चित्रकार ने कहा कि आश्चर्य! आपने कभी हजरत मूसा को देखा? उस सम्राट ने कहा, मैंने देखा नहीं है, सुना है उनके बाबत; और उनसे मेरा लगाव भी बन गया। इसीलिए तो चित्र बनाने तुझे भेजा। तो उसने कहा कि मैं देखकर आ रहा हूं। महीनों बैठकर इस चित्र को मैंने बनाया है। इसमें रत्तीभर भूल नहीं है। और हजरत मूसा से पूछकर आया हूं कि चित्र ठीक बन गया जनाब! उन्होंने कहा कि बिल्कुल ठीक है। तब आया हूं।
सम्राट ने कहा, लेकिन कहीं न कहीं कुछ न कुछ भूल है। और मालूम होता है
कि हजरत मूसा या तो दयावश तुझसे कह दिए कि ठीक है, या उन्होंने अपनी शक्ल कभी आईने में न देखी होगी। और कोई कारण नहीं हो सकता। लेकिन सम्राट की यह जिद्द, जिसने देखा न हो मूसा को, हैरानी की थी। चित्रकार ने कहा, फिर चलिए। और हजरत मूसा के पास चित्रकार और सम्राट पहुंचे। सम्राट भी थोड़ा हैरान हुआ चेहरे को देखकर। चित्रकार ही ठीक मालूम पड़ता है। बाजी हार गया

मालूम हुआ उसे। फिर भी पूरी बाजी हार जाने के बाद सम्राट ने मूसा से कहा कि एक सवाल मैं पूछने आया हूं। एक बाजी हार गया इस चित्रकार के साथ। पूछना मुझे यही है कि जो कुछ मैंने आपके संबंध में सुना है, उसे सुनकर मैंने आपकी एक आकृति बनाई थी, लेकिन इस आकृति में वह बात नहीं है।
हजरत मूसा ने कहा, यह आकृति मेरी पुरानी है और पीछा नहीं छोड़ती। आज से बीस साल पहले मैं ऐसा ही हुआ करता था। जो कुछ इस चित्र में है, वही हुआ करता था। ऐसा ही क्रोधी, ऐसा ही दुष्ट, ऐसा ही हिंसा से भरा हुआ। अब सब बदल गया, लेकिन चेहरे पर पुराने चिह्न रह गए हैं।
चिह्न छूट जाते हैं। विचार भी आकृति रखता है, भाव भी आकृति रखता है।
इन आकृतियों के बीच में अगर आप देख पाएं, तो अरूप का दर्शन होता है। दो विचार के बीच में खड़े हो जाएं, दो विचार के बीच में झांक लें, दो विचार के बीच में जो खाली जगह छूटे, स्पेस बने, उसमें डूब जाएं और आपको अरूप का दर्शन हो जाए। भीतर अगर हो जाए, तो फिर आप बाहर भी दो आकारों के बीच में कूद सकते हैं और निराकार को जान सकते हैं।
कृष्ण कहते हैं, वही है ब्रह्म, जिसका कभी नाश नहीं होता। रूप का नाश है, अरूप का नाश नहीं, अरूप है ब्रह्म। ऐसा सच्चिदानंद, विनाश जिसका नहीं होता, वही ब्रह्म है।
निश्चित ही, बार-बार कृष्ण जैसे लोग कहते हैं कि वह ब्रह्म सच्चिदानंद है, परमानंद है, अंतिम आनंद है। यह क्यों दोहराते हैं!
असल में जहां-जहां रूप है, वहां-वहां मृत्यु होगी। क्योंकि एक रूप दूसरे रूप में बदलेगा। और जहां-जहां रूप है, वहां विनाश होगा। विनाश होगा, तो पीड़ा होगी, बीमारी होगी, संताप होगा, चिंता होगी। हम एक रूप को पकड़ लेंगे, फिर दूसरा रूप आएगा। हम बचपन को पकड़ लेंगे, फिर जवानी आने लगेगी, तो बचपन का रूप नष्ट होगा। फिर बच्चे को पीड़ा होगी। वह तकलीफ में पड़ेगा। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक अनुभव कर रहे हैं कि वह जो एडॉलसेंस है, वह जो
एक उम्र है दस साल से चौदह साल के बीच की, वह बड़ी पीड़ा की है। क्योंकि बच्चा छोड़ नहीं पाता अपने पुराने फार्म को, अपनी पुरानी आकृति को, और नई आकृति उसमें बनने लगती है। तो वह काम बच्चों जैसे भी करता है और अकड़ बड़ों जैसी भी दिखाता है। यह बड़े लोगों को भी, मां-बाप को भी समझ में नहीं आती है। दोनों बातें एक साथ करने लगता है। पुराना रूप भी उससे छोड़ा नहीं जाता, तो अपनी मां की साड़ी का पुछल्ला पकड़कर भी घूमना चाहता है; और मां अगर जरा डांट दे, तो वह पूरा सिर ऊंचा उठाकर खड़ा हो जाता है, तो बाप की ऊंचाई का हो जाता है। और मां के सामने घूरकर देख ले, तो मां भी घबड़ा जाती है। और ये दोनों उसमें होते हैं।
इसलिए एडॉलसेंस जो है, वह बड़ी पीड़ा का वक्त है। पुराना रूप छूटता नहीं, नया रूप असर्ट करता है, तोड़ता है। जैसे बीज टूटता हो, तो पीड़ा तो होगी। फिर एक आदमी बामुश्किल इसमें प्रवेश कर जाता है। काफी वक्त लगता है। किसी तरह प्रवेश कर जाता है। फिर जवानी के साथ ठहर जाता है। तो थोड़े ही दिनों में बुढ़ापा धक्के देने लगता है। तो बड़ी मुश्किल होती है; फिर बड़ी मुश्किल होती है।
मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने पूछा है; एक दिन शराबघर से लौटता है, एक मित्र ने उससे कहा कि नसरुद्दीन, बुढ़ापे के लक्षण शुरू हो गए। तुम्हारे बाल सफेद पड़ने लगे। नसरुद्दीन ने कहा, फिक्र छोड़ो बालों की। बाल हो जाएं सफेद, दिल तो अभी भी काला है।
बाल जब सफेद हो जाते हैं, तब भी जवानी पीछा तो नहीं छोड़ती; वह असर्ट करती है। तब फिर रूप का संघर्ष शुरू हो जाता है। किसी तरह बामुश्किल जिंदगी के साथ ठहर नहीं पाते कि मौत दरवाजे पर दस्तक दे देती है कि चलो, वक्त हो गया। इधर अभी हम आ भी नहीं पाए थे, उधर जाने का वक्त हो गया। ठहर भी नहीं पाए थे कि तंबू उखाड़ो। अभी बल्लियां गाड़ ही रहे थे, अभी खूंटियां लगाई ही थीं, अभी तंबू पूरा फैल भी नहीं पाया था।
किसका तंबू कब पूरा फैल पाता है! खूंटियां गड़ी रह जाती हैं, उखड़ने का वक्त आ जाता है। इधर हम तैयारी कर रहे थे कि और खूंटियां कैसे गाड़ें, कि खबर आती है, उखाड़ो, वक्त जाने का हो गया। तंबू समेटो!

एक रूप बन नहीं पाता कि दूसरा रूप भीतर से आकर खबर देता है कि चलने की तैयारी है। इसलिए रूप के साथ कभी भी आनंद नहीं हो सकता। आकार के साथ कभी आनंद नहीं हो सकता। दुख ही होगा, संताप ही होगा, एंग्विश ही होगी, नर्क ही होगा।
इसलिए कृष्ण जैसे लोग बार-बार दोहराते हैं कि वह जो अरूप है, वह जो शाश्वत है, वह जो नहीं विनष्ट होता है, वह परम आनंद भी है।
और अपना स्वरूप अर्थात स्वभाव अध्यात्म है।
बड़ी कीमत का सूत्र कहा है। यह एक सूत्र भी गीता को गीता बना देने के लिए काफी है। बाकी सब फेंक दिया जाए, तो चलेगा। स्वभाव अध्यात्म है--काफी है।
लाओत्से ने अपनी जिंदगीभर इस सूत्र के अतिरिक्त किसी सूत्र की व्याख्या नहीं की--स्वभाव अध्यात्म है।
नहीं, लेकिन गीता पढ़ने वाले को भी इस सूत्र पर ज्यादा ध्यान नहीं जाता
कि स्वभाव अध्यात्म है। क्या मतलब है?
स्वभाव अध्यात्म है का अर्थ है कि अपने भीतर उसकी तलाश कर लेनी है, जो सदा से है और मेरा बनाया हुआ नहीं है। स्वभाव अध्यात्म है, इसका अर्थ है, मुझे उसे खोज लेना है, जिसके द्वारा मेरा सब कुछ बना है और जो स्वयं अनबना है, अनक्रिएटेड है।
लेकिन हम सब तो इतने कृत्रिम हैं कि उस स्वभाव का पता लगाना बहुत मुश्किल होगा। हम तो कृत्रिम होने की एक इतनी बड़ी भीड़ हैं कि हम कौन हैं, हमें इसका ही पता नहीं है।
स्वभाव अध्यात्म है।
मैं कौन हूं, यह मुझे पता नहीं! ऐसा नहीं कि मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं। कौन हूं, बहुत कुछ मुझे पता है, लेकिन वह कोई भी स्वभाव नहीं है। वह सब सीखा हुआ है, कल्टिवेटेड है। जरा कुछ दो-चार जगह से खोज करें, तो शायद ख्याल में आ जाए।
मैं एक भाषा बोल रहा हूं। अगर मैं इस भाषा बोलने वाले लोगों के घर में पैदा न होता, मैं दूसरी भाषा बोलता, तीसरी बोलता। जमीन पर कोई तीन सौ भाषाएं हैं। किसी भी घर में पैदा हो सकता था तीन सौ भाषाओं के, तो वही भाषा बोलता।
भाषा स्वभाव नहीं है, ट्रेनिंग है, सिखाई गई है। इसलिए इस भ्रम में कोई न रहे कि अगर आपको न सिखाया जाए, तो भी आप कोई तो भाषा बोलेंगे। नहीं, कोई भाषा न बोलेंगे। अगर आपको जंगल में छोड़ दिया जाए पैदा होते ही से और भेड़िए आपको पाल लें, तो आप कोई भी भाषा नहीं बोलेंगे।
और ऐसा नहीं कि यह मैं कल्पना से कह रहा हूं। ऐसी घटनाएं घटी हैं बहुत,
जब भेड़िए बच्चों को उठाकर ले गए और उन्होंने उनको बड़ा कर लिया। वे बच्चे कोई भी भाषा नहीं बोल सकते। हां भेड़ियों की गुर्राहट कर सकते हैं; उतनी भाषा बोल सकते हैं। क्यों? क्योंकि भाषा सीखनी पड़ती है।
लेकिन भाषा के पीछे छिपा हुआ एक तत्व और है, वह है मौन। मौन सीखना नहीं पड़ता। इसलिए भाषा कृत्रिम है; मौन स्वभाव है।
यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं। इस तरह एक-एक चीज की पर्त भीतर है।
एक चीज सीखी हुई है--कई चीजें सीखी हुई हैं ऊपर--भीतर कहीं खोजने पर वह जगह मिल जाएगी, जो स्वभाव है।
मौन स्वभाव है। इसलिए मौन साधना बन गया। क्योंकि वह स्वभाव में ले जाने का मार्ग है, हो सकता है। लेकिन अगर आप चुप बैठकर भीतर भी बोलते चले जाएं, जैसा कि हम करते हैं। और आमतौर से जब कोई नहीं होता, तब हम जितने जोर से बोलते हैं, उतना जब कोई होता है, तो नहीं बोलते। क्योंकि दूसरे का भी थोड़ा तो लिहाज रखना ही पड़ता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने कमरे में जोर से किसी से विवाद कर रहा है। बाहर से उसका एक मित्र निकल रहा है। उसने खिड़की से झांककर देखा। विवाद काफी रोचक है और तेजी पर आ गया है, और मारपीट होगी, ऐसे आसार हैं। मारपीट छोड़कर तो कोई नहीं जा सकता कहीं, हालांकि वह मित्र मस्जिद जा रहा था। तो उसने सोचा, जाने भी दो आज। आकर दरवाजा खटखटाया। अंदर जाकर देखा तो मुल्ला

अकेला है! बड़ी निराशा हुई। जैसी कि सभी को होती है। अगर दो आदमी लड़ रहे हों और फिर लड़ाई न हो और दोनों अचानक अहिंसात्मक हो जाएं, तो देखा है, भीड़ जो खड़ी हो गई थी, वह कैसी उदास लौटती है! बेकार!
उसने कहा, क्या मामला है? अकेले! नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल अकेला। उसने कहा, तुम अभी विवाद कर रहे थे किसी से? उसने कहा, किसी से कर नहीं रहा था। आज कोई बकवासी आया ही नहीं, तो फिर चैन नहीं पड़ी। तो मैं खुद ही कर रहा था। उस आदमी ने कहा कि अकेले? अकेले कर रहे थे! समझ में आता है कि आदमी अकेले में कभी-कभी बातचीत करता है। लेकिन वह भी चुपचाप करता है, क्योंकि जब दूसरा है ही नहीं सुनने वाला, तो जोर से बोलने की जरूरत क्या है! भीतर ही करो, जैसा सब करते हैं!
नसरुद्दीन ने कहा कि उसमें बहुत मजा नहीं आता, क्योंकि अपने को पता ही नहीं चलता, क्या कह रहे हैं। सुनना भी जरूरी है। और इधर कुछ दिन से मैं जरा कम सुनने लगा हूं। उम्र है। तो जब तक जोर से न बोलूं, सुनाई नहीं पड़ता।
तो उस आदमी ने कहा, यह भी मान लो कि तुम बहरे हो गए हो और जोर से सुनने
के लिए बोल रहे हो, लेकिन इसमें विवाद की कहां गुंजाइश है, क्योंकि दूसरा तो मौजूद ही नहीं है!
नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे दोनों रोल अदा करने पड़ रहे हैं। इधर से भी बोल रहा हूं, उधर से भी बोल रहा हूं।
फिर भी उस आदमी ने कहा कि होगा, दोनों तरफ से बोलो, फिर भी इतनी तेजी की क्या जरूरत है? तुमको पता ही है कि तुम्हीं दोनों तरफ हो!
नसरुद्दीन ने कहा कि मैं किसी बकवासी की बातें कभी नहीं सुन पाता। और
जब उस तरफ से मैं बकवास करता हूं, तो इस तरफ से क्रोध आ जाता है। और जब इस तरफ से बकवास करता हूं, तो उस तरफ से क्रोध आ जाता है!
सभी लोग यही कर रहे हैं। अकेले में भी, वह जो मौन लेकर बैठा हुआ है, वह भीतर इतनी बकवास और इतने विवाद में पड़ा हुआ है, जिसका हिसाब नहीं।
मौन का अर्थ? मौन का अर्थ यह नहीं कि होंठ बंद हो गए। मौन का अर्थ है, भीतर भाषा बंद हो गई, भाषा गिर गई। जैसे कोई भाषा ही पता नहीं है। और अगर आदमी स्वस्थ हो, तो जब अकेला हो, उसे भाषा पता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि भाषा दूसरे के साथ कम्युनिकेट करने का साधन है, अकेले में भाषा के जानने की जरूरत नहीं है। अगर वह भाषा गिर जाए, तो जो मौन भीतर बनेगा, वह स्वभाव है, वह किसी ने सिखाया नहीं है।
मैं किसी भी भाषा वाले घर में पैदा हो जाऊं, हिंदी बोलूं कि मराठी कि गुजराती, कुछ भी बोलूं, लेकिन जिस दिन मैं मौन में जाऊंगा, उस दिन मेरा मौन न गुजराती होगा, न हिंदी होगा, न मराठी होगा। सिर्फ मौन होगा; वह स्वभाव है।
हम इतने लोग यहां बैठे हैं। अगर हम शब्दों में जीएं, तो हम सब अलग-अलग हैं। और अगर हम मौन में जीएं, तो हम सब एक हैं। अगर इतने बैठे हुए लोग यहां मौन हो जाएं क्षणभर को, तो यहां इतने लोग नहीं, एक ही व्यक्ति रह जाएगा। एक ही! बिकाज लैंग्वेज इ.ज दि डिवीजन। भाषा तोड़ती है। मौन तो जोड़ देगा। हम एक ही हो जाएंगे।
और ऐसा ही नहीं कि हम व्यक्तियों से एक हो जाएंगे। भाषा के कारण हम मकान से एक नहीं हो सकते। भाषा के कारण हम वृक्ष से एक नहीं हो सकते। भाषा के कारण हम चांद-तारों से एक नहीं हो सकते। लेकिन मौन में तो हम उनसे भी एक हो जाएंगे। आखिर मौन में क्या बाधा है कि मैं चांद से बोल लूं! मौन में क्या बाधा है कि चांद से हो जाए बातचीत--बातचीत मुझे कहनी पड़ रही है--कि चांद से हो जाए संवाद, मौन में! भाषा में तो नहीं हो सकता; मौन में हो सकता है।
इसलिए जो लोग गहरे मौन में गए, जैसे महावीर। इसलिए महावीर का जो सर्वाधिक प्रख्यात नाम बन गया, वह बन गया मुनि, महामुनि। मौन में गए। इसलिए आज भी महावीर का संन्यासी जो है, मुनि कहा जाता है, हालांकि मौन में बिल्कुल नहीं है।

महा मौन में चले गए। और इसीलिए महावीर कह सके कि वनस्पति को भी चोट मत पहुंचाना। रास्ते पर चलते वक्त कीड़ी भी न दब जाए, इसका ख्याल रखना। यह महावीर को पता कैसे चला कि कीड़ी की इतनी चिंता करनी चाहिए!
जो भी आदमी मौन में जाएगा, उसके संबंध चींटी से भी उसी तरह जुड़ जाते हैं, वृक्ष से भी उसी तरह जुड़ जाते हैं, पत्थर से भी उसी तरह जुड़ जाते हैं, जैसे आदमियों से जुड़ते हैं। अब उसके लिए जीवन सर्वव्यापी हो गया। अब सबमें एक का ही विस्तार हो गया। अब यह चींटी नहीं है, जो दब जाएगी, जीवन है। और यह वृक्ष नहीं है, जो कट जाएगा, जीवन है। अब जहां भी कुछ घटता है, वह जीवन पर घटता है। और मौन में होकर जिसने इस विराट जीवन को अनुभव किया, जब भी कहीं कुछ कटता है, तो मैं ही कटता हूं फिर, फिर कोई दूसरा नहीं कटता है। कृष्ण कहते हैं, स्वभाव अध्यात्म है।
एक उदाहरण से मैंने कहा, भाषा न हो, तो मौन स्वभाव हो जाएगा। एकाध और ख्याल ले लें, तो यह बात साफ, शायद--शायद--साफ हो जाए।
कभी आपने आंख बंद करके यह ख्याल किया कि मेरे शरीर की आकृति को छोड़ दूं, तो मेरी आकृति क्या है? कभी आपने ख्याल किया कि आंख बंद करके बैठ गए हों, और सोचा हो कि शरीर का ख्याल छोड़ दूं कि शरीर की आकृति क्या है, मेरी आकृति क्या है? इस शरीर के भीतर जो मेरा होना है, उसकी आकृति, उसका आकार, उसका रूप क्या है?
नहीं, हम शरीर के ही रूप को अपना रूप समझते हैं। हालांकि शरीर रोज अपना रूप बदल रहा है, फिर भी हमें ख्याल नहीं आता। अगर आपके सामने तस्वीर रख दी जाए आपकी ही, एक दिन के जीवन की, जब आप एक दिन के हुए थे उस दिन की, आप पहचान नहीं सकेंगे कि आपकी तस्वीर है। हालांकि उस दिन आपने माना होगा कि यह मेरा रूप है। आज जो आपकी तस्वीर है, आप बीस साल बाद नहीं पहचान पाएंगे कि यह मेरी तस्वीर है। यह मैं हूं! लेकिन आज आप कह रहे हैं, मैं हूं। बीस साल बाद दूसरी तस्वीर को कहेंगे कि मैं हूं। यह तस्वीरों कीशृंखला, इसे आप कहते हैं, मैं हूं!
झेन फकीर कहते हैं, फाइंड आउट योर ओरिजिनल फेस, अपना असली चेहरा खोजो।
वे कहते हैं, इस चेहरे को भूलो, जो तुमने आईने में देखा।
जिस चेहरे को देखने के लिए भी आईने की जरूरत पड़ती है, वह चेहरा अपना नहीं हो सकता। कम से कम अपना चेहरा तो बिना आईने के दिखाई पड़ जाना चाहिए। अपना! उसे भी देखने के लिए आईना चाहिए? वह भी उधार; वह भी वापस रिफ्लेक्टेड; आईना जो कहेगा!
और ध्यान रखें, कोई आईना सच नहीं कह सकता। कोई आईना सच नहीं कह सकता। आईना अपनी भाषा में कुछ कहेगा; आईने के ढंग से कहेगा। तो आपने आईने देखे होंगे, जिनमें आप लंबे हो गए हैं, मोटे हो गए हैं, दुबले हो गए हैं, चेहरा कुरूप हो गया है। वे आईने अपनी-अपनी भाषा में बोल रहे हैं। एक हमने कामन आईना बना रखा है, सबको धोखा देने के लिए। उसके सामने हम खड़े हो जाते हैं; समझ लेते हैं, यही मेरा चेहरा है; यही।
नहीं, भीतर कभी चुप और मौन होकर आंख बंद करके शरीर को कहें कि ठीक, तेरी यह आकृति है, मान गए। मेरी आकृति क्या है? जिसके ऊपर यह शरीर की सारी आकृतियां बदलती रहती हैं, उसकी आकृति क्या है?
अगर आप उसकी आकृति को खोजने उतरें, तो धीरे-धीरे सब आकृतियां खो जाएंगी और निराकार में आप खड़े हो जाएंगे। उस निराकार में स्वभाव है। शरीर की आकृतियों में सब कृत्रिमता है। यह मां-बाप से दी गई आकृति है आपको। आपको शायद पता न हो, लेकिन जरूर अच्छा होगा जान लेना। अभी तो जमीन पर एक ही शक्ल के दो आदमी नहीं होते। ठीक जुड़वां बच्चों में भी थोड़ा-सा फर्क होता है। एक अंडे से पैदा हुए दो बच्चों में भी थोड़ा-सा फर्क होता है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि अब हम डुप्लीकेट कापी तैयार कर सकते हैं। अब हर आदमी की नकल तैयार की जा सकती है; क्योंकि फार्मूला ख्याल में आ गया है। फार्मूला बहुत कठिन नहीं था; ख्याल में नहीं था।
जिन अणुओं से बच्चे का निर्माण होता है मां के पेट में, ठीक उन अणुओं
को दो हिस्सों में काटा जा सकता है, पहले ही अंडे में। और एक अंडे के दो

अंडे बनाए जा सकते हैं अब। तब उन दोनों में से बिल्कुल एक-सी आकृति के दो आदमी पैदा होंगे, बिल्कुल एक-सी।
यह तो वैज्ञानिकों की जरूरत है फिलहाल अभी। क्योंकि वे कहते यह हैं
कि हर एक आदमी को आने वाले पचास सालों में--कम से कम उन लोगों को, जिनकी लोगों को ज्यादा जरूरत होगी--उसकी एक कापी हम, डुप्लीकेट कापी, जैसे ही वह मां के पेट में पहुंचेगा पहले दिन, उसी क्षण निकालकर, आधे हिस्से को काटकर, अलग तैयार कर लेंगे मशीन में। उधर मां के पेट में जो बच्चा बड़ा होगा, ठीक ऐसा ही बच्चा मशीन में बड़ा होता जाएगा। इस बच्चे को बड़ा करके, फ्रीज करके रख दिया जाएगा। यह करीब-करीब मुर्दा ही रहेगा।
इसे इसलिए रख दिया जाएगा कि आने वाली दुनिया में दुर्घटनाएं रोज बढ़ती चली जाएंगी जैसे-जैसे विज्ञान विकसित होगा; और लोगों को रोज ही स्पेयर पार्ट्स की जरूरत पड़ती रहेगी, तो उसकी खोज नहीं करनी पड़ेगी। यह उनकी डिपाजिट जो कापी है, इसमें से कभी भी एक आदमी का हाथ टूट गया, तो उसका हाथ काटकर इसमें लगा दिया जाएगा। वह बिल्कुल फिट हो जाएगा, क्योंकि वह इसका ही हाथ है। गर्दन भी कट गई, तो उसकी गर्दन इस पर बिठाई जा सकेगी। एक जैसे दस-बारह आदमी भी तैयार किए जा सकते हैं, कापी की जा सकती है, कोई हर्जा नहीं। लेकिन फिर भी फर्क कायम रहेंगे। क्योंकि शरीर एक जैसे हो सकते हैं।
वह जो भीतर है, वह बहुत यूनीक है, वह बहुत बेजोड़ है। इसलिए अगर दो कापी भी विज्ञान बना लेता है, तो शरीर बिल्कुल एक जैसे होंगे, लेकिन व्यक्ति बिल्कुल अलग-अलग होंगे।
वह कौन है भीतर, जो अलग है शरीर से? और दो शरीर भी एक जैसे हो जाएं, तो
भी भीतर अलग होता है!
शरीर को भूलकर, इसका थोड़ा ख्याल करें। इस ख्याल को दो तरह से कर सकते हैं, और स्वभाव की थोड़ी-सी झलक मिल सकती है, वही अध्यात्म है। तो एक छोटा-सा प्रयोग आपको कहता हूं।
कभी जब चित्त बहुत प्रसन्न हो, कभी जब चित्त बहुत प्रसन्न हो, तो द्वार-दरवाजे बंद करके अपने कमरे में लेट जाएं नग्न होकर; आंख बंद कर लें। और एक मिनट तक अपने माथे पर हाथ रखकर दोनों आंखों के बीच में एक मिनट तक रगड़ते रहें। चित्त अगर प्रसन्न हो, तो माथे पर रगड़ते ही सारी प्रसन्नता माथे पर इकट्ठी हो जाएगी।
ध्यान रहे, जब आदमी उदास होता है, तो अक्सर माथे पर हाथ रखता है। माथे
पर हाथ रखने से उदासी बिखरती है और प्रसन्नता इकट्ठी होती है। हालांकि प्रसन्नता में कोई नहीं रखता, उसका ख्याल नहीं है।
जब आदमी उदास होता है, दुखी होता है, चिंतित होता है, तो माथे पर हाथ रखता है। उससे चिंता बिखर जाती है; उस जगह जो इकट्ठा है, वह बिखर जाता है। निगेटिव कुछ होगा, तो माथे पर हाथ रखने से बिखर जाता है। पाजिटिव कुछ होगा, तो माथे पर हाथ रखने से इकट्ठा हो जाता है।
इसलिए मैंने कहा, जब प्रसन्न क्षण हो मन का कोई, लेट जाएं, माथे पर एक क्षण रगड़ लें जोर से हाथ से, अपने ही हाथ से। वह जगह बीच में जो है, वह बहुत कीमती जगह है। शरीर में शायद सर्वाधिक कीमती जगह है। वहां अध्यात्म का सारा राज छिपा है। थर्ड आई कोई कहता है उसे, कोई शिवनेत्र; उसे कोई भी कुछ नाम देता हो, पर वहां राज छिपा है। उस पर हाथ रगड़ लें। उस पर हाथ रगड़ने के बाद जब आपको लगे कि प्रसन्नता सारे शरीर से दौड़ने लगी है उस तरफ, आंख बंद रखें और सोचें कि मेरा सिर कहां है! ख्याल करें आप आंख बंद करके कि मेरा सिर कहां है!
आपको बराबर पता चल जाएगा कि सिर कहां है। सबको पता है, अपना सिर कहां है। फिर एक क्षण के लिए सोचें कि मेरा सिर जो है, वह छः इंच लंबा हो गया। आप कहेंगे, कैसे सोचेंगे!
यह बिल्कुल सरल है, और एक दो दिन में आपको अनुभव में आ जाएगा कि माथा
छः इंच लंबा हो गया। आंख बंद किए! फिर वापिस लौट आएं, नार्मल हो जाएं, अपनी खोपड़ी के अंदर वापिस आ जाएं। फिर छः इंच पीछे लौटें, फिर वापस लौटें। पांच-सात बार करें।

जब आपको यह पक्का हो जाए कि यह होने लगा, तब सोचें कि पूरा शरीर मेरा
जो है, वह कमरे के बराबर बड़ा हो गया। सिर्फ सोचना, जस्ट ए थाट, एंड दि थिंग हैपेंस। क्योंकि जैसे ही यह तीसरे नेत्र के पास शक्ति आती है, आप जो भी सोचें, वही हो जाता है। इसलिए इस तरफ शक्ति लाकर कभी भी कुछ भूलकर गलत नहीं सोच लेना, वह भी हो जाता है।
इसलिए इस तीसरे नेत्र के संबंध में बहुत बातें लोगों को नहीं कही जाती हैं, क्योंकि इससे बहुत संबंधित द्वार हैं। यह करीब-करीब वैसी ही जगह है, जैसा पश्चिम का विज्ञान एटामिक एनर्जी के पास जाकर झंझट में पड़ गया है, वैसा ही पूरब का योग इस बिंदु के पास आकर झंझट में पड़ गया था। और पूरब के मनीषियों ने खोजा हजारों वर्षों तक, और फिर छिपाया इसको। क्योंकि आम आदमी के हाथ में पड़ा, तो खतरे शुरू हो गए थे।
अभी पश्चिम में वही हालत है। आइंस्टीन रोते-रोते मरा है कि किसी तरह एटामिक एनर्जी के सीक्रेट खो जाएं, तो अच्छा है; नहीं तो आदमी मर जाएगा। पूरब भी एक दफा इस जगह आ गया था दूसरे बिंदु से, और उसने सीक्रेट खोज लिया था, और उससे बहुत उपद्रव संभव हो गए थे, और शुरू हो गए थे। तो फिर उसको भुला देना पड़ा। पर यह छोटा-सा सूत्र मैं कहता हूं, इससे कोई बहुत ज्यादा खतरे नहीं हो सकते हैं, क्योंकि और गहरे सूत्र हैं, जो खतरे ला सकते हैं। सोचें एक क्षण को कि जब आपका सिर बाहर निकलने, भीतर आने में समर्थ हो जाए--और एक दो-चार दफे में हो जाता है--तो सोचें कि मेरा शरीर पूरे कमरे में फैल गया है, इतना बड़ा हो गया है। आप फौरन पाएंगे कि एक बैलून की तरह, एक गुब्बारे की तरह आप दीवालों को छू रहे हैं। तब आप पूछें कि मेरी आकृति क्या है? क्योंकि यह तो मेरी आकृति नहीं है।
शरीर की जो हमारी प्रतीति है, वह केवल आटोहिप्नोटिक है। बचपन से हम सोच रहे हैं, यह मेरी सीमा है, यह मेरा शरीर है; यह मेरी सीमा है, यह मेरा शरीर है। बस। यह सिर्फ सम्मोहित है। इसे छोड़ देना पड़े। यह कंडीशंड है, यह सीखी हुई बात है, इसका प्रशिक्षण हुआ है। यह है नहीं। इस प्रशिक्षण को तोड़ दें, जैसे भाषा को तोड़ा। यह भी एक भाषा है आकार की, इसको तोड़ दें, और निराकार में आप खड़े हो जाएंगे। और तब आप जानेंगे, कृष्ण का क्या अर्थ है, स्वभाव अध्यात्म है।
स्वभाव का अर्थ है, जो मैं हूं, बिना बनाया। बिना किसी की सहायता के, बिना आयोजन के, बिना चेष्टा के, बिना प्रयत्न के जो मैं हूं ही; वह जो मेरा सारभूत हिस्सा है--असृष्ट, अनिर्मित, अनायोजित--वही मैं हूं, उसको जान लेना ही अध्यात्म है। जो उसे जान ले, वही ब्रह्म को भी जान लेता है। इसलिए अध्यात्म ब्रह्म को जानने का विज्ञान है।
अपना स्वरूप अध्यात्म। भूतों के भावों को उत्पन्न करने वाला विसर्ग, त्याग, वह कर्म के नाम से कहा गया है। अर्जुन ने पूछा है, कर्म क्या है? कृष्ण कहते हैं, भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला विसर्ग, कर्म के नाम से कहा गया है। इस संबंध में दो-तीन बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं।
एक, जो लोग भी गीता पर टीकाएं किए हैं, उन सबने कर्म से अर्थ लिया है वैदिक कर्मकांड का। उन सबने अर्थ लिया है, शास्त्र-विहित यज्ञ, दान, होम आदि के निमित्त जो द्रव्य आदि का त्याग है, वह कर्म कहा गया है। लेकिन यह थोपा हुआ अर्थ है।
कृष्ण जैसे व्यक्ति सामयिक भाषाओं में नहीं बोलते हैं, शाश्वत भाषाओं में बोलते हैं। कृष्ण का क्या अर्थ होगा? भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला, जो त्याग है, वह कर्म कहा गया है।
यह बहुत कठिन सूत्र है। अगर इसकी पहली व्याख्या--जैसा कि आमतौर से की जाती है--की जाए, तो एकदम साधारण सूत्र है। लेकिन मैं जो इसमें देखता हूं, वह बहुत असाधारण है। तो उसे थोड़ा पकड़ने में दिक्कत पड़ेगी।
आदमी का जो स्वभाव है, वह उसका बीइंग है। और आदमी का जो स्वभाव नहीं है; वह उसका कर्म है, वह उसका डूइंग है।
और हमारे दो हिस्से हैं, एक हमारा स्वभाव, जो मैं हूं; और एक मेरे कर्म
का जगत, जो मैं करता हूं। निश्चित ही, कृष्ण का यह दूसरा अर्थ है। क्योंकि जस्ट आफ्टर बीइंग की परिभाषा, कि स्वभाव अध्यात्म है, वह कर्म की परिभाषा

करनी ही उनको चाहिए, कि फिर कर्म क्या है! क्योंकि हम सारे लोग डूइंग को ही समझते हैं, मैं हूं।
एक आदमी से पूछें, आप कौन हैं? वह कहता है कि मैं चित्रकार हूं। असल में चित्रकार होना, उसके होने की खबर नहीं है; इस बात की खबर है कि वह क्या करता है। चित्र बनाता है।
एक आदमी कहता है कि मैं दुकानदार हूं। दुकानदार कोई हो सकता है दुनिया में? दुकानदार कर्म है, होना नहीं है। वह आदमी यह कह रहा है कि मैं दुकानदारी करता हूं। उसको कहना यह चाहिए कि मैं दुकानदारी करता हूं। पर वह कहता है, मैं दुकानदार हूं।
हम कर्म के जोड़ को ही अपनी आत्मा बनाए हुए बैठे हैं। इसलिए हर आदमी अपने कर्म से ही अपना परिचय देता है--हर आदमी! किसी से भी पूछो, कौन हो? वह फौरन बताता है कि मेरा कर्म क्या है। पूछा ही नहीं आपसे कि आपका कर्म क्या है। लेकिन अगर नहीं पूछा कि कर्म क्या है, तो बड़ी मुश्किल है। उसका तो हमें पता ही नहीं कि मैं कौन हूं। कर्म का ही लेखा-जोखा है।
तो हर आदमी अपना खाता-बही लिए अपने साथ चलता है। वह कहता है, यह मैं हूं। कोई आदमी अपनी तिजोड़ी ढोता है, वह कहता है, यह मैं हूं। कोई आदमी अपनी पोथियां लेकर चलता है कि यह मैं हूं। कोई आदमी अपना त्याग लिए चलता है कि यह मैं हूं। देखो, मैंने बारह साल तपश्चर्या की; यह मैं हूं।
कर्म को ही हम कहते हैं कि यह मैं हूं। अगर कर्म छीन लिया जाए, तो भी आप होंगे या नहीं होंगे? अगर त्यागी से त्याग छीन लिया जाए, धनी से धन छीन लिया जाए, चित्रकार से उसकी चित्रकला छीन ली जाए, उसके हाथ काट दिए जाएं कि वह चित्र भी न बना सके, तो भी चित्रकार, जो कह रहा था कि मैं चित्रकार हूं, वह होगा कि नहीं?
वह होगा ही। हाथ काट डालो, तूलिका छीन लो; धन छीन लो, त्याग छीन लो, ज्ञान छीन लो; कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरा होना तो होगा ही। मेरा होना मेरा करना नहीं है। मेरा होना नितांत अकर्म की अवस्था है, नान एक्शन की; जब मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, सिर्फ हूं।
स्वाभाविक है कि कृष्ण तत्काल कर्म की बात कहें। और अर्जुन ने भी पूछा है, कर्म क्या है? उसने भी नहीं पूछा, वैदिक कर्मकांड क्या है? पूछा कि कर्म क्या है? कृष्ण भी नहीं कहते कि वैदिक कर्म क्या है। वे कहते हैं, कर्म, भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला जो त्याग है।
बड़ा ही महत्वपूर्ण सूत्र है।
इस जगत में हमारे मन में, जब भी हम कुछ पाने की इच्छा से चलते हैं, जब
भी हम भोगना चाहते हैं, तब हमें कुछ त्यागना पड़ता है। और ध्यान रहे, जब भी हम जगत में कुछ भोगना चाहते हैं, तो हमें स्वयं को त्यागना पड़ता है, दि वेरी मोमेंट। अगर मैं चाहता हूं कि मैं धनी हो जाऊं, तो हर धन की तिजोड़ी भरने के साथ-साथ मुझे अपनी आत्मा को क्षीण करते जाना पड़ेगा। अगर मैं चाहता हूं कि बड़े यश के सिंहासनों पर प्रतिष्ठित हो जाऊं, तो जैसे-जैसे मैं यश के सिंहासन की सीढ़ियां चढूंगा, वैसे-वैसे मेरा अस्तित्व, मेरा बीइंग, मेरी आत्मा नर्क की सीढ़ियां उतरने लगेगी।
इस जगत में कुछ भी भोग, त्याग है अपना। और व्यर्थ के लिए हम सार्थक को छोड़ते चले जाते हैं!
तो भोगादि की इच्छा से, वासना से, कुछ पाने की आकांक्षा से, जो भी त्याग किया जाता है, जो विसर्ग है... ।
यह विसर्ग शब्द बहुत अदभुत है। अपने से बिछुड़ जाने का नाम विसर्ग है। डिसज्वाइंट फ्राम वनसेल्फ--स्वयं से टूट जाना विसर्ग है। स्वयं से चूक जाना, हट जाना विसर्ग है। स्वयं से चूक जाना ही त्याग है।
यह बड़े मजे की बात है, जिन्हें हम त्यागी कहते हैं, शायद वे त्यागी नहीं। हम सब, जिन्हें हम भोगी समझते हैं, बड़े त्यागी हैं, महात्यागी हैं। क्योंकि हम क्षुद्र के लिए विराट को छोड़कर बैठे हैं! हम जैसा त्यागी खोजना बहुत कठिन है। एक कौड़ी हमें मिलती हो, तो हम आत्मा को बेचने को तैयार हैं, कि सम्हालो यह आत्मा, कौड़ी हमें दो। हम न हुए तो चल जाएगा, कौड़ी न हुई तो कैसे चलेगा!

मुल्ला नसरुद्दीन को कुछ डाकुओं ने घेर लिया है एक अंधेरे रास्ते पर।
और वे कहते हैं कि क्या इरादा है? धन देते हो अपना कि जान? नसरुद्दीन ने कहा, जान ले लो। धन तो मैंने बुढ़ापे के लिए बचाकर रखा है! और फिर जान की कीमत ही क्या है? मुफ्त मिली थी, मुफ्त एक दिन जाएगी। धन बड़ी मुश्किल से कमाया है!
हंसते हम जरूर हैं, लेकिन करते हम भी यही हैं। नसरुद्दीन इकट्ठा कर रहा है; हम जरा फुटकर-फुटकर करते हैं। वही आदमी अच्छा है; इकट्ठा कर रहा है। वही लाजिकल कनक्लूजन है हमारी जिंदगी का, वह जो नसरुद्दीन कह रहा है कि ठीक, ले लो जान। क्योंकि जान के लिए किया क्या हमने कभी कुछ। मुफ्त मिली, मुफ्त चली जाएगी। धन? धन के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ी है। और फिर, मोरओवर आई एम सेविंग इट फार दि ओल्ड एज--बुढ़ापे के लिए बचा रहा हूं। जान का क्या करेंगे बुढ़ापे में अगर धन ही न हुआ? एक बार बिना जान के चल जाए, बिना धन के नहीं चल सकता है।
मगर यह आदमी जो है, यह हमारी ही निष्पत्ति है, हमारी ही बुद्धि। यही हम
सब कर रहे हैं। हम जरा हिम्मतवर कम हैं, तो धीरे-धीरे बेचते हैं, काट-काटकर बेचते हैं। यह आदमी हिम्मतवर है। और मूढ़ हिम्मतवर ज्यादा होते हैं। हम सब बहुत अपने को बुद्धिमान समझे हैं, धीरे-धीरे काट-काटकर बेचते रहते हैं। इसे कृष्ण कहते हैं कि स्वयं से छूट जाना, स्वयं का त्याग, कर्म है। यह बड़ी अदभुत बात है। यह सूत्र बहुत कीमती है। अपने से छूट जाना, अपने को छोड़ जाना, अपने होने को, स्वभाव को, स्वरूप को छोड़कर भागना ऐसी किसी चीज के प्रति, जो न कभी मिल सकती है, और मिल भी जाए तो उसके मिलने से कुछ नहीं मिलता है। लेकिन हर आदमी अपने को छोड़कर भागता है।
कर्म की अगर यह व्याख्या ख्याल में आ जाए, तो जहां-जहां हम कर्म में रत हैं, वहां-वहां हम अपने को छोड़कर भागे हैं। क्या इसका यह अर्थ है कि हम कर्म छोड़कर भाग जाएं?
नहीं, कृष्ण तो कहते हैं, कर्म छोड़कर कोई भागेगा भी तो कहां भागेगा! क्योंकि भागना भी कर्म है, और छोड़ना भी कर्म है। एक ही उपाय है कि कर्म चलता रहे, तो भी प्रतिष्ठा कर्म में न हो; प्रतिष्ठा बीइंग में, अस्तित्व में, आत्मा में हो। प्रतिष्ठा! मैं कितना ही तेजी से दौडूं, मेरे भीतर तो कोई बिंदु ऐसा ही होना चाहिए जो बिल्कुल अदौड़ा है, दौड़ा ही नहीं है। मैं कितना ही भोजन करूं, मेरे भीतर तो कोई होना चाहिए, जिसने भोजन कभी किया ही नहीं।
वह है। सिर्फ उसका स्मरण नहीं है। मैं बाएं जाऊं कि दाएं, मैं ऊपर जाऊं कि नीचे, मेरे भीतर तो कोई होना चाहिए जो सदा थिर है और कहीं आया नहीं, गया नहीं। इस प्रतिष्ठा का नाम अध्यात्म; और इस प्रतिष्ठा से चूकने का नाम कर्म है।
यहां कर्म की एक आखिरी बात और। इसका अर्थ यह हुआ कि कर्म भी तभी स्वयं
का त्याग बनता है, जब उसमें कर्ता-भाव हो; मैंने किया, ऐसा भाव हो। ज्ञानी भी करता है, लेकिन कर्ता का भाव नहीं होता, इसलिए उसके कर्म को कृष्ण कहते हैं, अकर्म जैसा कर्म है उसका। अकर्म ही है! वह करते हुए भी नहीं करता है। और हम ऐसे लोग हैं कि हम न भी करते हों, तो भी करते रहते हैं! हममें सब ऐसे लोग हैं। हममें से सबको राष्ट्रपति के पद पर बैठने का उपद्रव नहीं झेलना पड़ेगा। ऐसे अभागे हममें बहुत कम हैं, जिनको ऐसी दुर्घटना घटे कि राष्ट्रपति हो जाएं। लेकिन हम सब बैठते रहते हैं; वह हम नहीं छोड़ते मौका। कुर्सी पर बैठे हैं, बहुत जल्दी राष्ट्रपति का सिंहासन हो जाता है। मन ही मन में न मालूम कहां-कहां चढ़ते-बैठते रहते हैं! न मालूम क्या-क्या करते रहते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी थी, तो उस पर मुकदमा चला। और मजिस्ट्रेट ने पूछा, नसरुद्दीन, क्या तुम कुछ भी अपने पक्ष, अपने बचाव में कह सकते हो? तो नसरुद्दीन ने कहा, पहली बात तो यह कि अगर अपना बचाव ही कर सकते, तो हत्या क्यों करते? अगर अपना बचाव ही कर सकते, तो हत्या क्यों करते? और फिर दूसरी बात यह कि इस स्त्री के साथ हम तीस साल रहे, क्या यह भी काफी नहीं है कि हमने इसके पहले इसकी हत्या कभी नहीं की! और

नसरुद्दीन ने कहा, अब सच्ची आखिरी बात आपको बता दूं कि तीस साल तक हत्या के संबंध में सोचते रहने की बजाय मैंने सोचा, कर ही देना उचित है। तीस साल! नसरुद्दीन ने कहा, सोचिए, तीस साल! और मेरा वकील मुझ से कहता है कि अब तुझे तीस साल की सजा होगी कम से कम। इस कमबख्त ने अगर पहले ही बता दिया होता, तो हम पहले दिन इसकी हत्या कर देते, तो आज छूट गए होते! तीस साल! आज हमें दुख इस बात का नहीं है, नसरुद्दीन ने कहा कि क्यों हत्या की! आज दुख इस बात का है कि तीस साल काहे पिछड़े! किसलिए? आज छूट गए होते। आज मुक्त, बाहर होते। इस कमबख्त से पहले भी पूछा था, तब इसने कहा था, फांसी लग जाएगी नसरुद्दीन! और अब कहता है, तीस साल की सजा होगी!
कर रहे हैं हम सब। कितनी हत्याएं आपने की हैं, हिसाब है? कितने साल से, कितने लोगों की हत्या कर रहे हैं? बिना किए, किए चले जाते हैं। क्योंकि करें, तब तो एक ही करने में मुश्किल पड़ेगी। इसमें बड़ी सुविधा रहती है; ज्यादा करने की सुविधा रहती है।
हम बिना किए करते रहते हैं। कुछ लोग हैं, जो करते भी हैं और नहीं करते हैं। पर तब उनका कर्म विकर्म, अकर्म हो जाता है, विशेष कर्म हो जाता है या कर्म-शून्य हो जाता है; वे कर्ता नहीं रह जाते।
आज इतना ही। कल हम दूसरे सूत्र पर आगे बढ़ेंगे।
सुबह के लिए एक-दो सूचनाएं दे देनी हैं। सुबह केवल वे ही लोग आएंगे, जो सुनने के लिए नहीं, कुछ करने के लिए उत्सुक हों। वे ही लोग आएंगे सुबह, जो ध्यान में उतरना चाहते हों। अन्यथा न आएं। कोई दर्शक न आए।
और जो लोग आ जाएं, वे फिर पूरे साहस से उस प्रयोग में उतरें। क्योंकि सांझ हम जो बात करेंगे, वह बात ही रह जाएगी, अगर सुबह हमने उसका प्रयोग न किया। और आदमी इतना बेईमान है कि डर तो यह है कि सांझ जिसे कहा है, उसे वह सुबह तक कभी का भूल चुका होगा। लेकिन फिर भी एक कोशिश... ।
सांझ जो मैंने कहा है अभी, कल सुबह हम प्रयोग में कर सकें, तो शायद कहीं कोई रेखा हमारे भीतर छूट जाए। कहीं कोई प्रयोग से फूल खिल जाए। और चाहे अर्जुन समझा हो गीता या न समझा हो, अगर वह फूल खिल जाए, तो जिसके भीतर वह फूल खिल जाता है, वह तो समझ ही जाता है।
आज के लिए इतना ही।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
दूसरा प्रवचन

मृत्यु-क्षण में हार्दिक प्रभु-स्मरण

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।। 4।।
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।। 5।।
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।। 6।।
उत्पत्ति-विनाश धर्म वाले सब पदार्थ अधिभूत हैं और हिरण्यमय पुरुष अधिदैव हैं और हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन, इस शरीर में मैं ही अधियज्ञ हूं।
और जो पुरुष अंतकाल में मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। कारण कि हे कुंतीपुत्र अर्जुन, यह मनुष्य अंतकाल में जिस-जिस भी भाव
को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, उस-उस को ही प्राप्त होता है। परंतु सदा उस ही भाव को चिंतन करता हुआ, क्योंकि सदा जिस भाव का चिंतन करता है, अंतकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है।

जिसका न प्रारंभ है और न जिसका अंत, उसे कृष्ण ने ब्रह्म कहा है। जो न कभी जन्मता है और न कभी मरता है, वह ब्रह्म है। लेकिन जो भी हमारे चारों ओर मौजूद दिखाई पड़ता है, वह जन्मता भी है और मरता भी है। उत्पत्ति भी होती है उसकी और विनाश भी। कृष्ण कहते हैं, यही पदार्थ है, यही अधिभूत है।
पदार्थ की और परमात्मा की यह परिभाषा समझ लेने जैसी है। पदार्थ हम उसे कहते रहे हैं सदा से, जो वास्तविक मालूम पड़ता है, रियल मालूम पड़ता है, जिसे हम ठोंक-बजाकर देख और पहचान सकते हैं। जो हमारी इंद्रियों की पकड़ में आता है--सुना जा सकता है, देखा जा सकता है, छुआ जा सकता है। जो वास्तविक है, यथार्थ है, उसे हम पदार्थ कहते रहे हैं।
और इसीलिए पदार्थवादी दर्शन है कि परमात्मा नहीं है, क्योंकि वह पदार्थ की तरह यथार्थ नहीं है। न हम उसे देख सकते, न छू सकते। जो न छुआ जाता, न देखा जाता, न इंद्रियों की पकड़ में आता, वह नहीं है। क्योंकि उसके होने का प्रमाण क्या है? पदार्थ का तो प्रमाण है, वह प्रत्यक्ष है और इंद्रियां उसका साक्षात्कार करती हैं। परमात्मा का कोई भी प्रमाण नहीं है। इसलिए पदार्थवादी सदा से कहता रहा है कि पदार्थ ही है, परमात्मा नहीं है।
लेकिन कृष्ण जो परिभाषा करते हैं, वह पूर्वीय मनीषा की गहनतम खोजों में से एक है। वह यह है कि हम परमात्मा उसे कहते हैं, जो सदा है एकरस, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं है। और पदार्थ हम उसे कहते हैं, जो एक क्षण को भी वैसा नहीं है जैसा क्षणभर पहले था। परिवर्तन ही जिसका स्वभाव है, उसे हम पदार्थ कहते हैं; और नित्य होना ही जिसकी स्थिति है, उसे हम ब्रह्म कहते हैं।
चारों ओर जो हमें दिखाई पड़ता है, वह परिवर्तन ही है, क्योंकि परिवर्तन
ही हमें दिखाई पड़ सकता है। इसे थोड़ा समझना होगा।
जो चीज बदलती है वह हमें दिखाई पड़ती है, यह आपने ख्याल शायद न किया हो। कभी आपने देखा हो, एक कुत्ता आपके घर के सामने बैठा हुआ है। ठीक उसके सामने एक पत्थर पड़ा हुआ है, लेकिन उस कुत्ते को कोई फिक्र नहीं है। एक पतले धागे में उस पत्थर को बांधकर आप बैठे रहें; कुत्ता आराम से बैठा है। उस पत्थर का उसे कोई भी पता नहीं है। आप धागे से पत्थर को थोड़ा खींचें। और कुत्ते को फौरन एहसास होगा कि पत्थर है। भौंकेगा; तैयार हो जाएगा। क्या हुआ?
जो चीज बिल्कुल थिर थी, उसने आकर्षित नहीं किया। वह थी या न थी, बराबर था। लेकिन जैसे ही गति आई, कि आकर्षण शुरू हुआ।

हम भी उन चीजों को भूल जाते हैं, जो बिल्कुल थिर हैं। और उन्हीं चीजों
को याद रख पाते हैं, जिनमें गति है और परिवर्तन है। परिवर्तन दिखाई पड़ता है, क्योंकि इंद्रियां, जो बदलता है, उसकी बदलाहट के कारण बेचैन हो जाती हैं। इसे थोड़ा समझें, तो यह भीतर प्रवेश करने में सहयोगी होगा।
जो चीज बदलती है, वह मन को बेचैन करती है, क्योंकि मन को रि-एडजस्टमेंट करना होता है। फिर से अपने को बदलती हुई स्थिति के साथ तालमेल बिठाना पड़ता है। जो चीज नहीं बदलती, हम उसे भूल जा सकते हैं, क्योंकि उसके साथ कोई नई स्थिति पैदा नहीं होगी, जिसके लिए हमें उसकी याद रखनी पड़े। जब साधारण स्थिर चीजों के साथ ऐसा हो जाता है, तो जो शाश्वत है, नित्य है, जो सदा से ही रहा है--जब हम नहीं थे, तब भी था; और जब हम नहीं होंगे, तब भी होगा; हम जागते हैं, तब भी वह वैसा है; हम सोते हैं, तब भी वह वैसा है--उसको अगर हम बिल्कुल ही भूल जाते हों, तो कोई आश्चर्य नहीं है।
मछली को सागर के पानी का पता नहीं चलता। चल भी नहीं सकता, जब तक मछली
को पानी के बाहर न निकाल दिया जाए। क्योंकि जब मछली नहीं जन्मी थी, तब भी सागर था। वह उसी में जन्मी, उसी में बड़ी हुई, उसी में जीयी। उसे पता भी नहीं हो सकता कि सागर भी है। सागर का होना इतना थिर है उसके लिए कि अपने होने में और सागर के होने में कोई फर्क और फासला भी नहीं है कि उसे उसका पता चले।
हां, एक बार मछली को सागर से बाहर निकाल लें, तो जो पहली चीज मछली को पता चलेगी, वह सागर है। फिर दूसरी चीजें तो पीछे पता चलेंगी। पहला पता चलेगा सागर का।
मछली को सागर से निकाला जा सकता है, लेकिन मनुष्य को परमात्मा के बाहर नहीं निकाला जा सकता है। इसलिए हमें उसका पता भी नहीं चल सकता है। हम उसे स्वीकार--स्वीकार करने का भी सवाल नहीं है, हम उसकी प्रत्यभिज्ञा को, उसके रिकग्नीशन को भी उपलब्ध नहीं होते हैं।
पदार्थ का पता चलता है; वह प्रतिपल भागा जा रहा है, बदलता जा रहा है। बदलते हुए पदार्थ के साथ हमें बदलना पड़ता है। हमें बदलना पड़ता है, इसलिए हमें उसका स्मरण रखना पड़ता है। इसलिए इंद्रियां केवल बदलते हुए पदार्थ को ही पकड़ती हैं। इंद्रियों का काम ही यही है। बदलते हुए संसार के हमें योग्य बनाए रखना, इंद्रियों का काम है। यही उनकी कुशलता है।
हम एक आदमी को बहरा कहते हैं, क्यों? क्योंकि बाहर जो ध्वनियों में अंतर हो रहा है, वह उसकी पकड़ में नहीं आता। लेकिन अगर पूर्ण सन्नाटा हो, तो बहरे और कान वाले आदमी में कोई फर्क होगा? अगर पूर्ण सन्नाटा हो और आप अचानक बहरे हो जाएं, तो क्या आपको पता चलेगा कि आप बहरे हो गए हैं? आपको कभी पता नहीं चलेगा। क्योंकि आपको अपने कान का ही पता तब चलेगा, जब बाहर दुनिया बदलती हो और आप उन्हें न पकड़ पाते हों।
अगर कोरे आकाश को मेरी आंखें देखती हों, जहां कोई भी परिवर्तन न हो, तो मैं कब अंधा हो गया, मुझे पता नहीं चल सकेगा। बदलती हुई चीजों की वजह से पता चलता है। आंख का काम है कि वह बदलती हुई चीजों की खबर देती रहे। ये सारे उपकरण इंद्रियों के बदलाहट की खबर देने के लिए हैं।
और जिंदगी पूरे समय बदलती है। पदार्थ पूरे समय बदलता है। और आपको प्रतिपल होश रखना पड़ेगा, बदलाहट तेजी से हो रही है। लेकिन परमात्मा तो कभी बदलता नहीं। कृष्ण कहते हैं, वह नित्य है, निराकार है, शून्य जैसा है, शून्य का सागर है। उसमें तो कोई बदलाहट होती नहीं है। इसलिए हमें उसका कोई भी पता नहीं चलता है।
तो कृष्ण ने पहले तो ब्रह्म की परिभाषा में कहा कि वह जो विनाश को कभी उपलब्ध नहीं होता।
विनाश को वही उपलब्ध नहीं हो सकता, जिसका होना न होने जैसा हो। इसे थोड़ा ख्याल ले लेंगे। जिसका होना न होने जैसा हो, वही केवल विनाश को उपलब्ध नहीं हो सकता। जिसका होना जितना ठोस होगा, उतनी जल्दी विनाश को उपलब्ध हो जाएगा।
कल कोई मुझसे पूछता था कि क्या आप मुझे प्रेम करते हैं? और यदि मुझे प्रेम करते हैं, तो क्या आपका प्रेम सदा बना रहेगा मेरे प्रति? तो मैंने

उस व्यक्ति को कहा कि अगर मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तो वह सदा बना रहना बहुत मुश्किल होगा। और जितना ज्यादा करूंगा, उतनी जल्दी खो जाएगा। अगर तुम चाहते हो कि मेरा प्रेम बना ही रहे सदा तुम्हारे प्रति, तो तुम्हें मेरे ऐसे प्रेम को स्वीकार करना पड़ेगा, जिसका पता भी नहीं चलता है।
जिस चीज का भी पता चलेगा, वह ठोस हो गई, पदार्थ हो गई। प्रेम भी पदार्थ
हो जाता है, जब उसका पता चलता है। फिर वह विनाश के जगत में प्रवेश कर जाता है। जिस प्रेम का पता ही नहीं चलता, वह कभी विनष्ट नहीं होता। क्योंकि उसके विनाश का कोई उपाय नहीं है। आकार चाहिए, तो कोई चीज विनष्ट की जा सकती है। निराकार को विनष्ट करने का कोई उपाय नहीं है।
परमात्मा का होना, न होने जैसा है। एक्झिस्टेंस, एज इफ नान एक्झिस्टेंट, जैसे न हो। छूने जाते हैं, तो छूने में नहीं आता। देखने जाते हैं, तो दिखाई नहीं पड़ता। खोजते हैं, खोज में नहीं आता। मुट्ठी बांधते हैं, कहीं कोई पकड़ नहीं बैठती। और है! और वही है। और बाकी सब होना, न होने में डूबता चला जाता है।
लेकिन जिसे सदा होना है, उसे ऐसा होना पड़ेगा कि वह पकड़ में न आए। क्योंकि जो भी पकड़ में आता है, वह पदार्थ हो जाता है। जिस चीज को भी हम कह सकते हैं, है; हमारे कहते ही वह विनष्ट होनी शुरू हो जाती है। इसलिए कुछ अदभुत आस्तिक जमीन पर हुए हैं, उनकी मैं आपसे बात कहूं, जैसे बुद्ध। बुद्ध से कोई पूछे कि ईश्वर है, तो वे चुप रह जाते हैं। बुद्ध के इस चुप रह जाने के कारण एक भ्रांति पैदा हुई। लोगों ने समझा, बुद्ध नास्तिक हैं और ईश्वर को नहीं मानते हैं। लेकिन बुद्ध केवल इसीलिए चुप रह जाते हैं कि जिस ईश्वर को हम कहेंगे है, उसे फिर नहीं भी होना पड़ेगा। इसलिए उसके संबंध में है कहना भी ठीक नहीं है। है कहते से ही पदार्थ प्रवेश करता है। इस जगत में जो सच्चे आस्तिक हुए हैं, उन्होंने ईश्वर के होने के लिए कोई प्रमाण, कोई आर्ग्यूमेंट नहीं दिया है। और जिन्होंने प्रमाण दिए हैं और आर्ग्यूमेंट दिए हैं, उन्हें ईश्वर का कोई भी पता नहीं है। जो कहते हैं कि ईश्वर है, क्योंकि उसने दुनिया को बनाया... । ध्यान रखें, बनाई हुई चीज भी नष्ट हो जाती है, बनाने वाले भी नष्ट हो जाते हैं।
नहीं; परमात्मा को न तो बनाया हुआ कहो और न बनाने वाला कहो, क्योंकि ये दोनों ही बातें विनाश के जगत में प्रवेश कर जाती हैं। वह है, जैसे कि न हो। उसकी जो उपस्थिति है, उसकी जो मौजूदगी है, उसकी मौजूदगी का जो स्वभाव है, वह जस्ट लाइक एब्सेंस, जैसे गैर-मौजूद हो।
हम अपने कमरे से फर्नीचर को बाहर निकालकर फेंक सकते हैं। क्योंकि फर्नीचर है, मौजूद है, उसे बाहर किया जा सकता है। लेकिन कमरे से हवा को निकालना हो, तो बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि हवा फर्नीचर की तरह ठोस नहीं है। फिर भी हवा को निकाला जा सकता है; फिर भी निकाला जा सकता है। हाथ से धक्का मारें, तो स्पर्श हो जाता है। धुआं उड़ाएं, तो हवा की रेखाएं बोध में आने लगती हैं। सांस खींचें, तो हवा भीतर ली जा सकती है। तो फिर एक पंप लगाकर सक की जा सकती है, बाहर निकालकर फेंकी जा सकती है। नहीं तो है, लेकिन फिर भी काफी है; बाहर निकाली जा सकती है।
लेकिन एक और चीज भी है कमरे के भीतर, वह है आकाश। आकाश को बाहर बिल्कुल नहीं निकाला जा सकता। पदार्थ है, उसे बड़ी आसानी से निकाला जा सकता है। हवा है, वह पदार्थ और आकाश के बीच में डोलता हुआ अस्तित्व है, उसे भी निकाला जा सकता है। लेकिन आकाश है कमरे के भीतर, स्पेस है, उसे नहीं निकाला जा सकता। क्यों? क्योंकि वह न होने के जैसा है। उसे निकालिएगा कैसे! निकालने के लिए कुछ तो होना चाहिए, जिसे हम धक्का दे सकें। आकाश को हम धक्का नहीं दे सकते। इसलिए इस जगत में सभी चीजें बनती हैं और मिटती हैं। लेकिन आकाश? आकाश अनबना, अनमिटा मौजूद रहता है। इसलिए जिन लोगों ने परमात्मा के लिए निकटतम प्रतीक खोजा है, उन लोगों ने कहा है कि वह आकाश जैसा है--शून्य, न होने जैसा, रिक्त, खाली। ऐसा हो, तो ही विनाश के बाहर हो सकता है। ऐसा न हो, तो विनाश के भीतर आ जाता है।
विनष्ट होने का कारण क्या है पदार्थ का? पदार्थ क्यों विनष्ट होता है?

पदार्थ इसलिए विनष्ट होता है कि पदार्थ डिविजिबल है, उसका विभाजन किया जा सकता है। हम एक पत्थर के दो टुकड़े कर सकते हैं। जो चीज भी विभाजित हो सकती है, उसके कितने ही टुकड़े किए जा सकते हैं, वह नष्ट हो जाएगी। जो चीज विभाजित होती है, उसका अर्थ है कि वह बहुत चीजों से मिलकर बनी है; संयोग है, कंपाउंड है।
परमात्मा संयोग नहीं है; अस्तित्व संयोग नहीं है। अस्तित्व इकट्ठा है, एक है; उसमें कोई खंड नहीं हैं। इसलिए ब्रह्म को अखंड कहा है। उसके टुकड़े नहीं हो सकते। जिस चीज के टुकड़े नहीं हो सकते, उसका विनाश नहीं हो सकता, क्योंकि विनाश की प्रक्रिया में खंडित होना जरूरी हिस्सा है।
किस चीज का खंड नहीं हो सकता? जिसकी कोई सीमा-रेखा न हो, उसका खंड नहीं
हो सकता। जिसकी सीमा-रेखा हो, उसका खंड हो सकता है। वह कितनी ही छोटी हो, कितनी ही बड़ी हो, जिसकी सीमा है, उसके हम दो हिस्से कर सकते हैं। लेकिन जिसकी कोई सीमा नहीं है, उसके हम दो हिस्से नहीं कर सकते।
अस्तित्व असीम है और पदार्थ सदा सीमित है। इसलिए पदार्थ खंडन को उपलब्ध हो सकता है। खंडन से विनाश हो जाता है।
फिर जिस चीज को हम बना सकते हैं, वह मिटेगी। सिर्फ एक चीज है, जिसे हम नहीं बना सकते हैं, और वह परमात्मा है। बाकी सब चीजें हम बना सकते हैं। ऐसी कौन-सी चीज है, जो हम नहीं बना सकते? सब बना सकते हैं। अस्तित्व भर नहीं बना सकते हैं। जिसे हम बना सकते हैं, वह मिट जाएगा। और हम बना सकते हैं, ऐसा नहीं, प्रकृति भी जिसे बना सकती है, वह मिट जाएगा। जो भी कंस्ट्रक्ट हो सकता है, वह डिस्ट्रक्ट हो सकता है। जिसको हम बना ही नहीं सकते, वही केवल विनाश को उपलब्ध नहीं हो सकता है।
हमारा अनबनाया क्या है? अगर उसे हम खोज लें, तो वही ब्रह्म है। और जो
भी बन सकता है, और बनाया जा सकता है, और बनाया जा रहा है--चाहे आदमी बनाए, चाहे प्रकृति बनाए--वह सब पदार्थ है।
तो कृष्ण कहते हैं, उत्पत्ति और विनाश धर्म वाले सब पदार्थ अधिभूत हैं, वे भौतिक हैं, फिजिकल हैं। और पुरुष अधिदैव है।
यह पुरुष कौन है? इस पदार्थ के बीच में जो जीता है और पदार्थ के प्रति होश से भर जाता है, उसे कृष्ण पुरुष कहते हैं।
पदार्थ को स्वयं का कोई बोध नहीं है। पत्थर पड़ा है आपके द्वार पर, तो पत्थर को कोई पता नहीं कि वह है। और पत्थर को यह भी पता नहीं कि आप भी हैं। ये दोनों बोध आपको हैं। पत्थर है, यह भी आपका बोध है; और आप हैं, पत्थर से भिन्न, यह भी आपका बोध है।
पुरुष शब्द का अर्थ होता है, नगर के बीच में रहने वाला, पुर के बीच में रहने वाला। यह पदार्थ का जो पुर है, पदार्थ का जो यह महानगर है, इसके बीच में जो रहता है। वह अपने प्रति भी होश से भरा हुआ होता है, इस नगर के प्रति भी होश से भरा हुआ होता है।
इस हिरण्यमय को कृष्ण कहते हैं, यह पुरुष अधिदैव है। यही चैतन्य है, यही परम चैतन्य है, यही परम दिव्यता है।
चेतना का लक्षण है, होश, अवेयरनेस। इसलिए सारे धर्मों ने शराब का, बेहोशी का विरोध किया है, सिर्फ एक कारण से; कोई और कारण नहीं है। सिर्फ एक कारण, कि जितने आप बेहोश होते हैं, उतने आप पदार्थ हो जाते हैं, पुरुष नहीं रह जाते। और सारे धर्मों ने ध्यान का समर्थन किया है, सिर्फ एक कारण से, कि जितने आप ध्यानस्थ होते हैं, उतने पदार्थ कम हो जाते हैं और पुरुष ज्यादा हो जाते हैं।
जिस दिन कोई व्यक्ति पूर्ण ध्यान को उपलब्ध होता है, सिर्फ शुद्ध चेतना रह जाता है, उस दिन वह परम पुरुष हो जाता है, पुरुषोत्तम हो जाता है। और जिस दिन कोई व्यक्ति पूर्ण मूर्च्छा को उपलब्ध हो जाता है, कि उसके हाथ-पैर काट डालो, तो भी उसे पता नहीं चलता। उसकी छाती में छुरा भोंक दें, तो भी उसे पता नहीं चलता। उसे यह भी पता नहीं है कि वह है। इस परम मूर्च्छा में वह करीब-करीब पदार्थ हो जाता है, जड़ हो जाता है।
इन दोनों के बीच में कहीं हम डोलते रहते हैं। पदार्थ और परमात्मा के होने के बीच में हमारा डोलना चलता रहता है। हम चौबीस घंटे में कई बार

पदार्थ के करीब पहुंच जाते हैं और कई बार हम परमात्मा के निकट पहुंच जाते हैं।
लेकिन एक सूत्र ख्याल रहे, तो आप पता रख सकते हैं कि आपकी चेतना का थर्मामीटर कब पदार्थ से परमात्मा की तरफ डोलता रहता है। जब आप होश से भरे होते हैं किसी भी क्षण में, तब आप परमात्मा के मंदिर के बहुत निकट होते हैं। और जब आप बेहोश होते हैं किसी भी क्षण में, तब आप पदार्थ के बहुत निकट होते हैं।
कब आप बेहोश होते हैं? कब आप होश में होते हैं?
कभी आपने ख्याल किया कि जब आप क्रोध से भरते हैं, तो होश खो जाता है। इसलिए अक्सर क्रोध के बाद आदमी कहता है कि समझ नहीं पड़ता, यह मैंने कैसे किया! यह मुझसे कैसे हो सका! यह तो मैं कभी नहीं कर सकता हूं।
वह ठीक कहता है। अब उसका थर्मामीटर होश के करीब है, इसलिए वह कह रहा है
कि यह मैं कभी नहीं कर सकता हूं। उसने यह किया भी नहीं। अगर इतना होश होता, तो वह करता भी नहीं। लेकिन जब उसने किया, तो बेहोशी के करीब था। क्रोध शरीर में जहर छोड़ देता है। मार्फिया की तरह, सब भीतर चेतना को कुंद कर देता है। फिर आप कुछ भी कर गुजरते हैं। उस कर गुजरने में बेहोशी है।
इसलिए जब कोई आदमी किसी की हत्या करता है, तो पुरुष की हैसियत से कोई कभी किसी की हत्या नहीं करता, पदार्थ की हैसियत से ही हत्या करता है। और वस्तुतः समस्त धर्मों ने अगर हत्या का विरोध किया है, तो इसलिए नहीं कि दूसरा मर जाएगा; क्योंकि धर्म भलीभांति जानते हैं कि दूसरा कभी नहीं मरता है। फिर भी विरोध किया है, और विरोध का कारण यह है कि हत्या करते वक्त हत्या करने वाला मर जाता है और पदार्थ हो जाता है। उसके भीतर सारा होश खो जाता है।
बुराई में और कोई बुराई नहीं है। और भलाई में और कोई भलाई नहीं है। बुराई में एक ही बुराई है कि हम पदार्थवत हो जाते हैं। और भलाई में एक ही भलाई है कि हम पुरुषवत हो जाते हैं। यह जो भीतर चैतन्य है, यह जो चेतना की ज्योति है, इसको जितना बढ़ा लें, उतना अधिदैव के निकट होने लगते हैं। इसे जितना घटा लें, धुआं-धुआं हो जाए, अंधेरा छा जाए, उतना अधिभूत के निकट हो जाते हैं। शायद, जिसे हम पदार्थ कहते हैं, वह सोया हुआ अधिदैव है। और जिसे हम अधिदैव कहते हैं, वह जागा हुआ पदार्थ है।
लेकिन अर्जुन ने जो पूछा है, कृष्ण एक-एक की व्याख्या दे रहे हैं।
हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन, इस शरीर में मैं ही अधियज्ञ हूं।
यह बहुत मजे की बात कृष्ण कहते हैं, हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! अर्जुन को कृष्ण देहधारियों में श्रेष्ठ क्यों कहते होंगे? कोई कारण सीधा समझ में नहीं आता। कोई कारण सीधा समझ में नहीं आता। और कृष्ण अकारण कहेंगे, यह तो बिल्कुल समझ में नहीं आता। या कृष्ण इसलिए कहेंगे कि वह सम्राट परिवार का है, सम्राट होने की पूरी संभावना है उसकी पुनः, इसलिए कहेंगे, यह भी समझ में नहीं आता। क्योंकि कृष्ण के लिए सम्राट और सड़क के भिखारी में क्या फर्क होगा!
और देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! क्या देहें भी श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ होती हैं? क्या कृष्ण इसलिए कहेंगे कि वह एक कुलीन वंश से आता है? क्या उसकी देह में मांस-मज्जा न होकर सोने और हीरे और जवाहरात जड़े हैं? और जड़े भी हों, तो भी हड्डी से उनका कोई ज्यादा मूल्य नहीं है। क्यों कहते होंगे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन?
गीता पर हजारों वक्तव्य दिए गए हैं, लेकिन मेरे ख्याल में कोई वक्तव्य नहीं है, जो ठीक से कह पाता हो कि अर्जुन को कृष्ण ने बार-बार कहा, देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! यह क्यों कहा है? उन सबकी मान्यता यही रही है कि क्षत्रिय कुल का है, बड़े कुलीन वंश का है, राज-परिवार का है, योद्धा है, फिर कृष्ण का मित्र है, इसलिए कहते होंगे। पुण्यात्मा है, नहीं तो कैसे इतने बड़े कुल में पैदा होगा, इसलिए कहते होंगे।
नहीं; बिल्कुल नहीं। एक ही क्षण में कोई व्यक्ति देहधारियों में श्रेष्ठ हो जाता है, जिस दिन उसकी देह, वह जो जीवन का परम सत्य है, उसे सुनने के निकट होती है। वह जो जीवन का परम सत्य है, वह जो जीवन का गुह्य

रहस्य है, जिस दिन किसी व्यक्ति की देह, किसी व्यक्ति का शरीर उस परम रहस्य को सुनने के, देखने के, स्पर्श करने के, जानने के निकट होता है, उसी क्षण... । कृष्ण यह कह रहे हैं अर्जुन को। और निश्चित ही इस अर्थ में वह देहधारियों में श्रेष्ठ है, क्योंकि कृष्ण के इतने निकट होना, और कृष्ण की वाणी के इतने निकट होना, और कृष्ण के गुह्य संदेश के इतने निकट होना, जस्ट बाइ दि कार्नर, जहां कोई चाहे तो छलांग लगा ले और कृष्ण हो जाए। सूर्य के इतने निकट होना कि जहां से स्वयं भी प्रकाश बन जाना आसान हो। बस, इस एक घड़ी में ही कोई व्यक्ति देहधारियों में श्रेष्ठ हो जाता है।
कभी कोई अर्जुन कृष्ण के करीब, कभी कोई आनंद बुद्ध के करीब, कभी कोई ल्यूक क्राइस्ट के करीब, कभी कोई च्वांगत्से लाओत्से के करीब देहधारियों में अचानक श्रेष्ठ हो जाता है। अपनी देह के कारण नहीं, उस दूसरे की मौजूदगी के कारण, जिसकी मौजूदगी पारस की तरह लोहे को सोने में बदल सकती है।
अर्जुन को यह याद दिलाने के लिए कि अर्जुन, यह क्षण मोमेनटस है, यह घड़ी अलौकिक है। ऐसी घड़ी बाद में पुनरुक्त होगी, नहीं कहा जा सकता है।
इतिहास दोहरता है सिर्फ सड़ी-गली चीजों के लिए। चंगेज दुबारा आ जाता है, हिटलर बार-बार लौट आते हैं। हत्याएं और युद्ध फिर-फिर हो जाते हैं। लेकिन गीता दुबारा कही जानी और दुबारा सुनी जानी मुश्किल है। जो सड़ा-गला है, वह रोज घूम-फिरकर लौट जाता है। लेकिन जो श्रेष्ठ है, उसकी पुनरुक्ति शायद ही कभी होती है।
कृष्ण सिर्फ अर्जुन को बहुत परोक्ष रूप से याद दिलाते हैं कि अर्जुन
यह क्षण बहुत कीमती है। इस समय तू सिर्फ अर्जुन नहीं है, देहधारियों में श्रेष्ठ हो गया है। इस समय तू उन वचनों को सुन रहा है, जो तेरे जीवन के लिए क्रांति बन सकते हैं। एक शब्द भी तेरे लिए छलांग हो सकता है। और तत्काल उसके पीछे ही कहते हैं इसीलिए कि हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन, इस शरीर में मैं अधियज्ञ हूं।
और यह जो शरीर है, यह जो देह है, इस देह में तीन बातें हो गईं। एक, इसमें पदार्थ है, जो परिवर्तित होता है, विनाश को उपलब्ध होता है। जिसे हम देह समझते हैं, वह देह वही है, जिसे कृष्ण पदार्थ कह रहे हैं, अधिभूत कह रहे हैं। इसे थोड़ा समझें।
जिसे हम कहते हैं देह, उसे कृष्ण अधिभूत कहते हैं। यह एक पर्त है हमारी देह की, दि फर्स्ट सर्किल, पहला वृत्त। इसके भीतर चलें तो चैतन्य है, चेतना है। वह भी हमारी बड़ी धीमी-धीमी है, मूर्च्छित-मूर्च्छित है। उसे कृष्ण अधिदैव कहते हैं। और अगर इसके भी भीतर चलें, तो सेंटर है, केंद्र है। वही केंद्र कृष्ण कहते हैं, मैं हूं, अधियज्ञ हूं।
बाहर है मूर्च्छित देह, पदार्थ। उसके भीतर है अर्ध-मूर्च्छित अर्ध-जाग्रत चेतना; धुआं-धुआं, अंधेरा-अंधेरा, कुछ साफ नहीं, धुंध-धुंध। उसके भीतर है जलती हुई प्रज्वलित अग्नि, पूर्ण चेतना। इसलिए कृष्ण ने उसे कहा, अधियज्ञ। वही हूं मैं यज्ञ, पूर्ण जलती हुई ज्योति, अखंड, जहां धुआं भी नहीं, फ्लेम विदाउट स्मोक।
अगर धुआं है ज्योति के आस-पास, तो वह नंबर दो की बात है--अधिदैव। अगर धुआं ही धुआं है, ज्योति ही नहीं है, तो वह पहली बात है--अधिभूत। और अगर धुआं बिल्कुल नहीं है, सिर्फ फ्लेम है, सिर्फ ज्योति है, जिससे धुआं पैदा ही नहीं होता... । और जिस ज्योति में धुआं पैदा होता है, वह यज्ञ की ज्योति नहीं। जिस ज्योति में धुआं पैदा नहीं होता, वही यज्ञ की ज्योति है।
इसलिए बाहर के यज्ञों से कुछ भी न होगा। वहां तो धुआं रहेगा ही। और जो
आग हमने जलाई है, वह बुझेगी ही। उस आग को खोजना पड़ेगा, जो हमने जलाई ही नहीं, जो सदा से जल ही रही है। और जो आग हमने जलाई है, उसमें ईंधन का किया है उपयोग। जहां होगा ईंधन, जहां होगा पदार्थ, वहां धुआं होगा ही। और जहां होगा ईंधन, वहां आग चुक ही जाएगी। हमें उस आग को खोजना पड़ेगा, जहां कोई ईंधन नहीं है। बिना ईंधन के अगर कोई आग मिल जाए, तो फिर नहीं बुझेगी। बुझने का कोई कारण न रहा।

ध्यान रहे, आग नहीं बुझती, ईंधन बुझता है। ईंधन बुझ जाता है, आग विलुप्त हो जाती है। ईंधनरहित अगर कोई आग हो, तो उसमें धुआं पैदा नहीं होगा। क्योंकि धुआं भी आग से पैदा नहीं होता, गीले ईंधन से पैदा होता है। सूखा ईंधन हो, तो कम पैदा होता है। ज्यादा सूखा हो, और कम होता है। ज्यादा गीला हो, और ज्यादा होता है।
ईंधन से धुआं पैदा होता है, आग से नहीं। अगर बिना ईंधन के कोई आग संभव है, तो कृष्ण कहते हैं, वही आग मैं हूं--दैट फायर--वही अधियज्ञ मैं हूं। इस देह में मैं ही अधियज्ञ हूं।
कृष्ण ने तीन पर्तों के अस्तित्व को पूरा कहा। एक पर्त है पदार्थ की। व्यक्ति की देह में भी ऐसा ही है, पदार्थ की एक पर्त। फिर चेतना का एक धुआं- धुआं, अर्ध-जाग्रत, अर्ध-सोया हुआ विस्तार। और फिर केंद्र पर वह ज्योति, जो अनिर्मित, ईंधनरहित, धुएं से मुक्त, शाश्वत और नित्य है। कृष्ण कहते हैं, वही मैं हूं।
यह व्यक्ति के तल पर; और इसे ही विराट के तल पर भी समझ लें। व्यक्ति जो है, वह विराट का ही बहुत छोटा प्रतिरूप है। इस विराट ब्रह्म की इस विराट ब्रह्मांड को भी देह समझें। तो पहली पर्त पदार्थ की; दूसरी पर्त चैतन्य की, अर्ध-चैतन्य की; और तीसरी पर्त ज्योतिर्मय ब्रह्म की। व्यक्ति के तल पर या विराट के तल पर, ये तीन सर्किल, ये तीन वृत्त, ठीक से याद रख लें। पहला पदार्थ का, दूसरा अर्ध-चेतना का, और तीसरा शुद्ध अग्नि का, शुद्ध प्रकाश का, मात्र प्रकाश का, शुद्ध चैतन्य का।
वस्तुतः वह जो शुद्ध चैतन्य है भीतर वह और बाहर वह जो शुद्ध पदार्थ है वह, ये दोनों जहां ओवरलैप करते हैं, जहां एक-दूसरे की सीमा पर छा जाते हैं, वहीं हमारी अर्ध-चेतना पैदा होती है।
जब कोई व्यक्ति पूर्ण रूप से भीतर सरक जाता है, तो अर्ध-चेतना विलुप्त
हो जाती है। और बीच में वह अंतराल पैदा हो जाता है, जहां देखा जा सकता है कि मैं अलग, देह अलग; ब्रह्म अलग, पदार्थ अलग। बीच से जैसे ही अर्ध-चेतना गिर जाती है... ।
यह अर्ध-चेतना दो तरह से गिर सकती है। या तो आप बिल्कुल बेहोश हो जाएं पदार्थ में जाकर, तो ब्रह्म बिल्कुल भूल जाता है; बेहोशी पूरी हो जाती है। या आप पूर्ण होश में आ जाएं, ब्रह्म के भीतर आकर, उस पूर्ण होश में भी यह बीच की चेतना विलुप्त हो जाती है।
मनुष्य को दो ही तरह के आनंद संभव हैं। एक आनंद--जो कि भ्रम ही है, आनंद नहीं--वह आनंद है पूर्ण मूर्च्छा का। इसलिए नींद में सुख मिलता है। बड़ी हैरानी की बात है! जिन्हें जागने में सुख का पता नहीं चलता, वे कहते हैं जागकर सुबह कि नींद में सुख मिला! जिनको जागकर भी सुख नहीं मिलता है, उन्हें नींद में कैसे मिलता होगा?
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात सोया है। और एक चोरों का गिरोह उसके घर में घुस गया। वे बड़ी खोजबीन कर रहे हैं। आखिर मुल्ला से न रहा गया, उसने कहा कि भाइयो, अगर कुछ मिल जाए, तो मुझे भी खबर कर देना! उन चोरों ने कहा, कुछ मिल जाए, खबर कर देना! मतलब? मुल्ला ने कहा, दिनभर वर्षों से खोज-खोजकर हमें कुछ न मिला इस मकान में, तो रात के अंधेरे में तुम्हें कैसे क्या मिलेगा? कुछ मिल जाए तो खबर कर जाना।
जिन्हें दिन के जागरण में कोई सुख नहीं मिला, वे रात के बाद सुबह उठकर कहते हैं, बड़ा सुख मिला! जरूर कहीं कोई भूल हो रही है। सिर्फ दिनभर में जो दुख वे पैदा करते थे, वे भर पैदा नहीं कर पाए; और कुछ मामला नहीं है। वे जो दिनभर में दुख पैदा कर लेते थे, नींद की कृपा से, बेहोशी के कारण, वे दुख पैदा नहीं कर पाए; एक।
दूसरा, नींद में दुख भी पैदा हुए हों, तो वे उन्हें पता नहीं चल पाए। तीसरा, कल के जागने और आज के जागने के बीच में वह जो आठ-दस घंटे का अंधेरा गुजर गया, उससेशृंखला टूट गई। सुबह उठकर वे कहते हैं, बड़ा सुखद मालूम हो रहा है!
नींद में हमें सुख मिलता है। शराब पी लेते हैं, तो सुख मिलता है। कामवासना में उतर जाते हैं, तो सुख मिलता है। वह सब बेहोशी है। फिल्म

देखने तीन घंटे एक आदमी बैठ जाता है, तो अपने को भूल जाता है। वह बेहोशी है। फिल्म में उलझ जाता है इतना कि अपनी याद रखने की सुविधा नहीं रहती। जहां-जहां हमें बेहोशी मिलती है, वहां-वहां थोड़ी देर को हमें लगता है, सुख मिल रहा है। वह सब नींद का ही सुख है। इस सुख को धोखा कहना चाहिए। सुख नहीं है, आत्मवंचना है।
एक और आनंद है। वह व्यक्ति, जो अपने को भूलता ही नहीं; इतना स्मरण करता है, इतना स्मरण करता है कि अंततः स्मरण उसके भीतर एक थिर बिंदु हो जाता है। वह नींद में भी जानता है कि मैं हूं। यह तीसरी, जो कृष्ण ने कहा, अधियज्ञ। चेतना की साधना यज्ञ की साधना है। और चैतन्य को उस जगह पर पहुंचा देना है, जहां एक क्षण को भी भीतर की चेतना न छूटती हो; एक क्षण को भी गैप, अंतराल न आता हो, रिक्तता न आती हो; अखंड धारा बहती हो चैतन्य की, वहां आनंद है।
वहां जो आनंद है, वह नींद जैसा आनंद नहीं, बेहोशी जैसा आनंद नहीं। बेहोशी में केवल दुख भूल जाते हैं; वहां दुख मिट जाते हैं।
दुख भूलकर जो आनंद पैदा होता है, उसे हम सुख कहते हैं। दुख मिटकर जो आनंद पैदा होता है, वही आनंद है।
व्यक्ति की पदार्थ से अर्ध-चैतन्य, अर्ध-चैतन्य से पूर्ण चैतन्य की तरफ जो यात्रा है, वही अध्यात्म है। कृष्ण ने कहा, स्वभाव अध्यात्म है। वही है स्वभाव हमारा, जो केंद्र पर जल रहा है सदा। वह जीवन की जो किरण वहां है, वही।
और जो पुरुष अंतकाल में मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। और जो पुरुष अंतकाल में मुझे ही याद करता हुआ।
यह मुझे से मतलब है, उसी निर्धूम ज्योति को याद करता हुआ।
ध्यान रहे, मरते वक्त उसे याद करना बहुत ही कठिन है। जिन्होंने जीवनभर शरीर को ही स्वयं समझा हो, वे मरते वक्त कैसे उसे याद कर सकेंगे! जिन्होंने जीवनभर शरीर को ही स्मरण किया हो, वे मरते वक्त उस अशरीर को कैसे स्मरण कर सकेंगे? और किसी वक्त कर भी लें, मरते वक्त तो बहुत ही मुश्किल होगा, क्योंकि जो छूट रहा है, सब छूट रहा है।
हालत ऐसी है कि जो आदमी, जिसके घर में तिजोड़ी बंद है, ताले पड़े हैं, पहरेदार लगे हैं, तिजोड़ी की चाभी अपने हाथ में है, सारा इंतजाम है; जो आदमी तब भी तिजोड़ी को नहीं भूल पाता, जब कि तिजोड़ी के छिनने का कोई भी डर नहीं है। जब डाका पड़ गया हो, और उसके ही सामने उसकी तिजोड़ी तोड़ी जा रही हो, और उसके सामने ही डाकू उसकी तिजोड़ी को घसीटकर बाहर ले जा रहे हों, सब सुरक्षा की व्यवस्था टूट गई हो, क्या आप सोच सकते हैं, उस समय वह तिजोड़ी को भूलने में समर्थ हो सकेगा? जब सारी सुरक्षा है, तब नहीं भूल पाता; तो जब सारी सुरक्षा टूट जाएगी, तब तो सिवाय तिजोड़ी के और कुछ भी याद आने वाला नहीं है। आखिरी क्षण में तो हमारा शुद्धतम जो चेहरा है, वही प्रकट होता है, सम्हालने की भी फुर्सत नहीं मिलती। ऐसे रोज तो हम सम्हाले रहते हैं। मरते वक्त तो हमारा असली चेहरा प्रकट हो जाता है, और हमारे असली भाव प्रकट हो जाते हैं, और हमारी असली स्मृति जाहिर हो जाती है। मरते वक्त आदमी को पहचाना जा सकता है कि असल में यह आदमी क्या था।
मुल्ला नसरुद्दीन को मैंने कहा कि... पत्नी की हत्या उसने की; मुकदमा चला और उसे सूली की सजा मिली। जिस दिन उसे सूली की सजा मिली, उसे खबर देने जेलर आया और उसने कहा कि मुल्ला, आने वाले सोमवार को सुबह तुम्हारी सूली हो जाने वाली है। मुल्ला ने कहा, सोमवार को! क्या यह नहीं हो सकता कि आने वाले शनिवार को सूली दी जाए? जेलर ने कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है तुम्हें! तुम्हें क्या फर्क पड़ता है कि सोमवार लगी सूली कि शनिवार लगी! मुल्ला ने कहा, असल में इस बुरे मुहूर्त से मैं सप्ताह का प्रारंभ नहीं करना चाहता हूं। सोमवार!
वह अपनी दुकान की दुनिया में जी रहा है, जहां मुहूर्त चलते हैं। अब फांसी लग रही है, लेकिन वह सोच रहा है कि सोमवार को मुहूर्त करना कि नहीं! फिर फांसी हुई, तो जिस देश में वह रहता था, वहां नियम था कि बीच चौराहे
पर नगर के फांसी लगती थी। हजारों लोग देखने आते थे। और फांसी जिसको दी

जाती थी, उस आदमी से कहा जाता था कि उसे कुछ बोलना हो मरने के पहले, तो वह जनता के सामने बोल सकता था।
ठीक फांसी के पहले नसरुद्दीन से कुछ लोग मिलने आए। और जेलर बहुत हैरान हुआ कि नसरुद्दीन और उनके बीच बड़ा मोल-तोल हुआ। कुछ जेलर की समझ में भी न पड़े कि यह बात क्या हो रही है! लेकिन नसरुद्दीन ने कहा कि मैं आखिरी वक्तव्य के संबंध में कुछ तैयारी कर रहा हूं, इसलिए आप बीच में बाधा न दें। बड़ी देर तक चला। कुछ वे कहते, कुछ यह कहता। फिर हां, न। आखिर कुछ समझौता हुआ और उन लोगों ने कोई चीज नसरुद्दीन को दी और उसने जल्दी से खीसे में रख ली। जेलर ने भी मरते हुए आदमी को बाधा देनी ठीक न समझी। सोचा कि अभी फांसी हो जाएगी; पीछे देख लेंगे कि जेब में क्या है।
जब फांसी लगाने का वक्त आया और नसरुद्दीन चढ़ा तख्ते पर, तो जेलर ने कहा, तुम्हें कुछ कहना हो तो कह दो। तो उसने कहा, हां, मुझे कुछ कहना है। और उसने कहा कि भाइयो, याद रखना, जूता छाप साबुन ही दुनिया में सबसे अच्छा साबुन है।
लोग भी चकित हुए। फिर उसको फांसी लग गई। उसने कांट्रैक्ट किया था सौ रुपए में। वे जो लोग आए थे, जूता छाप साबुन बनाने वाले लोग थे। वह यही कर रहा था। वे कहते थे, बीस ले लो; पच्चीस ले लो। बामुश्किल सौ पर तय हुआ था मामला। मरता हुआ आदमी! वे सौ रुपए जेब में पड़े मिले। लेकिन वह आखिरी क्षण भी धंधा कर गया! उस वक्त भी वह पचास पर राजी न हुआ; अस्सी पर राजी न हुआ। उसने कहा, सौ से कम में तो मैं मानूंगा ही नहीं!
जिंदगीभर की आदत आखिरी क्षण तक भी पीछा करती है। असल में जब वह तय कर रहा था कि सौ ही लूंगा, तब फांसी वगैरह कुछ भी नहीं थी उसके चित्त में; सब खो गया था। धंधा ही शेष था। अंत क्षण आपके जीवनभर का निचोड़ है।
कृष्ण के इस वक्तव्य से बड़ी भ्रांतियां पैदा हुईं। पहली भ्रांति तो
यह हुई जिसने भारत के धार्मिक चित्त को भयंकर हानि पहुंचाई। इस वक्तव्य से लोगों ने यह समझा कि ठीक है, तो आखिरी वक्त में याद कर लेंगे। इस वक्तव्य से समझा लोगों ने--और जो पुरुष अंतकाल में मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, इसमें जरा भी संशय नहीं है--लोगों ने कहा, बिल्कुल ठीक है। पूरी जिंदगी याद करने की कोई जरूरत न रही। अंत समय याद कर लेंगे। अगर अपने से न भी बना, क्योंकि अंत समय बोलते ही न बने, तो पास में बैठा हुआ पंडित कान में सुना देगा। घर के लोग हरिनाम का जाप करने लगेंगे, गीता सुनाई जाएगी।
कृष्ण ने यह नहीं कहा है कि अंत समय जो मेरा नाम सुन लेगा; यह नहीं कहा है। अंत समय जिसको नाम सुना दिया जाएगा, यह नहीं कहा है। जो मेरा नाम लेगा! और अंत समय कौन लेगा नाम? वही ले सकता है, जिसने जीवनभर उस नाम की संपदा को सम्हाला हो, अन्यथा नहीं ले सकता है। जीवनभर जो उस नाम में ऐसा रच-पच गया हो कि मौत भी उस नाम में बाधा न डाल पाए।
आप भी नाम लेते हैं। मैं कई लोगों को नाम लेते देखता हूं। वे बैठे हैं, माला फेरते हैं, नाम लेते हैं, और छोटी-छोटी चीजें बाधा डालती रहती हैं। बहुत छोटी चीजें बाधा डालती हैं। कौन घर में गया, बाधा पड़ जाती है। कौन किससे क्या बोला, बाधा पड़ जाती है। कोई भगवान का भजन और नाम ले रहा हो, जरा उसके पास थोड़ी दूर खड़े होकर किसी के कान में खुसफुस करके कुछ कहें। वह नाम-वाम छोड़कर आप क्या कह रहे हैं, इसे सुनने को उत्सुक हो जाता है। छोटी-छोटी चीजें बाधा डालती हैं।
मौत इस जीवन की बड़ी से बड़ी घटना है। उससे बड़ी कोई घटना नहीं है। उस घटना के क्षण में आप स्मरण न कर सकेंगे। और अगर घबड़ाकर स्मरण किया, डरकर स्मरण किया, तो ध्यान रखना, वह स्मरण परमात्मा का नहीं, भय का होगा।
मेरे एक मित्र हैं। बहुत ज्ञानी हैं। वे सदा कहते थे कि ईश्वर के स्मरण से क्या होगा? सच्चरित्रता चाहिए, सदाचार चाहिए। ईश्वर के स्मरण से क्या होगा! अच्छा आचरण चाहिए। मैंने उनसे कहा कि जो ईश्वर का स्मरण भी नहीं कर सकता, वह सदाचारी हो सकेगा, इसकी जरा असंभावना है। और जो सदाचारी हो सकता है, वह ईश्वर के स्मरण से बच सकेगा, इसकी भी बहुत मुश्किल संभावना है; यह भी नहीं हो सकता। आप कहीं किसी धोखे में हैं। उन्होंने कहा, नहीं,

मुझे कोई ईश्वर-स्मरण का सवाल नहीं है। मैं तो जो ठीक है, वह करने की कोशिश करता हूं। न रिश्वत लेता हूं, न चोरी करता हूं, न मांसाहार करता हूं। ठीक नियम से रात को सोता हूं, नियम से उठता हूं। कोई दुराचरण मेरे जीवन में नहीं है। मैंने उनसे कहा, यह सब तो ठीक है, लेकिन इस सबसे सिर्फ आपका अहंकार भर अकड़ा जा रहा है, और कुछ भी नहीं हो रहा है।
कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि सदाचरण भी सिर्फ अहंकार की ही परिपूर्ति करता है। और ईश्वर-स्मरण के बिना सदाचार अहंकार की ही परिपूर्ति करता है। क्योंकि फिर समर्पण का तो कोई स्थान नहीं रह जाता; अकड़ की ही जगह रह जाती है कि मैं चरित्रवान हूं, मैं नियम से रहता हूं, सत्य का पालन करता हूं, अहिंसा का पालन करता हूं, इतने व्रत लिए हुए हैं, इतना त्याग किया हुआ है। अहंकार तो मजबूत होता जाता है। लेकिन ऐसे कोई चरण नहीं मिलते, जहां इस अहंकार को रख दें।
मैंने उनसे कहा कि ठीक है। जैसा आपको ठीक लगता है, किए चले जाएं। एक ही बात याद रखें कि जिस ठीक से अहंकार मजबूत होता है, वह ठीक हो नहीं सकता। फिर अचानक एक दिन मुझे खबर मिली कि उन्हें हृदय का दौरा हो गया, हार्ट-अटैक हो गया। मैं गया। करीब-करीब अर्ध-मूर्च्छा में पड़े थे, लेकिन जोर-जोर से कहते थे, राम-राम, राम-राम। मैंने उन्हें हिलाया कि यह क्या कर रहे हो! मरते समय गलती कर रहे हो! सदाचार काफी है; यह क्या कर रहे हो?
उन्होंने आंखें खोलीं। मुझे देखा तो कुछ होश आया। कहने लगे कि यह भी मैं भय के कारण ले रहा हूं कि पता नहीं। पता नहीं, तो हर्जा क्या है ले लेने में! ले लो। मौत सामने खड़ी है, पता नहीं, कहीं ऐसा न हो कि आखिरी क्षण में सिर्फ राम-नाम नहीं लिया, इसीलिए चूक जाएं। तो ले रहे हैं।
अब यह बिल्कुल व्यवसायी की बुद्धि है; धार्मिक की बुद्धि नहीं है। और भयभीत आदमी का लक्षण है यह। स्मरण भय से नहीं होता है, स्मरण तो परम आनंद की स्फुरणा है।
तो मृत्यु के क्षण में जो आनंद से स्मरण कर सके, तो ही स्मरण है, अन्यथा स्मरण नहीं है।
भयभीत, डर रहे हैं, और कंप रहे हैं कि बचाओ, हे भगवान! अगर तुम हो, तो बचाओ। इससे कुछ अर्थ न होगा। जहां भय है, वहां प्रभु का स्मरण नहीं। जहां मृत्यु से बचने की आकांक्षा है, वहां प्रभु का कोई स्वाद नहीं।
तो कृष्ण कहते हैं, अंत समय में जो मेरे स्मरण को उपलब्ध रहता है, वह मुझे ही उपलब्ध हो जाता है। इसमें कोई भी संशय नहीं।
निश्चय ही कोई संशय नहीं, क्योंकि उस क्षण में जिसने अंतर-ज्योति का स्मरण रखा, उसे तो साफ ही दिखाई पड़ता है कि मृत्यु हो नहीं रही है। सिर्फ शरीर छूटता है, जैसे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र गिर जाएं, पुराना मकान कोई बदल ले, नए मकान में चला जाए। जो इतने चैतन्य से भरा हुआ भीतर की ज्योति को स्मरण रखता है, वह तो जानता है, यह मौत इस ज्योति को जरा-सा, हल्का-सा झोंका भी नहीं दे रही है। कुछ कंपित भी नहीं होने वाला है। वह परम आनंद में प्रतिष्ठित अपने भीतर डूब जाता है।
मौत का भय ही उसे लगता है, जिसका शरीर से तादात्म्य हो। जो मानता है, मैं शरीर हूं, वही घबड़ाता है कि छूटा--छूटा--किनारा छूटा--अब मिटे। लेकिन जो मानता है, हम किनारा हैं ही नहीं, सागर हैं, उसे किनारा छूटने से क्या भय लगेगा! वह तो सागर की खबर सुनकर प्रफुल्लित हो उठेगा। उसके पैर तो नाचने लगेंगे। उसके हृदय में तो घूंघर बंध जाएंगे। वह तो दौड़ उठेगा। वह तो कहेगा, आ गया वह क्षण! वह तो पीछे लौटकर भी नहीं देखेगा कि किनारे का क्या हुआ।
ऐसा व्यक्ति लेकिन तभी इस स्मरण को उपलब्ध हो सकता है, जब जीवनभर उसकी साधना सतत श्वास-श्वास में पिरो दी गई हो। जब हृदय की धड़कन-धड़कन इसी स्मरण के माला के मनके में बदल गई हो। जब ऐसा हुआ हो कि श्वास-श्वास उसी का स्मरण करती हो, धड़कन भी उसी के स्मरण से धड़कती हो, उठना-बैठना-चलना भी उसी के स्मरण से होता हो, तभी मृत्यु उसके स्मरण से हो सकती है।
इसलिए इस सूत्र का जो बहुत ही गलत अर्थ हुआ है, घातक, उससे बचना जरूरी है। यद्यपि अर्जुन से भी यही डर कृष्ण को रहा होगा, इसीलिए दूसरे सूत्र

में तत्काल उन्होंने कहा, कारण कि हे कुंतीपुत्र अर्जुन, यह मनुष्य अंतकाल में जिस भाव को भी स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है, उस भाव को ही प्राप्त होता है। परंतु सदा उस भाव को ही चिंतन करता हुआ!
अर्जुन की आंख में शायद तत्काल कृष्ण को दिखाई पड़ा होगा कि वह शिथिल हुआ। अर्जुन ने सोचा होगा, तब तो ठीक है। आखिरी समय स्मरण ही करना है न, कर लेंगे। फिर शेष जीवन को क्यों नष्ट करना इन बातों में! शेष जीवन फिर जैसा जीना है, जी लें। तो सूत्र तो हाथ लग गया; मंत्र हाथ लग गया। अंत समय स्मरण कर लेंगे!
लेकिन अंत समय पता है, कब है? यही क्षण भी अंत समय हो सकता है। कोई भी क्षण अंत समय हो सकता है। इसलिए जिसने सोचा, अंत समय कर लेंगे, वह चूक जाएगा। क्योंकि अंत समय तो कोई भी क्षण हो सकता है; यह क्षण भी हो सकता है कि मैं दूसरा शब्द बोल ही न पाऊं, यह शब्द ही अंतिम हो।
जिन लोगों ने अखंड नाम-जप की धारणा विकसित की, उसका कारण यही था। उसका कारण यह नहीं था कि आप कितने लाख परमात्मा का नाम लेते हैं। लाख वगैरह का हिसाब फिर दुकानदारी है। एक से भी काम हो सकता है; करोड़ से भी न हो।
यह धर्म का जगत कोई हिसाब-खाते का जगत नहीं है। यहां गणित नहीं चलता
है कि कितना। कितना हृदयपूर्वक! कितनी संख्या नहीं। कितने लाख, तो लोग अखंड कर रहे हैं कि चौबीस घंटे का अखंड जप कर रहे हैं!
अखंड जप का केवल एक ही अर्थ और प्रयोजन है, क्योंकि अंत क्षण कौन-सा होगा, पता नहीं। कोई भी क्षण खाली न जाए जो स्मरण से रिक्त हो, क्योंकि कोई भी क्षण अंत क्षण हो सकता है। इसलिए कोई भी क्षण भीतर खाली न जाए। तो जो भी क्षण अंत क्षण होगा, वह स्मरणपूर्वक होगा।
लेकिन कृष्ण को लगा होगा कि खतरा है। इसलिए उन्होंने तत्काल फर्क बता दिए। दूसरे सूत्र में उन्होंने कहा, अंत समय जो भाव होता है, व्यक्ति उसी भाव को उपलब्ध हो जाता है। यह बड़ी वैज्ञानिक व्यवस्था है। इसे थोड़ा समझ लें।
रात आप सोते हैं। क्या कभी आपने ख्याल किया कि आपका रात का अंतिम विचार सुबह का पहला विचार होता है! न किया हो, तो करें। रात का जो अंतिम विचार है, बिल्कुल आखिरी, जब नींद उतरती होती है, तब जो आपके चित्त के द्वार पर खड़ा होता है विचार, उसे ठीक से ख्याल कर लें, क्या है। सुबह, जब नींद के द्वार फिर खुलेंगे, तो दरवाजे पर वही आपको सबसे पहले खड़ा हुआ मिलेगा। वह रातभर खड़ा रहा है।
अंतिम विचार रात का, सुबह का पहला विचार होता है। अंतिम विचार मृत्यु का, अगले जन्म का पहला विचार बन जाता है। बीच का वक्त सिर्फ एक गहरी नींद का वक्त है; एक सर्जिकल; जब कि प्रकृति आपसे एक शरीर को छुड़ाती है और दूसरे शरीर को देती है; एक बड़े आपरेशन का। उस वक्त आप बिल्कुल बेहोश रखे जाते हैं।
अगर आपने कभी क्लोरोफार्म लिया है--न लिया हो तो कभी लेकर देखें--तो क्लोरोफार्म में डूबते वक्त जो आखिरी विचार होगा, वही क्लोरोफार्म से बाहर निकलते वक्त पहला विचार होगा। अगर आप कभी बेहोश हुए हैं, तो बेहोशी का अंतिम विचार, होश आने पर पहला विचार होता है।
मृत्यु एक गहरी बेहोशी है; एक रूपांतरण; एक पर्दे का अंत; एक नाटक का समाप्त होना और दूसरे का शुरू होना है। ठीक, लेकिन दूसरा नाटक वहीं से शुरू होता है, जहां पहला समाप्त हुआ था।
तो अंतिम भाव ही आपका निर्णायक हो जाता है। और अंतिम भाव हम इतने रद्दी करते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं है, कि हम अपने रद्दी होने की आगे की व्यवस्था कर लेते हैं। आदमी मरता है भयभीत, चिंतातुर, तनाव से घिरा हुआ, दुखी, घबड़ाया हुआ। सब लुटा जा रहा है! ऐसी बेचैनी में, नारकीय चित्त में मरता है। वह अपने नर्क का इंतजाम कर लिया। वह फिर उसी सिलसिले को शुरू कर देता है।
आखिरी भाव बहुत कीमत का है, लेकिन आखिरी भाव को सम्हालना हो, तो पूरा जीवन सम्हाल लें। क्योंकि वह भाव जो है, सारे जीवन का निचोड़ है। वह

ट्रामैटिक है, वह बहुत डिसीसिव है, उससे निर्णय होता है। और वह निर्णय बहुत महंगा है। क्योंकि वह एक पूरे जन्म को तय कर जाता है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, लेकिन सदा उस भाव को ही चिंतन करता हुआ, क्योंकि सदा जिस भाव का चिंतन करता है, अंतकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण होता है। वह भी कृष्ण कहते हैं, प्रायः। पक्का वह भी नहीं है।
ध्यान रहे, जिंदगीभर कुछ और, अंत समय स्मरण, उसकी तो फिक्र ही छोड़ें; जीवनभर स्मरण, तो भी कृष्ण कहते हैं--बहुत गार्डेड स्टेटमेंट है--कि जिसने जीवनभर उस चिंतन को किया है, अंत समय में प्रायः, आफन, वह उसी स्मरण को करता हुआ विदा होता है। क्यों? क्योंकि जीवनभर जो स्मरण किया है, वह अगर सतह पर रहा हो, सुपरफीशियल रहा हो, सिर्फ यांत्रिक रहा हो, कि एक आदमी कुछ भी कर रहा है और राम-राम, राम-राम भीतर करता जा रहा है... ।
स्मृति के पास ऐसी व्यवस्था है कि आप साइकिल चलाते रहें और राम-राम करते रहें; कार चलाते रहें और राम-राम करते रहें। स्मृति का एक खंड अलग कर सकते हैं आप, जो आपके भीतर राम-राम करता ही रहे। वह आटोनामस हो जाता है। अगर आप निरंतर दो-तीन महीने राम-राम, राम-राम, राम-राम भीतर कहते रहें,
तो स्मृति का एक टुकड़ा आटोनामस हो जाता है। वह फिर राम-राम, राम-राम, राम-राम कहता रहता है, आप अपना काम करते रहें। उससे कोई लेना-देना नहीं है, वह अपना जारी रखता है। वह जैसे आपने एक तोता पाल लिया। वह अपना राम-राम कहता रहता है, आप अपना कुछ भी करते रहें। ऐसा आपने भीतर स्मृति का एक टुकड़ा स्वायत्त बना लिया; अब वह अपना राम-राम, राम-राम कहता रहता है। वह मैकेनिकल डिवाइस है। और आपके काम में कोई बाधा नहीं पड़ती। आप अपना जो भी करना हो, करते रहें। चोरी करनी हो, चोरी करें। वह कहता रहेगा, राम-राम, राम-राम, राम-राम। चोरी में भी बाधा नहीं पड़ेगी। बल्कि और मजे से करेंगे कि देखो, राम-नाम भी चल रहा है; अब तो कोई डर ही नहीं है।
इसलिए राम-नाम को लेने वाले कुशलता से चोर हो सकते हैं। उनकी कुशलता
और महंगी हो जाती है, क्योंकि वे कहते हैं, हम तो राम-नाम ले रहे हैं! कोई डर नहीं है।
इस तरह का स्मरण करने वाला अगर कोई होगा, तो वह सिर्फ यंत्रवत स्मरण
कर रहा है। यंत्रवत और हार्दिक स्मरण का फर्क क्या है?
कभी किसी के प्रेम में गिरे हैं आप! तब आपको यंत्रवत स्मरण नहीं करना होता, याद बरबस आ जाती है--बरबस। नहीं करना चाहते, तो भी आ जाती है। कोई भी बहाना खोज लेती है और आ जाती है। अगर कभी किसी के प्रेम में गिरे हैं, फूल खिलता हुआ दिखता है, फूल भूल जाता है, उसकी याद आ जाती है। चांद निकलता है आकाश में, चांद भूल जाता है, उसकी याद आ जाती है। कोई गीत गाता है, वह गीत गाने वाला भूल जाता है, गीत की कड़ी भूल जाती है, उसकी याद आ जाती है। कोई भी बहाना काम करने लगता है।
प्रेम में अगर गिरे हैं! यह शब्द बड़ा अच्छा है, टु फाल इन लव! एक और भी प्रेम है, जिसमें चढ़ना होता है; टु राइज इन लव। वह ईश्वर का प्रेम है। यह बड़ा अच्छा है कि हम कहते हैं कि फलां आदमी प्रेम में गिर गया। है ही गिरना वहां।
कुछ लोग कभी-कभी प्रेम में चढ़ते भी हैं। कोई मीरा कभी प्रेम में चढ़ जाती है। कोई चैतन्य कभी प्रेम में चढ़ जाता है। इस प्रेम के चढ़ने में भी वैसा ही स्मरण होने लगता है, जैसा स्मरण प्रेम के गिरने में होता है। जब प्रेम के गिरने तक में हो सकता है, तो प्रेम के चढ़ने में तो होगा ही।
यह स्मरण हार्दिक है। यहां फूल खिलता है, तो परमात्मा खिल जाता है। यहां चांद उगता है, तो परमात्मा उग जाता है। यहां सागर में लहर आती है, तो परमात्मा की खबर ले आती है। हवा का झोंका आता है, तो उसी का हो जाता है। यहां आदमी की आंखें दिखाई पड़ती हैं, तो वही झांकने लगता है। यहां किसी चेहरे में सौंदर्य प्रकट होता है, तो वह उसी का होता है। यहां कोई गीत गाता है, तो कड़ी उसकी हो जाती है।
जब स्मरण हार्दिक हो, तो फिर प्रायः लगाने की जरूरत न रहेगी। इसलिए पहले सूत्र में जब कृष्ण ने कहा है, इसमें कोई संशय नहीं है, तो यह एक हार्दिक स्मरण की बात है। लेकिन अर्जुन की आंखों में जरूर उन्हें दिखाई

पड़ा होगा कि वह कुछ गलत समझ रहा है, तो उन्होंने कहा कि चिंतन करता हुआ अंतकाल में भी प्रायः उसी का स्मरण करता होता है--प्रायः। क्योंकि वह जो आटोनामस, स्वायत्त मन का टुकड़ा है, वह छोटे-मोटे काम में--साइकिल चलाते, कार चलाते, दुकानदारी चलाते--राम-राम करता रहता है। मौत जैसी बड़ी दुर्घटना में मुश्किल पड़ेगा।
और एक कठिनाई है। साइकिल पर बैठकर आप अभ्यास कर सकते हैं, रिहर्सल इ.ज पासिबल। रोज साइकिल पर बैठें, राम-राम करें, राम-राम करें और बैठते जाएं। कभी भूल जाएंगे, कभी याद रहेगा। धीरे-धीरे अभ्यास मजबूत हो जाएगा। तो फिर साइकिल भी चलेगी, राम-राम भी चलेगा। दो साइकिलें चलेंगी, एक पैडल आप मारते रहेंगे, एक पैडल आपकी स्मृति मारती रहेगी भीतर; दो चक्र चलते रहेंगे। लेकिन यू कैन नाट रिहर्सल डेथ; यह दिक्कत है। मौत का कोई रिहर्सल आप नहीं कर सकते। इसलिए अभ्यास नहीं कर सकते। यह बड़ी खराबी है। पहली ही दफे नाटक में सीधे खड़ा हो जाना पड़ता है। यह भी पता नहीं होता कि कौन-सा डायलाग बोलना है। कौन हैं, यह भी पता नहीं होता है, कि राम हैं, कि लक्ष्मण हैं, कि सीता हैं, कि रावण हैं। बस, अचानक पर्दा उठता है और खड़े हैं मंच पर! और पहली ही दफे बोलना पड़ता है। उसका कोई पता ही नहीं होता।
मौत आपको अभ्यास का अवसर नहीं देती है। नहीं तो हम ऐसे कुशल लोग हैं
कि मौत को भी चकमा दे जाएं। हम ऐसा पक्का मजबूत रिकार्ड रख लें अपने राम-राम का, अभ्यास ऐसा कर लें मजबूती से कि मौत को भी चकमा दे दें।
मौत की चूंकि पुनरुक्ति नहीं है; अचानक आती है, आकस्मिक है, उसकी पहले
से कोई तैयारी नहीं हो सकती, इसलिए आपकी तैयारी वाला काम काम नहीं आएगा। वह तैयारी की व्यवस्था मौत तोड़ ही देगी। जिसे अभ्यास से पाया था, जिस स्मरण को, मौत के वह काम नहीं पड़ेगा। जिसे हृदय से पाया हो, तो बात अलग है।
हृदय से पाना अभ्यास से पाना नहीं है।
इसलिए अक्सर लोग कहते हैं कि प्रेम पहली ही नजर में हो जाता है। वे ठीक ही कहते हैं। और अगर पहली नजर में न हो, तो दूसरी नजर में तो सिर्फ अभ्यास से होता है।
अभ्यास वाला प्रेम भी है। इसलिए जो कौमें कुशल हैं, जैसे हमारी कौम है, चालाकी में बहुत कुशल है। जितनी पुरानी कौम होती है, चालाकियों में उतनी ही कुशल हो जाती है, क्योंकि उसके अनुभव गहरे होते हैं। इसलिए हम प्रेम नहीं करने देते, विवाह सीधा करवा देते हैं। फिर कहते हैं, अब प्रेम करो। वह अभ्यास वाला प्रेम है। रोज-रोज देखते; साथ रहते; उपद्रव; लड़ते- झगड़ते, क्षमा मांगते; क्रोध करते; अभ्यास होता चला जाता है। आखिर में पहुंच ही जाते हैं प्रेम पर। धक्का-धुक्की खाते, भीड़-भड़क्का करते, आखिर पहुंच ही जाते हैं! फिर किसी तरह सब सेटल चीजें हो ही जाती हैं।
मगर वह सेटलमेंट वैसा ही है, जैसा कि पैसेंजर गाड़ी के थर्ड क्लास के डिब्बे में होता है हर स्टेशन पर। हर स्टेशन पर ऐसा लगता है कि अब क्या होगा! इतनी भीड़, अब कहां बैठेगी? इतना सामान लिए कहां अंदर चले आ रहे हो? लेकिन पांच मिनट गाड़ी चली, एडजस्टेड! सब सामान रख गया, सब लोग बैठ गए। बड़े मजे का है। और ये ही फिर अगले स्टेशन पर चिल्ल-पों मचाना शुरू कर देंगे। और हर स्टेशन पर यही होता रहा है। इसलिए हिंदी में जो शब्द है रेलगाड़ी के कंपार्टमेंट के लिए डब्बा, वह बिल्कुल ठीक है। डब्बा! कुछ भी हिला-डुलाकर बिठाल दो, बैठ जाता है।
मृत्यु के साथ यह नहीं चलेगा; अभ्यास नहीं चलेगा। लेकिन परमात्मा से अगर कोई हार्दिक प्रेम हो जाए, अनभ्यास का प्रेम हो जाए; पुनरुक्ति से आया हुआ नहीं, हृदय की स्फुरणा से आया हुआ। मगर यह कैसे होगा? तो शायद कृष्ण को प्रायः न लगाना पड़े। तो फिर कहा जा सके, निस्संदेह रूप से। निःसंशय होकर कहा जा सके कि हां, ठीक; हो ही जाएगा।
अभ्यास तो समझ में आता है; हम भी कर सकते हैं। यह हार्दिक समझ में नहीं आता, कैसे होगा! हृदय नाम की चीज वैसे ही न के बराबर है हमारे पास। हम हृदय से कुछ किए ही नहीं हैं, तो परमात्मा को कैसे पुकार पाएंगे! और अगर हार्दिक करना हो परमात्मा से लगाव, तो काफी बड़ा हृदय चाहिए पड़े। छोटे हृदय में, संकुचित हृदय में, उसको बुलाया भी नहीं जा सकता। और हमारे हृदय ऐसे

संकुचित हैं कि आदमी भी एक-दूसरे के भीतर प्रवेश नहीं कर पाते, तो परमात्मा का प्रवेश तो बहुत दूर है।
हमारे हृदय में सिर्फ वस्तुएं ही प्रवेश कर पाती हैं, व्यक्ति भी प्रवेश नहीं कर पाते। वस्तुएं! कोई हीरे के प्रेम में मरा जा रहा है! कोई धन के प्रेम में मरा जा रहा है! कोई सोने के प्रेम में मरा जा रहा है। कोई कुर्सी और पद के प्रेम में मरा जा रहा है। बस, वस्तुएं प्रवेश कर पाती हैं; व्यक्ति तक प्रवेश नहीं कर पाते।
तो जिसे परमात्मा की तरफ हार्दिकता को ले जाना हो, एक तो उसे सबसे पहले वस्तुओं के प्रेम के प्रति सजग होना पड़े। फिर व्यक्तियों के प्रेम को बढ़ाना पड़े। और जब वस्तुओं का प्रेम गिर जाए और व्यक्तियों का प्रेम गहरा हो जाए, तब व्यक्तियों के प्रेम को भी गिरा देना पड़े और निर्व्यक्ति के प्रेम में उठना पड़े।
तो ध्यान रखना, जितना बड़ा आपका प्रेम-पात्र होगा, उतना ही बड़ा आपका हृदय हो जाएगा। छोटे-मोटे के प्रेम में पड़ना ही मत। प्रेम में ही पड़ना हो, तो क्षुद्र के क्या पड़ना! तो जरा खोजना कोई विराट, कोई विस्तार, कोई जहां सीमाएं दूर कहीं समाप्त होती हों; न होती हों, तो बहुत ही अच्छा। किसी ऐसे प्रेम में उतरना।
इसलिए अक्सर यह होता है, अक्सर यह होता है कि जिनके प्रेम विराट होते हैं, वे अक्सर परमात्मा के बहुत निकट हृदय की धड़कन को अनुभव करने लगते हैं।
अब एक चित्रकार है, वह सौंदर्य को प्रेम करता है। सौंदर्य का प्रेम जरा असीम है। वह जल्दी ही हार्दिक स्मरण को पा सकता है। एक राजनीतिज्ञ उतनी आसानी से नहीं पा सकता। उसका प्रेम बहुत सीमित और बहुत क्षुद्र है। मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा है उसके दो बेटों के संबंध में कि क्या हालत है बेटों की? तो नसरुद्दीन ने कहा, पहला तो राजनीतिज्ञ हो गया, और दूसरे के भी आसार अच्छे नहीं हैं! एक राजनीतिज्ञ हो गया है और दूसरे के भी आसार अच्छे नहीं हैं!
क्षुद्र, कुर्सी, वह भी छोटी, जिससे हम ही बंध सकें अकेले, इतनी छोटी! दूसरे को भी जगह उसमें नहीं रखनी पड़ती; दूसरा कहीं सरककर उसमें प्रवेश न कर जाए। तो फिर आदमी क्षुद्र होता चला जाता है।
जहां भी क्षुद्र का प्रेम हो, वहां सजग होना। और जहां भी विराट को मौका मिले, मौका देना। जहां भी लगे कि कोई विस्तार है, जिसको हम प्रेम कर सकते हैं... । सुबह सूरज निकला है, तो सिर्फ इतना कहकर अपने रास्ते पर मत चले जाना कि हां, ठीक है; सुंदर है। यह कहना बहुत अपमानजनक है। असल में जिसे सुबह के सौंदर्य का पता चलता है, शायद ही ऐसा कहता हो। यह बहुत क्षुद्र है वक्तव्य। जिसे सुबह के सौंदर्य का पता चलता है, वह दो क्षण सूरज के निकट बैठ जाता है। वह अपने हृदय को खोल लेता है। वह इन किरणों को अपने में समा जाने देता है, और अपने हृदय के आंतरिक भाव को सूरज तक पहुंच जाने देता है। इसमें कहीं बातचीत नहीं होती।
जब आकाश सुंदर मालूम पड़े, तो नीचे लेट जाना थोड़ी देर को। छाती तक उस आकाश को उतर आने देना। कि वह आलिंगन कर ले, और सब तरफ से घेर ले। भूल जाना अपनी क्षुद्रता को थोड़े क्षणों में, उस विराट फैलाव को प्रेम कर लेना। लेकिन हम बड़े संकरे प्रेम करते हैं। उन संकरे प्रेमों में हम संकरे होते चले जाते हैं। लेकिन यह मैं कह रहा हूं, यह अभ्यास की बात नहीं है, यह अवसर को खोजने की बात है। अवसर रोज हैं। अगर नजर हो, तो अवसर रोज हैं। उन अवसरों का प्रयोग करते रहना है। तो धीरे-धीरे उस परम ज्योति का स्मरण, उस परम विराट का स्मरण आसान हो जाता है। और उसकी तरफ हृदय की लगन लग जाए, तो फिर याद करना नहीं होता, वह याद बना रहता है। उसे भूलना ही मुश्किल हो जाता है।
पूछा है किसी ने फकीर बायजीद से कि बायजीद, तुम्हें हम कभी ईश्वर का स्मरण करते नहीं देखते! तुम कभी नमाज पढ़ने नहीं आते मस्जिद में? बायजीद ने कहा, हम उसे भूल ही नहीं पाते; याद कैसे करें! हम उसे भूल ही नहीं पाते हैं; याद कैसे करें? नमाज पढ़ने आएं क्या? नमाज चौबीस घंटे ही चल रही है। उठते

हैं, तो वह है। सोते हैं, तो वह है। जागते हैं, तो वह है। खाते हैं, तो वह है।
हम पागल हो गए हैं उसकी याद में। उसे हम भूल ही नहीं पाते हैं।
याद करना अभ्यास से होता है, हृदय से भूलना मुश्किल हो जाता है। कृष्ण कहते हैं, ऐसा हो सके, तो निस्संदेह, निःसंशय जो मेरा स्मरण करते हैं, वे मेरे ही स्वरूप को उपलब्ध हो जाते हैं।
आखिरी बात। ये सारी बातें हम सुन लेते हैं। और शायद लगता होगा कि कृष्ण ने ठीक ही कहा। या मैंने जो कहा, ठीक ही है। लेकिन इतना सोचने से कुछ भी हल नहीं है। इतना सोचना खतरनाक भी हो सकता है। इस सोचने से भ्रम भी पैदा होता है कि हम समझ गए, और समझे जरा भी नहीं।
तो जिनको भी ऐसा लगता हो कि ठीक है, वे कल सुबह आ जाएं कुछ करने को, किसी अवसर को खोजने को।
एक बात ख्याल रख लें, अकेली समझ काफी नहीं है। क्योंकि अकेली समझ को टिकने के लिए कोई जड़ें नहीं होती हैं हमारे पास। समझ आती है और बादल की तरह सरक जाती है। उस बादल को गड़ाना पड़ेगा जमीन में, जड़ें देनी पड़ेंगी, ताकि वह वृक्ष बन जाए। उसके लिए कुछ करना पड़ेगा। और वह करना हार्दिक है, अभ्यास नहीं है। तो सुबह जो हम ध्यान कर रहे हैं, वह एक हार्दिक अवसर की मौजूदगी भर है। आपके लिए अभ्यास महत्वपूर्ण नहीं है।
यहां हम, हमारे संन्यासी हैं, इनमें से अनेक के हृदय में वह हृदय की भावना जगी है। वे यहां गाएंगे, नाचेंगे। शायद देखते-देखते उनकी धुन आपको भी पकड़ जाए। शायद खड़े-खड़े आपके पैर में भी कंपन आ जाए। शायद उनकी मौज इनफेक्शियस हो जाए, छूत की बीमारी हो जाए, आपको भी छू ले। और परमात्मा करे कि छू ले, तो आप भी नाच उठें और उस लहर में बह जाएं।
तो सुबह सिर्फ एक अवसर है, जस्ट एन ऑपरचुनिटी। आ जाएं। शायद उस अवसर में कुछ बहाव मिल जाए, और कुछ हो जाए।
अभी जाने के पहले पांच-सात मिनट यहां भी हम कीर्तन करेंगे। अभी उठ नहीं जाएंगे आप। पांच-सात मिनट हमारे संन्यासी यहां कीर्तन करेंगे, उसमें आप भी सम्मिलित हों। आप भी सम्मिलित हों। वहीं बैठे हुए कीर्तन को दोहराएं। ताली बजाएं। डोल तो सकते हैं बैठे-बैठे। उस आनंद को, उस पुलक को थोड़ा स्पर्श करें। शायद! कोई नहीं जानता, कब कोई बात छू जाए, और हृदय की वीणा बजने लगे।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
तीसरा प्रवचन

स्मरण की कला

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।। 7।।
अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।। 8।।
कविं पुराणमनुशासितारम्
अणोरणीयां समनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।। 9।।
इसलिए हे अर्जुन, तू सब समय में निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।
इस प्रकार मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त हुआ निःसंदेह मेरे को ही प्राप्त होगा।
और हे पार्थ, परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त अन्य तरफ
न जाने वाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ पुरुष परम दिव्य पुरुष को अर्थात परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।
इससे जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियंता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले, अचिंत्यस्वरूप, सूर्य के सदृश प्रकाशरूप, अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानंदघन परमात्मा को स्मरण करता है... ।

प्रभु का स्मरण या तो थोड़ी देर को हो सकता है। लेकिन थोड़ी देर को किया हुआ स्मरण प्राणों की गहराई तक प्रवेश नहीं कर पाता है। सतह ही छूती है उससे, अंतस्तल अछूता रह जाता है। श्वास की भांति सतत स्मरण चाहिए। श्वास जैसे बीच में बंद हो जाए, तो जीवन से संबंध छूट जाता है, ऐसे ही स्मरण का धागा भी क्षणभर को भी छूट जाए, तो परमात्मा से संबंध टूट जाता है। स्मरण श्वास है परमात्मा की तरफ व्यक्ति के जीवन से बहती हुई। शरीर से जुड़े रहना हो, तो श्वास चाहिए; प्रभु से जुड़ा रहना हो, तो स्मरण चाहिए।
लेकिन हम चौबीस घंटे यदि प्रभु का स्मरण करें, तो और शेष सब काम कब कर पाएंगे? यदि चौबीस घंटे प्रभु का स्मरण ही करना हो, तो कब करेंगे भोजन, कब सोएंगे, कब जागेंगे; कब दुकान, कब बाजार, कब युद्ध--यह सब कब होगा? इसलिए एक समझौता आदमी ने खोजा, और वह यह कि और सब काम भी हम करें, घड़ी आधी घड़ी को प्रभु का स्मरण कर लें।
यह ऐसे ही हुआ, जैसे कोई सोचे कि शेष समय दूसरे काम करें, घड़ी आधी घड़ी
को श्वास ले लें! यह नहीं हो सकता। यह असंभव है।
कृष्ण अर्जुन को इसलिए कहते हैं, इसलिए हे अर्जुन, तू सब समय में निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। यह स्मरण तेरे युद्ध में बाधा नहीं बनेगा। और तू अगर सोचता हो कि प्रभु को स्मरण करना है, तो जंगल में भाग जाना पड़ेगा, तो गलत सोचता है। तू युद्ध भी कर और स्मरण भी कर।
इसका अर्थ हुआ, जो व्यक्ति जो कर रहा है, उसे करता रहे, और स्मरण भी करे। लेकिन कठिनाई मालूम पड़ती है। क्योंकि जब भी हम स्मरण करेंगे, तब दूसरे काम के करने में बाधा पड़ेगी।
चित्त की व्यवस्था ऐसी है कि चित्त की नोक पर एक चीज से ज्यादा एक साथ नहीं हो सकती। जब आप एक बात को स्मरण करते हैं, तब दूसरी बात से चित्त हट जाता है। दूसरी बात पर लगाते हैं, तो पहली बात से हट जाता है। चित्त का स्वभाव एकाग्र होना है।
तो युद्ध करते हुए प्रभु को कैसे स्मरण किया जा सकता है? अगर युद्ध करते समय भी कोई राम-राम की धुन लगाए रहे, तो या तो उसका मन राम-राम में उलझेगा, और तब युद्ध से छूट जाएगा; और या युद्ध में उलझेगा, तो राम-राम को भूल जाएगा। और कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, तू दोनों साथ ही साथ कर। तो निश्चित

ही यह स्मरण किसी और तरह का होगा--उसे हम समझ लें--जिससे युद्ध में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।
परमात्मा का स्मरण या तो उसके नाम के दोहराने से जुड़ जाता है, जो कि सच्चा स्मरण नहीं है। सच्चे स्मरण में नाम की भी जरूरत नहीं रह जाती। असल में नाम तो बहाना है स्मरण को रखने का। जैसे कोई आदमी बाजार जाता है और कोई चीज लाने की तैयारी करके जाता है, और भूल न जाए, तो अपने कपड़े में एक गांठ लगा लेता है। भूल न जाए, इस डर से कपड़े में गांठ लगा लेता है। भूल न जाए इस डर से, जिसे भूलने का डर है, उसे गांठ लगानी पड़ती है। लेकिन जो भूल सकता है, वह बाजार जाकर यह भी भूल सकता है कि गांठ किसलिए लगाई थी।
मैंने सुना है कि रूजवेल्ट जब बोलते थे, तो अक्सर भूल जाते थे और काफी लंबा बोल जाते थे। बीस मिनट बोलना हो, तो साठ मिनट बोल जाते, अस्सी मिनट बोल जाते। बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती थी। और जब वे प्रेसिडेंट हुए, तो उनके मित्रों ने कहा, अब ऐसी भूल-चूक नहीं चलेगी। तो पहले ही दिन बोलने खड़े हुए, तो उन्होंने घड़ी हाथ से निकालकर टेबल पर रख ली और कहा कि मैं घड़ी सामने रखे लेता हूं, ताकि मुझे पता रहे कि मैं ज्यादा तो नहीं बोल गया। लेकिन शर्त एक ही है कि मुझे यह याद रह जाए कि मैंने कब बोलना शुरू किया था। घड़ी तो बता देगी कि अब दस बज गए, लेकिन यह भी याद रखना जरूरी है कि बोलना शुरू कब किया था! जो भूल सकता है, वह कुछ भी भूल सकता है।
अगर प्रभु को बिना नाम के स्मरण नहीं रखा जा सकता, तो नाम के साथ भी भूला जा सकता है। और यही हुआ है। नाम लोग दोहराते रहते हैं और प्रभु को बिल्कुल स्मरण नहीं कर पाते। गांठ ही हाथ में रह जाती है; किसलिए लगाई थी, वह भूल जाता है। गांठ सहयोगी हो सकती है। लेकिन सहयोगी हो सकती है, अगर भीतर याद मौजूद हो। नाम भी सहयोगी हो सकता है। लेकिन सिर्फ सहयोगी है। नाम ही स्मरण नहीं है, सिर्फ गांठ है।
कृष्ण जिस स्मरण को कह रहे हैं, वह और है। एक तो मैं भीतर याद रखूं, परमात्मा है, परमात्मा है। और एक मैं अनुभव करूं, ज्योति है चारों ओर। दिखाई पड़ता है जो, सुनाई पड़ता है जो, सामने जो खड़ा है दुश्मन की तरह प्रत्यंचा पर तीर को चढ़ाकर, छाती को बेध देने को, वह भी प्रभु है। यह जो चारों तरफ विस्तार है, यह उसका ही विस्तार है, इसका बोध, इसकी अवेयरनेस अगर बनी रहे, तो फिर आप कुछ भी काम कर सकते हैं, स्मरण बाधा नहीं बनेगा, क्योंकि कोई भी काम स्मरण के लिए ही गांठ सिद्ध होगा।
ध्यान रखिए, एक तो नाम की गांठ लगानी पड़ती है, वह दूसरे कामों में बाधा बनेगी। लेकिन हम दूसरे समस्त कामों को ही परमात्मा को समर्पित हिस्सा समझ लेते हैं।
तो कृष्ण कहते हैं, तू युद्ध कर और स्मरण कर। युद्ध करता हुआ स्मरण कर।
इसका एक ही अर्थ है, युद्ध जो कर रहा है वह, दुश्मन जो खड़ा है वह, जो भी
हो रहा है चारों ओर; कोई भी जीते, और कोई भी हारे, और कोई भी परिणाम हो; इस सबके बीच परमात्मा ही सक्रिय है। यह बोध अगर हो, तो आप दुकान पर बैठकर, दुकान का काम करते वक्त, ग्राहक से बात करते वक्त, प्रभु का स्मरण रख सकते हैं।
क्या कठिनाई है कि ग्राहक में प्रभु को न देखा जा सके? कौन-सी कठिनाई
है कि जब आप कोई सामान हाथ में उठाते हों, तो उसमें प्रभु को अनुभव न किया जा सके? स्नान करते हों, तो जल की धार सिर पर पड़ती हो, वह परमात्मा की धार न बन जाए, इसमें बाधा क्या है? भोजन जब करते हों, तब वह प्रभु का ही प्रसाद हो, प्रभु ही हो, इसमें अड़चन क्या है?
अगर कोई व्यक्ति अपने जीवन की समस्त धारा के कण-कण में प्रभु को स्मरण
कर पाए, तो ही स्मरण अलग काम नहीं बनता। समस्त कामों के बीच, इसे ऐसे पिरो दिया जाता है, जैसे कि माला के मनकों के बीच धागा पिरोया हो। दिखाई भी नहीं पड़ता, और सब मनकों को वही सम्हाले, भीतर पिरोया होता है।
स्मरण का अर्थ है, धागे की तरह जीवन के सारे कामों के भीतर प्रवेश कर जाए और जीवन की एक माला बन जाए, और उस माला को हम प्रभु के चरणों में रखने में समर्थ हो जाएं। वह स्मरण आपके प्रत्येक काम को ही ध्यान बना दे।

कबीर कपड़ा बुनते हैं, तो भी वे गा रहे हैं, झीनी झीनी बीनी री चदरिया!
वे कपड़ा बेचने जा रहे हैं, तो भी वे ऐसे भागे जा रहे हैं कि जैसे राम बाजार में कपड़ा खरीदने को आया होगा। ग्राहक सामने है, तो वे उसे चादर ऐसी फैलाकर बताते हैं। और बड़े मजे की बात है कि कबीर जब किसी ग्राहक को चादर बेचते थे, तो उससे कहते थे, राम! बहुत सम्हालकर रखना। बहुत याददाश्त के साथ इसे बुना है। इसके रोएं-रोएं में तुम्हें ही बुना है।
ग्राहक तो कभी चौंक भी जाता था कि यह किस पागल से हम चादर खरीदने आ गए!
वह मुझे राम कह रहा है!
कबीर जब ज्ञानी हो गए, परम ज्ञानी हो गए, तो शिष्यों ने कहा कि अब यह कपड़े बुनने का काम बंद कर दो, यह शोभा नहीं देता। महाज्ञानी को यह शोभा नहीं देता कि वह कपड़े बुने और बाजार में बेचे, और एक बुनकर का काम करे! कबीर ने कहा, अगर ज्ञानी को कोई काम शोभा नहीं देता, तो फिर यह परमात्मा को इतना बड़ा काम विराट विश्व का कैसे शोभा देता होगा? और अगर परमात्मा इतने विराट के काम में लीन है और छोड़कर नहीं भाग जाता, तो मैं तो छोटे-मोटे काम में लगा हूं कपड़ा बुनने के, इसे छोड़कर भाग जाने की मैं कोई जरूरत नहीं मानता हूं।
ज्ञानी छोड़कर भागे क्यों? ज्ञानी जहां है, वहीं क्यों न राम को पिरो दे? ज्ञानी जहां है, जो कर रहा है, उसी को ही क्यों न प्रभु का स्मरण बना ले? काश, ज्ञानी कम भागे होते, तो जीवन ज्यादा सुंदर होता। ज्ञानियों के भागने से जीवन अज्ञानियों के हाथ में पड़ गया है।
लेकिन कहा नहीं जा सकता। कभी किसी ज्ञानी को भागने का कर्म ही ऐसा पकड़ लेता है कि वही उसके लिए प्रभु का स्मरण बन जाता है। वह दूसरी बात है। लेकिन अर्जुन से कृष्ण कहते हैं, तू युद्ध कर। अर्जुन की तकलीफ, अर्जुन की चिंता यही है कि वह कहता है कि यह युद्ध और धर्म दो अलग चीजें हैं। अगर मुझे युद्ध करना है, तो मैं अधार्मिक हो जाऊंगा। और अगर मुझे धार्मिक होना है, तो मुझे युद्ध छोड़कर भाग जाना चाहिए। यह अर्जुन की ही चिंता नहीं, हम सभी की चिंता है।
आज ही कोई मित्र मेरे पास थे। वे कहते थे, आप कहते हैं संन्यास। यदि मुझे संन्यास लेना है, तो मुझे घर छोड़कर जाना ही पड़ेगा। और अगर मुझे घर में रहना है, तो संन्यास मुझे नहीं लेना चाहिए।
क्यों? घर और संन्यास में ऐसा क्या विरोध है? अगर युद्ध और परमात्मा
के स्मरण में विरोध नहीं, तो घर और संन्यास में क्या विरोध हो सकता है? उनसे मैंने कहा कि संन्यास भी लो और घर में भी रहो। उन्होंने कहा, आप कैसी उलटी बातें कहते हैं!
अर्जुन के मन में भी ऐसा ही हुआ होगा कि कैसी उलटी बातें कहते हैं! अगर संन्यास लेना है, घर छोड़ दो। यह समझ में आता है। घर में रहना है, संन्यास की बात छोड़ दो। यह भी समझ में आता है। यह गणित बहुत साफ है।
लेकिन साफ गणित अक्सर ही जिंदगी के गणित नहीं होते। जिंदगी बहुत बेबूझ है। और जिंदगी के मामले में जो बहुत सफाई करने की कोशिश करता है, उसके हाथ में मुर्दा चीजें हाथ लगती हैं, जिंदगी हाथ नहीं लगती। काटते ही चीजें मर जाती हैं, बांटते ही चीजें मर जाती हैं। अगर संश्लिष्ट, सिंथेटिक जीवन को समझना हो, तो जीवन बड़ा बेबूझ है। वहां युद्ध करते हुए अगर कोई ध्यान कर सके, तो ही जीवन की गहन धारा में प्रवेश करता है।
जीवन में चुनाव नहीं है। ध्यान के साथ युद्ध हो सकता है। स्मरण के साथ युद्ध हो सकता है। और सच तो यह है, जब स्मरण के साथ युद्ध होता है, तो युद्ध युद्ध नहीं रह जाता है। वही कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं। तू स्मरण कर और युद्ध कर, क्योंकि स्मरण के साथ ही युद्ध युद्ध नहीं रह जाता। और अगर तू युद्ध से भी भाग गया और स्मरण की कला न जानी, तो तेरा संन्यास भी संन्यास नहीं हो सकेगा।
अगर स्मरण की कला ज्ञात हो, तो कसाई का काम करने वाला भी मंदिर के पुजारी से बहुत पहले प्रभु के मंदिर में प्रवेश कर जा सकता है। और अगर स्मरण की कला ज्ञात न हो, तो जीवनभर मंदिर के पूजागृह में बैठकर भी, सिर पटकने पर भी कोई परिणाम नहीं होता है।

सवाल है स्मरण की कला का, दि आर्ट आफ रिमेंबरिंग। उसे हम कैसे याद करें? और उसकी याद करते-करते ही हम बदल जाते हैं। सच तो यह है, एक बार भी कोई हृदयपूर्वक प्रभु का स्मरण करे, तो फिर वही आदमी नहीं रह जाता, जिसने स्मरण किया था। यह हो नहीं सकता। अगर स्मरण किया गया है, तो स्मरण इतनी बड़ी घटना है कि उस व्यक्ति का आमूल जीवन बदल जाता है। हां, स्मरण नहीं किया गया है, तब बात और है।
युद्ध करते हुए प्रभु का स्मरण कर। इस प्रकार मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त हुआ निस्संदेह मेरे को ही प्राप्त होगा।
और तू भय मत कर। और तू डर मत। युद्ध से भाग मत। मन-बुद्धि से युक्त होकर मेरा स्मरण कर, तो तू निश्चय ही मुझे प्राप्त होगा। मन-बुद्धि से युक्त हुआ, इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए।
निरंतर ऐसा होता है। हृदय कुछ कहता है, बुद्धि कुछ कहती है, और दोनों में कभी योग नहीं हो पाता। दोनों में कभी योग नहीं हो पाता। बुद्धि कहती है, यह ठीक है; हृदय कहता है, कुछ और ठीक है। और निरंतर भीतर एक कलह, एक कांफ्लिक्ट निरंतर चलती रहती है।
हृदय कहता है, डूब जाओ भजन में। बुद्धि कहती है, पागल हुए हो? हृदय कहता है, कब तक रुके रहोगे पदार्थों के साथ; खोजो प्रभु को! बुद्धि कहती है, अभी समय बहुत है; अभी समय कहां हुआ; अभी तो जीवन बहुत पड़ा है। पहले थोड़ा संसार का तो और अनुभव ले लो। और परमात्मा को तो फिर कभी भी पाया जा सकता है। वह प्रतीक्षा करता ही रहेगा। वह कोई चुक जाने वाला नहीं है। और इस जन्म में नहीं, तो अगले जन्म में हो जाएगा। लेकिन यह संसार का तो भोग ठीक से कर ही लो।
बुद्धि और हृदय के बीच दरार है। और कोई व्यक्ति अगर इस दरार के साथ स्मरण करेगा, तो वह स्मरण पूरा नहीं हो पाएगा।
कुछ लोग बुद्धि से ही स्मरण करते हैं। जो लोग बुद्धि से स्मरण करते हैं, उनका स्मरण एक तरह का इनवेस्टमेंट होता है। वे सोचते हैं कि अगर प्रभु को स्मरण न किया, तो कहीं नर्क न जाना पड़े। वे सोचते हैं कि अगर प्रभु को स्मरण किया, तो स्वर्ग मिल जाएगा। वे सोचते हैं कि प्रभु को स्मरण किया, तो जीवन में सफलता मिलेगी; दुख कम आएगा, सुख ज्यादा होगा। वे सोचते हैं, अगर कुछ भी न हुआ, तो भी स्मरण करने में हर्ज क्या है! अगर कहीं कोई ईश्वर है और स्मरण न किया, तो नुकसान हो सकता है। अगर नहीं है, और स्मरण कर भी लिया, तो हर्ज क्या है! कोई नुकसान तो नहीं है। ऐसा जो लोग सोचते हैं हिसाब-किताब की भाषा में, इनके हृदय में, इनके मन की गहराइयों में कहीं भी प्रभु के लिए कोई प्यास नहीं है। यह बौद्धिक व्यापार है।
लेकिन हम सभी को प्रभु के संबंध में इसी तरह का बौद्धिक व्यापार सिखाया जाता है। बचपन से कहा जाता है, प्रभु का स्मरण करो, तो परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाओगे। हमने हिसाब की बातें सिखानी शुरू कर दीं।
हमें पता नहीं है कि हम आदमी को किस भांति अधार्मिक बनाते हैं। अगर यह बच्चा, जिससे हमने कहा कि प्रभु का स्मरण करो, परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाओगे, अगर उत्तीर्ण हो गया, तो समझेगा कि स्मरण करने में लाभ है। तो भी यह आदमी अधार्मिक हो गया, क्योंकि लाभ के लिए जो स्मरण करता है, वह धार्मिक नहीं है।
लाभ के लिए स्मरण करने में धर्म क्या है? लाभ ही लक्ष्य है; स्मरण तो केवल साधन है। तो हमने प्रभु से भी थोड़ी नौकरी-चाकरी ले ली! बस, इतनी ही उस पर कृपा की। थोड़ी सेवा उससे भी ले ली। या ज्यादा कहें तो ऐसा कि थोड़ी खुशामद की कि तेरा नाम लेने से तू प्रसन्न होता है, तो चलो ठीक है। तेरा नाम लेने से तू प्रसन्न हो ले, और हमें जो पाना है, वह देकर हमें प्रसन्न कर दे। तो एक समझौता है, एक सौदा है।
अगर उस बच्चे को सफलता मिल गई, तो भी वह अधार्मिक हो जाएगा। क्योंकि लाभ-केंद्रित हो जाएगा, प्राफिट-ओरिएंटेड हो जाएगा। और अगर असफल हो गया, तो वह सदा के लिए समझ लेगा कि प्रभु वगैरह कुछ भी नहीं है, उसके नाम लेने से कुछ भी नहीं होता।

मुल्ला नसरुद्दीन के मकान में आग लगी है। और वह अपने मकान के बाहर एक वृक्ष के नीचे आराम से टिका हुआ बैठा है। आधी रात का सन्नाटा है। रास्ते पर कोई नहीं है। पड़ोसी सब सोए हुए हैं। एक अजनबी आदमी राह भटक गया है। उसने गांव में आग लगी देखी, तो भागा हुआ सड़क से आया। दरवाजे के भीतर घुसा। मुल्ला को बैठे देखा दरख्त के नीचे। उसने कहा, क्या कर रहे हो? पागल हो गए हो? मकान में आग लगी है! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मैं प्रार्थना कर रहा हूं। और देखना है आज कि परमात्मा है या नहीं। मैं प्रार्थना कर रहा हूं कि वर्षा हो जाए, और देखना है आज कि परमात्मा है या नहीं!
हर आदमी इसी तरह देख रहा है। छोटे-मोटे दांव लगाकर कहता है कि अच्छा, इसको करके दिखा दो!
दिदरो पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक हुआ। वह अक्सर सभाओं में खड़े होकर अपनी जेब से घड़ी निकाल लेता था और कहता था, इस वक्त घड़ी में नौ बजे हैं। अगर कहीं कोई परमात्मा हो, आठ बजाकर बता दे, तो मैं मान लूं! घड़ी में नौ बजकर एक मिनट बज जाता, नौ बजकर दो मिनट बज जाते। तो फिर वह कहता, देख लो। मिल गया काफी प्रमाण कि परमात्मा नहीं है।
यदि कोई असफल होता है, तो प्रमाण मिल जाता है कि परमात्मा नहीं है। और अगर सफल होता है, तो प्रमाण मिल जाता है कि परमात्मा को भी खुशामद से फुसलाया जा सकता है; वह भी स्तुति से प्रसन्न होता है। और लाभ अगर चाहिए हो, तो उसका भी उपयोग किया जा सकता है।
प्रेम उपयोग करना नहीं जानता। प्रार्थना भी उपयोग के लिए नहीं हो सकती। और जहां उपयोग है, वहां कोई संबंध नहीं है, वहां कोई हार्दिक संबंध नहीं है।
तो बुद्धि तो या तो नास्तिक बना देती है या नास्तिक से भी बदतर आस्तिक बना देती है। नास्तिक भी ठीक है फिर भी; कहता है, नहीं है। आस्तिक से बेहतर है। आस्तिक, तथाकथित आस्तिक, तो परमात्मा का इस बुरी तरह अपमान किए चला जाता है, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। क्योंकि लाभ! बीमारी है, तो ठीक हो जाए; और नौकरी नहीं मिलती है, तो नौकरी मिल जाए--तो परमात्मा है, इसका प्रमाण मिलता है। नहीं तो सब प्रमाण खो जाते हैं।
नहीं, बुद्धि काफी नहीं है। लेकिन हमारा सारा शिक्षण बुद्धि का है।
और बुद्धि के नीचे छिपा हुआ जो गहन मन है, जो भाव जगत है, वह जो अंतस्तल है हृदय का, वह बिल्कुल अछूता रह जाता है। कभी-कभी उस अछूते हृदय से भी आवाज आती है। लेकिन बुद्धि उसे दबाती रहती है।
आज ही एक मित्र मेरे सामने ही खड़े थे। कई बार मैंने अनुभव किया कि उनके भीतर तरंग आती है कि वे डूब जाएं कीर्तन में, लेकिन फिर आंख खोलकर अपने को सम्हालकर रोक लेते हैं।
यह कौन रोक रहा है भीतर? यह बुद्धि रोक रही है; वह कहती है कि आप सुशिक्षित हैं, सज्जन हैं। ऐसा नाचकर ग्रामीण जैसा काम कैसे करेंगे? विश्वविद्यालय से उपाधि-प्राप्त हैं। कोई देख लेगा, क्या सोचेगा? पागल हो गए हैं? हृदय में झनक आती है। घूंघर बजते हैं भीतर कहीं। उनके पैर कंपते हैं। फिर वे आंख खोलकर अपने को सम्हालकर खड़े हो जाते हैं! प्रतिपल आप अनुभव करेंगे, हृदय अंकुर भेजना चाहता है, लेकिन बुद्धि उसे तत्काल दबा देती है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, मन-बुद्धि से युक्त हुआ।
मन भी कहे हां और बुद्धि भी कहे हां, तो ही दोनों के बीच तालमेल निर्मित हो जाता है। दोनों के बीच सेतु बन जाता है। और उस सेतु के बंधे हुए क्षण में ही व्यक्ति पूरा का पूरा प्रभु को स्मरण कर पाता है।
कैसे यह होगा? अगर बुद्धि की ही सुनते रहे, तो यह कभी न होगा। क्योंकि बुद्धि बहुत ऊपरी बात है।
अगर कोई सागर अपनी लहरों की ही मानता चला जाए, तो उसके अंतरगर्भ में छिपे हुए मोतियों के ढेर का उसे कभी भी पता न चल सकेगा। क्योंकि लहरों को मोतियों की कोई भी खबर नहीं है। और लहरों से अगर पूछेगा कि क्या भीतर मोती हैं? तो लहरें कहेंगी, पागल हो। भीतर कुछ भी नहीं है। क्योंकि लहरें! लहरें सदा ऊपर हैं। उन्हें भीतर का कुछ भी पता नहीं है। लहरें कहेंगी,

मोती! नासमझ हो। कभी-कभी सूखे पत्ते बहते हुए जरूर आ जाते हैं। कचरा-कबाड़ जरूर कभी-कभी लहरों पर आ जाता है। उन्हीं को लहरों ने जाना है; मोतियों की गहराइयों का उन्हें कुछ भी पता नहीं। अगर सागर लहरों की माने, तो अपनी ही संपदा से वंचित हो जाता है।
हम भी अपनी बुद्धि की लहरों की--बुद्धि बहुत ऊपरी सतह है। बुद्धि हमारी वह सतह है मन की, जिससे हम जगत के साथ संबंध स्थापित करते हैं। बुद्धि ठीक वैसी है, जैसे किसी राजमहल के द्वार पर कोई पहरेदार बैठा हो। वह पहरेदार बाहर के जगत और राजमहल के बीच में है।
लेकिन अगर हम, घर का मालिक भी, सम्राट भी पहरेदार से ही पूछने लगे कि
इस महल के भीतर कुछ है? तो पहरेदार कहेगा, वहां क्या रखा है! जो कुछ है, यहां मेरे इस स्टूल पर बैठे रहने में है। यहीं; सारा जगत यहीं है। और मेरे पास आए बिना कभी कोई भीतर नहीं गया। इसलिए भीतर अगर कभी कुछ जाएगा भी, तो मेरे पास से गुजरकर ही जाएगा। अब तक तो मैंने कोई खजाना भीतर जाते नहीं देखा। कोई खजाना-वजाना भीतर नहीं है।
बुद्धि सिर्फ पहरा है, बाहर के जगत से हमारा संबंध है सुरक्षा का, सिक्योरिटी मेजर है। लेकिन जब हम उसी से पूछने लगते हैं अंतरतम की बातें, तो हमारी नासमझी है। हम जिससे पूछ रहे हैं, उसे पता ही नहीं है। लेकिन जिसे कुछ भी पता नहीं है, वह भी जवाब तो देने में कुशल होता ही है।
अक्सर तो ऐसा होता है, जिन्हें कुछ भी पता नहीं होता, वे जवाब देने के लिए बड़े आतुर होते हैं। कभी-कभी जिन्हें पता होता है, वे जवाब देने से रुक भी जाते हैं; लेकिन जिनको पता नहीं होता, वे बहुत जल्दी जवाब दे देते हैं। शायद इसीलिए कि कहीं झिझकें, तो पता न चल जाए कि पता नहीं है। जल्दी जवाब दे देते हैं।
बुद्धि बड़े जल्दी जवाब दे देती है। अगर आप बुद्धि से ही पूछते चले गए,
तो परमात्मा की कोई सन्निधि, कोई सुगंध, कोई संगीत, कभी नहीं मिल सकेगा। जरा बुद्धि को हटाएं और भीतर के हृदय से पूछें। हां, बुद्धि का उपयोग करें। हृदय की आवाज हो; बुद्धि का उपयोग हो। हृदय से पूछें कि क्या करना है; और फिर बुद्धि से पूछें कि कैसे करना है। तब, तब बुद्धि और हृदय में एक सुसंगति बन जाती है।
इसे ठीक से समझ लें।
हृदय से पूछें लक्ष्य, बुद्धि से पूछें साधन। हृदय से पूछें अंतिम सिद्धि, बुद्धि से पूछें पहुंचने का मार्ग। हमेशा हृदय से पूछें कि क्या चाहिए और बुद्धि से पूछें कि यह चाहिए, अब इसे पाने के लिए क्या करना है। बुद्धि मैथडॉलाजी दे सकती है, विधि दे सकती है, मार्ग दे सकती है। लेकिन बुद्धि कभी लक्ष्य नहीं देती। और हम सब बुद्धि से लक्ष्य पूछकर भटक जाते हैं।
इसे ऐसा समझें तो बहुत आसान हो जाएगा। बुद्धि का जो चरम विकास है, वह विज्ञान में हुआ है। हृदय का जो चरम विकास है, वह धर्म में हुआ है।
अगर विज्ञान से पूछें कि हम किसलिए जीते हैं, तो विज्ञान कहेगा, हमें पता नहीं। अगर विज्ञान से पूछें कि हम किस तरह जीएं कि ज्यादा जी सकें, स्वस्थ जी सकें, तो विज्ञान रास्ता बता देगा। अगर विज्ञान से आपने पूछा कि जीवन का लक्ष्य क्या है, तो विज्ञान कहेगा, हमें कुछ पता नहीं है। आइंस्टीन मरते वक्त पीड़ित था कि मैंने भी अणुबम के बनने में सहायता
दी है। लेकिन मुझे यह पता ही नहीं था कि तुम क्या उपयोग करोगे। हम तो केवल इतना ही बता सकते थे कि अणुबम कैसे बन सकता है। तुम क्या करोगे, यह हमने सोचा भी नहीं था!
विज्ञान बता नहीं सकता कि क्या करो। धर्म ही बता सकता है कि क्या करो। विज्ञान बता सकता है कि कैसे करो, दि हाउ, कैसे! लेकिन किसलिए, फार व्हाट! विज्ञान के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। बुद्धि के पास भी कोई उत्तर नहीं है।
हृदय से पूछें, क्या पाना है। और फिर बुद्धि को आज्ञा दे दें कि यह पाना है। खोजो मार्ग, खोजो विधि, खोजो व्यवस्था। और तब बुद्धि और हृदय

संयुक्त हो जाते हैं। बुद्धि और हृदय का संयोग जहां है, वहीं योग फलित होता है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त हुआ निस्संदेह तू मुझे उपलब्ध होता है।
मेरे में अर्पण किए हुए! मजे की बात है। हृदय सदा ही अर्पण करना चाहता है। और बुद्धि सदा अर्पण करवाना चाहती है। बुद्धि कहती है, करो समर्पण।
बुद्धि सदा दूसरे से समर्पण करवाना चाहती है। बुद्धि समर्पण करना जानती ही नहीं। बुद्धि अहंकार है। और हृदय! हृदय आक्रमण करना जानता ही नहीं। हृदय समर्पण है; हृदय अपूर्व विनम्रता है।
अगर कोई बुद्धि से ही खोजता रहा, तो परमात्मा के संबंध में सिर्फ तर्क कर-करके समाप्त हो जाएगा। उसे कोई भी उत्तर मिलने वाला नहीं है। अगर परमात्मा स्वयं भी सामने खड़ा हो और बुद्धि से अगर आपने पूछा कि तुम कौन हो? तो परमात्मा चुप रह जाएगा। इसलिए नहीं कि आपका प्रश्न गलत था; सिर्फ इसलिए कि बुद्धि से पूछा गया था। बुद्धि से पूछे गए इस तरह के प्रश्नों के उत्तर देने का कोई भी अर्थ नहीं है।
हृदय से पूछो, तो परमात्मा को उत्तर देना भी नहीं पड़ता, वह हृदय के ऊपर
सब भांति छा जाता है, जैसे कोई बादल किसी पहाड़ को घेरकर छा ले, जैसे किसी फूल के आस-पास सब तरफ से सूरज की किरणें उसे घेर लें और छा लें। हृदय से पूछें, तो परमात्मा मौजूद भी न हो सामने, तो भी चारों तरफ से वह हृदय को घेर लेता है और हृदय की कली खिल जाती है, जैसे सुबह फूल खिल जाता है और सब तरफ से सूरज की रोशनी उसे घेर लेती है। लेकिन हृदय का सूत्र है, अर्पण।
तो कृष्ण कहते हैं, मेरे को अर्पण हुआ, मन-बुद्धि से युक्त, निस्संदेह--फिर कोई संदेह नहीं--मुझको ही उपलब्ध हो जाता है।
समर्पण ही उपलब्धि है, समर्पण ही पहुंच जाना है। जिसने रोका समर्पण
से अपने को, वह वंचित रह जाएगा। जिसने छोड़ा अपने को, साहस किया, वह पहुंच जाता है।
हम सब बहुत डरे-डरे होते हैं। हम कभी भी अपने को छोड़ते नहीं। हमें जीवन में ऐसा एक भी स्मरण नहीं आता, जब हम अपने को कभी छोड़ते हैं। जिसे हम प्रेम कहते हैं, उसमें भी अपने को छोड़ते नहीं। कुछ न कुछ सदा ही पीछे बचा लिया जाता है। वही बचा हुआ, कभी भी प्रेम के अनुभव तक भी हमें नहीं पहुंचने देता।
अगर मैं किसी को प्रेम भी करता हूं, तो अपने को रोककर, बहुत-सा हिस्सा पीछे छोड़ देता हूं, जरा-सा हिस्सा बाहर भेजता हूं फीलर्स की तरह, कि जरा देख तो लें कि कहां तक मामला है। जब सुरक्षित हो जाएंगे पूरे, तब थोड़ा और हृदय का हिस्सा देंगे। अगर जरा ही डर लगा, तो जैसे कछुआ सिकुड़ जाता है अपने भीतर, हम भी सिकुड़ जाएंगे।
प्रेम में भी हम अपने को बचा लेते हैं। और प्रार्थना में तो हम और भी बचा लेते हैं। क्योंकि प्रेम करने में तो सामने कोई दिखाई पड़ता है, प्रार्थना में तो वह भी नहीं दिखाई पड़ता है। तो प्रेम में कभी-कभी थोड़ी सचाई की झलक भी आ जाती है, प्रार्थना तो बिल्कुल ही झूठी हो जाती है। घुटने टेकते हैं। हाथ जोड़ते हैं। नमाज पढ़ते हैं। सिर झुकाते हैं। और सब करीब-करीब एक्सरसाइज होकर रह जाता है, व्यायाम होकर रह जाता है।
क्यों ऐसा होता है? क्योंकि हमें पता ही नहीं कि हम हृदयपूर्वक कैसे करें। अर्पण का भाव ही हमें पता नहीं है। अर्पण के भाव को भी सीखना पड़ता है।
कुछ न करें, रोज सुबह जब उठें, तो कुछ भी न करें, खाली जमीन पर लेट जाएं चारों हाथ-पैर फैलाकर। छाती को लगा लें जमीन से। अगर नग्न लेट सकें, तो और भी प्रीतिकर है। जैसे कि पृथ्वी मां है और उसकी छाती पर पूरे लेट गए चारों हाथ-पैर छोड़कर। सिर रख दें जमीन में और थोड़ी देर को अनुभव करें कि अपने को सब का सब पृथ्वी में समा दिया, छोड़ दिया। मिट्टी है दोनों तरफ, इसलिए बहुत जल्दी संबंध बन जाता है; देर नहीं लगती। यह शरीर भी उसी पृथ्वी का टुकड़ा है। बहुत जल्दी इस शरीर के कणों में और पृथ्वी के कणों में तालमेल शुरू हो जाता है, संगीत प्रतिध्वनित होने लगता है। और थोड़ी ही देर में आप अनुभव

करेंगे कि आप पृथ्वी हो गए। और इतने आह्लाद का अनुभव होगा, ऐसी अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव होगा, जैसा कभी भी नहीं हुआ।
कभी सूरज की किरणों में ही लेट जाएं नग्न और सूरज की किरणों को छू लेने दें पूरे शरीर को। आंख बंद कर लें और किरणों में अपने को समर्पित कर दें। क्योंकि सूरज की किरण के बिना इस शरीर के भीतर जीवन नहीं है। इसलिए शरीर के भीतर जो भी ऊर्जा है, जीवन है, वह सूरज की किरण से जुड़ा है।
जैसे ही समर्पण का भाव होगा कि हो गए एक, ले चल सूरज मुझे अपनी किरणों
पर दूर की यात्रा पर; मैं राजी हूं, मैं छोड़ता हूं अपने को। जहां तू मार्ग दिखाएगा, वहीं चल पडूंगा! थोड़ी ही देर में पाएंगे कि किरणें अब सिर्फ चमड़ी को नहीं छूतीं, कहीं भीतर हृदय को गुदगुदाना उन्होंने शुरू कर दिया है। कहीं कोई हृदय की पंखुड़ी पर भी उनकी चोट पड़ने लगी, और कहीं कोई प्राणों का पक्षी भी पंख खोलकर उड़ जाने को आतुर हो गया है।
कहीं भी सीखें, किसी तरह भी सीखें। कहीं भी सीखें, किसी तरह भी सीखें। पत्नी को भी प्रेम देते हों, तो पूरा दे दें। मां की गोद में सिर रखते हों, तो पूरा रख दें। मित्र का हाथ भी लेते हों, तो फिर पूरा ही हाथ हाथ में ले लें। किसी को गले भेंटते हों, तो सिर्फ हड्डियां ही न छुएं; छोड़ दें अपने को। एक क्षण को ले जाने दें। तो धीरे-धीरे अर्पण का भाव ख्याल में आएगा। और उस अर्पण के भाव को ही जब सर्व विराट परमात्मा के प्रति कोई लगा देता है, क्योंकि बाकी सब अनुभव में कोई न कोई मौजूद है। परमात्मा गैर-मौजूदगी है। इसलिए मौजूदगी से अनुभव लें और जब अनुभव गहरा हो जाए, तो फिर गैर-मौजूदगी की तरफ, अनुपस्थित की तरफ, जो नहीं दिखाई पड़ता, उसकी तरफ समर्पण कर दें।
वह समर्पण इसीलिए कठिन है। कोई मौजूद हो, तो समर्पण आसान मालूम पड़ता है। कोई मौजूद ही नहीं, तो समर्पण किसके प्रति? लोग पूछते हैं, किसके प्रति समर्पण?
लेकिन आदमी की चालाकी का कोई अंत नहीं है। एक बहुत अजीब अनुभव मुझे हुआ। वह यह हुआ कि अगर किसी को बताओ कि इसके प्रति समर्पण करो, तो वह कहता है, इसके प्रति समर्पण? इसमें तो इतनी खामियां हैं! और कहो कि इसके प्रति समर्पण करो, तो अहंकार को चोट लगती है कि मैं और इसके प्रति समर्पण करूं? यह भी तो मेरे जैसा आदमी है; हड्डी-मांस का बना है। भूख इसे लगती है, तो क्रोध भी जरूर लगता ही होगा। नींद इसे आती है, तो कामवासना भी सताती ही होगी। कहीं न कहीं छिपाए होगा सब। और मैं इसके प्रति! मैं भी तो ऐसा ही आदमी हूं!
अगर बताओ किसी को कि इसके प्रति करो--बुद्ध सामने खड़े हों, तो भी वही कठिनाई आ जाती है। कृष्ण सामने खड़े हों, तो भी वही कठिनाई आ जाती है। और अगर कोई सामने न हो, तो आदमी का चालाक मन कहता है, किसके प्रति समर्पण करूं? कोई दिखाई तो पड़ता नहीं!
आदमी की इस बेईमानी से बचाने के लिए, जो बहुत बुद्धिमान लोग थे, उन्होंने परमात्मा की मूर्तियां बनाईं। मूर्ति बीच की व्यवस्था थी। न तो व्यक्ति है वहां--बुद्ध और कृष्ण और महावीर और मोहम्मद नहीं हैं वहां-- मूर्ति पत्थर है, तो आप यह भी न कह सकेंगे कि इस पत्थर को कहीं क्रोध तो नहीं आता! और कुछ मौजूद भी है, तो आप यह भी न कह सकेंगे कि जो मौजूद नहीं है, उसके प्रति समर्पण कैसे करूं!
लेकिन आदमी की चालाकी का कोई अंत नहीं है। उसने कहा, इस पत्थर को! पत्थर के प्रति समर्पण करवा रहे हैं! इस पत्थर में रखा ही क्या है। अभी चाहूं, तो दो टुकड़े करके इसके बता सकता हूं। जो अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता, वह क्या खाक मेरी रक्षा करेगा!
दयानंद की सारी क्रांति इसी नासमझी से पैदा हुई। इसी नासमझी से, कि परमात्मा की मूर्ति को एक चूहा परेशान करता रहा। तो दयानंद ने कहा कि चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर पाते, तो मेरी क्या रक्षा करोगे और जगत की क्या रक्षा करोगे! सब बेकार है। चूहे की इस प्रतीति पर सारा आर्यसमाज खड़ा हुआ है! सारी दृष्टि इतनी छोटी-सी है। लेकिन मूर्ति के विरोधी हो गए दयानंद, क्योंकि मूर्ति अपनी रक्षा न कर पाई।

और पता नहीं, यह आदमी कैसा है! कुछ भी उसे कहो, वह तरकीब निकालेगा और अपनी बीमारी को बचा लेगा। जीवित आदमी हो, तो भूल-चूक मिलेगी। मूर्ति हो, तो पत्थर हो जाती है। और परमात्मा अगर गैर-मौजूद है, तो कहां उसके चरण हैं? कहां और किसके चरणों पर मैं सिर रखूं? और आदमी अपने को बचाता चला जाता है। इसलिए मैंने कहा, अर्पण सीखें। पृथ्वी से सीखें। आकाश से सीखें। सूरज
से सीखें। प्रेम में सीखें। कहीं भी सीखें। एक बात ख्याल रखें कि अर्पण का अनुभव आपका जितना सघन होता चला जाए, उतना ही किसी दिन समर्पण परमात्मा के प्रति आसान हो सकेगा।
जब भी कोई आदमी मुझे आकर कहता है कि कैसे करूं समर्पण, तब मैं जानता हूं, इस आदमी ने कभी कोई प्रेम नहीं किया। इस आदमी ने कभी कोई सौंदर्य की प्रतीति नहीं की। इस आदमी को कभी फूल खिलते दिखाई नहीं पड़े; सूरज उगता नहीं दिखाई पड़ा। इसने कभी नदी के तट पर जाकर नदी की शीतल रेत में अपने को लिटाया नहीं। यह कभी पानी की धार में आंख बंद करके बैठा नहीं कि पानी की धार की सरसराहट में इसके भीतर भी कोई तरंग पैदा हो जाए।
नहीं, इस आदमी ने कुछ भी नहीं जाना। इसने तिजोरी भरी होगी। इसने कपड़े इकट्ठे किए होंगे। इसने मकान बनाया होगा। लेकिन इसकी संवेदना का कोई द्वार नहीं खुल पाया है। तो इसलिए अब यह पूछता है कि समर्पण कैसे? कैसे झुक जाऊं? कैसे सिर नवाऊं? गर्दन अकड़ गई है, पैरालाइज्ड हो गई है। अकड़े- अकड़े, चौबीस घंटे अकड़े-अकड़े गर्दन बिल्कुल अकड़ गई है। झुकती नहीं है; झुक नहीं सकती।
तो कृष्ण कहते हैं, मेरे में अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त हुआ निस्संदेह मुझे पा लेता है। और हे पार्थ, ध्यान के अभ्यास रूपी योग से युक्त अन्य तरफ न जाने वाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ पुरुष परम दिव्य पुरुष को, परमेश्वर को प्राप्त होता है।
अभ्यास रूप योग से ध्यान को प्राप्त हुआ और अन्य की तरफ न जाता हुआ!
कोई अन्य परमात्मा तो है नहीं, परमात्मा तो एक है। इस्लाम ठीक कहता है
कि सिवाय अल्लाह के और कोई अल्लाह नहीं है। देयर इ.ज नो गॉड एक्सेप्ट दि गॉड, ईश्वर के सिवाय और कोई ईश्वर नहीं। ठीक कहता है। एक ही है वह।
तो अन्य तो कोई ईश्वर नहीं है। इसलिए जब कृष्ण कहते हैं कि जिसका ध्यान सतत मुझमें ही अभ्यासरत हुआ है और मेरे अतिरिक्त अन्य की तरफ नहीं जाता, तो इसका आप यह मतलब मत समझना कि कृष्ण कहते हैं, बुद्ध की तरफ नहीं जाता, महावीर की तरफ नहीं जाता, राम की तरफ नहीं जाता। भक्तों ने ऐसे-ऐसे गलत अर्थ निकाले हैं, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। कृष्ण-भक्त सोचता है कि अगर राम की तरफ गया, तो अन्य की तरफ गया। अगर बुद्ध की तरफ गया, तो अन्य की तरफ गया। कृष्ण ने तो साफ कहा है, अनन्य रूप से मेरी तरफ, अन्य की तरफ नहीं।
लेकिन भूल है समझ की। परमात्मा तो एक ही है। उसे कोई राम कहे, और कोई रहीम कहे, और कोई कृष्ण कहे, और कोई कुछ और कहे। परमात्मा तो एक ही है। यहां अन्य से क्या अर्थ है? क्या और परमात्मा भी हैं, जिनकी तरफ से बचा लो अपने को? और कोई परमात्मा नहीं है। फिर किससे बचाने को कहते होंगे?
कृष्ण इतना ही कह रहे हैं कि सवाल परमात्मा का नहीं है। लेकिन आदमी के
मन में हजार-हजार चीजों की तरफ दौड़ने की वृत्ति है। हजार-हजार चीजों की तरफ दौड़ने की वृत्ति है। और एक के साथ ज्यादा देर रहने की क्षमता नहीं है। मन प्रतिपल नए को खोजता है। नया मकान बना लें; दो-चार-आठ दिन में ही पुराना पड़ जाता है। मन कहता है, अब कोई और दूसरा नया बनाओ। नए कपड़े पहन लें; चार दिन बाद मन फिर दुकानों के सामने ठिठककर रुकने लगता है, कि मालूम होता है, नए फैशन के कपड़े फिर बाजार में आ गए।
मन नए की तलाश करता है। क्यों? क्योंकि अगर एक ही चीज के साथ मन को रहना पड़े, तो मन के लिए गति नहीं मिलती, इसलिए मन ऊब जाता है। कहता है, नया लाओ।
लेकिन परमात्मा तो नया लाया नहीं जा सकता। इसलिए जो नए की निरंतर खोज में लगा है, वह परमात्मा के साथ रुक न पाएगा। परमात्मा के साथ तो वही रुक

सकता है, जो उस अभ्यास में आ गया, जहां ऊब पैदा ही नहीं होती है, जहां बोर्डम पैदा ही नहीं होती है।
आदमी को अधार्मिक बनाने वाली अगर कोई एक गहरी से गहरी चीज है, तो वह बोर्डम है, वह ऊब है। हर चीज से ऊब जाता है मन। एक पत्नी से ऊब जाता है, एक पति से ऊब जाता है। एक घर से ऊब जाता है, एक मित्र से ऊब जाता है। एक धंधे से ऊब जाता है। हर चीज से ऊब जाता है। और कहता है, और कुछ लाओ, और कुछ लाओ। वह कहता ही चला जाता है कि और कुछ लाओ। उसकी मांग है, और! और! और चीज में वह कहे चला जाता है, और कुछ लाओ। दौड़ाता रहता है। अपने से ही ऊब जाता है। इसलिए कोई आदमी अपने साथ रहने को राजी नहीं है। अपने से ही घबड़ा जाता है!
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन जब छोटा-सा बच्चा था, तो उसके मां- बाप एक दिन उसे घर छोड़कर गए हैं किसी शादी में। ले जाना संभव न था; शैतान था लड़का। तो कहा उसे कि हम ताला लगा जाते हैं बाहर। अगर तू भली तरह व्यवहार किया, अगर घर में तू शांति से रहा और अच्छा साबित हुआ, तो लौटकर हम तुझे पांच रुपए देने वाले हैं।
पांच रुपए के लोभ में नसरुद्दीन ने भले रहने की कोशिश की, जैसा कि हम सभी लोग किसी लोभ में भले रहने की कोशिश करते हैं। और इसीलिए अगर ज्यादा बड़ा लोभ मिल जाए बुरा होने के लिए, तो तत्काल बुरे हो जाते हैं। यह सवाल सब लोभ का है। तो हर आदमी की भलाई की कीमत है।
एक आदमी कहता है कि मैं रिश्वत बिल्कुल नहीं लेता। उससे पूछो, कितनी नहीं लेते--पांच? दस? पंद्रह? पचास? सौ? एक जगह लिमिट आ जाएगी। वह कहेगा, बस ठहरो। क्या देने का इरादा है! सीमा है। एक आदमी कहता है, मैं चोरी बिल्कुल नहीं करता। फलां आदमी के घर गया; दस रुपए का नोट पड़ा था; मैंने नहीं उठाया। पूछो उससे, दस हजार का पड़ा होता? तो वह कहेगा, एक दफे सोचने का फिर से मौका दें। सीमा है। वैसे कोई फर्क नहीं पड़ता।
इसलिए भलाई अगर कीमत से मिलती हो, तो बुराई कभी भी ली जा सकती है। इसलिए जिन लोगों को भी भला होने के लिए पुरस्कार दिए जाते हैं, उनके भले होने में सदा संदेह रहेगा। वे कभी भी बुरे हो सकते हैं। भलाई तो वही है, जो बिना पुरस्कार के हो। लेकिन उस भलाई को हम जानते नहीं।
नसरुद्दीन ने बड़ी कोशिश की भले रहने की। पांच रुपए का सवाल था। घड़ी- घंटे की बात थी। आखिर मां-बाप आ गए। देखे तो बड़े हैरान हुए कि वह घर के भीतर एक कमरे से दूसरे कमरे में गोल चक्कर लगा रहा है। पूछा उसके पिता ने कि नसरुद्दीन, यह तू क्या कर रहा है? और हमने कहा था कि भले रहने की कोशिश करना।
तो नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने कोशिश की, आई वा.ज गुडर दैन गुड, बट देन
आई कुडंट स्टैंड माइसेल्फ। मैं अच्छे से भी अच्छा हो गया और तब अपने को ही सहना मुश्किल हो गया। यह मैं सिर्फ अपने से भागने, अपने से बचने के लिए भाग रहा हूं एक कमरे से दूसरे कमरे में। जस्ट टु एस्केप फ्राम माइसेल्फ, अपने ही से बचने के लिए भाग रहा हूं। इतना अच्छा हो गया मैं कि खुद को ही सहना मुश्किल हो गया!
अच्छाई भी हो जाए बहुत, तो ऊब पैदा कर देती है। हर चीज से हम ऊब जाते हैं। और परमात्मा तो एकरस है। ध्यान का केवल एक ही अर्थ है, एकरसता से न ऊबने का अभ्यास। ध्यान का अर्थ है, एकरसता से न ऊबने का अभ्यास। बर्ट्रेंड रसेल ने मजाक में कहीं कहा कि मैं मरकर नरक भी जाने को तैयार हूं, लेकिन हिंदुओं और बौद्धों के मोक्ष में जाने को तैयार नहीं हूं। क्यों? क्योंकि उसने कहा कि मोक्ष में तो बड़ी ऊब पैदा हो जाएगी। वहां तो सब एकरस है। आनंद है, तो आनंद ही आनंद है। वहां कभी दुख पैदा ही नहीं होता। तो आनंद से ऊब जाऊंगा। इतना आनंद कैसे सहूंगा! आनंद ही आनंद! बीच में कोई कड़वा स्वाद ही न आता हो, तो मिठाई भी उबाने वाली हो जाती है। तो तिक्त भी चाहिए। और इतना सन्नाटा है वहां कि कभी कोई वाणी ही नहीं उठती, तो मैं तो घबड़ा जाऊंगा। और फिर वहां से लौटने का भी कोई उपाय नहीं है।
रसेल कहता था, वहां जो गया, सो गया। यह तो मौत हो जाएगी, मोक्ष न होगा। लौट नहीं सकते। मोक्ष में एक ही दरवाजा है एन्ट्रेंस का, प्रवेश का। निकास का, एक्जिट का कोई दरवाजा नहीं है। तो जो गए, सो गए। तो रसेल कहता था, ये लोग

कहते हैं कि वह परम मुक्ति है, मुझे लगता है, वह तो परम बंधन हो गया! वहां से निकलने का उपाय नहीं है। नरक से निकल सकते हैं। और नरक में बड़ा परिवर्तन है। चौबीस घंटे उपद्रव चल रहे हैं। जितना उपद्रव वहां है, उतना तो यहां भी नहीं है।
रसेल ठीक कह रहा है। लेकिन बात मुद्दे की है।
अगर आप परिवर्तन के बहुत आकांक्षी हैं, तो आप ध्यान में प्रवेश नहीं
कर सकते। आखिर जब आप ध्यान में बैठते हैं, तो आपका मन करता क्या है? एक विचार देता है, फिर दूसरा देता है, फिर तीसरा देता है। वह दिए चला जाता है विचार। वह कहता है, घबड़ाओ मत, ऊबो मत। मैं तुम्हें नई-नई चीजें दे रहा हूं। और आप पूछते हैं कि ध्यान कैसे लगे? ध्यान उसी दिन लगेगा, जिस दिन आप ऊबने के लिए तैयार हों, और ऊबें न। एक फूल को आप देख रहे हैं। देखे चले जा रहे हैं। बदलने की कोई इच्छा नहीं है। तो ठीक है। देखे जा रहे हैं। देखे जा रहे हैं। देखे जा रहे हैं। पहले मन ऊबेगा। वह कहेगा, क्या एक ही फूल को देखे जा रहे हो, बदलो अब। अगर आपने फूल न बदला, तो मन कहेगा, न बदलो फूल, हम भीतर विचार बदलते हैं। लेकिन कुछ न कुछ बदलो। लेकिन आपने कहा, कुछ न बदलेंगे। यह फूल है और मैं हूं, और बस काफी है।
अगर आप घड़ी दो घड़ी एक फूल के पास भी रोज इस तरह बैठ जाएं, एक दिन आप पाएंगे कि ध्यान की झलक आपको आनी शुरू हो गई। फिर ऊब नहीं आती। फिर आप एक चीज के साथ होने को राजी हो गए। और जो व्यक्ति एक चीज के साथ चौबीस घंटे होने को राजी है, वही प्रभु का स्मरण कर सकता है। क्योंकि वह स्मरण तो बदला नहीं जा सकता, वह तो प्रभु एक ही है; चारों तरफ एकरस है। उसका एक ही स्वाद है।
बुद्ध कहते थे, जैसे नमक; सागर में कहीं भी चखो और नमकीन है स्वाद। ऐसा
ही प्रभु को कहीं से चखो, वह बिल्कुल एकरस है, एकस्वाद है।
कृष्ण कहते हैं, अन्य की तरफ जरा भी चित्त गया, तो ध्यान नहीं है। और अगर अन्य की तरफ चित्त न जाता हो, अनन्य रूप से मेरी ही तरफ लग जाता हो, या परम दिव्य पुरुष की तरफ लग जाता हो, तो परमेश्वर प्राप्त होता है। इससे जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियंता, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले, अचिंत्य स्वरूप, सूर्य के सदृश प्रकाश रूप, अविद्या से अति परे परमात्मा को स्मरण करता है, वही परमात्मा को उपलब्ध होता है। इसमें कुछ बातें कहीं, जो हम समझें।
एक, जो पुरुष सर्वज्ञ है। इस जगत में कोई कितना भी जानता हो, तो भी अल्पज्ञ ही होगा। कोई कितना ही जान ले, जानने को सदा शेष रह जाता है। कोई कितना ही जान ले, जानना चुक नहीं पाता है। देयर इ.ज नो एंड टु नोइंग। हो भी नहीं सकता। इसलिए कोई भी कितना भी जान ले, वह जानना पूर्ण नहीं है। अगर जानना कहीं भी पूर्ण होगा, तो वह परमात्मा के अंतस्तल में होगा।
निश्चित ही, वह सभी कुछ जानता होगा, जो जाना जा सकता है। लेकिन उसे यह बिल्कुल पता नहीं हो सकता कि मैं सब कुछ जानता हूं। क्योंकि जिसे यह पता है कि मैं सब कुछ जानता हूं, उसके भी जानने की सीमा है। इसलिए परमात्मा सर्वज्ञ है, आल नोइंग है, फिर भी उसे कोई पता नहीं कि मैं सब कुछ जानता हूं। सब कुछ जानने का पता भी अज्ञानी का ही बोध है।
इसलिए अगर कभी कोई जमीन पर घोषणा करता है कि मैं सर्वज्ञ हूं, तो वह इस बात की घोषणा करता है कि उसके भी जानने की सीमा है। वह भी अल्पज्ञ है। वह भी अज्ञानी है। सिवाय अज्ञानी के अतिरिक्त कोई सब कुछ जानने की घोषणा नहीं करता है।
लेकिन जो उस सब कुछ जानने वाले का स्मरण करता है, वह धीरे-धीरे उसके साथ एक होता चला जाता है। और एक घड़ी ऐसी आती है उस एक हो जाने की, जब खुद को भी पता नहीं रहता कि मैं कुछ जानता हूं या नहीं जानता हूं।
एक मित्र मुझे पत्र लिखे हैं और पूछे हैं कि क्या आपको सब कुछ पता है?
मैं उन्हें दो ही उत्तर दे सकता हूं। या तो कहूं, हां, सब कुछ पता है--
जो कि अज्ञानी का सिद्ध सूत्र है। या मैं उन्हें कहूं कि मुझे कुछ भी पता नहीं है--जो कि ज्ञानी अक्सर कहते रहे हैं। लेकिन मुझे उसमें भी घोषणा दिखाई पड़ती है।

यदि मैं कहूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है, तो भी मैं कुछ पता होने की घोषणा दे रहा हूं और बहुत सुनिश्चित घोषणा दे रहा हूं कि मुझे कुछ भी पता नहीं है, कम से कम इतना मुझे पता है। और कुछ भी मुझे पता नहीं है, यह बहुत एब्सोल्यूट बात है। जैसे कोई कहे, सब कुछ मुझे पता है। ऐसा ही कोई कहे, कुछ भी मुझे पता नहीं है, यह दूसरी सीमा पर पूर्ण घोषणा है।
क्या किया जाए? क्या उनको कहा जाए, मुझे कुछ-कुछ पता है और कुछ-कुछ पता नहीं है! अगर ऐसा कहा जाए, तो भी बड़ी लाजिकल फैलेसी हो जाती है। क्योंकि तब पूछा जा सकता है, कुछ-कुछ क्या पता है और कुछ-कुछ क्या पता नहीं है? और जिसका मुझे पता नहीं है, उसका भी इतना तो मुझे पता है ही कि मुझे पता नहीं है। उनको क्या उत्तर दिया जाए? और वे कहते हैं, हां या न में सीधा जवाब दें! शायद परमात्मा आपके सामने आने से इसीलिए डरता है कि आपके सवालों का जवाब उसके पास नहीं होगा।
जैसे-जैसे कोई लीन होता है परम सत्ता में, वैसे-वैसे कुछ भी पता नहीं
रह जाता, न ज्ञान का और न अज्ञान का।
यही मैं उन मित्र को कहा था, तो वे कहने लगे, लेकिन जब हम आपसे कुछ पूछते हैं और जब आपको कुछ भी पता नहीं--न ज्ञान का, न अज्ञान का--तो आप उत्तर कैसे देते हैं? क्योंकि हम सबको ख्याल है कि उत्तर बंधे-बंधाए पहले से ही मौजूद रहते होंगे। आपने पूछा, उसके पहले उत्तर रेडीमेड रहते होंगे, जैसे दुकान में पैकेट बंद रखे हुए हैं चीजों के। आप कहे कि मुझे फलां चीज चाहिए, दुकानदार ने पैकेट निकाला और आपको दे दिया। जिन्हें हम पंडित कहते हैं, उनके पास ऐसे ही रेडीमेड पैकेट तैयार होते हैं। आपने पूछा; उन्होंने दुकान से निकाला, आपको दे दिया।
लेकिन जो व्यक्ति जैसे-जैसे प्रभु में लीन होगा, वैसे-वैसे उसे कुछ भी पता नहीं होता और न कुछ भी न-पता होता है। आप पूछते हैं; उत्तर आता है, दिया नहीं जाता है। ऐसे ही जैसे कोई जाकर किसी निर्जन, वीरान-सी घाटी में जोर से आवाज करे और पर्वत उसकी आवाज को प्रतिध्वनित कर दे। ऐसे ही जैसे किसी दर्पण के सामने कोई जाकर खड़ा हो जाए और दर्पण उसकी आकृति को प्रतिछवित कर दे।
कृष्ण भी जो उत्तर दे रहे हैं अर्जुन को, वे कोई उत्तर नहीं हैं। उस अर्थ में उत्तर नहीं हैं, जैसे स्कूल के अध्यापक और बच्चों के बीच होते हैं; वैसी कोई बंधी रेडीमेड बात नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन पहली दफा अपने देश की राजधानी में गया हुआ था। पहली दफा रास्ते से गुजर रहा था। अचानक जोर से कारों के हार्न बजे, ब्रेक लगे, बसें रुक गईं, घबड़ाहट फैल गई, क्योंकि नसरुद्दीन अकड़कर बीच से चला जा रहा है, बीच रास्ते से। पुलिस वाले ने बहुत हाथ हिलाया रुकने के लिए, लेकिन वह नहीं रुका। पुलिस वाला पास आया और कहा कि महानुभाव, क्या आपको समझ में नहीं आता कि मैं हाथ हिला रहा हूं!
नसरुद्दीन ने कहा, मुझे समझ में नहीं आएगा! मैं तीस साल स्कूल में मास्टर रह चुका हूं। क्या पूछना है, पूछो? वह अपने स्कूल का अभ्यासी है। लड़के जब हाथ हिलाते हैं! बोला, क्या पूछना है, पूछो! सड़क पर भी पीछा नहीं छोड़ते पूछने वाले लोग! रेडीमेड है। उसे पक्का पता है कि जब कोई हाथ हिलाता है, तो उसका मतलब क्या होता है।
कृष्ण कोई ऐसे उत्तर नहीं दे रहे हैं। कृष्ण जैसे व्यक्ति उत्तर देते
ही नहीं। केवल प्रश्न को पी जाते हैं और उत्तर आता है। केवल प्रश्न को भीतर भेज देते हैं और परम शून्य से ध्वनि उठती है और लौट आती है।
सर्वज्ञ है वह, इस अर्थ में कि वही है, सो जानता ही है। जानता ही है-- क्या हुआ, क्या हो रहा है, क्या होगा। फिर भी इसका उसे कुछ भी पता नहीं है।
क्योंकि पता केवल अज्ञानी को होता है।
अनादि! जो कभी प्रारंभ नहीं हुआ, जिसका कभी कोई जन्म नहीं हुआ, जो कभी शुरू नहीं हुआ, जो बस है, सदा से है।
सबका नियंता। वह, सभी जिसके हाथ में है। सभी कुछ जिसके हाथ में है।
चांद-तारे जिसकी अंगुलियों पर हैं। सभी कुछ।

लेकिन नियंता शब्द से बड़ी भ्रांति हुई है। क्योंकि हम नियंता से एक
ही अर्थ ले सकते हैं, सुप्रीम कंट्रोलर, जो सभी के ऊपर नियंत्रण कर रहा है। भूल हो जाएगी। क्योंकि नियंत्रण जब भी किया जाता है, तो दूसरे पर किया जाता है। लेकिन यहां तो उसके सिवाय कोई दूसरा है ही नहीं। इसलिए नियंता का अर्थ कंट्रोलर नहीं है, नियंत्रण करने वाला नहीं है।
नियंता का अर्थ है, नियम, दि लॉ। वही है। उसके अलावा तो कोई भी नहीं है। वही है। किसको नियंत्रण करेगा? नियंत्रण उसे करना भी नहीं पड़ता। उसके जीवन की जो धारा है, जो नियम है, जिसे वेदों ने ऋत कहा, और जिसे लाओत्से ने ताओ कहा है, वही। वह अपने आप... । वही नियम है। उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है। इसलिए वह नियंता है। इसलिए नहीं कि वह हम सबकी गर्दन को पकड़े हुए चला रहा है कि चलो, तुम चोर बन जाओ। तुम बेईमान बन जाओ। तुम साधु बन जाओ। अब तुम्हारा काम खतम हुआ, चलो, लौटो वापस।
अगर ऐसा वह कर रहा हो, तो कभी का पागल हो गया होता। हम जैसे इतने पागलों का नियंत्रण करते-करते कोई भी पागल हो सकता है।
सुना है मैंने कि इजिप्त का एक सम्राट पागल हो गया था। कोई उपाय न देखकर चिकित्सकों ने कहा, एक ही उपाय है। वह शतरंज का बड़ा खिलाड़ी था, तो कहा कि किसी बड़े खिलाड़ी को बुला लो और वह शतरंज खेलने में लगा रहे, तो शायद ध्यान लग जाए शतरंज में, तो पागलपन छूट जाए।
सम्राट बड़ा खिलाड़ी था। तो बड़े से बड़े खिलाड़ी बुलाए गए। उसके साथ कोई खेलने को भी राजी नहीं होता था। पागल के साथ कौन खेलने को राजी हो! लेकिन बहुत पुरस्कार था, तो बड़ा खिलाड़ी जो था, वह राजी हो गया।
सालभर, कहते हैं, खेल चलता रहा। थक जाता सम्राट, सो जाता। उठता, फिर खेल शुरू हो जाता। सालभर बाद चिकित्सकों ने जो कहा था, वह सही निकला, सम्राट ठीक हो गया। लेकिन खिलाड़ी पागल हो गया। सालभर पागल के साथ खेलना पड़े शतरंज, तो आप समझते हैं क्या होगा!
इतने पागलों को अगर नियंत्रण कर रहा हो परमात्मा, तो कभी का पागल हो चुका होगा। और उसके इलाज का भी उपाय नहीं है फिर।
नहीं, नियंत्रण, कोई कांशस कंट्रोल नहीं है कि एक-एक आदमी को चला रहा
है पकड़-पकड़कर। नियंता का अर्थ है, वह नियम है। नियम का क्या अर्थ होता है, वह ख्याल ले लें।
आप रास्ते पर चल रहे हैं। आपने तिरछा पैर रख दिया, धड़ाम से जमीन पर गिरे और सिर टूट गया। वैज्ञानिक से पूछें, क्या हुआ? वह कहेगा, ग्रेविटेशन, जमीन की कशिश का फल है। इस जमीन ने तुमको पटका।
जमीन अगर ऐसा पटकती रहे, तो बड़ी कठिनाई होगी जमीन को भी। और कहां-कहां दौड़ना पड़े दिनभर, रातभर। कौन कहां गिर रहा है! तिरछा चल रहा है! नहीं। ग्रेविटेशन कोई आपको गिराने नहीं आता। ग्रेविटेशन मौजूद है; नियम है वह। जमीन की कशिश मौजूद है। आप तिरछा पैर रखते हैं, अपने आप गिर जाते हैं। जमीन को पता भी नहीं चलता कि उसने किसी को गिराया। वह नियम है।
पानी बहा जा रहा है सागर की तरफ। अब कोई परमात्मा एक-एक नदी को धकेल नहीं रहा है कि चलो, यह रहा रास्ता। चूक मत जाना। जगह-जगह संतरी नहीं खड़े किए हैं कि देखो, यह भटक न जाए। नियम है कि पानी नीचे की तरफ बहता है। बस। वह नियम खड़ा है। नदी सूख जाए, तब भी नियम उस सूखी रेत में पड़ा है। नदी बिल्कुल सूख गई है। पानी बिल्कुल नहीं है। तब परमात्मा को उठा लेना चाहिए वहां से अपना कैंप। हटो, उखाड़ो तंबू, अब यहां कोई जरूरत नहीं। लेकिन उस सूखी नदी की धार में भी नियम तैयार है। जब भी वर्षा होगी, पानी आएगा, नियम सक्रिय हो जाएगा। नदी नीचे की तरफ बहने लगेगी।
नियंता का अर्थ है, नियम। परमात्मा नियम है। और इसीलिए सर्वनियंता है। इसका जो स्मरण करे... ।
सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म!
आदमी की भाषा बड़ी कमजोर है। कृष्ण के पास भी वही कमजोर भाषा है, जो कमजोर से कमजोर आदमी के पास है। उनको भी कहना पड़ता है, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म। फिर भी कोई हल तो होता नहीं। और भी आगे कह सकते हैं, सूक्ष्म से

भी अति सूक्ष्म, अति सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, अति सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, तो भी कोई हल नहीं होता।
यह कृष्ण को ऐसा क्यों कहना पड़ता है, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म! इसीलिए कहना पड़ता है कि सूक्ष्म शब्द भी बहुत स्थूल है। हम किसी चीज को कहते हैं, बहुत सूक्ष्म, लेकिन फिर भी वह होती तो है ही। हम कहते हैं, बाल बहुत सूक्ष्म है, लेकिन बाल है तो ही। काफी मोटा है, अंगुली में पकड़ा जा सकता है; स्थूल है।
अगर अणु के बाबत हम पूछें, तो वैज्ञानिक कहते हैं, एक लाख अणुओं को हम
एक के ऊपर एक रखें, तो एक बाल की मोटाई के बराबर होते हैं। अति सूक्ष्म; लेकिन फिर भी होते तो हैं। और एक लाखवां हिस्सा हुआ, तो भी क्या फर्क पड़ता है। बाल का लाखवां हिस्सा हुआ, तो भी स्थूल तो है।
इसलिए कृष्ण को कहना पड़ता है, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म।
असल में उसे बताने के लिए हमारे पास कोई सूक्ष्म शब्द नहीं है। हमारे सूक्ष्म का भी अर्थ केवल मात्रा का भेद होता है। हाथी के सामने चींटी को रखकर हम कहते हैं, बहुत सूक्ष्म। बस। लेकिन चींटी के सामने और सूक्ष्म चीजें रखी जा सकती हैं और चींटी बड़ी हो जाएगी और चीजें छोटी हो जाएंगी। लेकिन जब हम भगवान को, परमात्मा को कहते हैं, सूक्ष्मतम, तो उसका अर्थ
यह है कि उससे ज्यादा सूक्ष्म फिर और कुछ भी नहीं है। दि अल्टिमेट, आखिरी, अंतिम, उसके नीचे और कुछ गिरने का उपाय नहीं। उसके नीचे और कोई जाने का उपाय नहीं है। दि एबिस, गहराई, आखिरी, अतल। जिसे हम स्थूल कहते हैं, उससे बिल्कुल भी पकड़ में न आने वाला।
लेकिन हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि कल्पना भी हम केवल स्थूल की कर सकते हैं। उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। उसकी सिर्फ प्रतीति हो सकती है। उसका सिर्फ एहसास हो सकता है। अनुभव कहीं थोड़ा-सा स्पर्श ले सकता है।
सूर्य के सदृश प्रकाश रूप।
कितनी कमजोर भाषा आदमी की है। सूर्य बेचारा क्या है! और सूर्य के सदृश बताकर हम क्या बता रहे हैं? जैसे कोई कहे कि हमारे घर में जो रात में हम चिमनी जलाते हैं, एक दीया जलाते हैं, उस दीए के सदृश। तो आप कहेंगे, तू पागल है। दीए के सदृश बता रहा है परमात्मा को! एक फूंक मार दें, तेरा दीया बुझ जाए!
लेकिन सूर्य हमें बहुत बड़ा मालूम पड़ता है। लेकिन ज्योतिषियों से पूछें। वे कहते हैं, हमारा सूर्य, जस्ट ए मीडियाकर स्टार, एक बहुत छोटा-सा तारा है, कुछ खास नहीं है। इससे हजार-हजार, दस-दस हजार, साठ-साठ हजार, लाख-लाख गुने बड़े सूर्य हैं। यह बेचारा क्या है! यह कुछ भी नहीं है। ऐसे बहुत बड़ा है। हमारी जमीन से तो कोई साठ हजार गुना बड़ा है। इसलिए बहुत बड़ा है। और हमारे दीए से तो बहुत ही बड़ा है। लेकिन कहीं कोई महासूर्य हैं, जिनके सामने यह हमारे दीए से भी छोटा है।
लेकिन फिर भी आदमी की भाषा कमजोर है। कृष्ण जैसे आदमी की भी भाषा कमजोर है। उसका कारण है कि भाषा ही कमजोर है, आदमी क्या करे। वह जो भी भाषा उपयोग करे, वह कमजोर है। सिर्फ एक इशारा कि सूर्य के सदृश प्रकाश रूप। नहीं, यह इशारा भी बिल्कुल ठीक नहीं पड़ता। लेकिन उपाय नहीं, कमजोर ही है। यह सूर्य भी बुझ जाएगा। यह ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है। इसका ईंधन चुका जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं, चार हजार साल और ज्यादा से ज्यादा। इस सूरज के बुझने की घड़ी करीब आ रही है। और चार हजार साल कोई बहुत लंबा वक्त नहीं है सूर्यों के हिसाब से, क्षणभर का है।
इस जमीन को बने कोई चार अरब वर्ष हो गए। यह सूरज इससे बहुत पुराना है।
यह जमीन बहुत नई है। वैज्ञानिक कहते हैं, अगर हम ऐसा समझें कि एक हजार पृष्ठ की कोई किताब हो, उसे हम सूरज की उम्र मान लें, तो जमीन की उम्र एक पृष्ठ के बराबर है। और अगर जमीन की उम्र को हम एक पृष्ठ मान लें, तो उस पृष्ठ पर जो फुल प्वाइंट रखा जाता है, उतनी उम्र आदमीयत की है। और आदमी की उम्र, मेरी या आपकी, इसका निशान नहीं बनाया जा सकता। इसका निशान कैसे बनाइएगा? फुल प्वाइंट, जो आप अपने बाल प्वाइंट पेन से लगा दें, उतनी उम्र

आदमीयत की है। एक पेज के बराबर जमीन की है। एक हजार पेज के बराबर इस सूरज की है।
जमीन को हुए चार अरब वर्ष हो गए और यह सूरज अब केवल चार हजार वर्ष और जीएगा। फिर क्या हिसाब! यह तो बुझ जाएगा। लेकिन उदाहरण के लिए कृष्ण कहते हैं कि सूर्य की तरह जो प्रकाशवान है। पर उसमें फर्क जोड़ लेंगे, जो अनादि है, पहले कह दिया है। उसका कभी अंत नहीं होगा, जो कभी चुकेगा नहीं, जो कभी समाप्त नहीं होगा।
लेकिन हां, प्रकाशवान है। स्वप्रकाशी है। स्वयं ही प्रकाशित है।
इसे थोड़ा ख्याल में ले लें।
जगत में दो तरह की चीजें हैं। दूसरों से प्रकाशित होने वाली; और स्वयं प्रकाशित होने वाली। हम एक दीया जलाते हैं एक कमरे में, तो कमरे की सारी चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। हम दीया बुझा देते हैं, कमरे की चीजें नहीं दिखाई पड़ती हैं। कमरे की चीजें दिखाई पड़ सकती हैं, अगर कोई दूसरा प्रकाश मौजूद हो। लेकिन क्या आपको दीया जलाकर भी उस दीए को देखने के लिए दूसरा दीया लाना पड़ता है? नहीं, दीया स्व-प्रकाशित है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात सोया है। सर्द रात है। बहुत सर्दी है। उठने
की हिम्मत उसकी पड़ती नहीं। लेकिन जल्दी नींद खुल गई है, तो अपने नौकर से कहता है कि महमूद, जरा बाहर देखकर आ कि सूरज निकला कि नहीं। महमूद भी कुड़मुड़ाया कि खुद की तो हिम्मत नहीं पड़ रही है बाहर जाने की और मुझे भेज रहा है बाहर! लेकिन मजबूरी थी। उठकर जरा-सा सरका। जरा दरवाजे से झांककर देखा। अंदर आकर कहा कि बहुत घनघोर अंधेरा है! नसरुद्दीन ने कहा, मूर्ख, अगर अंधेरा है, तो दीया ले जाकर क्यों नहीं देख लेता, सूरज निकला या नहीं! सूरज देखने के लिए अगर दीया ले जाकर देखना पड़े, तो फैसला है। दीया स्वयं प्रकाशित है। लेकिन फिर भी दीए में ईंधन की जरूरत पड़ती है, तेल की जरूरत पड़ती है। दीया इंडिपेनडेंट नहीं है, स्वतंत्र नहीं है; परतंत्र है। परमात्मा ऐसा प्रकाश है, जो स्वयं प्रकाशित है, स्वतंत्र है, किसी चीज
पर निर्भर नहीं है; प्रकाश रूप है।
अविद्या से अति परे, अज्ञान से अति दूर, शुद्ध सच्चिदानंद परमात्मा
को जो स्मरण करता है, वह उसी को उपलब्ध हो जाता है।
अविद्या से अति परे! आखिरी बात।
अज्ञान में गिरा जा सकता है। अज्ञान से उठा जा सकता है। अविद्या से अति परे का अर्थ है कि जो अज्ञान में गिरने में असमर्थ है, जो गिर ही नहीं सकता। अज्ञान में जो गिर ही नहीं सकता, तो ही अविद्या से परे है। हम तो अज्ञान में गिरते हैं। थोड़ी जटिल समस्या है। क्योंकि सभी के भीतर परमात्मा है, फिर भी हम अज्ञान में गिरते हैं! और परमात्मा अविद्या के परे है, जो अज्ञान में गिर ही नहीं सकता, फिर हम कैसे गिरते हैं?
फिर उलझन बड़ी है। और शंकर से लेकर सारे तत्वज्ञ भारत के बड़ी पीड़ा में रहे कि कैसे सुलझाएं! बड़ी अड़चन की बात है। एक तरफ कहते हैं, सभी के भीतर परमात्मा है। स्वीकार! फिर दूसरी तरफ कहते हैं, वह अविद्या से अति परे। वह अविद्या से पार है। वह कभी अज्ञान में गिर नहीं सकता। और हम सब अज्ञान में गिर रहे हैं! और हम सबके भीतर परमात्मा है। इस पहेली का क्या हो?
यह पहेली हमारी बनाई हुई है; है नहीं। हममें से भी कोई भी कभी अज्ञान में गिरता नहीं। वस्तुतः गिरता नहीं। सिर्फ ख्याल है, सिर्फ ख्याल। सिर्फ हमारी धारणा है। इसलिए जब कोई ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो अज्ञान नहीं मिटता, सिर्फ अज्ञानी होने की धारणा मिटती है।
अज्ञान धारणा है ही। लेकिन धारणा की क्षमता है। प्रत्येक के पास यह क्षमता है कि वह अपने को धोखा दे ले। अपने को धोखा देने की क्षमता है। हम अपने को धोखा दे सकते हैं। हम कह सकते हैं, मैं अज्ञानी हूं। मानता रहूं, अज्ञानी हूं। तो यह मान्यता इतनी बड़ी शक्ति है मेरे भीतर कि मैं इस मान्यता को भी सही कर लूंगा। जो इम्पासिबल है, जो असंभव है, वह भी संभव होता हुआ मालूम पड़ता है। विराट शक्ति छिपी है भीतर। अगर मैं मान लूं कि मैं अज्ञानी हूं, तो मैं अज्ञानी हो जाऊंगा।

अगर मैं मान लूं कि मैं अंधा हूं, पूरी सामर्थ्य से, तो आंखें इसी वक्त रोशनी खो दें। अगर मैं मान लूं कि मैं लंगड़ा हो गया, तो इसी वक्त मेरा पैर लंगड़ा हो जाएगा। मानना! और विराट शक्ति है भीतर, और मानने के लिए चेतना स्वतंत्र है।
यह हमारी मान्यता है कि हम अज्ञानी हैं। बड़ा मजेदार है! इधर अज्ञानी
की मान्यता कर लेते हैं, फिर ज्ञान की तलाश में निकलते हैं। फिर ज्ञान इकट्ठा करते हैं। फिर ज्ञान इकट्ठा करके अज्ञानी के ऊपर एक नई मान्यता बिठाते हैं, कि नहीं, मैं ज्ञानी हूं। भटकाव लंबा हो जाता है। पर्त दर पर्त पागलपन हो जाता है।
वस्तुतः ज्ञानी, मैं ज्ञानी हूं, इसकी खोज में नहीं जाता। इसी खोज में जाता है कि यह मेरी मान्यता जो है, वस्तुतः है? मैं अज्ञानी हूं? और जैसे- जैसे भीतर खोजता है, मान्यता उखड़ जाती है। और एक क्षण वह पाता है कि मैं न ज्ञानी, न अज्ञानी; अविद्या से परे हूं।
दोनों, ज्ञानी और अज्ञानी, अविद्या के भीतर पड़े होते हैं। इसलिए उपनिषदों ने कहा है कि ज्ञानी भी भटक जाते हैं। अज्ञानी तो भटकते ही हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं।
अविद्या से परे--न ज्ञान, न अज्ञान--वैसा हमारा स्वभाव है। इस स्वभाव
की जो परम अभिव्यक्ति है, वह परमात्मा है। और जिस दिन हमारे भीतर, किसी के भी भीतर वह अभिव्यक्ति हो जाती है, तो वह भी परम परमात्मा हो जाता है। कहीं भी वह अभिव्यक्ति हो जाए, वही। और जहां नहीं है अभिव्यक्ति, वहां भी परमात्मा मौजूद है, सिर्फ आपकी भ्रांत धारणा में दबा हुआ है।
कोई आदमी अपने को मान ले कुछ, फिर वही धारणा उसे घेरती चली जाती है। यह आटो-हिप्नोसिस है। हमारी जो स्थिति है, यह आत्म-सम्मोहन है। इस आत्म-सम्मोहन को तोड़ना हो, तो प्रभु का सतत स्मरण मंत्र है।
आज इतना ही।
लेकिन कोई उठेगा नहीं, और जाएगा नहीं। पांच-सात मिनट प्रभु का स्मरण
हम यहां करेंगे।
लेकिन दो बातें आपसे कह दूं। उठें नहीं। क्योंकि एक जन भी उठता है, तो पीछे के लोगों को उठना पड़ता है। और यहां कल कीर्तन में आपमें से कुछ लोग उठकर आगे आ गए। तो फिर दूसरे लोगों को उठना पड़ता है। बैठे रहें जहां हैं। वहीं से ताली बजाएं। वहीं से कीर्तन में साथ दें। गाएं। आनंदित हों। सात मिनट, इसे प्रसाद समझें और लेकर ही जाएं। उठेगा कोई भी नहीं। और बीच में कोई आगे नहीं आए।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
चौथा प्रवचन

भाव और भक्ति

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव। भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। 10।।
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।। 11।।
वह भक्तियुक्त पुरुष अंतकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।
और हे अर्जुन, वेद के जानने वाले जिस परम पद को
(अक्षर) ओंकार नाम से कहते हैं और आसक्तिरहित यत्नशील महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं, तथा जिस परमपद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस परमपद को तेरे लिए संक्षेप में कहूंगा।

अंतिम क्षण समस्त जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षण है। क्योंकि वही आगे की जीवन की यात्रा का बीज है। अंतिम क्षण में हम अपने जीवन का सब कुछ सिकोड़ कर पुनः इकट्ठा कर लेते हैं, नई यात्रा के लिए। अंतिम क्षण में वह सब संगृहीत हो जाता है, जिसके सहारे आगे की यात्रा होती है।
ठीक से समझें, तो जब कोई जन्म लेता है, तो जन्म का क्षण प्रारंभ नहीं है। क्योंकि जन्म में तो वही बीज अंकुरित होता है, जो पिछली मृत्यु में संगृहीत हुआ था। ठीक प्रारंभ का क्षण मृत्यु का क्षण है। उस समय बीज बनता है। फिर वृक्ष तो जन्म से शुरू होता है, अंकुरित होता है और यात्रा पर जाता है।
जो नहीं जानते, वे जन्म को प्रारंभ कहते हैं। जो जानते हैं, वे मृत्यु
को ही प्रारंभ कहते हैं। एक अर्थ में मृत्यु दोनों है। पिछले जन्म का अंत है और नए जन्म का प्रारंभ है। शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षण है। क्योंकि इसी समय अगर हम छलांग ले सकें; संसार की तीव्रता से घूमती हुई जो विक्षिप्त दशा है, जो वर्तुल है पागल; अगर मृत्यु के क्षण में हम छलांग ले सकें उसके बाहर, तो उससे ज्यादा सरलता से छलांग और कभी नहीं ली जा सकती। क्योंकि मृत्यु के क्षण में शरीर छूटता है। अगर आप शरीर के छूटने के साक्षी बन सकें, मोही नहीं, तो आप उस अशरीरी का अनुभव कर सकते हैं, जिसे शरीर में रहते हुए अनुभव करना कठिन मालूम पड़ता है।
नया जन्म प्रारंभ नहीं हुआ; पुराना समाप्त हो रहा है। बीच की उस संधिकाल घड़ी में यदि प्रभु का स्मरण हो, तो चेतना की यात्रा संसार को छोड़कर ब्रह्म की ओर शुरू हो जाती है।
इसलिए कृष्ण यहां अर्जुन को उस अंतिम क्षण में क्या किया जा सकता है
और उस अंतिम क्षण में स्मरण करता हुआ पुरुष कैसी यात्रा पर निकल जाता है, उसकी बात कह रहे हैं।
कृष्ण कहते हैं, वह भक्तियुक्त पुरुष अंतकाल में भी योगबल से भृकुटी
के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप को ही प्राप्त होता है।
इसमें बहुत-सी बातें समझने जैसी हैं।
भक्तियुक्त पुरुष! भक्ति क्या है और भक्तियुक्तता क्या है? मनुष्य की चेतना में विचार की एक क्षमता है। एक और क्षमता है, भाव की। विचार उपकरण है संसार में गति का; भाव उपकरण है संसार के पार गति का।

मनुष्य की चेतना की दो क्षमताएं हैं। एक, विचार की। विचार की क्षमता संसार के लिए उपयोगी है। संसार में विचार के बिना एक कदम भी चलना असंभव है। लेकिन ठीक ऐसे ही एक और क्षमता है, भाव की। उस भाव की क्षमता के बिना एक कदम भी परमात्मा की तरफ चलना मुश्किल है।
लेकिन एक बड़ी भूल हो जाती है। चूंकि संसार में हम विचार के सहारे चलते हैं, जीवन का अनुभव अनेक जीवन का अनुभव, विचार का ही अनुभव होता है। और हमारा यह भी अनुभव होता है कि जितना हम विचार करते हैं, उतनी ही सफलता मिलती है संसार में। अनंत-अनंत जीवन का निचोड़ यह बन जाता है कि बिना विचार किए कोई सफलता ही नहीं है। और बिना विचार किए भटक जाने का डर है। तो फिर हम परमात्मा की तरफ भी अगर कभी चलते हैं, तो उसी विचार के उपकरण को लेकर चलते हैं--भटक न जाएं इसलिए, असफल न हो जाएं इसलिए।
और जिसे हम समझते हैं, सफलता का साधन, वही असफलता का कारण बन जाता है।
और जिसे हम समझते हैं कि भटकाव से बच जाएंगे, वही भटकाव है। क्योंकि जो उपकरण संसार में काम करता है, वह परमात्मा की तरफ काम नहीं करता है। जैसे कोई व्यक्ति कान से देखने की कोशिश करने लगे और आंख से सुनने की कोशिश करने लगे और मुश्किल में पड़ जाए, वैसा ही वह व्यक्ति भी मुश्किल में पड़ जाता है, जो भाव से संसार में चलने लगे, विचार से परमात्मा में चलने लगे। लेकिन भाव से संसार में चलने की भूल कोई भी नहीं करता है। और अगर कोई करता भी है, तो एक दो कदम पर ही समझ जाता है कि भूल हो गई, कदम वापस लौटा लेता है। लेकिन परमात्मा की तरफ चलने में विचार के सहारे चलने की भूल सौ में निन्यानबे लोग करते हैं। और कदम भी नहीं लौटाते। क्योंकि इतनी गहरी यह धारणा है हमारी कि बिना विचार के तो एक कदम भी ठीक चला नहीं जा सकता, गलती हो ही जाएगी। यह सच है, लेकिन आयाम, डायमेंशन संसार का और है और परमात्मा का और है। इन दोनों के आयाम को ठीक से समझ लें, तो भक्तियुक्त पुरुष समझ में आ जाएगा कि क्या है।
विचार है तर्क की प्रतिक्रिया। विचार है चिंतना का मार्ग। विचार है विश्लेषण की विधि। यदि किसी चीज को नियम में लाना हो, तो विचार और तर्क जरूरी है। बिना तर्क के कोई नियम निर्धारित नहीं होता। यदि किसी विचार को प्रबल बनाना हो, तो चिंतन, निरंतर चिंतन के द्वारा ही वह प्रबल होता है। यदि गलत विचार को अलग करना हो, तो तर्क के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। अगर ठीक विचार की खोज करनी हो, तो तर्क की ही छैनी से काट-काटकर ठीक विचार को बचाया जा सकता है, खोजा जा सकता है। यदि किसी चीज को तोड़कर उसका निरीक्षण करना हो, तो विश्लेषण के सिवाय कोई उपाय नहीं। तोड़ो, जांचो, परखो।
और इसीलिए विचार विज्ञान का जन्मदाता बन जाता है। और इसीलिए विचार जीवन के व्यवसाय का वाहन है। और इसीलिए विचार अंतर्यात्रा का मार्ग नहीं है। क्यों? क्योंकि भीतर के उस जगत में, उस परमात्मा की खोज में जो जा रहा है, वह किसी वस्तु का विश्लेषण करके नहीं जा सकेगा। क्योंकि विश्लेषण करते से ही चीजें मर जाती हैं।
यदि हम एक व्यक्ति की जांच भी करते हैं शरीर की, तो अभी-अभी विज्ञान को
भी अनुभव होना शुरू हुआ है कि हम भूल कर रहे हैं। एक चिकित्सक है। अगर मेरा शरीर बीमार है, तो वह मेरे खून की जांच करता है शरीर से खून को निकालकर। लेकिन शरीर से निकलते ही खून डेड हो गया, मुर्दा हो गया। मेरे शरीर के भीतर उसकी जो आर्गेनिक, जीवंत स्थिति थी, वह शरीर के बाहर निकलते ही नहीं रह गई। मेरी आंख है; मेरे शरीर के भीतर जीवंत आंख की जो स्थिति है, आंख को बाहर आपने निकाल लिया, तो आपको धोखा भला हो कि यह वही आंख है। यह वही आंख नहीं है, क्योंकि अब यह देख नहीं सकती। और जो देख नहीं सकती, उसको आंख कौन कहेगा? सिर्फ दिखाई पड़ती है कि आंख है। अब यह एक मुर्दा चीज है। अब इस मुर्दा चीज की जांच होगी और हम जांच करना चाहते थे जीवंत की; भूल हो जाएगी। हम जो भी विश्लेषण करके जांच पाते हैं, वह हमेशा मुर्दा होता है। इसलिए चिकित्सक आत्मा को कभी भी नहीं खोज पाता। आत्मा को खोजने का कोई डायग्नोसिस का रास्ता भी नहीं है, कोई निदान भी नहीं है। तो चिकित्सक जितनी ही खोज करता है, उतनी ही मुर्दा चीजें भीतर पाता है। आखिर में वह

पाता है कि आदमी सिवाय पदार्थ के जोड़ के और कुछ भी नहीं है। आत्मा चूक जाती है।
विश्लेषण के द्वारा, काटने के द्वारा, खंडन के द्वारा, हम केवल मुर्दा, मृत पदार्थ को ही जान सकते हैं। इसीलिए विज्ञान पदार्थ से संबंधित दिशाओं में बहुत सफल हुआ है, लेकिन चेतना से संबंधित दिशाओं में बिल्कुल भी सफल नहीं हुआ है। असल में चेतना का कोई विज्ञान नहीं बन सका है अब तक। शायद बन भी नहीं सकेगा। क्योंकि विचार उसका मार्ग नहीं है। अगर जीवन को जानना है, जीवंत, तो भाव उसका मार्ग है।
विचार तोड़ता है, तब जांचता है। भाव जोड़ता है, तब जांचता है। विचार पहले चीजों को तोड़ता है, फिर उनके भीतर प्रवेश करता है। भाव पहले किसी से जुड़ जाता है और फिर भीतर प्रवेश करता है। एक तो फिजियोलाजिस्ट की, शरीरशास्त्री की जानकारी है कि वह आपके शरीर को काट-काटकर बता देगा कि भीतर क्या है, क्या नहीं है। एक प्रेमी की भी जानकारी है, वह भी जिसे प्रेम करता है, तो वह भी उसके संबंध में बहुत कुछ जान लेता है। लेकिन वह जानना प्रेमी को काटकर नहीं होता, प्रेमी से जुड़कर होता है।
भाव प्रेम का ही मार्ग है। वहां हम, परमात्मा है या नहीं, इसे तर्क से जानने नहीं जाते, इसे भाव से जुड़कर जानने की चेष्टा करते हैं।
निश्चित ही, तोड़ने की जो विधि है, वह जोड़ने की विधि नहीं बन सकती। इसलिए विचार प्रभु की तरफ ले ही नहीं जाता। और इसलिए दुनिया जितनी तथाकथित रूप से विचारवान होती जाती है, उतनी परमात्मा से वंचित होती चली जाती है।
इधर पांच हजार वर्षों में हमने आदमी को विचार करने में बड़ा कुशल बना लिया है, लेकिन भाव करने की कुशलता बिल्कुल खो गई है। मंदिर-मस्जिद सब मुर्दा हैं आज। पूजा-प्रार्थना सब सड़ गई है। कारण है। क्योंकि भाव की जिस क्षमता से मंदिर जीवित होता था, और भाव की जिस धारा से मस्जिद प्राणवान थी, और भाव के जिस प्रवाह से प्रार्थना में गति आती थी, खून बहता था, और भाव के जिस स्पंदन से पूजा के हृदय की धड़कन धड़कती थी, वह भाव ही खो गया है। और भाव का कोई प्रशिक्षण नहीं है।
भाव के प्रशिक्षण का नाम ही भक्ति की साधना है। और भाव में जो प्रशिक्षित हो गया, वही भक्त है। जिसने विचार को छोड़ा और भाव को जीया। और जिसने कहा, हम सोचेंगे नहीं, भावेंगे। हम प्रश्न न पूछेंगे, हम प्रेम करेंगे। हम काटेंगे नहीं, हम जुड़ जाएंगे और जानना चाहेंगे कि क्या है।
एक फूल को तोड़कर भी देखा जा सकता है--विज्ञान वैसे ही देखता है, विचार वैसे ही देखता है--फूल को तोड़कर देखा जा सकता है। तोड़ लें फूल को, तो पता चल जाता है, किन केमिकल्स से, किन रासायनिक तत्वों से मिलकर फूल बना है। कितना खनिज है उसमें; कितनी मिट्टी है; कितना पानी है; कितनी सूरज की किरण है। सब बांट-छांटकर आपको पता चल जाता है। लेकिन जब तक आप छांटकर, बांटकर पता लगाने तक पहुंचते हैं, तब तक आप एक बात भूल गए, फूल कभी का खो चुका है। फूल वहां नहीं है। और फूल का जो सौंदर्य का अनुभव था, वह इस कटे-छंटे, एनालाइज्ड फूल के टुकड़ों से मिलने वाला नहीं है।
अगर आप अब इस फूल की अलग-अलग टेस्ट-ट्यूब में, परखनलियों में रखी हुई रासायनिक लाश को किसी कवि को दिखाएं और कहें कि अब कविता करो फूल की, क्योंकि तुम जिस फूल को देखते थे, उससे बहुत ज्यादा जानकारी अब इस परखनली में कैद है! कोई कविता पैदा न होगी। क्योंकि वहां कोई फूल ही नहीं है। अब कहें किसी सौंदर्य के प्रेमी को कि गाओ गीत। नाचो इस फूल के आस-पास। क्योंकि तुम जिस फूल के पास नाच रहे थे, वह निपट अज्ञान से घिरा था। तुम्हें कुछ पता ही नहीं था। अब फूल के बाबत सब कुछ पता है। अब तुम ज्यादा अच्छा गीत गा सकोगे!
यह नहीं होगा; गीत का जन्म नहीं होगा। क्योंकि फूल को जानने का जो ढंग है--फूल को, फूल की विषय-वस्तु को नहीं; फूल की देह को नहीं, फूल के प्राण को जानने का जो मार्ग है। फूल की देह को जानने का तो यही मार्ग है, क्योंकि देह मृत है। लेकिन फूल के प्राणवान, वह जो फूल के भीतर लपट है भागती हुई जीवन की, वह जो फूल के भीतर सौंदर्य का खिलाव है, वह जो इस फूल में परमात्मा

झलका है, अगर उसे जानना है, तो फूल के पास बैठकर अति प्रेम से डूबे हुए, अति प्रेम में लीन, किसी भाव-लोक में प्रवेश करना होता है।
और यह बड़े मजे की बात है। जब आप विचार से किसी चीज को सोचते हैं, तो जिसे आप सोचते हैं, वह नष्ट हो जाता है, आप बचे रहते हैं। और जब भाव से आप किसी चीज को जोड़ते हैं, तो फूल तो बच जाता है, थोड़ी देर में आप खो जाते हैं। विचार से जब किसी चीज की तरफ जाते हैं, तो विचार आक्रामक है, एग्रेसिव है, हिंसात्मक है, वह तोड़-फोड़कर रख देता है। आप तो बच जाते हैं, चीज टूट-फूट जाती है। वैज्ञानिक के आस-पास इसी तरह टूटी-फूटी मुर्दा चीजों का फैलाव है, कबाड़खाना है। सब मरा हुआ है उसके आस-पास; सिर्फ वैज्ञानिक जिंदा है। वह भर बैठा है बीच में, बाकी सब कबाड़खाना है उसके आस-पास मुर्दा चीजों का।
एक कवि भी होता है कहीं किसी फूल के पास बैठा हुआ, एक प्रेमी भी होता
है कहीं। तब एक दूसरी घटना घटती है। उसके पास चांद-तारे होते हैं--बहुत मुखर, बहुत जीवित--लेकिन कवि खो गया होता है। वह नहीं होता वहां। रवींद्रनाथ से कोई पूछता था कि इतने अच्छे गीत तुमने लिखे! रवींद्रनाथ, तुम कभी असफल भी हुए हो? तो रवींद्रनाथ ने कहा, जब-जब मैं रहा, तभी-तभी असफल हुआ। जब-जब मैं मिटा, तभी-तभी सफलता थी। अगर गीत लिखते वक्त मैं मिट गया, तो सफल हुआ; और अगर गीत लिखते वक्त मैं बना रहा, तो कभी सफल नहीं हुआ।
अब अगर वैज्ञानिक, विचार करने वाला अगर मिट जाए, टूट जाए, खो जाए, न रह जाए... । कभी-कभी कोई वैज्ञानिक भी प्रयोगशाला में खो जाता है। जब वह खो जाता है, तब वह वैज्ञानिक नहीं है, तब वह कवि हो जाता है। और अक्सर वैज्ञानिक भी कवि होकर ऐसे गहरे हीरे खोज लाता है, जो वैज्ञानिक होकर उसने कभी भी नहीं खोजे। और कभी-कभी कवि भी नहीं खोता, फूल ही खो जाता है, तब वह कवि नहीं होता, तब वह वैज्ञानिक ही हो जाता है। तब फूल के संबंध में वह जो भी खोजकर लाता है, वह काव्य नहीं होता, मुर्दा तुकबंदी होती है।
यह जो भाव है हमारे भीतर, इस भाव को परमात्मा की ओर प्रवाहित करने का नाम भक्ति है।
लेकिन हम परमात्मा के पास भी विचार को लेकर पहुंच जाते हैं। हम अपना पूरा तर्कशास्त्र साथ लेकर पहुंच जाते हैं। हम अपनी सब पोथी विचार की साथ ही ढोते हैं। और हमें मौका मिले, तो हम परमात्मा को भी चीर-फाड़ करके, शल्यक्रिया करके, सर्जरी करके, ठीक से उसकी जांच करके, बच्चों के पढ़ने के लिए स्कूल की किताब में लिखना पसंद करें।
लेकिन इस विचार को ढोने वाले आदमी को उससे कभी मिलना नहीं हो पाता, इसलिए उसकी शल्यक्रिया नहीं कर पाते। नहीं तो बहुत लोग परमात्मा का पोस्टमार्टम करने को इतने उत्सुक हैं! मिल भर जाए कहीं उसकी लाश, तो वे पोस्टमार्टम कर लें! परमात्मा में उनकी उत्सुकता नहीं है; उनकी उत्सुकता अपने विचार और अपने सिद्धांतों में है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव में बुजुर्ग आदमी था, तो कभी-कभी लोग उससे दवा भी पूछ ले जाते थे। गांव का बुजुर्ग था, कुछ दवाएं जानता था।
एक संदेहशील आदमी उसके पास आया और उसने कहा कि मुल्ला, दवा तो तुम्हारी लेता हूं, लेकिन अब चिकित्सकों का कोई भरोसा नहीं रहा। मेरा एक मित्र था, चिकित्सक उसका निमोनिया का इलाज करता रहा और आखिर में जब वह मरा, तो पोस्टमार्टम में पता चला कि वह टी.बी. का बीमार था!
मुल्ला ने कहा, बेफिक्र रहो, जब मैं निमोनिया का इलाज करता हूं, तो आदमी हमेशा निमोनिया से ही मरता है! और अब तक हर पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में मैं सही सिद्ध हुआ हूं। तुम बेफिक्र रहो। अगर मेरी दवाई से मरोगे, तो निमोनिया से ही मरोगे। ऐसा कभी नहीं होता है कि कोई दूसरी बीमारी से मर जाता हो।
विचारवादी उत्सुक है अपने विचार में। वह कहता है कि अगर मैंने कहा कि निमोनिया है, तो निमोनिया से ही मरोगे। और अगर नहीं मानते, तो पोस्टमार्टम की रिपोर्ट सिद्ध करेगी कि निमोनिया से ही मरे। न तुमसे उसे प्रयोजन है-- विचार को अपने अहंकार से प्रयोजन है। इसलिए विचार के आस-पास जो लोग घूमते

रहते हैं, वे अहंकार के आस-पास घूमते रहते हैं। और अहंकार से परमात्मा का क्या लेना-देना है!
ध्यान रहे, भाव की दशा में अहंकार नहीं बचता। भाव का कोई अहंकार नहीं है। क्यों? क्योंकि अहंकार पैदा होता है दूसरों के संसर्ग में। इसलिए जब आदमी अपने से बाहर जाता है, तो अहंकार पैदा होता है। क्योंकि जहां तू है, वहां मैं के पैदा होने की जरूरत पड़ जाती है। लेकिन जब आदमी अपने भीतर जाता है, वहां कोई तू है ही नहीं, तो वहां मैं को पैदा होने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। मैं अकेला नहीं जी सकता; उसके लिए तू का छोर चाहिए।
भाव अंतर्प्रवेश है, जैसे गंगा गंगोत्री की तरफ लौटने लगे वापस। भाव
जो है, गोइंग बैक, वापस लौटना है। विचार जो है, दौड़ना है बाहर की ओर। इसलिए विचार चांद पर ले जाएगा, मंगल पर ले जाएगा, महासूर्यों पर ले जाएगा। बस, एक जगह नहीं ले जाएगा--आदमी के भीतर। विचार कहेगा, चलो और दूर, और दूर। जितनी दूर की यात्रा होगी, उतना विचार प्रसन्न होगा। सिर्फ एक यात्रा पर विचार इनकार कर देगा, भीतर की यात्रा पर। वह कहेगा, क्या बेकार के काम में लगे हो? भीतर जाने की जरूरत क्या है? और भीतर कहीं कुछ है कि जा सकोगे? चांद पर चलो, आकर्षण तीव्र है। भीतर क्या रखा है?
और अगर कभी विचार थक भी गया बाहर से और भीतर जाने की कोशिश की, तो भी वह भीतर नहीं जा पाता। फिर भी वह बाहर-बाहर ही घूमता है। विचार भीतर जा ही नहीं सकता। वह है ही बाहर के लिए। वह आयाम ही उसका बाहर है।
भाव भीतर जाता है। लेकिन भाव का हमें कोई ख्याल नहीं है। कोई भी ख्याल नहीं है। आमतौर से जिसे हम भाव कहते हैं, वह भी भाव नहीं है।
एक मां अपने बेटे को प्रेम करती है। निश्चित ही, हम कहेंगे, यह विचार नहीं, भाव है। लेकिन उस मां को आज ही पता चल जाए कि यह बेटा उसका नहीं है। जब वह प्रसव-पीड़ा में पड़ी थी, तब अस्पताल में किसी ने उसका बेटा बदल लिया। बीस साल से वह प्रेम करती थी। यह आज पता चला, डाक्युमेंट हाथ में आ गए, सारे प्रमाणपत्र मिल गए कि बेटा उसका नहीं, किसी और का है। क्या आप सोचते हैं, प्रेम ठीक वैसी ही धारा में बहता रहेगा, जैसा बह रहा था एक क्षण पहले तक? नहीं; धारा अवरुद्ध हो जाएगी, सब बिखर जाएगा। तो यह बेटे से भाव का संबंध था या यह भी विचार का ही संबंध था? चूंकि यह मेरा बेटा है। मेरा बेटा है, तो संबंध था; और मेरा नहीं है, तो संबंध एकदम शिथिल होगा और खो जाएगा। भाव मेरा-तेरा नहीं जानता। सिर्फ विचार ही मेरा और तेरा जानता है। इसलिए जिस मां ने मां होने का आनंद नहीं लिया और सिर्फ मेरे बेटे को प्रेम किया, अभी उसके भाव का जन्म नहीं हुआ है। यह भी विचार है।
भाव मेरा-तेरा जानता ही नहीं, भाव सिर्फ प्रेम जानता है। वह मेरा हो
तो भी, और तेरा हो तो भी। और भाव जब गहन होता है, तो कोई भी मौजूद न हो, तब उस निर्जन में भी भाव की धारा प्रेम की वर्षा करती रहती है।
बुद्ध जैसा व्यक्ति जब कहीं बैठता है, या कृष्ण जैसा व्यक्ति जब कहीं खड़ा होता है, कोई भी न हो वहां, तो भी प्रेम की किरणें वैसी ही फैलती रहती हैं, जैसे एकांत में जलते हुए दीए से प्रकाश झरता रहता है। वह किसी के लिए निवेदित नहीं है, वह किसी के लिए एड्रेस्ड नहीं है। वह सिर्फ भाव है। और उस भाव में रमने में परम आनंद है।
जिस दिन भाव अनएड्रेस्ड होता है, उसी दिन परमात्मा के लिए एड्रेस्ड
हो जाता है। जिस दिन भाव बिना किसी पते के घूमने लगता है, भीतर से बहने लगता है, उसी दिन वह परमात्मा के चरणों पर पहुंचना शुरू हो जाता है। लेकिन यह भाव अंतर्गमन है, अपने पर वापस लौटना है।
तो जिसे भी भाव की तरफ चलना हो, उसे पहली शर्त तो यह है कि वह विचार से सावधान हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह विचार छोड़ दे। इसका इतना अर्थ है कि वह विचार बाहर के लिए करे और भीतर के संबंध में विचार को बाधा न देने दे। वैसे विचार की आदत इंटरफिअर करने की है हर चीज में। और अगर आप विचार से कहेंगे कि मत डालो बाधा, तो विचार ही आपसे कहेगा कि तुम्हीं उलटे मेरे काम में बाधा डाल रहे हो।
मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है अपने घर में। चिट्ठी डालने वाला दरवाजे के नीचे से चिट्ठी डाल गया है। पत्नी उठी। मुल्ला उठ ही रहा था कि पत्नी उठ

गई। उसने चिट्ठी उठाई। पता पढ़ा। मुल्ला ने पूछा, किसकी है? उसने कहा, मेरे मायके से है। किसके नाम है? तो पत्नी ने कहा, मेरे नाम है। पत्नी ने चिट्ठी खोली, पढ़ने लगी। मुल्ला ने पूछा, क्या लिखा है? पत्नी ने कहा, चिट्ठी मेरे नाम है, मेरे मायके से है, आप इतनी उत्सुकता क्यों ले रहे हैं? मुल्ला ने कहा, फिर वही नासमझी! हजार दफे कहा कि मेरे काम में बाधा मत डाला कर। चिट्ठी उसकी है, उसके मायके से है। वह पढ़ रही है। बाधा मुल्ला डाल रहा है। लेकिन वह कहता है, फिर वही नासमझी! मेरे काम में बाधा मत डाला कर। विचार पूरे समय भाव के लिए बाधा डालता है। और अगर आपने विचार से कहा
कि बाधा मत डालो, तो विचार कहेगा, मेरे काम में आप बाधा डाल रहे हैं। और विचार से आप इतने आब्सेस्ड हैं, विचार से ऐसे रुग्ण हैं कि आप यह भूल ही गए हैं कि आप विचार से अलग हैं। यही सबसे बड़ी कठिनाई है।
आप जब भी विचार करते हैं, समझते हैं, मैं कर रहा हूं। और जब भी भाव आता
है, तो आप समझते हैं, कोई विजातीय चीज भीतर आ रही है। हमारी आइडेंटिटी विचार से जुड़ गई है, हमारा तादात्म्य। तो आदमी जब विचार करता है, तो कहता है, मैं विचार कर रहा हूं। जब भाव करता है, तो समझता है कि कोई फारेन, कोई विजातीय चीज भीतर बाधा डाल रही है। भाव से हमारा कोई तादात्म्य नहीं है, जब कि भाव ही हमारी जड़ है, वही हमारा आधार है।
तो पहला काम तो भक्ति-युक्त चित्त की तरफ यह है कि हम विचार को भीतर के मार्ग पर बाधा देने के लिए पाबंदी कर दें। कह दें कि नहीं, तेरा वहां कोई काम नहीं है।
कठिनाई पड़ेगी। लेकिन कठिनाई ज्यादा नहीं पड़ेगी, अगर संकल्प है। और बहुत शीघ्र एक डिमार्केशन, एक सीमा-विभाजन हो जाएगा--विचार बाहर के लिए, भाव भीतर के लिए। जो व्यक्ति ऐसा अपने भीतर स्पष्ट रेखा नहीं खींच पाता, वह विचार के द्वारा सदा ही अपने भाव के जगत को नष्ट करने में लगा रहता है। जरा प्रेम उठेगा और विचार कहेगा, यह क्या गलती में पड़ रहे हो! इल्लाजिकल, तर्कहीन बातों में जा रहे हो! ध्यान करने गए। विचार कहेगा, यह क्या कर रहे हो? कीर्तन करने लगे। विचार कहेगा, यह क्या कर रहे हो? पागल हो रहे हो, मूढ़ हुए जा रहे हो? भाव ने कहा, कूद पड़ो संन्यास में। विचार कहेगा, क्या होश खो रहे हो? क्या दिमाग खराब है? पहले सोचो।
आप भी कहेंगे कि सोचना तो जरूर चाहिए कुछ भी करने के पहले। लेकिन क्या आपको पता है, कुछ चीजें सोचकर की ही नहीं जा सकतीं। जैसे कोई प्रेम करने के पहले सोचे। निश्चित ही सोचना चाहिए।
सुना है मैंने, एक आदमी ने सोचा है बहुत। वह आदमी था जर्मनी का एक बहुत बड़ा विचारक इमेनुअल कांट। एक स्त्री ने उससे निवेदन किया कि मैं विवाह के लिए निवेदन करती हूं। इमेनुअल ने नीचे से ऊपर तक उसे देखा, वैसे ही जैसे विचारक किसी चीज को परख करते वक्त देखते हैं। उन्होंने ने कहा, ठीक। मुझे विचार का मौका दें।
स्त्री में थोड़ी भी प्रतीति रही होगी, तो उसी वक्त जान लेती कि यह आदमी काम का नहीं है। फिर महीनों पर महीने निकल गए। वर्ष निकल गया। तीन वर्ष निकल गए। और तीन वर्ष बाद इमेनुअल उसके दरवाजे पर पहुंचा।
उसके पिता ने उसे बिठाया और पूछा कि आप कैसे आए? ख्यातिलब्ध आदमी था! इमेनुअल ने कहा कि कुछ समय हुआ आपकी लड़की ने निवेदन किया था मुझसे विवाह का। तीन साल मैंने सब तरह अध्ययन किया, चिंतन किया, मनन किया, विवाह के पक्ष में और विपक्ष में सारी युक्तियां, सब तर्क! यही कहने आया हूं कि अभी तक कोई निर्णय नहीं हो पाया है।
लेकिन उसके पिता ने कहा, अब आप चिंता छोड़ें। लड़की के विवाह हुए भी दो साल हो गए। एक बच्चा भी हो चुका है। वैसे भी काफी देर हो चुकी है। और अब तो आप चिंता ही छोड़ दें।
इमेनुअल कांट विचारक था। प्रेम को अगर विचार करने गए, तो विचार हाथ लगेगा, प्रेम कभी का खो चुका होगा।
लेकिन प्रेम के संबंध में हम यह नासमझी नहीं करते। लेकिन प्रार्थना
के संबंध में जरूर करते हैं। क्यों करें प्रार्थना? यह क्यों सवाल विचार का है; यह सवाल भाव का नहीं है। भाव क्यों पूछता ही नहीं। भाव पूछता है,

कैसे करें प्रार्थना? भाव पूछता है, क्या है प्रार्थना? क्यों नहीं। क्या मिलेगा प्रार्थना से, यह भी भाव नहीं पूछता। कभी प्रेम ने पूछा है कि क्या मिलेगा प्रेम से? प्रार्थना करने वाले ने भी कभी नहीं पूछा है। लेकिन हम प्रार्थना करने वाले निरंतर पूछते रहते हैं, क्या मिलेगा? क्या मिला है? कुछ मिल रहा है कि नहीं मिल रहा है?
नहीं, भाव नहीं है वहां। विचार को हटाएं, अन्यथा भाव के जगत में कोई गति नहीं होगी। विचार को कहें कि तेरी सीमा है, वहां तू काम कर। बाहर, घर के बाहर; घर के भीतर नहीं। कुछ मेरे अंतस्तल का भी जगत है, जहां तू बाधा न डाल। तू पदार्थ से जूझ, तू परमात्मा से जूझने मत चल, अन्यथा मुझे हराकर रहेगा। तू पदार्थ को काट, लेकिन प्रेम को काटने की तैयारी मत कर। तू पदार्थ की परीक्षा कर, लेकिन परमात्मा की परीक्षा लेने मत जा।
तो फिर दूसरा कदम उठाया जा सकता है, भाव के विकास का। जहां भी चिंतन को गति न मिलती हो और प्रतीति को गति मिलती हो, वहां-वहां ज्यादा से ज्यादा समय देना शुरू करें।
संगीत सुन रहे हैं, उसे भी हम संगीत की तरह नहीं सुनते।
सुना है मैंने कि एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ, शूवर्ट, एक गांव में संगीत बजाने गया है। जब वह अपना वायलिन बजा रहा है, तब सामने बैठा एक बूढ़ा बार-बार कह रहा है, बेकार है; कुछ भी नहीं है। शूवर्ट परेशान हो गया। वह सामने की कुर्सी पर बैठा हुआ है, और बार-बार कह रहा है। और वह अपनी बगल के आदमी से भी कान में कुछ-कुछ पूछता है। जब उसने बगल के आदमी से पूछा, तब राज खुला। बगल के आदमी से उसने पूछा, यह कब सिक्खड़ हटेगा, शूवर्ट कब आएगा? वह शूवर्ट ही बजा रहा है। तो बगल के आदमी ने कहा, महानुभाव, यह शूवर्ट ही है! उसने कहा, अरे, वंडरफुल, आश्चर्य! क्या अदभुत संगीत है! वह शूवर्ट सुन रहा है सामने ही बैठा! क्या हुआ! यह आदमी संगीत सुन रहा है? यह, शूवर्ट कौन है, तो प्रभावित होता है। नहीं तो नहीं प्रभावित होता है।
विनसेंट वानगाग के चित्र अनेक लोगों के घरों में थे। विनसेंट वानगाग गरीब चित्रकार था। किसी से कुछ सिगरेट उधार ले ली थीं, उसके पास पैसे चुकाने को नहीं थे, तो एक पेंटिंग उसको दे आया। जो आदमी सिगरेट के पैसे नहीं चुका सकता, उसकी पेंटिंग कोई अपनी दूकान में टांगेगा? पान वाला भी नहीं टांगेगा। उसने उसको कबाड़खाने में डाल दिया।
विनसेंट वानगाग के मरने के बीस-पच्चीस वर्ष बाद उसकी तस्वीरों की खोज शुरू हुई, जैसा अक्सर होता है। विनसेंट वानगाग को खाने के पैसे नहीं थे और अब विनसेंट वानगाग की एक-एक तस्वीर चार और पांच लाख रुपए की होती है। खोजबीन मच गई कि कहां उसकी तस्वीरें हैं? क्योंकि उसकी एक तस्वीर जिंदगी में बिकी नहीं कभी; एक नहीं बिकी! तो वे तो मुफ्त उसने दे दी थीं। मित्र उसका अनुग्रह करके तस्वीर टांग देते थे अपने बैठकखाने में, और जैसे ही वह जाता था, उतारकर पीछे हटा देते थे। और कभी फिर घर आने को है, तो जल्दी से उसकी तस्वीर टांग देते थे कि उसको बुरा न लगे।
लोगों ने खोजबीन की, तस्वीरें एकदम कीमती हो गईं। नकली, लोगों ने विनसेंट वानगाग की तरह ही चित्र बना-बनाकर लाखों रुपए कमा लिए। जो तस्वीर पीछे घर में पड़ी थी, जैसे ही घर के मालिक को पता लगा कि विनसेंट वानगाग की है। वानगाग है! तस्वीर बैठकखाने में आ गई! अभी तक कबाड़खाने में पड़ी थी। इस आदमी का तस्वीर से कोई भी संबंध बन पा रहा था? कोई संबंध नहीं था।
आपके घर में भी हीरा पड़ा हो और पत्थर आपको पता हो, तो उससे कोई संबंध नहीं बनता। और पत्थर पड़ा हो और वहम आ जाए कि हीरा है, तो संबंध बन जाता है। तो आपके सौंदर्य से कोई भाव का लेना-देना नहीं है। यह सब विचार का ही मामला है।
भाव जहां हो! संगीत बज रहा है। छोड़ें फिक्र, कौन बजा रहा है। छोड़ें फिक्र, क्या बजा रहा है। इतनी ही फिक्र करें कि मन, जहां बुद्धि हट जाती है और भाव--सिर्फ भाव-तरंगें होती हैं--क्या यह संगीत इन भाव की तरंगों को छू रहा है? अगर छू रहा है, तो बुद्धि को एक तरफ रख दें उतारकर और इस भाव की धारा में बहें।

चाहे फूल हो, और चाहे आकाश के तारे हों, चाहे संगीत हो, चाहे किन्हीं
दो सुंदर आंखों में मिली कोई झलक हो, चाहे किसी चेहरे का सौंदर्य हो, चाहे किसी पत्थर का सौंदर्य हो, चाहे मंदिर हो, चाहे मस्जिद--जहां भी आपको लगता हो कि बुद्धि के गहरे में जाकर कोई चीज छू रही है, बुद्धि को हटा दें और अपने हृदय को खुला कर दें, ताकि वह आपके हृदय पर स्पर्श करके उसको जगा पाए। अगर कोई व्यक्ति इतनी ओपनिंग, इतना दरवाजा अपने में बना ले, तो बहुत शीघ्र ही वह पाएगा कि भाव का एक अनूठा अंकुरण उसके भीतर हो जाता है। और इस भाव के अंकुरण के साथ आता है प्रेम, निर्बाध प्रेम। इस भाव के अंकुरण के साथ आता है प्रार्थना का लोक--लोभरहित, बेशर्त। इस भाव के साथ आती है धीरे- धीरे भक्ति।
भक्ति का अर्थ है, एक के प्रति नहीं, समस्त के प्रति प्रेम। एक के प्रति नहीं, समस्त के प्रति प्रेम। जब तक सुंदर में ही सुंदर दिखाई पड़ता है, तब तक अभी पूर्ण सौंदर्य का अनुभव नहीं हुआ। और जब कुरूप में भी सौंदर्य के दर्शन शुरू हो जाते हैं, तो पूर्ण सौंदर्य का अनुभव होता है। जब तक मित्र से ही प्रेम बनता है, तब तक पूर्ण प्रेम का कोई पता नहीं; और जब शत्रु से भी प्रेम बन जाता है, तभी पूर्ण प्रेम का पता है।
जिस दिन भाव की यह धारा समस्त के प्रति बिना किसी कारण के, बिना किसी निर्णय के, बिना किसी चुनाव के बहनी शुरू हो जाती है, भक्ति बन जाती है। कृष्ण कहते हैं, भक्तियुक्त पुरुष, ऐसे भाव से भरा हुआ व्यक्ति, अंतकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके... ।
ये जो दो आंखें हैं आपकी, ये जो दो भृकुटियां हैं, आई ब्रोज हैं, इनके बीच में जगह है एक, जो इस शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वह थर्ड आई, तीसरी आंख की जगह है, शिव-नेत्र की जगह है। जिस व्यक्ति का समस्त के प्रति प्रेम भाव है, प्रार्थना भाव है, पूजा भाव है, जो इस जगत में सिवाय परमात्मा के और किसी को देखता नहीं, ऐसा व्यक्ति अंत समय में भृकुटी के मध्य में ध्यान को स्थिर कर लेता है। क्यों? क्योंकि जिसका ध्यान भृकुटी के मध्य में स्थिर हो, उसकी आगे की शरीर-यात्रा बंद हो जाती है।
आगे की शरीर-यात्रा, आवागमन, तीसरी आंख पर अगर ध्यान न हो, तो जारी रहता है। इस तीसरी आंख पर अगर ध्यान हो, तो यह द्वार है संसार से छूट जाने का। यहां मार्ग है, जहां से एक संधि है छोटी, जहां से हम शरीर के पार हो जाते हैं। इस पर अगर ध्यान हो और प्रेम से भरा हुआ चित्त हो, भाव से भरा हुआ चित्त हो, विचार की कोई तरंग ही न हो, भाव की गहनता हो, बस। विचार की कोई लहर ही न हो, क्योंकि जैसे ही विचार की लहर आती है, भृकुटी से ध्यान हट जाता है। इसे समझ लें।
विचार की जरा-सी तरंग, और भृकुटी से ध्यान हट जाता है। और विचार निस्तरंग, भाव परिपूर्ण, और भृकुटी पर ठहर जाता है। इस भृकुटी पर ठहरा हुआ चित्त, निश्चल मन से स्मरण करता हुआ दिव्य स्वरूप परमात्मा को प्राप्त होता है।
निश्चल विचार कभी होता ही नहीं, सिर्फ भाव होता है। अगर आप कहते हैं
कि मेरा विचार बहुत दृढ़ है, तो आप बड़ी गलत बात कहते हैं। विचार दृढ़ होता ही नहीं। जैसे कोई कहे कि मेरी नदी में जो लहरें उठती हैं, वे बड़ी निश्चल हैं, वह पागलपन की बात कर रहा है। लहरें निश्चल होती ही नहीं। नदी निश्चल हो सकती है, लेकिन तभी, जब लहरें न हों। भाव निश्चल हो जाता है तभी, जब विचार की तरंगें नहीं होती हैं।
विचार तो तरंग है, इसलिए निस्तरंग विचार का अर्थ होता है, न-विचार, निर्विचार। विचार ही कंपन है, इसलिए अकंप विचार नहीं होता। जब अकंप विचार होता है, तो विचार होता ही नहीं। और जब भी विचार होता है, तो कंपन जारी रहते हैं।
अगर जरा-सा भी कंपन है, तो भृकुटी पर नहीं ठहराया जा सकता। आदमी चूक जाता है। और भृकुटी की जो संधि है, वह इतनी छोटी है कि अगर आप बालभर भी कंप गए, तो चूक गए। अगर बालभर भी कंपन हुआ, तो चूक गए। वह जगह बहुत एटामिक है, बहुत आणविक है; वह बहुत बड़ी जगह नहीं है; बहुत सूक्ष्म संधि है। उसमें तो

सिर्फ वे ही लोग प्रवेश करते हैं, जो कंपना जानते ही नहीं, जिन्हें कंपन का पता ही नहीं रहा है अब।
और ध्यान रहे, भाव बड़ा निष्कंप है। कभी आपने किसी को अगर प्रेम किया हो, जैसा कि होता नहीं। मुश्किल से कभी कोई सौभाग्यशाली होता है कि किसी को प्रेम करता है। अगर कभी किसी को प्रेम किया हो, तो सब करते हुए--सब चलते, उठते, काम में लगे हुए--भीतर कोई एक अकंप भाव उस प्रेमी का बना ही रहता है। कबीर से कोई पूछता है कि तुम ये सब काम में लगे हुए कैसे उसको स्मरण करते होओगे? कबीर ने कहा, कभी समय आएगा, तो बताऊंगा। फिर एक दिन स्नान करके नदी से लौटते हैं कबीर। साथ में पूछने वाला भी है। वह फिर पूछता है, बताया नहीं! तो कबीर ने कहा--पास में दो ग्राम-वधुएं अपने सिर पर घड़ा लिए पानी से भरा हुआ, दोनों हाथ छोड़े गपशप करती हुई रास्ते से गुजर रही हैं। कबीर ने कहा, देखते हो इन्हें, पानी से भरा हुआ घड़ा है, माथे पर रखा है, हाथ का सहारा नहीं, दोनों हाथ छोड़कर गपशप करती हुई वे मार्ग से चलती हैं। क्या तुम सोचते हो, इन्हें घड़े का स्मरण नहीं होगा?
रोका उन्हें, पूछा। तो उन्होंने कहा, अगर घड़े का स्मरण सतत न बना रहे,
तो हाथ हटाया नहीं जा सकता। हाथ हटा ही इसलिए सके हैं कि स्मरण तो घड़े का बना ही हुआ है। वह स्मरण ही सम्हाले हुए है।
सारे काम में लगा हुआ व्यक्ति भी अगर भाव से भर जाए, तो फिर सब तरफ उलझा रहे, भीतर कहीं कोई चीज सम्हली ही चली जाती है। वह सम्हली ही बनी रहती है। उस भाव की दशा में यदि अंत क्षण आ जाए, तो समस्त भाव सिकुड़कर भृकुटी पर केंद्रित हो जाता है।
कृष्ण कहते हैं, योगबल से!
क्योंकि भृकुटी पर ध्यान को केंद्रित करने का जिन्होंने अभ्यास किया हो, उन्हीं के लिए आसान होगा कि अंत क्षण में उनका भाव भृकुटी पर आ जाए, अन्यथा संभव नहीं होगा। क्योंकि शरीर के भीतर रास्ते हैं। और अगर रास्ते टूटे हुए न हों, तो आखिरी समय में रास्ते बनाना बहुत मुश्किल है।
आप शायद ही कभी अपनी भृकुटी की तरफ ध्यान ले जाते हों। ध्यान जाता है सेक्स सेंटर की तरफ, ज्यादा से ज्यादा। ज्यादा से ज्यादा आदमी का ध्यान उसके काम-केंद्र की तरफ दौड़ता रहता है। काम-केंद्र बिल्कुल उलटा है तृतीय नेत्र से, दूसरे छोर पर है। ये दो छोर हैं।
ऐसा समझ लें, काम-केंद्र का चिंतन अगर ज्यादा चलता हो, तो हमारे भीतर चेतना को जाने के लिए एक ही रास्ता होता है बना हुआ; वह बिल्कुल, कहें कि हाईवे है चेतना के लिए भीतर। बिल्कुल सपाट रास्ता तैयार है। जरा खिसके कि काम-केंद्र पर पहुंच जाएंगे। बीमार पड़े हैं खाली, तो कामवासना पकड़ेगी। खाली बैठे हैं, कोई काम नहीं है दफ्तर में, तो कामवासना पकड़ेगी। कार में बैठे हैं खाली, तो कामवासना पकड़ेगी। या तो करते रहो विचार कुछ न कुछ, उलझे रहो, और या फिर कामवासना पकड़ेगी। एक सपाट रास्ता भीतर बना है, चित्त जरा खाली हुआ, भागा।
एक दूसरा केंद्र है भृकुटी के मध्य में, योगी उसे आज्ञा-चक्र कहते हैं, या कोई और नाम देते हैं। यह जो केंद्र है, यह ठीक उलटा है। भक्त का, जैसे ही समय मिला, ध्यान भागा और भृकुटी पर आया। लेकिन इस भृकुटी के कांशसनेस के लिए, इसके चैतन्य के लिए, इसके बोध के लिए योग का अभ्यास जरूरी है। धीरे-धीरे आपको शरीर में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा आज्ञा-चक्र मालूम पड़ने लगे, और जब भी सुविधा हो, समय हो, शक्ति हो, ध्यान तत्काल आज्ञा- चक्र की तरफ भाग जाए।
अगर यह रास्ता तैयार रहा, तो अंत समय में समस्त भाव आज्ञा-चक्र पर इकट्ठा होकर शरीर के आवागमन के बाहर हो जाता है। लेकिन अगर यह न रहा, तो कठिनाई पड़ जाती है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी तरह स्थापन करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त होता है।
और हे अर्जुन, वेद के जानने वाले जिस परम पद को अक्षर, ओंकार नाम से कहते हैं और आसक्तिरहित यत्नशील महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं, तथा

जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस परम पद को मैं तेरे लिए संक्षिप्त में कहूंगा।
वेद के जानने वाले!
सहज ही ख्याल आता है कि वेद की जो चार संहिताएं हैं, उनको जानने वाले, वेदपाठी पंडित, कृष्ण उनकी बात कर रहे होंगे! कृष्ण जैसे व्यक्ति उनकी बात नहीं कर सकते। शास्त्र को जानने वाला, कृष्ण जैसे व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण नहीं होता। लेकिन वेद अनूठा शब्द है। वेद का अर्थ होता है केवल ज्ञान। वेद का अर्थ शास्त्र तो परोक्ष से होता है। सीधा-सीधा अर्थ होता है ज्ञान।
जिसे हम वेद कहते रहे हैं, वह केवल उस ज्ञान की एक भनक है, एक प्रतिछवि। अनंत वेद पैदा हो सकते हैं, अगर हम उस परम ज्ञान के सामने जितने दर्पण ले जाएंगे, उतने वेद पैदा हो सकते हैं। लेकिन वेद का इशारा उस परम ज्ञान की तरफ है। अगर वेद की चारों संहिताएं भी खो जाएं, तो भी वेद नहीं खो जाएगा। और वेद की अगर करोड़ों संहिताएं भी पैदा हो जाएं, तो भी वेद चुक नहीं जाएगा।
जिन चार संहिताओं को हम वेद कहते हैं--ऋग्वेद को, यजुर्वेद को, अथर्व को, साम को--यह मनुष्य जाति के स्मरण में उस परम वेद की पहली प्रतिछवि है। कुरान भी वेद है, और बाइबिल भी वेद है, और महावीर के वचन भी, और बुद्ध के वचन भी--ये बाद की प्रतिछवियां हैं। लेकिन जो लोग पहली प्रतिछवि से आग्रहग्रस्त हो गए, उन्होंने कहा, अब इसके बाद और कोई वेद नहीं है।
वेद निरंतर जन्मता रहेगा। जब भी कोई व्यक्ति परमभाव को उपलब्ध होता है, तब दर्पण बन जाता है। और वह जो परम वेद है, जो शाश्वत ज्ञान है, जो परमात्मा के हृदय में विराजमान है, वह फिर अपनी प्रतिछवि बनाता है। निश्चित ही, वह छवि दर्पण के अनुसार अलग-अलग होती है। ऋग्वेद एक छवि है। कुरान दूसरी, वह मोहम्मद का दर्पण है। बाइबिल तीसरी, वह जीसस का दर्पण है। बुद्ध या महावीर, और लाओत्से, हजार-हजार लोग प्रतिबिंब दिए हैं, वे सभी वेद हैं।
वेद किसी मुर्दा किताब का नाम नहीं। वेद उस परम ज्ञान का नाम है, जिसके समक्ष परिपूर्ण शून्य हुआ व्यक्ति खड़ा होता है।
तो कृष्ण जब वेद की बात करते हैं, तो कोई इस भ्रांति में न रहे कि वे कोई हिंदुओं के वेद की बात कर रहे होंगे। नहीं, कृष्ण जैसे लोग विशेषण की भाषा में नहीं बोलते। हिंदू, और मुसलमान, और ईसाई, और जैन की भाषा में नहीं बोलते। उनकी भाषा तो परम भाषा है। वेद से उनका अर्थ है, वह वेद, जो दर्पण बन गए लोगों में प्रतिबिंबित होता रहा है।
ऐसे वेद को जानने वाले उस परम पद को अक्षर, ओंकार नाम से पुकारते हैं। अक्षर, जो कभी क्षरता नहीं, क्षीण नहीं होता, नष्ट नहीं होता।
हम तो सभी वर्णमाला को अक्षर कहते हैं। अ, ब, स, द, क, ख, ए, बी, सी, डी-- सभी अक्षर हैं। लेकिन सभी क्षर जाते हैं। और सभी नष्ट हो जाते हैं। इनको अक्षर कहना ठीक नहीं है। अगर मैं न बोलूं, तो ये अक्षर पैदा भी नहीं हो सकते। अगर आप चुप रहें, तो ये अक्षर खो जाते हैं। इनको अक्षर कहा नहीं जा सकता।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, जानने वाले उस परम पद को अक्षर कहते हैं और वह अक्षर ओंकार है। एक ऐसा अक्षर भी है, ओम, जो आप न बोलें, तो ही बोला जाता है। इसे थोड़ा समझ लेना पड़ेगा।
और सब अक्षर आप बोलें, तो ही बोले जाते हैं; न बोलें, तो खो जाते हैं।
एक अक्षर ऐसा भी है, जो आप जब तक बोलते रहें, तब तक न बोला जाता और न सुना जाता। जब आप बोलना बंद कर दें, चुप हो जाएं, मौन हो जाएं, भीतर भी शब्द न रह जाएं, तब भी एक गूंज, प्राणों के प्राण में एक आवाज, एक नाद उठना शुरू हो जाता है। उस नाद का नाम, जानने वाले, वेद को जानने वालों ने अक्षर कहा है। उस नाद का जो प्रतीक है, वह ओम या ओंकार है।
जब कोई परम मौन होता है, तब उसके भीतर भी एक ध्वनि गूंजती है। वह ध्वनि हमारी पैदा की हुई नहीं है, क्योंकि हम तो चुप हैं। वह ध्वनि हमारा अस्तित्व है। अस्तित्व की ध्वनि है; कहें कि अस्तित्व ही ध्वनित होता है;

हमारा होना ही ध्वनित होता है। उस ध्वनि का नाम अक्षर है। क्योंकि हम जब नहीं थे, तब भी वह ध्वनि ध्वनित हो रही थी; और हम नहीं होंगे, तब भी वह ध्वनित होती रहेगी। शायद हम उस ध्वनि की एक वेव लेंथ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। शायद उस परम ध्वनि का ही हम एक सघन रूप हैं, ए पर्टिकुलराइज्ड फार्म आफ दैट साउंड, दैट साउंडलेस साउंड; उस ध्वनिरहित ध्वनि का एक सघन रूप हैं। उस ध्वनि का नाम ओंकार है, ओम है।
यह ओम कोई शब्द नहीं है, इसमें कोई अर्थ नहीं है। यह अस्तित्व बोधक मात्र है, इंगित मात्र है। इसलिए ओम को लिखने का जो पुराना ढंग है, वह पिक्टोरियल है; चित्र बनाकर है। ओम को हम अ, उ, म से भी लिख सकते हैं। अंग्रेजी में ओम लिखना हो, तो हम ओ और एम से लिख सकते हैं। लेकिन नहीं, वह वर्णाक्षरों में लिखना ठीक नहीं है। ओम को हम लिखते हैं पिक्टोरियल, एक चित्र में। शब्द नहीं देते उसे, चित्र देते हैं, आकृति देते हैं सिर्फ। और वह आकृति इसीलिए देते हैं, ताकि हमारे और अक्षरों से वह एक न हो जाए, संयुक्त न हो जाए।
वस्तुतः वही अक्षर है, शेष सब जिन्हें हम अक्षर कहते हैं, उसकी ही पैदावार हैं। ओम में अ, उ और म तीन की ध्वनियों का तालमेल है। यह ओम तो अक्षर है, फिर अ, उ, म उसकी तीन उत्पत्तियां हैं। और फिर हमारे सारे वर्णाक्षर उन तीन के और विस्तार हैं।
पूर्वीय मनीषा ने जाना है ऐसा कि सत्य है एक; और जब सत्य संसार बनता है, तो होता है तीन; और फिर तीन से हो जाता है अनेक। ओम है एक। फिर अ, उ, म। और फिर सारे वर्णाक्षर पैदा होते हैं। लेकिन वे सब अक्षर नहीं हैं। अक्षर तो सिर्फ ओम ही है।
इस परम पद को जानने वालों ने ओंकार कहा है, अक्षर कहा है। और आसक्तिरहित, यत्नशील महात्माजन इसमें प्रवेश करते हैं--इस ओम में, इस अक्षर में।
जैसे ही किसी का भाव भृकुटी के मध्य थिर हो जाता है, वैसे ही उस थिरता में ओंकार का नाद शुरू होता है। उस नाद के साथ ही व्यक्ति संसार से मोक्ष में प्रवेश करता है। कहें कि वह नाद वाहन है। भृकुटी के मध्य में जैसे- जैसे व्यक्ति करीब पहुंचने लगता है, नाद घनघोर होने लगता है, गहन होने लगता है।
कबीर कहते हैं, कैसी जोर की बिजली कड़कती है! कैसे घनघोर बादल बरसते हैं! कैसे अमृत की बरसा हो रही है! और यह कैसा नाद, जो कहीं पैदा नहीं हो रहा है और सुनाई पड़ रहा है!
जैसे-जैसे भृकुटी के मध्य आएंगे, वैसे-वैसे पूरे तन-प्राण में एक नाद गूंजने लगेगा। उस क्षण में आप केवल ध्वनि का एक संग्रह मात्र रह जाएंगे-- शरीर नहीं, नाद मात्र। और इस नाद पर सवारी करके ही व्यक्ति भृकुटी के छिद्र से ऊपर उठता है और परम पद में प्रवेश करता है।
इसे जिसे ओंकार कहते हैं ज्ञानीजन, आसक्तिरहित--ये शब्द समझ लेने जैसे हैं--आसक्तिरहित यत्नशील महात्माजन उसमें प्रवेश करते हैं। आसक्तिरहित! जिनकी इतनी भी आसक्ति नहीं रही है कि हम मोक्ष में प्रवेश करें। क्योंकि बाकी आसक्ति तो छोड़े कोई, तभी भृकुटी तक पहुंचता है, लेकिन एक आसक्ति फिर भी रह जाती कि मैं मोक्ष में प्रवेश करूं। अगर इतनी आसक्ति भी भीतर शेष रह गई कि मैं मुक्त हो जाऊं, मोक्ष में प्रवेश करूं, परम पद पा जाऊं, प्रभु को पा लूं, इतनी आसक्ति भी अगर रह गई, तो बाधा बन जाती है। पाने का जहां ख्याल शेष रह गया, वहां संसार शुरू हो जाता है। जहां वासना आ गई कोई भी, वहीं हम फिर पुनः संसार की यात्रा पर वापस लौट जाते हैं।
यह बहुत समझ लेने जैसी बात है।
प्रभु के खोजी को प्रभु के पाने के पहले, प्रभु को पाने की वासना भी छोड़ देनी पड़ती है। मोक्ष के खोजी को मोक्ष के द्वार पर मोक्ष की वासना को भी उतारकर रख देना पड़ता है। उतनी-सी वासना भी संसार में लौटा लाने के लिए पर्याप्त है।

आसक्तिरहित, लेकिन यत्नशील; यह बहुत अदभुत बात है। आसक्तिरहित और यत्नशील! आसक्त तो यत्नशील दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि जहां आसक्ति है, वहां यत्न है, एफर्ट है, चेष्टा है। जहां कुछ पाना है, वहां पाने की कोशिश होगी।
लेकिन दूसरी घटना जो घटती है--घटना कहें या दुर्घटना--जब कोई व्यक्ति कहता है, अब कोई आसक्ति ही न रही, तो अब चेष्टा भी क्या? आसक्ति है, तो यत्न है। आसक्ति छूटी, तो लोग यत्न भी छोड़ देते हैं। लेकिन दोनों में ही खतरे हैं। कृष्ण एक और ही बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, आसक्तिरहित यत्नशील। पाना कुछ भी नहीं है, फिर भी प्रयास में रत्तीभर कमी नहीं। यह बड़ी कठिन बात है। पाना कुछ भी नहीं है, फिर भी प्रयास में रत्तीभर कमी नहीं। दौड़े ऐसे ही जा रहे हैं जैसे मंजिल पर पहुंचना हो, और पहुंचना कहीं भी नहीं है। यह कैसे होगा?
यह कभी-कभी होता है। अगर दौड़ने में ही आनंद आ रहा हो, तो होता है।
एक तो दौड़ है, कहीं पहुंचने में आनंद छिपा है, कोई खजाना मिलने को है यात्रा के अंत पर, तो दौड़ रहे हैं। दौड़ने में कोई आनंद नहीं है। आनंद तो छिपा है वहां, अंत में। मिलेगा, तो आनंद मिलेगा। दौड़ तो रहे हैं उसे पाने के लिए।
अगर ऐसे व्यक्ति से कहो कि आसक्तिरहित दौड़ो, तो वह बैठ जाएगा वहीं। वह कहेगा, जब पहुंचना ही नहीं है कहीं, दौड़ना किसलिए? और कृष्ण कहते हैं, दौड़ो और पहुंचने का ख्याल मत करो। इसका अर्थ हुआ, दौड़ो दौड़ने के ही आनंद में। असल में जब कोई साधक गहरा उतरना शुरू होता है, तो वह यह नहीं कहता कि मैं ध्यान किसलिए कर रहा हूं। वह जानने लगता है कि ध्यान ही आनंद है, योग ही आनंद है। वह यह नहीं कहता कि प्रार्थना मैं इसलिए कर रहा हूं कि परमात्मा मुझे यह मिल जाए। वह कहता है, परमात्मा न भी हो, तो चलेगा; प्रार्थना के बिना नहीं चल सकता। वह कहता है, प्रार्थना आनंद है, इसलिए कर रहा हूं।
भक्तों ने बड़ी अदभुत बातें कही हैं। और भक्तों ने भगवान से ऐसी शानदार टक्करें ली हैं, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। एक भक्त कहता है कि मुझे तेरे मोक्ष-वोक्ष से कोई प्रयोजन नहीं। मुझे तेरी वृंदावन की गली में ही जन्म ले लेना काफी है। मुझे तेरे मोक्ष-वोक्ष को नहीं चाहिए। इतना ही ख्याल रखना कि वृंदावन में जहां तू चला, वहीं मैं हो जाऊं, वहीं रह जाऊं, उसी धूल में पड़ा रहूं। मैं तेरे मोक्ष को छोड़ सकता हूं, तेरी वृंदावन की गली नहीं।
अब यह आनंद किसी और बात की खबर है। मोक्ष को छोड़ने की हिम्मत की बात जो
कह सकता है, उसने मोक्ष पा ही लिया। उसे अब पाने को कुछ शेष न रहा। वृंदावन की गली भी उसके लिए मोक्ष हो जाएगी। धूल में पड़ा हुआ वह परम सिद्ध-शिला पर विराजमान हो जाएगा।
कृष्ण कहते हैं, आसक्तिरहित और यत्नशील। आसक्ति तो करना मत कुछ, लेकिन यत्न मत छोड़ देना। यत्न जारी रखना। निश्चित ही, अब यत्न तभी जारी रह सकता है, जब यत्न ही आनंद हो जाए।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, संन्यास किसलिए? वे संन्यास की बात
ही चूक गए; बात ही खतम हो गई। संन्यास किसलिए! संसार किसलिए--सार्थक है। संन्यास किसलिए-- सार्थक नहीं है यह प्रश्न। संन्यास संन्यास के लिए। और तो कोई अर्थ नहीं होता। अगर संन्यास ही आनंद है, तो ही संन्यासी हो सकते हैं। अगर आपने सोचा कि संन्यास इसलिए लेते हैं कि यह-यह मिलेगा, तो आप संन्यास को भी संसार की एक चीज बना रहे हैं। संन्यास अपने में ही आनंद है। प्रार्थना अपने में ही आनंद है। पूजा अपना ही फल है।
यत्न जारी रखना, आसक्ति छोड़ देना, तो कृष्ण कहते हैं, ऐसे महात्माजन
उस ओंकार की अक्षर ध्वनि में प्रवेश करते हैं। तथा जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं... ।
और यह वही परम पद है, जिसको चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं।
यह आखिरी सूत्र बहुत कीमती है। ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं जिसे चाहने वाले।

ब्रह्मचर्य का अर्थ होता है, प्रभु जैसी चर्या। जिसे प्रभु को पाना हो, उसे प्रभु को पाने के पहले ही प्रभु जैसी चर्या शुरू कर देनी चाहिए। अन्यथा प्रभु सामने खड़ा होगा और हम उसके पात्र न होंगे। अन्यथा उसके द्वार पर भी पहुंच जाएंगे, तो द्वार की सांकल बजाने की हमारी हिम्मत न होगी। इसके पहले कि प्रभु-मिलन हो, हमें ऐसे जीना शुरू ही कर देना चाहिए, जैसे कि वह मिल गया है। हमें ऐसे जीना शुरू ही कर देना चाहिए, जैसे कि वह मिल गया है, जैसे कि वह घर में आकर बैठ गया है, जैसे कि वह मौजूद है। साथ चल रहा है; हृदय की धड़कन-धड़कन में खड़ा है; पैर-पैर में वही कंप रहा है। साधक को ऐसे जीना शुरू कर देना चाहिए कि परमात्मा साथ है, मिला हुआ है।
तो उसकी चर्या धीरे-धीरे, धीरे-धीरे इस प्रभु के साथ होने के भाव से ब्रह्मचर्य बन जाती है, ब्रह्म जैसी बन जाती है। और जिस दिन चर्या ब्रह्म जैसी बन जाती है, उसी क्षण मिलन घटित हो जाता है।
मुझसे लोग कहते हैं कि अभी तो मन बदला नहीं; यदि संन्यास ले लेंगे, तो क्या होगा? पहले मन पूरा बदल जाए, तो फिर हम संन्यास ले लेंगे।
संन्यास की चर्या भी शुरू करने से संन्यास के आने का द्वार खुलता है।
प्रार्थना के लिए होंठ हिलाने से भी परम नाद की तरफ का मार्ग खुलता है।
मंदिर की तरफ चलने का ख्याल भी भीतर के मंदिर के द्वार को खोलने के लिए कारण बन जाता है।
चर्या शुरू करें। ऐसे जीना शुरू कर दें कि परमात्मा है। और एक दिन आप पाएंगे कि जिसे चर्या में शुरू किया था, वह अनुभूति में आ गया है।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट अभी कोई उठेगा नहीं। और आज कीर्तन सब बैठकर ही करने वाले हैं, इसलिए आपको उठकर देखने की जरूरत न रहेगी। आप भी बैठकर सम्मिलित हों। एक धारा बहती है आनंद की, यहां मौजूद ही है; और गंगा किनारे से बहती हो, तो पागल न बनें, एक डुबकी आप भी लें।
इतने लोग इकट्ठे हैं, अगर इतने लोग कीर्तन को पूरे भाव से करें, तो न मालूम कितनी शुद्ध किरणें चारों तरफ व्याप्त हो जाती हैं और न मालूम कितने लोगों के लिए लाभ की हो सकती हैं। एक वर्षा ओंकार की हो सकती है अभी और यहीं। हम सारे लोग भाव से सम्मिलित हों। तालियां बजाएं। कीर्तन बोलें।
बैठकर ही आनंदित हों। डोलें बैठकर ही। यह बैठकर ही कीर्तन होगा।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
पांचवां प्रवचन

योगयुक्त मरण के सूत्र

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।। 12।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। 13।।
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।। 14।।
हे अर्जुन, सब इंद्रियों के द्वारों को रोककर अर्थात इंद्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को उद्देश्य में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके योगधारणा में स्थिर हुआ, जो पुरुष ओम, ऐसे इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरे को चिंतन करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है। और हे अर्जुन, जो पुरुष मेरे में अनन्य चित्त से स्थित हुआ सदा ही निरंतर मेरे को स्मरण करता है, उस निरंतर मेरे में युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूं।

मनुष्य की चेतना दो प्रकार की यात्रा कर सकती है। एक तो अपने से दूर, इंद्रियों के मार्ग से होकर, बाहर की ओर। और एक अपने पास, अपने भीतर की ओर, इंद्रियों के द्वार को अवरुद्ध करके। इंद्रियां द्वार हैं। दोनों ओर खुलते हैं ये द्वार। जैसे आपके घर के द्वार खुलते हैं। चाहें तो उसी द्वार से बाहर जा सकते हैं, लेकिन तब द्वार खोलना पड़ता है। और चाहें तो उसी द्वार से भीतर आ सकते हैं, तब द्वार भीतर की ओर खोलना पड़ता है। एक ही द्वार बाहर ले जाता है, वही द्वार भीतर ले आता है।
इंद्रियां द्वार हैं चेतना के लिए, बहिर्गमन के या अंतर्गमन के।
लेकिन हम जन्मों-जन्मों तक बाहर की यात्रा करते-करते यह भूल ही जाते हैं कि इन्हीं द्वारों से भीतर भी आया जा सकता है। स्मरण ही नहीं रहता है कि जिस द्वार से हम घर के बाहर गए हैं, वही भीतर लाने वाला भी बन सकता है। यह भूल विचार की निरंतर होती है। यह हमें ख्याल नहीं रहता कि जिन मार्गों से हम नीचे गिरते हैं, वे ही मार्ग हमारे ऊपर उठने के मार्ग भी बन जाते हैं। और जिन सीढ़ियों से कोई नर्क में उतरता है, उन्हीं सीढ़ियों से स्वर्ग में भी चढ़ा जाता है। सीढ़ियां अलग नहीं होतीं, केवल चलने की दिशा अलग होती है।
कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन, सब इंद्रियों के द्वारों को रोककर अर्थात इंद्रियों के संयम को उपलब्ध हो, जो भाव को, मन को, हृदय में स्थित करे और प्राण को मस्तक में, वह परम गति को उपलब्ध होता है। इंद्रियों को अवरुद्ध करके, इंद्रियों के संयम से--क्या अर्थ है? इंद्रियों को अवरुद्ध दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो जबरदस्ती विषयों से इंद्रियों को हटाकर--झटके से, दमन से। कोई चीज सुंदर लगती है आपको; मन खिंचता है, आकर्षित होता है, दौड़ता है, चंचल होता है। एक उपाय तो यह है कि आंखें फोड़ लें, या आंखें हटा लें, या भाग खड़े हों उस जगह से। विषय से भाग खड़े हों। जो आकर्षित करता है, उससे दूर हट जाएं।
लेकिन जो आकर्षित करता है, वह गौण है; जो आकर्षित होता है, वही प्रमुख है। इसलिए जो आकर्षण के विषय से भाग जाएगा, वह विषय से तो भाग जाएगा--वह गौण बात थी, निमित्त मात्र था--लेकिन जो आकर्षित हो रहा था, उससे कैसे भागेगा? वह तो उसके साथ ही चला जाएगा।
धन मुझे खींचता हो, धन मुझे दिखाई पड़ता हो और मेरे प्राण उस धन को उपलब्ध करने के लिए आतुर होते हों, तो धन से भाग जाना बहुत कठिन नहीं है। भागने के लिए बहुत बहादुरी की भी जरूरत नहीं है। अक्सर तो कायर ही भागने

में बहुत कुशल होते हैं। भागा जा सकता है। लेकिन भागकर भी, वह जो मेरे भीतर प्राण आतुर होते थे धन को पाने के लिए, वे मेरे साथ ही चले जाएंगे।
इस जगत में स्वयं से भागने का कोई भी उपाय नहीं है। हम सबसे भाग सकते हैं, अपने को छोड़कर। हम सारे संसार को छोड़ सकते हैं, लेकिन अपने को नहीं छोड़ सकते हैं। वह हमारे साथ ही होगा--जंगल में, पहाड़ में, कंदरा में, हिमालय पर। मैं कहीं भी चला जाऊं, मैं तो अपने साथ ही रहूंगा। हां, विषयों से भाग सकता हूं, लेकिन वृत्तियां? वृत्तियां मेरे भीतर ही रहेंगी।
और एक धोखा भी हो सकता है। जब विषय नहीं होते, तो वृत्तियों को गतिमान होने का मौका नहीं मिलता। तो मैं इस भ्रांति में भी पड़ सकता हूं कि चूंकि अब मेरी वृत्ति गतिमान होती नहीं मालूम पड़ती, इसलिए समाप्त हो गई है। लेकिन इस भ्रांति में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। जैसे ही विषय फिर दिखाई पड़ेगा, वृत्ति पुनः सक्रिय हो जाएगी।
यह वृत्ति का निष्क्रिय हो जाना वैसे ही है, जैसे बारूद रखी हो और अंगारा पड़े और विस्फोट हो जाए। लेकिन अंगारा न पड़े बरसों तक, तो बारूद भी सोच सकती है कि अब मैं बहुत शांत हो गई हूं। क्योंकि अब कोई विस्फोट नहीं होता। और बारूद अगर यह सोचे कि यह अंगारे के कारण विस्फोट होता है, इसलिए मैं अंगारे से बचती रहूं तो शांत बनी रहूंगी, तो भी भ्रांति है। क्योंकि अंगारा विस्फोट नहीं करता; अंगारा केवल विस्फोट के लिए निमित्त बनता है। विस्फोट तो बारूद में ही होता है।
वह हमारे भीतर वृत्तियों की बारूद मौजूद रहे, तो हम अंगारों से कितने
ही भागते रहें, कोई बचाव नहीं है। और जन्मों-जन्मों में वापस पुनः-पुनः वृत्तियां हमें उपलब्ध हो जाएंगी।
जब कृष्ण कहते हैं कि सब इंद्रियों के द्वारों को रोककर, तो पहली बात ठीक से समझ लें, इस तरह के निरोध के लिए कृष्ण नहीं कहते हैं। कृष्ण का जीवन भी नहीं कहता कि इस तरह का निरोध उन्होंने किया होगा। फिर भी कृष्ण के साथ भी भूल हो जाती है।
बुद्ध के वक्तव्य में कोई खोज सकता है यह अर्थ, क्योंकि वे छोड़कर गए हैं। महावीर के व्यक्तित्व में खोज सकता है कोई यह अर्थ, क्योंकि वे भी छोड़कर गए हैं। लेकिन कृष्ण के साथ तक भ्रांति होती है और गलत अर्थ होते हैं। जब कि कृष्ण कुछ भी छोड़कर नहीं गए। निश्चित ही, कृष्ण का यह अर्थ नहीं हो सकता कि आब्जेक्ट से, विषयों से भाग जाओ। उनका अर्थ दूसरा है। वह दूसरा अर्थ बहुत भिन्न है और बहुत क्रांतिकारी है।
एक तो उपाय है कि मैं विषय से भाग जाऊं, अंगार से भाग जाऊं, बारूद को बचाए हुए। दूसरा उपाय है कि बारूद को छोड़ दूं और अंगारों से खेलता रहूं। कृष्ण तो अंगारों से खेलने के लिए संदेश दे रहे हैं अर्जुन को। वे कहते हैं, युद्ध कर, भाग मत।
और ध्यान रहे, जो युद्ध बाहर है, वह तो बहुत छोटा है। एक और अंतर्युद्ध
है भीतर, जो सतत चल रहा है चेतना का विषयों के साथ, कि विषयों के प्रति आकर्षित हों या न हों। कृष्ण उस युद्ध से भी भागने की सलाह नहीं दे सकते। भागना उनकी भाषा नहीं है। एस्केपिज्म, पलायन उनके सोचने का ढंग नहीं है। कृष्ण का ढंग तो सोचने का है, युद्ध की सघनता में खड़े होकर जीवन के रूपांतरण का।
कृष्ण का अर्थ दूसरा ही हो सकता है। वह यह है, विषयों से भागने की कोई
भी जरूरत नहीं। और भागकर भी कोई भाग नहीं सकता। और जहां भी हम जाएंगे, वहीं विषय मौजूद हो जाएंगे। संसार जहां भी है, वहां विषय उपलब्ध हैं। वृत्ति को विसर्जित करना ही इंद्रियों का संयम है। और वृत्ति विसर्जित हो, तो इंद्रियां अपने आप अवरुद्ध हो जाती हैं। क्योंकि वृत्ति के ऊपर ही चढ़कर चेतना इंद्रियों के द्वार से निकलती है। वृत्ति के घोड़ों पर बैठकर ही चेतना इंद्रियों के बाहर निकलती है और अनंत की बाह्य यात्रा पर भटकती है। वृत्ति के घोड़े ही अगर क्षीण हो जाएं, तो फिर इंद्रियां भागती नहीं, अवरुद्ध हो जाती हैं; उनके द्वार बंद हो जाते हैं।
ठीक समझें, तो इंद्रियों के द्वार बहुत आटोमैटिक हैं, बहुत स्वचालित हैं। जब तक चेतना भीतर से धक्का देती है उन्हें बाहर की तरफ, तभी तक वे

खुले रहते हैं। और जब भीतर की चेतना धक्का नहीं देती बाहर की तरफ, वे द्वार अपने से बंद हो जाते हैं।
ऐसा समझें, आंख प्रतीक है, आंख से समझें तो सारी इंद्रियों का ख्याल आ जाए। और आंख सूक्ष्मतम और सबसे ज्यादा नाजुक, डेलिकेट, बारीक इंद्रिय है। और जो आंख पर होता है, वही सब इंद्रियों पर होता है।
जब तक आपके भीतर चेतना जागना चाहती है, तब तक पलकें खुली रहती हैं। और
जब चेतना सोना चाहती है, पलकें झप जाती हैं और बंद हो जाती हैं। चेतना का धक्का ही पलकों को खोले रखता है। इसलिए कितनी ही गहरी नींद आ रही हो, आपको लगता हो कि अब क्षणभर नहीं जाग सकूंगा, उसी वक्त कोई खबर दे कि घर में आग लग गई है, नींद नदारद हो जाती है। नींद का पता ही नहीं चलता; आप रातभर जाग सकते हैं। क्या हो गया? चेतना ने वापस जागने का निर्णय लिया; पलकें खुल गईं। करीब-करीब सभी इंद्रियां इसी तरह हैं। आंख पर तो पलकें हैं, कान पर तो कोई पर्दे नहीं हैं बंद करने के। लेकिन विद्यार्थी कक्षा में बैठा है और बाहर एक पक्षी गीत गा रहा है। पक्षी का गीत सुनाई पड़ने लगता है, शिक्षक की आवाज बंद हो जाती है। शिक्षक ज्यादा करीब है, ज्यादा जोर से बोल रहा है। पक्षी बहुत दूर है, किसी अमराई में छिपा होगा; बहुत धीमी सी गूंजती उसकी आवाज आती है। लेकिन उस विद्यार्थी को आवाज सुनाई पड़ने लगी पक्षी की, शिक्षक का बोलना खो गया। बात क्या हो गई?
चेतना जिस तरफ उन्मुख होती है, उस तरफ द्वार खुल जाते हैं; और जिस तरफ उन्मुख नहीं होती है, उस तरफ द्वार बंद हो जाते हैं।
काम के भी सूक्ष्म द्वार हैं, जो बंद होते और खुलते हैं। चित्त में कामवासना भर जाती है, तो कामवासना का द्वार खुल जाता है। चेतना धक्के देती है, तो कामवासना का जो केंद्र है, उसका द्वार खुल जाता है और काम ऊर्जा बाहर प्रवाहित होने लगती है। चेतना धक्के नहीं देती, तो काम ऊर्जा का द्वार बंद है। और कोई उपाय नहीं है कि वह बाहर प्रवाहित हो जाए।
हमारे शरीर की सभी इंद्रियों के द्वार स्वचालित हैं। जब चेतना भीतर
से धक्का देती है, तो द्वार खुल जाते हैं। और जब चेतना भीतर से धक्का नहीं देती, तो द्वार अपने आप बंद हो जाते हैं।
जब कृष्ण कहते हैं, इंद्रियों के द्वारों को रोककर, तो वे ऐसा नहीं कहते हैं कि जबरदस्ती अपनी आंखों को बंद करके बैठ जाओ। क्योंकि जो जबरदस्ती अपनी आंखों को बंद करके बैठेगा, जिसके खिलाफ उसने आंखें बंद की हैं, वह बंद आंखों में भी मौजूद हो जाता है। उससे बचा नहीं जा सकता। जबरदस्ती कान बंद कर लो, कुछ न सुनना हो, तो वह अनसुना भी भीतर गूंजता है, बंद नहीं होता। जबरदस्ती कामवासना को रोक लो, तो कोई अंतर नहीं पड़ता। काम ऊर्जा स्खलित होती ही चली जाती है।
जबरदस्ती कोई भी उपाय नहीं। क्योंकि जबरदस्ती एक बात की खबर देती है
कि भीतर से चेतना बाहर जाना चाहती है और उसी चेतना का एक हिस्सा उसे जबरदस्ती भीतर रोकना चाहता है। तो अगर रोकने वाला हिस्सा सबल हुआ, तो दरवाजे पर थोड़ी देर कशमकश होती रहती है दरवाजे के पीछे, बाहर जाने वाला धक्का देना चाहता है, रोकने वाला खींचता है। अगर सबल हुआ रोकने वाला, तो थोड़ी देर तक यह कशमकश होती है। लेकिन एक बड़े मजे का नियम है कि जो रोकता है, वह थोड़ी देर में कमजोर हो जाता है। जो हिस्सा रोकता है, उसकी ताकत रोकने में व्यय हो जाती है।
इसलिए आदमी आज कसम खाता है ब्रह्मचर्य की और कल पाता है कि मुश्किल है। वह हैरान होता है कि जब कसम खाई थी, तो बिल्कुल सुलभ मालूम पड़ती थी, सरल मालूम पड़ती थी बात। कसम खाई ही इसलिए थी। चौबीस घंटे बाद क्या हो जाता है? जिस मन के हिस्से ने कसम खाई थी, वह लड़ने में लग जाता है उस मन से, जो जाना चाहता था।
और ध्यान रहे, कसम जब भी कोई खाता है, तो पक्का मान लेना, उसके भीतर दूसरा हिस्सा भी मौजूद होगा। नहीं तो कसम किसके खिलाफ खाई जाएगी? जब मैं कहता हूं कि कसम लेता हूं कि अब झूठ नहीं बोलूंगा, वह मैं किसके खिलाफ कसम खा रहा हूं! अपने ही उस मन के हिस्से के खिलाफ, जिसके बाबत मुझे पक्का पता है कि वह मुझे झूठ बोलने को मजबूर कर सकता है।

लेकिन जिस हिस्से से मैं रोकूंगा, वह रोकने में उसकी ताकत व्यय हो जाएगी; और जो हिस्सा रुका है, वह रोज-रोज शक्तिशाली होता चला जाएगा। रुके होने की वजह से शक्ति बढ़ेगी, रोकने की वजह से शक्ति कम होगी। आज नहीं कल, धक्का देकर चेतना फिर इंद्रिय के द्वार को खोल देगी। और जो हम करना चाहते हैं, उसके लिए तर्क खोज लेते हैं।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन मक्का की यात्रा पर गया। वहां उसने कसम ले ली; भाव में आ गया। कसम ले ली कि मछलियां खाना छोड़ देता हूं। कसम लेने का, मछलियां छोड़ने का असली कारण यह नहीं था कि मछलियां छोड़ने से मुल्ला को लगता हो कि कोई बहुत बड़ा स्वर्ग मिल जाएगा। असली कारण यह था कि उसके गुरु ने कहा, कुछ तो छोड़ो! तो मछलियां मुल्ला को बिल्कुल पसंद नहीं थीं, इसलिए उसने मछलियां छोड़ दीं।
लेकिन छोड़ने की रात ही मुल्ला हैरान हुआ कि मछलियों का स्वप्न आया। कभी नहीं आया था। और घर लौटते-लौटते तीर्थयात्रा से, बस एक ही बात याद रह गई कि मछलियां छूट गईं। और एक ही बात गूंजने लगी मन में कि बड़ी गलती की। इतनी जल्दी क्या थी? ऐसा बातों में पड़ जाने का प्रयोजन क्या था? और घर आते- आते एक ही वासना मन में सघन हो गई, मछलियां खाने की, जो कि मन में कभी भी न थी।
कई बार ऐसा होता है। अगर किसी चीज में रस पैदा करना हो, तो छोड़ने की कसम खा लें, तो रस पैदा होना शुरू हो जाता है। क्योंकि जिसे हम छोड़ते हैं, उसके प्रति वासना पैदा होती है। पैदा इसलिए होती है कि छोड़ने से लगता है कि अब कभी भी भोग न सकेंगे। अब कभी भी भोग न सकेंगे! तो मन के किसी भी कोने में भोग की जरा-सी भी वृत्ति पड़ी हो, वह कहती है कि यह तो बड़ी गलती कर ली, एक बार तो भोग लेते! अगर भोग सकेंगे, तो वह वृत्ति विश्राम करती है, प्रतीक्षा करती है, कभी भी भोग लेंगे, कभी भी भोग लेंगे।
घर आते ही मुल्ला बेचैन हुआ। पत्नी को भी उसके गुरु ने बता दिया है आकर कि मुल्ला मछलियां छोड़ दिया है, उसे मछलियां मत देना। पत्नी का भी मन हुआ--जैसा कि सभी पत्नियों का होता है--कि पति की परीक्षा ले लें। दूसरे दिन ही उसने मछलियों का शोरबा बना डाला। मुल्ला को बास आने लगी। वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया।
आखिर जब खाने पर बैठा, सब चीजें दी गईं, शोरबा नहीं दिया गया। मुल्ला
ने कहा कि मछली का शोरबा बना है, ऐसी सुगंध घर में आती है। थोड़ा-सा दो। उसकी पत्नी ने कहा, लेकिन मैंने सुना है कि आप मछलियां छोड़कर आए हैं! मुल्ला ने कहा, मछलियां छोड़ी हैं, मछलियों का शोरबा नहीं।
बात ठीक ही थी। पत्नी झिझकी तो, लेकिन शोरबा छोड़ा ही नहीं था। तो पत्नी ने बर्तन उठाया और मुल्ला की थाली में शोरबा डालने लगी। तो मछलियों के कतरे न चले जाएं, तो उसने हाथ की आड़ लगा दी। मुल्ला ने कहा कि हाथ की आड़ क्यों लगा दी? मछलियां छोड़ी हैं, लेकिन खुद जो आती हों, उन्हें रोकने का कहां नियम लिया है! अपने आप जो आने को उत्सुक हों, उनको आने दो।
फिर आदमी तर्क खोजता है। उसी के लिए तर्क खोजता है, जिसके खिलाफ तर्क खोज लिए थे। नहीं, कोई भी इस भांति जीवन के रूपांतरण को नहीं पाता। और इंद्रियों के द्वार इस तरह कभी बंद नहीं होते। इंद्रियां बल्कि इस तरह और सतेज हो जाती हैं, उनकी जंग भी झड़ जाती है।
कृष्ण का जो अर्थ हो सकता है, जो अर्थ है, जो सदा ही जानने वालों का अर्थ रहा है, वह यह है कि जो वृत्ति भीतर से धक्का देती है, उस वृत्ति का विसर्जन हो।
कैसे हो? छोड़ने से नहीं होता, भोगने से नहीं होता। भोगने से बढ़ता है, पुनरुक्ति से आदत मजबूत होती है। छोड़ने से निषेध का आकर्षण मिलता है, और निषेध से रस जगता है। न भोगने से मिटता, न छोड़ने से मिटता। वह कैसे मिटे वृत्ति का रस? कैसे इंद्रिय... वह संयम कैसे उपलब्ध हो?
उस संयम का एक ही उपाय रहा है सदा से, और वह है, जब भी कोई विषय आकर्षित करे, तो ध्यान विषय पर न रखकर वृत्ति पर रखना। जब भी कोई विषय आकर्षित करे! राह से गुजर रहे हैं आप, एक सुंदर चेहरा दिखाई पड़ता है, एक सुंदर देह दिखाई पड़ती है, स्त्री की, पुरुष की। दौड़ता है मन। उस समय आपका ध्यान उस शरीर पर

होता है, जो आपको आकर्षित कर रहा है। उस वृत्ति पर नहीं होता, जो दौड़ी जा रही है। और उस चेतना पर भी नहीं होता, जो आकर्षित हो रही है।
और जहां ध्यान होता है, चेतना उसी तरफ दौड़ती है, यह नियम है। जहां ध्यान होता है, चेतना उसी तरफ दौड़ती है। जहां ध्यान, वहीं चेतना के लिए निशाना बन जाता है, और चेतना का तीर उसी तरफ चलने लगता है।
ध्यान को, जब कोई सुंदर व्यक्ति दिखाई पड़े, तो ध्यान को सुंदर व्यक्ति
पर मत केंद्रित करें, तत्काल अपने पर केंद्रित करें; और देखें कि मैं सौंदर्य से आकर्षित हुआ हूं और मेरी चेतना वृत्ति बनकर सौंदर्य की तरफ बह रही है। लड़ने की जरूरत नहीं है, गाली देने की जरूरत नहीं है, कि यह पाप है सौंदर्य को देखना। बिल्कुल पाप नहीं है।
सौंदर्य की प्रतीति में जरा भी पाप नहीं है। सौंदर्य के अनुभव में जरा भी पाप नहीं है। सुंदर को जानकर अगर आदमी की चेतना स्वयं में थिर हो, तो परमात्मा का ही स्मरण होगा, पाप का कोई स्मरण नहीं हो सकता है। कोई कंडेमनेशन, कोई निषेध, कोई निंदा नहीं। सिर्फ इतना कि मैं उसे जानूं जो आकर्षित हुआ है, क्योंकि वही मैं हूं। और मैं उसे जानूं जो चेतना आकर्षित होकर बह रही है।
और जैसे ही आप अपने ध्यान को स्वयं पर और अपनी बहती हुई चेतना पर ले जाएंगे, आप अचानक पाएंगे कि इंद्रिय का द्वार बंद हो गया है। क्योंकि ध्यान भीतर जाए, तो चेतना भीतर की तरफ प्रवाहित होने लगती है, बाहर की तरफ नहीं। जहां ध्यान, वहां चेतना बहती है। जैसे जहां गड्ढा, वहां पानी बहता है। गड्ढा खोद दें और पानी बह जाएगा।
अब कुछ पागल हैं जो पानी को रोकने की कोशिश करते हैं। पानी को रोकने
से कुछ न होगा। कितना ही रोकिए, पानी गड्ढे की तरफ ही बहेगा। और अगर बांध बनाया, तो जो झरना था, वह महासागर हो जाएगा। और आज नहीं कल, अगर झरने को ही बहने देते तो बहुत खतरे होने वाले नहीं थे, लेकिन किसी दिन यह झरना जब बांध बनकर महासागर बन जाएगा और बांध को तोड़कर बहेगा, तो महाविनाश होगा।
चित्त के साथ यही हो रहा है। इसलिए आप जानकर हैरान होंगे, जो लोग रोज छोटा-मोटा क्रोध कर लेते हैं, वे लोग कभी हत्या नहीं करते। इसलिए अगर आपके घर में कोई ऐसा आदमी हो, जो क्रोधी तो हो, लेकिन क्रोध न करता हो, तो उससे सावधान रहना। क्योंकि वह किसी दिन जब भी करेगा, तो हत्या से कम में निपटारा नहीं है! बांध बन जाएगा। जो आदमी रोज नाराज हो लेता है, वह रोज प्रसन्न भी हो जाता है। इसलिए बच्चे अभी नाराज हो रहे हैं, अभी मुस्कुरा रहे हैं। क्योंकि बांध बिल्कुल नहीं है। कोई बांध नहीं है।
हम कितना ही क्रोध कर लेते हों, फिर भी बांध बांधकर चलना ही पड़ता है। दफ्तर में मालिक है, नाराज नहीं हो सकते। समय है, परिस्थिति है, नाराज नहीं हो सकते। रोक लेना पड़ता है। वह बांध बन जाता है। फिर वह बांध टूटता है। और तब जोर से क्रोध निकलता है।
इसलिए हमारा क्रोध अक्सर ही अनजस्टीफाइड होता है। क्योंकि जिस पर निकलता है, अकेला वही उसका कारण नहीं होता और पच्चीस लोगों का क्रोध भी उसमें जुड़ा होता है, जो उन पर नहीं निकल पाया और इस पर निकलता है। इसलिए जिस पर निकलता है, वह सदा सोचता है कि इतनी छोटी-सी बात और इतना क्रोध! जस्टीफाइड नहीं मालूम पड़ता उसे। हमें भी मालूम नहीं पड़ेगा पीछे सोचने पर। इतनी-सी बात थी, इतने क्रोध की क्या जरूरत थी! लेकिन बहुत-सा क्रोध जो इकट्ठा था बांध बांधकर, वह समय की तलाश में था कि जब भी गड्ढा मिल जाएगा, बांध को तोड़ देंगे और मुक्त हो जाएंगे।
छोटे-छोटे पापी बड़े पाप कभी नहीं कर पाते। और बड़े पापी अक्सर वे ही लोग होते हैं, जो छोटे-छोटे पाप करने से अपने को बचाते रहते हैं। ऐसा नहीं है कि छोटे-छोटे पाप करने के अभ्यास से कोई बड़ा पापी होता है, ख्याल रखना। छोटे-छोटे पाप करने वाला कभी बड़ा पापी नहीं हो पाता। बड़ा पापी होने की आकांक्षा हो, तो छोटे-छोटे पाप करना बंद कर दें। फिर एक दिन अपने आप विस्फोट हो जाएगा। और बड़ा पाप घटित हो जाएगा।
चेतना भी ध्यान की तरफ इसी तरह बहती है, जैसे गड्ढे की तरफ पानी बहता है। एक नेचुरल, एक निसर्ग का नियम है कि चेतना ध्यान की तरफ बहती है। जहां

ध्यान, वहीं चेतना का तीर सरकने लगता है। अगर आप, कोई गाली दे, उस वक्त गाली देने वाले पर ध्यान न रखें, गाली सुनने वाले पर ध्यान रखें। आप अचानक पाएंगे, इंद्रिय का द्वार बंद हो गया और चेतना वापस भीतर लौट गई। जब कोई आपको चांटा मारे, तो चांटा मारने वाले के हाथ पर ध्यान न रखें। चांटा जिसे मारा गया है, उस पर ध्यान रखें। और आप अचानक पाएंगे कि वह आदमी भी खो गया, जिसने चांटा मारा था, वह बाहर जाता क्रोध भी विलीन हो गया। और चेतना अपने भीतर लौट गई।
और एक बार अगर आपको यह अनुभव हो जाए कि जो ऊर्जा, जो शक्ति क्रोध बनकर बाहर जा रही थी, वह बाहर नहीं गई, बल्कि लौटकर भीतर आ गई, तो आप हैरान हो जाएंगे। बाहर जाती हुई क्रोध की ऊर्जा पीड़ा में ले जाती है, वही ऊर्जा जब भीतर की तरफ लौटती है, तो क्वालिटेटिवली बदल जाती है, उसका गुणधर्म बदल जाता है; वही क्षमा बन जाती है।
और जिसने क्षमा जानी, उसके आनंद का कोई हिसाब नहीं। और जिसने क्रोध जाना, उसके पश्चात्ताप का कोई अंत नहीं।
अगर कामवासना मन को पकड़ती हो और बाहर न जाकर वापस भीतर लौट आए ध्यान
के साथ, तो वही ब्रह्मचर्य बन जाती है। और जिसने कामवासना जानी, उसने फ्रस्ट्रेशन के अतिरिक्त, विषाद के अतिरिक्त कभी कुछ नहीं जाना। और जिसने कामवासना का अपने पर लौटाना जाना, उसने वह जाना है जिसे ज्ञानी ब्रह्मचर्य कहते रहे हैं। अपूर्व है उसकी शांति, अपूर्व है उसकी शक्ति, अपूर्व है उसका आनंद। उसके आनंद को मापने का कोई उपाय नहीं है।
लेकिन लौटती हुई ऊर्जा में गुणात्मक अंतर होता है। ऊर्जा की दिशा सब कुछ है। क्योंकि जब ऊर्जा मुझ से बाहर जाती है, तो मुझे गरीब कर जाती है। मेरी ही ऊर्जा जब मुझ से बाहर जाती है, माई ओन एनर्जी, जब भी बाहर जाती है, तो मुझे दरिद्र कर जाती है। मैं दीन हो जाता हूं। वह चुक जाती है, और मैं उतना गरीब हो जाता हूं। जब मेरी ऊर्जा इंद्रियों के द्वार के पास आकर, वापस लौटकर वर्तुल बना लेती है, सर्किल पूरा कर लेती है, मुझ पर वापस लौट आती है, तो मैं अनंत गुना धनी हो जाता हूं। और जो अपनी ही ऊर्जा का वर्तुल बना लेता है, वही व्यक्ति संयम को उपलब्ध होता है।
संयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का बन गया वर्तुल। खुद की ऊर्जा एक वर्तुल में घूमने लगी, एक सर्किल में। अब बाहर जाने का कोई उपाय न रहा। अब ऊर्जा कहीं भी डिसीपेट, कहीं भी बिखर नहीं सकती। अब ऊर्जा जितनी भी बढ़ती जाएगी, भीतर होती जाएगी। और जैसे-जैसे यह वर्तुल बनता है, वैसे-वैसे ऊर्जा ऊपर उठनी शुरू हो जाती है। और धीरे-धीरे जैसे हम मंदिर के ऊपर शिखर बनाते हैं--वे इसी के प्रतीक में बनाए गए शिखर हैं। छोटा होता जाता है मंदिर का बुर्ज, ऊपर जाकर स्वर्ण-शिखर लग जाता है। छोटा होता जाता है। जैसे-जैसे ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती है, वैसे-वैसे वर्तुल छोटा होता जाता है, सघन होता जाता है, कंडेंस्ड होता जाता है। और एक क्षण आता है, जब ऊर्जा स्वर्ण-शिखर बन जाती है। फिर ऊर्जा ऊपर की तरफ ऊर्ध्वगति को उपलब्ध होती है।
संयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का बनाया गया वर्तुल। असंयम का अर्थ है, स्वयं की ऊर्जा का टूटा हुआ वर्तुल। उस टूटी जगह से ही लीकेज है। जहां वर्तुल टूटता है, वहीं से लीकेज है, वहीं से शक्ति बिखर जाती है और खो जाती है। जैसे शार्ट सर्किट हो जाए बिजली का, वहां से ऊर्जा बिखरने लगती है। और हमारी सारी इंद्रियों के द्वार से हम सिर्फ ऊर्जा को बिखेरते हैं, खोते हैं।
कृष्ण जैसे व्यक्ति के लिए संयम का अर्थ है, इस ऊर्जा का स्वयं में ही रमण करना, स्वयं में ही थिर हो जाना।
तो इस सीक्रेट को, इस राज को, इस गुर को समझ लें। जब भी कोई विषय आकर्षित करे, तब ध्यान विषय पर न दें, तत्काल स्वयं पर दें और स्वयं की चेतना पर दें। उसी क्षण एक क्रांति मालूम पड़ेगी। भीतर कोई चीज जा रही थी बाहर; लौट पड़ी; टर्न अबाउट; बिना कुछ किए। अपने भीतर अनुभव होगा, कोई शक्ति बाहर जाती थी, वापस लौट गई। और वापस लौटकर जब वह स्वयं पर आती है, तो अपूर्व-अपूर्व साक्षात्कार होता है अपनी ही ऊर्जा का।

इस संयम को जो उपलब्ध है; और भाव को, मन को जिसने हृदय में स्थिर कर लिया है। और ऐसी ऊर्जा होगी, तो भाव अपने आप हृदय में स्थिर हो जाता है। और प्राण जिसका मस्तिष्क में ठहर गया है।
इन दो बातों को ठीक से समझ लें।
भाव का अर्थ है, फीलिंग, संवेदना। वह जो हमारे भीतर अनुभव करने की क्षमता है, वह। वह हृदय-क्षेत्र में स्थिर हो जाती है, जब कोई संयम को उपलब्ध होता है। क्यों ऐसा होता है?
हमारे शरीर के भीतर प्रत्येक अनुभूति, प्रत्येक अनुभव के लिए अलग-अलग केंद्र हैं, सेंटर्स हैं, चक्र हैं। और जब भी किसी चक्र की ऊर्जा किन्हीं दूसरे चक्रों में प्रवेश कर जाती है, तो हम करीब-करीब पागल की तरह जीते हैं। और अभी हमारी हालत ऐसी ही है। और अभी हमारी हालत ऐसी ही है।
जैसे एक आदमी मुंह से भोजन करे, समझ में आता है। दांतों से चबाएं; गले
से गटके; पेट से पचाए--समझ में आता है। लेकिन वह आदमी बैठकर केवल खाने का विचार करे, तो खाने का जो भी यंत्र है, वह बिल्कुल उपयोग में नहीं आएगा; और मस्तिष्क, जहां से खाना खाया नहीं जा सकता, वह खाने के काम में लग जाएगा। तो भोजन करना सेरिब्रल हो जाएगा, मस्तिष्कीय हो जाएगा। मस्तिष्क भोजन कर नहीं सकता, लेकिन भोजन करने के भ्रम में पड़ सकता है। और भ्रम अगर भारी हो जाए, तो व्यक्तित्व का सब विखंडित हो जाता है। और ऐसे भ्रम में हम जीते हैं।
कामवासना का केंद्र है। लेकिन लोग मस्तिष्क में कामवासना को धीरे- धीरे, सोच-सोचकर, सोच-सोचकर, कामवासना के केंद्र से हटाकर मस्तिष्क में प्रवेश कर देते हैं। तो मनोचिकित्सकों के पास ऐसे लोग आते हैं, जो कहते हैं, स्वप्न में तो मैं बहुत पोटेंट मालूम पड़ता हूं, बहुत वीर्यवान मालूम पड़ता हूं। जब विचार करता हूं, तो इतनी काम ऊर्जा मालूम होती है! लेकिन जब स्त्री के निकट पहुंचता हूं, तो एकदम इंपोटेंट, निर्वीर्य हो जाता हूं। वह रोज घटता है। उसके घटने का कारण है। क्योंकि उनकी पूरी की पूरी सेक्स सेंटर की जो संभावना थी, वह हटकर मस्तिष्क में केंद्रित हो गई है। तो जब वे सोचते हैं, तब वे बड़े शक्तिशाली मालूम पड़ते हैं। लेकिन जब शक्ति को प्रकट करने का अवसर हो, तब वे एक दम शक्तिहीन हो जाते हैं।
हमारे सारे चक्रों के जो-जो विभाजन हैं, वे सबके सब कनफ्यूज्ड हैं, एक-दूसरे में प्रवेश कर गए हैं। कोई किसी की सुनता नहीं मालूम पड़ता। और कोई चक्र किसी का काम करता है, कोई चक्र किसी का काम करता है। सब उधार हो गया है। तो हम मस्तिष्क से भावना तक करने पर उतर जाते हैं। मस्तिष्क भावना नहीं कर सकता है। हृदय विचार नहीं कर सकता है।
जो जिस चक्र का काम है, अगर उस पर ही पहुंच जाए, तो व्यक्तित्व एकदम संतुलित हो जाता है। और जब ऊर्जा संयम को उपलब्ध होती है, तो प्रत्येक चक्र सिर्फ अपने ही काम को करता है।
अभी पश्चिम में एक बहुत बड़ा साधक, महायोगी था, जार्ज गुरजिएफ। तो वह कहता था, अगर तुम इतना ही कर लो कि तुम्हारा प्रत्येक चक्र शुद्ध हो जाए, कि कामवासना का चक्र केवल कामवासना का ही काम करे, तो भी तुम महाजीवन को उपलब्ध हो जाओगे।
लेकिन हमारे भीतर सब कनफ्यूज्ड है। हमारी हालत ऐसी है, जैसी किसी एक ऐसी मिलिटरी की टुकड़ी की, जिसमें पहरेदार सेनापति बनकर बैठ गया हो; जिसमें सेनापति पहरेदार के पैरों के पास बैठा हो; जिसमें जिनको आज्ञा देनी चाहिए, वे आज्ञा ले रहे हों; जिनको आज्ञा लेनी चाहिए, वे आज्ञा दे रहे हों; और किसी को पता न हो कि कौन कौन है। सब विक्षिप्त हो जाए। ऐसी हमारे चित्त की, चेतना की, हमारे व्यक्तित्व की दशा है।
कृष्ण कहते हैं, जब कोई संयम को उपलब्ध हो और भाव हृदय-देश में स्थित
हो जाए, मन हृदय-देश में ठहर जाए और प्राण मस्तक में... ।
ये दो बातें हैं। भाव, अनुभव करने की जो प्रतीति है; क्या कभी आपने ख्याल किया है कि आप अनुभव कहां से करते हैं? आकाश में पूर्णिमा का चांद है, आप उसके नीचे खड़े हैं। आंख उठाकर आकाश को देखते हैं, तो क्या आपका

मस्तिष्क कहता है कि बहुत सुंदर या आपके हृदय के पास कोई स्फुरणा होती है? यह आपको जांचना पड़े।
और आप हमेशा पाएंगे, सौ में निन्यानबे मौके पर, कि यह मस्तिष्क ही है,
जो कह रहा है, बहुत सुंदर। और यह भी इसलिए नहीं कह रहा है कि इसे बहुत सुंदर का अनुभव हो रहा है। यह सिर्फ इसलिए कह रहा है कि इसने बार-बार पूर्णिमा के दिन लोगों को कहते सुना है कि बहुत सुंदर। किताबों में पढ़ा है, कविताओं में पढ़ा है, फिल्मों में देखा है, नाटकों में सुना है--बहुत सुंदर। यह भी दोहरा रहा है। यह ग्रामोफोन रिकार्ड की तरह इसके मस्तिष्क में भर गया है। इसको दोहरा रहा है। अगर इसे अनुभव हो, तो मस्तिष्क में नहीं होगा, हृदय में होगा। और जब अनुभव होगा, तो शायद आदमी शब्द भी न देना चाहे।
सुना है मैंने, लाओत्से के साथ एक मित्र रोज घूमने जाता था सुबह। मित्र का एक अतिथि भी साथ आ गया और दोनों लाओत्से के साथ घूमने गए। मित्र तो जानता है लाओत्से को कि वह चुप ही रहना पसंद करता है, वर्षों में कभी बोलता है। लेकिन परदेशी अतिथि को कुछ पता नहीं है। दोनों को चुप देखकर वह भी काफी चुप रहा। फिर एक भूल हो गई।
सुबह जब सूरज निकला और वृक्षों के ऊपर उठने लगा, और पक्षी गीत गाने लगे, और फूल खिल गए, और सुगंध भर गई उस वन-पथ पर, तो उसने कहा, कितनी सुंदर सुबह है! किसी ने उत्तर न दिया। लाओत्से ने जरूर गौर से उसे देखा, फिर चल पड़ा। मित्र थोड़ा घबड़ाया; उसने जरा संकोच से अपने अतिथि की तरफ देखा; वह भी चल पड़ा। वह अतिथि थोड़ा हैरान हुआ कि किसी ने इतना भी न कहा कि हां, ठीक कहते हो, बड़ी सुंदर सुबह है!
लौटकर लाओत्से ने अपने मित्र को कहा, कल से इस आदमी को मत लाना; बहुत बातूनी मालूम पड़ता है। दो घंटे में उसने इतना ही कहा था, बड़ी सुंदर सुबह है। उसके मित्र ने, लाओत्से के मित्र ने कहा, ज्यादा बातूनी तो नहीं है ऐसा। एक ही बात कही है।
लाओत्से ने कहा, लेकिन अगर उसे सुबह सुंदर लगी थी, तो कहने का ख्याल भी
न आता। अगर सुबह सुंदर लगी थी, तो वह लीन हो गया होता। वह भूल ही गया होता कि सुबह है। वह खो गया होता। उसे कुछ लगा-वगा नहीं है। सिर्फ आदत, आदतन, सुबह सुंदर है! और फिर हमको भी तो पता था, हम भी वहीं मौजूद थे। उसने कहकर सिर्फ सौंदर्य को बाधा पहुंचाई। उस सन्नाटे में, जहां पक्षियों के गीत थे, और जहां सूरज की किरणें थीं, और सुबह की सुगंधित हवाएं थीं, उसकी यह बात बड़ी कुरूप थी, और बेमानी थी, और सन्नाटे को तोड़ती थी, उस मौन को खंडित करती थी, कि सुबह बहुत सुंदर है। यह वक्तव्य बड़ा असुंदर था, अग्ली स्टेटमेंट था।
निश्चित ही, जब आपको कोई चीज सुंदर मालूम पड़ेगी, बुद्धि ठहर जाएगी, हृदय अनुभव करेगा। हो सकता है, हृदय की धड़कन बढ़ जाए। हो सकता है, रक्तचाप तेजी से हो जाए। हो सकता है, रोएं खड़े हो जाएं। लेकिन यह प्रतीति हृदय की होगी; यह बुद्धि की नहीं होगी।
लेकिन हमने हृदय से कुछ भी अनुभव करना बंद कर दिया है। हम सब बुद्धि
से ही अनुभव किए जा रहे हैं। और बुद्धि अनुभव करने में असमर्थ है। वह उसका काम नहीं है।
संयमी व्यक्ति का भाव हृदय में स्थापित हो जाता है। कैसे होगा स्थापित? या तो संयम को उपलब्ध हों, तो हो जाए; या अगर भाव को भी हृदय में स्थापित कर लें, तो भी संयम का मार्ग सुगम हो जाएगा।
तो जब भी अनुभव करें, ख्याल रखकर करें कि हृदय से अनुभव कर रहे हैं। जब किसी से कहें कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तो यह पहले मत कहें; पहले हृदय के पास किसी सनसनी को दौड़ जाने दें, कोई लहर। और जब लहर हृदय को पकड़ ले, तभी अगर जरूरी लगे, तो कहें। और अगर दूसरा बिना कहे समझ सकता हो, तो चुप ही रहें; उसे समझने का मौका दें।
अक्सर हम शब्दों से बताते नहीं, छिपाते हैं। अक्सर जब प्रेम चुक जाता है, तब हम कहते हैं कि मैं बहुत प्रेम करता हूं। यह केवल सब्स्टीट्यूट है।
जब प्रेम होता है, तो उसे कहने की जरूरत नहीं होती। आंखें कह देती हैं।
पलकें कह देती हैं। चेहरे का भाव कह देता है। हाथ का इशारा कह देता है।

उठना-बैठना कह देता है। प्रेमी के पास आकर बैठना कह देता है कि मैं प्रेम करता हूं।
लेकिन जब यह सब चुक जाता है, तब सिर्फ शब्द रह जाते हैं, कोरे और खाली, चले हुए कारतूस जैसे, जिनके भीतर कोई बारूद-वारूद नहीं है। तब हम कहते हैं, मैं बहुत प्रेम करता हूं! यह सिर्फ समझाना है। सिर्फ समझाना है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही है कि जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी,
तब भी तुम मुल्ला मुझे प्रेम करोगे या नहीं? मुल्ला ने कहा, बिल्कुल करूंगा। जरूर करूंगा। तेरे पैरों की धूल सिर पर रखूंगा। फिर एकदम से कहा कि तू अपनी मां जैसी तो नहीं हो जाएगी? इतना ही ख्याल रखना, अपनी मां जैसी मत हो जाना!
यह जब उसकी पत्नी पूछ रही है, तब वह बहुत बीमार पड़ी थी। वह सिर्फ खोज रही है। फिर वह पूछती है उससे कि मुल्ला, अगर मैं मर जाऊं, तो सच-सच कहो, दूसरा विवाह तो नहीं करोगे! मुल्ला ने कहा, ऐसी बातें नहीं पूछा करते। तेरी तबीयत ठीक नहीं है। ऐसी बातें नहीं पूछा करते। पर पत्नी पीछे पड़ गई, तो मुल्ला ने कहा, बड़ी मुश्किल है। अगर मैं कहूं कि करूंगा, तो कहना जंचेगा नहीं; और अगर कहूं कि नहीं करूंगा, तो वह सच न होगा।
कहते हैं कि मुल्ला किसी स्त्री को प्रेम का निवेदन किया था। और उसकी
उस प्रेयसी ने पूछा था कि मुल्ला, तुम ऐसे-ऐसे पत्र लिखते हो कि मैं मर जाऊंगा अगर तू मुझे न मिली; क्या सच ही तुम मर जाओगे अगर मैं तुम्हें न मिली? मुल्ला ने कहा, दिस हैज बीन माई यूजुअल हैबिट। यह तो मैं सदा करता रहा हूं। यह सदा की मेरी आदत है। जब भी किसी से मैंने प्रेम किया और अगर वह मुझे न मिला, तो मैं फौरन मर गया!
उस स्त्री ने प्रेम नहीं किया मुल्ला से, विवाह भी नहीं किया। और कहते हैं, मुल्ला ने अपना वचन निभाया, यद्यपि सत्तर साल बाद! मर गया सत्तर साल बाद! लिख गया अपनी वसीयत में कि कोई यह न समझे कि मैं झूठा हूं। मैंने वचन दिया था अपनी प्रेयसी को कि अगर तूने मुझसे विवाह न किया, तो मैं मर जाऊंगा, और अब मैं मर रहा हूं। सत्तर साल बाद!
हमारा सारा प्रेम, प्रेम के दावे, मर जाने के वचन, आश्वासन, कहीं भी हृदय से आते नहीं मालूम पड़ते। सिर्फ बुद्धि का हिसाब-किताब है। और जितना कम होता है हृदय, बुद्धि से हमें उतना ज्यादा सब्स्टीट्यूट, परिपूरण करना पड़ता है।
तो जितना कम प्रेमी, उतना ज्यादा गुहार मचाए रखता है कि मैं प्रेम करता हूं, मैं प्रेम करता हूं, मैं प्रेम करता हूं। सच में जो प्रेमी है, चुप होना भी काफी है। और अगर चुप्पी न कह सके प्रेम को, तो शब्द कभी भी न कह पाएंगे। भाव जब होता है, तो रोआं-रोआं कहता है; उपस्थिति कहती है।
तो जब आप किसी के प्रेम में हों, तो भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में
मत लाएं। जब आप प्रार्थना में हों, तो भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में मत लाएं। जब आप सौंदर्य को देख रहे हों--सूरज निकला है, फूल खिल गया है; कोई आंखें हैं, सुंदर हैं--तब भाव को मौका दें, बुद्धि को बीच में मत लाएं।
भाव इतना ही कहेगा, आंखें सुंदर हैं। बुद्धि कहेगी, इन आंखों को घर में कैद करने का कोई उपाय है या नहीं! भाव इतना ही कहेगा, प्यारा है फूल; अनुभव करेगा। बुद्धि कहेगी, तोड़ो। क्योंकि बुद्धि जहां भी प्यारा कुछ लगे, उसको तोड़ना चाहती है। बुद्धि बहुत हिंसात्मक है।
अगर सच में ही किसी ने फूल को प्रेम किया है, तो मुश्किल है सोच पाना
कि उसे तोड़ेगा कैसे? लेकिन आप जब भी फूल को प्रेम करते हैं, तो जो पहला काम आप करते हैं, वह फूल को तोड़ने का है। अजीब प्रेम है! अगर यही प्रेम है, तो हत्या करना किसे कहते हैं?
जब भी फूल प्यारा लगता है, तो पहला काम कि तोड़ो झटके से; उसके जीवन को नष्ट करो। उसका जो जीवंत रूप था, हटाओ। और एक मुर्दे फूल को खीसे में लगाकर घूमो। शायद फूल से आपको बिल्कुल प्रेम नहीं है। शायद इस फूल को भी आप अपने अहंकार की शोभा और आभूषण बनाना चाहते हैं।
अगर कोई स्त्री मुझे सुंदर लगे, तो कैसे जल्दी इसे अपने घर में कैद करूं, यह बुद्धि का ख्याल है। बुद्धि इसी भाषा में सोचती है। भाव नहीं

सोचता। भाव को अगर कोई सुंदर लगता है, तो कारागृह में डालने का कोई सवाल ही नहीं है। अगर भाव को कोई सुंदर लगता है, तो कारागृह में हो भी, तो उसे मुक्त कर देने की कामना पैदा होती है। अगर किसी को फूल सुंदर लगा है और जमीन पर पड़ा है, तो वह उसे उठाकर कहीं पानी में रख देना चाहेगा कि थोड़ी देर और ज्यादा जिंदा रह जाए।
भाव की प्रक्रिया अलग है। भाव आपको कठिनाई में नहीं डालता। लेकिन बुद्धि आपके ऊपर इतनी जोर से कसकर बैठी है कि भाव बोल भी नहीं पाता कि बुद्धि अपने वक्तव्य देने शुरू कर देती है। और भाव कह भी नहीं पाता कि क्या अनुभव हुआ, बुद्धि योजना बनाने लगती है कि क्या करना चाहिए।
नहीं; सौंदर्य का अनुभव बुरा नहीं है, लेकिन सौंदर्य को कैद करने की
जो बुद्धि है, वह पाप है। और अगर हम इस पृथ्वी पर किसी दिन भाव से जीना शुरू करें, और किसी के सौंदर्य को अगर आप सड़क पर खड़े होकर देखने लगें, तो वह बुरा अनुभव नहीं करेगा; नहीं करना चाहिए। क्योंकि परमात्मा की इस देन को अगर कोई आनंद से देख रहा है, तो हर्ज कहीं भी, कुछ भी नहीं है। लेकिन अभी वह बुरा अनुभव करता है, क्योंकि सबको पता है कि देखना केवल प्रारंभ है, केवल शुरुआत है एक लंबे नर्क की। इसलिए देखने के नियम हैं।
अगर मैं सरसरी नजर से आपको देखूं, तो कोई एतराज नहीं। अगर जरा समय से ज्यादा रुक जाऊं, तो खतरा शुरू हो जाता है। क्योंकि उतनी देर रुकने का मतलब है, नजर उतनी देर रुकी, उसका मतलब है कि अब मैं किसी कारागृह में डालने की योजना बना रहा हूं, या किसी वासना की तृप्ति पर उतर आया हूं। इसलिए हमारी आंख को भी हमें हिसाब में रखना पड़ता है। किसको कितनी देर देखो, हिसाब रखना पड़ता है।
अगर भाव कह भी रहा हो कि दो क्षण रुक जाओ, शायद ऐसा सौंदर्य फिर दिखाई
न पड़े, शायद परमात्मा की ऐसी कुशलता फिर दिखाई न पड़े, तो भी बुद्धि कहेगी कि इतनी ज्यादा देर रुके तो खतरा हो सकता है। दूसरा भी सचेत हो जाता है! दूसरा भी सचेत हो जाता है।
किसी को घूरकर देखिए। घूरकर देखना ही बुरी बात है। घूरकर देखने का मतलब ही बुरा हो जाता है। हम तो कहते ही उस आदमी को लुच्चा हैं, जो घूरकर देखता है। लुच्चा का मतलब सिर्फ होता है, घूरकर देखने वाला। और कुछ मतलब नहीं होता इस शब्द का। लुच्चा, आंख से बना शब्द है, लोचन से। जो आंख गड़ाकर देखता है, वह लुच्चा। वैसे आलोचक का भी यही मतलब होता है। वह भी जरा आंख गड़ाकर चीजों को देखता है, कि आप क्या कह रहे हैं, वह जरा आंख गड़ाकर देखता है--क्रिटिक, आलोचक। आलोचक और लुच्चे में बहुत फर्क नहीं है। लुच्चा जरा गलत जगह लगा देता है, आलोचक जरा ठीक जगह लगा देता है।
आंख को गड़ाकर देखना, बुद्धि आ गई। दूसरी तरफ भी आ गई, इस तरफ भी आ गई; और अड़चन शुरू हो गई।
भाव! एक बच्चा अगर किसी सुंदर स्त्री को खड़ा होकर देखता रहे, तो उसे कुछ बेचैनी न होगी। क्योंकि अभी सिर्फ भाव है। भाव इनोसेंट है; भाव बहुत निर्दोष है, पवित्र है। लेकिन यही बच्चा कल जवान हो जाएगा। और यही घूरकर देखेगा, तो कठिन हो जाएगा। क्यों? अब सिर्फ भाव न रहा। अब बुद्धि योजना बनाने लगेगी और वासना के उपयोग में आने लगेगी।
हैरान होंगे जानकर आप, भाव वासना का जन्मदाता नहीं है। अगर शुद्ध भाव में कोई ठहर सके, तो वासना तिरोहित हो जाती है। वासना का जन्म होता है बुद्धि और वृत्ति के सहयोग से। भाव और वृत्ति के बीच कभी कोई सहयोग नहीं होता। बुद्धि और वृत्ति के बीच सहयोग हो जाता है। और बुद्धि रास्ता बताती है कि यह है मार्ग; जाओ बाहर। खोजो। पाने का उपाय करो। पा लोगे। ये-ये विधियां हैं। ये-ये रीतियां हैं। इस तरह चलोगे, तो सफल हो जाओगे।
और जब भी कोई व्यक्ति बुद्धि की मानकर चलने लगता है, धीरे-धीरे भाव का केंद्र सो जाता है। और जिसका भाव का केंद्र सो गया, वह चलती-फिरती लाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह एक कंप्यूटर हो सकता है कि गणित का हिसाब लगा देता हो, दफ्तर का काम कर देता हो, दुकान चला लेता हो। इंजीनियर हो, कि डाक्टर हो, कि वकील हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह सिर्फ एक कंप्यूटर

है। यह जो उसकी खोपड़ी कर रही है, यह तो अब कंप्यूटर बहुत बेहतर ढंग से कर देगा।
कंप्यूटर और आदमी में एक ही फर्क है कि कंप्यूटर अभी तक भाव नहीं कर सकता; बुद्धि का तो सब काम कर देता है। अगर आप भी सिर्फ बुद्धि रह गए हैं, तो आप बहुत जल्दी रिप्लेस कर दिए जाएंगे; आप बहुत जल्दी गैर-जरूरी हो जाएंगे। और किसी कबाड़खाने में आपको उठाकर रख दिया जाएगा। क्योंकि आप महंगे भी हैं, खर्चीले भी हैं, नान-इकोनामिकल भी हैं। कंप्यूटर बेहतर है। वह भोजन करता नहीं या बहुत कम भोजन करता है। थोड़ी-सी बिजली लेता है। टूटता- फूटता नहीं। भूल-चूक कभी नहीं करता। और हजार आदमी जिस काम को कर सकें लाखों घंटों में, वह क्षण में कर देता है। तो आदमी तो आउट आफ डेट है। कंप्यूटर उसकी जगह आ जाएगा।
आदमी के बचने की एक ही संभावना है कि आदमी अगर अपने भाव के केंद्र को पुनर्जाग्रत कर ले, तो ही कंप्यूटर से जीत सकता है। अन्यथा जीतने का अब कोई उपाय नहीं है।
और ध्यान रहे, आदमी आदमी से लड़ता रहा, यह एक बात थी। अब पहली दफा आदमी मशीन से लड़ेगा। और मशीन से लड़कर आदमी जीतेगा नहीं, क्योंकि मशीन सब कुछ आपसे ज्यादा कुशलता से कर सकती है। सिर्फ एक काम मशीन नहीं कर सकती, वह भाव है।
लेकिन भाव हमारे पास नहीं है। भाव का हमें पता ही नहीं। हृदय में हम सिर्फ एक ही बात जानते हैं कि वह जो धड़कन होती रहती है। वह भी हम तभी जानते हैं, जब कोई बीमारी, कोई अड़चन आ जाती है। लेकिन वह धड़कन तो सिर्फ फुफ्फुस है। वह धड़कन तो सिर्फ पंपिंग स्टेशन की वजह से है। श्वास को, खून को पंप कर रही है, इसलिए धड़कन है। वह हृदय नहीं है। उस धड़कन के पास एक और धड़कन भी है, जिसको नापा नहीं जा सकता। वह भाव की धड़कन है।
लेकिन भाव को फैलाएं, मौका दें, अवसर दें, और धीरे-धीरे भाव को केंद्रित करें, तो वह संयम में सहयोगी बन जाता है। या संयम हो, तो वह भाव में सहयोगी बन जाता है। साधना के जगत में सब चीजें अन्योन्याश्रित हैं, इंटरडिपेनडेंट हैं। कहीं से भी शुरू करें, दूसरी चीज सहयोगी हो जाती है। और प्राण को मस्तक में!
प्राण से अर्थ है, जिसे बर्गसन ने एलान वाइटल कहा है, जीवन शक्ति कहा है, भारत उसे सदा से प्राण कहता रहा है। प्राण है हमारे भीतर वह ऊर्जा, जिसके सहारे हम जीते हैं। और जब यह शरीर छूटता है तो शरीर से कुछ भी नहीं जाता, सिर्फ प्राण चला जाता है। लेकिन वह प्राण अगर मस्तक में स्थापित होकर जाए, तो परम गति को उपलब्ध होता है। और अगर मस्तक में स्थापित न हो पाए, तो जिस केंद्र पर स्थापित होता है, उसी गति को उपलब्ध होता है।
परम गति, कृष्ण किसे कहते हैं, वह भी हम समझ लें। परम गति उसे ही कहा है, जिसके आगे फिर कोई गति नहीं। परम गति उसे ही कहा है, जो अंतिम गति है, दि अल्टिमेट है, जिसके आगे कुछ भी नहीं है।
इसलिए मोक्ष ही परम गति है, या ब्रह्म-उपलब्धि ही परम गति है, या निर्वाण ही परम गति है। बाकी सब गतियां परम नहीं हैं। क्योंकि उनके बाद और गतियां होंगी, और गतियां होंगी, और यात्राएं, और यात्राएं। परम यात्रा तो वही है, जिसके आगे फिर कोई मंजिल शेष नहीं रह जाती।
अगर प्राण इकट्ठा हो जाए भृकुटी-मध्य में, तो फिर कोई दूसरी गति में मनुष्य को नहीं जाना पड़ता। और जिस जगह केंद्रित होता है, उस जगह से पता चलता है कि किस गति में आदमी जाएगा।
प्रत्येक व्यक्ति का प्राण शरीर के अलग-अलग बिंदुओं से निकलता है। सभी व्यक्ति एक ही बिंदु से नहीं मरते। जिन व्यक्तियों का प्राण भ्रू- मध्य में इकट्ठा हो जाता है, उनका प्राण सहस्रार से निकलता है। आज्ञा-चक्र में जिनका प्राण स्थापित हो जाता है, तो जैसे ही आज्ञा-चक्र में प्राण का प्रवेश होता है, यह जो अंतिम चक्र है हमारा सहस्रार, दि सेवेंथ, उसे तोड़कर निकल जाता है। इसलिए परम ज्ञानियों की अक्सर खोपड़ी भी टूट जाती है उस जगह से। जरूरी नहीं है कि टूटे ही; अक्सर टूट जाती है।

लेकिन हमने इसीलिए नियम बना रखा है कि जब किसी को, मुर्दे को हम जलाने जाते हैं, तो उसकी कपाल-क्रिया कर देते हैं, खोपड़ी फोड़ देते हैं। वह खुद तो नहीं फोड़ पाए, काफी देर पहले मर गए। अब हम फोड़ रहे हैं! मुर्दे की खोपड़ी फोड़ रहे हैं। उसका कोई मतलब नहीं है। लेकिन सूचक है।
इस मुल्क ने जाने हैं ऐसे लोग, जिनकी मरते वक्त अपने आप खोपड़ी टूट जाती है। वह सूचना है कि वे परम गति को उपलब्ध हो गए। अब हम दीन-हीन, गरीब लोग हैं। मैं मर जाऊं और खोपड़ी अपने से न टूटे, तो एक बेटे को अपने पीछे छोड़ जाता हूं कि तू मेरी खोपड़ी तोड़ देना मरने के बाद! यह वैसे ही है, जैसे मरने के बाद कोई दवा दे, इंजेक्शन लगाए। इस खोपड़ी तोड़ने का कोई भी अर्थ नहीं है। यह बड़ी दीनता की सूचक है। यह खबर दे रही है कि जो होना था, वह नहीं हुआ। अब वे मुर्दे के साथ एक खेल कर रहे हैं।
लेकिन जिन्होंने यह रिवाज जारी किया, उन्हें पता था कि कभी-कभी कोई व्यक्ति उस छिद्र से भी प्राण को छोड़ता है। उस छिद्र से तभी प्राण छूटता है, जब प्राण भ्रू-मध्य में स्थापित होता है, अन्यथा नहीं छूटता।
यही प्राण हमारी जीवन ऊर्जा है, लाइफ एनर्जी है। हम इसी के द्वारा गति करते हैं। अगर भ्रू-मध्य तक वह नहीं पहुंचा, तो फिर कहीं से भी छूटे, हमें दूसरे जन्म को ग्रहण करना पड़ेगा। और जितने नीचे केंद्र से छूटेगा, उतनी नीची गति में हमारी यात्रा होती है। उतने ही निम्न मन और निम्न प्राण को और निम्न देह को लेकर हम फिर जीवन को चलाते हैं।
अक्सर अधिक लोगों का प्राण काम-केंद्र से ही छूटता है। क्योंकि वही हमारा केंद्र है सर्वाधिक सक्रिय। और जब काम-केंद्र से हमारा प्राण छूटता है, तो हम कामवासना से भरे हुए फिर नए जीवन में प्रवेश कर जाते हैं। कामवासना समस्त वासनाओं का आधार है, मूल है। फिर सब वासनाएं उसके साथ पुनः पैदा हो जाती हैं। और एक बार नहीं अनेक बार मरकर भी हम वही भूल करते हैं कि हम ठीक से नहीं मरते।
ठीक से मरना एक कला है। ठीक से जीना तो एक कला है ही, लेकिन ठीक से मरना
भी एक बड़ी कला है। हालांकि जो ठीक से जीते हैं, वही ठीक से मर पाते हैं। इसलिए हम ऐसा कह सकते हैं कि ठीक से जीना, ठीक से मरने की कला का प्राथमिक चरण है। शिखर और सेतु तो ठीक से मरना है! हाउ टु डाइ राइटली? सम्यक मृत्यु कैसे फलित हो?
कृष्ण उसी सम्यक मृत्यु की चर्चा कर रहे हैं। वे कहते हैं, प्राण स्थिर हो जाए भ्रू-मध्य में।
और ध्यान की कोई भी विधि का उपयोग करें, प्राण भ्रू-मध्य में स्थापित होने लगता है। कोई भी ध्यान की प्रक्रिया करें--भजन में लीन हों, कि प्रार्थना में, कि नमाज में, कि मौन बैठें, कि नाम स्मरण करें--कोई भी उपाय करें, जब भी ध्यान फलित होता है, तो प्राण भ्रू-मध्य की तरफ दौड़ने लगते हैं। वही ध्यान की सफलता का सूचक है, लक्षण है, कि अब भ्रू-मध्य की तरफ ध्यान दौड़ना शुरू हो गया, तो ध्यान सफल हो रहा है, स्वीकृत हो रहा है; प्रभु के मार्ग पर स्वीकृत होता जा रहा है।
जो पुरुष ऐसे क्षण में ब्रह्म को उच्चार करता हुआ, मुझे चिंतन करता हुआ, शरीर को त्याग जाता है, वह परम गति को उपलब्ध होता है।
यह बात थोड़ी समझनी पड़ेगी। जो पुरुष ओम, ऐसे अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चार करता हुआ... ।
इससे बहुत बड़ी भ्रांति होती है। क्योंकि हम एक ही तरह का उच्चारण जानते हैं, जो हम करते हैं। हमें उस उच्चार का कोई भी पता नहीं, जो होता है, दैट व्हिच हैपेंस।
हम ओम का उच्चार कर सकते हैं, चेष्टा से। लेकिन जो ओम का उच्चार चेष्टा से होगा, वह हृदय तक नहीं जाता। क्योंकि चेष्टा कंठ से नीचे नहीं उतरती। कंठ से जो पैदा होता है, वह कंठ तक रहेगा। होंठ से जो पैदा होता है, वह होंठ तक रहेगा। इसलिए इस तरह के उच्चार को आहत नाद कहा है। आहत नाद का अर्थ है, जो दो चीजों के टकराने से पैदा होता है। दोनों होंठ टकराते हैं, आवाज पैदा होती है। जीभ तालू से टकराती है, उच्चार होता है। कंठ की मांस-पेशियां सिकुड़ती हैं, टकराती हैं, उच्चार पैदा होता है।

एक तरह की ध्वनि हम जानते हैं, जो आहत नाद है। आहत नाद का अर्थ है, दो चीजों के संघर्षण से पैदा हुआ शब्द, ध्वनि।
कृष्ण जिस उच्चार की बात कर रहे हैं, वह है अनाहत नाद। अनाहत नाद का अर्थ है, बिना दो चीजों के टक्कर के पैदा हुआ नाद।
हम ऐसे किसी नाद को नहीं जानते। लोग कहते हैं, एक हाथ से ताली नहीं बजती। ठीक कहते हैं। ताली बजे भी, तो दूसरा हाथ जरूरी ही होगा। हाथ न हो, तो कोई दूसरी चीज जरूरी होगी। लेकिन दूसरा जरूरी होगा। एक हाथ से ताली बजाइएगा कैसे? बजने के लिए दूसरा चाहिए, संघर्षण चाहिए।
जगत में जितना नाद है, सब आहत नाद है। चाहे वृक्षों से दौड़ती हुई सरसराती हवा, या सागर की लहरों की टक्कर चट्टानों से, कि बांसों के झुरमुट में होती गूंज, कि पक्षियों के गीत, कि आकाश की गड़गड़ाहट, कि आदमी की वाणी, कि सितार पर गूंजता हुआ स्वर, कि पानी की कल-कल, जो कुछ भी है इस जगत में, सब आहत नाद है।
एक नाद और भी है इस जगत में जो अनाहत है, वही ओम, वही ओंकार है। लेकिन
वह तब पैदा होता है, जब भीतर सब संघर्ष बंद हो जाता है।
इसे ठीक से समझ लें।
जब तक भीतर किसी तरह का संघर्ष और कांफ्लिक्ट है, तब तक आहत नाद ही होता है। अब एक आदमी बैठकर अगर भीतर कहे, ओम-ओम, तो वह आहत नाद है। वह ओम नहीं है वह, जो अपने से उच्चरित होता है, जो गूंज उठता है प्राणों से और हम केवल साक्षी होते हैं, कर्ता नहीं होते।
कृष्ण कहते हैं, जो पुरुष ओम, ऐसे इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चार करता हुआ... ।
यहां कर्ता की तरह करता हुआ नहीं, यहां समस्त अस्तित्व से ओम का उच्चार होता हुआ, ज्यादा ठीक होगा कहना। यहां सारी प्राण ऊर्जा ओम का उच्चार होती हुई, ओम का उच्चार बनकर जब गतिमान होती है, तो परम गति उपलब्ध होती है।
कभी अगर एक क्षण भी ऐसा अवसर मिल जाए, जब भीतर कोई संघर्षण न हो, परम मौन हो, कोई शब्द न हो, कोई स्वर न हो, तब भीतर ही आंखों और कानों को बंद करके सुनना, क्या गूंजता है भीतर? शीघ्र ही एक अनूठी ध्वनि सुनाई पड़नी शुरू हो जाएगी, जो कभी नहीं सुनी। ओम तो सिर्फ उसकी कापी है समझाने को, प्रतिलिपि है; कार्बन कापी है। ओम से पता नहीं चलता; सिर्फ इशारा है। जो गूंज वहां अनुभव होती है, वह करीब-करीब ऐसी है, जैसा ओम के उच्चार से मालूम पड़े। पर वह ठीक ऐसी नहीं है। निकटतम, एप्रॉक्सिमेटली, ऐसी है।
इसलिए अनेक लोगों ने उसे अनेक तरह से समझा है। हिंदू ओम के उच्चार से समझे हैं। हिब्रू, यहूदी, मुसलमान उसी को आमीन की तरह समझे हैं। वह ओम, जो हमने ओम समझा, वह भीतर की ध्वनि को सूफियों ने समझा, आमीन। वह आमीन जैसा भी सुनाई पड़ सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।
ये दो ही शब्द हैं इस समय जमीन पर, आमीन और ओम। आधे धर्म दुनिया के आमीन के ख्याल में हैं, आधे धर्म दुनिया के ओम के। भारत में जो धर्म पैदा हुए, वे सब ओम के ख्याल में हैं। और उस ख्याल में कोई और कारण नहीं है। जब हमें पता है कि ओम, जो जब पहली दफे हमें वह ध्वनि सुनाई पड़ेगी, तो ओम जैसी सुनाई पड़ेगी। जिनको पता है आमीन, उन्हें आमीन जैसी सुनाई पड़ जाएगी। लेकिन ये दोनों ही केवल फीकी प्रतिध्वनियां हैं उस ध्वनि की। स्मृति से, बुद्धि से समझा गया उच्चार है। वह इन दोनों से भिन्न और दोनों से मिलती-जुलती है। उस ध्वनि को अनाहत कहा है, क्योंकि वह बिना किसी चीज से टकराए पैदा होती है। वह अस्तित्व की ध्वनि है। वह अस्तित्व के होने से ही पैदा हो रही है।
इस ध्वनि को उच्चार करता हुआ जो पुरुष मेरे चिंतन में रमा, शरीर को त्यागकर जाता है... ।
हम शरीर को त्याग नहीं करते, हमें शरीर त्याग करना पड़ता है। बड़ी मजबूरी में, बड़ी विवशता में, बड़ी मुश्किल से; छीना-झपटी होती है हमसे। आपने कथाएं पढ़ी होंगी, कहानियां कहती हैं, धर्मगुरु समझाते हैं, वे कहते हैं कि

जब मौत आती है, तो मौत के यमदूत आते हैं और बड़ी जोर-जबरदस्ती करके आत्मा को छीनकर ले जाते हैं।
उलटी है यह बात। कोई छीनकर आत्मा नहीं ले जाता। आप ही शरीर को इतने जोर से पकड़ते हैं कि छीना-झपटी हो जाती है। प्राण जाना चाहते हैं। कोई उस तरफ से नहीं खींचता आपको। किसी को खींचने की जरूरत नहीं है। प्राण जाना चाहते हैं। वक्त आ गया। समय चुक गया। शरीर व्यर्थ हो गया। और आपका मन छोड़ना नहीं चाहता। आप पकड़े हैं। नाव छूट चुकी, उसका इंजन दौड़ने लगा; और आप किनारे को पकड़े हुए हैं। जो छीना-झपटी होती है, वह उस तरफ से नहीं, इसी तरफ से होती है, हमारे द्वारा होती है। हम शरीर को फिर भी पकड़े रहना चाहते हैं, हम फिर भी चीखते-चिल्लाते हैं। और बच जाएं, एक क्षण और मिल जाए। एक श्वास और ले लूं। हम त्याग नहीं कर पाते शरीर का।
अब यह बहुत मजे की बात है। न हम भोग कर पाते, न हम त्याग कर पाते। क्योंकि अगर भोग ही कर लिया हो, तो त्याग करने में कठिनाई नहीं आनी चाहिए। क्योंकि जिस चीज को हम भोग लेते हैं, उसे छोड़ने की तैयारी हो जाती है। जब पेट भर जाता है, तो आदमी थाली छोड़ देता है। लेकिन जिंदगीभर इस शरीर में रहकर भोग भी नहीं कर पाते कि थाली छोड़ सकें। जब वक्त आए छोड़ने का, तो हम कह सकें, भर गया पेट।
न हम भोग कर पाते, न हम त्याग कर पाते। हम बड़े अजीब लोग हैं। जब भोग का समय होता है, तब हम भोग को पोस्टपोन करते रहते हैं, कल कर लेंगे! इंतजाम पहले कर लें, फिर भोग कर लेंगे। फिर इंतजाम में जिंदगी चुक जाती है, फिर मौत सामने आ जाती है, त्याग का वक्त आ जाता है। लेकिन अभी हमने भोग ही नहीं किया, तो त्याग कैसे करें! तो पकड़ने की चेष्टा चलती है।
ध्यान रहे, अगर कोई आदमी विवेकपूर्वक, बुद्धिमानीपूर्वक, होशपूर्वक भोग कर ले, तो त्याग करने में कठिनाई नहीं आनी चाहिए। क्योंकि शरीर में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे पकड़ने की आकांक्षा शेष रह जाए। सिर्फ अज्ञान ही पकड़ा सकता है। और भोग न कर पाने के कारण त्याग की क्षमता नहीं हो पाती। भोग करें। और ठीक से भोग कर लें। और होशपूर्वक भोग कर लें। और देख लें
कि शरीर क्या दे सकता है। और जान लें कि शरीर से क्या मिल सकता है। जल्दी ही आप इस नतीजे पर पहुंच जाएंगे कि शरीर से कुछ भी मिलने वाला नहीं है। अगर कुछ खोजना है, तो किसी और दिशा में खोजना पड़ेगा। फिर शरीर को छोड़ने में कठिनाई नहीं होती।
और जिसको यह प्रतीति हो जाए कि शरीर से कुछ मिलता नहीं, कुछ मिलेगा नहीं, वह तत्क्षण--तत्क्षण शरीर को त्यागने को तैयार हो सकता है। और मृत्यु तब जब आए, तो वह सहज स्वीकार कर सकता है कि ठीक है, आ जाओ। मैं तो तैयार ही था। इस शरीर को मैं देख चुका। इसमें कहीं कुछ भी नहीं है, जो पाने योग्य है। और कहीं भी कुछ भी नहीं है, जिसे खोने का कोई भय हो। मैं शरीर को देख और जान चुका हूं। ऐसे व्यक्ति को संयम भी आसान हो जाता है। और ऐसे व्यक्ति को अंतिम क्षण में शरीर का त्याग भी सरल हो जाता है।
शरीर को त्यागकर जाता है ऐसा जो पुरुष, वह परम गति को प्राप्त होता है।
परम गति, यानी जिसके आगे फिर और कोई गति नहीं है। जहां से लौटना नहीं
है, जिसके आगे जाना नहीं।
शब्द बड़ा अदभुत है। गति का तो मतलब होता है मूवमेंट। गति का अर्थ होता
है मूवमेंट, चलना, बदलना, परिवर्तन। परम गति का क्या मतलब होगा? वहां तो कोई चलना नहीं होता, कोई मूवमेंट नहीं; कोई जाना नहीं, कोई आना नहीं।
परम गति शब्द कंट्राडिक्टरी है, विरोधी है। असल में परम कहना और गति कहना, दो विरोधी शब्दों का एक साथ प्रयोग करना है। कहना कि अल्टिमेट मूवमेंट! मूवमेंट कभी भी अल्टिमेट नहीं हो सकता। क्योंकि गति का अर्थ ही होता है कि वह अभी किसी तरफ हो रही है। गति का अर्थ ही होता है कि अभी हो रही है। तो जिस तरफ हो रही है, वहां होगा अंत। अभी अंत नहीं हो गया। गति स्वयं में कभी अंत नहीं होती। अंत कहीं आगे होगा, जिसकी तरफ गति होती है। परम गति विरोधी शब्द है। लेकिन जीवन में जितने गहरे सत्यों का उदघाटन करना हो, उतने विरोधी शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। और इसीलिए संतों की

वाणी निरंतर कंट्राडिक्शंस से, विरोधों से, असंगतियों से भरी होती है। असल में संत बोल ही नहीं सकता, बिना कंट्राडिक्ट किए संत बोल ही नहीं सकता। और अगर कोई बोलता हो, तो उसे सत्य का कोई पता नहीं होगा।
सत्य को बोलने का मतलब ही यह है कि आपको विरोधी शब्दों का एक साथ प्रयोग करना पड़ेगा। उपनिषद कहते हैं, दूर से भी दूर और निकट से भी निकट है वह। या तो कहो दूर से भी दूर; रुको। या कहो, निकट से भी निकट; और ठहरो! कृपा करके दोनों तो एक साथ मत कहो कि दूर से भी दूर है वह और निकट से भी निकट है! कंट्राडिक्शन का तो उपयोग मत करो।
लेकिन कोई उपाय नहीं। ऐसा ही है वह। पास भी इतने कि उससे ज्यादा पास कोई नहीं। और फिर भी अनंत-अनंत यात्रा करके भी उस तक पहुंच कहां पाते हैं! दूर से भी बहुत दूर। शायद इसीलिए बहुत दूर है कि बहुत पास है। इतने पास है कि चलने का मौका ही नहीं मिलता कि कैसे चलकर उसके पास पहुंचें। जरा दूर हो, तो आदमी चलकर भी पहुंच जाए। बहुत पास हो, तो चलकर कैसे पहुंचे!
मुल्ला नसरुद्दीन एक जगह काम करता है। दफ्तर उसके घर के सामने है, लेकिन रोज ही वह देर पहुंचता है। लेट लतीफ। रोज ही। आखिर एक दिन मालिक के बरदाश्त के बाहर हुआ। उसने कहा, नसरुद्दीन, सीमा भी होती है किसी बात की। जो आदमी छः मील दूर रहता है, वह ठीक दस बजे आ जाता है। और तुम दफ्तर के सामने हो और तुम कभी भी ठीक वक्त पर नहीं आ पाते!
नसरुद्दीन ने कहा, उसका कारण है। बिकाज आई एम सो नियर, क्योंकि इतने निकट हूं। उसके मालिक ने कहा, यह कैसा कारण! समझ में नहीं आया। तो नसरुद्दीन ने कहा कि इस आदमी को अगर देर हो जाए, तो जल्दी चलकर देर की कमी पूरी कर लेता है। मुझे देर हो जाए, तो कितनी ही जल्दी चलूं, कोई फर्क नहीं! देर हो ही गई है! इस आदमी को मौका है, छः मील का फासला है। ही कैन मेक अप। आई कैन नाट मेक अप। घर से निकले कि दफ्तर! मेक अप करने की थोड़ी जगह ही नहीं है। इसलिए हम रोज लेट हो जाते हैं!
बहुत करीब हो, तो चूक सकता है, क्योंकि ख्याल में ही न आए। आंखें दूर देखती हैं। पास देखने में सभी आंखें अंधी हैं। जितने पास हो जाए, दिखाई नहीं पड़ता। इस हाथ को पास पास पास, आंख के जितने पास ले आओ, उतना ही दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाता है। फिर बिल्कुल आंख से लगा लो, फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और वह आंख के भी पीछे है, तो कठिन हो जाता है।
परम गति भी विरोधी शब्द है, कंट्राडिक्शन इन टर्म्स। गति परम नहीं हो सकती; और जो परम है, वहां कोई गति नहीं हो सकती। लेकिन फिर भी सार्थक है, क्योंकि हम गति को ही पहचानते हैं। हमने बहुत गतियां की हैं। न मालूम कितनी योनियों में भ्रमण किया है। न मालूम कहां-कहां गतिमान हुए हैं। हमें तो एक ही पता है--गति, और गति, और गति।
कृष्ण कहते हैं, वह परम गति को उपलब्ध हो जाता है।
और परम गति अर्थात आखिरी गति को, जिसके आगे और कोई गति नहीं, जहां सब ठहर जाता है। परम गति का अर्थ है, जहां सब ठहर जाता है। जहां कंपन भी नहीं, लहर भी नहीं। जहां कोई मूवमेंट नहीं।
लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वहां मृत्यु है। यह जो ठहराव है, यह जो थिरता है, परम जीवन है; लेकिन बिना गति के। और गति का जो जीवन है, वह तो घिस जाएगा। और गति में जो जीवन है, वह आज नहीं कल गलेगा, सड़ेगा, टूटेगा, डिटेरिओरे होगा। लेकिन परम जीवन तो वही हो सकता है, शाश्वत, जहां कोई गति नहीं। क्योंकि गति में चीजें मिट जाती हैं।
हम सब गति में ही मिटते हैं। इसलिए सत्तर साल में शरीर घिस जाता है। घिस जाता है, इसका मतलब है कि सत्तर साल गति कर ली सब तरह से। मन को दौड़ाया, इंद्रियों को दौड़ाया, पैरों को चलाया; सब चले। सत्तर साल में सब घिस जाता है। शरीर छूट जाता है। फिर दूसरा शरीर पकड़ना पड़ता है।
उस परम स्थिति में जहां कोई गति नहीं, शरीर की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वहां कोई गति नहीं। शरीर गति का यंत्र है, वाहन है। इसलिए वह स्थिति अशरीरी है। और परम है, क्योंकि उसके पार, उसको ट्रांसेंड करने वाला और कुछ भी नहीं है।

और हे अर्जुन, जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्त हुआ, सदा ही स्मरण करता है मुझे, उस निरंतर मेरे में युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूं। अंतिम बात, कृष्ण कहते हैं, ऐसे व्यक्ति को मैं अति सुलभ हूं।
यह भी विरोधाभास है। क्योंकि परमात्मा तो अति दुर्लभ है। खड्ग की धार
पर चलने जैसा है। बड़ा मुश्किल है। लाखों चलते हैं, एकाध पहुंच पाता है। बड़ा कठिन है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, ऐसे चित्तवान व्यक्ति को, जो सतत मेरे स्मरण में डूबा हुआ, भाव जिसका हृदय में आ गया, प्राण जिसका भृकुटी में और इंद्रियां जिसकी संयम को उपलब्ध हुईं और जिसके भीतर अनाहत के नाद की गूंज शुरू हो गई, ऐसे व्यक्ति को मैं अति सुलभ हूं। मुझसे ज्यादा सुलभ और ऐसे व्यक्ति को कोई और चीज नहीं है।
परमात्मा दुर्लभ है, अगर आप उलझे हुए हैं। परमात्मा बहुत सुलभ है, अगर
आप सुलझे हुए हैं। सब निर्भर करता है आप पर, परमात्मा पर नहीं। जटिलता है आपकी, तो परमात्मा बहुत दुर्लभ है। और आप पीठ किए खड़े हैं सूरज की तरफ, तो सूरज का कोई कसूर नहीं है। और आप कितने ही चलते रहें पीठ किए, आप कभी भी सूरज का दर्शन न कर पाएंगे। क्योंकि जो आंखें पीठ किए हैं, वे कितनी ही चलें, कितनी ही चलें, सूरज के दर्शन का कोई सवाल नहीं। और एक कदम वापस लौटें, लौटकर देखें, और एक कदम भी फिर चलने की जरूरत नहीं; सूरज आंख के सामने है।
परमात्मा ऐसा ही सुलभ और दुर्लभ है। अगर पीठ किए रहें उसकी तरफ, तो अति दुर्लभ है। कितना ही दौड़ें जन्मों-जन्मों, नहीं मिलेगा। और लौटें, ऊर्जा को लौट आने दें भीतर, संयमित हों, ध्यान को उपलब्ध हों, समाधि को पाएं... ।
समाधि, ध्यान, कुछ और नहीं, जस्ट ए टर्निंग, लौटना, एन अबाउट टर्न, चित्त का लौट आना स्वयं पर; और आप इसी वक्त उपलब्ध हो जाते हैं। इसी क्षण भी उपलब्ध हो सकते हैं। बहुत सुलभ है। सब आप पर निर्भर है, इट डिपेंड्स आन यू।
लेकिन हम बड़े होशियार हैं। हम मंदिर के सामने जाकर कहते हैं कि मैं बहुत पापी हूं, मुझ से क्या होगा! तू ही कुछ करवा लेना! और अपने पाप में लौटकर बड़ी कुशलता से लग जाते हैं। अगर हम परमात्मा को परम दयालु भी कहते हैं, तो इसलिए नहीं कि हम मानते हैं, वह परम दयालु है। सिर्फ इसीलिए कि इसमें हमें सुविधा है।
उमर खय्याम ने मजाक में कहा है--मौलवी ने रोका है उसे कि शराब पीना बंद
कर खय्याम--तो खय्याम कहता है कि हम तो पीते ही रहेंगे, क्योंकि हमें उस रहमान की रहमत पर भरोसा है; उस परम कारुणिक पर हमें पूरा भरोसा है। तू आस्तिक है? तू आस्तिक कैसा! नास्तिक है। मौलवी से खय्याम कहता है अपनी शराब की प्याली हाथ में लिए, तू नास्तिक है। हमें तो उसका भरोसा है। उसकी करुणा अपार है। और हम क्या खाक पाप किए! महान करुणा के सामने हम कितने ही पाप करें, सब क्षमा है।
यह उमर खय्याम हम सब पर मजाक कर रहा है। हम सब ऐसे ही हैं।
नहीं, वह सुलभ होगा तभी, जब हम उसकी ओर उन्मुख हों। वह दुर्लभ रहेगा तब तक, जब तक हम विमुख हैं। विमुखता ही उसकी दुर्लभता, और हमारी उन्मुखता ही उसकी सुलभता बन जाती है।
आज इतना ही।
पर अभी कोई उठेगा नहीं। पांच-सात मिनट उन्मुख होने की कोशिश कर लें।
कौन जाने इन्हीं पांच-सात क्षणों में कुछ घटित हो जाए। कोई जाएगा नहीं; कोई उठेगा नहीं। कीर्तन भी बैठकर ही संन्यासी करेंगे। आप भी सम्मिलित हों।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
छठवां प्रवचन

वासना, समय और दुख

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।। 15।।
आब्रह्मभुवनालोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।। 16।।
सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।। 17।।
और वे परम सिद्धि को प्राप्त हुए महात्माजन मेरे को प्राप्त होकर, दुख के स्थान आलयरूप क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं।
क्योंकि हे अर्जुन, ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं, परंतु हे कुंतीपुत्र, मेरे को प्राप्त होकर उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।
और हे अर्जुन, ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको हजार युग तक अवधि वाला और रात्रि को भी हजार युग तक अवधि वाली, ऐसा जो पुरुष तत्व से जानते हैं, वे योगीजन काल के तत्व को जानने वाले हैं।

पूरब की मनीषा ने दुख का कारण, पश्चिम की मनीषा से बिल्कुल ही भिन्न जाना है। शायद धर्म और विज्ञान का वही भेद है। या ऊपर से जीवन की जो खोज करते हैं और भीतर जीवन के गहन तत्व में जो प्रवेश करते हैं, उनकी दृष्टि का वह अंतर है।
पश्चिम सदा से सोचता रहा है कि दुख का कारण परिस्थिति में है, स्थिति में है। और यदि हम परिस्थिति को बदल लें, तो दुख विनष्ट हो जाएगा। यदि बाहर की सारी स्थिति ऐसी बनाई जा सके, जहां दुख पैदा न हों, तो फिर दुख पैदा नहीं होगा। बाह्य को हम बदल लें, तो दुख की समाप्ति है। दुख है, तो इसलिए कि बाहर की परिस्थिति भीतर की चेतना के अनुकूल नहीं है।
इसलिए पश्चिम दो हजार वर्षों तक निरंतर विज्ञान की सतत साधना से बाहर
की स्थिति को बदलने में लगा रहा है। और अब पहला मौका है, जब पश्चिम कुछ सीमा तक सफल हुआ। और सफल होते ही उसकी सारी आशाओं का महल गिरकर ढेर हो गया है। सफलता इतनी असफल हो सकती है, यह कभी पश्चिम के चिंतकों ने सोचा भी नहीं था। सोचा भी नहीं था कि जिस दिन हम परिस्थिति से सारे दुख को अलग कर लेंगे, उस दिन और भी बड़ा दुख आदमी के ऊपर टूट पड़ने वाला है।
पृथ्वी पर ज्ञात पांच हजार वर्षों के इतिहास में पश्चिम ने सर्वाधिक समृद्धि, यंत्र-कौशल, वैज्ञानिक प्रगति और बाहर की स्थिति को मनुष्य के अनुकूल रूपांतरित करने में जैसी सफलता पाई है, वैसी किसी सदी ने और किसी समाज ने कभी नहीं पाई थी। लेकिन आज उस सफलता के शिखर पर बैठा हुआ अमेरिका दुख के महागर्त में गिर गया है। ऐसे दुख के गर्त में गरीब, दीन-हीन, पीड़ित और भिखारी समाजों को भी गिरते कभी नहीं देखा गया। पश्चिम का तर्क बुरी तरह असफल हुआ है।
पूरब और तरह से सोचता है। पूरब ने जाना है कि परिस्थिति में दुख नहीं, मनुष्य की चेतना में ही दुख है। मनुष्य की चेतना ही बदल जाए, तो ही दुख से छुटकारा हो सकता है। अन्यथा मनुष्य की चेतना को कैसी भी परिस्थिति मिले, दुख को पकड़ लेने वाली, दुख को पैदा कर लेने वाली चेतना, पुनः-पुनः दुख पैदा कर लेती है, हर स्थिति में दुख पैदा कर लेती है। दुखवादी हर जगह दुख को खोज लेता है।
यह मनुष्य की चेतना का रूपांतरण ही दुख से मुक्ति बन सकता है। कृष्ण अर्जुन से इसका पहला सूत्र कहते हैं। वे कहते हैं, परम सिद्धि को जो प्राप्त हुए महात्माजन हैं, वे मुझे पाकर, दुख के स्थान, आलयरूप, क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं। दुख के आलयरूप, दुख का जहां घर है, ऐसे क्षणभंगुर जीवन को वे उपलब्ध नहीं होते हैं।

इसे समझना पड़े। यह पूरब का गहनतम तर्क है, अंतर्दृष्टि है। दुख का घर पुनर्जन्म है। पुनर्जन्म का प्रारंभ जीवन की आकांक्षा है, जीते रहने की आकांक्षा, लस्ट फार लाइफ, जीवेषणा, और जीता ही रहूं, और जीता ही चला जाऊं। एक वासना पूरी नहीं होती कि दस वासनाओं को जन्म दे जाती है। और किसी भी वासना को पूरा करना हो, तो जीवन चाहिए, समय चाहिए, अन्यथा वासना पूरी नहीं होगी।
वासना के लिए भविष्य चाहिए। अगर भविष्य न हो, तो वासना क्या करेगी? अगर मैं इसी क्षण मर जाने वाला हूं, तो वासना करना व्यर्थ हो जाएगा। क्योंकि वासना के लिए जरूरी है कि कल हो, आने वाला दिन हो। आने वाला दिन हो, तो ही मैं वासना को फैलाऊं, श्रम करूं, भवन बनाऊं, पूर्ति की आकांक्षा करूं, दौडूं। वासना पूरी हो सके, उस मंजिल तक जाने का यत्न करूं। लेकिन समय की जरूरत है; टाइम इ.ज नीडेड।
अगर वासना पूरी करनी है, तो समय के बिना पूरी नहीं हो सकती। समय चाहिए। और अगर हर वासना दस वासनाओं को जन्म दे जाती हो, तो हर वासना के बाद दस गुना समय चाहिए। हर जीवन के बाद हमें दस और जीवन चाहिए, इतनी वासनाएं हम पैदा कर लेते हैं।
और मजा यह है कि पूरे जीवन हम वासनाओं को पूरा करने की कोशिश करते हैं
और आखिर में पाते हैं, कोई वासना पूरी नहीं हुई, मरते क्षण हम और भी वासनाओं को जिंदा कर लिए हैं। जन्म के समय जितनी वासनाएं हमारे पास होती हैं, मृत्यु के समय तक उनमें से एक भी कम नहीं होती, यद्यपि बहुत बढ़ जाती हैं। तब मरते क्षण और जन्म की आकांक्षा पैदा होती है। क्योंकि वासना है, तो और जीवन चाहिए। और जीवन पुनर्जन्म बन जाता है; और जीवन को पाने की इच्छा पुनर्जन्म बन जाती है।
और कृष्ण कहते हैं, पुनर्जन्म ही दुख का घर है।
पुनर्जन्म होता है जीवन की आकांक्षा से; जीवन की आकांक्षा होती है, वासना को तृप्त करने के लिए समय की मांग से। तो अगर ठीक से समझें, तो पुनर्जन्म का सूत्र या दुख का सूत्र, वासना है, तृष्णा है, डिजायर है। अगर कोई भी वासना नहीं है, तो आप कहेंगे कि कल की अब मुझे कोई जरूरत न रही, देन टाइम इ.ज नाट नीडेड।
जीसस से कोई पूछता है कि तुम्हारे मोक्ष में सबसे खास बात क्या होगी? शायद पूछने वाले ने सोचा होगा कि जीसस कहेंगे, प्रभु का दर्शन होगा, परम आनंद होगा, मुक्ति होगी, शांति होगी। ऐसा कुछ कहेंगे। लेकिन जीसस ने जो जवाब दिया है, वह बहुत हैरानी का है। जीसस ने कहा, देयर शैल बी टाइम नो लांगर--वहां समय नहीं होगा।
शायद ही सुनने वाले की समझ में आया हो! आपने भी अगर पूछा हो कि मोक्ष में क्या होगा, और अगर जीसस या कृष्ण जैसा व्यक्ति कहे, वहां समय नहीं होगा, तो आपकी भी समझ में नहीं पड़ेगा।
समय नहीं होगा, इसका अर्थ यही है कि वहां कोई वासना नहीं है, जिसके लिए समय की जरूरत पड़े। वासना नहीं होगी, समय नहीं होगा, तो वहां पुनर्जन्म नहीं होगा। वहां कल होगा ही नहीं। वहां सिर्फ आज ही होगा। शायद आज कहना भी ठीक नहीं है; अभी ही होगा; जस्ट दिस मोमेंट, बस यही क्षण होगा। और यह क्षण अनंत होगा। इस क्षण का कोई ओर-छोर नहीं होगा। यह क्षण कहीं समाप्त नहीं होगा, और कहीं प्रारंभ नहीं होगा। समय वहां नहीं होगा।
समय की जरूरत इसलिए है कि वासना की दौड़ के लिए स्थान चाहिए। वासना दौड़ती है समय में। वासना स्थान में नहीं दौड़ती, स्पेस में नहीं दौड़ती, टाइम में दौड़ती है। अगर आपके शरीर को दौड़ाना है, तो स्थान की जरूरत पड़ेगी, स्पेस की। लेकिन अगर आपके मन को दौड़ाना है, तो स्थान की कोई भी जरूरत नहीं; समय काफी है। इसलिए आप सपने में भी दौड़ सकते हैं। सपने में कोई स्पेस नहीं होती, लेकिन टाइम होता है, समय होता है। सपने में भी दौड़ सकते हैं। आरामकुर्सी पर लेटकर आंख बंद करके भी अनंत-अनंत यात्राएं कर सकते हैं। वे यात्राएं वासना की यात्राएं हैं और समय में घटित होती हैं।
महावीर से कोई पूछता है कि जब समाधि उपलब्ध हो जाती है, तो हमारे भीतर
से कौन-सी चीज गिर जाती है? तो महावीर कहते हैं, समय, टाइम। समय गिर जाता

है। क्योंकि जिस व्यक्ति के भीतर समाधि फलित होती है, उस व्यक्ति के भीतर वासना की दौड़ नहीं रह जाती। और उस दौड़ का जो मार्ग है, वह गैर-अनिवार्य हो जाता है, वह गिर जाता है।
इसलिए समाधि की परिभाषा जगत में कहीं भी की गई हो, तो एक बात उस परिभाषा में अनिवार्य रूप से है। किसी देश में, किसी काल में, किसी महाजन ने परिभाषा की हो, परिभाषा में और बातें अलग हों, लेकिन एक बात हमेशा अनिवार्यरूप से समान है और वह यह है कि समाधि समयातीत है, कालातीत है, बियांड टाइम है।
पुनर्जन्म हमारी मांग है। हम कहते हैं, और जीवन चाहिए; क्योंकि बहुत कुछ अधूरा रह गया है, अनफुलफिल्ड, उसे पूरा करना है। जो मकान बनाना चाहा था, उसकी मंजिलें पूरी नहीं हो पाईं। और जो नाव चलाई थी किसी गंतव्य के लिए, उसने अभी किनारा ही छोड़ा है, दूसरा किनारा नहीं मिला। जो-जो सोचा था, कर लेंगे, वह सब अधूरा है, इनकंप्लीट है।
इस संबंध में एक बात आपको ख्याल दिलाऊं, तो आसानी होगी समझ लेना कि यह वासना समय की मांग कैसे बनती है, और समय की मांग पुनर्जन्म कैसे बन जाता है, और पुनर्जन्म दुख का घर क्यों है!
दिनभर आप बहुत कुछ करते हैं; सांझ होते-होते सब कुछ अधूरा ही होता है; कभी पूरा नहीं होता। अगर कोई आपसे इसी समय पूछे कि मरने को तैयार हो? कोई काम करने की जरूरत तो नहीं है? तो आप कहेंगे, थोड़ा रुको। बहुत से काम अधूरे हैं, जरा पूरे कर लूं। शायद ही वह आदमी मिले, जो कहे कि सब पूरा है, मैं मरने को तैयार हूं। सब काम पूरा है, मैं मरने को तैयार हूं।
एक मित्र कल ही आए थे; सालभर पहले भी आए थे। सालभर पहले वे कहते थे कि मेरे बड़े लड़के की शादी मुझे करनी है; कम से कम एक लड़के की शादी कर लूं, फिर संन्यास लूं। मैंने उनसे कहा कि संन्यास से कोई बाधा नहीं पड़ती। लड़के की शादी मजे से करना। और संन्यासी पिता जितने आशीर्वाद दे सकेगा विवाह के क्षण में, संसारी पिता नहीं दे सकेगा। पर वे बोले, आप कहते हैं ठीक, लेकिन विवाह में और गैरिक वस्त्र पहनकर खड़ा होऊंगा, थोड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी। बस, सालभर रुक जाएं। एक लड़के का विवाह कर दूं, फिर चिंता नहीं बाकी लड़कों की। कम से कम एक का मुझसे निपट जाए।
वह विवाह हो गया। वे कल फिर आए थे। अब वे कहते हैं, पत्नी राजी नहीं है। जरा रुकें। मैं पत्नी को समझा-बुझा लूं। आखिर उसे दुख देने से भी क्या फायदा है! मैंने उनसे पूछा, कब तक समझा पाएंगे आप? कितना समय चाहिए? उन्होंने कहा, जैसे आसार हैं, उसे देखकर कम से कम सालभर तो लग ही जाएगा। मैंने उनसे कहा, मुझे कोई अड़चन नहीं है। आप ही रुकने को राजी हैं, तो मुझे क्या अड़चन हो सकती है! लेकिन ध्यान रखें, इस मन से जन्मों-जन्मों तक समय की मांग रहेगी और घटना नहीं घट सकेगी। क्योंकि सालभर पीछे आप कहते थे, बस, एक सवाल है। अब भी कहते हैं, एक सवाल है। लेकिन यह साल और सवाल पैदा कर देगी। सवालों का अंत नहीं है। कामों का अंत नहीं है। समय चुक जाता है, वासना
तो नहीं चुकती। समय तो चुक ही जाता है, कामना नहीं चुकती है। समय छोटा पड़ जाता है, कामना अनंत है।
बुद्ध ने कहा है, कामना दुष्पूर है। उसे तुम पूरा नहीं कर सकते। बुद्ध कहते थे, वह ऐसे बर्तन की तरह है, जो दोनों तरफ से खुला हो और तुम उसमें कुएं से पानी भरो। वह कभी भरेगा नहीं। इसलिए नहीं कि कुएं में पानी नहीं है। और इसलिए भी नहीं कि तुम्हारे भरने के प्रयास में कोई कमी है। और इसलिए भी नहीं कि जब कुएं में बर्तन डूबता है, तो पानी नहीं भरता है। सब हो जाता है। कुआं है, पानी है, बर्तन बिल्कुल ठीक है। तुम्हारी ताकत है, कुएं में डालते हो, बर्तन पानी में डूबता है, भरा हुआ दिखाई पड़ता है। खींचते हो, बर्तन निकल आता है, पानी पीछे रह जाता है। वह दोनों तरफ से खुला हुआ है। दुष्पूर का यही अर्थ है। वासना को डालते हैं, वासना खाली लौट आती है। मेहनत व्यर्थ हो जाती है। जो पानी भरा हुआ दिखाई पड़ा था, वह धोखा सिद्ध होता है।
वे बोले, फिर भी एक वर्ष का मौका मुझे और दें। मैंने कहा, मैं मौका देने वाला कौन हूं! जब तुम्हीं मौका मांग रहे हो, तो परमात्मा तुम्हें

मौका दिए चला जाएगा। उसने बहुत-बहुत जन्मों तक तुम्हें मौका दिया है। अधैर्य नहीं किया। आगे भी मौका देता रहेगा। और हर बार तुम यही करते रहे हो।
काम बाकी रह जाते हैं, कुछ न कुछ बाकी रह जाता है। और मन कहता है, बस इसे पूरा कर लो। लेकिन उसे पूरा करने में हम दस नई और वासनाएं पैदा कर लेते हैं। वे अधूरी रह जाती हैं। इस अधूरेपन की कोई सीमा नहीं आती। तो फिर अगले जन्म की मांग जरूरी हो जाती है।
मरते क्षण में भी जो अधूरा रह जाता है, उसी के कारण हमें दूसरे जन्म को स्वीकार करना पड़ता है। मरते क्षण में जो पूरा करके मर सकता है, उसका अगला जन्म नहीं होगा। क्योंकि उसे मांग ही नहीं रह जाएगी। जन्म का करिएगा क्या? उसका कोई उपयोग नहीं है। समय की मांग बंद हो जाए, तो अगला जन्म नहीं होता। लेकिन समय की मांग तो बनी रहती है।
और बहुत अजीब लोग हैं हम। एक तरफ कहते हैं कि समय बहुत कम है, और दूसरी तरफ कहते रहते हैं दिन-रात कि समय काटे नहीं कटता! एक तरफ कहते हैं कि समय बहुत थोड़ा है हाथ में, और दूसरी तरफ निरंतर रोते रहते हैं कि समय कैसे काटें? जरूर कुछ कारण होगा इस दुविधा का। दुविधा का कारण है।
समय तो निश्चित कम है, क्योंकि वासनाएं बहुत हैं। और सब चीजें तुलनात्मक होती हैं। जब हम कहते हैं कि समय कम है, तो उसका मतलब है किससे? वासनाओं से। जिसकी वासनाएं नहीं हैं, उसके पास तो समय बहुत है, उसका कोई अंत नहीं। और जिसके पास वासनाएं बहुत हैं, समय बहुत छोटा है। फिर भी वासनाओं वाला आदमी भी कहता है, समय काटे नहीं कटता, क्योंकि वासनाओं को पूरा करते-करते भी वह पाता है कि वासनाएं पूरी नहीं होतीं। वासनाएं पूरी नहीं होतीं। सब तरह कोशिश कर लेता है और कोई वासना पूरी होती नहीं दिखाई पड़ती। तब वह समय को भुलाने की कोशिश करता है। उसी को वह समय नहीं कटता कहता है। इतने मनोरंजन के साधन खोजने पड़ते हैं समय को भुलाने के लिए।
इधर वासना है, वह समय को चुका देती है। थोड़ा-बहुत समय बचता है, तो वासना से थका हुआ मन उसको भुलाने के लिए सिनेमागृह में बैठता है, चायघर में बैठता है, काफी हाउस में बैठता है, ताश खेलता है--हजार उपाय करता है। समय को हम इस भांति नष्ट करते हैं, और मरते वक्त फिर वही मांग कि हमें फिर समय चाहिए।
और अनंत है परमात्मा का विस्तार। हम जितना मांगते हैं, हमें मिलता चला जाता है। और हर जीवन में हम वही पुनरुक्त करते हैं, जो हमने पीछे किया था।
कृष्ण इसे दुख क्यों कहते हैं? दुख यही है कि जो हम पाना चाहते हैं, वह मिलता नहीं और मेहनत बहुत होती है। दुख नहीं होगा, तो क्या होगा! दुख का एक ही अर्थ है, जो मैं पाना चाहता था, वह नहीं मिला; और जो मैं नहीं पाना चाहता था, वह मिल गया है। दुख का और कोई अर्थ नहीं है।
बुद्ध कहते थे, दुख का अर्थ है, जिसे हम खोजते थे, उसे खोज न पाए; और जिसे बचाना चाहते थे, वह खो गया। जिसके लिए हम चले थे, वह मिला नहीं; और जो साथ लेकर हाथ में चले थे, वह भी उलटा खो गया! वासनाएं कोई पूरी नहीं होती हैं और जीवन पूरा चुक जाता है। हाथ में जो अवसर लेकर चले थे समय का, वह रिक्त हो जाता है; और जिसे पाने चले थे, उसकी कोई गंध भी नहीं मिलती कि वह कहां है। मृत्यु में यही दुख गहन हो जाता है।
दुख बहुत आयामी है।
एक आयाम तो यह है, जो मैंने कहा। दूसरा आयाम यह है, सब करते, सब पाते, चलते-दौड़ते वासनाओं के पीछे, हारते-जीतते, भीतर कहीं भी ऐसा नहीं लगता, कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि शांति का एक क्षण, विश्राम का एक पल, आनंद की एक छोटी-सी किरण भी कहीं अंकुरित होती हो भीतर। कहीं ऐसा नहीं लगता।
सदा ऐसा लगता है कि कल मिलेगा आनंद। आज तो दुख है, कल मिलेगा आनंद। यह
कल बहुत खतरनाक है, यह सिर्फ आज को भुलाने का उपाय है। आज इतना दुख से भरा है कि कल की आशा में ही हम उसे भुला सकते हैं। और मजा यह है कि कल, बीते कल में भी हमने ऐसा ही किया था। और जिसे हम आज कह रहे हैं, वह बीते कल में कल था। और कल भी हमने यही कहा था कि आने वाले कल में आनंद मिलेगा, और आज भी वही

कह रहे हैं, और आने वाले कल में भी हम वही कहेंगे। और हर जन्म में हमने यही कहा, अगले जन्म में, अगले जन्म में, आगे।
जो भी व्यक्ति आज को पोस्टपोन कर रहा है कल के लिए, वह अगले जन्म की तैयारी कर रहा है। अगर आप कहते हैं, कल करूंगा, तो आपको पुनर्जन्म लेना ही पड़ेगा। और अगर एक जन्म में नहीं कर पाए, तो आने वाले जन्म में भी क्या करिएगा? उसी को फिर पुनरुक्त करिएगा--वही बचपन, वही जवानी, वही बुढ़ापा, वे ही बीमारियां, वे ही रोग--वही सब होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया है। कोई मित्र उसके घर ठहरा है और पूछता है नसरुद्दीन से कि नसरुद्दीन, अगर तुम्हें फिर से जन्म मिले, या ऐसा समझो कि तुम्हारी उम्र कोई जादूगर फिर से कम कर दे और तुम्हें बच्चा बना दे, तो क्या तुम वे ही भूलें फिर से करोगे जो तुमने इस जन्म में कीं, इस जीवन में कीं?
नसरुद्दीन ने कहा, वही करूंगा। लेकिन थोड़ा जल्दी शुरू करूंगा; अनुभव
के कारण। वे ही भूलें करूंगा, लेकिन थोड़े जल्दी शुरू करूंगा। क्योंकि इस बार बड़ी देर हो गई। कुछ भी पूरा नहीं हो पाया। जरा जल्दी शुरू करूंगा, तो शायद पूरा हो जाए।
आपको हंसी आ सकती है नसरुद्दीन पर, लेकिन वही आदमी आपके भीतर बैठा हुआ है। अगर आपको भी अभी कोई कहे कि लौटा देते हैं वापस, तो आप समझते हैं, आप क्या करेंगे? आप फिर यही करेंगे। फिर-फिर यही हम करते ही रहे हैं। शायद अनुभव के कारण थोड़ा जल्दी शुरू करें, ताकि अंत में पूरा हो जाए, समय काफी मिल जाए। और कोई ज्यादा अंतर नहीं पड़ेगा।
नसरुद्दीन मर रहा है। फांसी पर लटकाने के पहले ही पुरोहित उससे कहता है, माफी मांग ले परमात्मा से, पश्चात्ताप कर ले। रिपेंट! नसरुद्दीन कहता है, पश्चात्ताप जरूर मेरे मन में बहुत है, लेकिन मेरे और आपके विचार में जरा-सा भेद है। शायद आप सोच रहे हैं, मैं उन पापों के लिए पश्चात्ताप करूं, जो मैंने किए। और मैं उन पापों का पश्चात्ताप कर रहा हूं, जो मैं नहीं कर पाया। पश्चात्ताप मेरे मन में भी है। लेकिन बड़ा दुख हो रहा है कि जब फांसी ही लगनी थी, तो वे पाप भी और कर लेता, जो छोड़े। और जब इतने पापों के लिए जो कुछ होगा, थोड़ा और दंड मिलता, और क्या होने वाला था! फांसी से ज्यादा और क्या हो सकता है?
ऐसा ही है मन। मरते क्षण में भी आप उन पापों के लिए पछताते रहेंगे, जो
आप नहीं कर पाए। फिर पुनर्जन्म की यात्रा शुरू होगी। क्योंकि आप ही मांग रहे हैं। और ध्यान रहे, परमात्मा वही दे देता है, जो आप मांगते हैं।
सदा ही हम वही नहीं मांगते, जो हमारे हित में है। अक्सर तो हम वही मांगते हैं, जो हमारे हित में नहीं है। क्योंकि हम जो भी सोचते-विचारते हैं, वह आत्मघाती है, सुसाइडल है।
मरते वक्त शायद ही कोई मांगता हो कि अब मुझे और कुछ नहीं मांगना है।
मांग जारी रहती है। आखिरी क्षण, डूबते हुए मौत में भी मांग जारी रहती है।
वही मांग बीज बन जाती है। दैट डिजायर बिकम्स दि सीड। वही बीज बन जाती है और फिर नए जीवन का अंकुर फूटना शुरू हो जाता है।
इस बीज से दुख क्यों मिलता है? और यह नया जन्म क्यों दुख ले आता है? क्षणभंगुर होने के कारण।
कृष्ण कहते हैं, क्षणभंगुर पुनर्जन्म को... ।
इस जगत में जो भी हम पा सकते हैं, वह क्षणभंगुर है, क्षणभर हाथ में होगा। पानी में जैसे बबूला उठ आए हवा का, बस, वैसा होगा। जब देखेंगे उसे, तो सूरज की किरणें उस पर इंद्रधनुष फैला रही होंगी। और जब हाथ से छुएंगे, तो वह फूट जाएगा। सोचा होगा, इंद्रधनुष को पकड़ लें हाथ में। नहीं मन में आता कि इंद्रधनुष को ले आएं और घर के बैठकखाने में लगा दें?
लेकिन जब इंद्रधनुष के पास पहुंचेंगे, तो वहां कुछ भी न मिलेगा। वहां कुछ है ही नहीं। वह जो इतना सुंदर धनुष खिंचा हुआ दिखता है आकाश के ओर-छोर, अगर जाएं उसके पास, तो वहां कुछ भी नहीं है। केवल पानी के बिंदु, पानी की बूंदें और बूंदों से गुजरती हुई सूरज की किरणों का जाल है। पास पहुंचकर कुछ भी नहीं है वहां।

ठीक पूरे जीवन यही इंद्रधनुष की खोज है। और जब पहुंचते हैं पास, तो पाते हैं, कुछ हाथ नहीं लगा। और हाथ जो लगता है, वह केवल टूटा हुआ इंद्रधनुष है, पानी की बूंदें हैं। न वहां रंग हैं, न वहां सौंदर्य है, न वहां कुछ और है। खाली हाथ रह जाता है।
क्षणभंगुर सब कुछ है इस जगत में। एक क्षण होना है उसका, और उस क्षण में
हम उसे पाने निकलते हैं। जब तक हम पाने के करीब पहुंचते हैं, वह क्षण बीत चुका होता है। दुख हाथ लगता है। असफलता, विषाद, फ्रस्ट्रेशन हाथ लगता है। और इस जगत में कोई भी चीज क्षणभंगुर से ज्यादा नहीं हो सकती।
बुद्ध कहते थे--जब भी कोई उनके पास आता, तो बुद्ध कहते थे जाते वक्त उससे--कि ध्यान रखना, तुम जो मुझसे मिलने आए थे, वही तुम वापस नहीं लौट रहे हो। वह आदमी चकित होता। वह कहता, मैं वही हूं। आप कैसी बात कर रहे हैं! मैं ही आया था घड़ीभर पहले। आपसे बात की। अब वापस लौट रहा हूं।
बुद्ध कहते, भ्रांति में हो तुम। इस जगत में सभी कुछ क्षणभंगुर है। क्षणभर पहले जिस मन को लेकर तुम आए थे, अब वह कहां है? वह जा चुका। सब बह चुका है। जिस शरीर को लेकर तुम आए थे, वह भी एक बहाव है।
प्रतिपल आदमी का शरीर बह रहा है नदी की तरह। मन बह रहा है नदी की तरह।
और जो नहीं बह रहा है, उसका हमें कोई भी पता नहीं है। जो बह रहा है, उसी में हम बह रहे हैं। और पकड़ रहे हैं लहरों को, बबूलों को। लहर और बबूले हाथ में आते हैं और टूट जाते हैं। क्षणभर को दिखाई पड़ता है कुछ, दौड़ते हैं, खो जाता है। दुख हाथ में लगता है।
क्षणभंगुरता अस्तित्व का स्वभाव है। यहां कोई भी चीज थिर नहीं है। यद्यपि हम कोशिश करते हैं निरंतर कि सब कुछ थिर हो जाए। अगर मैं आपसे प्रेम करूं, तो मैं कहूंगा कि यह मेरा प्रेम शाश्वत है, सदा रहेगा। सभी प्रेमी कहते हैं। और कोई चीज इस जगत में शाश्वत नहीं है। मजा तो यह है कि जितनी देर लगेगी यह बात कहने में कि यह प्रेम शाश्वत है और सदा रहेगा, और चांद-तारे मिट जाएं, लेकिन यह प्रेम नहीं मिटेगा--शायद इतना कहने में जितनी देर लगी, उतने में ही मिट गया हो।
लेकिन कोशिश चलती है कि प्रेम को हम थिर बना लें, इटरनल बना लें। फिर दुख लगता है। क्योंकि जो थिर नहीं है, वह थिर नहीं हो सकता। जो क्षणभंगुर है, वह क्षणभंगुर रहेगा। वह उसका अंतर-स्वभाव है।
इस जगत की प्रत्येक वस्तु का स्वभाव क्षणभंगुर है। जवान रहना चाहें सदा, न रह पाएंगे। प्रसन्न रहना चाहें सदा, न रह पाएंगे। मजा तो यह है कि अगर दुखी भी रहना चाहें सदा, तो न रह पाएंगे। दुख भी क्षणभंगुर है। वह भी बदलता रहेगा। वह भी बदलता रहेगा। यहां सभी कुछ बदलता हुआ है, फ्लक्स है। हेराक्लतु यूनान का बहुत विचारशील मनीषी कहता था, यू कैन नाट स्टेप ट्वाइस इन दि सेम रिवर--एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। क्योंकि जब तक उतरे, नदी बह गई। दुबारा कैसे उतरिएगा? सच तो यह है कि हेराक्लतु मुझे मिल जाए, तो उससे कहूं कि यू कैन नाट स्टेप इन दि सेम रिवर ईवेन वंस--एक बार भी नहीं उतर सकते हो एक ही नदी में। क्योंकि पैर जब नदी की ऊपर की सतह छूता है, तो नीचे की नदी भागी जा रही है। पैर जब नीचे जाता है, ऊपर की सतह भाग गई!
एक ही पर्त, एक फीट पानी की पर्त को भी एक साथ नहीं छुआ जा सकता। सब भागा जा रहा है। और पूरा जीवन नदी की तरह है। इस भागने में हम स्थायी घर बनाने की कामना करते हैं। दुख बनेगा, घर नहीं बनेगा; दुख का घर बनेगा। हमारा सारा दुख इस बात से पैदा होता है कि हम, थिर जो नहीं है, उसको सब जगह थिर कर लेना चाहते हैं। कहते हैं, मेरा प्रेम थिर रहेगा। मां कहती है कि मेरा बेटा है; यह प्रेम सदा रहेगा। लेकिन कल एक नई लड़की को लेकर बेटा घर लौट आता है और पता चलता है, मां उस बेटे की आंखों में अब दिखाई ही नहीं पड़ती! धक्का लगता है। दुख आता है।
लेकिन दुख के लिए बेटा जिम्मेवार नहीं है। दुख के लिए मां की वह कामना जिम्मेवार है, जो सोचती थी कि प्रेम थिर रहेगा। इस बेटे ने जब उसके आंचल में सिर रखकर मुस्कुराया था और प्रेम से उसे देखा था, वह अभी भी उसी को थिर रखने की कोशिश में लगी है। वह वासना अब दुख देगी।

आज जिस पत्नी को लेकर यह घर में चला आया है, उसकी उमंग का कोई अंत नहीं है, उसके पैर जमीन से नहीं लगते हैं। क्योंकि आज वह रानी हो गई है। और इस युवक ने उसे कहा है कि तुझसे ज्यादा सुंदर और कोई भी नहीं है। और मैं मर जाऊं, लेकिन सोच भी नहीं सकता कि कभी मेरे प्रेम में क्षणभर की भी, कणभर की भी कमी होगी। लेकिन कल वही पाएगी कि उसके साथ चलते रास्ते पर किसी और स्त्री पर उसकी आंख गई है। और उस क्षण में वह उसे भूल ही गया है कि वह पास भी है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है अपनी पत्नी के साथ। अभी सात ही दिन हुए हैं विवाह हुए। और एक सुंदर युवती उसे दिखाई पड़ती है, और उसकी आंखें टकटकी लगाकर रह जाती हैं। उसकी पत्नी उसे बीच-बीच में हिलाती है, जैसा कि सभी पत्नियां पतियों को हिलाती रहती हैं। क्या कर रहे हो? भूल गए क्या कि अब तुम विवाहित हो! नसरुद्दीन ने कहा, ऐसे वक्त में तो बहुत ज्यादा याद आता है कि अब मैं विवाहित हूं! भूल नहीं गया हूं। ऐसे क्षण में ही काफी याद आता है कि नाउ आई एम मैरिड!
अभी सात दिन पहले इस आदमी ने क्या कहा था? नहीं, इसका कोई कसूर नहीं है। कुछ भी थिर नहीं है इस जगत में। कहे हुए वचन थिर नहीं, दिए गए वायदे थिर नहीं, क्योंकि देने वाला आदमी ही थिर नहीं है।
ईसाइयों का एक संप्रदाय है, क्वेकर। क्वेकर किसी को प्रामिस नहीं देते; वे किसी को वचन नहीं देते। क्योंकि वे कहते हैं, वचन देने वाला ही जब थिर नहीं है, तो वचन हम क्या दें! क्वेकर अदालत में कसम नहीं खाते; ओथ नहीं लेते। अदालत में क्वेकर कसम नहीं खाता कि मैं कसम खाता हूं कि सच ही बोलूंगा। क्योंकि क्वेकर कहते हैं, जिसने कसम खाई, वह बचेगा क्षणभर बाद? सब बहा जा रहा है। इस बहाव में हम सब कोशिश में लगे हैं ठहर जाने की, ठहर जाएं! बस, दुख पैदा होगा। तंबू गाड़ रहे हैं बहती हुई नदी की धार पर। फंसेंगे मुसीबत में। तंबू में डूबेंगे खुद और। खूंटियां नहीं गाड़ी जातीं पानी पर और न तंबू खड़े किए जाते हैं। और स्थिर तंबू, शाश्वत तंबू खड़े करने की कोशिश चलती है, तो दुख आता है।
दुख, क्षणभंगुर जीवन के स्वभाव में शाश्वत को बनाने की चेष्टा का फल है। अनित्य है जो, उसमें नित्य को खड़ा करने की जो वासना है, वही दुख बन जाती है। लेकिन जो क्षण को क्षण जैसा जान ले, उसके दुखी होने का फिर कोई कारण नहीं। क्योंकि वह आकांक्षा ही नहीं करता उसकी, जो विपरीत है।
कृष्ण कहते हैं, वे जो परम सिद्धि को प्राप्त होते महात्माजन, मुझे प्राप्त होकर क्षणभंगुर पुनर्जन्म को उपलब्ध नहीं होते।
क्योंकि जिसने भी प्रभु को जाना--प्रभु को अर्थात शाश्वत को, नित्य को, इटरनल को, वह जो सदा है--वह फिर क्षणभंगुर की कामना नहीं करता। जिसे ठोस लोहे के महल मिल गए हों, वह ताश के पत्तों के घरों में रहने की कोशिश नहीं करता।
मैं सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं। ऐसे तो लोहे के ठोस घर भी ताश के
ही घर हैं। समय का ही फासला है। ताश का घर, हवा का एक झोंका आता है, और गिर जाता है। लोहे के घर लाख-करोड़ झोंके आएंगे, तब गिरेगा। क्वांटिटी का फर्क है, क्वालिटी का कोई फर्क नहीं है। चाहे रेत का घर बनाएं और चाहे सीमेंट-कांक्रीट का; रेत का घर एकाध झोंके में गिर जाएगा, सीमेंट-कांक्रीट का घर गिरने में जरा ज्यादा देर लेगा। बस, देर का ही फर्क है, टाइम का ही फर्क है। वह भी गिर जाएगा। क्योंकि सीमेंट-कांक्रीट भी रेत से ज्यादा और कुछ भी नहीं है।
लेकिन जिसने एक कण भी अनुभव कर लिया हो उसका, जो शाश्वत है, उसके लिए सारा जगत उसी क्षण स्वप्नवत हो जाता है। फिर उसमें उसकी कामना नहीं रह जाती है।
बुद्ध को जिस दिन अनुभव हुआ समाधि का, उनके मुंह से जो पहला वचन निकला,
वह यह था कि हे मेरे मन, अब मैं तुझे विश्राम देने को तैयार हूं, क्योंकि अब मुझे और जीवन के घर बनाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। नाउ आई कैन रिटायर यू। हे मेरे मन, अब तुम्हें मैं छुट्टी दे सकता हूं, क्योंकि अब तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।

मन तो राज है; बनाता है भवन। बुद्ध कहते हैं, अब कोई जरूरत नहीं रही और
नए घर बनाने की जीवन के। अब मैंने उसे जान लिया, जो शाश्वत घर है--दि इटरनल होम।
उसकी प्रतीति हो, उसी को कृष्ण कहते हैं, मुझे पाकर वे महात्माजन फिर क्षणभंगुर पुनर्जन्म की वासना नहीं करते। और वासना नहीं, तो पुनर्जन्म की पुनरुक्ति नहीं। क्योंकि हे अर्जुन, ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनरावृत्ति वाले हैं, रिपिटीटिव हैं।
यह बहुत मजे का वचन है। इसे हम अपनी तरफ से समझें, तो आसानी हो जाएगी। क्या आपको पता है, सभी वासनाएं रिपिटीटिव हैं? आप बहुत-सी वासनाएं नहीं कर रहे हैं, एक-एक वासना को हजार-हजार बार दोहरा रहे हैं। और बड़ा मजा यह है कि हर बार दोहराकर कहते हैं, कुछ नहीं पाया। और चौबीस घंटेभर बाद फिर दोहराने को तैयार खड़े हैं। बड़े अजीब हैं!
अपनी भी याद नहीं रहती कि चौबीस घंटे पहले क्या कहा था! कितनी बार आपने क्रोध किया है? और हर क्रोध के बाद कितनी बार आप पछताए हैं? शायद क्रोध से ज्यादा पछताए होंगे। क्योंकि आदमी एक दफे क्रोध करता है, तो पीछे पांच-सात दफे पछताता है। लेकिन यह पछताना क्रोध के आने में रुकावट नहीं बनती। बल्कि जो जानते हैं, वे कहते हैं, यह पछतावा फिर से क्रोध करने की तैयारी है।
यह ऐसे ही है, जैसे मैं वृक्ष की एक शाखा को अपने हाथ में खींचकर छोड़ दूं, तो वह ठीक से एकदम अपनी जगह पर नहीं पहुंचेगी। जब मैं उसे छोडूंगा, तब वह अपनी जगह से आगे निकल जाएगी, दूसरी एक्सट्रीम पर। अगर मैं वृक्ष की शाखा को खींचकर छोडूं, तो वह ठीक उसी जगह नहीं पहुंच जाएगी, जहां से मैं उसे खींच लाया था। जब मैं उसे छोडूंगा, तो वह अपनी जगह से और आगे निकल जाएगी उतनी ही दूर, जितनी दूर मैं इस तरफ खींच लाया था। क्यों?
वह अपनी जगह पर लौटने की तैयारी कर रही है। फिर वापस आएगी। फिर थोड़ी दूर इस तरफ आएगी, फिर वापस जाएगी। फिर थोड़ी दूर उस तरफ जाएगी। इस तरह कंपते-कंपते, कंपते-कंपते वह वापस अपनी जगह पर पहुंच जाएगी।
यह जो कंपन है, यह कंपन मैंने उसे खींचकर जो ताकत अपने हाथ की दे दी थी, उसको फेंकने के लिए है; अपने से बाहर फेंकने के लिए है--जस्ट ट्रेंबलिंग। यह उस ऊर्जा को बाहर फेंक रही है वह शाखा, जो मेरे हाथ ने खींचकर तनाव के द्वारा उसे दे दी थी, ताकि वह अपनी जगह पर पहुंच जाए।
जब आप क्रोध में तन जाते हैं, तत्काल आपको पश्चात्ताप की अति पर जाना पड़ता है। यह सिर्फ अपनी जगह पर वापस लौटने के लिए है, दि स्टेटस-को। वह जो पहली स्थिति थी क्रोध के पहले आपके मन की, उस तक आने के लिए। क्रोध कर लिया, एक सीमा में खिंच गए। अब पश्चात्ताप कर लिया, अब दूसरी तरफ चले गए। फिर क्रोध-पश्चात्ताप दोनों के बीच डोलते-डोलते अपनी जगह वापस आ गए। नाउ यू कैन बी एंग्री अगेन--अब आप फिर से क्रोध कर सकते हैं। क्योंकि आपने पुरानी स्थिति पा ली, जहां आप क्रोध के पहले थे। उस स्थान पर आप पुनः पहुंच गए। आप शायद सोचते होंगे, पश्चात्ताप इसलिए करते हैं, ताकि दुबारा क्रोध
न करें, तो आप गलती में हैं; आपको जीवन के सत्यों का कोई भी पता नहीं है। पश्चात्ताप आदमी इसीलिए करता है, ताकि फिर क्रोध कर सके। यह बहुत उलटा लगेगा। लेकिन आपका अनुभव भी यही कहेगा।
तो मैं तो आपसे कहूंगा, अगर क्रोध से मुक्त होना हो, तो अब की बार क्रोध करना, पश्चात्ताप मत करना। फिर देखें, क्रोध दुबारा आता है कि नहीं! अगर पश्चात्ताप से बच गए, तो फिर क्रोध को दोहरा न सकेंगे, क्योंकि क्रोध के लिए पुरानी स्थिति उपलब्ध नहीं होगी।
लेकिन पश्चात्ताप से बचना उतना ही मुश्किल है, जितना क्रोध से बचना मुश्किल है। दोनों अनकांशस हैं, दोनों अचेतन हैं। आप कहते हैं, क्या करें, क्रोध आ ही गया! फिर ऐसे ही, क्या करें, पश्चात्ताप आ ही गया! दोनों एक साथ चलते रहेंगे।
लेकिन क्रोध करके आपने कुछ पाया है? कुछ मिला? कोई रत्न हाथ लगा? कहेंगे, कुछ भी नहीं पाया; सिर्फ राख हाथ लगती है; और अपना ही पतित मन हाथ लगता है। गड्ढे में गिर गए। अपने ही हाथ से कीचड़ से भर गए। ऐसा हो जाता है।

लेकिन दुबारा फिर क्रोध क्यों करते हैं? क्योंकि वासना रिपिटीटिव है। चौबीस घंटे में फिर भूल जाते हैं। फिर वासना मांग करती है। कामवासना से भरता है चित्त।
अगर वैज्ञानिक हिसाब से सोचें, तो एक आदमी साधारणतः अपने जीवन में चार हजार बार संभोग करता है। साधारणतः। यह साधारण आदमी की बात कर रहा हूं, असाधारण का हिसाब लगाना मुश्किल है। बिल्कुल कामन आदमी, साधारण आदमी चार हजार बार अपने जीवन में संभोग करता है। और चार हजार बार करने के बाद भी, नहीं करना चाहता, ऐसा नहीं है। नहीं कर पाता, यह दूसरी बात है। करना तो चाहता ही है।
मुल्ला ने आखिरी-आखिरी उम्र में, सत्तर साल में फिर से शादी करने का विचार किया। बेटों ने समझाया, बेटों के बेटों ने समझाया कि अब ऐसा मत करिए। और बड़ी कठिनाई यह थी कि जिससे शादी करने का तय किया, वह केवल बीस बरस की लड़की थी। तो सबने कहा, ऐसा मत करिए। पर वासना को रोको अगर, तो और क्रुद्ध होकर, और उफान खाकर उबलती है। मुल्ला कहने लगा, मेरे घर के, इनको मैंने पैदा किया और ये मेरे दुश्मन हो गए! तुमसे मैं ज्यादा जानता हूं।
आखिर कोई रास्ता नहीं था। बच्चे ही थे घर में। सभी उससे तो कम उम्र ही थे। उसके किसी मित्र को खोजा, बूढ़े आदमी को खोजा। वह गांव का धर्मगुरु था। उसे लाए। उस धर्मगुरु ने नसरुद्दीन से कहा, नसरुद्दीन, थोड़ा तो सोचो। अपना ही सोचो, दूसरे का मत सोचो। यह सत्तर साल की उम्र में बीस साल की लड़की से शादी करना खतरनाक हो सकता है। मृत्यु भी हो सकती है। नसरुद्दीन ने कहा, तो फिर दूसरी कर लेंगे!
उसने समझा कि लड़की की मृत्यु! उसने कहा, फिर दूसरी कर लेंगे। इसमें इतनी चिंता की क्या बात है? वह बूढ़ा समझा रहा था कि तुम मर सकते हो, इस उपद्रव में मत फंसो। नसरुद्दीन बोला, तो दूसरी कर लेंगे! सत्तर साल में भी नहीं जाती वह बात।
अमेरिका का, कुछ दिनों पहले, एक बहुत बड़ा, सुप्रीम कोर्ट का प्रधान न्यायाधीश था, जज लिन्डसे। वह जब नब्बे साल का हो गया, तो निकल रहा था एक रास्ते से अपने मित्र के साथ। वह मित्र भी कोई अस्सी साल का था। एक सुंदर कुमारी रास्ते से निकली, लिन्डसे खड़ा हो गया। नब्बे साल का बूढ़ा आदमी। उसने लड़की को गौर से देखा और अपने साथी से कहा, मन होता है, काश मैं फिर से सत्तर साल का हो सकता! कहा, काश मैं फिर से सत्तर साल का हो सकता।
उसका मित्र थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि सत्तर साल के? तो लिन्डसे ने कहा, सत्तर साल का जब तक मैं था, तब तक मेरे शरीर में वासना भलीभांति दौड़ रही थी। अब सब राख रह गई है।
नब्बे साल का आदमी भी सत्तर साल का होना चाहता है! नब्बे साल के आदमी
के लिए सत्तर साल भी जवानी ही मालूम पड़ेगी।
यह जो हमारा चित्त है पुनरुक्ति की मांग करने वाला, यही चित्त पुनर्जन्म को मांगता। और यही चित्त फिर पुनर्जन्म में फिर वही मांगता है, जो वह पीछे अनेक दफे मांग चुका है।
महावीर के पास कोई भी साधक आता, तो वे उससे कहते थे, इसके पहले कि मैं तुझे साधना में उतारूं, तेरे पिछले जन्मों की याददाश्त में उतारना जरूरी है। वह साधक कहता, उससे क्या लेना-देना? महावीर कहते, उसके बिना तू कभी समाधि को नहीं उपलब्ध हो सकेगा।
तो महावीर उसे पहले उसके पिछले जन्मों की याददाश्त में ले जाते। और याददाश्त करते-करते ही, पिछले जन्मों में उतरते-उतरते ही वह आदमी ट्रांसफार्म हो जाता, रूपांतरित हो जाता। महावीर उससे कहते कि बोल, क्या तूने देखा? तो वह कहता कि अब कुछ छोड़ने को बचा नहीं, क्योंकि सब मैं अनेक बार कर चुका हूं और फिर वही मांग कर रहा हूं। और इतनी बार करके जब नहीं पाया, तो अब भी करके पा नहीं सकूंगा। नहीं, मन अब मेरा खाली है। अब मैं ध्यान के लिए तत्पर हूं।
तो महावीर ने अनिवार्य कर दिया था हर साधक के लिए, पहले जाति-स्मरण-- रिमेंबरिंग आफ पास्ट लाइव्स--और फिर ध्यान।

महावीर की जगत को जो सबसे बड़ी देन है, वह जाति-स्मरण है, अहिंसा नहीं। अहिंसा बहुत पुरानी बात है। सदा से लोग कहते रहे हैं। उसमें कुछ महावीर का नया नहीं है। पर महावीर की जो मौलिक, ओरिजिनल कांट्रिब्यूशन है मनुष्य को, वह है जाति-स्मरण की प्रक्रिया, पिछले जन्म की याददाश्त।
और एक बार पिछले जन्मों की याददाश्त आ जाए, तो आप खुद ही कहेंगे, यह मैं क्या कर रहा हूं? एक जन्म में चार हजार दफे संभोग किया; और हजारों जन्म हो चुके, करोड़ों बार संभोग किया; और अब तक कुछ पाया नहीं। अब फिर आज संभोग करना है? फिर आज संभोग में उतरना है? क्या फिर भी उतर पाएंगे?
कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ कहा नहीं जा सकता। शायद मन कहे कि पता नहीं,
अब तक न हुआ हो अनुभव आनंद का, एकाध बार और। कह सकता है मन कि क्या पता, अब तक न हुआ हो, एकाध बार और। लेकिन मुश्किल हो जाएगा कहना। अगर इतना याद आ जाए, तो मुश्किल हो जाएगा।
जीवन पुनरुक्ति है। इसलिए पूरब ने जीवन को एक वर्तुल, चक्र की तरह पाया है। वह जो भारत के ध्वज पर अशोक चक्र है, वह पता नहीं नेहरूजी ने चुन तो लिया, उन्हें पता भी था कि नहीं कि वह संसार का चित्र है। संसार को हमने एक व्हील, एक गाड़ी के चक्के की तरह समझा है। और इसलिए समझा है कि गाड़ी के चक्के में जो आरा अभी ऊपर दिखाई पड़ रहा है, जो स्पोक ऊपर दिखाई पड़ रहा है, वह थोड़ी देर में नीचे चला जाएगा, और फिर ऊपर आ जाएगा। वे ही आरे बार-बार घूमते रहेंगे। वे ही वासनाएं बार-बार चक्के कि तरह घूमती रहेंगी। वे ही वृत्तियां बार-बार पुनरुक्त होती रहेंगी।
जीवन एक चक्र है। संसार शब्द का अर्थ ही होता है, दि व्हील, चक्र, जो घूमता रहता है। उसमें कुछ भी नया नहीं है। इस संसार में कुछ भी नया नहीं है, क्योंकि इस संसार की पूरी व्यवस्था ही पुनरुक्ति की है, रिपीटीशन की है। लेकिन हर बार ऐसा लगता है कि कुछ नया हो रहा है।
जब कोई नया युवक प्रेम में पड़ता है, तो आपको पता है, वह सोच सकता है कि पहले भी किसी ने प्रेम किया होगा जमीन पर? कभी नहीं। पहली दफा प्रेम घट रहा है! और जब पहली दफे कोई कवि कोई कविता गुनगुनाता है, तो वह मान सकता है कि कोई और भी कवि हुआ होगा कभी? नहीं मान सकता। यही नहीं मानने के लिए तो बेचारा कहता है कि पुराने काव्य में क्या रखा है! नए काव्य की बात ही और है। यह काव्य ही और है।
जब कोई नया विचारक एकाध सूझ की बात करता है, तो शायद सोचता है, बड़ा मौलिक, बहुत ओरिजिनल बात कह रहा है। वही भूल; वही भूल। जब कोई क्रांतिकारी खड़े होकर कहता है कि दुनिया को बदल देंगे; नई दुनिया चाहिए; तो उसे पता नहीं कि यह बात हजारों दफे आदमी कह चुका है।
मैंने तो सुना है, अदम और ईव, जब पहली दफा इदन के बगीचे से परमात्मा ने उनको निकाला, तो दरवाजे पर उन्होंने जो पहला शब्द कहा, वह यह कहा कि नाउ वी आर पासिंग थ्रू ए रेवोल्यूशन--हम एक क्रांति से गुजर रहे हैं। पहले आदमी ने जो पहली बात कही अपनी पत्नी से, वह यह थी कि अब हम एक बड़ी क्रांति से... । और सच, इससे बड़ी क्रांति क्या हो सकती है, स्वर्ग के दरवाजे से निकाला जाना!
लेकिन क्रांतिकारी सोचता है कि मुझसे पहले कोई क्रांतिकारी नहीं हुआ। सभी क्रांतिकारी ऐसा ही सोचते रहे हैं। क्रांति से पुरानी चीज दुनिया में खोजनी मुश्किल है, दि ओल्डेस्ट। और मौलिक होने का दावा इतना सनातन है कि सिर्फ नासमझ कर सकते हैं। समझदार कोई मौलिक होने का दावा नहीं कर सकता।
कुछ भी नया नहीं है। लेकिन जब नया आरा ऊपर आता है, तो बड़ा नया मालूम पड़ता है। हो सकता है, हमने दूसरे आरे देखे ही न हों। और यह भी हो सकता है कि हमने देखे भी हों, तो हम भूल गए हों; हमारी स्मृति बड़ी कमजोर है।
वोल्तेयर की किसी मामले में बहुत बदनामी हो गई थी फ्रांस में। तो वोल्तेयर के मित्रों ने कहा कि कुछ उपाय करो। इस बदनामी को मिटाने का कुछ इंतजाम करो। कोई वक्तव्य दो। वोल्तेयर ने कहा, पंद्रह दिन हो गए बदनामी हुए, लोग अब तक भूल भी चुके होंगे। मेरे वक्तव्य से नाहक फिर याद आ जाएगी! जाने दें।

यही है सच। स्मृति ही कितनी है!
एक आदमी मेरे पास आए। बहुत विचारशील हैं, सुशिक्षित हैं। एक राज्य के शिक्षा मंत्री हैं। मुझसे उन्होंने कहा कि मुझे न परमात्मा की तलाश है, न किसी आत्मा की खोज, न मुझे मोक्ष चाहिए। मैं आपके पास सिर्फ इसलिए आया हूं कि मुझे नींद नहीं आती। अगर मुझे नींद आ जाए, तो मैं आपका परम ऋणी रहूंगा। बस मुझे इतना ही कुछ ध्यान करवा दें कि मुझे नींद आने लगे।
मैंने कहा, यह तो बहुत ही आसान है। नींद आने से ज्यादा आसान और क्या बात हो सकती है! सब भांति सोए हुए आदमी को नींद लगवा देना कोई कठिन बात है। जगाना मुश्किल है! आप तो ऐसे काम के लिए आए, जो हो जाएगा। पर मैंने कहा कि ठीक कह रहे हैं, आपको कुछ और नहीं, सिर्फ नींद चाहिए? उन्होंने कहा, बस, इसी पर मेरे प्राण अटके हैं। ऐसा हो जाता है रात जागते-जागते कई दफे कि सिर फोड़ लूं, मर जाऊं। यह क्या कर रहा हूं! सब सो रहे हैं और मैं जग रहा हूं!
और बड़ा मजा यह है कि जगने वाले को तकलीफ इससे जरा कम होती है कि वह जग रहा है, इससे जरा ज्यादा होती है कि सब सो रहे हैं! अगर सब जग रहे हों... । मैंने उन्हें कहा, तो एक बहुत छोटा-सा प्रयोग कर लें। इतना छोटा-सा प्रयोग कर लें रात सोते वक्त। अब तक आपने सोने की कोशिश की है और नींद नहीं आई। आज से आप जगने की कोशिश करें, सोने की नहीं। उन्होंने कहा, इससे क्या होगा! वैसे ही तो नींद नहीं आती, और जगने की कोशिश! मैंने कहा कि मैं सिर्फ आपके गणित को उलटा कर रहा हूं। आप अब तक सोने की कोशिश करते रहे और नींद नहीं आई। मैं कहता हूं, आप जगने की कोशिश करें। नींद न आ पाए, इसका ख्याल रखें। जैसे ही नींद आए, पानी छिड़कें, उठकर खड़े हो जाएं, झटका मारें, व्यायाम करें; लेकिन नींद न आने दें।
वे तीसरे-चौथे दिन मेरे पास आए। कहने लगे, क्या गजब कर दिया! ऐसी नींद
आ रही है, कि घोड़े बेचकर सो रहे हैं। लेकिन सिर्फ नींद आ रही है, और कुछ भी नहीं हो रहा! उन्होंने मुझसे कहा, सिर्फ नींद आ रही है, और कुछ भी नहीं हो रहा! मैंने उनसे कहा, चार दिन पहले आप कहते थे, न मुझे ईश्वर चाहिए, न मोक्ष, न आत्मा। सिर्फ नींद आ जाए, सब कुछ आ गया। और अब आप ही चार दिन बाद मुझसे कह रहे हैं कि सिर्फ नींद आ रही है और कुछ नहीं हो रहा है!
आदमी की स्मृति इतनी कमजोर है। कुछ भरोसा नहीं कि आप जो अभी जान रहे हैं, क्षणभर बाद भी जान सकेंगे! भूल जाएंगे। इसलिए हमें नया मालूम पड़ता है कि देखो, यह कितनी नई बात है।
अगर कृष्णमूर्ति कहते हैं कि कोई गुरु नहीं, तो लगता है, बहुत नई बात है। सभी गुरुओं ने सदा यही कहा है। असल में इस दुनिया में कोई आदमी गुरु हो ही नहीं सकता, जिसको इतना भी पता न हो कि बिना गुरु के ज्ञान हो सकता है। गुरु को तो पता होता ही है। शिष्य को पता नहीं होता। उसकी बात अलग है। उसको कहने से भी पता नहीं होता। उसको कहे चले जाओ। शिष्य से अगर कहो कि गुरु बनाने की कोई जरूरत नहीं। ज्यादा कहो, तो वह तुम्हीं को गुरु बना लेता है कि ठीक है, आप ही हमारे गुरु हुए और यही हमारा सिद्धांत हुआ कि गुरु बनाने की कोई जरूरत नहीं।
कृष्णमूर्ति के पीछे ऐसे ही लोग इकट्ठे हो गए हैं। वे कहते हैं कि बिल्कुल ठीक। चालीस साल से हम आपको ही सुनते हैं। आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। गुरु की बिल्कुल जरूरत नहीं। तो चालीस साल से इस बेचारे का पीछा क्यों कर रहे हो!
इस जगत में कुछ भी नया नहीं है। मौलिक का दावा निपट अज्ञान है। लेकिन वक्त लग जाता है; वक्त लग जाता है। पक्षी हैं, जो एक ही मौसम में मर जाते हैं। कुछ कीड़े हैं, पतंगे हैं, जो वसंत में पैदा होते हैं और दुबारा वसंत नहीं देखते, मर जाते हैं। लेकिन उनके अंडे पड़े रहते हैं। दुबारा वसंत आता है, उन अंडों में से फिर पतंगे निकलते हैं। उड़ते हैं फूलों के पास और सोचते हैं कि जगत में, जीवन में, अस्तित्व में, पहली दफा वसंत आया है। फिर मर जाते हैं, फिर अंडे छोड़ जाते हैं। फिर वसंत आता है, फिर उनके बच्चे उड़ते हैं, और फिर वही बात कहते हैं, जो सदा-सदा कही गई है--वसंत पहली बार आया है; ऐसा वसंत कभी नहीं आया।

आदमी की स्मृति कमजोर। समय का वर्तुल बड़ा। आदमी चुक जाता है, आरे घूमते रहते हैं। यहां कुछ भी नया नहीं है, सब पुराना दोहर रहा है। सब पुराना दोहर रहा है। सब पुराना लौट-लौटकर आ जाता है।
कृष्ण कहते हैं, ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक रिपिटीटिव हैं, पुनरावर्ती हैं। वापस लौट-लौटकर वही-वही होता रहता है, वही-वही होता रहता है।
नीत्शे बहुत अदभुत बात कहता था इस संबंध में, किसी ने उसकी सुनी नहीं। मानने जैसी भी नहीं; थोड़ी घबड़ाने जैसी भी है। लेकिन भारतीय प्रतिभा उसकी बात को समझ सकती है। नीत्शे कहता था, ऐसा भी नहीं है कि पहले कोई दूसरे लोग हुए हैं; हम ही लोग! और ठीक ऐसा ही जगत हम बार-बार दोहराते रहे हैं; हम ही लोग! अगर नीत्शे को समझना हो, तो ऐसा समझें। यह सभा इस जमीन पर आज जो हो रही, आज ही नहीं हो रही। नीत्शे कहता था, यह सभा बहुत बार इन्हीं लोगों को लेकर, इसी बोलने वाले को लेकर, इन्हीं सुनने वालों को लेकर बहुत बार हो चुकी है। घबड़ाने वाली है यह बात, घबड़ाने वाली बात है। लेकिन जगत इतना रिपिटीटिव है कि हो सकता है, नीत्शे भी सही हो। इसमें कोई अड़चन नहीं है। चीजें इतनी दोहरती हैं बार-बार, तो यह हो सकता है कि हम बहुत बार यही लोग, इसी भांति, इसी जमीन के टुकड़े पर बहुत बार मिल चुके हों। याददाश्त कमजोर है। फिर दुबारा मिलते हैं, और लगता है, फिर सब नया हो रहा है।
बुद्ध ने कहा है कि मैं और भी पहले बहुत बार इन्हीं बातों को तुमसे कहा हूं। क्राइस्ट ने कहा है, मैं कोई पहला नहीं हूं, जो इन बातों को कहने आया हूं। मुझसे पहले और लोग भी यही कह चुके हैं। क्राइस्ट ने कहा है, मैं कोई नई बात कहने नहीं आया, आइ हैव कम टु फुलफिल दि प्रोफेसीज आफ दि ओल्ड। वे जो पुराने वक्तव्य हैं, घोषणाएं हैं, उन्हीं को पूरा करने आया हूं। मोहम्मद ने भी कहा है, मैं नया नहीं हूं। मुझसे पहले और लोग आए हैं। उसमें एक इशारा तो बुद्ध की तरफ है। क्योंकि कहा है कि वट वृक्ष के नीचे बैठकर भी एक आदमी ने ऐसी कुछ बातें कही हैं, बोधि वृक्ष के नीचे बैठकर ऐसी कुछ बातें कही हैं।
इस जगत में कुछ भी नया नहीं है। लेकिन सब नया मालूम पड़ता है, क्योंकि हमारे लिए पहली दफा दिखाई पड़ता है। यह हम भूल गए होते हैं, और पहली दफे दिखाई पड़ता हुआ मालूम पड़ता है।
ब्रह्मलोक तक, कृष्ण कहते हैं, सब लोक, ब्रह्मलोक तक... ।
असल में जहां तक लोक हैं, जहां तक जगत की पर्तें हैं, चाहे हम उसे ब्रह्मलोक ही क्यों न कहें, अंतिम लोक, वहां तक भी पुनरुक्ति ही होती रहती है। फिर पुनरुक्ति कहां बंद होती है? उसे कहा है ज्ञानियों ने अलोक, नान-वर्ल्ड, नो वर्ल्ड। जहां तक जगत हैं, वहां तक लोक हैं, फिर अलोक है। वह अलोक में ही प्रवेश परमात्मा में प्रवेश है। वहां पुनरुक्ति नहीं है।
ध्यान रखें, यहां सब कुछ पुराना है; वहां सब कुछ नया। यहां सब कुछ पुराना है; वहां सब कुछ नया। यहां सब कुछ बासा है; वहां सब कुछ ताजा। यहां सब कुछ बूढ़ा है; वहां सब कुछ युवा, फ्रेश, ताजा। जैसे सुबह ओस की बूंद, सुबह-सुबह खिला हुआ फूल--बस, खिला ही रह जाए और कभी सांझ न आए, और कभी दोपहरी न हो, और फूल कभी मुरझाए न, और फूल कभी वापस धूल में न गिरे। बस, वह ताजगी ताजी ही रह जाए, वैसी ही युवा, वैसी ही युवा सदा-सदा के लिए। जैसे कोई गीत की कड़ी गूंजे, और गूंजती ही रहे, गूंजती ही रहे, गूंजती ही रहे; फिर कभी समाप्त न हो।
लेकिन यह तो वहीं हो सकता है, जहां कुछ भी कभी शुरू न हुआ हो। लोक में सभी कुछ पुनरुक्त होता है, पुराना है। लोक के पार परमात्मा में सभी कुछ नया है, कुछ भी पुनरुक्त नहीं होता। वहां सभी कुछ नया है, सभी कुछ ताजा है। इस ताजगी की, इस निर्दोष ताजगी की, इस कुंआरेपन की जो उपलब्धि है, वह आनंद है। और इस पुराने की, बासे की, पुनरुक्ति की, बार-बार इसी में सड़ने और घूमने की जो प्रतीति है, वह दुख है।
परंतु हे कुंतीपुत्र, मेरे को प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता। परमात्मा को पा लेने के बाद पा लेने को बचता क्या है, जिसके लिए जन्म
की और जीवन की जरूरत पड़े, समय की जरूरत पड़े!

हे अर्जुन, ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको हजार युग तक अवधि वाला और एक रात्रि जो है, वह भी हजार युग अवधि वाली, ऐसा जो पुरुष तत्व से जानते हैं, वे योगीजन काल के तत्व को जानने वाले हैं।
यह आज के लिए अंतिम सूत्र।
मैंने समय के बाबत थोड़ी बात आपसे कही। यहां समय के बाबत और भी कुछ बातें कृष्ण ने कहीं। और कहा कि इस काल के रहस्य को जो जान लेता है, वही जानने वाला है। यह काल का रहस्य क्या है? व्हाट इ.ज दिस मिस्ट्री आफ टाइम? क्या है समय का राज? तो दो-तीन बातें ख्याल में लें।
एक, कभी आपने ख्याल किया, कुर्सी पर बैठे-बैठे झपकी लग गई और आपने एक लंबा सपना देखा। लंबा--कि चालीस साल लग जाएं उस सपने के पूरे होने में। कि आप बच्चे थे, और बड़े हुए, और जवान हुए, और प्रेम में पड़े, और विवाह हुआ, और बच्चे हुए, और अब आप अपने बच्चे की शादी करके बारात लिए जा रहे हैं, तभी बैंड-बाजे के शोर में नींद खुल गई। लेकिन घड़ी में देखते हैं, तो लगता है, केवल मिनटभर सोए थे। तो मिनटभर में यह चालीस साल का विस्तार कैसे देखा जा सका!
एक मिनट है बाहर के लिए जो, सपने के लिए चालीस साल हो सकता है। समय बड़ी अदभुत चीज है। बड़ी अदभुत चीज है। इसे छोड़ें।
आइंस्टीन कहता था कि जगत में सभी कुछ सापेक्ष है, समय भी। तो कई लोग उससे पूछ लेते थे कि सापेक्षता, रिलेटिविटी का क्या अर्थ है? तो आइंस्टीन का सिद्धांत तो बहुत दुरूह है। कहते हैं, जब वह जीवित था, तो दस-बारह लोग ही सारी जमीन पर उसके सिद्धांत को समझते थे। और ये दस-बारह भी इस मामले में राजी नहीं थे कि बाकी समझते हैं कि नहीं समझते! वह दुरूह है; गणित की गहनतम पहेली है।
लेकिन आम जन को भी समझाना पड़ता था आइंस्टीन को। तो वह कहता था, ऐसा समझो कि तुम अगर एक गरम आग से तपे हुए चूल्हे पर बिठा दिए जाओ, तो क्षणभर भी घंटों लंबा लगेगा। और अगर तुम्हारा बहुत दिन का बिछुड़ा हुआ प्रियजन तुम्हें मिल जाए और उसके हाथ में हाथ डालकर तुम बैठे रहो, तो घंटाभर भी क्षणभर जैसा लगेगा।
समय की प्रतीति चित्त पर निर्भर है। कभी आपने शायद ख्याल न किया हो, दुख में समय बहुत लंबा मालूम पड़ता है। घर में कोई मर रहा है। बिस्तर पर पड़ा है। चिकित्सक कहते हैं, बस आखिरी रात है। बहुत लंबी लगती है रात। ऐसा लगता है, कभी समाप्त न होगी। लेकिन सुख की स्थिति हो, चित्त प्रसन्न हो, प्रमुदित हो, तो रात ऐसे बीत जाती है कि जैसे समय ने कुछ बेईमानी की और घड़ी के कांटे को जल्दी घुमाया।
नहीं, घड़ी के कांटों को आपमें कोई उत्सुकता नहीं है, वे अपनी ही चाल से चलते चले जाते हैं। लेकिन चित्त के अनुसार समय लंबा और छोटा हो जाता है। अगर आपने दिनभर बहुत-से काम किए, तो बाद में सोचने पर लगेगा कि दिन बहुत लंबा था, क्योंकि बहुत भरा हुआ मालूम पड़ेगा। इसलिए यात्रा के दिन बहुत लंबे मालूम पड़ते हैं। लेकिन आप दिनभर खाली बैठे रहे, तो खाली बैठते समय तो लंबा मालूम पड़ेगा, बाद में याद करने पर बहुत छोटा मालूम पड़ेगा। क्योंकि उसमें कोई घटनाएं नहीं हैं, जिनकी वजह से भरा हुआ मालूम पड़े। यात्रा का दिन, नई-नई घटनाओं का दिन जब गुजरता है, तब तो छोटा लगता है;
और जब पीछे याद करते हैं, तो लंबा लगता है। खाली दिन, गर्मी का दिन, उदास बैठे हैं घर में, कुछ काम-धाम नहीं, बेकार; काटते वक्त बहुत लंबा लगता।
पीछे लौटकर याद करें, तो लगता है, बहुत छोटा है, क्योंकि उसमें कुछ भरावट नहीं है। चित्त पर निर्भर करता है कि समय लंबा है या छोटा।
कृष्ण यहां कह रहे हैं कि अगर तुझे अंदाज हो जाए, जैसा कि ज्ञानियों
को पता चल जाता है, ब्रह्मा का दिन... ।
ब्रह्मा का अर्थ है, इस सृष्टि और प्रलय के बीच जिस शक्ति के हाथ में नियंत्रण है। एक सृष्टि और एक प्रलय के बीच में जो नियंत्रण है जिस शक्ति के हाथ में, जो एक सृष्टि और एक प्रलय के बीच में अध्यक्ष है इस अस्तित्व का, उसके लिए एक दिन और एक रात का ही है मामला यह सिर्फ। उसके लिए ये चौबीस घंटे हैं। हमारे लिए युग-युग, हजार-हजार युग, अनंत-अनंत जन्म।

एक पतिंगा आप देखते हैं, वर्षा में पैदा हो जाता है। सांझ को पैदा होता है, रात आधी होते-होते मरकर सड़कों पर गिर जाता है। उतनी देर में सब कुछ हो गया, जो आप सत्तर साल में करेंगे। आपको पता नहीं होगा। उतनी देर में सब कुछ कर डाला उसने, जो आप सत्तर साल में करेंगे। इसलिए वह कोई गरीब नहीं है; बेचारा नहीं है। आप सत्तर साल में करेंगे, वह सात घंटे में कर लेता है। एक अर्थ में आपसे ज्यादा कुशल, शक्तिशाली मालूम पड़ता है! क्योंकि इस बीच वह प्रेम कर लेता है। रोमांस कर लेता है। गुनगुना लेता है गीत। कविताएं गा लेता है। विवाह कर लेता है। बच्चे पैदा कर जाता है। अंडे रख जाता है। बूढ़ा हो जाता है। मर जाता है।
अगर उसकी जिंदगी की घटनाएं और आपकी जिंदगी की घटनाएं देखी जाएं, तो सिर्फ फर्क इतना ही लगेगा कि जो काम उसने सात घंटे में किए, वे आपने सत्तर साल में किए। यह कोई बड़ी गौरव की बात मालूम नहीं पड़ती। सिर्फ इतना ही मालूम पड़ता है कि इनइफिशिएंसी आपमें ज्यादा है, कुशलता जरा कम है; समय ज्यादा ले लेते हैं।
और भी छोटे कीड़े हैं, जो क्षण में ही पैदा होते हैं, क्षण में ही मर जाते हैं। मगर सब काम पूरा कर जाते हैं। कोई काम अधूरा नहीं छोड़ जाते। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि समय कम हो, तो काम आदमी जल्दी और कुशलता से कर लेता है।
सुना है मैंने कि तीन अमेरिकी यात्री रोम आए थे घूमने, तो वे पोप से मिलने गए। तो पोप ने उनसे पूछा, कितनी देर रुकिएगा? तो पहले यात्री ने कहा, कोई तीन महीने रुकने का इरादा है, ताकि सब ठीक से अध्ययन कर सकूं। पोप ने कहा, थोड़ा-बहुत जरूर कर लोगे। दूसरे ने कहा कि मैं तो--थोड़ा डरा वह, क्योंकि वह बहुत कम रुकने वाला था--उसने कहा, मैं तो केवल तीन सप्ताह रुकने आया हूं। तो पोप ने कहा, काफी अध्ययन कर लोगे। बड़ी बेचैनी हुई। तीसरे आदमी ने कहा कि मैं तो केवल तीन दिन ही रुकने आया हूं। पोप ने कहा, तुम पूरा अध्ययन कर लोगे।
क्योंकि समय कम हो, तो आदमी जल्दी करता है, तेजी। समय ज्यादा हो, धीमे- धीमे करता है। समय बहुत हो, तो जमीन पर सरकने लगता है। अगर उसको पता चल जाए कि मरना ही नहीं है, तो बिस्तर से निकलना मुश्किल हो जाए! मरना ही नहीं है, तो फिर न भी उठे; फिर ऐसी जल्दी भी क्या है उठने की! वह तो मरना है, इसलिए इतनी दौड़ है। वह मरना है, इसलिए इतनी दौड़ है।
इसलिए जो सोसाइटी, जो समाज जितना डेथ कांशस हो जाता है, उतनी दौड़ बढ़ जाती है। अगर आज अमेरिका में सर्वाधिक दौड़ है, तो उसका कारण है कि हाइड्रोजन बम की सर्वाधिक विभीषक चिंता अमेरिका के युवक को है, और किसी को नहीं है। उसे सबसे ज्यादा साफ हो गया है, क्योंकि उसके ही मुल्क ने हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम का पहला प्रयोग किया है। और उस युवक को भलीभांति पता हो गया है कि यह जिंदगी अब क्षणभर भी भरोसे की नहीं है। किसी भी दिन सब समाप्त हो जाएगा! तो फिर दौड़ो, और भोग लो, और जी लो; जितनी जल्दी में हो सके। तीन दिन हाथ में हैं; तीन सप्ताह भी नहीं, तीन महीने भी नहीं। इसलिए अमेरिका में जो आज इतने जोर से हिप्पी आंदोलन खड़ा हुआ है, उस आंदोलन के पीछे हिरोशिमा और नागासाकी की छाया है। युवकों को पता है, हम किसी भी दिन झोंक दिए जाएंगे। पता भी नहीं चलेगा, नष्ट हो जाएंगे। प्रेम करना हो, तो कर लो अभी। खाना हो, पीना हो, कर लो अभी।
पश्चिम में जो दौड़ पैदा हुई है, उसका भी कारण सिर्फ एक है कि ईसाइयत ने
एक ही जन्म के सिद्धांत को माना। अगर एक ही जन्म है, तो यह मौत आखिरी मौत है। अगर यह आखिरी मौत है, तो दौड़ो, और जल्दी करो, सब भोग लो।
अगर पूरब में विज्ञान पैदा नहीं हुआ, और इतनी दौड़ पैदा नहीं हुई, और जीवन शिथिल और शांत और धीमी गति से चला, तो उसका कारण पुनर्जन्म की धारणा है। हमें पता है कि यह मौत कोई आखिरी मौत नहीं; यह जन्म कोई पहला जन्म नहीं। यह होता ही रहेगा। इतनी जल्दी क्या है!
इसलिए आप जानकर हैरान होंगे, पूरब के पास टाइम कांशसनेस बिल्कुल नहीं है। पश्चिम के पास टाइम कांशसनेस है। पश्चिम समय के प्रति बहुत सजग है; एक-एक सेकेंड की सजगता है। यहां! यहां अगर हम घड़ी हाथ पर बांध भी लेते हैं, तो

वहशृंगार ज्यादा है, वह समय का बोध कम है। और पुरुष को तो थोड़ी-बहुत समय की जरूरत पड़ गई, ट्रेन पकड़नी है। स्त्रियां भी घड़ी बांधे हुए हैं चूड़ियों की भांति। अगर एकदम से उनसे पूछो कि घड़ी में कितने बजे हैं, तो पता नहीं चलता। मैं तो एक दिन ट्रेन में बैठा था; सामने एक महिला बहुत सजी हुई, काफी सोना-वोना पहने बैठी थी। एयरकंडीशन में बैठी थी, तो धनपति के घर की ही होगी। बड़ी शानदार घड़ी उसने बांध रखी थी। मैंने उससे पूछा कि घड़ी में कितने बजे हैं? उसने कहा, आज ही आई है। और मुझे इसे देखने का ठीक अंदाज नहीं। आपकी घड़ी में बताइए कितने बजे हैं? वह बांधे हुए है बस!
समय का बोध पूरब को हो नहीं सकता, क्योंकि समय इतना लंबा है हमारे पास
कि ठीक है, कोई जल्दी नहीं है। पश्चिम को समय की प्रतीति गहन हो गई, क्योंकि ईसाइयत ने कहा, बस एक ही जन्म है, और मामला इसके पीछे सब समाप्त हो जाएगा। जो भी करना है, अभी कर लो। त्वरा आ गई। जल्दी करो। फैसले का दिन निकट है!
कृष्ण कहते हैं अर्जुन से कि अगर तू ब्रह्मा के हिसाब से सोचे, तो बस
एक दिन और एक रात। सुबह होती है सृष्टि; सांझ होते आधी हो जाती; रात होती, सुबह होते, पूरी हो जाती; प्रलय आ जाता। यह चौबीस घंटे का खेल है। एक चक्र है ब्रह्मा के लिए। इसमें कुछ भी नया नहीं है अर्जुन। ब्रह्मा के लिए सब एक वर्तुल है। वही आरा नीचे आ जाएगा और सब समाप्त हो जाएगा।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, समय के इस रहस्य को जो जान लेता है, वह तत्वविद
है और ऐसे योगीजन परम गति को पाते हैं।
समय के इस रहस्य को जो जान लेता है! यह समय का रहस्य क्या हुआ? यह समय
का रहस्य यह हुआ कि जानने वाली चेतना पर ही समय का फैलाव या सिकुड़ाव निर्भर है।
ब्रह्मा की चेतना के लिए इतना विराट आयोजन सिर्फ एक दिन और रात है। हमारे लिए जो घड़ी में बीतता हुआ एक सेकेंड है, वह किसी छोटे मकोड़े के लिए, किसी पतिंगे के लिए, किसी अमीबा के लिए, एक पूरा जीवन का वर्तुल है।
पर यह है क्या? और यह समय का इतना फैलाव और सिकुड़ाव, यह है क्या? और अगर यही है, यही समय का घूमता वर्तुल ही सब कुछ है, तो इसमें घूमते जाना समझदारी नहीं है। इस वर्तुल के बाहर निकलना समझदारी है। इस चक्र के बाहर होना समझदारी है। समय के बाहर होना बुद्धिमत्ता है। टु ट्रांसेंड टाइम, समय के पार हो जाना बुद्धिमत्ता है। क्योंकि जो समय के पार हो गया, वह सृष्टि और प्रलय के पार हो गया। जो समय के पार हो गया, वह जन्म और मृत्यु के पार हो गया। जो समय के पार हो गया, वह दुख और सुख के पार हो गया। जो समय के पार हो जाता है, वह उस अलोक को उपलब्ध हो जाता है, जहां से न कोई लौटना है, जहां से न कोई वापसी है, न कोई पुनरागमन है। जहां परम जीवन में प्रवेश, परम अस्तित्व में प्रवेश है; अनादि और अनंत।
काल के इस रहस्य को अगर जानना हो, तो ध्यान में थोड़ी गति करें, क्योंकि ध्यान काल के विपरीत है। ध्यान में जितनी गति होगी, उतने समय के बाहर हो जाएंगे।
इसलिए कभी तो ध्यान में ऐसा हो जाता है कि घंटों बीत गए और जागकर वह व्यक्ति कहता है कि क्या हुआ, कितना समय बीत गया! मुझे तो कुछ पता ही नहीं। मैं था, होश था, बेहोश नहीं था, लेकिन समय का मुझे कुछ पता नहीं है। घड़ी जैसे रुक गई, ठहर गई भीतर की।
ध्यान समय के बाहर उतरने की विधि है।
ये बातें मैंने आपसे कहीं, लेकिन ये बातें आपको पूरी तभी समझ में आ पाएंगी, जब ध्यान की थोड़ी-सी झलक और स्वाद आपको मिलना शुरू हो जाए। तो काल का रहस्य ख्याल में आ जाता है, और काल के बाहर जाने की क्षमता भी आ जाती है।
आज इतना ही।
लेकिन अभी जाएंगे नहीं। पांच मिनट तक ये काल के बाहर जाने के लिए संन्यासी कोशिश करेंगे कीर्तन में। आप भी साथी हो जाएं। कौन जाने, किसी भी क्षण क्रांति घटित हो सकती है।
कोई उठेगा नहीं। और मैंने इतनी बार कहा, लेकिन वे लोग आना शुरू कर दिए आगे की तरफ। आप वहीं रुकें। वहीं रुकें। और बाद में भी जब कीर्तन होता है,

तब उठ आते हैं। आप जब उठ आते हैं, तो बाकी लोगों को भी उठने की इच्छा पैदा हो जाती है।
वहीं खड़े रहें। वहीं से भागीदार बनें। ज्यादा फासला नहीं है। ज्यादा दूरी नहीं है। वहीं से तालियां बजाएं। गीत दोहराएं। बैठकर आनंदित हों। यह पूरा वायुमंडल आनंद से भर जाए और समय के बाहर निकल जाए। पांच मिनट के लिए इस नृत्य में खोकर समय के बाहर निकल जाएं। अपनी जगह बैठे रहें।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
सातवां प्रवचन

सृष्टि और प्रलय का वर्तुल

अव्यक्तात व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
राष्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।। 18।।
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
राष्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।। 19।।
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।। 20।।
इसलिए काल के तत्व को जानने वाले यह भी जानते हैं कि संपूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में अव्यक्त से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेशकाल में उस अव्यक्त में ही लय होते हैं।
और हे अर्जुन, वह ही यह भूत समुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेशकाल में लय होता है और दिन के प्रवेशकाल में फिर उत्पन्न होता है।
परंतु उस अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात विलक्षण जो सनातन अव्यक्त भाव है, वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नहीं नष्ट होता है।

अस्तित्व की व्याख्या, कैसे यह अस्तित्व पैदा होता है और कैसे लीन होता है। इसके पहले कि हम कृष्ण के वचन पर विचार करें, कुछ और प्राथमिक बातें जान लेनी जरूरी हैं।
एक तो कि काल के तत्व को जो जान लेते हैं, वे ही आने वाली इस व्याख्या
को समझ पाएंगे। काल के तत्व के संबंध में एक बहुत मौलिक बात स्मरण कर लेनी जरूरी है और वह यह है कि समय के भीतर जो भी प्रकट होता है, वह स्वप्नवत है, ड्रीमलाइक है।
इसे हम ऐसा समझें कि जैसे कोई व्यक्ति दर्पण में अपनी तस्वीर देखे, तो दर्पण में जो दिखाई पड़ता है, वह स्वप्नवत है। दर्पण में वस्तुतः होता नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है। लेकिन दिखाई पूरा पड़ता है। दिखाई पड़ने में कोई कमी नहीं है। या जैसे कोई रात चांद निकला हो आकाश में और झील की शांत सतह में उसका प्रतिफलन बन जाए। कोई झील में झांककर देखे, तो चांद पूरा दिखाई पड़ता है, वैसे वहां है नहीं।
ठीक समय के भीतर भी प्रतिफलन ही उपलब्ध होते हैं। समय दर्पण है या पानी की झील है, उसमें जो हमें दिखाई पड़ता है, वह वास्तविक नहीं है, स्वप्नवत है। यही अर्थ है माया का, इलूजन का। लेकिन जब तक हमें उस सत्य का पता न हो जो दर्पण के बाहर है, तब तक हमें यह भी एहसास न हो सकेगा कि जो हम देख रहे हैं समय के भीतर, वह माया है।
सुना है मैंने, रमजान के उपवास के दिन हैं और मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते के किनारे से निकलता है। प्यास लगी है, तो उसने कुएं में झांककर देखा, देखा कि चांद कुएं में पड़ा है। सोचा उसने कि चांद यहां फंसा पड़ा है! उपवास के दिन हैं, और अगर चांद बाहर न निकाला गया, तो लोग उपवास कर-करके मर जाएंगे, उपवास का अंत कैसे आएगा?
भागा हुआ पास के गांव में गया, रस्सी लेकर आया। रस्सी को डाला कुएं में चांद को फंसाने के लिए और निकालने के लिए। फंस भी गया चांद। मुल्ला ने बड़ी ताकत लगाई। बड़ी मुश्किल में पड़ा; क्योंकि रस्सी उसकी कुएं में जाकर एक पत्थर से फंस गई थी। बहुत खींचा, फिर सोचा भी कि चांद जैसी चीज है, मुश्किल तो होगी ही। लेकिन हजारों-लाखों लोगों का सवाल है, मुझे मेहनत करके निकाल ही देना चाहिए। बहुत ताकत लगाई, तो रस्सी टूट गई। मुल्ला धड़ाम से कुएं के नीचे गिरा। घबराहट में आंखें बंद हो गईं। सिर लहूलुहान हो गया। जब आंख

खुली, तो चांद आकाश में दिखाई पड़ा। उसने कहा कि चलो, कोई हर्ज नहीं। थोड़ी हमें मुश्किल भी हुई, तो कोई बात नहीं, लेकिन चांद मुक्त हो गया!
समय की झील में जो हमें दिखाई पड़ता है, वही संसार है। समय में पकड़ा हुआ
जो हमें दिखाई पड़ता है, वही संसार है। लेकिन समय के बाहर हम देख ही नहीं पाते हैं। हम बिल्कुल कुएं पर झुके खड़े हैं। और जो हमें कुएं में दिखाई पड़ता है, वही दिखाई पड़ता है। समय के मीडियम में, समय के माध्यम में जो झलकता है, उसे ही हम जानते हैं। और हम किसी चीज को जानते नहीं।
तो समय के तत्व को जो जान लेता है, वह यह भी जान लेता है, यह जगत सिर्फ
एक माया है, यह जगत सिर्फ एक प्रतिबिंब है, यह जगत सिर्फ एक स्वप्न है। और जो समय से मुक्त हो जाता है, वह जगत से भी तत्क्षण मुक्त हो जाता है। या जो जगत से मुक्त हो जाता है, वह समय से मुक्त हो जाता है। अगर इसे हम और भी सूक्ष्म में कहें, तो कह सकते हैं, समय ही संसार है। समय के बाहर हो जाना संसार के बाहर हो जाना है।
लेकिन यह समय का तत्व बहुत अदभुत है। हम सभी अपनी कामना की गहनता के अनुसार अधिक या कम समय के भीतर हो सकते हैं। जितनी तीव्र वासना होती है, समय के भीतर उतना हमारा गहरा प्रवेश हो जाता है। जितनी क्षीण वासना होती है, उतना ही हम समय की परिधि पर आ जाते हैं।
सुना है मैंने कि एक ईसाई फकीर मरकर स्वर्ग पहुंचा। द्वार पर ही सेंट पीटर उसे मिले। तो उस फकीर ने कहा, मैंने बड़ी-बड़ी बातें स्वर्ग के संबंध में सुनी हैं। मैं सदा फकीर रहा; कौड़ी-कौड़ी मांगकर जीया। मैंने सुना है कि स्वर्ग की एक कौड़ी भी, एक पाई भी पृथ्वी के अरबों-खरबों रुपयों के बराबर होती है। सेंट पीटर ने कहा, तुमने ठीक ही सुना है। तो उस फकीर ने कहा, क्या कृपा करके एक छोटी-सी पाई मुझे उधार न दे सकेंगे!
फकीर ने सोचा कि एक पाई अगर अरबों-खरबों रुपयों के बराबर होती है और
एक पाई देने से सेंट पीटर जैसा भला आदमी क्या इनकार करेगा। सेंट पीटर ने कहा, जरूर दूंगा। लेकिन एक क्षण ठहर जाओ।
दिन बीतने के करीब आ गया। फकीर द्वार पर बैठा रहा। सांझ होने लगी। उसने कहा, एक क्षण कितना लंबा होता है यहां? सेंट पीटर ने कहा, पृथ्वी के अरबों-खरबों बरसों के बराबर। क्योंकि जब पाई अरबों-खरबों के बराबर होगी, तो क्षण भी अरबों-खरबों बरसों के बराबर होगा। अनुपात वही होता है। अनुपात वही होता है। एक आदमी के पास एक कौड़ी है और एक आदमी के पास एक करोड़ रुपए हैं, तो आप यह मत समझना कि करोड़ रुपए वाले की आसक्ति ज्यादा होगी और एक कौड़ी वाले की आसक्ति कम होगी। नहीं, इस भूल में मत पड़ना। आसक्ति का अनुपात वही होगा। एक कौड़ी पर भी उतनी ही होगी, करोड़ रुपए पर भी उतनी ही होगी।
इसे ऐसा समझें। एक आदमी एक घर से एक कौड़ी चुरा लाता है, और एक आदमी एक लाख रुपए चुरा लाता है। क्या लाख रुपए वाले की चोरी ज्यादा होगी? निश्चित ही जो रुपए गिनते हैं, वे कहेंगे, हां। लाख रुपए की चोरी लाख रुपए की चोरी है, और कौड़ी की चोरी कौड़ी की चोरी है।
लेकिन चोरी तो बराबर है। चोरी में कोई भेद पड़ता नहीं। कौड़ी की चोरी उतनी ही चोरी है, जितनी लाख की चोरी चोरी होती है। चोरी में कोई अंतर नहीं पड़ता। क्या चुराया, यह गौण है। चुराया, यही महत्वपूर्ण है। अनुपात वही होता है।
वासना में जो बहुत दौड़ते हैं वे भी, वासना में जो कम दौड़ते हैं वे भी, अनुपात तो बराबर होता है। अनुपात में फर्क नहीं पड़ता। लेकिन फिर भी, जो कम वासना में दौड़ते हैं, वे पानी की सतह के करीब होते हैं। और जो ज्यादा वासना में दौड़ते हैं, वे पानी की गहराइयों में होते हैं। कम वासना में दौड़ने वाला आदमी झटके से छलांग ले सकता है समय के बाहर। ज्यादा वासना में दौड़ने वाले को उतना ही कठिन हो जाता है। समय ही नहीं मिलता कि समय के बाहर निकल सके।
समय के तत्व को जो समझ लेता है, वह यह भी समझ लेता है कि अगर मुझे समय
के बाहर होना है, तो मुझे वासना के बाहर हो जाना पड़ेगा। और अगर मुझे वासना

के बाहर होना है या समय के बाहर होना है, तो क्या सूत्र होगा इसका? वे जो काल के तत्व को जान लेते हैं, किस सूत्र का प्रयोग करते हैं?
एक छोटा-सा सूत्र आपसे कहता हूं। वे इसी का प्रयोग करते हैं। वे क्षण में जीना शुरू करते हैं। समय में नहीं, क्षण में। नाट इन टाइम, बट इन दि मोमेंट। एक क्षण है अभी मेरे पास; और एक क्षण से ज्यादा किसी आदमी के पास कभी होता नहीं। कितना ही बड़ा आदमी हो, कितना ही छोटा आदमी हो, दीन हो, दरिद्र हो, सम्राट हो, कमजोर हो कि शक्तिशाली हो, अज्ञानी हो कि ज्ञानी हो, एक क्षण से ज्यादा किसी के हाथ में कभी इकट्ठा नहीं होता। जब एक क्षण सरक जाता है, तब दूसरा क्षण हाथ में आता है। एक क्षण से ज्यादा किसी के पास नहीं होता।
अगर कोई इस एक क्षण में ही जीना शुरू कर दे, आने वाले क्षण की वासना न करे, चिंता न करे, आकांक्षा न करे; बीते हुए क्षण को भूल जाए, छोड़ दे, स्मृति के बाहर कर दे; इस क्षण में ही ठहर जाए--तो ऐसे आदमी को वासना में जाने का उपाय नहीं होगा। क्योंकि वासना इसी क्षण में नहीं हो सकती।
इसी क्षण में तो केवल प्रार्थना ही हो सकती है। इसी क्षण में तो केवल ध्यान ही हो सकता है। इसी क्षण में तृष्णा नहीं हो सकती। तृष्णा के लिए एक क्षण से ज्यादा चाहिए। फैलाव के लिए, विस्तार के लिए भविष्य चाहिए। और भविष्य के फैलाव के लिए अतीत में जड़ें और स्मृति चाहिए। अगर अतीत भी नहीं, भविष्य भी नहीं, यही क्षण है, तो समय गिर गया और वासना भी गिर गई।
इसलिए ज्ञानी क्षण में जीना शुरू कर देता है, अभी और यहीं। और जैसे ही कोई अभी और यहीं जीता है, समय के बाहर हो जाता है। क्षण जो है, समय के बाहर होने का द्वार है।
इसे और तरह से भी समझ लें।
पिछले तीस वर्षों की वैज्ञानिक खोजों ने पदार्थ के अंतिम कण पर मनुष्य को पहुंचा दिया, एटम पर, अणु पर पहुंचा दिया, परम अणु पर पहुंचा दिया। फिर परम अणु का भी विभाजन हो गया और परम अणु का भी विभाजित हिस्सा इलेक्ट्रान हाथ में आ गया। लेकिन एक बड़ी अदभुत घटना घटी, परमाणु के टूटते ही पदार्थ खो जाता है। परमाणु के टूटते ही पदार्थ खो जाता है। और इधर बीस वर्षों में विज्ञान की जो बड़ी से बड़ी उपलब्धि है, वह यह है कि अब पदार्थ जगत में नहीं है।
तीन सौ वर्ष पहले जो विज्ञान सोचकर चला था कि परमात्मा जगत में नहीं है, कोई सोच भी नहीं सकता था... अगर आज पुराने वैज्ञानिकों को कब्रों से उखाड़ा जाए, न्यूटन को उखाड़ा जाए कब्र से या गैलीलियो को, तो वे विश्वास न कर सकेंगे कि यह विज्ञान ने कौन-सी उपलब्धि कर ली! सोचते थे कि ईश्वर खो जाएगा, आत्मा खो जाएगी। इस सदी के प्राथमिक समय में भी सभी वैज्ञानिक इस ख्याल से भरे थे कि आत्मा-परमात्मा के बचने की कोई जगह नहीं। पदार्थ ही सत्य है, मैटर इ.ज दि ओनली रियलिटी।
लेकिन इधर उन्नीस सौ पचास के करीब जो प्रतीति गहन होने लगी, वह यह है
कि मैटर इ.ज दि मोस्ट अनरियल थिंग, पदार्थ है ही नहीं। जैसे ही परमाणु टूटता है, पदार्थ खो जाता है और परमाणु के टूटते ही पदार्थ के बाहर प्रवेश हो जाता है, अपदार्थ में, नान-मैटीरियल में प्रवेश हो जाता है।
ठीक ऐसे ही समय का जो आखिरी टुकड़ा है, उसका नाम क्षण है, कहें कि वह समय
का परमाणु है, क्षण। जो व्यक्ति क्षण में ठहर जाता है, वह समय के बाहर हो जाता है। जैसे परमाणु में जो व्यक्ति प्रवेश करता है, वह पदार्थ के बाहर हो जाता है, वैसे ही जो व्यक्ति क्षण में, समय के परमाणु में प्रवेश करता है, वह समय के बाहर हो जाता है।
विज्ञान ने पदार्थ की खोज करके परमाणु पाया और परमाणु के बाहर द्वार पाया, जहां से अपदार्थ में, अव्यक्त में, अनमैनिफेस्टेड में प्रवेश हो जाता है। ठीक ऐसे ही पूरब के धर्म ने, पूरब के धर्म के खोजियों ने, मिस्टिक्स ने समय की खोज की ज्यादा। क्योंकि उनके इरादे कुछ और थे; उनके इरादे उसको जानने के थे, जो इटरनल है, शाश्वत है, सनातन है। उन्होंने समय की खोज की और समय के आखिरी टुकड़े को खोजा, जिसका नाम उन्होंने क्षण दिया है। उसको कहें टाइम एटम, कहें समय का परमाणु। और जब वे समय के इस परमाणु के

भीतर प्रविष्ट हुए, खड़े हुए, उन्होंने पाया, टाइम सिंपली डिसएपियर्स, समय खो जाता है। और फिर जो बचता है, वही शाश्वत, सनातन, नित्य है।
समय के रहस्य को जानने वाले के लिए कृष्ण कहते हैं, जो समय के, काल के
इस तत्व को जान लेता है, इस क्षण के द्वार को पहचान लेता है और समय के बाहर होने की कला जिसे आ जाती है, वह संपूर्ण दृश्यमात्र भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में अव्यक्त से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेशकाल में उसी अव्यक्त में लय होते हैं--इस तत्व का भी ज्ञाता हो जाता है।
यहां दो-तीन बातें, जो कि मैंने आपसे अभी-अभी कहीं, वे ख्याल में ले लें। कृष्ण कहते हैं, वह व्यक्ति जो समय को जान लेता है, वह इस सत्य को भी जान लेता है कि यह जगत कहां से पैदा होता है और कहां लीन होता है। इस जगत के पैदा होने के लिए कृष्ण ने कहा है, समस्त दृश्यमात्र भूत, सब मैटर, सब पदार्थ, ब्रह्मा के दिन के प्रवेशकाल में, ब्रह्मा के प्रथम मुहूर्त क्षण में, जब ब्रह्मा का दिन शुरू होता है... ।
हमने कल समझा कि चौबीस घंटे हमारे जैसे हैं, बारह घंटे का दिन और बारह घंटे की रात भी मान लें, तो ब्रह्मा की जब सुबह होती है, ब्रह्ममुहूर्त! अभी भी हम सुबह के क्षण को ब्रह्ममुहूर्त कहते हैं, सिर्फ इस याददाश्त में कि कभी हमें वास्तविक ब्रह्ममुहूर्त का भी पता चल जाएगा। जिसे हम ब्रह्ममुहूर्त कहते हैं, वह ब्रह्ममुहूर्त नाम मात्र को है। ब्रह्ममुहूर्त का अर्थ है, ब्रह्मा का वह क्षण, जब जगत शुरू होता है, जीवन प्रारंभ होता है, पदार्थ आविर्भूत होते हैं, व्यक्त होते हैं और लीला शुरू होती है। सुबह वह लीला शुरू होती है, सांझ होते-होते वह लीला अपने शिखर पर पहुंच जाती है। और जब भी कोई चीज शिखर पर पहुंचती है, तो उतरना शुरू हो जाती है। फिर रात ब्रह्मा की, और सब चीजें बिखरती जाती हैं, उतरती चली जाती हैं। और अंतिम क्षण में रात्रि के, जो जगत प्रकट हुआ था, वह पुनः अप्रकट में लीन हो जाता है। और फिर सुबह, और फिर सांझ, और फिर सुबह, ऐसा वर्तुलाकार ब्रह्मा का समय चलता रहता है।
ये पदार्थ अव्यक्त से उत्पन्न होते हैं। अव्यक्त का अर्थ है, दि अनमैनिफेस्टेड, जो प्रकट नहीं है। उससे प्रकट होता है सब। जो छिपा है, उससे प्रकट होता है सब। जो गुप्त है, उससे प्रकट होता है सब।
अभी विज्ञान की खोज भी इसके करीब पहुंची है। शायद इस वचन के समर्थन में शंकर जो नहीं कह सकते, रामानुज जो नहीं कह सकते, निंबार्क जो नहीं कह सकते, गीता के जो भी बड़े-बड़े चिंतक हुए वे नहीं कह सकते, वह शायद इस हमारी सदी का भौतिकविद, फिजिसिस्ट कह सकता है। आइंस्टीन कह सकता है कि यह वक्तव्य न केवल धर्म का वक्तव्य है, यह वक्तव्य विज्ञान का भी वक्तव्य है। क्योंकि परमाणु के विभाजन के बाद विज्ञान ने पाया कि वह जो प्रकट परमाणु था, अचानक अप्रकट में लीन हो जाता है।
इसके पहले तक कभी विज्ञान को ख्याल नहीं था और यह इल्लाजिकल भी है। यह वक्तव्य बहुत अतार्किक है, तर्कहीन है। बुद्धिमत्ता इसका समर्थन न करेगी, बुद्धि इसके सहयोग में खड़ी न होगी। क्यों? क्योंकि व्यक्त अगर प्रकट होता है अव्यक्त से, तो इसका तो अर्थ हुआ कि शून्य से पूर्ण का जन्म होता है। इसका तो अर्थ हुआ कि जो नहीं है, उससे, जो है, वह निकल आता है। इसका तो अर्थ हुआ, जो कहीं नहीं पाया जाता, उससे भी, सारा जो सब जगह पाया जाता है, उसका फैलाव है। यह तो बहुत तर्क में बात आती नहीं। विचार इसको पकड़ नहीं पाता। यह तो ऐसा ही हुआ कहना कि आउट आफ नथिंग, ना-कुछ से, सब कुछ का जन्म है। लेकिन परमाणु के विघटन ने इस गीता के वक्तव्य को वैज्ञानिक प्रामाणिकता भी दे दी। क्योंकि परमाणु के विघटन के बाद कोई उपाय न रहा। और जब किसी ने बहुत बड़े भौतिकविद प्लांक से पूछा कि यह तुम कैसी तर्कहीन बातें कर रहे हो! कि परमाणु के नीचे उतरते ही परमाणु का जो पदार्थ है, वह अपदार्थ हो जाता है, मैटर इम्मैटर हो जाता है, यह तुम कैसी तर्कहीन और अवैज्ञानिक बातें कर रहे हो! तो प्लांक का उत्तर बहुत अदभुत है।
प्लांक ने कहा, जब तक मुझे पता नहीं था, प्रयोग में जाना नहीं था, तब तक मैं भी यही कहता। अब मैं तुमसे इतना ही कहूंगा, हमारे वश के बाहर है।

परमाणु का जो व्यवहार है, वह यही है कि उसके टूटते ही वह नीचे अव्यक्त में खो जाता है। अब अगर वह अतर्क है, तो हम अपने तर्क को बदल डालें, और कोई उपाय नहीं। नाउ लेट अस चेंज अवर होल लाजिक! लेकिन हम अस्तित्व को नहीं बदल सकते। अगर हमारे तर्क में बात नहीं बैठती है, तो भी अस्तित्व राजी नहीं होगा कि हमारे तर्क के अनुसार चले। हम अपने तर्क को ही बदल लें। और तो कोई उपाय नहीं है।
इसलिए पचास वर्षों में पिछले एक नए तर्क का जन्म हुआ है, पश्चिम में
नए गणित का जन्म हुआ है, नई ज्यामिति का जन्म हुआ है, जिनको कि सुनकर पुराने ज्यामिति के विद्यार्थी को, पुराने गणित के विद्यार्थी को, पुराने तर्क के विद्यार्थी को कुछ भी समझ में नहीं आता कि यह क्या है!
आपमें से बहुत-से लोगों ने शिक्षा के समय में ज्यामेट्री पढ़ी होगी यूक्लिड की, लेकिन इधर निरंतर नान-यूक्लिडिअन ज्यामेट्री महत्वपूर्ण होती जा रही है। यूक्लिड की सारी परिभाषाएं गलत हो गईं, क्योंकि अस्तित्व में उनसे कहीं मेल नहीं है।
यूक्लिड कहता है, दो समानांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलतीं। जो गैर, यूक्लिड के विपरीत खड़ी हुई ज्यामेट्री है, वह कहती है, दो समानांतर रेखाएं भी मिलती हैं। यूक्लिड कहता है, दो समानांतर रेखाएं कैसे मिल सकती हैं? वे बिल्कुल समानांतर हैं, इसलिए कहीं भी बढ़ जाएं, समानांतर ही रहेंगी। मिलेंगी कैसे?
नान-यूक्लिडिअन ज्यामेट्री कहती है, हम परिभाषाएं नहीं मानते। हम कहते हैं, दो समानांतर रेखाएं खींचो और बढ़ाते चले जाओ, अगर वे न मिलें, तो हम मान लेंगे।
अब बड़ी मुश्किल है, रेखाएं मिल जाती हैं। तो वे कहते हैं, हम यूक्लिड
को मानें कि इन रेखाओं को मानें, जो मिल जाती हैं! इन रेखाओं को यूक्लिड का कोई भी पता नहीं है। या, नान-यूक्लिडिअन ज्यामेट्री कहती है, कि अगर तुम जिद्द ही करते हो, तो उसका मतलब यह हुआ कि दो समानांतर रेखाएं खींची ही नहीं जा सकतीं। एक ही बात है। जो भी खींची जा सकती हैं, वे मिल जाती हैं। और जो खींची नहीं जा सकतीं, उनके मिलने न मिलने का पता कैसे चलेगा!
यूक्लिड कहता है कि हम सीधी रेखा उसे कहते हैं, जो दो बिंदुओं के बीच सबसे कम जगह में प्रवेश करती है। और यूक्लिड कहता है कि सीधी रेखा सीधी है। सीधी रेखा को किसी वर्तुल का हिस्सा नहीं बनाया जा सकता है। इट कैन नाट बी सेग्मेंट आफ ए सर्किल। नान-यूक्लिड की ज्यामेट्री कहती है, तुम कोई सीधी रेखा खींचो; और हर सीधी रेखा को किसी बड़े वर्तुल का हिस्सा बनाया जा सकता है। क्योंकि नान-यूक्लिडिअन ज्यामेट्री कहती है, जिस जमीन पर बैठकर तुम रेखा खींचते हो, वह गोल है। उस पर खींची गई कोई भी रेखा, अगर पूरी तरह दोनों तरफ बढ़ा दी जाए, तो जमीन को घेरकर वर्तुल बन जाएगी।
यूक्लिड का बिल्कुल सफाया हो गया, उसको अब कोई जगह नहीं बची।
पुराना गणित कहता है, दो और दो मिलकर चार होते हैं। नया गणित कहता है
कि दो और दो मिलकर चार कभी नहीं होते, कभी इंचभर इस तरफ होते हैं, कभी इंचभर उस तरफ होते हैं। क्योंकि दो और दो कभी बराबर नहीं होते। दो और दो बराबर कभी नहीं होते। आप कहेंगे, दो और दो तो बराबर होते हैं! नया गणित कहता है कि सिर्फ परिभाषा में। सिर्फ परिभाषा में।
कोई दो चीजें बराबर नहीं होतीं। कोई दो पत्थर बराबर नहीं होते। कोई
दो पत्ते बराबर नहीं होते। अस्तित्व में दो चीजें एक्जेक्टली अलाइक एंड ईक्वल होती ही नहीं। कोई उपाय नहीं है दो चीजों को बराबर, ठीक बराबर करने का। थोड़ा-सा अंतर शेष रह ही जाता है। और वह अंतर जोड़ में फर्क करेगा। लेकिन दो और दो चार होते हैं। दो और दो चीजें अगर जोड़ी जाएं, तो कभी चार नहीं होतीं; कुछ कम या कुछ ज्यादा।
प्लांक ने कहा है कि हम अपने गणित को बदल लें, अपने तर्क को बदल लें; लेकिन अस्तित्व हमारे तर्क को मानकर चलने के लिए राजी नहीं है।
इधर बीस वर्षों ने खुद विज्ञान की आधारशिलाओं को बहुत ही हिला दिया है। एक नया शब्द विज्ञान में प्रवेश किया जो कभी भी नहीं था। हमेशा समझा जाता था, साइंस इ.ज दि मोस्ट सर्टेन थिंग। किसी ने नहीं सोचा था कि

अनसर्टेंटी, अनिश्चय विज्ञान का केंद्रीय शब्द बन जाएगा। इधर बन गया है। अनसर्टेंटी, अनिश्चय ही विज्ञान का केंद्रीय शब्द बन गया है। क्योंकि कुछ भी निश्चित नहीं मालूम पड़ता, सब डांवाडोल हो गया है। इस डांवाडोल होने में जो सबसे बड़ी घटना घटी है, यह वचन उसी घटना के लिए है।
कृष्ण कहते हैं, अव्यक्त से व्यक्त का जन्म होता है ब्रह्ममुहूर्त में, ब्रह्मा के पहले क्षण में। और फिर पुनः यह व्यक्त जब थक जाता, जीर्ण-शीर्ण हो जाता, जरा-जीर्ण हो जाता, वृद्ध हो जाता, तो पुनः लीन हो जाता है अव्यक्त में।
इसे हम अपने से समझें तो शायद आसान हो जाए।
सुबह आप उठते हैं ताजे, लेकिन कभी आपने ख्याल किया, यह ताजगी कहां से आती है? निश्चित ही, रातभर आपने ताजगी के लिए कुछ भी नहीं किया; न कोई व्यायाम किया, न कोई भोजन लिया। रातभर अगर आपने कुछ भी किया, तो इतना ही किया कि अपने को सब करने से रोका। रातभर आप सोए रहे। सोने में आप पुनः अव्यक्त में गिर जाते हैं। व्यक्त से हट जाते हैं, अव्यक्त में गिर जाते हैं। उसी अव्यक्त से ताजगी लेकर सुबह पुनः उठ आते हैं। सांझ होते-होते फिर थक जाते हैं; दिन ढल जाता है, रात शुरू हो जाती है। फिर... ।
इसलिए पुराने शास्त्र कहते हैं, निद्रा छोटी मृत्यु है, निद्रा आंशिक मृत्यु है; मृत्यु पूर्ण निद्रा है। रोज आदमी को मरना पड़ता है, इसीलिए सुबह वह पुनः जीवित हो पाता है। रात अंधेरे में डूब जाते हैं, सुबह फिर पुनरुज्जीवित होते हैं, ताजे, प्रफुल्लित; फिर काम में लग जाते हैं।
ठीक ब्रह्मा की यह पूरी सृष्टि भी दिनभर में थक जाती है, सांझ होने के करीब हो जाती है। फिर मृत्यु, फिर पुनर्जन्म। ठीक चौबीस घंटे के दिन की भांति ब्रह्मा का भी बड़ा वर्तुलाकार दिन घूमता रहता है।
इसलिए एक बात और बहुत मजे की है और वह यह कि सिर्फ पूरब के मुल्कों में
और विशेषतया भारत में समय की एक धारणा विकसित की, जो सरकुलर है, वर्तुलाकार है। हम समय को हमेशा वर्तुल में सोचते रहे। पश्चिम में समय की धारणा लीनियर है, एक रेखा में, सीधी। पश्चिम को वर्तुल का ख्याल ही अभी-अभी आना शुरू हुआ। नहीं तो पश्चिम सोचता है, एक रेखा में इतिहास चलता है। हम सोचते हैं कि रेखा में नहीं, गोल वर्तुल में चलता है।
इसलिए हम जानते हैं कि सब चीजें फिर लौटकर आ जाती हैं। अगर एक ही रेखा में चलता हो, तो चीजें लौटकर नहीं आ सकतीं। इसलिए पश्चिम ने इतिहास लिखा, पूरब ने कभी इतिहास नहीं लिखा। क्योंकि जब सभी चीजें बार-बार लौट आती हों, तो इतिहास की लिखने की व्यर्थ की झंझट में क्यों पड़ना? फिर-फिर यही होगा। फिर राम होंगे, फिर कृष्ण होंगे, फिर बुद्ध होंगे; चीजें वर्तुलाकार लौटती रहेंगी; तो क्या प्रयोजन है बार-बार लिखने से कि बुद्ध कब हुए, कैसे हुए, किस तिथि में हुए, किस समय में हुए!
ईसाइयत ने समय का नान-सर्कुलर दृष्टिकोण पकड़ा है, गैर-वर्तुल, रेखाबद्ध। इसलिए ईसा का जन्मदिन इतिहास की शुरुआत बन गया। वह ईवेंट बन गया, घटना बन गई। इसलिए उचित ही है कि सारी दुनिया में हम ईसा के जन्मदिन के हिसाब से समय को मापते हैं। हमारे पास ऐसा समय-माप नहीं है। और हमने जो समय-माप गढ़े भी हैं, वे भी ईसा की नकल में गढ़े हैं। और हमने बहुत दफे बहुत-से समय-माप शुरू किए, लेकिन हमारी चेतना से मेल नहीं पड़ा और वे छूट गए। हमने पुराण तो लिखा है, इतिहास नहीं लिखा। पुराण का अर्थ है, वह जो सदा लौटता है, उसमें तिथियों के हिसाब की जरूरत नहीं, कथा का सार ही काफी है। इसलिए ईसाइयत कहती है कि जीसस इ.ज दि फर्स्ट हिस्टारिक पर्सन। वे ठीक कहते हैं कि जीसस पहले ऐतिहासिक पुरुष हैं। वे कहते हैं, तुम्हारे सब पुरुष-- कृष्ण हों, कि ऋषभ हों, कि राम हों, कि परशुराम हों--ये सब नान-हिस्टारिक हैं, ये सब गैर-ऐतिहासिक हैं।
इससे भारतीय मन को बड़ी पीड़ा होती है; लेकिन उसी मन को, जिसे भारत के रहस्यों का कोई पता नहीं है। इससे खुश होना चाहिए, यह पौराणिक है और पुराण इतिहास से ज्यादा गहन बात है।
इतिहास लेखा-जोखा है ऊपरी घटनाओं का; पुराण लेखा-जोखा है अंतरतम का।
उसमें तिथियों का कोई मूल्य नहीं। उसमें, अखबार में जो घटनाएं छपती हैं,

उनका कोई मूल्य नहीं। उसमें तो जो घटनाएं जीवन के अंतस्तल में, अस्तित्व के प्राणों में घटित होती हैं, केवल उनका लेखा-जोखा है।
इसलिए एक बहुत मजेदार घटना घट सकती है, वह सिर्फ भारत में घट सकती है।
वह यह है कि वाल्मीकि ने राम के जन्मने के पहले रामायण लिखी। यह दुनिया में कहीं भी नहीं घट सकती। यह कैसे घट सकती है! क्योंकि इतिहास लिखने वाला तो इतिहास तभी लिखेगा, जब इतिहास घट जाए। कोई अखबार खबर छाप सकता है, जो अभी घटी न हो? अखबार तो खबर छाप सकता है, जो घट गई हो। इसलिए इतिहास केवल सड़ा हुआ कचरा है, जो हो चुका, जो बीत चुका। वह सिर्फ राख है मुर्दों की। इतिहास मरे का लेखा-जोखा है।
सिर्फ एक अनूठी घटना इस मुल्क में घटी है और वह यह कि वाल्मीकि ने राम
के जन्म के पहले राम की कथा लिखी है। बड़ी अनूठी है और बड़ी बेबूझ है, एब्सर्ड है, तर्कसंगत नहीं है। कोई भी कहेगा, क्या पागलपन है! पहले कथा कैसे लिखी जा सकती है?
लिखी जा सकती है, अगर पुराण का ख्याल हो। वाल्मीकि को अगर यह पता है कि राम जैसा व्यक्ति हर वर्तुलाकार अस्तित्व में पैदा होता है, राम जैसा व्यक्ति ब्रह्मा के हर दिन में एक बार पैदा होता ही है, तो यह कथा लिखी जा सकती है। यह राम जैसा व्यक्ति हजारों दफे पहले भी पैदा हो चुका है।
समझें ऐसा कि हमें पता है कि हर वर्ष, वर्ष के किसी काल में वर्षा आती है। एक बार जब वर्ष का वर्तुल घूमता है, तो वर्षा आती है। तो वर्षा आने के पहले जान लेने में कौन-सी कठिनाई है! जिसे पता हो कि आषाढ़ आएगा और आषाढ़ के पहले दिन आकाश में बादल घिरेंगे, भूखी-प्यासी पृथ्वी मांग करेगी और आकाश से उसकी प्यास को तृप्त करने के लिए पानी गिरेगा। इसमें कौन-सी कठिनाई है, जिसे पता हो पिछले वर्षों का, वर्षा के होने का!
लेकिन एक नया बच्चा पैदा हुआ है, जिसने अभी पहली वर्षा भी नहीं देखी। उसका पिता अगर उससे कहे कि बहुत शीघ्र वर्षा आएगी, आषाढ़ का पहला दिन करीब आता है। आकाश में काले बादल घिरेंगे, सब मौसम गीला, धुंधला हो जाएगा। फिर बूंदें गिरेंगी, जो पृथ्वी के लिए अमृत जैसी तृप्तिदायी होंगी। वृक्ष हरे हो उठेंगे, फूलों से लद जाएंगे। सारा जीवन हरा हो जाएगा।
तो वह बच्चा प्रतीक्षा करे। फिर आषाढ़ का पहला दिन आए और बादल घिरने लगें, तो वह पिता को कहे कि तुम कैसे अदभुत हो! ठीक वैसा ही हुआ जा रहा है। इस पिता को सिर्फ इतना ही पता है कि वर्ष के वर्तुल में, चक्र में वर्षा एक बार आती है। ठीक प्रत्येक ब्रह्मा के काल में कितने लोग पैदा होते हैं!
जैन अनुभवियों को पता है कि ब्रह्मा के एक दिन में चौबीस तीर्थंकर पैदा होते हैं। एक-एक घंटे पर, इसलिए चौबीस। चौबीस घंटे में एक-एक घंटे पर एक-एक टीचर, एक-एक सदगुरु पैदा होता है। इसलिए चौबीस तीर्थंकर पैदा होते हैं।
ये हर वर्तुल में पैदा होते हैं। इनके नाम अलग होंगे, इनके इतिहास की रेखाएं थोड़ी-बहुत अलग होंगी। क्योंकि हर बार, हर आषाढ़ के पहले दिन पर आकाश में घिरे बादलों की रूप-रेखा एक-सी नहीं होती। कोई और होगा राम, कोई और होगा कृष्ण। लेकिन ऊपर का लेखा-जोखा अलग होगा, इतिहास अलग होगा, भीतर का जो सारभूत तत्व है, वह एक ही होगा। कभी वह दशरथ का पुत्र होगा, और कभी दशरथ का पुत्र नहीं होगा। लेकिन राम जब भी पैदा होगा, तो वह भीतर का जो रामपन है, दि एसेंशियल, वह जो सारभूत है, वह वही होगा।
वाल्मीकि उसी सारभूत राम की कथा लिखते थे। और बड़ी मधुर है यह बात कि राम फिर उस कथा के अनुसार जीवन का आचरण करते हैं। क्योंकि वाल्मीकि को सत्य तो होना ही चाहिए। वाल्मीकि के असत्य होने का कोई उपाय ही नहीं है। जो पुराण को जानते हैं, वे कभी असत्य नहीं होते; और जो इतिहास को जानते हैं, वे कितना ही जान लें, वे सदा ही असत्य होते हैं।
इतिहास कभी निर्णय नहीं कर पाता--यह बहुत मजे की बात है--हम पीछे का भी निर्णय नहीं कर पाते कि क्या हुआ। हमला पाकिस्तान ने किया हिंदुस्तान पर, कि हिंदुस्तान ने किया पाकिस्तान पर, वह कभी निर्णीत नहीं होता। वह कभी निर्णीत नहीं होता, कि चीन हमलावर था कि हम हमलावर थे। चीन के इतिहासविद

लिखते रहेंगे कि हमने हमला किया और हमारे इतिहासज्ञ लिखते रहेंगे कि चीन ने हमला किया। और सदियों तक ये दोनों इतिहास चलते रहेंगे। और कभी तय होने वाला नहीं कि हमला किसने किया। इतिहास, जो घट चुका, वह भी तय नहीं होता। और अभी पश्चिम का बहुत बड़ा विचारशील इतिहासविद टायनबी कहता है कि मैं इतना ही कह सकता हूं इतिहास के संबंध में कि ज्यादा से ज्यादा हम इतना ही मान सकते हैं कि जिस पर भी हम सब सहमत हो जाते हैं, एक बात पर, वह सबसे कम असत्य होगी, बस। और सत्य होगी, इस पर नहीं हो सकते तय। कम से कम असत्य यह बात होगी, इस पर हम तय हो सकते हैं ज्यादा से ज्यादा। इस पर भी विवाद जारी रहेगा। इस पर भी निर्णय नहीं हो सकता।
एक तो यह स्थिति है और एक स्थिति वह है कि पहले लिखी जाती है कथा और राम का आचरण उसके अनुसार हो जाता है। और राम के आचरण में अगर थोड़ा-बहुत भेद भी रहा होगा, तो उस भेद को हटा दिया गया। उस भेद का कोई मूल्य नहीं है। राम उतने निर्णायक नहीं हैं, जितने निर्णायक वाल्मीकि हैं। क्योंकि राम की जो ऊपरी घटनाएं हैं, नान-एसेंशियल हैं, कि वह किसके घर में पैदा हुए, कि उन्होंने कितनी रोटी एक दिन खाईं, कि किससे क्या बात की, यह बेमानी है। उनका रामपन कैसे प्रकट हुआ, वही महत्वपूर्ण है।
पुराण का अर्थ यह है। अव्यक्त से व्यक्त का जो जन्म है, अगर वह वर्तुलाकार है, तो हम भविष्य के ज्ञाता हो सकते हैं। और अतीत के संबंध में भी हमारी निष्पत्ति सत्य हो सकती है। कम से कम असत्य नहीं, पूर्णतः सत्य हो सकती है।
लेकिन समय की इस वर्तुलाकार दृष्टि का अगर ख्याल हो, तो दो बातें स्मरण रख लेनी चाहिए। वह यह कि जो भी शुरू होता है, वह समाप्त होता है। पश्चिम को ख्याल ही नहीं है प्रलय का। पश्चिम में ख्याल है क्रिएशन का। ईश्वर ने जगत को बनाया। लेकिन पश्चिम यह सोच ही नहीं सकता कि वही ईश्वर इस जगत को मिटाएगा भी। क्योंकि यह मिटाना, बनाने वाले के साथ संगत नहीं मालूम पड़ता, इनकंसिस्टेंट मालूम पड़ता है। पश्चिम सोच सकता है कि पिता है ईश्वर जगत का, लेकिन यह नहीं सोच सकता कि वही विध्वंसक और हत्यारा भी होगा।
हम सोच सके। सच तो यह है कि हमसे ज्यादा हिम्मतवर सोचने वाले लोग जमीन
पर फिर नहीं हुए। यह बड़ी हिम्मत की बात है यह सोचना कि जिसने बनाया है इस जगत को, वही इसे विनाश में ले जाएगा। क्योंकि हमें एक सत्य दिखाई पड़ गया कि जो भी चीज बनती है, वह मिटती है। और जो बनाने वाला है, वही मिटाने वाला भी है। और मिटने और बनने में हमने विरोध नहीं देखा, एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से देखे। सुबह और सांझ में हमने विरोध नहीं देखा। सुबह जिसे उगते देखा, सांझ उसे डूबते देखा। वही सूरज सांझ को डूबता है, जो सुबह उगा था। कभी आपने ख्याल किया कि जिस सूरज के उगने से सुबह जन्मती है, उसी सूरज
के डूबने से रात का अंधेरा उतरता है। वह एक ही सूरज दोनों काम करता है दो छोरों पर।
तो ब्रह्मा के मुहूर्त क्षण में तो सृजन होता है और ब्रह्मा के अंतिम मुहूर्त में विनाश होता है, सब पुनः खो जाता है। और फिर सब ताजा और नया होकर फिर जन्मता है। और यह जन्म की प्रक्रिया अंतहीन चलती रहती है।
अभी ज्योतिष की नवीनतम खोजों ने बताया कि जगत स्थिर नहीं है, ठहरा हुआ नहीं है, एक्सपैंडिंग है, फैलता हुआ है, विस्तार कर रहा है। यह आपके ख्याल में एकदम से नहीं पकड़ेगा। जैसे कि कोई बच्चा अपने रबर के गुब्बारे में, फुग्गे में हवा भर रहा हो; और फुग्गा बड़ा होता जाए, और बड़ा होता जाए, और बड़ा होता जाए, ऐसा ही यह अस्तित्व रोज बड़ा हो रहा है; रोज फैलता जा रहा है। और छोटी-मोटी गति से नहीं, बड़ी तीव्र गति से। एक सेकेंड में लाखों मील का फैलाव हो जाता है। हर तारा दूसरे तारे से दूर भागा जा रहा है। रात को जो आप तारे देखते हैं, जहां आप उन्हें आज देखते हैं, कल आप उन्हें वहीं नहीं देखेंगे। वे दूर हटते जा रहे हैं।
पुरानी कथाओं में यह बात है कि कभी जमाना था कि तारे बिल्कुल आदमी के मकान के छप्परों के निकट थे। वह पहले तो कथा थी, लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि वह कथा कभी सच रही होगी। चाहे आदमी न रहा हो, छप्पर न रहे हों, लेकिन

कभी तारे इतने करीब जरूर रहे होंगे। कभी ऐसा जरूर रहा होगा कि हवा का जो गुब्बारा है, बिल्कुल बंद था, हवा उसमें थी ही नहीं, सब सिकुड़ा हुआ पड़ा था। तो यह हो सकता है कि यह सारा विराट शून्य रहा हो और जरा-सी जगह में सब तारे इकट्ठे रहे हों। फिर वे फैलते चले गए हैं, बड़े होते चले गए हैं और रोज बढ़ते जा रहे हैं। तो पश्चिम में एक सवाल रहा है ज्योतिष के सामने कि आखिर ये कहां तक फैलेंगे?
फैलने का आखिरी अंत एक्सप्लोजन ही हो सकता है। अगर बच्चा गुब्बारे को फुलाए ही चला जाए, तो एक सीमा आ जाएगी, जिसके आगे रबर नहीं फूल सकेगी और गुब्बारा फूटेगा। उसी को हमने प्रलय कहा है। और हमने ब्रह्मांड कहा है अस्तित्व को। ब्रह्मांड का अर्थ ही होता है, दैट व्हिच इ.ज एक्सपैंडिंग कांसटेंटली। ब्रह्मांड शब्द का ही यही अर्थ होता है। ब्रह्म का अर्थ होता है, विस्तार। विस्तार और ब्रह्म एक ही चीज से बने हैं। हम कहते हैं, वृहत, विस्तीर्ण, वे सब ब्रह्म से ही बने हैं। ब्रह्म का अर्थ होता है, जो फैलता ही चला जाता है, जो रुकता ही नहीं, फैलता ही चला जाता है। ब्रह्मांड का अर्थ है, जो सदा फैलता चला जाता है।
लेकिन जो भी चीज सदा फैलती रहेगी, एक दिन विस्फोट को उपलब्ध होगी। और
वह घड़ी आ जाएगी, जहां सब टूटकर बिखर जाएगा। वही प्रलय का दिन है।
बच्चा कब तक बढ़ता रहेगा? कभी आपने ख्याल किया कि बच्चा बढ़कर आखिर में करता क्या है? बच्चा बढ़-बढ़कर बस बूढ़ा ही होता है। और क्या करेगा? बच्चा बढ़-बढ़कर बस बूढ़ा ही होता है। और जब मां अपने बच्चे को बड़ा कर रही है, तो उसे कल्पना भी नहीं होती कि वह उसको बूढ़ा कर रही है। बूढ़ा ही कर रही है, कुछ और उपाय नहीं है। हर मां अपने बच्चे को बूढ़ा कर रही है। जो सहायता पहुंचा रही है, वह सब उसको बुढ़ापे की तरफ ले जा रही है। और हर मां अपने बच्चे को बचाकर पहुंचाएगी कहां? मौत के सिवाय कोई जगह तो है नहीं, जहां पहुंच जाए। बचाओ, सम्हालो और मौत की तरफ ले जाओ।
लेकिन मृत्यु से हम बचकर चलते हैं। हम सोचते ही नहीं उसको, हम सोचते नहीं कि जन्म मृत्यु की शुरुआत है। हम सोचते ही नहीं कि प्रारंभ अंत है। हम सोचते ही नहीं कि फैलना फूटने की तैयारी है।
मुल्ला नसरुद्दीन यात्रा के लिए गया है, धर्मतीर्थ। साथ में एक शिष्य
को भी ले लिया है, शागिर्द को, वह उसकी रास्ते में सेवा भी करता है। लेकिन मुल्ला बड़ा परेशान है उसकी एक हरकत से। जब भी वह खाना खाता है, तो बीच-बीच में शरीर को काफी हिलाता है। फिर हिलाकर फिर खाना खाता है। फिर शरीर को हिलाता है, फिर खाना खाता है। दो-चार दिन मुल्ला ने बरदाश्त किया। फिर मुल्ला ने कहा कि तू यह क्या करता है! यह करता क्या है बार-बार?
तो उस युवक ने कहा कि बात ऐसी है मुल्ला, कि हिलाकर मैं खाने को जरा ठीक जगह बिठा देता हूं। जगह थोड़ी ज्यादा हो जाती है, फिर मैं खा लेता हूं। मुल्ला ने उसको खींचकर एक चांटा रसीद किया और कहा, नालायक, बदतमीज! तूने मुझे पहले क्यों न बताया? पांच दिन, न मालूम कितना भोजन छूट गया। यह तो मुझे भी शक होता था कि जितना मैं खा रहा हूं, यह खाने की सीमा नहीं है। यह तो मुझे भी पता है कि खाने की आखिरी सीमा फूट जाना है। लेकिन यह तरकीब मुझे पता न थी।
खाने की आखिरी सीमा फूट जाना है, दि बर्स्ट! फैलने की आखिरी सीमा फूट जाना है, दि बर्स्ट। जो बहुत फैलेगा, जल्दी फूट जाएगा। जो जल्दी फैलना चाहेगा, उतनी जल्दी फूट जाएगा। जो बहुत जल्दी बढ़ना चाहेगा, वह जल्दी मर जाएगा। क्योंकि जल्दी बढ़ने का और कोई मतलब नहीं होता, सिर्फ जल्दी मर जाना। जो जल्दी करेगा किसी चीज को पाने की, उतनी ही जल्दी खो देगा, क्योंकि पाने का अंत खोना है।
लेकिन ये दो विरोधी बातें हमें एक साथ दिखाई नहीं पड़तीं, कृष्ण को दिखाई पड़ती हैं। वे कहते हैं, वह अव्यक्त से जो पैदा होता है और फैलता है, वह ब्रह्मा का दिन। फिर अव्यक्त में सिकुड़ने लगता है, वह रात। और फिर अव्यक्त में लीन हो जाता, वह प्रलय है। और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेशकाल में अव्यक्त में ही सब कुछ लय हो जाता।

और हे अर्जुन, वह ही यह भूत समुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृति के वश में हुआ, रात्रि के प्रवेशकाल में लय होता और दिन के प्रवेशकाल में फिर उत्पन्न होता है।
जैसे एक व्यक्ति के लिए मैंने कहा कि वह अपनी ही वासना के कारण, अपनी वासना के वश में हुआ, या वासना के कारण अवश हुआ, अपने वश के बाहर हुआ, फिर मरते क्षण में कामना करता है, फिर-फिर जन्म पाऊं। फिर जन्म जाता है। फिर दौड़ता है, सुबह और रात, और फिर मरता है।
ठीक ऐसे ही यह पूरा ब्रह्मांड भी कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, यह पूरा ब्रह्मांड भी, यह समस्त भूत समुदाय, यह जो कुछ भी दिखाई पड़ता है सब, इसको अगर हम इकट्ठा लें, तो यह भी वासना के वश में हुआ, कामना से प्रेरित हुआ, अपने वश के बाहर हुआ, आकांक्षा में ग्रस्त हुआ, फिर-फिर पैदा होता है, फिर-फिर लय को उपलब्ध होता है। फिर होती है सृष्टि, फिर होता है प्रलय। और यह खेल इस भांति चलता रहता है।
परंतु अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात विलक्षण जो सनातन अव्यक्त है, वह पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है।
कृष्ण उत्तर दे रहे हैं अर्जुन के प्रश्नों का। उस उत्तर में वे कह रहे हैं कि यह तो नष्ट होता ही रहता है। यह बहुत विचार की बात है। वे अर्जुन से कह रहे हैं कि तू इसकी फिक्र करता है कि सामने जो आदमी खड़े हैं, मर जाएंगे? ये बहुत बार मर चुके, ये फिर जन्म लेंगे, ये फिर मरते रहेंगे। यह मरना और जन्म लेना प्रकृति का हिस्सा है। और इन आदमियों की तो बात ही छोड़, यह पूरी प्रकृति भी न मालूम कितनी दफे बन चुकी है और न मालूम कितनी दफे मिट चुकी है। अनंत है यह प्रक्रिया। यह सब होता ही रहा है। बनता ही रहता है, मिटता ही रहता है। वासना बनाती है, फिर वासना ही मिटा देती है। तू इसकी चिंता में मत पड़। और तू इसकी चिंता को धर्म मत समझ। तू यह मत सोच कि मैं इनको मारने से बच जाऊंगा, तो ये मरेंगे नहीं।
कृष्ण कहते हैं, तू सिर्फ निमित्त है, मृत्यु तो होकर ही रहेगी। तू अपने को कर्ता मत मान। तू मारने वाला है, ऐसा भी मत मान। और तू भाग जाएगा, तो तू बचाने वाला है, ऐसा भी मत मान। तू कर्ता नहीं है। इनकी मृत्यु इनकी जन्म की घड़ी में ही लिखी है। ये जिस दिन जन्मे, उसी दिन मृत्यु को साथ लेकर जन्मे हैं। मृत्यु इनके भीतर ही बड़ी हो रही है। तू शायद निमित्त बनेगा इनकी मृत्यु के प्रकट होने का। तू नहीं बनेगा, तो कोई और बनेगा। कोई भी नहीं बनेगा, तो भी मृत्यु घटित होगी। मृत्यु से बचने का उपाय नहीं, क्योंकि ये जन्म गए। जो जन्म गया, वह मरेगा ही। और इनकी तो बात ही छोड़ तू, यह जो पूरा ब्रह्मांड तुझे दिखाई पड़ता है, यह भी बनता और बिखरता रहता है। आदमी ही पैदा नहीं होता, तारे भी पैदा होते रहते और बिखरते रहते हैं। तारे ही पैदा नहीं होते और बिखरते रहते, यह पूरा अस्तित्व भी फैलता और सिकुड़ता है, बनता और मिटता है, व्यक्त होता और अव्यक्त होता रहता है। तू इस चिंता में मत पड़।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं तुझे उसकी भी खबर देता हूं, उस अव्यक्त से
भी परे... जिस अव्यक्त से यह ब्रह्मांड पैदा होता है, अदृश्य से, अगोचर से यह ब्रह्मांड पैदा होता है, वह भी अव्यक्त पूरा अव्यक्त नहीं है।
यह बहुत सूक्ष्म दर्शन की बात है, बारीक है, नाजुक भी।
कृष्ण कहते हैं, जिसे मैंने अभी अव्यक्त कहा एक क्षण पहले, अनमैनिफेस्टेड, वह भी पूर्ण अव्यक्त नहीं है, क्योंकि मैनिफेस्ट तो हो ही जाता है, प्रकट तो हो ही जाता है।
बीज है, बीज में वृक्ष अव्यक्त है, माना। लेकिन बीज को जमीन में गाड़ो,
तो वृक्ष निकल आता है। तो बीज अव्यक्त था जरूर, लेकिन व्यक्त होने को आतुर था। बीज के भीतर भी आतुरता थी प्रकट होने की। छिपी थी, दिखाई नहीं पड़ती थी, लेकिन थी, बिल्ट-इन थी कहीं। एक-एक पत्ता वृक्ष का छिपा था भीतर बीज के और आतुर था कि प्रकट हो जाऊं। पानी गिरे, कोई खाद डाल दे, कोई मिट्टी में दबा दे, टूट जाऊं, खिलूं, बड़ा हो जाऊं। और फिर एक बीज करोड़ बीज बन जाए। वे करोड़ बीज भी कहीं भीतर छिपे हैं।

तो बीज अव्यक्त है, अनमैनिफेस्ट है, लेकिन फिर व्यक्त तो हो ही जाता है। इसलिए इसे पूर्ण अव्यक्त नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्त हो ही जाता है, वह कोई ज्यादा अव्यक्त नहीं है।
एक सूफी फकीर हुआ है, बायजीद। एक धनपति उसके पीछे पड़ा है। रोज उसके पैर दाबता है और कहता है, राज बता दो। टेल मी दि सीक्रेट। तुम्हारे जीवन का राज बता दो। बायजीद उससे कहता है, जो राज है, अगर वह बता दिया जाए, तो राज कैसे रहेगा? सीक्रेट का मतलब ही यह है कि जिसे मैं तुझे बताऊंगा नहीं। जिसे मैंने कभी किसी को नहीं बताया। तभी तो वह राज है, अन्यथा फिर राज कैसे रहेगा?
लेकिन वह आदमी मानता ही नहीं। वर्ष बीतने को आ गया। वह है कि रोज पैर दबाए जाता है। वह कहता है बायजीद को कि बता दो राज। तो बायजीद ने एक दिन कहा कि तो ठीक है, आज बताए देता हूं, लेकिन एक शर्त रहेगी। क्या तुम मेरे राज को राज रखोगे? किसी को बताओगे नहीं? विल यू मेनटेन दि सीक्रेट ऐज सीक्रेट? कसम खाओ कि क्या तुम राज को राज रखोगे और किसी को बताओगे नहीं। उस आदमी ने कहा, कसम परमात्मा की कि राज को राज रखूंगा और किसी को बताऊंगा नहीं। बायजीद ने कहा, शाबाश, अगर तू अपनी कसम रख सकता है, तो मैं भी अपनी कसम रखूंगा और राज को बताऊंगा नहीं। और अगर मैं ही तोड़ दूंगा, तो तेरा कैसे भरोसा करूं कि तू नहीं बताएगा!
तो जो प्रकट हो जाए, वह अप्रकट नाम मात्र को था, जस्ट फार दि नेम्स सेक। बीज नाम मात्र को अप्रकट है। इतनी तो तैयारी दिखा रहा है प्रकट होने की। ऐसा आतुर है। नाम मात्र को अव्यक्त है।
तो अभी जिस अव्यक्त की बात कही, कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, वह अव्यक्त माना है। लेकिन नाम मात्र को, क्योंकि व्यक्त हो जाता है। माना कि अदृश्य है, लेकिन दृश्य हो जाता है।
तो जिस अदृश्य में दृश्य छिपा हो, वह बहुत अदृश्य हो नहीं सकता। हमें दिखाई न पड़ता हो, यह और बात है। हमारी आंखें कमजोर होंगी, हमारी आंखें न पकड़ पाती होंगी, लेकिन वह बिल्कुल अव्यक्त नहीं कहा जा सकता। इन दोनों के पार, इस अव्यक्त के भी पार, बियांड दिस अनमैनिफेस्ट, वह ब्रह्म है। वह अव्यक्त से भी अति परे। बियांड दि बियांड, अव्यक्त से भी अति परे। उसके भी पार, पार के भी पार, अतिक्रमण का भी अतिक्रमण करता हुआ वह ब्रह्म है, जो सनातन अव्यक्त है। जो सनातन अव्यक्त है, इटरनली अनमैनिफेस्ट। यह तो टेंपररी अनमैनिफेस्ट है, अस्थायी रूप से अव्यक्त है, फिर व्यक्त हो जाता है, फिर अव्यक्त हो जाता है।
लेकिन एक ऐसा अव्यक्त भाव भी है, एक ऐसा अव्यक्त अस्तित्व भी है, एक ऐसा अव्यक्त होना भी है, जो कभी व्यक्त न हुआ है, न होगा, न हो सकता है। वह अव्यक्त के भी परे है। वही ईश्वर, वही ब्रह्म, वही परमात्मा, वही मोक्ष--या जो भी नाम हम देना चाहें, दें--वही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है। क्यों? क्योंकि उसका कभी कोई सृजन नहीं हुआ, वह नष्ट नहीं हो सकता। उसकी कभी सुबह नहीं हुई, उसकी सांझ नहीं हो सकती। उसकी कभी सृष्टि नहीं हुई, तो उसकी कभी प्रलय नहीं हो सकती है।
अगर तू जानना ही चाहता है अमृत को और अगर तू जानना ही चाहता है कि कैसे मैं लोगों की मृत्यु से बचूं और कैसे मैं मृत्यु से बचूं, विनाश से बचूं, तो अर्जुन से कृष्ण ने कहा, तू उसे जान ले, जो अव्यक्त के भी पार है।
हमारे भीतर भी तीन पर्तें हैं। एक व्यक्त, जो हमारा शरीर है। एक अव्यक्त, जो हमारा मन है। और एक अव्यक्त के भी पार अव्यक्त, जो हमारी आत्मा है। मन में कुछ भी हो, तो आज नहीं कल व्यक्त हो जाता है। शरीर तो व्यक्त है ही। उसमें कुछ अव्यक्त नहीं है, वह व्यक्त है ही। लेकिन मन में जो कुछ हो, वह आज नहीं कल व्यक्त हो जाता है, बीज की तरह। और मन के ही अव्यक्त से शरीर का व्यक्त पैदा होता है। इसलिए जब हम मरते हैं, तो शरीर तो छूट जाता है, लेकिन मन नहीं छूटता। मन को हम साथ ले जाते हैं, वह बीज है, कैप्सूल है, बंद है, हमारे साथ चला जाता है। फिर नए शरीर को बना लेता है।
यह आप जानकर हैरान होंगे कि आप अगर मरते हुए आदमी के मन को पहचानने की क्षमता रखते हों, तो मरते क्षण में उसके मन के अध्ययन से यह तय किया जा

सकता है कि वह किस भांति अगला जन्म लेगा, कैसा उसका व्यक्तित्व होगा, क्या उसके व्यक्तित्व का ढंग होगा। यह भी जाना जा सकता है कि वह सुंदर होगा, कुरूप होगा, बहुत अति वासना से ग्रस्त होगा, कि कम वासना से ग्रस्त होगा-- यह सब जाना जा सकता है। मरते क्षण में मन सिकुड़कर बीज बन जाता है। उस बीज में बिल्ट-इन, भीतर छिप जाती है पूरी प्रक्रिया नए शरीर को ग्रहण करने की। इसलिए इस जगत में कुरूप अकारण ही कुरूप पैदा नहीं होते, और न सुंदर अकारण सुंदर पैदा होते हैं। इस जगत में हम जो कुछ भी लेकर पैदा होते हैं, वह हमारे मन के साथ लाया हुआ बीज है। उस बीज के अनुसार ही हम निर्मित होते हैं। उस बीज के अनुसार ही ब्लूप्रिंट, नक्शा हमारे मन में छिपा है। वह हमारे शरीर को निर्मित करता है, बनाता है।
यह जो शरीर आज बनकर खड़ा होता है, योग की गहनता को जानने वाले निरंतर जानते रहे हैं कि मरते क्षण में आदमी के बीज को देखा जा सकता है, कि अब यह कहां यात्रा करेगा, कैसे यात्रा करेगा, क्या इसका फल होगा।
अभी वैज्ञानिक भी कहते हैं--उन्हें मरने का तो पता नहीं पीछे का--वे कहते हैं, जब मां के पेट में पहला अणु जन्मता है, तब उसका अध्ययन करके हम बता सकते हैं बहुत-सी बातें, कि इस आदमी की आंखों का रंग क्या होगा, इसकी ऊंचाई क्या होगी, इसके बाल कैसे होंगे, यह कितनी उम्र का हो सकेगा, इसकी बुद्धि कैसी होगी, इसका स्वास्थ्य कैसा होगा। बहुत कुछ हम मां के पेट में, जन्म का जो पहला क्षण है, मुहूर्त का, जब पहला अंडा निर्मित होता है, तब उस अंडे के अध्ययन से बहुत कुछ कह सकते हैं कि क्या-क्या होगा।
यह दूसरे छोर से बात को पकड़ा जाना है। लेकिन आज जो मां के पेट में पहला अणु बना है, वह सिर्फ मां और पिता के देह-कणों से मिलकर नहीं बन गया है, उसमें एक नया तत्व भी प्रविष्ट हुआ है, वह अव्यक्त मन है। मां का अणु भी व्यक्त है, पिता का अणु भी व्यक्त है। वे तो व्यक्त हैं, उनसे तो देह बनेगी; लेकिन उन दोनों के बीच एक तीसरा तत्व भी प्रवेश कर गया है।
इसीलिए एक ही मां-बाप बच्चों को जन्म देते हैं और सभी बच्चे भिन्न होते हैं। उसका और कोई कारण नहीं है। क्योंकि उनका व्यक्त तो सबका एक है, लेकिन अव्यक्त जो मन प्रवेश करता है, वह सबका अलग-अलग है। वे सब अपनी-अपनी यात्राएं लेकर साथ आ रहे हैं। वे सब भिन्न हो जाते हैं।
इस जगत की भिन्नता हमारे अव्यक्त मन की भिन्नता है। फिर वह रोज-रोज प्रकट होनी शुरू होगी। फिर जैसे बच्चा बड़ा होता है, मन शरीर में फैलने लगता है और प्रकट होने लगता है। फिर जो फूल लगते हैं या कांटे लगते हैं, जो कुछ भी लगता है, वह मन से आता है और फैलता चला जाता है। लेकिन इन दोनों के पार--व्यक्त शरीर और अव्यक्त मन के पार--अव्यक्त से भी परे, अति परे आत्मा है।
यह व्यक्ति के अणु को हम समझ लें, तो ठीक ऐसा ही विराट अस्तित्व का अणु, महाअणु भी है। व्यक्ति को परमाणु कहें, अस्तित्व को महाअणु कहें। यह क्षुद्रतम है, वह विराटतम है, लेकिन इन दोनों की व्यवस्था बिल्कुल एक जैसी है। इसलिए पुराने शास्त्र कहते हैं, जो पिंड में है वही ब्रह्मांड में है, फैला हुआ है सिर्फ विराट बड़ा रूप होकर।
कृष्ण ने कहा कि अगर तुझे सच में ही विनाश की संभावनाओं के पार हो जाना है, तो तू उस ब्रह्म की खोज कर, जो न कभी पैदा होता है और न कभी मरता है; जो न कभी प्रकट होता है और न कभी अप्रकट होता है; जो न बनता है, न बिगड़ता है; जो न संगृहीत होता है, न बिखरता है; जो बस है, जस्ट इ.ज। जो सिर्फ है; जिसकी सुबह नहीं, सांझ नहीं; आना नहीं, जाना नहीं; जो बस है, उसकी तू खोज कर।
उसकी खोज कहां से हो सकती है? एक खोज तो यह है कि हम गीता पढ़ लें और हमें पता चल जाए। काश, इतना सरल होता, तो गीता इतने लोग पढ़ चुके हैं कि इस जगत में ज्ञानी ज्यादा होते और अज्ञानी कम। अगर यह इतना सरल होता मामला कि हम पढ़ लें सिद्धांत को, समझ लें बिल्कुल--और इंटलेक्चुअल अंडरस्टैंडिंग, बौद्धिक समझ बिल्कुल पूरी हो जाए, तो भी कुछ नहीं होता। कभी-कभी समझ, कोरी समझ, बड़ी नासमझी की होती है। सब समझ लेते हैं शब्दों को, सिद्धांतों को, फिर भी हाथ के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता है। वह तो तभी पड़ेगा, जब इस समझ का अनुभव हो।

और इस विराट में उतरना तो बहुत कठिन है। इस विराट में उतरने वाले लोग हैं। और जब कोई इस विराट में उतर जाता है, तब उसकी हैसियत कृष्ण, बुद्ध और महावीर जैसी हो जाती है। लेकिन विराट में उतरना तो अति कठिन है, पहले तो अपने परमाणु में ही उतर जाएं, वही काफी है। अपने ही भीतर जरा उसे खोज लें, जो अव्यक्त से भी अव्यक्त है। लेकिन वह तो बहुत दूर, हमें अपने शरीर का ही पूरा पता नहीं है, जो व्यक्त है। वह तो बहुत दूर, जो व्यक्त है, मैनिफेस्ट है, हमें उस शरीर का भी पूरा पता नहीं है।
आपको अपने शरीर का भी पूरा पता नहीं है, अगर मैं ऐसा कहूं, तो आप कहेंगे, कैसी अजीब बात कर रहे हैं! नहीं, आपको बिल्कुल पता नहीं है। इस शरीर में भी इतने राज छिपे हैं, उनका हमें कोई पता नहीं। इन्हीं राजों की खोज योग और तंत्र और समस्त धर्म करते रहे हैं--इन्हीं राजों की खोज। इस शरीर में कुंडलिनी जैसी शक्ति छिपी है, लेकिन उसका हमें कभी कोई पता नहीं। उसकी झलक भी नहीं मिली। वह इसी शरीर में छिपी है। व्यक्त का हिस्सा है, अव्यक्त का नहीं; बिल्कुल व्यक्त है। लेकिन हम कभी उस पर पहुंचे ही नहीं। जैसे हमारे ही घर में खजाना गड़ा हो और हमें कुछ पता न हो और हम दूसरों
के घरों के सामने भीख मांग रहे हों। और हमारे घर में खजाना गड़ा हो और हम भीख मांगते-मांगते मर जाएं। लेकिन गड़े होने से खजाना खजाना नहीं होता। जब तक वह प्रकट न हो जाए, तब तक खजाने का कोई प्रयोजन नहीं है।
हमारे शरीर में अदभुत शक्तियां छिपी हैं। उन शक्तियों का हमें पता नहीं है। जिस व्यक्ति को इस विराट यात्रा पर निकलना है, पहले उसे अपने शरीर के भीतर छिपी हुई शक्तियों से परिचित होना पड़ता है। क्योंकि उन छिपी हुई शक्तियों के सहारे वह अपनी मन की छिपी हुई शक्तियों को खोजने में समर्थ हो जाता है। और मन में तो बहुत कुछ छिपा है, जिसका हमें बिल्कुल भी पता नहीं। मन की हम सतह पर ही जीते हैं। उसकी अनंत गहराइयां हैं, उनका हमें कोई भी पता नहीं है।
आपका मन आपके समस्त जन्मों की स्मृति अपने साथ लिए हुए अभी मौजूद है, यहीं। आपने जो कुछ भी किया है अनंत-अनंत काल में, उस सबकी स्मृति एनग्रेव्ड है; आपके भीतर मन के कोने में सब दबी पड़ी है। उसे आज भी खोला जा सकता है। और आपको जानना जरूरी नहीं है, कि आप किसी और से पूछने जाएं कि पुनर्जन्म होता है या नहीं, आपके भीतर ही आप उतर सकते हैं उन सीढ़ियों को, जहां से आपको पिछले जन्मों की याददाश्त आनी शुरू हो जाए; जहां से आप लौट पड़ें यात्रा पर और टाइम ट्रैक में वापस, समय की धारा में उलटे लौट जाएं और पीछे के सारे दृश्य फिर से देखें। वे सब के सब मौजूद हैं। वे सब के सब मौजूद हैं। कोई भी स्मृति कभी खोती नहीं है मन में, लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं है।
इस मन के पास अनूठी--अनूठी--शक्तियां हैं, लेकिन हम क्षुद्र चमत्कारों
से दीवाने हो जाते हैं। एक आदमी हाथ उठा दे और राख आपके हाथ में दे दे, तो हम पागल हो जाते हैं कि मिरेकल हो गया, चमत्कार हो गया। यह ऐसे ही है कि जिसके घर में हीरे-जवाहरातों का ढेर लगा है, वह किसी के द्वार पर जाए, और एक आदमी उसे खीसे से निकालकर एक नया पैसा दे दे, और वह कहे, चमत्कार! बस, ये सब चमत्कार ऐसे ही हैं। आपको अपने मन की शक्ति का कोई पता नहीं कि मन क्या कर सकता है।
पतंजलि ने जिसे सिद्धियां कहा है, वे सब मन की छिपी हुई शक्तियां हैं।
वे आठ शक्तियां मन की शक्तियां हैं। और मन अनमैनिफेस्ट, अव्यक्त है, बीज की भांति। वे सब प्रकट हो सकती हैं। हम तो उनके धुएं में एकदम अंधे हो जाते हैं। कभी किसी आदमी में छोटी-मोटी कोई शक्ति प्रकट हो जाती है, तो हम बिल्कुल अंधे और पागल हो जाते हैं। कुछ मूल्य नहीं है उनका, क्योंकि मन से जो शक्तियां प्रकट होती हैं, वह संसार का हिस्सा है।
इसलिए पतंजलि ने अपने सिद्धियों के विवरण में स्पष्ट कहा कि इनका मैं वर्णन सिर्फ इसलिए करता हूं योग-सूत्र में, ताकि तुम्हें पता हो कि तुम्हारे भीतर क्या छिपा है। लेकिन न तो ये पाने योग्य हैं, न ये चाहने योग्य हैं; और जो इन्हें पाने और चाहने में लग जाता है, उसकी परम यात्रा में बाधा पड़ती है।

परम यात्रा तो अव्यक्त से भी अव्यक्त में जाना है, मन के भी पार। लेकिन मन की ये छिपी हुई शक्तियां अगर जगा ली जाएं और आदमी समझदार हो और इन शक्तियों के मोह में ग्रस्त न हो जाए--जो कि अति कठिन है--तो इन शक्तियों के द्वारा वह उस अव्यक्त की, अव्यक्त से भी जो अव्यक्त है, उसकी खोज पर निकल सकता है।
शक्तियों के दो उपयोग हो सकते हैं। या तो हम उस शक्ति से अपने क्षुद्र
तल पर खड़े होकर कोई काम ले लें; और या उस शक्ति से कोई काम न लें, केवल जिस तल पर वह शक्ति है, उसके पार जाने के लिए धक्का ले लें।
मुझे दस रुपए मिल जाएं, तो इन दस रुपयों से मैं अपनी किसी वासना को भी तृप्त कर सकता हूं। और ये रुपए खो जाते हैं। और मेरी वासना दो दिन बाद फिर वापस अपनी जगह लौट आएगी। इसलिए रुपए मिले या न मिले, बराबर हो गए। मैं इन दस रुपयों से दस घंटे के लिए बाहर के जगत की चिंता से भी मुक्त हो सकता हूं कि अब मुझे दस घंटों के लिए भूख-प्यास की फिक्र न करनी पड़ेगी। अब ये दस रुपए मेरे पास हैं, अब मुझे शरीर की दस घंटे तक चिंता नहीं करनी है; मैं दस घंटे तक शरीर को अब भूल सकता हूं। और इन दस रुपयों का सहारा लेकर कोई आदमी दस घंटे के ध्यान में चला जाए, तो ध्यान से जो मिलेगा, वह दस रुपयों से अनंतगुना ज्यादा है, उसका कोई हिसाब नहीं। और जो मिलेगा, वह कभी खोता नहीं।
अब दस रुपए का हम दोनों उपयोग कर सकते हैं। क्षुद्र वासना में करेंगे,
तो वासना पुनरुक्ति वाली है, वह कल फिर खड़ी हो जाएगी, दस रुपयों को खाकर फिर खड़ी हो जाएगी।
मैं कल ही एक कहानी कह रहा था। कहानी एक वास्तविक घटना है। स्विटजरलैंड में एक आदमी को, एक गरीब दर्जी को दस लाख रुपए की लाटरी मिल गई। दूसरे महायुद्ध के पहले की घटना है, बहुत अदभुत घटना बनी। दस लाख की लाटरी मिल गई। सांझ को वह अपनी दुकान पर कपड़े सी कर दुकान बंद करने की तैयारी में था कि लाटरी की खबर देने वाले अधिकारी आए। उन्होंने जांच-पड़ताल की और पक्का पाया कि यही आदमी है। उस दर्जी को उन्होंने कहा कि तुम्हें दस लाख की लाटरी मिल गई, भगवान को धन्यवाद दो।
उसने कहा, धन्यवाद तो पीछे दूंगा! पहले उसने चाबी लगाकर दरवाजा बंद किया और चाबी सामने के कुएं में फेंक दी। उसने कहा कि अब खत्म; यह दर्जी की दुकान बंद। अब इससे कोई लेना-देना नहीं।
एक साल में उस आदमी को पहचान नहीं सकते थे कि वह क्या हो गया। वह बिल्कुल करीब-करीब पागल, रुग्ण, सब कुछ हो गया, जो हो सकता था। रुपया, जो नासमझ के हाथ में करता है, वह सब कर दिया। शराब पी, वेश्याओं के पास भटका। शायद ही सोया सालभर। सब तरह बर्बाद हो गया और दस लाख रुपए भी उसने सालभर में बर्बाद कर दिए। सालभर बाद एक पैसा उसके पास नहीं था। वापस आकर अपनी दुकान का ताला तुड़वाकर फिर दुकान पर बैठा। एक साल में दस साल बूढ़ा हो गया। सब तरफ जीर्ण-जर्जर हो गया।
लेकिन बड़ा मजा जो हुआ वह यह कि एक साल बाद फिर उसे लाटरी मिल गई। फिर
दस लाख रुपए की लाटरी, जो कि मुश्किल से होता है कि एक आदमी को दो बार लाटरी मिल जाए। और जब अधिकारी उसके सामने आया, तो उसने अपनी आंखें उठाईं--चश्मा लग गया था सालभर में--चश्मे से गौर से देखा, वही आदमी! दर्जी ने कहा कि फिर क्या वही झंझट लेकर आ गए? उसने कहा कि हम भी चकित हैं! झंझट कह रहे हो? दस लाख की लाटरी फिर तुम्हें मिल गई! उस अधिकारी ने कहा, भगवान को धन्यवाद दो। उसने कहा, धन्यवाद पीछे दूंगा, पहले लाटरी के कागजात कहां हैं? कागजात लेकर उसने कुएं में फेंक दिए। उसने कहा कि अब दुबारा उस नर्क में जाने की बिल्कुल इच्छा नहीं। सालभर में दस लाख ने जो नर्क दिया, अब दुबारा नहीं! इस जन्म में तो बिल्कुल नहीं! अगले जन्म में भूल जाऊं, फिर दूसरी बात है। और अपनी दुकान पर बेचारा फिर अपने कपड़े काटने में लग गया। वह अधिकारी अवाक खड़ा है!
क्या हुआ? लेकिन इतनी समझ बहुत कम लोगों में होती है। शायद एक आदमी को
दो दफे लाटरी मिलना इतना दुर्लभ नहीं है, लेकिन इतनी समझ आदमी में होनी बड़ी दुर्लभ है।

शक्ति मिलती है, हम उसे और निर्बल होने के काम में लाते हैं। बड़े मजे
की बात है! शक्ति मिलती है, तो हम दुर्बल होने के काम में लाते हैं उसे। और जो समझदार हैं, वे दुर्बल भी होते हैं, तो दुर्बलता को भी शक्ति की खोज बना लेते हैं।
मन में अव्यक्त शक्तियां छिपी हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति ध्यान में उतरना शुरू होता है, मन की अव्यक्त शक्तियां प्रकट होने लगती हैं। और तभी खतरे शुरू हो जाते हैं।
एक महिला मेरे पास काम कर रही थी। एक छोटी-सी घटना एक ध्यान के शिविर में उसे घटी। ध्यान गहरा हुआ, थोड़ा ही गहरा हुआ। ध्यान से लौटते वक्त साथ में किसी महिला के कंधे पर उसने हाथ रख लिया चलते वक्त। उस महिला की कमर में दर्द था। उसके हाथ रखते ही दर्द विदा हो गया। बस उतनी-सी घटना, और वह स्त्री पागल हो गई। पागल इस अर्थ में कि अब वह इसी काम में लगी हुई है कि इसकी बीमारी ठीक कर देनी है, उसकी बीमारी ठीक कर देनी है। ध्यान-व्यान समाप्त हो गया! उसने मेरे पास आना बंद कर दिया। उसने सोचा, मामला समाप्त हो गया, बात खत्म हो गई; पा ली सिद्धि।
अभी आ रहा था, उसके आठ दिन पहले उस महिला ने एक मित्र को भेजा और पुछवाया कि मैं तो बहुत परेशान हो गई हूं, कहीं मेरी शक्ति तो नहीं खो रही है यह इलाज करने में? और अब मेरे फिर से ध्यान का क्या हो?
हम सब के साथ ऐसा होता है। जरा-सा कुछ मिल जाए कि हम पागल हो जाते हैं।
मन के अव्यक्त स्रोत से शक्ति जगती है, उस वक्त बहुत सावधान होने की जरूरत है। क्योंकि उस शक्ति का उपयोग हो सकता है या तो शरीर की वासनाओं के लिए, तब आप वापस गिर पड़ेंगे; या उसका उपयोग हो सकता है उस परम अव्यक्त की यात्रा के लिए ईंधन की तरह, पेट्रोल की तरह। उस शक्ति पर आप सवार हो जाएं, परम अव्यक्त की यात्रा पर निकल जाएं।
वह अव्यक्त, परम अव्यक्त, दि अल्टिमेट अनमैनिफेस्ट आपके भीतर इस क्षण
भी उतना ही मौजूद है, जितना कभी था और कभी होगा।
और जब तक आप अपने शरीर में होते हैं, तब तक दूसरा आदमी आपसे अलग है, सब शरीर आपसे अलग हैं। शरीर के तल पर सब अलग हैं। जब आप मन के करीब आते हैं, तो कभी-कभी मन के साथ दूसरे से तालमेल भी बैठ जाता है और एकता भी अनुभव होती है। कभी कोई किसी के प्रेम में गिर जाता है। प्रेम में गिरने का केवल एक अर्थ है कि दोनों के मन ने कहीं एकता का सूत्र खोज लिया।
शरीर के तल पर कोई एकता कभी नहीं हो पाती। मन के तल पर कभी-कभी एकता सध जाती है। लेकिन जो मन के भी पार उतर जाते हैं, वहां अनेकता नहीं रह जाती; वहां एकता सधी ही हुई है।
इसे हम ऐसा समझें कि मैं एक सर्किल खींचूं, एक वर्तुल खींचूं, उसके बीच में सेंटर पर एक निशान बना दूं। फिर वर्तुल की परिधि से एक रेखा खींचूं केंद्र की तरफ, फिर दूसरी रेखा खींचूं, फिर तीसरी रेखा खींचूं। ये तीनों रेखाएं परिधि पर फासले पर होंगी और जैसे-जैसे केंद्र की तरफ चलेंगी, पास होने लगेंगी। और जब केंद्र पर पहुंचेंगी, तो एक हो जाएंगी। जो परिधि पर बिल्कुल भिन्न-भिन्न था, वही केंद्र पर एक हो जाता है।
जो लोग शरीर से बंधे हैं, वे इस जगत को अणुओं की तरह देखेंगे अलग-अलग, आईलैंड की तरह। जो लोग थोड़ा मन में समर्थ हो जाते हैं--कवि हैं, चित्रकार हैं, संगीतज्ञ हैं--वे इस जगत में एकता का स्वर खोजने लगते हैं। लेकिन जो बिंदु पर, केंद्र पर आ जाते हैं, परम केंद्र पर आ जाते हैं, उनके लिए अनेकता ऐसे ही तिरोहित हो जाती है, जैसे प्रकाश जल जाए और अंधेरा खो जाए; सुबह का सूरज निकल आए और रात कहीं खोजे से न मिले।
उस परम अव्यक्त में सब एक है, अद्वैत है। अर्ध अव्यक्त में कभी-कभी एकता की झलक मिल जाती है। पूर्ण व्यक्त में एकता का कोई उपाय नहीं, सभी कुछ अनेक है।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट उठेंगे नहीं। मैं रोज आपसे कहता हूं, फिर भी बीच से लोग उठकर किनारे आ जाते हैं। आप वहीं बैठे रहें। बैठकर ही ताली बजाएं,

कीर्तन में साथ दें, वाणी दोहराएं। प्रभु का स्मरण कर लें पांच मिनट। फिर हम विदा हों। यही प्रसाद है।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
आठवां प्रवचन

अक्षर ब्रह्म और अंतर्यात्रा

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। 21।।
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।। 22।।
और जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसे कहा गया है उस ही अक्षर नामक अव्यक्त भाव
को परम गति कहते हैं, तथा जिस सनातन अव्यक्त को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते हैं, वह मेरा परम धाम है।
और हे पार्थ, जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत हैं और जिस परमात्मा
से यह सब जगत परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।

गति संसार का स्वभाव है। ठहरना नहीं और चलते ही रहना, ऐसा संसार का स्वरूप है। यहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है; जो ठहरा हुआ मालूम होता है, वह भी ठहरा हुआ नहीं है। जो चलता हुआ मालूम होता है, वह तो चलता हुआ है ही; जो ठहरा हुआ मालूम होता है, वह भी चलता हुआ है। पत्थर ठहरे हुए मालूम पड़ते हैं, मकानों की दीवालें ठहरी हुई मालूम पड़ती हैं, लेकिन अब विज्ञान कहता है, वे सब भी चलती हुई हैं। और यह गति बहुआयामी है, मल्टी-डायमेंशनल है। इसे हम थोड़ा समझें, तो परम गति का हमें ख्याल आ सके कि वह क्या है।
दीवाल दिखती है ठोस, जरा भी चलती हुई नहीं, लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं, दीवाल का अणु-अणु चल रहा है। अगर दीवाल के हम परमाणुओं को देखें, तो सब परमाणु गतिमान हैं। और प्रत्येक परमाणु के भीतर जो और छोटे खंड हैं, इलेक्ट्रांस, वे बड़ी तीव्र गति से चक्कर काट रहे हैं। हमें दीवाल थिर दिखाई पड़ती है, क्योंकि हमारी आंखें उतनी सूक्ष्म गति को पकड़ने में असमर्थ हैं। गति जितनी तीव्र हो जाती है, उतनी ही हमारी आंख पकड़ने में मुश्किल हो जाती है।
जैसे एक बिजली का पंखा बहुत जोर से चलता है, तो आपको पता नहीं चलता है
कि उसमें तीन पंखुड़ियां हैं, चार पंखुड़ियां हैं या दो पंखुड़ियां हैं। अगर पंखा और भी तेजी से चले, तो आपको यह भी पता नहीं चलेगा कि पंखे में पंखुड़ियां हैं। ऐसा ही पता चलेगा कि गोल टीन का घेरा ही घूम रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि पंखे की गति इतनी बढ़ाई जा सकती है कि आप उसके पार हाथ न डाल सकें, और इतनी भी बढ़ाई जा सकती है कि आप उसके ऊपर बैठे रहें और नीचे जो पंखा चल रहा है, वह आपको थिर मालूम पड़े। इतनी तेजी से घूम सकता है कि दो पंखुड़ियों के बीच की जो खाली जगह है, जब तक आपको उस खाली जगह का पता चले, उसके पहले ही दूसरी पंखुड़ी आपके नीचे आ जाए, तो आपको कभी भी पता नहीं चलेगा। पता चलने में समय चाहिए। और अगर तीव्रता से घूमती हो गति और हमारी पकड़ने की क्षमता कम पड़ती हो, तो गति का पता नहीं चलता।
पत्थर भी चल रहे हैं, उनका अणु-अणु घूम रहा है। दीवालें भी चल रही हैं, उनका अणु-अणु घूम रहा है। उतनी ही तेज गति से उनका अणु घूम रहा है, जितनी तेज गति से आकाश में चांद-तारे घूम रहे हैं। इस जगत में कुछ भी थिर नहीं है।
एडिंग्टन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जीवनभर पदार्थों की खोज करने के बाद एक शब्द मुझे ऐसा मिला है मनुष्य की भाषा में, जो कि नितांत ही झूठ है, और वह शब्द है, रेस्ट, ठहराव। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। इसलिए जब भी हम कहते हैं किसी चीज को एट रेस्ट, तो हम गलत ही कहते हैं। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। कोई चीज ठहरी हुई हो नहीं सकती है। इस जगत में होने के लिए चलना ही नियम है।
मैंने कहा, बहुआयामी है यह गति। आप यहां बैठे हुए मालूम पड़ रहे हैं। निश्चित ही, आप बिल्कुल बैठे हुए हैं, चल नहीं रहे हैं। लेकिन जिस पृथ्वी

पर आप बैठे हैं, वह बड़ी तेजी से भागी जा रही है। उस पृथ्वी की दोहरी गति है। आप बैठे हुए हैं जिस पृथ्वी पर, वह पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है। और अपनी कील पर ही नहीं घूम रही, कील पर घूमती हुई वह सूर्य का चक्कर भी लगा रही है। दोहरी गति है उसकी। और जिस सूर्य का वह चक्कर लगा रही है, वह सूर्य भी अपनी कील पर घूम रहा है इस पृथ्वी को लिए। और अपने सब ग्रहों को लेकर वह सूर्य भी किसी महासूर्य का परिभ्रमण कर रहा है।
ऐसा मल्टी-डायमेंशनल, गति के भीतर गति है, और गति के भीतर गति है। शायद जिस महासूर्य का यह सूर्य चक्कर लगा रहा है, और अनेक सूर्य चक्कर लगाते होंगे, वह सूर्य भी अपनी कील पर घूमकर और किसी महान से महान सूर्य के चक्कर पर निकला होगा। परिभ्रमण, पर्तों-पर्तों में, जीवन का स्वभाव है।
इस परिभ्रमणशील जीवन में शांति असंभव है। इस गति से भरे हुए, भागते हुए जगत में कोई विश्राम संभव नहीं है। और जब आप विश्राम भी कर रहे होते हैं अपने बिस्तर पर लेटकर, तब आपका खून पूरी गति लगा रहा है। आपके कण-कण शरीर के गति कर रहे हैं। आपका हृदय धड़कन कर रहा है; आपकी श्वास गति कर रही है; आपका मन स्वप्नों में परिभ्रमण कर रहा है। जब आप बिस्तर पर विश्राम कर रहे हैं, तब भी कहीं कोई आपके भीतर विश्राम की जगह नहीं है। इस जगत में होते हुए विश्राम नहीं है।
कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, और जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसा कहा गया है, उस अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परम गति कहते हैं। और अर्जुन, अगर तू उस परम गति को उपलब्ध होना चाहता है, जहां विश्राम स्वभाव है... ।
इस जगत में तो श्रम ही स्वभाव है, अशांति ही परिणाम है। इस जगत में रहते हुए, इस जगत की कील पर घूमते हुए, न कोई विश्राम को उपलब्ध हो सकता है, न कोई विश्रांति को। यदि कोई विश्रांति की खोज में जाना ही चाहे, तो उसे अपनी चेतना का तल ही बदलना पड़ेगा। परिधि से हटाकर केंद्र पर, संसार से हटाकर ब्रह्म पर, उसे अपनी चेतना का पूरा रूपांतरण कर लेना होगा।
वह जो अक्षर नाम से कहा है, उस अक्षर नामक अव्यक्त भाव को ही परम गति कहते हैं।
यहां दो बातें समझ लेनी चाहिए। अक्षर का अर्थ है, जो कभी क्षीण नहीं होता, क्षरता नहीं। जैसा है, वैसा ही है। कणभर जिसमें कभी कोई रूपांतरण नहीं होता, जो अपने स्वभाव से जरा भी च्युत नहीं होता। अच्युत है, ठहरा हुआ है।
देखा है रास्ते पर चलती हुई बैलगाड़ी को। चाक चलता है, लेकिन कील ठहरी रहती है। और बड़ा मजा तो यह है--और इस मजे के राज को जान लेना, जीवन के बड़े राज को जान लेना है--कि जिस कील पर चाक घूमता है, वह कील जरा भी नहीं घूमती है, वह खड़ी ही रहती है। चाक हजारों मील की यात्रा कर लेता है, कील अपनी जगह को छोड़ती ही नहीं। और मजा इसलिए कहता हूं कि अगर यह कील न हो, तो यह चाक जरा भी घूम नहीं सकता। इस ठहरी हुई कील के कारण ही, इसके आधार पर ही चाक घूमता है।
संसार का अस्तित्व असंभव है, अगर इस संसार के भीतर गहन में, इसकी गहराइयों में, कहीं कोई अव्यक्त, कहीं कोई अक्षर कील मौजूद न हो। यह पूर्वीय मनीषा की खोजों में से एक गहनतम खोज है। क्योंकि पाया हमने कि जहां भी परिवर्तन है, वहां परिवर्तन के आधार में कोई अपरिवर्तित चाहिए। और जहां भी गति है, वहां गति के मूल में कोई अगति चाहिए। और जहां सब चीजें चल रही हों, वहां उनके चलने के लिए भी कोई अचल चाहिए। इस गत्यात्मक जगत में गति-शून्य कोई कील चाहिए।
उस कील को ही कृष्ण अक्षर कह रहे हैं। वे कहते हैं, वह जो अक्षर है, अव्यक्त है, वह भाव ही परम गति है।
लेकिन इस अक्षर तक पहुंचने के लिए हम कौन-सी यात्रा करें? इस अव्यक्त भाव को, जो गहन में छिपा है, निगूढ़ है, इस तक हम कैसे पहुंचें? क्योंकि हमारे पहुंचने का कोई भी उपाय अगर परिधि पर हुआ और चाक के सहारे हुआ, तो हम कभी भी इस कील तक नहीं पहुंच पाएंगे।
ऐसा समझें कि एक बड़ा चाक है, उस पर आप बैठे हुए हैं। और आप चाक पर घूमते रहें, हजारों-हजारों चक्कर लगाएं, तो भी आप केंद्र पर नहीं पहुंचेंगे।

यद्यपि चाक केंद्र पर ही घूमता है, कील पर ही घूमता है, फिर भी आप कील पर नहीं पहुंचेंगे चाक पर घूमते हुए। आपको चाक छोड़कर कील की तरफ सरकना होगा।
आपको धीरे-धीरे चाक से हट जाना होगा। परिधि से हटना होगा, केंद्र की तरफ सरकना होगा। और जिस दिन आप चाक को बिल्कुल छोड़ देंगे, उसी क्षण आप कील को, अक्षर को उपलब्ध हो जाएंगे।
संसार में हम कितनी ही यात्राएं करें, उस अक्षर को हम न खोज पाएंगे। कोई चाहे तो जाए हिमालय, केदार और बद्री, और कोई चाहे तो जाए कैलाश। कोई चाहे तो मक्का और मदीना, कोई काशी, कोई गिरनार, जिसे जहां जाना हो, भटकता रहे। संसार में कहीं भी कोई ऐसी जगह नहीं है, जहां से आप कील पर पहुंच जाएंगे। संसार की कोई भी यात्रा तीर्थयात्रा होने वाली नहीं है। जहां पहुंचने के लिए पैरों की जरूरत पड़ती हो, वह परम धाम नहीं है। और जहां पहुंचने के लिए शरीर को साधन बनाना पड़ता हो, वह परिधि ही होगी, वह केंद्र नहीं होगा। जहां जाने के लिए बाहर ही गति करनी पड़ती हो, वह अंतरतम नहीं है। बाहर चलकर हम बाहर ही पहुंचेंगे। संसार में यात्रा करके हम संसार में ही खड़े रहेंगे। पैरों से चलकर हम वहीं पहुंच सकते हैं, जहां पैर पहुंचा सकते हैं।
उस परम गति अक्षर को पाने के लिए तो हमें अपने भीतर एक ऐसी यात्रा करनी पड़ेगी, जिसमें पैरों की कोई जरूरत नहीं पड़ती। एक ऐसी यात्रा करनी पड़ेगी, जिसमें हमें बाहर नहीं, भीतर की तरफ जाना पड़ता है। एक ऐसी यात्रा करनी पड़ेगी, जिसमें इंद्रियों का उपयोग नहीं होता, इंद्रियों का अनुपयोग होता है। एक ऐसी यात्रा करनी पड़ेगी, जहां मन का सहारा लेना नहीं पड़ता, मन का सहारा छोड़ना पड़ता है। एक ऐसी यात्रा, जिसमें हम चाक के घूमते हुए रूप को छोड़कर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे कील की तरफ सरकते जाते हैं और एक दिन वहां पहुंच जाते हैं, जहां चाक नहीं है, कील ही है।
वह कील प्रत्येक के भीतर है, क्योंकि प्रत्येक भी एक छोटा घूमता हुआ चाक है। जैसा मैंने कहा कि मल्टी-डायमेंशनल है गति। पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है और साथ ही सूर्य का चक्कर भी लगा रही है। ठीक हममें से प्रत्येक व्यक्ति संसार के चारों तरफ घूम रहा है और हमारे भीतर भी कील पर हमारे शरीर का चाक घूम रहा है। हमारी कील पर हमारे मन का चाक घूम रहा है। हमारी कील पर हमारी वासनाओं का चाक घूम रहा है। हमारी कील पर हमारी तृष्णा, हमारी कामना, हमारा क्रोध, हमारा लोभ, उन सबके चाक पर्त दर पर्त घूमते चले जा रहे हैं। चाक के भीतर चाक हैं, वे घूमते चले जा रहे हैं। जिस व्यक्ति को अक्षर को पाना है, उसे धीरे-धीरे एक-एक घूमते चाक को छोड़कर भीतर सरकना है। सबसे ज्यादा कठिनाई हमारे भीतर सरकने में विचार के चक्र की है। क्योंकि विचार इतनी तीव्रता से घूम रहा है और न मालूम अज्ञान के किस गहन क्षण में हमने मान रखा है कि हम विचार ही हैं, तो शरीर से अपनी भिन्नता को समझ लेने में तो बहुत कठिनाई नहीं होती, लेकिन विचार से अपनी भिन्नता को समझने में बहुत कठिनाई होती है।
इसलिए अगर किसी आदमी का शरीर बीमार हो और हम कहें कि तुम्हारा शरीर बीमार है, तो वह नाराज नहीं होता। लेकिन किसी आदमी का दिमाग खराब हो और हम कहें कि तुम्हारा दिमाग खराब है, तो वह आदमी नाराज हो जाता है। क्योंकि शरीर से तो एक फासला हमको लगता ही है। शरीर बीमार भी हो, तो भी मैं स्वस्थ हो सकता हूं। लेकिन अगर मन बीमार हो, तो मैं ही बीमार हो गया।
इसलिए बीमार तो मान लेता है कि आप ठीक कह रहे हैं; पागल कभी नहीं मानता
कि आप ठीक कह रहे हैं। अगर पागल से कहो कि पागल हो, तो पागल सब तरह के उपाय करेगा कि मैं पागल नहीं हूं। बीमार ऐसे उपाय नहीं करता। क्योंकि बीमार समझता है कि शरीर बीमार है, मैं बीमार नहीं हूं। सिर्फ ज्ञानियों से अगर कोई कह दे कि पागल हो, तो वे परेशान नहीं होते, क्योंकि मन से भी उनकी दूरी स्थापित हो जाती है। अन्यथा किसी के भी मन को जरा-सी चोट, शरीर को लगी चोट से ज्यादा गहरी मालूम पड़ती है। किसी का पैर काट डालें, तो इतनी तकलीफ नहीं होती; किसी के एक विचार का खंडन कर दें, तो पीड़ा ज्यादा होती है।
आदमी अपने विचार के लिए मरने को, कुर्बान होने को तैयार होता है।
फांसी लग जाए, उसकी तैयारी है; लेकिन मेरा विचार नहीं छोड़ सकता हूं।

क्यों? क्योंकि विचार के साथ हमने बहुत गहरा तादात्म्य बनाया है। असल में हमें ऐसा लगता है कि शरीर बाहर की पर्त है और विचार मेरे भीतर का केंद्र है।
यह झूठ है। विचार भी मेरे भीतर का केंद्र नहीं है, विचार भी बाहर की ही
एक पर्त है। मेरे भीतर का केंद्र तो अक्षर है। विचार तो अक्षर नहीं है। विचार तो अभी है और क्षणभर बाद बदल जाता है। सुबह जो था, दोपहर नहीं होता। दोपहर जो था, वह सांझ नहीं होता। इसलिए अगर आप विचार के लिए थोड़ी देर रुक जाएं, तो हो सकता है, वह काम करने की आपको कभी जरूरत ही न पड़े।
बर्नार्ड शा कहता था कि जब मेरी टेबल पर बहुत चिट्ठी-पत्रियां इकट्ठी
हो जाती हैं, पंद्रह-पंद्रह दिन बीत जाते हैं और सैकड़ों पत्र इकट्ठे हो जाते हैं और जवाब देना मुश्किल होता है, तब मैं थोड़ी-सी शराब पी लेता हूं और सब काम निपट जाता है।
तो एक मित्र ने उससे पूछा कि क्या शराब पीकर फिर तुममें इतनी ताकत आ जाती है कि तुम सारे पत्रों के उत्तर दे देते हो? बर्नार्ड शा ने कहा, नहीं। शराब पीकर मैं उस हालत में हो जाता हूं कि पत्रों की फिक्र ही छूट जाती है, उत्तर देने की जरूरत ही नहीं रहती। और दो-चार दिन, आठ दिन, दस दिन, पंद्रह दिन, जब इतनी देर हो जाती है, तो फिर पत्र अपना जवाब खुद ही दे लेते हैं, फिर मुझे उनके देने की और जरूरत नहीं रह जाती। पंद्रह दिन तक जिस पत्र का जवाब न दिया हो, उसका जवाब लिखने वाले को मिल ही गया होता है।
बर्नार्ड शा को कोई अपना एक नाटक दिखाने ले गया था, कोई एक लेखक, जिसका नाटक प्रदर्शित हो रहा था। बर्नार्ड शा पूरे नाटक में सोया रहा। लेखक बहुत परेशान था! बर्नार्ड शा की स्तुति का एक शब्द भी मिल जाए, तो वह धन्य हो जाता, लेकिन पूरे वक्त बर्नार्ड शा सोता रहा। दो-चार दफा उसने जगाने की भी कोशिश की, फिर सोचा कि कहीं जगाने से वह और उलटा नाराज न हो जाए।
जब नाटक पूरा हुआ, बर्नार्ड शा ने कहा कि बड़ा आनंद हुआ। उस लेखक ने कहा, लेकिन मैं आशा करके लाया था कि आप दो शब्द मेरे नाटक के संबंध में कहेंगे, कोई मत व्यक्त करेंगे, आप पूरे समय सोए रहे! बर्नार्ड शा ने कहा, सोया रहना भी एक प्रकार का मत व्यक्त करना है, ए सार्ट आफ ओपीनियन। और जो मैंने कहा कि बड़ा आनंद आया, वह इसीलिए कहा कि दो-तीन रात से मैं बिल्कुल सोया नहीं था। तुम्हारे नाटक ने ऐसी गहरी नींद ला दी कि मन बड़ा तृप्त हो गया!
पंद्रह दिन अगर पत्र का उत्तर न दें, तो उत्तर नकारात्मक है, ऐसा लिखने वाले को मिल ही जाता है। बर्नार्ड शा कहता था, पंद्रह दिन तक हिम्मत जुटानी पड़ती है न देने की, फिर विचार इतना पुराना पड़ जाता है और समय इतना व्यतीत हो जाता है कि कोई प्रेरणा भी नहीं रह जाती है भीतर।
इसीलिए ज्ञानियों ने कहा है, अगर बुरा विचार उठे, तो थोड़ी देर रुक जाना, क्योंकि उतनी देर रुकने में वह विचार ही जा चुका होगा। अगर हत्याएं करने वाले लोग दो क्षण भी रुक जाएं, तो हत्याएं नहीं हों। आत्महत्याएं करने वाले लोग एक क्षण के लिए ठहर जाएं, तो आत्महत्या न हो। इसलिए ज्ञानियों ने यह भी कहा है कि जब अच्छा विचार उठे, तो तत्काल उसे पूरा कर लेना, एक क्षण मत रुकना, क्योंकि एक क्षण रुकने पर वह भी बदल जाएगा।
विचार इतनी तेजी से बदल रहा है, फिर भी हम विचार को अपना स्वभाव मान लेते हैं। स्वभाव का तो अर्थ ही होता है, जो बदले नहीं। क्या आपको पता है, बचपन के आपके विचारों का क्या हुआ? क्या आपको पता है, आपके जवानी के विचारों का क्या हुआ? कहां खो गए? किस रास्ते पर पड़े रह गए? आज उनका कोई भी पता नहीं है। और कल जो बात बहुत महत्वपूर्ण मालूम होती थी, क्या आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण मालूम होती है? कल जिसके लिए जान दे सकते थे, क्या आज भी उसके लिए जान देना उचित मालूम पड़ेगा?
सब बदल रहा है। विचार भी इतनी तेजी से घूम रहे हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं, लेकिन फिर भी हम विचारों से अपने को एक मान लेते हैं, क्योंकि हम कभी विचारों के भीतर और प्रवेश नहीं किए। जो विचार के भी भीतर प्रवेश करेगा, निर्विचार को पाएगा, वही उस अक्षर को अपने भीतर अनुभव कर पाता है, उस कील

को, जिस पर विचार का चाक घूमता है, शरीर का चाक घूमता है, वासना का चाक घूमता है; और फिर बड़े संसार का चाक, और फिर और बृहत ब्रह्मांड का चाक। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर वह कील है। उस कील को पा लेने से कृष्ण कहते हैं, परम गति उपलब्ध होती है। अक्षर को, अव्यक्त को पा लेना, परम गति को पा लेना है। तथा जिस सनातन अव्यक्त को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते हैं, वही मेरा परम धाम है।
जिस सनातन अव्यक्त को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे वापस नहीं आते! एक ऐसी जगह है चेतना के विकास की, जिसे हम प्वाइंट आफ नो रिटर्न कहें, जहां से कोई पीछे वापस नहीं लौटता।
हम पानी को गरम करते हैं, निन्यानबे डिग्री तक भी पानी गरम हो जाए, तो
भी पीछे वापस लौट सकता है। लेकिन सौ डिग्री तक गरम होकर भाप बन जाए, तो फिर पीछे वापस नहीं लौट पाएगा। सौ डिग्री पार कर ले, तो भाप बनकर आकाश में उड़ जाएगा।
अब यह बड़े मजे की बात है! पानी की गति नीचे की तरफ है, भाप की गति ऊपर की तरफ है। अगर पानी को बहा दें, तो गड्ढे की तलाश करेगा। अगर भाप को छोड़ दें, तो आकाश की खोज करेगी, जितने ऊपर जा सके। और एक बिंदु है सौ डिग्री का, सौ डिग्री तापमान पर पानी भाप बन जाता है। उसके स्वभाव में एक मौलिक परिवर्तन होता है, गुणात्मक, कि वह नीचे की तरफ जाना छोड़कर ऊपर की तरफ जाना शुरू कर देता है। लेकिन अगर निन्यानबे डिग्री तक गरम किया हो और फिर पानी को वैसी ही गरमी पर छोड़ दें, तो पानी वापस लौट जाएगा--अट्ठानबे, सत्तानबे, नब्बे--नीचे गिर जाएगा और पानी पानी ही रहेगा।
अब यह भी मजे की बात है कि शून्य डिग्री पर ठंडा पानी भी नीचे की तरफ बहेगा, निन्यानबे डिग्री पर गरम पानी भी नीचे की ही तरफ बहेगा। लेकिन एक डिग्री और, सौ डिग्री, और पानी ऊपर की तरफ यात्रा शुरू कर देता है। पानी पानी ही नहीं रह जाता, भाप हो जाता है; विराट आकाश में खोने के लिए तैयार हो जाता है।
मनुष्य की चेतना की भी ऐसी एक स्थिति है, एक सौ डिग्री का बिंदु है, उस डिग्री के पहले आदमी कितना ही ऊंचा चेतना को ले जाए, बार-बार गिरता रहता है। आप भी कई बार स्वर्ग के इतने करीब मालूम पड़ते हैं कि एक कदम और, और भीतर प्रवेश कर जाएंगे। लेकिन जब तक आप यह सोचते हैं, पाते हैं कि आप काफी दूर हट चुके, स्वर्ग काफी फासले पर है।
हममें से सभी लोग कभी-कभी निन्यानबे डिग्री तक भी पहुंच जाते हैं। कभी किसी प्रार्थना के क्षण में, कभी किसी पूजा के भाव में, कभी किसी प्रेम की स्थिति में, कभी किसी संगीत को सुनकर, कभी किसी सुगंध के सहारे, कभी किसी सौंदर्य के निकट, कभी हम निन्यानबे डिग्री तक भी पहुंच जाते हैं और ऐसा लगता है कि बस... । लेकिन फिर वापस गिर जाते हैं।
आपने शायद अनुभव किया हो, कविता पढ़ते हैं किसी कवि की और ऐसा लगता है
कि यह आदमी कितना निकट नहीं पहुंच गया होगा सत्य के! और फिर एक दिन वही आदमी चाय की दुकान में चाय पीता और बीड़ी फूंकता मिल जाता है। और आप एकदम हैरान हो जाते हैं कि यही वह आदमी है, जिसने इतनी अदभुत कविता लिखी! क्या यही वह आदमी है, जिससे ऐसी पंक्तियों का जन्म हुआ? क्या यही वह आदमी है, जिसके भाव ने इतनी गहराई और ऊंचाई को स्पर्श किया? यह आदमी कैसे हो सकता है!
नहीं, यह आदमी नहीं है। यह निन्यानबे डिग्री पर किसी क्षण में रहा होगा। इसने आकाश का खुला रूप देखा, तारों में झांककर देखा, आंखें मिलाईं इसने बड़ी ऊंचाइयों से, लेकिन अब यह वापस अपनी जगह लौट आया है।
कूलरिज ने, मरने के बाद पता चला, कि कोई चालीस हजार कविताएं अधूरी छोड़ी हैं। मित्र तो जानते थे और कूलरिज से कहते थे कि इन कविताओं को पूरा कर दो। इतनी कविताएं अधूरी क्यों कर रखी हैं? किसी कविता में सात कड़ी हैं, तो आठवीं कड़ी नहीं है। बस, एक कड़ी खाली है। एक कड़ी पूरी हो जाती, तो शायद एक महान कविता का जन्म होता!
लेकिन कूलरिज कहता था, सात कड़ी होते-होते मैं तो वापस लौट गया। वह आठवीं कड़ी आई ही नहीं और मैं वापस जमीन पर लौट आया। अब अगर मैं चाहूं, तो

आठवीं कड़ी जोड़ सकता हूं। लेकिन वह कड़ी उस ऊंचाई की न होगी, जिस ऊंचाई की सात कड़ियां हैं। और मैं भलीभांति जानता हूं कि वही कड़ी इस कविता की नाव को डुबाने वाली सिद्ध होगी। इसलिए मैं प्रतीक्षा करूंगा, किसी दिन फिर उस निन्यानबे डिग्री पर चित्त होगा, और अगर कोई कड़ी उतर आई, तो जोड़ दूंगा, अन्यथा मैं नहीं जोड़ पाऊंगा।
इसलिए जगत के समस्त महान चित्रकार, कवि और संगीतज्ञ निरंतर ऐसा अनुभव करते हैं कि जब उनसे काव्य का, चित्र का जन्म होता है, तो वे मौजूद नहीं होते; कोई और! कोई और ही उनके भीतर से बोल जाता है, कोई और ही उनके भीतर से गा जाता है, कोई और ही उनकी अंगुलियों में थिरकता है और उनके सितार को बजा जाता है। यह कोई और नहीं है, यह उनका ही एक ऊंचा उठा हुआ रूप है, जिसकी उन्हें स्वयं भी खबर नहीं। लेकिन वापस गिर जाते हैं।
काव्य और धर्म में यही अंतर है, आर्ट और रिलीजन में यही अंतर है। काव्य निन्यानबे डिग्री के इस पार गिर जाता है। धर्म सिर्फ एक डिग्री और ऊपर छलांग लेता है और सौ डिग्री के पार हो जाता है। इसलिए काव्य बहुत बार धर्म के निकट पहुंचता है, और धर्म से बहुत बार महाकाव्य का जन्म होता है। इसलिए हमने पुराने दिनों में एक और शब्द खोजा हुआ था, जिसका अर्थ कवि
ही होता है, वह शब्द है, ऋषि। ऋषि का अर्थ कवि ही होता है, लेकिन एक भिन्न गुण के साथ। ऋषि हम उस कवि को कहते हैं, जो उस जगह से गा रहा है, जहां से वापस लौटना असंभव है, प्वाइंट आफ नो रिटर्न। वह भी गीत को ही जन्म देता है। उपनिषद महाकाव्य हैं। गीता स्वयं महाकाव्य है। लेकिन कृष्ण उस जगह से
इस गीत को जन्म देते हैं--इसलिए उसका नाम है, भगवत्गीता; गीत भगवान का, गीत भागवत चैतन्य का--उस जगह से इस गीत को जन्म मिलता है, जहां से लौटना संभव नहीं है।
फिर भगवत्गीता के न मालूम कितनी भाषाओं में रूपांतरण हुए हैं, लेकिन
अब तक एक भी ऋषि उपलब्ध नहीं हुआ उसके रूपांतरण के लिए। कवियों ने रूपांतरण किए हैं। फासला ज्यादा नहीं है। फासला ज्यादा नहीं है। कभी-कभी तो कोई कवि बिल्कुल कृष्ण के करीब पहुंच जाता है। अगर कृष्ण एक सौ डिग्री के पार से बोल रहे हैं, तो कभी-कभी कोई कवि ठीक निन्यानबे डिग्री के पास से बोलता है। एक डिग्री का फासला कोई बड़ा फासला नहीं है, लेकिन उससे बड़ा कोई फासला नहीं है। वहां एक डिग्री भी बहुत कीमती है।
कितना ही बड़ा कवि, कितनी ही बड़ी कविता को जन्म दे, वह ऋषि नहीं हो पाता, क्योंकि वापस-वापस गिर जाता है। और जब कविता को जन्म देने वाला ही वापस गिर जाता हो, तो कविता में डाले गए जो अर्थ हैं, वे ऊर्ध्वगामी नहीं हो सकते; वे नीचे की तरफ ही बहने वाले होते हैं, चाहे कितनी ही ऊंचाई की डिग्री क्यों न रही हो।
इसलिए बड़े से बड़ा काव्य भी नीचे की तरफ ही बहता हुआ मालूम पड़ता है। चाहे कालिदास का हो, तो भी नीचे की तरफ ही बहता हुआ मालूम पड़ता है। बड़े से बड़ा काव्य भी मनुष्य की कामवासना की तरफ ही बहता हुआ मालूम पड़ता है।
ऋषि हमने उसे कहा है, जो चेतना की उस जगह से गीत को जन्म देता है या किसी भी चीज को जन्म देता है, जहां से लौटना संभव नहीं।
एक क्रिस्टलाइजेशन का, एक स्वयं के भीतर संगठित हो जाने का एक क्षण है, जिसके पार गिरना नहीं होता। इस जिस सनातन अव्यक्त को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे नहीं आते, वही मेरा परम धाम है, वही मेरा घर है। बाकी सब रास्ते के पड़ाव हैं, जहां आदमी ठहरता है क्षणभर और आगे बढ़ जाता है, मंजिल नहीं है। परमात्मा की मंजिल। और सबके भीतर परमात्मा छिपा है, उसी यात्रा पर, उसी परमात्मा की मंजिल के लिए। वह मंजिल कहां है?
कृष्ण कहते हैं, सनातन अव्यक्त, तो जो सदा से अप्रकट है, जो सदा से ही छिपा है, इटरनली हिडेन, जिसे कभी कोई खोल नहीं पाया, जिसे कभी कोई उघाड़ नहीं पाया, जिसके पर्दे कभी कोई गिरा नहीं पाया; उस सदा से, अनादि से, अनंत तक के लिए छिपे हुए को पा लेने वाला वापस नहीं लौटता। वही मेरा परम धाम है। इसे जरा समझ लें।
अगर हम ऐसा कहें कि परमात्मा सदा से ही छिपा हुआ है, तो जिन जानने वालों ने परमात्मा की बात कही है, उन्होंने जानी कैसे?

तर्कशास्त्री निरंतर ही ऋषियों के संबंध में, मिस्टिक्स के संबंध में
एक महत्वपूर्ण तर्क उठाते रहे हैं। तर्कशास्त्री सदा से ही कहते रहे हैं कि ये मिस्टिक्स जो हैं, उनके वक्तव्य नानसेंस हैं; उनके वक्तव्यों में अर्थ बिल्कुल नहीं है। क्योंकि एक ओर वे कहते हैं, हम उसके संबंध में कहने जा रहे हैं, जिसके संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। और हम उसकी तुम्हें खबर देते हैं, जिसकी खबर किसी को कभी नहीं मिली। और जो सदा से छिपा है, हम तुम्हारे सामने उसे प्रकट करते हैं।
कृष्ण ने थोड़ी देर ही पहले अर्जुन को कहा है कि मैं संक्षिप्त में उसके संबंध में तुझसे कहूंगा! और अब वे कहते हैं, वह है सनातन अव्यक्त!
जो सनातन अव्यक्त है, सदा से ही छिपा हुआ, कभी प्रकट नहीं हुआ, कृष्ण उसे प्रकट कैसे करेंगे? और कृष्ण उसके संबंध में अगर कुछ भी कह रहे हैं, तो वह प्रकट करना हो जाता है। यह कहना भी कि वह सनातन से अव्यक्त है, व्यक्त करने की बात हो गई। इतना कहना भी, उसके संबंध में कुछ कहना है। तर्क निरंतर रहस्यवादियों पर हंसता रहा है और कहता रहा है, तुम्हारे वक्तव्य पागलों के वक्तव्य हैं।
विट्गिंस्टीन ने अपनी बहुत अदभुत किताब टेक्टेटस में कहा है कि जिस संबंध में न कहा जा सके, उस संबंध में न कहना ही उचित है। जिस संबंध में न कहा जा सके, उस संबंध में न कहना ही उचित है, दैट व्हिच कैन नाट बी सेड मस्ट नाट बी सेड। न कहा जा सके, तो मत ही कहो।
लेकिन अगर इतना भी कहा जा सकता है कि इस संबंध में मैं कुछ भी न कह सकूंगा, देन समथिंग हैज बीन सेड, तब कुछ कहा ही गया, तब कुछ कह ही दिया। और यह भी कहना ही है, प्रकट करना ही है।
तो रहस्यवादी बड़ी मुश्किल में हैं कि वे क्या करें! या तो वे कहना बंद
कर दें; अगर वे सच में ही जानते हैं कि वह अव्यक्त है, प्रकट नहीं किया जा सकता, भाषा बोल नहीं सकती, वाणी के पार है, तो चुप हो जाएं।
लेकिन अगर वे चुप हो जाएं, तो इतना भी नहीं कह सकते कि वह अव्यक्त है।
और फिर चुप हो जाना भी तो एक तरह का कहना होगा, ए सार्ट आफ सेइंग। चुप होना भी एक तरह का कहना ही होगा। वह भी खबर होगी, सूचना ही होगी। अगर बर्नार्ड शा का सो जाना एक मत है, तो परमात्मा के संबंध में चुप हो जाना एक वक्तव्य है। मौन हो जाना, फिर भी वाणी का ही उपयोग है, निषेधात्मक रूप से, निगेटिव ढंग से।
फिर ये रहस्यवादी क्या करें? चुप हों तो मुश्किल है, बोलें तो मुश्किल है। और साथ में उन्हें यह कहना ही है कि वह कभी भी उघाड़ा नहीं गया। वह सदा से ढंका है, और सदा ढंका ही रहेगा। ढंका होना ही उसका स्वभाव है।
अगर वह सदा से ढंका है, तो कृष्ण उसे कैसे उघाड़ते हैं? अगर वह सदा से ढंका है, तो बुद्ध उसे कैसे जानते हैं? यह बड़े मजे की बात है, इसे थोड़ा ख्याल में ले लेना चाहिए।
अगर संसार में किसी ढंकी हुई चीज को उघाड़ना हो, तो उसी चीज को उघाड़ना पड़ता है। अगर एक वैज्ञानिक किसी वस्तु के संबंध में खोज करता है, तो उस वस्तु को तोड़ता है, फोड़ता है, उसके भीतर प्रवेश करता है, उसे उघाड़ता है। सब पर्दे निकालकर अलग कर देता है, भीतर प्रवेश करता है। अगर उसे आदमी के शरीर में पता लगाना है कि क्या बीमारी है, तो एक्स-रे से भीतर प्रवेश करता है; सब पर्दे तोड़ देता है, चीर-फाड़ करता है; मशीनों को भीतर ले जाता है, भीतर के चित्र लाता है; भीतर के संबंध में सब जानकारी पकड़ता है; सब पर्दे उघाड़ता है और भीतर की खोज करता है। यह पदार्थ की खोज का ढंग है।
परमात्मा की भी खोज होती है और वह कभी उघाड़ा नहीं जाता। उसकी खोज बड़ी उलटी है। जिसे परमात्मा को उघाड़ना हो, उसे अपने सब पर्दे तोड़ देने पड़ते हैं। अपने! उसे अपने सब पर्दे तोड़ देने पड़ते हैं, अपने भीतर कोई भी छिपावट नहीं रखनी पड़ती, अपने भीतर कोई राज नहीं रखना पड़ता, अपने भीतर कुछ भी अव्यक्त नहीं रखना पड़ता, सब भांति अपने को अभिव्यक्त कर देना पड़ता है, द्वार-दरवाजे खुले छोड़कर।
जो व्यक्ति अपने को बिल्कुल उघाड़ा कर लेता है... । जैसे महावीर नग्न खड़े हो गए। वह नग्न खड़ा होना सिर्फ प्रतीक है इस बात का कि जिसे भी

परमात्मा को जानना हो, जिसे भी उस अनउघड़े हुए को उघाड़ना हो, उसे अपने को बिल्कुल उघाड़कर नग्न, वलनरेबल, सब तरह से खुला हुआ छोड़ देना चाहिए। जो व्यक्ति अपने को पूरी तरह उघाड़कर, सब द्वार-दरवाजे खोलकर, ओपन, खुला हुआ हो जाता है, आकाश की भांति, परमात्मा जो सनातन अव्यक्त है, उसके समक्ष--वह तो बचता ही नहीं इतने उघड़ेपन में--प्रकट हो जाता है। यह प्रकटीकरण बहुत और तरह का प्रकटीकरण है। क्योंकि इसमें परमात्मा को हम उघाड़ते ही नहीं, सिर्फ अपने को उघाड़ते हैं।
इसे हम ऐसा भी समझ लें कि ढंके हुए हम मनुष्य हैं, उघड़कर हम परमात्मा
हो जाते हैं। ढंके हुए हम मनुष्य हैं, उघड़कर हम परमात्मा हो जाते हैं। कोई हमारे सामने नहीं आता, अचानक हम पाते हैं उघड़ते ही कि जिसे हम खोजते थे, वह तो मैं स्वयं हूं। जिस अक्षर की तलाश थी, वह तो मेरे भीतर बैठा है। जिस कील के लिए हमने बैलगाड़ी पर बैठकर इतनी यात्रा की, उसी कील पर बैलगाड़ी का चाक चलता था।
मुल्ला नसरुद्दीन भागा जा रहा है अपने गधे पर बैठा हुआ गांव से, तेजी से। बड़ी तेजी में है, और कोड़े चला रहा है। बाजार में लोग उससे पूछते हैं कि नसरुद्दीन, कहां भागे जा रहे हो? वह कहता है, मेरा गधा खो गया। मैं जरा तेजी में हूं। मुझे रोको मत। कोई आदमी चिल्लाता है कि नसरुद्दीन, लेकिन तुम गधे पर सवार हो। नसरुद्दीन कहता है, तुमने अच्छा बता दिया। मैं इतनी तेजी में था कि मुझे ख्याल ही न आता। इतनी तेजी में था खोज की कि मुझे ख्याल ही न आता!
हम जिसे खोज रहे हैं, जानने वाले कहते हैं, हम उसे कभी न खोज पाएंगे, क्योंकि उस पर ही हम सवार हैं। लेकिन तेजी इतनी है कि हम अनंत-अनंत यात्रा कर लेंगे, और तेजी इतनी है कि हमें स्मरण भी न आएगा कि जिसके ऊपर सवार होकर हम खोज रहे हैं, वही हमारी खोज है, वही हमारा गंतव्य है। जिसे हम पाने चले हैं, उसे हम पाए ही हुए हैं। जिसके लिए हम हाथ फैला रहे हैं, वही हमारे हाथों में फैला हुआ है। और जिसके लिए हमने तृष्णा के जाल बोए, वही हमारी तृष्णाओं का तंतु है। और जिसके लिए हम भागे चले जा रहे हैं, दौड़ रहे हैं, परेशान हो रहे हैं, वही है हमारे भीतर, जिसे हम परेशान किए दे रहे हैं। मुल्ला नसरुद्दीन बहुत चिंतित है। उसका चिकित्सक उससे कहता है, इतनी चिंता क्या? चिंता के कारण ही नसरुद्दीन तुम बूढ़े हुए जा रहे हो। नसरुद्दीन कहता है, यह मैं समझा। अब मैं आपको अपनी चिंता बता दूं। कहीं मैं बूढ़ा न हो जाऊं, इसी की मैं चिंता में लगा हूं। और तुम कहते हो कि चिंता के कारण ही तुम बूढ़े हुए जा रहे हो!
ऐसा ही विशियस सर्किल है, ऐसा ही दुष्चक्र है। चिंता के कारण आदमी बूढ़ा हुआ जा रहा है। बूढ़ा हुए जाने के कारण चिंता कर रहा है। अब इसे कहां से तोड़ना है!
किसे खोज रहे हैं आप? किसकी तलाश है? जो तलाश कर रहा है, वही उसी की तलाश है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को छोड़कर और कुछ भी नहीं खोज रहा है। लेकिन स्वयं को कैसे खोज सकेगा?
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन गया है अपने शराबघर में और उसने जाकर पूछा
कि मैं पूछने आया हूं कि क्या शेख रहमान इधर अभी थोड़ी देर पहले आया था? शराबघर के मालिक ने कहा कि हां, घड़ीभर हुई, शेख रहमान यहां आया था। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि चलो इतना तो पता चला। अब मैं यह पूछना चाहता हूं कि क्या मैं भी उसके साथ था?
काफी पी गए हैं। वे पता लगाने आए हैं कि कहीं शराब तो नहीं पी ली! काफी
पी गए हैं, अब पता लगाने आए हैं कि कहीं शराब तो नहीं पी ली। इतना ख्याल है कि शेख रहमान के साथ थे। दूसरे का ख्याल बेहोशी में बना रहता है, अपना भूल जाता है। शेख रहमान साथ था, इतना ख्याल है। तो शेख रहमान अगर यहां आया हो, तो मैं भी आया होऊंगा। और अगर वह पीकर गया है, तो मैं भी पीकर गया हूं। दूसरे से हम अपना हिसाब लगा रहे हैं। हम सब को अपना तो कोई ख्याल नहीं
है, दूसरे का हमें ख्याल है। इसलिए हम दूसरे की तरफ बड़ी नजर रखते हैं। अगर चार आदमी आपको अच्छा आदमी कहने लगें, तो आप अचानक पाते हैं कि आप बड़े अच्छे आदमी हो गए। और चार आदमी आपको बुरा कहने लगें, आप अचानक पाते हैं, सब

मिट्टी में मिल गया; बुरे आदमी हो गए! आप भी कुछ हैं? या ये चार आदमी जो कहते हैं, वही सब कुछ है?
इसलिए आदमी दूसरों से बहुत भयभीत रहता है कि कहीं कोई निंदा न कर दे, कहीं कोई बुराई न कर दे, कहीं कोई कुछ कह न दे कि सब बना-बनाया खेल मिट जाए। आदमी दूसरों की प्रशंसा करता रहता है, ताकि दूसरे उसकी प्रशंसा करते रहें। सिर्फ एक वजह से कि दूसरे के मत के अतिरिक्त हमारे पास और कोई संपदा नहीं है। दूसरे का ही हमें पता है। अपना हमें कोई भी पता नहीं है।
मनुष्य जिस दिन भी अपने भीतर प्रवेश करता है, उस दिन ही पाता है कि जिसे वह खोजता था, वह भीतर ही मौजूद है।
मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक आदमी हाजी हो गया है, हज की यात्रा करके लौट आया है, तीर्थयात्रा करके लौट आया है। सारा गांव इकट्ठा है। सिर्फ नसरुद्दीन को छोड़कर सारा गांव हाजी को देखने गया है। नसरुद्दीन की पत्नी कहती है कि नसरुद्दीन, तुम भी अपना यह अधर्म कब छोड़ोगे? ऐसे गांवभर में घूमते-फिरते हो, धूल खाते हो गली-गली की, और आज हाजी गांव में आया है, तो तुम घर बैठे हो, जब कि सारा गांव जा रहा है! नसरुद्दीन ने कहा कि इसमें कौन-सी प्रशंसा की बात है कि कोई आदमी हज हो आया? हां, अगर किसी दिन किसी आदमी के पास हज आ जाए, तो मुझे खबर करना।
आदमी तीर्थयात्रा पर चला जाए, लौट आए, इसमें कौन-सी बड़ी बात है! बहुत लोग आए और गए। किसी दिन तीर्थ किसी आदमी के पास आ जाए, मुझे खबर करना, मैं हाजिर हो जाऊंगा।
वह ठीक कह रहा है। ऐसी घटना भी घटती है, जब तीर्थ आदमी के भीतर आ जाता है। ऐसी भी घटना घटती है, जब भक्त भगवान को खोजने नहीं जाता और भगवान भक्त को खोजता आता है।
असल में ऐसी ही घटना घटती है। भक्त के खोजे भगवान कभी नहीं मिला और कभी मिल नहीं सकता है। भक्त को अगर पता ही होता कि भगवान कहां है, तो वह कभी का भगवान को खोज लिया होता। उसे कुछ भी पता नहीं है। भक्त क्या कर सकता है? भक्त कहीं जाता नहीं। भक्त सिर्फ अपने को खोलता, उघाड़ता और नग्न करता है। भक्त सिर्फ अपने को उघाड़ता है। और जिस दिन भक्त पूरा उघड़ा होता है, नग्न पूर्ण रूप से, कोई वस्त्र नहीं उसके चित्त पर, उसकी चेतना पर कोई आवरण नहीं, निरावरण, उसी दिन भगवान उपलब्ध हो जाता है। भक्त कभी भी यात्रा करके भगवान तक नहीं पहुंचे हैं। जब भी कोई भक्त हो सका है भक्त, तब भगवान स्वयं यात्रा करके आ गया है।
यह जो घटना है, यह जो सनातन अव्यक्त को प्राप्त कर लेना है, कृष्ण कहते हैं, यही मेरा परम धाम है।
यह परम धाम प्रत्येक के भीतर है, यह वैकुंठ प्रत्येक के भीतर है, यह मोक्ष प्रत्येक के भीतर है। और इसे परम धाम इसलिए कहा है कृष्ण ने कि यह पड़ाव नहीं है। इस पर ठहरकर फिर आगे की यात्रा के लिए तैयारी नहीं करनी है। इस पर आकर सारी यात्राएं समाप्त हो जाती हैं।
सुना है मैंने, जापान में एक तीर्थयात्रा के बीच के पड़ाव पर, पहाड़ पर
एक मंदिर है। और हजारों लोग वर्ष में एक दिन वहां की यात्रा करते हैं पैदल। वर्षों से एक फकीर बीच पहाड़ के रास्ते पर एक वृक्ष के नीचे पड़ा रहता था। हर वर्ष यात्री आते और जाते। कभी कोई उस फकीर से पूछ लेता कि तुम इस वृक्ष के नीचे यात्रा पर जाते हुए ठहरे हो या यात्रा से लौटते हुए ठहरे हो? तो वह फकीर हंसता और वह कहता कि न हम किसी यात्रा पर जाते हुए ठहरे हैं और न किसी यात्रा से आते हुए ठहरे हैं। स्वभावतः, लोग रुक जाते और पूछते कि तुम्हारा मतलब क्या है? क्योंकि तुम जहां बैठे हो, यह तो केवल यात्रा का पड़ाव है, मंजिल तो आगे है!
तो वह फकीर कहता कि निश्चित ही, बाहर की यात्रा, जिस पर तुम निकले हो, उसके लिए यह एक पड़ाव है। लेकिन जहां मैं भीतर बैठा हूं, वह वह जगह है, जहां से न आगे जाया जा सकता है, न जहां से पीछे लौटा जा सकता है। आया तो मैं भी इसी तीर्थ की यात्रा के लिए था, लेकिन इस वृक्ष के नीचे बड़ी तीर्थयात्रा घटित हो गई, फिर आगे नहीं जा सका। इस वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे वह घटित हो गया, जिसने मुझे अपने ही भीतर पहुंचा दिया। अब मंजिल आ गई, अब कदम यहां

रखने और कदम वहां रखने का भी कोई अर्थ नहीं रह गया है। अब मैं वहां हूं, जहां सदा था और जहां के लिए सदा से दौड़ता रहा।
परम धाम का अर्थ है, जिसके आगे अब कोई और यात्रा की तैयारी नहीं करनी है। और परम धाम का एक अर्थ और ख्याल में ले लें, जो और भी जरूरी है।
परम धाम का यह अर्थ नहीं है कि जहां आप बहुत-सी यात्राएं करके पहुंच गए। अगर आप बहुत-सी यात्रा करके वहां पहुंचे हैं, तो वह परम धाम नहीं हो सकता, धाम ही हो सकता है। परम धाम तो वह है, जहां पहुंचकर पता चला कि जहां हम सदा से थे ही! यह थोड़ी-सी कठिन बात है। परम धाम वह है, जहां पहुंचकर पता चले कि हद हो गई, यहां तो हम सदा से थे ही!
बुद्ध को जब निर्वाण हुआ, बुद्ध को जब समाधि फलित हुई, तो बुद्ध सात दिन तक तो चुप बैठे रहे। कुछ सूझा ही नहीं। हिले-डुले भी नहीं। फिर लोग इकट्ठे होने लगे। उनकी कांति, उनकी आंखों की रोशनी, उनकी सुगंध जल्दी ही फैलने लगी। जब कोई फूल खिल जाए मनुष्य की चेतना में, तो फिर किसी को बुलाने नहीं जाना पड़ता, खबर पहुंचनी शुरू हो जाती है। लोग आने लगे। दूर-दूर तक खबर फैल गई कि कोई बुद्धत्व को प्राप्त हो गया। लोगों की भीड़ लग गई और लोग हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि हमें बताओ कि तुमने क्या पा लिया है? गौतम, हमें कहो कि तुमने क्या पा लिया है?
तो बुद्ध ने जो पहला वचन कहा, वह बहुत हैरानी का है। बुद्ध ने कहा, अगर तुम पूछते हो कि मैंने क्या पा लिया, तो तुम मुझे मुश्किल में डालते हो। क्योंकि मैंने वही पा लिया है, जो सदा से पाया ही हुआ था। लोग पूछने लगे कि पहेलियों में मत कहो। हम सीधे-सादे लोग हैं, हमें ठीक से समझाओ। तुम्हारी उपलब्धि क्या है? तो बुद्ध ने कहा, उपलब्धि के नाम पर कोई भी उपलब्धि नहीं है। मैंने खोया तो जरूर कुछ, पाया कुछ भी नहीं।
लोग बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा कि हमने तो सदा से सुना है कि जब ज्ञान होता है, तो कुछ मिलता है। आप कैसी बात करते हैं! तो बुद्ध ने कहा, मैंने अज्ञान तो खोया। अब मैं हैरान हूं कि मैंने उस अज्ञान को पा कैसे लिया था! उसे मैंने खोया। और जो ज्ञान मैंने पाया है, अब मैं तुमसे कैसे कहूं कि उसे मैंने पाया है, क्योंकि अब मैं जानता हूं कि वह सदा से ही मेरे पास था।
तो बुद्ध कहते कि ऐसा समझो कि किसी भिखारी के खीसे में हीरा पड़ा हो और
वह भीख मांगता फिरे। फिर एक दिन अचानक वह खीसे में हाथ डाले, हीरा सामने आ जाए। तो क्या वह कहेगा कि मैंने हीरा पाया? वह हीरा तो बहुत दिन से उसके साथ ही था, सदा से उसके साथ ही था, सिर्फ उसे पता नहीं था।
परम धाम वह है, जो अभी भी हमारे साथ है और हमें पता नहीं। परम मंजिल वह है, जिसे हम अपने हृदय के कोने में लिए हुए चल रहे हैं, खोज रहे हैं। निरंतर जो मौजूद है और हमें पता नहीं। बस, पता नहीं है। इतना ही फर्क पड़ेगा पहुंचकर, जानकर, पता हो जाएगा; और कोई भी फर्क नहीं पड़ेगा।
बुद्ध ने अपने पिछले जन्म का स्मरण किया है और कहा है कि मेरे पिछले जन्म में, सुना मैंने--गौतम बुद्ध के जन्म के पहले जन्म में, जब वे बुद्ध नहीं हुए थे--तो बुद्ध ने कहा है कि मैंने सुना था अपने पिछले जन्म में कि कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, तो मैं उसके दर्शन करने को गया था। जब मैं उसके चरणों में झुका और मैंने सिर उसके पैरों में रखा, और जब मैं उठकर खड़ा हुआ, तो मैं चकित हो गया, क्योंकि अचानक उस बुद्धपुरुष ने अपना सिर मेरे चरणों में रख दिया।
मैं तो बहुत घबड़ा गया। और मैंने उन्हें उठाकर कहा कि मुझे क्षमा करें! मुझसे कुछ भूल हो गई? आप मेरे चरणों में सिर रखें, यह तो उलटा मुझ पर पाप हो गया। मुझसे पाप हो गया। अगर मुझे पता होता, तो मैं आपको पहले ही रोक लेता। मैं तो अज्ञानी हूं। मैंने आपके चरणों में सिर रखा, वह ठीक है। पर आपने मेरे चरणों में क्यों सिर रखा?
तो उस बुद्धपुरुष ने बुद्ध को कहा, उस ज्ञानी ने बुद्ध को कहा कि मुझे पता है मंजिल का, वह मुझे मिल भी गई, मुझे पता भी है, पर मुझ में और तुझ में ज्यादा फर्क नहीं है। मंजिल तो उतनी की उतनी तेरे भीतर भी मौजूद है, बस तुझे जरा पता नहीं। जो हीरा मेरे पास है, वही हीरा तेरे पास है। मुझे पता

है, तुझे पता नहीं। लेकिन हीरे के होने में जरा फर्क नहीं है। तो मैं तुझे इसलिए नमस्कार करता हूं, ताकि तुझे याद रहे कि तेरे भीतर भी वह हीरा है कि बुद्धपुरुष तेरे चरणों में सिर रखे। और आज नहीं कल, जब तुझे पता चल जाएगा, तब तू मेरी बात समझ लेगा।
और जब एक जन्म के बाद बुद्ध को ज्ञान हुआ, तब उन्होंने जो पहले अपने हाथ जोड़कर किसी के चरणों में झुकाए, वे वे ही अज्ञात चरण थे, जो अब तो खोजे से मिल नहीं सकते थे। वे अज्ञात चरण, वह अज्ञात व्यक्ति, जिसने उनके चरणों में सिर रख दिया था। जानते हुए ज्ञानी ने अज्ञानी के चरण में सिर रख दिया था, सिर्फ इस आशा में कि आज नहीं कल इस अज्ञानी को भी पता तो चल ही जाएगा कि उसके भीतर भी ज्ञान का उतना ही सागर है, रत्तीभर भी कम नहीं।
परम धाम का अर्थ है, ऐसी मंजिल, जो हमें मिली ही है और फिर भी हमें पता नहीं।
और हे पार्थ, जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत हैं और जिस परमात्मा
से यह जगत परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।
जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत हैं!
निश्चित ही, भूतों के अंतर्गत परमात्मा नहीं है। पदार्थ के अंतर्गत परमात्मा नहीं है, लेकिन परमात्मा के अंतर्गत पदार्थ हैं। जैसे विराट आकाश सब पदार्थों को घेरे हुए है, ऐसा ही विराट परमात्म-चैतन्य समस्त आकाशों को भी घेरे हुए है। चेतना इस जगत में सर्वाधिक विस्तार है, सबसे बड़ा विस्तार है।
इस समय पश्चिम में एक क्रांति चलती है--खास कर नई पीढ़ी में, यंगर जेनरेशन में--और हजारों तरह के प्रयोग पश्चिम में किए जा रहे हैं। रासायनिक द्रव्यों को लेकर, केमिकल ड्रग्स को लेकर--एल एस डी है, मारिजुआना है, मैस्कलीन है, हशीश है, गांजा है, भांग है--इन सब पर बहुत प्रयोग चलते हैं। और उस प्रयोग के पीछे एक आशा काम करती है, एक अभिलाषा है कि किसी भांति चेतना विस्तीर्ण कैसे हो जाए, एक्सपेंशन आफ कांशसनेस। चेतना फैल कैसे जाए, बड़ी कैसे हो जाए, विस्तार कैसे हो जाए।
चाहे रासायनिक द्रव्यों से वह बात न हो सके, लेकिन आकांक्षा बड़ी प्राचीन है, बड़ी प्राचीन है। आदमी की आकांक्षा एक ही है कि चेतना इतनी विस्तीर्ण कैसे हो जाए कि चेतना में सब कुछ घिर जाए और समा जाए, चेतना के बाहर कुछ न रह जाए। जिस दिन चेतना के बाहर कुछ नहीं रह जाता और चेतना में सभी कुछ समा जाता है, कांशसनेस एक आकाश बन जाती है, एक स्पेस, और सभी कुछ उसमें समा जाता है। उस दिन पाने योग्य फिर कुछ नहीं बचता; उस दिन खोने का भी कोई डर नहीं रह जाता; उस दिन मृत्यु का भय नहीं होता; उस दिन अमृत के झरने स्वयं में ही फूट पड़ते हैं। उस दिन परिवर्तन का कोई कारण नहीं; उस दिन शाश्वत तो स्वयं का घर बन जाता है।
इस परम चेतना के संबंध में ही कृष्ण कह रहे हैं कि वह जो परमात्मा है, उसके अंतर्गत सर्वभूत हैं।
एक जीसस का वचन इस संबंध में कहने जैसा है। जीसस के पास एक अंधेरी रात में निकोडेमस नाम का युवक आया और उस युवक से जीसस ने कहा कि तू मेरे पास किसलिए आया है? क्या तू चाहता है कि तुझे और धन मिल जाए मेरे शुभाशीषों से? या तू चाहता है कि तेरे जीवन में सफलता आए मेरे संपर्क से? क्या तू इसीलिए मेरी प्रार्थना को आया है, ताकि मेरी शुभकामनाएं तेरे ऊपर बरस पड़ें और तू संसार में उपलब्धियों की दिशा पर गतिमान हो सके?
निकोडेमस ने कहा, हे प्रभु, आपने पहचाना कैसे? आया मैं इसीलिए हूं कि
और मेरा धन कैसे बढ़े! और मेरा राज्य कैसे बड़ा हो! और वस्तुओं का मैं मालिक कैसे हो जाऊं! मुझे कोई एक ऐसा सूत्र दे दें, कोई एक राज बता दें, एक गुर ऐसा मुझे दे दें कि उसी के सहारे मैं जहां भी कदम रखूं, सफल हो जाऊं; जो भी मेरी महत्वाकांक्षा हो, पूरी हो। इधर मैं कामना करूं कि वहां पूर्ति हो जाए। मुझे कुछ ऐसा राज बता दें, जो कल्पवृक्ष हो जाए।
तो जीसस ने जो राज बताया, निकोडेमस की तो समझ में नहीं आया, लेकिन समस्त धर्मों का सार उस सूत्र में है। जीसस ने कहा, सीक यी फर्स्ट दि

किंगडम आफ गॉड, देन आल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू। तू पहले प्रभु को खोज ले, और शेष सब उसके पीछे चला आएगा। तू पहले प्रभु का राज्य खोज ले, और फिर शेष सब उसके पीछे अपने से चला आएगा।
लेकिन उस निकोडेमस ने कहा कि पहले तो मुझे शेष सबको खोजने दें। अभी प्रभु को खोजने की मेरी उम्र नहीं हुई!
कल एक बूढ़े सज्जन मेरे पास आए। सत्तर से कम तो उनकी उम्र न होगी। वे मुझसे पूछने आए कि आपने युवकों को संन्यास कैसे दे दिया है? शास्त्रों में कहा हुआ है कि संन्यास तो अंतिम अवस्था में लेना चाहिए!
अब अगर शास्त्रों को ही वे मानते हों, तो उनको संन्यासी होकर आना चाहिए था। सत्तर साल की उम्र है। शास्त्रों वगैरह को वे मानते नहीं हैं जरा भी। नहीं तो संन्यासी होकर आना चाहिए था। अभी उन्होंने संन्यास नहीं लिया है। लेकिन किसी युवक को क्यों संन्यास दे दिया है, इसके लिए वे पूछने आए हैं, कि इससे तो बड़ी हानि हो जाएगी!
परमात्मा को खोजने के लिए उम्र की कोई शर्त नहीं है। और कभी तो बूढ़े
भी नहीं खोज पाते, और कभी बच्चे भी खोज लेते हैं। और जिन्हें हम बूढ़े और बच्चे कहते हैं, उनमें भी कौन बूढ़ा है और कौन बच्चा है, यह इतना आसान नहीं है तय करना। क्योंकि अगर बुढ़ापे का कोई भी अर्थ होता हो, तो बुद्धिमत्ता होगी। तो बूढ़े भी नासमझ हो सकते हैं, बच्चे भी समझदार हो सकते हैं। निकोडेमस ने कहा कि अभी तो मेरी उम्र भी कहां कि मैं परमात्मा को खोजूं। आप भी कैसी बात करते हैं!
यद्यपि उसकी उम्र जीसस से ज्यादा थी, जिससे वह पूछने आया था। जीसस की
तो सूली ही तैंतीस वर्ष में लग गई। जीसस ने लेकिन उसे जो सूत्र दिया और कहा, सीक यू फर्स्ट दि किंगडम आफ गॉड एंड देन आल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू, और तब सब तुझे अपने आप मिल जाएगा। अगर तू गुर की बात पूछता है, राज की, तो बता देता हूं। पहले प्रभु को खोज ले।
लेकिन प्रभु को खोजने से शेष सब कैसे मिल जाएगा?
कृष्ण के इस सूत्र में है वह अर्थ। हे पार्थ, जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत हैं... ।
अगर किसी ने परमात्मा को ही पा लिया, तो वह सर्वभूतों को तो पा ही लेगा। और जो भूतों को पाने में लगा रहा, पदार्थों को पाने में लगा रहा, वह पदार्थों को पा नहीं सकता। क्योंकि जब तक पदार्थों के मालिक को नहीं पाया, तब तक पदार्थों को कैसे पाया जा सकता है! हमारे जीवन की सारी पीड़ा यही है। सुना है मैंने, एक सम्राट यात्रा पर गया है। और जब वह अनेक-अनेक साम्राज्यों की विजय करके वापस लौटने लगा, तो उसने अपनी--सौ रानियां थीं-- उन सबको खबर भेजी कि तुम क्या चाहती हो कि मैं उपहार में तुम्हारे लिए लाऊं?
किसी रानी ने कहा कि मेरे लिए कोहनूर लेते आना। किसी रानी ने कहा कि मेरे लिए उस देश में जो इत्र बनता है श्रेष्ठतम, उसको ले आना, जितना ला सको। किसी ने कुछ और, किसी ने कुछ और; बड़ी कीमती, बड़ी बहुमूल्य चीजें। सिर्फ एक रानी ने खबर भेजी कि तुम सकुशल वापस लौट आना, और मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।
सम्राट, जिस रानी ने जो बुलाया था उसके लिए तो उतना लाया ही, लेकिन इस रानी के लिए उतना सब लाया, जितना सब रानियों ने इकट्ठा बुलाया था। लौटकर उसने कहा कि रानी तो सिर्फ मेरी एक कुशल और होशियार है, उसने मालिक को मांग लिया; चीजें तो पीछे चली आती हैं!
सच, धार्मिक व्यक्ति इस जगत में कुशलतम बुद्धिमान व्यक्ति है। वह पदार्थों को नहीं मांगता, वह पदार्थों के मालिक को ही मांग लेता है; पदार्थ तो पीछे चले आते हैं।
जिसे हम गृहस्थ कहते हैं, जिसे हम समझदार कहते हैं, वह सिर्फ नासमझों
की आंखों में समझदार होगा; उससे ज्यादा नासमझ कोई भी नहीं, क्योंकि वह जो भी मांगता है, वह क्षुद्र पदार्थ है। और मालिक को बिना मांगे हम वहम में ही होते हैं कि हमें कुछ मिल गया, क्योंकि मौत हमसे फिर सब छीनकर मालिक को वापस लौटा देती है। थोड़ी-बहुत देर हम पहरेदारी करते हैं। बड़े से बड़ा हमारे

बीच जो धनपति है, वह धन का पहरा देता है। जितना ज्यादा धन, उतना ही खर्च करना मुश्किल हो जाता है। खर्च करना तो सिर्फ फकीर ही जानते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने गांव में कभी किसी आदमी को चाय भी नहीं पिलाई। मरते समय तक बहुत पैसा उसके पास इकट्ठा हो गया। लेकिन एक दिन गांव में खबर उड़ गई कि मुल्ला नसरुद्दीन पूरे नगर को भोज दे रहा है। किसी ने भरोसा नहीं किया। लोगों ने सुना, हंसे, और टाल दिया।
एक अजनबी आदमी गांव में आया हुआ था, वह बड़ा हैरान हुआ कि जब गांव में इतने जोर की अफवाह है, फिर भी कोई आदमी मानता क्यों नहीं! उसने सोचा कि हर्ज क्या है, चलकर मैं नसरुद्दीन से ही पूछ लूं। कुतूहलवश... ।
गांव के लोगों ने बहुत समझाया कि तू बिल्कुल पागल है। यह नसरुद्दीन
ने ही अफवाह उड़ाई होगी। बाकी यह हो नहीं सकता; यह इंपासिबल है, यह असंभव है। इस नगर में कुछ भी हो सकता है; नसरुद्दीन भोज दे दे पूरे नगर को, यह कभी नहीं हो सकता। जाने की जरूरत नहीं है।
लेकिन जितना लोगों ने रोका, उसकी उत्सुकता बढ़ी। उसने कहा, हर्ज क्या है, चार कदम चलकर जरा मैं पूछ ही क्यों न आऊं। अफवाह सच भी हो सकती है।
वह आदमी गया। नसरुद्दीन तो भीतर बैठा था अपनी बैठक में, बाहर नौकर उसका महमूद था। उस आदमी ने पूछा कि सुना है मैंने कि तुम्हारा मालिक मुल्ला नसरुद्दीन गांवभर को भोज दे रहा है, क्या तुम कुछ इस संबंध में मुझे जानकारी दे सकते हो? और अगर यह भोज होने वाला है, तो किस तारीख और किस दिन?
मुल्ला का नौकर तो अच्छी तरह जानता था कि यह कभी होने वाला नहीं है।
वह हंसा और इसलिए कि कभी होने वाला नहीं है, उसने मजाक में उस आदमी से कहा कि अब तुम आ ही गए हो इतनी दूर चलकर, तो मैं तुम्हें दिन बताए देता हूं। कयामत के दिन, प्रलय के दिन, यह भोज होगा।
वह आदमी तो चला गया, मुल्ला अंदर से आया और कहा कि नालायक, अभी से दिन
तय करने की क्या जरूरत! फंसा दिया मुझे। दिन भी तय कर दिया! अफवाह उड़ने दे, दिन तय करने की कोई जरूरत नहीं। कयामत का दिन भी आखिर दिन ही है। तय तो हो ही गया!
पहरे देते हैं लोग। अपने धन पर पहरा देते हैं, अपने यश पर पहरा देते हैं और मर जाते हैं। और उनका धन, और उनका यश उन पर हंसता हुआ यहीं पड़ा रह जाता है। सिर्फ एक धन है जिसे मृत्यु नहीं छीन पाती, और वह परमात्मा है। सिर्फ एक ही यश है जिसे मृत्यु नहीं धूमिल कर पाती, और वह परमात्मा है।
और मजा यह है कि जो परमात्मा को पा लेता है, वह सब पा लेता है। और जो सबको पाने की कोशिश में रहता है, वह सबमें से तो कुछ पाता ही नहीं; जिसे पा सकता था, परमात्मा को, उसे भी पाने के अवसर चूकता चला जाता है।
और जिस परमात्मा से यह जगत परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।
और जिस परमात्मा से यह जगत परिपूर्ण है!
लेकिन हमें तो कहीं परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और कृष्ण कहते हैं कि जिस परमात्मा से यह जगत परिपूर्ण है। वह हमें कहीं दिखाई नहीं पड़ता। हमें सब कुछ दिखाई पड़ता है परमात्मा को छोड़कर। हमें सब कुछ दिखाई पड़ता है, आदमी, वृक्ष, पत्थर, हीरे-जवाहरात, आकाश, चांद-तारे, सब दिखाई पड़ता है, सिर्फ परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। और ये कृष्ण जैसे लोग निरंतर कहे जाते हैं कि और सब कुछ भी नहीं है, परमात्मा ही है। जरूर कहीं कोई बात है।
पश्चिम में एक नई साइकोलाजी पिछले पचास वर्षों में विकसित हुई है। उस साइकोलाजी का नाम है, गेस्टाल्ट साइकोलाजी, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान। यह गेस्टाल्ट शब्द ऐसा है कि इसका अनुवाद नहीं हो सकता है। इसलिए थोड़ा मैं आपको समझा दूं, तो ख्याल में आ सके।
गेस्टाल्ट जर्मन शब्द है। और गेस्टाल्ट का मतलब होता है, एक रूप-रेखा,
जो मन को पकड़ ले, तो उससे विपरीत रूप-रेखा दिखाई नहीं पड़ती।
इसे ऐसा समझें। कभी आपने बच्चों की किताबों में ऐसी तस्वीरें देखी होंगी। बच्चों की किताब में ऐसी तस्वीर अक्सर होती है कि दो चेहरे आदमियों के एक-दूसरे को देखते हुए बने हैं--नाक नाक के पास, होंठ होंठ के

पास, दाढ़ी दाढ़ी के पास। दो चेहरे बने हैं, काले। इस चित्र को आप दो तरह से देख सकते हैं। अगर बीच की सफेद जगह को देखें, तो मालूम पड़ेगा कि कोई फूलों का गमला रखा है। अगर आप काले चेहरों पर ध्यान दें, तो फूलों का गमला खो जाएगा और दो चेहरे दिखाई पड़ेंगे आमने-सामने। और मजा यह है कि जब आप काले चेहरों को देखेंगे, तो आपको गमला नहीं दिखाई पड़ेगा। और जब आप गमले पर ध्यान देंगे, तो चेहरे दिखाई नहीं पड़ेंगे। दोनों एक साथ दिखाई नहीं पड़ेंगे।
या बच्चों की किताब में कभी इस तरह के चित्र भी होते हैं कि एक ही चित्र में, रेखाओं में जवान स्त्री का चित्र होता है एक, और उसी रेखाओं के बीच छिपा हुआ एक बूढ़ी स्त्री का चित्र होता है। जब आपको जवान स्त्री की रेखाएं दिखाई पड़ेंगी, तो बूढ़ी स्त्री दिखाई नहीं पड़ेगी। और जब बूढ़ी स्त्री की रेखाएं दिखाई पड़ेंगी, तो जवान स्त्री दिखाई नहीं पड़ेगी। और ऐसा नहीं है कि आपको पता नहीं है इसलिए, आपने दोनों देख ली हैं। एक दफा जवान देख ली, फिर क्षणभर बाद आपको बूढ़ी स्त्री भी मिल गई। अब आप जानते हैं कि दोनों स्त्रियां उस चित्र में मौजूद हैं। लेकिन अभी भी जब भी आप देखेंगे, एक ही दिखाई पड़ेगी, दूसरी दिखाई नहीं पड़ेगी। क्योंकि एक ही रेखाओं से दोनों की बनावट है। जब आप एक रेखा का उपयोग जवान स्त्री के लिए कर लेते हैं, तो बूढ़ी स्त्री के लिए रेखा नहीं बचती। और जब आप उसी रेखा का उपयोग बूढ़ी स्त्री के लिए कर लेते हैं, तो जवान स्त्री नहीं बचती।
इसको गेस्टाल्ट कहते हैं। एक चित्र में दो चित्रों की संभावना है, लेकिन एक चित्र देखें, तो दूसरा दिखाई नहीं पड़ता।
यह जगत एक गेस्टाल्ट है। इस जगत में जब तक आपको पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, तब तक परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि जहां पदार्थ समाप्त होते हैं, उनकी जो समाप्त होने की रेखा है, वही परमात्मा के प्रारंभ होने की रेखा है। इसलिए जिस आदमी को पदार्थ दिखाई पड़ता है, वह कहता है, कहां है परमात्मा? कहीं नहीं है। और जिसको परमात्मा दिखाई पड़ता है, वह पूछता है, कहां है संसार? कहां है पदार्थ? कहीं कोई नहीं है।
इसलिए शंकर जैसा ज्ञानी कहता है कि संसार नहीं है। मार्क्स जैसा ज्ञानी कहता है कि संसार ही है, परमात्मा नहीं है। पदार्थवादी कहता है, पदार्थ है। परमात्मवादी कहता है, परमात्मा है। और मामला गेस्टाल्ट का है। उन्हीं रेखाओं का उपयोग हम कर रहे हैं। जब मैं आप पर ध्यान देता हूं,
तो आप दिखाई पड़ते हैं; लेकिन आपके आस-पास का जो फैलाव है आकाश का, वह दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा का खोजी धीरे-धीरे दूसरे गेस्टाल्ट को देखना शुरू करता है। जब भी वह कोई चीज देखता है, तो दृष्टि चीज पर नहीं रखता, उस चीज के भीतर छिपे हुए प्राण पर रखता है। जब वह वृक्ष के पास खड़ा होता है, तो वृक्ष की पदार्थ-रेखाओं को नहीं देखता, वृक्ष के भीतर जो लपट की तरह उठता हुआ जीवन है आकाश की ओर, उसको देखता है।
विनसेंट वानगाग ने वृक्षों के शायद पृथ्वी पर सर्वाधिक सुंदर चित्र चित्रित किए हैं। लेकिन उसके वृक्षों को समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि उसके वृक्ष जमीन से उठते हैं और ठेठ आकाश को पार करते चले जाते हैं, चांद-तारे नीचे रह जाते हैं और वृक्ष ऊपर निकल जाते हैं!
वानगाग को उसके मित्रों ने पूछा कि तुम पागल तो नहीं हो गए हो! कभी वृक्ष देखे हैं? ये चांद-तारे नीचे पड़ गए और वृक्ष ऊपर चले जा रहे हैं? ये जमीन से लेकर आकाश को छेद रहे हैं? कभी वृक्ष देखे हैं? वानगाग ने कहा, तुमने जो वृक्ष देखे हैं, वे शायद मैंने नहीं देखे होंगे। मैंने जो वृक्ष देखे हैं, वे शायद तुमने नहीं देखे हैं। उन्होंने कहा, मतलब तुम्हारा!
तो वानगाग कहता था, जब भी मैं किसी वृक्ष को देखता हूं, तो थोड़ी ही देर में उसके पत्ते खो जाते, उसकी शाखाएं खो जातीं, उसकी जड़ें खो जातीं, उसकी देह खो जाती। फिर तो मुझे पीछे ऐसा ही लगता है कि वृक्ष पृथ्वी की फैली हुई आकांक्षाएं हैं आकाश को छूने की। पृथ्वी की आकांक्षाएं, आकाश को छूने की। वृक्ष की रूपरेखा मुझे खो जाती और पृथ्वी की आकांक्षाएं मुझे वृक्षों में लपट की तरह, हरी लपटों की तरह--ग्रीन फ्लेम्स--आकाश की तरफ भागती मालूम

पड़ने लगती हैं। पृथ्वी कोशिश कर रही है आकाश से आलिंगन का, ऐसा ही मुझे दिखाई पड़ा है।
लेकिन ऐसा जिसे दिखाई पड़ेगा, उसे फिर वृक्ष के पत्ते वगैरह दिखाई नहीं पड़ेंगे। और जिसे वृक्ष के पत्ते वगैरह दिखाई पड़ेंगे, उसे वृक्षों के भीतर यह जो प्राण की ऊर्जा है भागती हुई, यह दिखाई नहीं पड़ेगी। जिसको फूल में केवल केमिकल्स दिखाई पड़ेंगे, उसे सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ेगा; और जिसे सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, उसे केमिकल्स का कोई पता नहीं होगा। गेस्टाल्ट का भेद है।
कृष्ण कहते हैं, यह जगत, इसका सब कुछ परमात्मा से परिपूर्ण है, उसी से भरा हुआ है।
हम चारों तरफ देखते हैं, वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता। हमारा गेस्टाल्ट गलत है। या हमारा गेस्टाल्ट संसार को देखने वाला है। हमें अपना गेस्टाल्ट बदलना पड़ेगा।
इस गेस्टाल्ट की बदलाहट की प्रक्रिया का नाम योग है। इस गेस्टाल्ट की बदलाहट की प्रक्रिया का नाम धर्म है। इस गेस्टाल्ट को बदलने की चेष्टा ही साधना है।
तब जगत में पदार्थ नहीं दिखाई पड़ता, परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। एक क्षण ऐसा आता है कि जगत में उसके अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, वही शेष रह जाता है। सब रेखाएं उसी में लीन हो जाती हैं। और सब नदियां पदार्थ की उसी के सागर में डूब जाती हैं और मिल जाती हैं।
वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्ति से प्राप्त होने योग्य है।
और यह जो परम सत्ता व्याप्त है सब जगह, यह अनन्य भक्ति से प्राप्त हो जाती है। ये दो शब्द आखिर में समझ लें।
अनन्य भक्ति, ऐसी भक्ति जो संपूर्ण रूप से, समग्र रूप से, एक निष्ठा से परमात्मा की तरफ हो। एक निष्ठा से परमात्मा की तरफ हो। निष्ठा जरा भी यहां-वहां खंडित न होती हो, भागती न हो। बंटी हुई निष्ठा उस तक नहीं पहुंचा पाएगी। बंटी हुई निष्ठा संसार के गेस्टाल्ट में ले जाती है। एक निष्ठा संसार के गेस्टाल्ट से ऊपर उठाती है। उसके कारण हैं।
संसार का अर्थ है, बहुत वस्तुएं, अनेक। अगर अनेक के बीच जीना है, तो आपके भीतर अनेक आकांक्षाएं और अनेक निष्ठाएं होनी चाहिए। परमात्मा का अर्थ है, एक। अगर एक को पाना है, तो एक निष्ठा, एक आकांक्षा, एक अभीप्सा होनी चाहिए। एक को पाना हो, तो आपको भी एक होना चाहिए। अनेक को पाना हो, तो आप अनेक में विभाजित होकर जी सकते हैं।
चूंकि हम संसार को पाने में लगे हैं, इसलिए हमारे एक-एक आदमी के भीतर अनेक-अनेक आदमी होते हैं। सच तो यह है, हममें से कोई भी एक नहीं होता। क्राउड, एक भीड़ होती है हर आदमी के भीतर। आप भी पहचान सकते हैं कि आपके भीतर बहुत चेहरे होते हैं, बहुत आदमी होते हैं आपके भीतर। मनोविज्ञान कहता है, आदमी मल्टी-साइकिक है, बहु-चित्तवान है। उसके भीतर बहुत चित्त हैं। और एक चेहरा दूसरे चेहरे से भी अपरिचित बना रहता है। परिचय का मौका ही नहीं आता।
मुल्ला नसरुद्दीन एक नाव में यात्रा कर रहा है और नाव डूब जाती है। शिष्ट आदमी है, सज्जन आदमी है, नियम का पालन करता है। नाव डूब जाती है, अनेक यात्री मर जाते हैं, कुछ किनारों की तरफ तैरकर निकलने की कोशिश करते हैं। मुल्ला को एक लकड़ी का पटिया मिल जाता है, एक और यात्री को भी मिल जाता है। एक दिनभर बीत गया, दोनों पटिए पर सहारा लिए चल रहे हैं, लेकिन अभी कोई बातचीत नहीं हुई। बड़ी कठिनाई है, कठिनाई यह है कि दोनों सज्जन आदमी हैं और उनका पहले किसी ने परिचय कराया नहीं और अब कोई परिचय कराने वाला नहीं। वे दोनों ही हैं। लकड़ी के पटिए को पकड़े हैं और किसी ने परिचय कराया नहीं, तो बिना परिचय कराए किसी से बोलना!
आखिर दूसरे आदमी के बरदाश्त के बाहर हो जाती है सज्जनता। कभी-कभी सज्जनता बड़ी बरदाश्त के बाहर हो जाती है। आखिर वह कहता है कि महाशय, हद्द हो गई! औपचारिकता की भी हद्द हो गई। आप बोल क्यों नहीं रहे हैं? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं कि जो अशिष्ट हो, वह पहले बोले। अब तुम

बोल चुके, अब कोई अड़चन नहीं है। मैं कभी नहीं बोलता उस आदमी से, जिससे मेरा पहले परिचय न करवाया गया हो। और मेरा किसी ने तुमसे परिचय नहीं करवाया। आपके भीतर इतने चेहरे हैं जिनके साथ ही आप तैर रहे हैं, सागर में डूब रहे हैं, लेकिन आपका कोई परिचय नहीं है। क्योंकि आपके खुद के चेहरों से कोई दूसरा तो आपका परिचय करवाएगा नहीं, आपको ही परिचय करना पड़ेगा। आप शिष्ट आदमी हैं, कैसे परिचय करें! और आपके चेहरे को दूसरा परिचय करवाएगा कैसे? और अगर कोई करवाने की कोशिश करे, तो आप नाराज भी हो जाते हैं। अगर कोई आपको बताए कि देखो, सुबह तुम्हारा दूसरा चेहरा था, अब तुम दूसरा चेहरा लिए हो, तो आप एकदम नाराज हो जाते हैं। और आप कभी अपने आत्म-परिचय में लगते नहीं हैं, नहीं तो पाएंगे कि भीतर एक भीड़ है।
इस भीड़ का कारण क्या है? इस भीड़ का एक ही कारण है, क्योंकि आप बहुत-सी चीजों को पाना चाहते हैं। बहुत-सी चीजों को पाने के लिए आपको बहुत-से हिस्से, अपने खंड-खंड करने पड़ते हैं। आप उस आदमी की तरह हैं, जो चौराहे पर खड़ा है और चारों रास्तों पर एक साथ जाना चाहता है! तो थोड़ा हिस्सा इस रास्ते पर चला जाता है, थोड़ा हिस्सा उस रास्ते पर चला जाता है, थोड़ा हिस्सा और रास्ते पर चला जाता है। आपके सब हिस्से अलग-अलग यात्राओं पर निकल जाते हैं। फिर शायद मुश्किल ही हो जाता है उनको इकट्ठा करना और एक जगह लाना। परमात्मा को पाना हो, तो अनन्य भक्ति से ही वह प्राप्त करने योग्य है। अनन्य का अर्थ है, इंटीग्रेटेड; आपके भीतर आप इतने एक हो जाएं कि आप जिस तरफ आंख उठाएं, आपके पूरे प्राणों की आंख उस तरफ उठ जाए।
अभी ऐसा नहीं होता। अभी आदमी मंदिर में पूजा के लिए भी सिर नीचे रखता
है, तो एक आंख परमात्मा की तरफ लगी रहती है कि प्रार्थना सुनी या नहीं! दूसरी आंख पीछे देखती रहती है कि लोग कोई देख रहे हैं कि नहीं कि मैं कितनी प्रार्थना कर रहा हूं, कैसा धार्मिक आदमी हूं!
मुल्ला नसरुद्दीन गिर पड़ा है। एक धूप से भरी हुई दोपहर है। सड़क पर गिर पड़ा है। बड़ी भीड़ लग गई। दोनों आंखें उसकी बंद हैं। बेहोश हालत है। कोई कहता है, इसको जूता सुंघा दो, इसे होश आ जाएगा। कोई कहता है, सिर पर मालिश करो। कोई कहता है, पानी छिड़को। एक लड़की चिल्लाए चली जा रही है कि इससे कुछ भी न होगा, एक पावभर दूध में आधा पाव जलेबी डालकर इसे खिला दो।
मुल्ला पहले तो थोड़ी देर तक यह सब आयोजन सुनता रहा। फिर एक आदमी जूता निकालकर ही आ गया। तब उसने एक आंख खोली, उसने कहा, हटाओ भी, सब अपनी बकवास में लगे हैं, कोई उस बेचारी लड़की की भी तो सुनो। हम इधर बेहोशी में मरे जा रहे हैं और तुम अपना जूता सुंघा रहे हो! एक आंख खोलकर उसने कहा कि उस बेचारी लड़की की भी कोई सुनो!
बेहोश भी अगर हम होते हैं, तो आधा ही हिस्सा बेहोश है, आधा उस वक्त भी हिसाब लगा रहा है कि कोई जूता तो नहीं सुंघा रहा है! कोई क्या कर रहा है! नींद में भी हम बिल्कुल सोए हुए नहीं हैं। नींद में भी कान हमारे सजग हैं। सुन रहे हैं, जान रहे हैं कि कहां क्या हो रहा है; आस-पास क्या चल रहा है! खंडित है सब, बंटा हुआ है सब। इस बंटी हुई स्थिति को लेकर कोई प्रभु की तरफ नहीं जा सकता। इसलिए शर्त है, अनन्य। और भक्ति का अर्थ है, प्रेम। और प्रेम अनन्य ही हो सकता है। उसकी धारा एक ही हो सकती है। प्रेम में बंटाव नहीं है, प्रेम में कटाव भी नहीं है। प्रेम खंड-खंड चित्त से हो भी नहीं सकता; अखंड चित्त हो, तो ही हो सकता है। अखंड प्रेम के द्वारा यह परम सत्ता पाने योग्य है।
पाने योग्य है दो अर्थों में। एक तो इस अर्थ में कि इतनी मेहनत उठानी पड़े--कितनी ही मेहनत उठानी पड़े स्वयं को एक करने की, तो भी वह कोई मूल्य नहीं है। वह चुका देने जैसा है। और मुफ्त है, क्योंकि जो मिलता है, उसका कोई मूल्य नहीं आंका जा सकता है। इसलिए अनन्य भक्ति से पाने योग्य है। एक। और दूसरा कि यही पाने योग्य है, और कुछ इस जीवन में, अस्तित्व में पाने योग्य नहीं है। यह परम धाम ही पाने योग्य है। और इस परम धाम को जब तक हम न पा लें, तब तक हम ऐसी चीजों को पाते चले जाएंगे, जिन्हें न पाया होता तो कुछ हर्ज न था, और पा लिया तो कुछ पाया नहीं।

लेकिन आदमी खाली नहीं बैठ सकता। आदमी कुछ तो पाता ही रहेगा। कुछ तो करता ही रहेगा। यह मकान बनाएगा, और बड़ा मकान बनाएगा। यह दुकान खोलेगा, और बड़ी दुकान खोलेगा। कुछ न कुछ करता ही रहेगा। और सब कुछ करके भी पाएगा कि कुछ पाया नहीं, तो फिर कुछ और करने में लग जाएगा।
हमारी जिंदगी का तर्क ऐसा है कि अगर एक मकान मैं बना लूं और सुख न मिले, तो मैं सोचता हूं, इतने छोटे-से मकान से कहां सुख मिलेगा! थोड़ा बड़ा मकान बनाना चाहिए। वह उतना बड़ा बना लूं, फिर भी मेरा तर्क कहेगा, इतने से नहीं मिला, साफ जाहिर होता है कि थोड़ा और बड़ा मकान चाहिए। इसी तरह मैं दौड़ता रहूंगा। कभी भी यह ख्याल नहीं आता कि जब छोटे मकान में कम से कम थोड़ा तो सुख मिलना चाहिए था, तो बड़े में थोड़ा और ज्यादा मिल जाता! थोड़े में थोड़ा भी नहीं मिला, छोटे में छोटा सुख भी नहीं मिला, तो बड़े में भी नहीं मिल सकता है। मैं कहीं कुछ गलत काम में लगा हूं। मैं सिर्फ आकुपाइड हूं, मैं सिर्फ व्यस्त होने की कोशिश में लगा हूं। खालीपन घबड़ाता है, तो भरता रहता हूं-- कभी धन से, कभी यश से, कभी पद से--कुछ न कुछ, कुछ न कुछ काम से अपने को भरता रहता हूं।
लेकिन कितना भी भरूं अपने को, कितने ही कामों से, खाली ही रह जाऊंगा। सिवाय परमात्मा के और कोई चीज वस्तुतः किसी को भर नहीं सकती। उस भराव के साथ ही फुलफिलमेंट है, उस भराव के साथ ही भराव है। उसके पहले हर आदमी खाली है।
इसलिए पश्चिम में इधर पचास वर्षों में--और पश्चिम का प्रभाव तो सारे पूरब पर भी छा गया है--पचास वर्षों में जितने जीवन-दर्शन पैदा हुए हैं, वे सभी जीवन-दर्शन एक बात पर खड़े हैं कि आदमी की जिंदगी में भराव नहीं है, खाली है, एंप्टी है, रिक्त है। इनकी रिक्तता का कारण है, क्योंकि पिछले पचास वर्षों में पश्चिम और पश्चिमी विचारधारा के प्रभावी लोगों ने परमात्मा को इस तरह इनकार किया है, जैसा इनकार इसके पहले मनुष्य के इतिहास में कभी भी नहीं हुआ।
जितना हम परमात्मा को इनकार करेंगे, उतना ही हम एंप्टी और खाली अपने
को अनुभव करेंगे। और फिर उस खालीपन को न एटम से भर सकते हो, न हाइड्रोजन बम से भर सकते हो। उस खालीपन को, बड़ी से बड़ी युनिवर्सिटियां खड़ी करो, नहीं भर पाओगे। उस खालीपन को, बड़े महल खड़े करो, सौ डेढ़ सौ मंजिल ऊंचे, आकाश को छूने लगें, वह खालीपन बिल्कुल नहीं छुआ जाएगा। वह खालीपन किसी और चीज से कभी भरता ही नहीं। वह सिर्फ एक से ही भरता है, जिससे वह पहले से ही भरा हुआ है। उसको ही जान लेने से भरापन उपलब्ध होता है।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट जाएंगे नहीं। पांच मिनट अपनी जगह पर ही बैठे रहें।
अगर आप अपनी जगह पर बैठे रहें, तो मैं संन्यासियों को खड़े होकर कीर्तन करने की आज्ञा दूं। आप बैठे रहें, उनको खड़े होकर कीर्तन कर लेने दें। आप वहीं अपनी जगह पर बैठे रहें।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
नौवां प्रवचन

जीवन ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन--उत्तरायण पथ

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।। 23।।
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः शण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।। 24।।
और हे अर्जुन, जिस काल में शरीर त्यागकर गए हुए योगीजन, पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं, उस काल को अर्थात मार्ग को कहूंगा।
उन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में अग्नि है, ज्योति है, और दिन है, तथा शुक्ल पक्ष है और उत्तरायण के छः माह हैं, उस मार्ग में मरकर गए हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

कोई ऐसे भी जी सकता है जैसे मरा हुआ रहा हो, और कोई ऐसे भी मर सकता है
कि उसकी मृत्यु को हम जीवंत कहें। जीवन भी मृतवत हो सकता है, और मृत्यु भी अति जीवंत।
जिस भांति हम जीते हैं, उसे जीवन नाम-मात्र को ही कहा जा सकता है। न तो जीवन का हमें कोई पता है; न जीवन के रहस्य का द्वार खुलता है; न जीवन के आनंद की वर्षा होती है; न हम यही जान पाते हैं कि हम क्यों जी रहे हैं, किसलिए जी रहे हैं। हमारा होना करीब-करीब न होने के बराबर होता है। कहना उचित नहीं कि हम जीते हैं, यही कहना काफी है कि हम किसी भांति बने रहते हैं, किसी भांति अस्तित्व को ढो लेते हैं, जीवित रहते हुए भी मुर्दे की भांति। लेकिन ऐसा भी होता है कि मरते क्षण में भी कोई इतना जीवंत होता है कि उसकी मृत्यु को भी हम मृत्यु नहीं कहते।
बुद्ध की मृत्यु को हम मृत्यु नहीं कह सकते हैं और हमारे जीवन को हम जीवन नहीं कह पाते हैं। कृष्ण की मृत्यु को मृत्यु कहना भूल होगी। उनकी मृत्यु को हम मुक्ति कहते हैं। उनकी मृत्यु को निर्वाण कहते हैं। उनकी मृत्यु को हम जीवन से और महाजीवन में प्रवेश कहते हैं।
उनकी मृत्यु के क्षण में कौन-सी क्रांति घटित होती है, जो हमारे जीवन
के क्षण में भी घटित नहीं हो पाती! किस मार्ग से वे मरते हैं कि परम जीवन को पाते हैं! और किस मार्ग से हम जीते हैं कि जीवित रहते हुए भी हमें कोई जीवन की सुगंध का भी पता नहीं पड़ता है।
जिसे हम अपना शरीर कहें, वह हमारे लिए एक कब्र से ज्यादा नहीं है, एक चलती-फिरती कब्र! और यह लंबा विस्तार जन्म से लेकर मृत्यु तक, बस आहिस्ता- आहिस्ता मरते जाने का ही काम करता है। ऐसे हम गुजरते हैं रोज-रोज और मौत के करीब पहुंचते हैं। हमारी सारी यात्रा मरघट पर पूरी हो जाती है।
लेकिन बुद्ध भी मरते हैं, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी, मोहम्मद भी, और उनकी मृत्यु के लिए हमें दूसरा शब्द खोजना पड़ता है। उनके जीवन के लिए भी हमें दूसरा शब्द खोजना पड़ता है। वे कुछ और ढंग से जीते हैं और वे कुछ और ढंग से मरते हैं। जीने का सब कुछ निर्भर है जीने के ढंग पर, और मरने का भी सब कुछ निर्भर है मरने के ढंग पर। हमें जीने का ढंग भी नहीं आता। बुद्ध जैसे व्यक्ति को मरने का ढंग भी आता है।
कृष्ण अर्जुन से उस क्षण, उस मार्ग, मृत्यु की उस कला की बात इन सूत्रों में करेंगे, जिस कला को जानने वाला, जिस मार्ग को पहचानने वाला, मरकर मरता नहीं, अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
कृष्ण ने कहा है, और हे अर्जुन, जिस काल में शरीर त्यागकर गए हुए योगीजन, पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं, उस काल को, उस मार्ग को मैं तुमसे कहूंगा।
इसमें दो-तीन बातें ठीक से समझ लेनी चाहिए।
जिस काल में, जिस क्षण में!

बड़ा मूल्य है क्षण का, बड़ा मूल्य है काल का, जिस क्षण में कोई व्यक्ति मृत्यु को उपलब्ध होता है। निश्चित ही, क्षण से अर्थ, बाहर की घड़ी में घूमते हुए कांटे से जो नापा जाता है, उस क्षण से नहीं है। लेकिन भीतर भी एक घड़ी है, और भीतर भी क्षणों का एक हिसाब है। एक तो बाहर नापने की हमने यांत्रिक व्यवस्था की है समय को। वह बाहर के कामों के लिए जरूरी है, भीतर के कामों के लिए नहीं। भीतर एक और भी माप है। और उस माप में, जिस क्षण में व्यक्ति की मृत्यु होती है--भीतरी माप के जिस क्षण में, भीतरी घड़ी के जिस क्षण में--बहुत कुछ निर्भर होता है।
क्योंकि इस जगत में आकस्मिक कुछ भी नहीं है, मृत्यु भी आकस्मिक नहीं है। मृत्यु भी बहुत सुव्यवस्थित है। और मृत्यु भी बहुत कारणों से सुनिश्चित है। और हर आदमी हर कभी नहीं मरता; हर आदमी अपनी मृत्यु चुनता है; दैट इ.ज ए च्वाइस; जिसे हम जिंदगीभर निर्मित करते हैं। और मृत्यु को देखकर कहा जा सकता है कि व्यक्ति कैसे जीया। भीतर, मृत्यु का क्षण निर्णायक है। यदि भीतर की घड़ी, भीतर का समय विचार से भरा हो, वासना से भरा हो, कामना
से भरा हो, तो व्यक्ति मरकर वापस लौट आता है। लेकिन भीतर का समय यदि बिल्कुल शुद्ध हो, सिर्फ समय हो, कोई विचार नहीं, कोई कामना नहीं, कोई तृष्णा का सूत्र नहीं, शुद्ध क्षण हो समय का, जैसे निश्छल पानी हो, जरा भी कुछ और अशुद्धि उसमें न हो, सिर्फ समय हो, तो उस क्षण में मरा हुआ व्यक्ति संसार में लौटकर नहीं आता।
इस संबंध में कहना चाहूंगा, महावीर ने ध्यान के लिए जो नाम दिया है, वह
है सामायिक। यह शब्द बहुत अदभुत है। यह समय से बना हुआ शब्द है। महावीर ने कहा है कि ध्यान मैं उसी को कहता हूं, जब तुम्हारे भीतर का समय बिल्कुल शुद्ध हो। इसलिए उन्होंने ध्यान का उपयोग ही नहीं किया। ध्यान की जगह उन्होंने सामायिक शब्द का उपयोग किया है।
शुद्ध समय में ठहर जाना ध्यान है।
हमारा समय, भीतर जो हमारा समय है, वह सदा ही वासना से भरा है। थोड़ा भीतर का स्मरण करें, तो ख्याल में आ जाएगा। आपने अपने भीतर वर्तमान के क्षण को कभी भी नहीं जाना होगा। भीतर या तो आप अतीत को जानते हैं, बीत गए को, जिसकी स्मृति आपका पीछा करती है छाया की भांति। जो हो चुका, उसकी जुगाली करते रहते हैं, जैसे जानवर जुगाली करते हैं। भैंस रख लेती है भोजन बहुत-सा अपने पेट में और फिर उसे निकालकर चबाती रहती है। जो बीत गया, उसकी जुगाली चलती है मन के भीतर। सोचते रहते हैं बार-बार उसको, जो हो चुका।
जो हो चुका, उसे सोचना नासमझी है। उससे अपने वर्तमान क्षण को व्यर्थ
ही आप नष्ट किए दे रहे हैं। जो जा चुका वह जा चुका, अब वह कहीं भी नहीं है, लेकिन आपकी स्मृति में है। और आपकी स्मृति जुगाली करती है और वर्तमान में जो क्षण है अभी, समय जो है भीतर, उसे भर देती है। वह जो प्रेजेंट मोमेंट है, अभी इसी समय जो मौजूद क्षण है, उसे अतीत ढांक लेता है। और जब कोई वर्तमान का क्षण अतीत से ढंक जाता है, तो नष्ट हो जाता है। आप उससे अपरिचित ही गुजर जाते हैं।
या तो यह होता है और या फिर यह होता है कि वर्तमान का क्षण भविष्य की वासना से आच्छादित होता है। सोचते हैं उसके संबंध में, जो अभी नहीं है, होगा। आने वाला कल, भविष्य। क्या करना है, क्या नहीं करना है। क्या पाना है, क्या नहीं पाना है। कौन-सी दौड़ लेनी है, कौन-सी मंजिल बनानी है।
या तो अतीत डुबा देता है क्षण को, वर्तमान को, या भविष्य डुबा देता है। दोनों हालत में भीतर का समय खो जाता है। दोनों हालत में वह काल-क्षण खो जाता है, जो कि वस्तुतः था और वे चीजें आच्छादित हो जाती हैं। दोनों नहीं हैं; बीता हुआ कल भी नहीं है, आने वाला कल भी नहीं है। जो नहीं है, वह उसे घेर लेता है, जो है। यही मरे हुए जिंदा आदमी का लक्षण है।
इसीलिए हम जीते हैं बुझे-बुझे, मरे-मरे। क्योंकि जो नहीं है, वह हमारे ऊपर भारी है; और जो है, उसका कहीं पता भी नहीं चलता।
क्या कभी आपने मन में ऐसा टाइम-मोमेंट, ऐसा काल-क्षण जाना है, जब अतीत
भी न हो, भविष्य भी न हो, और आप अभी हों, यहीं, अभी और यहीं, जस्ट हियर एंड नाउ। उस क्षण में यदि मृत्यु हो जाए, तो लौटकर आना नहीं होता।

लेकिन जो उस क्षण में जीया ही नहीं, वह मरेगा कैसे? जिसने जीवन में कभी
उस क्षण को जाना ही नहीं, वह मरते वक्त नहीं जान लेगा अचानक। अचानक उसका अवतरण नहीं होता। जिसका जीवनभर भरा हुआ रहा है कचरे से, मरते क्षण में वह सारा कचरा इकट्ठा होकर उसके चित्त को घेर लेता है।
ध्यान रहे, जीते जी तो कुछ अतीत याद आता है, कुछ भविष्य। मरते क्षण पूरा अतीत और पूरे भविष्य की कल्पनाएं इकट्ठी खड़ी हो जाती हैं।
जिन लोगों को कभी पानी में डूबने का ख्याल हो, कि ऐसी घड़ी आ गई हो कि मरने के करीब पहुंच गए, तो शायद उन्हें पता हो। बहुत-से डूबने वाले लोगों ने, जो बच गए, वक्तव्य दिए हैं। और वे वक्तव्य ये हैं कि डूबते क्षण में पानी में, जब कि लगता है कि मौत आ गई, तो एक क्षण में सारा जीवन फिल्म की भांति आंख के सामने से गुजर जाता है। एक क्षण में जैसे पूरी की पूरी जीवन की फिल्म एकबारगी आंख के सामने गुजर जाती है।
मरते वक्त सभी को ऐसा होता है। सारा अतीत आंख के सामने गिर जाता है; और सारे भविष्य के भय, वासनाएं, स्वप्न, वे भी सब इकट्ठे हो जाते हैं। मृत्यु का क्षण बड़ी भीड़ का क्षण है; टू मच क्राउडेड।
इसलिए मृत्यु में आपको अपना तो पता ही नहीं चलता। भीड़ इतनी ज्यादा होती है कि पता लगाना ही मुश्किल होता है कि मैं कौन हूं। जो मर रहा है, उसका तो पता ही नहीं चलता। लेकिन पीछे और आगे हम डोलते रहते हैं।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की शादी को तीस वर्ष हो गए हैं। और उसकी पत्नी ने एक दिन सुबह उठकर कहा कि मुल्ला याद है, आज तीस वर्ष पूरे होते हैं, आज हमारी विवाह की वर्षगांठ है, कैसे मनाएं? क्या इरादा है तुम्हारा? क्या अच्छा न हो, जो मुर्गा हम छः महीने से पाल रहे हैं, आज उसे काट लिया जाए? नसरुद्दीन ने कहा, तीस साल पहले घटी हुई दुर्घटना के लिए मुर्गे को दंड देना कहां तक उचित है! फिर मुर्गे का उसमें कोई हाथ भी नहीं है।
लेकिन तीस वर्ष क्या, तीस जन्म पहले घटी हुई घटना और दुर्घटना भी हमें घेरे रहती है। हम उसी के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। और जितना हम पीछे घूमते रहते हैं, उतना ही हम आगे की योजनाओं में डूबे रहते हैं। जितना होगा अनुपात अतीत का, उतना ही अनुपात सदा होता है भविष्य का। जितनी जड़ें आदमी की अतीत स्मृति में होती हैं, उतनी ही शाखाएं उसी अनुपात में, ठीक उसी अनुपात में भविष्य में फैल जाती हैं। और बीच का जो क्षण है--बहुत छोटा, बहुत छोटा, अति अल्प, आणविक--वह खो जाता है इस बीच।
जिस काल-क्षण की कृष्ण बात कर रहे हैं, उस काल-क्षण को ठीक से समझ लें।
उस समय न अतीत हो, न भविष्य; रह जाए शुद्ध वर्तमान--परिपूर्ण निश्छल, परिपूर्ण निर्दोष, इनोसेंट, अनबर्डन, निर्बोझ, निर्भार--तो उस क्षण में जो मृत्यु होती है, उसका रूप मृत्यु का नहीं, परम जीवन के अनुभव का है। वह मोक्ष, मुक्ति बन जाती है।
मृत्यु हम तब तक कहते हैं अंत को, जब तक वापस लौटना जारी रहता है। मृत्यु उस क्षण मुक्ति बन जाती है, मोक्ष, जिस क्षण वापस लौटने का उपाय नहीं रह जाता।
वापस लौटता है आदमी मन से। मन ही धागा है जिससे हम वापस लौटते हैं। और
मन है अतीत और भविष्य का जोड़। अतीत धन भविष्य = मन।
वर्तमान का क्षण मन का हिस्सा नहीं है, नाट ए पार्ट आफ दि माइंड, वर्तमान मन का हिस्सा नहीं है। इसलिए जो वर्तमान में प्रवेश कर जाता है, वह मन के बाहर हो जाता है। जो अतीत और भविष्य में रहता है, वह मन में रहता है।
अब एक बहुत मजे की बात आपसे कहूं, जो कि आपको एकदम से समझ में शायद न भी पड़े, लेकिन थोड़ा समझेंगे, तो समझ में पड़ सकती है।
हम सदा कहते हैं कि समय के तीन हिस्से हैं, अतीत, वर्तमान, भविष्य; पास्ट, प्रेजेंट, फ्यूचर। इसमें भूल है। प्रेजेंट जो है, प्रेजेंट इ.ज नाट ए पार्ट आफ टाइम एट आल। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। समय तो केवल अतीत और भविष्य है। वर्तमान समय के बाहर है। जहां अतीत समाप्त होता है और जहां अभी भविष्य शुरू नहीं होता, उस बीच की संधि-रेखा में वर्तमान है। वर्तमान

समय का हिस्सा नहीं है। कामचलाऊ है बातचीत कि वर्तमान समय का हिस्सा है। वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। वर्तमान अस्तित्व है।
और जो समय का हिस्सा नहीं है, वह मन का भी हिस्सा नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो जिसे हम बाहर के जगत में समय कहते हैं, टाइम कहते हैं, वही भीतर के जगत में मन, माइंड है। इसे ऐसा समझ लें कि जिस घटना को हम बाहर के जगत में समय कहते हैं, उसी घटना का भीतरी नाम मन है। टाइम एंड माइंड आर रियली सिनानिम्स, वे बिल्कुल पर्याय हैं; उनमें कोई भेद नहीं है।
इसलिए जिसे मन के बाहर जाना हो, वह समय के बाहर चला जाए, तो मन के बाहर पहुंच जाता है। जिसे समय के बाहर जाना हो, वह मन के पार चला जाए, तो समय के बाहर पहुंच जाता है। ये दोनों एक ही चीज के दो छोर हैं। बाहर समय की तरह पहचाना जाता है जो, भीतर वही मन है।
वर्तमान न तो समय का हिस्सा है और न मन का। वर्तमान अस्तित्व है।
इसे ऐसा समझें कि अस्तित्व में न कुछ अतीत है और न कुछ भविष्य, अस्तित्व सदा है। अस्तित्व में न कुछ अतीत है और न कुछ भविष्य, अस्तित्व तो सदा है। ऐसा समझें कि आदमी चला जाए जमीन से, तो क्या जमीन पर कोई पास्ट, कोई अतीत होगा? आदमी न हो जमीन पर, अर्थात मन न हो जमीन पर, तो क्या कोई भविष्य होगा?
चांद तो फिर भी निकलेगा, लेकिन चांद कल भी निकला था, इसकी स्मृति चांद
को नहीं है। फूल फिर भी खिलेंगे, लेकिन फूल पहले भी खिले थे, इसका कोई हिसाब फूल नहीं रखते। पक्षी फिर भी गीत गाएंगे, लेकिन यह गीत कल भी गाया गया था, इसका पक्षियों के पास कोई लेखा-जोखा नहीं है। और चांद कल भी निकलेगा, इसकी कोई योजना चांद के पास नहीं है। और फूल कल भी खिलेंगे, उस कल का, उस खिलने का, फूलों को कोई स्वप्न भी नहीं आता है।
मन हट जाए... ध्यान रहे, इसीलिए हमने आदमी को--शायद जमीन पर अकेला भारत है, जिसने ठीक-ठीक नाम दिया है--मनुष्य। मनुष्य का मतलब है, जिसके पास मन है। और मन का अर्थ है कि जिसके पास अतीत का लेखा-जोखा और भविष्य की योजना और कल्पना है। मनुष्य न हो, मन न हो, तो सब कुछ होगा, समय नहीं होगा। देअर शैल बी टाइम नो लांगर; आदमी भर न हो, तो समय नहीं होगा।
समय आदमी के मन के साथ पैदा हुई वस्तु है। आदमी के हटते ही समय खो जाता है। यदि भीतर आप किसी ऐसी स्थिति को खोज लें, जब न अतीत है, न भविष्य, तो वहां कोई विचार भी नहीं हो सकता। क्योंकि विचार या तो अतीत के होते हैं, या भविष्य के। वहां कोई तृष्णा नहीं हो सकती, क्योंकि तृष्णा अतीत से जन्मती है और भविष्य की तरफ दौड़ती है। वहां कोई वासना नहीं हो सकती। वहां होंगे सिर्फ आप, सिर्फ आपका अस्तित्व, सिर्फ होना मात्र, जस्ट बीइंग। उस क्षण में जो मृत्यु घटित हो, तो लौटकर आना नहीं है। मृत्यु मुक्ति बन जाती है। और जिन लोगों ने मृत्यु को परम मित्र कहा है, तो आपकी मृत्यु को नहीं कहा है। जिन्होंने कहा है कि मृत्यु परम सौभाग्य है, तो आपकी मृत्यु को उन्होंने परम सौभाग्य नहीं कहा है। उस भूल में मत पड़ना। उन्होंने इस मृत्यु की बात कही है। जो मृत्यु मित्र है, वह ऐसी मृत्यु है, जो मुक्ति बन जाती है।
लेकिन काल-क्षण बहुमूल्य है। यदि भीतर ऐसा न हो, तो फिर आप नई यात्रा
पर प्रारंभ कर देते हैं। अतीत को समेटे हुए, भविष्य का स्वप्न देखते हुए ही पुनर्जन्म होता है। अतीत को समेटे हुए, भविष्य की कामना करते हुए ही फिर नया गर्भ धारण हो जाता है।
लौटकर आना हो, तो भरा हुआ मन चाहिए। लौटकर न आना हो, तो रिक्त, खाली, शून्य मन चाहिए। शून्य मन का अर्थ है, अ-मन। जिसको कबीर ने अ-मनी अवस्था कहा है और जापान के झेन फकीर जिसे स्टेट आफ नो-मांइड कहते हैं, उसी की चर्चा कृष्ण कर रहे हैं।
लेकिन मृत्यु के समय--आकस्मिक, अचानक द्वार पर आ गई मृत्यु--उस क्षण आप कैसे सम्हाल पाएंगे अपने को, यदि जीवन में प्रतिपल न सम्हाला हो! तो जो ठीक से नहीं जीया, वह ठीक से मर नहीं सकेगा। गलत जीने का अंतिम परिणाम गलत मृत्यु होगी। और गलत मृत्यु का अर्थ होता है कि फिर गलत जीवन का प्रारंभ।
आपने फिर बीज बो दिए।

जीवन में ही सम्हालना पड़े। जीते-जी ही सम्हालना पड़े। और यह आप तभी सम्हाल सकते हैं, जब आपको ख्याल हो कि जीवन के किसी भी क्षण में मृत्यु घटित हो सकती है; अभी और यहीं घटित हो सकती है। इसलिए जो कहता है, कल सम्हाल लेंगे, वह कभी भी नहीं सम्हाल पाता है। जो कहता है, अभी और यहीं, वही सम्हाल पाता है।
एक झेन फकीर हुआ लिंची। अपने गुरु के पास जब वह गया था, तो उसके गुरु
ने कहा, किसलिए आया है? तो लिंची ने कहा कि मैं संन्यासी होना चाहता हूं। उसके गुरु ने कहा, होना चाहता है या अभी होने को तैयार है? उसके गुरु ने कहा, संन्यास का भविष्य से कोई भी संबंध नहीं है; संसार का भविष्य से संबंध है।
कोई आदमी कहे, एक दुकान चलाना चाहता हूं, तो भविष्य की जरूरत पड़ेगी। दुकान एक फैलाव है, समय में। कोई आदमी कहे, धन कमाना चाहता हूं, तो आज इसी क्षण नहीं कमा सकता है। धन के लिए आयोजना करनी पड़ेगी, पंचवर्षीय, पचास वर्षीय योजनाएं बनानी पड़ेंगी। प्लानिंग करनी पड़ेगी। फिर भी मिलेगा, नहीं मिलेगा, नहीं कहा जा सकता। क्योंकि धन पर मेरा वश नहीं है। और बहुतों का वश भी है। और मैं अकेला ही धन कमाने नहीं चल पड़ा हूं। यह सारी पृथ्वी धन कमाने चल पड़ी है। भारी प्रतिस्पर्धा है। सिर्फ धर्म को छोड़कर सभी चीजों में भारी प्रतिस्पर्धा है। धन कमाना हो, यश कमाना हो, पदों की सीढ़ियां चढ़नी हों, तो भविष्य के बिना कोई उपाय नहीं। टाइम विल बी नीडेड। भविष्य चाहिए, नहीं तो कुछ भी न हो सकेगा।
लेकिन यदि संन्यास लेना हो, तो भविष्य की कोई भी जरूरत नहीं है। इसी क्षण घट सकता है, क्योंकि संन्यास निपट निजी है। उसका इस जगत में किसी से कोई संबंध नहीं है। और अगर धन मैं कमाना चाहूं, तो मेरे पास जितना धन बढ़ेगा, किसी के पास कम होगा। या किसी के पास ज्यादा हो सकता था, तो मैं छीनूंगा। कहीं न कहीं, कोई न कोई वंचित होगा। लेकिन अगर मैं संन्यास लेता हूं, दुनिया में कहीं भी कोई वंचित नहीं होता। शायद मेरे संन्यास लेने से दुनिया में बहुत कुछ समृद्धि भला आ जाए, लेकिन कहीं कोई वंचित नहीं होता है। क्योंकि संन्यास कोई कमोडिटी नहीं है, कोई वस्तु नहीं है कि कम हो जाएगी। फिर संन्यास कोई संसार का हिस्सा नहीं है कि मैं उसकी योजना करूं और कल और परसों, और वर्ष और दो वर्ष, और प्रतीक्षा करूं।
संन्यास एक घटना है, जो उस काल-क्षण में घटती है, जो अभी और यहीं है।
ठीक से समझें, तो संन्यास का अर्थ है, जो समय के बाहर घटित होता है। संसार का अर्थ है, जो समय के भीतर घटित होता है। संसार का अर्थ है, विदिन दि टाइम प्रोसेस। और संन्यास का अर्थ है, जंपिंग आउट आफ दि टाइम प्रोसेस। इसलिए जब कोई आदमी कहता है कि कल सोचकर मैं संन्यास लूंगा, तो मैं जानता हूं कि उसे पता ही नहीं कि संन्यास का अर्थ क्या है। सोचकर जो लिया जा सकता है, वह संसार होगा। क्योंकि सोचेंगे क्या? सोचने का अर्थ है, अतीत के अनुभव से पूछूंगा, स्मृति से पूछूंगा। सोचने का क्या अर्थ है। भविष्य का हिसाब लगाऊंगा कि फायदा होगा कि नुकसान होगा। सोचने का अर्थ है, अतीत और भविष्य से पूछूंगा। और तो सोचने का कोई भी अर्थ नहीं होता। लोग क्या कहेंगे, यह भविष्य है। और अतीत में मैं कैसा आदमी रहा हूं, उसके साथ तालमेल खाएगा संन्यास, नहीं खाएगा, यह अतीत है। मुर्दों से पूछ रहे हैं, अतीत से; भविष्य से पूछने का अर्थ है, अनजन्मे से पूछ रहे हैं।
लेकिन संन्यास का सोचने से कोई संबंध नहीं। धर्म का ही सोचने से कोई संबंध नहीं है। इसी क्षण उस संधि-रेखा में, जहां अतीत नहीं और भविष्य नहीं, जो घटना घट जाती है, बिना विचारे जो छलांग है, कूद जाना है अपने से बाहर, वह संन्यास है।
उसके गुरु ने कहा, तू लेना चाहता है, या तैयार है अभी? उस युवक ने, लिंची ने आंखें बंद कर लीं, सोचने लगा। उसके गुरु ने उसे हिलाया और कहा, जरा-सा विचार, और तू चूक जाएगा। जरा-सा सोचा, कि तू गया, खोया। युवक ने कहा, मुझे सोच तो लेने दें। थोड़ा-सा तो सोच लेने दें! इतनी भी जल्दी क्या है? उसके गुरु ने कहा, काश, तुझे पता होता कि मौत किसी भी क्षण घटित हो सकती है, तो तू इस तरह की बात न कहता कि इतनी भी जल्दी क्या है! और तू सोचेगा क्या?

तू ही सोचेगा न! अगर तू सोच सकता होता, तो बहुत पहले कभी का संन्यासी हो चुका होता।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे कह रही है एक दिन कि जो बुद्धिमान लोग हैं, वे शादी करके भी सुखी रह सकते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, जो बुद्धिमान हैं, वे बिना शादी किए ही सुखी रह सकते हैं।
उसके गुरु ने, लिंची के गुरु ने कहा कि तू सोच रहा है। अगर तू सोच ही सकता, तो संन्यास कभी का फलित हो गया होता। सोचकर, अगर सच में तू सोच सकता, तो कोई संसार में रह सकता है? और अगर अब तक तू नहीं सोच पाया, तो उसी मन को लेकर तू आगे भी कैसे सोचेगा? तू सोच मत।
लिंची ने अपने गुरु की तरफ देखा और कहा कि मैं संन्यासी हो गया। क्योंकि अब यह भी कहना कि हो जाऊंगा, फिर भविष्य होगा। मैं हो गया। आज्ञा दें संन्यासी को अब, अब उस आदमी को भूल जाएं, जो आया था।
कहते हैं कि उसके गुरु ने अपनी पगड़ी उसके सिर पर रख दी और कहा कि मैं
उस आदमी की तलाश में था, जो उस काल-क्षण में छलांग लगा ले, जिसका नाम वर्तमान है, क्योंकि मेरी मृत्यु करीब है। अब मैं विदा लेता हूं। अब मेरा काम तू सम्हाल लेना।
उस लिंची ने कहा कि लेकिन मैं अभी-अभी संन्यासी हुआ, अभी मुझे कुछ भी पता नहीं है! उसके गुरु ने कहा, सब तुझे पता हो जाएगा। जिसे वर्तमान के क्षण में खड़े होने की जरा-सी भी क्षमता है, उसे सब ज्ञान के, रहस्य के द्वार खुल जाते हैं। अब तुझे कुछ कहने की मुझे जरूरत नहीं है।
और गुरु ऐसा बिना उपदेश दिए--ऐसी घटना बहुत कम घटती है--बिना उपदेश दिए गुरु तिरोहित हो गया। और लिंची ने दूसरे दिन सुबह से गुरु के मंच पर बैठकर बोलना शुरू कर दिया। जितने ज्ञानी उसके गुरु के द्वारा पैदा हुए थे, उससे हजारों गुना ज्ञानी लिंची के द्वारा पैदा हुए। लिंची के गुरु का नाम भी पता नहीं है, क्योंकि लिंची पूछ ही नहीं पाया और वह डिसएपियर हो गया। और जब भी कोई लिंची से पूछता था कि तुझे यह ज्ञान कैसे मिला? तो वह कहता था, गुरु ने तो मुझे कोई ज्ञान नहीं दिया, सिर्फ एक धक्का दिया था। लेकिन जिस दिन से मुझे यह राज मिल गया, अभी और यहीं होने का, उस दिन से कोई अज्ञान न रहा। अज्ञान के सब बादल छंट गए।
जीवन में जो वर्तमान के क्षण को पकड़ने की कला आ जाए, तो कृष्ण जिस मृत्यु-क्षण की बात कर रहे हैं, जिस काल-क्षण की, वह घटित हो सकता है।
जिस काल में शरीर त्यागकर गए हुए योगीजन, पीछे न आने वाली गति को और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं।
क्योंकि योगीजन भी दो प्रकार के हैं। इसमें कठिनाई होगी वाक्य को सुनकर। क्योंकि दोनों के लिए कृष्ण योगीजन का प्रयोग करते हैं। योगीजन दो प्रकार के हैं; योग भी दो प्रकार का है।
एक तो, जिसे हम परम योग कहें, दि सुप्रीम योग। वह परम योग अभ्यास, क्रिया, साधना, इसमें भरोसा नहीं करता। उस परम योग का ही पुराना नाम सांख्य है। सांख्य, जैसी यह लिंची को घटना घटी, इस तरह की घटना में भरोसा करता है, सडेन एनलाइटेनमेंट। अगर कोई आदमी राजी है अभी और यहीं, वर्तमान के क्षण में खड़े होने को, तो बिना किसी योगाभ्यास के, बिना किसी ध्यान के वह घटना घट जाएगी, जिसमें परम से मिलन हो जाता है। क्योंकि उससे हम कभी छूटे नहीं हैं, इसलिए पाने के लिए कोई भी रास्ता तय करने की जरूरत नहीं है। जिससे हम कभी अलग नहीं हुए, उस तक पहुंचने के लिए किसी भी विधि और विधान की आवश्यकता नहीं है। जिसमें हम खड़े ही हैं, अभी और सदा से, क्या उसे पाने को भी कोई यात्रा करनी पड़ेगी?
लेकिन यह बात समझ में आती नहीं। और समझ में भी आ जाए, तो कोई परिणाम नहीं होता।
कृष्णमूर्ति इस सांख्य की ही चर्चा चालीस-पचास वर्षों से कर रहे हैं।
इन पचास वर्षों में एक सुनिश्चित वर्ग उन्हें निरंतर सुनता है, निरंतर पढ़ता है, फिर भी कहीं पहुंचता हुआ मालूम नहीं पड़ता। चालीस-चालीस वर्ष उन्हें सुनने वाले लोग मेरे पास आकर कहते हैं, सब समझ में आता है, फिर कुछ होता क्यों नहीं? सब समझ में आ गया है, फिर कुछ होता क्यों नहीं?

असल में उनको इतना ही समझ में नहीं आया कि अगर कुछ होने की आकांक्षा है, तो सांख्य आपका सूत्र नहीं बन सकता। अगर यह भी आप पूछ रहे हैं कि सब समझ में आ गया, कुछ होता क्यों नहीं है! यह होता क्यों नहीं है, यह तो भविष्य है। यह होता क्यों नहीं है, यह तो वासना है। अगर समझ में आ गया, तो होना बंद करो अब। अब भविष्य को छोड़ दो। अब यह कामना भी छोड़ दो कि कुछ हो। मोक्ष हो, आनंद हो, परमात्मा हो, यह कामना भी सांख्य के मार्ग में बाधा है, परम योग के मार्ग में बाधा है।
लेकिन कभी करोड़, दो करोड़ में कोई एकाध व्यक्ति कभी सदियों में घटित होता है, जो परम सांख्य को सीधा पा लेता है। लेकिन उसका सीधा पाना भी हजारों जन्मों की लंबी भटकन का ही परिणाम होता है। परम सांख्य को भी सीधा पाया नहीं जा सकता। यदि कृष्णमूर्ति जैसा व्यक्ति भी पाता हो, तो वह भी अनंत-अनंत जन्मों की प्रक्रिया का फल है।
लेकिन जब कोई वैसा पा लेता है, तो वह दूसरों से कहता है कि कुछ करने की जरूरत नहीं है। बस हो जाओ, अभी और यहीं। वह दूसरा सुन लेता है, शब्द समझ में भी आ जाते हैं। बार-बार सुनने से और जल्दी समझ में आ जाते हैं। इसलिए कृष्णमूर्ति जैसे लोगों को वे ही लोग रोज पढ़ते रहते हैं, वे ही लोग हर वर्ष सुनते रहते हैं; वे ही शक्लें! क्योंकि बार-बार पुनरुक्ति से उनको यह वहम होने लगता है कि अब सब समझ में आने लगा। क्योंकि सब शब्द समझ में आ जाते हैं। लेकिन फिर भी वे पूछते फिरते हैं कि कुछ हुआ नहीं।
अगर होने की ही वासना है, तो परम योग आपका मार्ग नहीं है, सांख्य आपका मार्ग नहीं है। और होने की वासना सभी में है। मजा तो यह है कि सांख्य में भी लोग इसीलिए उत्सुक होते हैं कि अच्छा, चलो! होना तो चाहते हैं, अगर आप कहते हो कि होने की वासना छोड़ोगे तभी हो पाओगे, तो हम होने की वासना भी छोड़ने को तैयार हैं। लेकिन उस वासना के पीछे भी कुछ होने की कामना सदा ही मौजूद है। इसलिए बहुत जाल है भीतर। इस जाल को तोड़ना हो, तो दूसरी विधि है। उन दूसरे योगीजन को कृष्ण ने कहा है कि और पीछे आने वाली गति को भी प्राप्त होते हैं, ऐसे योगी भी हैं। जो योगी योग की साधना किसी भी वासना से कर रहे हों, चाहे वह वासना परमात्मा को पाने की वासना ही क्यों न हो, चाहे वह वासना सब वासनाओं से मुक्त हो जाने की ही वासना क्यों न हो! लेकिन जहां भी किसी तरह की डिजायरिंग, वहीं भविष्य आ गया। जहां किसी तरह की कामना, वहीं भविष्य निर्मित हो गया। और जहां भविष्य है, वहां अतीत से सहारा लेना पड़ेगा, क्योंकि भविष्य के अनजान लोक में आप प्रवेश कैसे करेंगे! अतीत का अनुभव ही आपका आधार बनेगा, अतीत का ज्ञान ही आपका सहारा होगा। अतीत का ज्ञान और भविष्य की कामना--वह क्षण चूक गया, जिस क्षण में मरता है कोई तो फिर वापस नहीं आता।
इसलिए अगर मरते क्षण में इतनी भी कामना मन में रही कि हे प्रभु, अब तो उठा लो, अब पुनर्जन्म न हो, तो पुनर्जन्म होगा, क्योंकि यह भी वासना है। आज एक बयासी वर्ष के बूढ़े मित्र ने संन्यास लिया है, लेकिन बड़ी संसारी भावना से। वे आकर बोले कि मैं बयासी साल का हो गया, और कम से कम साठ साल से महात्माओं के दरवाजों पर चक्कर काट रहा हूं, लेकिन अब तक कोई लाभ नहीं हुआ। लाभ! मैंने उनसे पूछा, क्या लाभ चाहते थे? कहे, न मन को शांति मिली, न आनंद मिला, न प्रभु का कोई दर्शन हुआ। और धन-संपत्ति की भी सदा तकलीफ रही। शरीर से भी दुखी रहा। और अब तो थोड़े दिन बचे हैं। कहने लगे कि अब आपकी शरण में आया हूं। और अब तो कुछ ऐसा कर दें कि बस, दुबारा आगमन न हो। और अगर इतना भी न हो पाए, तो इतना ही कर दें कि कम से कम जब तक जिंदा हूं, किसी तरह का दुख न हो।
मैंने पूछा, कितना समय मुझे दे सकते हैं? क्योंकि जब वासना हो, तो समय
की पहले पूछ लेना चाहिए। कितना समय, मेरे लिए कितना समय दे सकते हैं? उन्होंने कहा, ज्यादा समय तो मेरे पास है नहीं। बयासी साल का हूं। सालभर में हो जाए, छः महीने में हो जाए!
मैंने कहा, दो-चार दिन में हो जाए, तो क्या ख्याल है? चित्त उनका बड़ा प्रफुल्लित हो गया। कहने लगे, फिर तो कहना ही क्या! और मैंने कहा, अगर अभी इसी क्षण हो जाए? तब उन्हें थोड़ा शक हुआ। तब थोड़ा शक हुआ, क्योंकि इसी क्षण

का भरोसा तो किसी को भी नहीं है। नहीं, उन्होंने कहा, इतनी जल्दी क्या! दो- चार दिन में भी हो जाए।
इस क्षण का भरोसा तो किसी को नहीं है। और मैं आपसे कहता हूं, हो सकता
है तो इस क्षण में; नहीं तो, न चार दिन, न चार वर्ष, न चार जन्म, कुछ भी काफी नहीं है। अगर यही क्षण काफी नहीं है, तो फिर सारा समय का विस्तार भी नाकाफी है।
अब ये मित्र हैं, ये अगर संन्यास भी लेना चाहते हैं, तो बड़ी वासना से प्रेरित होकर। बड़ी गहन वासना है। पर मैं कहता हूं, कोई हर्ज नहीं। वासना से ही सही, कूदो। शायद कूदने में ही ख्याल आ जाए, कि कूदे जिस जगह, वह जगह अगर मंदिर भी थी, तो हम सारी गंदगी को साथ लेकर कूद पड़े। शायद उस मंदिर की पवित्रता के कारण इस गंदगी को बाहर फेंक आने की मंशा हो जाए। या शायद छलांग में स्मरण आए कि छलांग भी ली, तो बड़ी अधूरी। एक टांग बंधी हुई है पीछे; वासना के जगत से पूरी की पूरी बंधी है।
इन मित्र को कोई पूछे, वृद्धजन को, कि पक्का किए देते हैं, अगले जन्म में धन की भी कोई तकलीफ न होगी और शरीर का कोई कष्ट न आएगा, फिर क्या इरादा है? तो मेरी अपनी समझ यह है कि ये कहेंगे, तो फिर एक दफा और कोशिश कर ली जाए; रहने दें!
अगर जन्म से भी आप बचना चाहते हैं, तो किसलिए बचना चाहते हैं? इसीलिए
कि दुख न हो। तो आप जन्म से नहीं बचना चाहते हैं, सिर्फ दुख से बचना चाहते हैं। और अगर कोई भरोसा दिला दे कि हम बिना दुख का जन्म दे देते हैं, तो आप पहले होंगे कतार में। और भीड़ में बड़ी जल्दी मचाएंगे कि क्यू में मुझे आगे आने दो।
नहीं, मुक्त तो वही होता है, जिसे अगर कोई वायदा करता हो कि जीवन सुख
ही सुख की शय्या होगी, फूल ही फूल होंगे जीवन में, फिर भी वह कहता है, होंगे, लेकिन सुख भी नहीं चाहिए। असल में चाह ही नहीं चाहिए। ऐसे काल-क्षण में, जब कोई भी चाह नहीं है, जो शरीर से छूटता है, उसकी यात्रा परमधाम की तरफ हो जाती है।
लेकिन अगर आखिरी क्षण में धर्म की वासना, मोक्ष की वासना, पुनर्जन्म न हो, ऐसी वासना भी बनी रही, तो चाहे कितना ही योग साधा हो, कितने ही आसन किए हों, कितना ही शीर्षासन लगाया हो, कितने ही घंटे सिद्धासन में बैठे हों, चाहे कुछ भी किया हो, कितने ही लाख दफे राम-राम लिखा हो, कोई अंतर नहीं पड़ेगा। फिर वापस लौट आएंगे।
हां, इतना अंतर पड़ेगा कि शायद यह जो शुभ वासना है मोक्ष की, प्रभु-मिलन की, वासना तो वासना ही है, शुभ है। कम से कम धन पाने की नहीं; मोक्ष में ही जाने की है, कम से कम वेश्यागृह में जाने की नहीं है; शुभ है, शुक्ल है वासना, तो शायद अगले जन्म में यह भी संभावना बन जाए कि यह शुक्ल और शुभ वासना को भी छोड़ने की क्षमता आ जाए।
लेकिन ऐसा योगी वापस लौट आएगा। जिसने योग साधा हो किसी वासना से, वह वापस लौट आएगा। क्योंकि वह उस काल-क्षण को उपलब्ध नहीं होता, जहां से वापसी नहीं है।
उन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में अग्नि है, ज्योति है, दिन है तथा शुक्ल पक्ष है और उत्तरायण के छः माह हैं, उस मार्ग में मरकर गए हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।
दो मार्ग, उत्तरायण और दक्षिणायण, दो मार्गों की चर्चा कृष्ण करेंगे।
इस पहले सूत्र में पहले मार्ग की चर्चा है। यह चर्चा अति सूक्ष्म है और इसमें जिन प्रतीकों का प्रयोग हुआ है, उन प्रतीकों के कारण इस सूत्र को गीता के, करीब-करीब नहीं समझा जा सका है। इस सूत्र पर प्रवेश करने के पहले दो-तीन बातें ख्याल में ले लें।
एक तो जितने ही अंतर्जगत की गहन बात हो, उतने ही हमें प्रतीक चुनने पड़ते हैं। बात सीधी नहीं कही जा सकती। बात सीधे कहने का उपाय नहीं है, क्योंकि बात कुछ ऐसी है, और ऐसी मिठास की तरह भीतरी है, और इतनी गहन अनुभव की है कि शब्द में रखते ही हमें प्रतीक चुनने पड़ते हैं। सीधा कहने का उपाय नहीं है। जैसे आपके भीतर जब पहली बार आनंद घटित होगा और आपसे कोई पूछे कि

वह आनंद कैसा था, तो आपको कुछ न कुछ प्रतीक खोजने पड़ेंगे, जो बिल्कुल अधूरे होंगे, छूते भी नहीं होंगे सत्य को। लेकिन फिर कोई उपाय नहीं है।
ध्यान में जो लोग गहरे उतरते हैं, यदि उन्हें संभोग का अनुभव है, जो कि बहुत कम लोगों को है। और जब मैं कहता हूं, बहुत कम लोगों को है, तो मेरा अर्थ यह है कि अधिक लोगों को केवल वीर्य-स्खलन का अनुभव है, संभोग का अनुभव नहीं है। लेकिन अगर किसी को कभी संभोग का कोई क्षणभर का भी अनुभव है, तो ध्यान में जब वह पहली दफे जाता है... । तो निरंतर मुझे लोग आकर कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है, आज ध्यान में भीतर गया, तो ऐसा लगा जैसे भीतर कोई गहन-गहन संभोग घटित हो रहा है--आरगाज्म।
अभी एक अंग्रेज युवती मेरे पास ध्यान में प्रयोग कर रही थी। उसे जिस दिन पहली दफा ध्यान की घटना घटी, उसने मुझे आकर कहा, मैं हैरान हूं, क्योंकि मैं जीवनभर से एक ही तलाश में थी कि मुझे कोई तृप्तिदायी संभोग का क्षण मिल जाए... ।
उसने न मालूम कितने पति बदले हैं, और न मालूम कितने साथी बदले हैं, और
न मालूम कितने पुरुषों के साथ रही है, सिर्फ इस आशा में कि किसी दिन संभोग का ऐसा क्षण मिल जाए। इस आदमी से नहीं मिलता, दूसरे से मिल जाए, तीसरे से मिल जाए।
ध्यान के पहले अनुभव में उसने मुझे आकर कहा कि मैं हैरान हूं। जिसकी खोज मैं संभोग में कर रही थी, वह तो मुझे कभी नहीं मिला। लेकिन ध्यान में मुझे पहली दफे वह मिला है, जिसकी कोई धुंधली-सी आकांक्षा मेरे भीतर थी। मैं गहन संभोग में उतर गई।
स्वभावतः, संभोग और ध्यान के उस अनुभव में कोई ऐसा फासला है--इतना फासला--जैसे आकाश में कोई तारा निकले और उस तारे की छाया आपके घर में भरे हुए गंदे डबरे में बन जाए। उस तारे की छाया में और उस तारे में जितना फासला है, इतना ही फासला है। लेकिन फिर भी छाया तो है ही, रिफ्लेक्शन तो है ही। तो जब भी कोई अंतर-अनुभव में उतरता है, तो उसे प्रतीक चुनने पड़ते हैं,
जो प्रतीक बाहर के जगत से लिए गए हों। उन प्रतीकों के कारण बड़ी कठिनाई होती है। जैसे समस्त योग-शास्त्रों ने, योग-विधियों ने दो तरह के पथ, विशेषकर वैदिक युग ने दो तरह के पथ विभाजित किए हैं, जिनसे मनुष्य की चेतना यात्रा करती है। तो पहले तो हम उन दो पथों का विभाजन समझ लें। सूर्य जब भूमध्य रेखा के उत्तर में होता है बढ़ता हुआ, तो एक उत्तर का
पथ है; और जब सूर्य भूमध्य रेखा से दक्षिण की तरफ नीचे उतरता होता है, तो दूसरा दक्षिण का पथ है।
अगर हम आदमी को भी ठीक पृथ्वी की तरह दो हिस्सों में बांट लें, तो सेक्स सेंटर जो है आदमी का, जो कामवासना का केंद्र है, उसके नीचे का हिस्सा दक्षिण मान लें, और उस केंद्र के ऊपर का हिस्सा उत्तर मान लें, तो मनुष्य के भीतर एक अग्नि है--उसकी मैं बात करूंगा--वही मनुष्य की ऊर्जा है, बायो- एनर्जी, जिसको अब पश्चिम में जीवशास्त्री बायो-एनर्जी कहते हैं, जीव-ऊर्जा कहते हैं, उस जीव-ऊर्जा को भारत ने सदा सूर्य के प्रतीक में समझा है। क्योंकि समस्त जीव-ऊर्जा सूर्य से ही प्राप्त होती है। अगर फूल खिलता है, पौधे बड़े होते हैं, आदमी के गर्भ का विकास होता है, आदमी बढ़ता है, तो सब सूर्य के कारण। हमारे भीतर जो जीव-ऊर्जा है, वह सूर्य से ही हमें उपलब्ध होती है। इसलिए बहुत उचित है कि उस भीतर की ऊर्जा के लिए भी सूर्य का ही प्रयोग किया जाए, ठीक वैसे ही जैसे तारे के झलकने को हम पानी के डबरे में देखें और दोनों में संबंध जोड़ लें।
आदमी की चेतना में जो भी घटनाएं घटती हैं, वे बहुत गहन रूप से सूर्य से संबंधित हैं। तो मनुष्य को भी हम दो हिस्सों में तोड़ लें; भूमध्य रेखा बना लें, मनुष्य के कामवासना के केंद्र से एक रेखा खींच दें; तो नीचे का हिस्सा दक्षिणपथ होगा, ऊपर का हिस्सा उत्तरपथ होगा।
जब जीव-ऊर्जा दक्षिण की तरफ उतरती रहती है, यानी पैरों की तरफ उतरती रहती है, तब जो मृत्यु घटित होती है, वह एक तरह की मृत्यु है। और जब जीव-ऊर्जा काम-केंद्र से ऊपर की तरफ उठती है और सिर की तरफ प्रवाहित होती है, उत्तरपथ की तरफ, उत्तरायण, तब जो मृत्यु घटित होती है, वह और ही तरह की

मृत्यु है। और इन दोनों की यात्राएं अलग हो जाती हैं। जब जीव-ऊर्जा नीचे की तरफ उतरती है, जो कि हमारी समस्त वासनाओं में उतरती है... । इसलिए कामवासना हमारी सबसे केंद्रीय वासना है, क्योंकि सर्वाधिक जीव-ऊर्जा को हमारी कामवासना का केंद्र ही नीचे की तरफ, अधोगमन की तरफ भेजता है।
एक बहुत मजे की बात आपसे कहूं, जब तक आपका चित्त कामवासना से भरा रहता है, तब तक आपके पैर के तलवे सदा गरम रहेंगे। लेकिन जैसे ही आपकी काम ऊर्जा काम-केंद्र से नीचे की तरफ न बहकर, ऊपर की तरफ बहने लगेगी, ऊर्ध्वमुखी होगी, वैसे ही आपके पैर ठंडे होने शुरू हो जाएंगे। और आपका सिर गरम होना शुरू हो जाएगा। बुद्ध जैसे योगी के पैर बिल्कुल ही शीतल, आइस कूल, बिल्कुल शीतल, बर्फीले शीतल होते हैं।
बहुत पुराने दिनों से गुरु के चरणों में सिर रखने का बहुत महत्वपूर्ण उपयोग था। वह डायग्नोसिस थी, जैसे कि चिकित्सक नाड़ी पर किसी के हाथ रख ले। गुरु के चरणों में सिर रखकर शिष्य पहचान लेता था कि अभी उत्तरायण यह व्यक्ति हुआ या नहीं! और गुरु अपना हाथ उसके सिर पर रखकर पहचान लेता था कि दक्षिणायण कहां तक हो! यह बहुत चुपचाप हो गया निदान था। इसके लिए बातचीत भी नहीं करनी पड़ती थी, यह चुपचाप हो जाता था। और मन ही मन बात समझ ली जाती थी और हिसाब हो जाते थे कि क्या करना है, क्या नहीं करना है।
और एक दफा शिष्य ठीक से पहचान लेता था गुरु के चरणों में सिर रखकर, तो फिर वह पता नहीं लगाता फिरता था कि गुरु का चरित्र कैसा है, कैसा नहीं है। उसका कोई प्रयोजन नहीं था। वह पैरों ने सब उसे कह दिया। और एक दफा गुरु पहचान लेता था सिर पर हाथ रखकर, तो फिर वह नहीं पूछता था कि तुम क्या कर रहे हो, क्या नहीं कर रहे हो; क्योंकि वह जानता था कि तुम क्या कर रहे हो, क्या हो रहा है भीतर।
साइकोएनालिसिस करते वक्त फ्रायड, जुंग और एडलर जो वर्षों में नहीं पहचान पाते, वह भारतीय गुरु सिर्फ सिर पर हाथ रखकर पहचान लेता था। जैसे मरीज नाड़ी से पहचान लिए जाते, वैसे इस उत्तरायण और दक्षिणायण की व्यवस्था को भी बड़ी सरलता से पहचाना जा सकता है, क्योंकि ऊर्जा फौरन खबर देती है कि कहां है। जहां भी ऊर्जा प्रवाहित होती है, वहां उष्ण हो जाता है; और जहां से ऊर्जा हट जाती है, वहां शीतल हो जाता है।
इसीलिए चिकित्सक तो कहेंगे कि यह आदमी बीमार है। अगर पैर ठंडा हो, तो चिकित्सक तो कहेगा कि यह आदमी बीमार है। खतरा तो है ही! खतरा इसलिए है कि इसकी जीव-ऊर्जा अब शरीर के बाहर निकलने के करीब है, यह मर सकता है। बायोलाजिकली, जीवशास्त्र के हिसाब से पैरों का ठंडा होना स्वास्थ्यप्रद नहीं है। वह स्वास्थ्य में खराबी का सूचक है। ठीक भी है, क्योंकि अगर शरीर को जिलाना है, तो शरीर तभी तक ठीक से जीता है, जब तक शरीर की वासना नीचे की तरफ बहती हो। जैसे ही वासना ऊपर की तरफ बहने लगती है, वैसे ही शरीर का कोई प्रयोजन नहीं रह गया।
लेकिन इससे आप यह मत समझ लेना कि अगर आपके पैर ठंडे हों, तो आपकी ऊर्जा ऊपर बह रही है। पहले तो चिकित्सक से पूछना। सौ में निन्यानबे मौके तो यह होंगे कि आप सिर्फ बीमार हैं। तो जब मैं कहता हूं कि ज्ञानी के पैर ठंडे हो जाते हैं, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जिनके ठंडे हो जाते हैं, वे ज्ञानी हैं। दि वाइस वरसा इ.ज नाट राइट; विपरीत ठीक नहीं है।
और सिर्फ इस ऊर्जा को सिर की तरफ प्रवाहित करने के लिए शीर्षासन का इतना गहरा प्रयोग किया गया, और कोई प्रयोग का मूल्य नहीं है। इसलिए जो बहुत कामातुर हैं, अगर वे शीर्षासन करें, तो उन्हें थोड़ा लाभ होगा, क्योंकि उनकी थोड़ी-सी ऊर्जा सिर की तरफ बहनी शुरू हो जाती है। इसलिए कामवासना से पीड़ित व्यक्ति को शीर्षासन लाभ पहुंचा सकता है। लेकिन क्षणिक ही, क्योंकि कितनी देर सिर के बल खड़े रहिएगा! आखिर पैर के बल खड़े होंगे, ऊर्जा फिर बहनी शुरू हो जाएगी।
पहला तो विभाजन यह समझ लें कि काम-केंद्र से नीचे की तरफ बहती ऊर्जा, दक्षिणपथ है आपके भीतर के सूर्य का। और अगर मरते क्षण में भी आपकी ऊर्जा पैरों की तरफ बह रही हो काम-केंद्र से, तो फिर आप पुनर्जन्म से मुक्त नहीं

हो सकते। लेकिन अगर ऊर्जा आपकी ऊपर बह रही हो, ऊर्ध्वमुखी हो, तो आप मुक्त हो सकते हैं।
इसलिए उत्तरायण के छः माह, इसका प्रतीक अर्थ आप समझ लेना। उत्तरायण
के छः माह अर्थात आपके जीवन का जो आधा हिस्सा है आपकी देह का, उसकी ओर इशारा है। इसका इशारा एक और भी है कि आदमी अगर सत्तर साल जीता है या सौ साल जीता है, अगर सौ साल जीता है, तो पचास साल समय में हम रेखा खींच लें। तो पचास साल तक माना जा सकता है कि उसकी ऊर्जा नीचे की तरफ बहती रहे। लेकिन आने वाले पचास साल में भी अगर नीचे की तरफ बहे, तो वह आदमी आत्मघाती है, वह अपने जीवन को व्यर्थ कर रहा है; उत्तरायण उसके जीवन का शुरू हो जाना चाहिए।
इसलिए हमने जो आश्रम बांटे थे चार, पचास के साथ उत्तरायण शुरू होता था। पचासवें वर्ष में व्यक्ति को वानप्रस्थ हो जाना चाहिए। पच्चीस साल घर में ही रहे, लेकिन ऊर्जा को अब ऊपर ले जाने में संलग्न हो। और जिस दिन पचहत्तर साल की उम्र में वह पाए कि अब ऊर्जा ऊपर जाने में समर्थ हो गई, तब वह घर छोड़ दे और अब समग्र रूप से ऊर्ध्वगामी हो जाए, वह संन्यस्त हो जाए। अगर आज हम ऐसा समझें कि सत्तर साल उम्र है, तो पैंतीस साल के बाद काम ऊर्जा, जीवन ऊर्जा को उत्तरायण पर जाना चाहिए। अगर पैंतीस साल में आपकी काम ऊर्जा का उत्तरायण शुरू नहीं होता, तो मरते वक्त तक आप उत्तरायण में पहुंच नहीं पाएंगे, दक्षिणायण में ही मृत्यु होगी।
यह दूसरा विभाजन समझ लें। और इसके बाद एक-एक प्रतीक को समझ लें। उन प्रतीकों से भी बड़ी भूल हुई।
उन दो प्रकार के मार्गों में, जिस मार्ग में अग्नि है, ज्योति है, दिन है, तथा शुक्ल पक्ष है और उत्तरायण का अर्ध वर्ष है, उस मार्ग में मरकर गए हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म को उपलब्ध होते हैं।
अग्नि, ज्योति, दिन और शुक्ल पक्ष चार शब्दों का प्रयोग किया है। न अग्नि से मतलब है, न ज्योति से, न दिन से, न शुक्ल पक्ष से, फिर भी मतलब है, क्योंकि वे प्रतीक आपको क्रमशः कुछ समझाने में सहयोगी होंगे।
अग्नि में ईंधन भी होगा, अग्नि भी होगी, लेकिन उत्ताप भी होगा। ज्योति में ईंधन नहीं--यह प्रतीक है--ईंधन नहीं, धुआं नहीं, उत्ताप भी कम हो जाएगा। अग्नि केआटिक होती है, उसकी लपटें कहीं भी दौड़ती रहती हैं। ज्योति में लपट थिर हो जाएगी और एक बन जाएगी। अग्नि अनेक लपटों वाली होगी, ज्योति एक लपट वाली होगी और एक यात्रा पर संलग्न हो जाएगी।
दिन! दिन और भी उदार हो गया। अब लपट भी नहीं है, केवल प्रकाश है। अगर दिन को ठीक पहचानना हो, तो उस समय को दिन समझें, जब सुबह रात जा चुकी होती है और सूरज नहीं निकला होता है, तब जो आलोक फैला होता है चारों ओर, वही दिन है। फिर तो सूरज आ जाता है, तो सूरज के आने से गहन अग्नि का प्रभाव शुरू हो जाता है, उत्ताप शुरू हो जाता है। सुबह जब भोर के समय में जब रात जा चुकी और दिन, सूर्य वाला दिन अभी नहीं आया, तो बीच में जो एक संध्या का क्षण है, जब सिर्फ प्रकाश होता है, जिस प्रकाश में उत्ताप नहीं होता, वही दिवस है, वही दिन है।
ज्योति में ताप तो होगा ही, दिन में ताप भी खो जाता है। वह भी प्रकाश
का ही एक रूप है, लेकिन क्रमशः प्रकाश जो है नान-वायलेंट होता चला जाता है, अहिंसक होता चला जाता है। लेकिन उसमें भी पूरी शीतलता नहीं होती, क्योंकि सूरज कहीं निकट ही छिपा होता है और जल्दी ही आने के करीब होता है। सच तो यह है कि वह होता ही इसलिए है कि सूरज आ चुका होता है क्षितिज के बिल्कुल निकट; प्रकट नहीं हुआ होता, लेकिन उसकी मौजूदगी इतने निकट होती है, इसलिए प्रकाश फैल जाता है। तो कहीं थोड़ा-सा ताप तो उसमें छिपा ही होगा। वह ताप भी चला जाए, तो फिर शुक्ल पक्ष, जैसी कि चांद की रात होती है। सूरज बहुत दूर है, गर्मी का कोई सवाल नहीं। अब प्रकाश भी है और परम शीतल भी।
जो व्यक्ति अपनी ऊर्जा को काम-केंद्र से ऊपर की तरफ यात्रा पर ले जाता है, तो पहला अनुभव उसे अग्नि का होता है। जो व्यक्ति अपनी सेक्स एनर्जी को बायो-एनर्जी को ऊपर की तरफ ले जाता है, पहला अनुभव अग्नि का होता है। वह अनुभव, जस्ट लाइक फायर, बहुत उत्ताप का होता है। काम-केंद्र बिल्कुल जल

उठता है, लपटें भर जाती हैं। लेकिन अगर वह साहस रखे और जल्दी न करे, और इन लपटों से मुक्त न होना चाहे, क्योंकि मुक्त होने का वह एक ही रास्ता जानता है कि इनको बहिर्गमन कर दे, इनको नीचे की यात्रा पर चला जाने दे।
तो पश्चिम में जहां कामवासना के संबंध में कम से कम समझ है और ज्यादा
से ज्यादा आकर्षण है, वहां वे समझते हैं कि कामवासना का उपयोग वैसा ही है, जैसे कि कोई आदमी छींक का उपयोग करता है। बस, इससे ज्यादा नहीं। समथिंग लाइक ए रिलीफ। कुछ भीतर बेचैनी है, उसको फेंक देना है बाहर, छुटकारा हो। काम ऊर्जा का कोई विधायक अर्थ भी हो सकता है, काम ऊर्जा रूपांतरित हो सकती है, या काम ऊर्जा परम अनुभव की तरफ ले जा सकती है, इसकी पश्चिम में कोई दृष्टि नहीं है।
पूरब में भी वह बात फैलती चली जाती है। लोग कामवासना को भी ऐसा ही समझते हैं कि जैसे शरीर से और मल फेंक देने हैं, वैसे ही कामवासना भी शरीर की शुद्धि का एक उपाय है। शरीर के हल्के कर लेने का, तनाव को विसर्जित कर देने का; एक रिलीफ, छींक जैसे आ जाए, बस ऐसे।
अगर जल्दी न की और काम-केंद्र पर जब शक्ति ज्यादा इकट्ठी होती है, तो अग्नि बढ़नी शुरू होती है, क्योंकि ऊर्जा जो काम-केंद्र पर इकट्ठी होती है, वह बहुत संक्षिप्त रूप में सूर्य से ही उपलब्ध हुई है। और एक छोटा-सा सूर्य सेक्स सेंटर पर निर्मित हो जाता है, एक बहुत छोटा बिंदु गहन अग्नि का। अगर जल्दी की, तो वह नीचे बिखर जाता है। अगर जल्दी न की, उसे सहने की हिम्मत रखी, और राजी रहे कि जो कुछ भी हो, लेकिन यात्रा ऊपर की ही करनी है और इस ऊर्जा को ऊपर ही ले जाना है, और ऊपर, और ऊपर, तो बहुत शीघ्र वह जो सूर्य की तरह गोल बिंदु था, एक लपट बन जाता है। वह जो अग्नि थी, वह एक लपट बन जाती है, एक ज्योति, जैसे दीए की ज्योति ऊपर की तरफ भागती हो, वैसी ज्योति बन जाती है। इस ज्योति के बनते ही परम आनंद अनुभव होता है, क्योंकि ताप कम हो जाता है। दहकता अंगारा पिघल जाता है और ज्योति बन जाता है।
लेकिन इस ज्योति में भी ताप तो है ही, इस ज्योति में भी हलन-चलन तो है ही, मूवमेंट तो है ही, चंचलता तो है ही। और कोई भी हवा का झोंका, वासना का तीव्र झोंका हो, तो इस ज्योति को भी नीचे ले जा सकता है। अगर और संयम रखा और धैर्य रखा, तो यह ज्योति दिन की तरह हो जाती है। जैसे सुबह सूरज नहीं निकला, रात जा चुकी, तारे छिप गए और आकाश में भी सूरज का कोई पता नहीं, और दिग-दिगंत सिर्फ सुबह के प्रकाश से भर गए हों, बहुत आलोक से। जरा भी उत्ताप नहीं। यह लपट बहुत शीघ्र ही जैसे और ऊपर उठती है, आलोक बन जाती है।
लेकिन अभी फिर भी इसमें लपट का थोड़ा-सा हिस्सा है। ज्योति ही बिखरकर बनती है आलोक, तो ज्योति के कण इसमें मौजूद होते हैं। इसमें थोड़ा उत्ताप अभी भी है। बहुत न्यून, लेकिन अभी भी। हम इतना ही कह सकते हैं कि इसमें उत्ताप नहीं है, निगेटिवली। अभी यह नहीं कह सकते कि यह शीतल हो गया है। अभी रूपांतरण पूरा नहीं हुआ। रूपांतरण तो तब पूरा होता है, जब हम और धैर्य रखते हैं।
और ध्यान रहे, इस तीसरे क्षण में धैर्य की सर्वाधिक जरूरत पड़ती है साधक को। अग्नि को सह लेना उतना कठिन नहीं है। इसलिए कठिन नहीं है कि पीड़ा तो बहुत होती है अग्नि में, लेकिन अग्नि से ऊब पैदा नहीं होती। उसमें बड़ी उत्तेजना है। उत्तेजना के साथ हम जी सकते हैं ज्यादा। लपट के साथ, ज्योति के साथ भी जी लेना बहुत कठिन नहीं है। उसमें भी चंचलता होगी। और चंचलता में मन ज्यादा जी लेता है, क्योंकि बदलाहट बनी रहती है। लेकिन जब दिवस होता है, तीसरी घड़ी आती है और दिन के जैसा प्रकाश रह जाता है, तो बहुत बोर्डम पैदा होती है। इसलिए इस तीसरी अवस्था में अक्सर साधक एकदम उदास हो जाता है, उदासीन हो जाता है, सब तेजस्विता खो जाती है।
अग्नि के क्षण में साधक बहुत तेजस्वी मालूम पड़ता है, अंगार जैसा मालूम पड़ता है। ज्योति के समय वह तेजस्विता कम होती, लेकिन फिर भी उत्तप्ता होती है, ज्योति होती है। लेकिन तीसरे क्षण में ज्योति भी खो जाती है और एक गहन उदासी भी पकड़ ले सकती है। ऊब भी पकड़ती है, क्योंकि कुछ बदलाहट नहीं होती, कहीं कोई कंपन भी नहीं होता, सिर्फ खाली प्रकाश रह जाता है। इस समय धैर्य की बहुत जरूरत है।

धैर्य की जरूरत सदा ही अंतिम क्षणों में ज्यादा होती है, क्योंकि मन उसी वक्त ज्यादा बेचैन करता है। अभी भी वापस लौटा जा सकता है, क्योंकि ताप अभी भी मौजूद है, जो फिर से सेक्स एनर्जी बन सकता है। जब तक ताप है, जब तक हीट है... ।
इसलिए हम जानवरों को तो कहते हैं जब वे कामवासना से भरे होते हैं, तो
हम कहते हैं, ऑन हीट। आदमी भी जब कामवासना में भरा होता है, तो ऑन हीट, तप्त होता है।
तो जब आप कामवासना से भरते हैं, तो पूरा शरीर तप्त हो जाता है। सारा शरीर ईंधन बन जाता है। पसीना आ जाता है, हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं। श्वास गरम हो जाती है, शरीर से बदबू निकलनी शुरू हो जाती है। सब भीतर आग पर जाता है।
अभी भी, दिन से भी वापस गिरा जा सकता है, क्योंकि ताप अभी भी बिखर गया है, लेकिन मौजूद है; डिफ्यूज्ड है, लेकिन है; अभी फिर से इकट्ठा होकर वापस लौट सकता है। अगर अभी भी धैर्य रखा, शांति रखी और साधना ऊर्ध्वगमन की जारी रखी, तो अंतिम घटना घटती है। वह ऐसा हो जाता है भीतर प्रकाश, जैसा शुक्ल पक्ष में होता है।
लेकिन शुक्ल पक्ष क्यों कहा? पूर्णिमा ही कह देते। पूरे पक्ष को कहने
की क्या जरूरत पड़ी?
पड़ी, क्योंकि पहले दिन एकम के चांद जैसी ही घटना घटती है। और जैसे चांद पंद्रह दिनों में पूरा होता है, ऐसे ही पंद्रह स्टेजेज में यह चौथी घटना पूरी होती है। और जिस दिन पूर्णिमा हो जाती है भीतर, पूरे चांद की रात जैसी शीतलता हो जाती है। उस क्षण में अगर मृत्यु हो जाए, तो बुद्धत्व प्राप्त होता है, तो ब्रह्म की उपलब्धि होती है।
बुद्ध के संबंध में कथा है कि उनका जन्म भी पूर्णिमा के दिन हुआ। उनको पहली महासमाधि, पहली संबोधि, पहला बुद्धत्व भी पूर्णिमा के दिन मिला। और उनका महापरिनिर्वाण, उनकी मृत्यु भी पूर्णिमा के दिन हुई। जरूरी नहीं है कि हिस्टारिकली सही हो, ऐतिहासिक रूप से जरूरी नहीं है कि सही हो। हो भी सकता है संयोग से, लेकिन इसका ऐतिहासिक मूल्य नहीं है। इसका मूल्य तो इस भीतर के शुक्ल पक्ष के लिए है। इस भीतर के शुक्ल पक्ष के लिए है।
इस चौथी अवस्था के ठीक वैसे ही पंद्रह टुकड़े किए जा सकते हैं, जैसे बढ़ते हुए चांद के होते हैं। और जब कोई व्यक्ति पूर्णिमा की स्थिति में गुजरता है, पूर्णिमा की स्थिति में विदा होता है इस पृथ्वी से, तो उसके लौटने का कोई उपाय नहीं होता। और उत्तरायण के छः माह, वे ही उत्तरायण के छः माह हैं।
इसे एक तरफ से और ख्याल में ले लें, क्योंकि ये प्रतीक जटिल हैं, और बहुसूची हैं, और बहुअर्थी हैं।
मनुष्य के सात चक्र हैं। अगर हम काम-केंद्र को, सेक्स सेंटर को एक पहला चक्र मान लें, तो बाकी फिर छः चक्र और रह जाते हैं। सेक्स सेंटर को, मैंने कहा, हम भूमध्य रेखा मान लें, तो उसको चक्र गिनने की जरूरत नहीं। फिर छः चक्र रह जाते हैं, वे छः माह हैं। ठीक वैसे ही छः चक्र काम सेंटर के नीचे भी होते हैं, लेकिन उनकी चर्चा ज्ञानियों ने नहीं की, क्योंकि उनका कोई प्रयोजन नहीं है। तो अगर हम इन छः की संख्या को ध्यान में रखें, तो भी उत्तरायण के छः माह हमारे ख्याल में आ जाएगा।
यदि ऐसी घटना घटे--और ऐसी घटना घटती है--जब भीतर पूर्णिमा की स्थिति आ जाती है चार अग्नि की यात्राओं को पार करके, ठीक उसी समय छः माह को पार करके सहस्रार पर, छः चक्रों को पार करके सहस्रार पर भी चेतना पहुंच जाती है।
सहस्रार पर हो चेतना और पूर्णिमा जैसा प्रकाश हो, तो ब्रह्म की उपलब्धि होती है। उस क्षण में मर जाने से ज्यादा बड़ा सौभाग्य और कोई भी नहीं है। उस क्षण में जीना भी सौभाग्य है, उस क्षण में मरना भी सौभाग्य है। उस क्षण में कुछ भी घटित हो, तो सौभाग्य है। यह भी जान लें कि वहां से वापसी नहीं है। ब्रह्म से नहीं, ब्रह्म से तो वापसी नहीं है; इस अवस्था से भी वापसी नहीं है।

बुद्ध को ज्ञान तो हुआ मृत्यु के चालीस साल पहले, महावीर को भी कोई बयालीस साल पहले हुआ।
लेकिन जिस दिन ज्ञान हुआ, उसी दिन शुक्ल पक्ष पूरा हो गया, उसी दिन उत्तरायण का सूर्य अपनी पूरी स्थिति पर पहुंच गया। उस दिन से नीचे लौटना बंद हो गया, लेकिन मृत्यु तो चालीस साल बाद घटित हुई।
इसलिए बौद्धों ने अच्छा शब्द चुना है। जिस दिन बुद्ध को बुद्धत्व मिला, मरने के चालीस साल पहले, उसे वे कहते हैं, निर्वाण। उस दिन एक अर्थ में तो मृत्यु हो गई, क्योंकि अब कोई वापसी नहीं है। फिर जिस दिन वस्तुतः मृत्यु हुई, शरीर छूटा, उसे वे कहते हैं, महापरिनिर्वाण। जहां तक भीतर का संबंध है, शरीर उसी दिन छूट गया, जहां तक बाहर का संबंध है, जगत के जानने का, वह चालीस साल बाद छूटा। लेकिन इन चालीस सालों में भीतर समय ने एक क्षण भी गति नहीं की। इन चालीस सालों में बाहर की घड़ी समय बताती रही। दिन आए, रातें आईं। समय बीता, वर्ष बीते, माह बीते। चालीस वर्ष बीते। लेकिन भीतर की घड़ी उस दिन के बाद फिर नहीं चली। भीतर फिर एक क्षण भी नहीं बीता।
बुद्ध से मरने के दिन ही कोई पूछता है--महाकाश्यप पूछता है बुद्ध से--
कि आज आप खो जाएंगे मृत्यु में, हम सब का क्या होगा? बुद्ध ने कहा, मुझे खोए काफी समय हो चुका है। मैं तुम्हें जो दिखाई पड़ता था, वह छाया मात्र था। उसमें मेरा होना, न होना, बराबर था। मैं मर चुका हूं उसी दिन। जिस दिन मैंने जाना स्वयं को, उसी दिन मर चुका हूं। महाकाश्यप ने पूछा, फिर आप इतने दिन जीए कैसे? अगर वासना नहीं रही, तृष्णा नहीं रही, और आप कहते हैं, मैं मर चुका हूं, तो इतने दिन आप जीए कैसे? खाते थे, पीते थे, चलते थे। हमने अपनी आंखों देखा है! बुद्ध ने कहा, बाहर; लेकिन भीतर न मैंने खाया, न मैं चला। भीतर मैंने कुछ भी नहीं किया। महाकाश्यप पूछता है, लेकिन बाहर तो किया? बाहर भी क्यों किया अगर सब समाप्त हो गया है? तो बुद्ध कहते हैं, बाहर करने का कारण है। पिछले जन्मों में इस शरीर की जितनी उम्र मैंने लगाई थी, उस उम्र के पूर्व ही भीतर की घटना घट गई, उतनी उम्र पूरी होगी। यह शरीर तो अपनी विधि को पूरा करेगा।
यह करीब-करीब वैसे ही है, जैसे एक आदमी साइकिल चला रहा है और पैडल मारता चला जाता है। जब तक पैडल चलता है, साइकिल चलती है। पैडल रोक देता है, तब भी साइकिल एकदम नहीं रुक जाती। दस, पचास, सौ, दो सौ कदम चलती चली जाती है--मोमेंटम, त्वरा के कारण। इतनी देर तक पैरों से जो पैडल मारा है, तो हर पैडल साइकिल को चलाता ही नहीं, हर पैडल की कुछ शक्ति बच जाती है, इकट्ठी हो जाती है; और जब आप पैडल रोकते हैं, तो वह अर्जित, रिजर्वायर शक्ति, जो कुछ इकट्ठी हो गई है, वह थोड़ी दूर तक चला देती है।
एक बहुत मजे की घटना इस संबंध में आपसे कहूं।
बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो वे पैंतीस साल पार कर चुके थे। जिन लोगों को पैंतीस साल के बाद, जीवन की मध्य रेखा के बाद ज्ञान होता है, वे काफी देर तक जिंदा रह जाते हैं। क्यों? इसे ऐसा समझें कि आप साइकिल पर पैडल मार रहे हैं। अगर आप चढ़ाव पर पैडल मार रहे हैं, तो आपके पैडल रोकते ही साइकिल दो- चार कदम चल जाए, तो बहुत है, क्योंकि चढ़ाव है। अगर उतार पर पैडल मार रहे हैं, तो आपके पैडल रोक लेने पर भी साइकिल काफी चल सकती है।
इसलिए अक्सर ऐसा हुआ कि जिन लोगों को पैंतीस साल के बाद ज्ञान हुआ, वे तीस-चालीस साल और जी सके--बुद्ध या महावीर। लेकिन जिन लोगों को पैंतीस साल के पहले ज्ञान हो गया, वे ज्यादा नहीं जी सके--शंकर या क्राइस्ट या और इस तरह के लोग। जिनको भी पहले ज्ञान हो जाएगा, तो फिर साइकिल चलानी बड़ी मुश्किल बात है। चढ़ाव पर अति कठिन है। और अगर चलानी हो, तो बहुत उपाय करने पड़ेंगे।
रामकृष्ण को भी ज्ञान पैंतीस के पहले ही हो गया और बड़ी मुश्किल थी उनको। जितने दिन वे जिंदा रहे, वह बहुत मुश्किल काम था। और शायद बहुत कम लोगों ने उस तरह की चेष्टा की है। रामकृष्ण कुछ चीजों में अपना लगाव बनाए रखते थे। लगाव--जानकर, कोशिश करके। भोजन में उनका बहुत लगाव था। कोई सोच भी नहीं सकता था कि उस हैसियत का व्यक्ति, और दो-चार बार चौके में न पहुंच जाता हो और पूछता हो कि क्या बना है! शारदा, उनकी पत्नी उन्हें कहती थी कि

परमहंसदेव, तुम्हारा चौके में बीच-बीच में उठकर आकर पूछना बड़ा अशोभन मालूम पड़ता है। लोग क्या सोचते होंगे! सत्संग चलता है, ब्रह्मचर्चा चलती है; अचानक रोककर कि मैं अभी आया, आप चौके में चले आते हैं! जो बैठे हैं, वे क्या नहीं सोचते होंगे?
रामकृष्ण हंसते थे और टाल देते थे, क्योंकि कुछ बातें हैं, जिनके जवाब नहीं दिए जा सकते हैं। नहीं दिए जा सकते हैं इसलिए नहीं कि नहीं दिए जा सकते। नहीं दिए जा सकते इसलिए कि जिसको दिए जाने हैं, वह उनको बिल्कुल ही न समझ पाएगा।
लेकिन शारदा पीछे ही पड़ी रही। एक दिन रामकृष्ण ने कहा कि तू नहीं मानती है, तो मैं तुझे कहता हूं। मेरी नाव ने किनारे से सब तरह की रस्सियां खोल ली हैं अपनी, लेकिन एक खूंटी से मैं अपने को बांधे रखना चाहता हूं, उन लोगों के लिए जिनकी मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं उनसे कह दूं, जो मैं कहना चाहता हूं; और फिर मैं अपनी नाव को खोल दूं पूरा, ताकि मैं अपनी यात्रा, मैं अपनी महायात्रा पर निकल जाऊं। तो मैं इस भोजन में इतना लगाव रखता हूं, सिर्फ इसलिए कि एक खूंटी गड़ी रहे शरीर के साथ, अन्यथा यह इसी वक्त गिर सकता है।
तो शारदा से रामकृष्ण ने कहा कि अब मैं तुझे बता देता हूं--तू नहीं मानती, इसलिए तुझे बता देता हूं--जिस दिन मैं भोजन में रस न लूं, समझ लेना कि मेरी मृत्यु निकट है और उसके तीन दिन बाद मैं मर जाऊंगा; ठीक तीन दिन बाद।
शारदा ने उस दिन तो गंभीरता से नहीं लिया, लेकिन एक दिन वह घड़ी आ गई। रामकृष्ण बिस्तर पर लेटे थे और उस दिन उठकर चौके में नहीं आए थे। शारदा थोड़ी बेचैन भी हुई; क्योंकि कितना ही समझाओ, वे नहीं मानते थे। बीमार भी हों, तो उठकर आते थे। आज नहीं आए पता लगाने कि क्या बना है। शारदा थाली लेकर कमरे में आई, तो रामकृष्ण ने थाली देखकर करवट बदल ली।
शारदा के हाथ से थाली छूट पड़ी। उसे याद आया कि उन्होंने कहा था कि जिस दिन मैं भोजन में अरुचि दिखाऊं, उस दिन समझना कि बस, अब आखिरी दिन करीब है; तीन दिन और बाकी रहे। और ठीक तीन दिन बाद रामकृष्ण की मृत्यु हुई।
तो अगर चढ़ाव पर हो, तो बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन बुद्ध और महावीर दोनों उतार पर थे, इसलिए चालीस-बयालीस साल दोनों जीए, अनुभव के बाद। लेकिन वह पुराना मोमेंटम है, जन्मों-जन्मों के कदमों की ताकत है। और जब भी किसी व्यक्ति को पैंतीस साल के पहले अनुभव हो जाता है, तो बड़ी अड़चन हो जाती है। और जिनके लिए वह रुकता है, वे ही हजार अड़चनें खड़ी करते हैं कि आपने ऐसा क्यों किया, आप ऐसा क्यों करते हैं! वह कहीं किनारे पर अपनी खूंटियां गाड़कर रखना चाहता है, शायद किसी प्रतीक्षा में।
इस क्षण में दक्षिणायण उत्तरायण; और अग्नि बन गई हो पूर्णिमा का प्रकाश, जब इन दोनों का मिलन होता है, उसी क्षण पीछे लौटना असंभव है, वह प्वाइंट आफ नो रिटर्न है। वह जगह आ गई जहां से वापस नहीं हुआ जा सकता, जिसके आगे नहीं जाया जा सकता और आगे ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
दसवां प्रवचन

दक्षिणायण के जटिल भटकाव

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः शण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।। 25।।
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।। 26।।
तथा जिस मार्ग में धूम है और रात्रि है, तथा कृष्णपक्ष है और दक्षिणायण के छः माह हैं, उस मार्ग में मरकर गया हुआ योगी, चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल भोगकर पीछे आता है।
क्योंकि जगत के ये दो प्रकार के शुक्ल और कृष्ण अर्थात देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गए हैं। इनमें एक अर्चिमार्ग के द्वारा गया हुआ पीछे न आने वाली परम गति को प्राप्त होता है। और दूसरा धूममार्ग द्वारा गया हुआ पीछे आता है अर्थात जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति प्रभु की साधना में लीन उत्तरायण के मार्ग से मृत्यु को उपलब्ध होता है, उसकी पुनःवापसी नहीं होती है। इस संबंध में कल हमने बात की।
लेकिन दक्षिणायण के मार्ग पर जी रहा व्यक्ति भी साधना में संलग्न हो सकता है, साधना की कुछ अनुभूतियां और गहराइयां भी उपलब्ध कर सकता है, लेकिन वैसे व्यक्ति की मृत्यु ज्यादा से ज्यादा स्वर्ग तक ले जाने वाली होती है, मोक्ष तक नहीं। और स्वर्ग में उसके कर्मफल के क्षय हो जाने पर वह पुनः वापस पृथ्वी पर लौट आता है। इस संबंध में पहले कुछ प्राथमिक बातें समझ लेनी चाहिए, फिर हम दक्षिणायण की स्थिति को समझें।
एक, जिस व्यक्ति की काम ऊर्जा बहिर्मुखी है, बाहर की तरफ बह रही है, और जिस व्यक्ति की कामवासना नीचे की ओर प्रवाहित है, वैसा व्यक्ति, कामवासना नीचे की ओर बहती रहे, तो भी अनेक प्रकार की साधनाओं में संलग्न हो सकता है, योगी भी बन सकता है।
और अधिकतर जो योग-प्रक्रियाएं दमन, सप्रेशन पर खड़ी हैं, वे काम ऊर्जा
को ऊर्ध्वगामी नहीं करती हैं, केवल काम ऊर्जा के अधोगमन को अवरुद्ध कर देती हैं, रोक देती हैं। तो ऊर्जा काम-केंद्र पर ही इकट्ठी हो जाती है, उसका बहिर्गमन बंद हो जाता है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
काम-केंद्र पर, सेक्स सेंटर पर ऊर्जा इकट्ठी हो, तो तीन संभावनाएं हैं। एक संभावना है कि पुरुष के शरीर की काम ऊर्जा स्त्री के शरीर की ओर, बाहर की तरफ बहे। या स्त्री की काम ऊर्जा पुरुष शरीर की ओर, बाहर की ओर बहे। यह बहिर्गमन है।
फिर दो स्थितियां और हैं। काम ऊर्जा काम-केंद्र पर इकट्ठी हो और ऊर्ध्वगामी हो, ऊपर की तरफ बहे, सहस्रार तक पहुंच जाए। उस संबंध में हमने कल बात की। एक और संभावना है कि काम ऊर्जा ऊपर की ओर भी न बहे, बाहर की ओर भी न बहे, तो स्वयं के शरीर में ही नीचे के केंद्रों की ओर बहे। इस स्वयं के ही शरीर में काम-केंद्र से नीचे की ओर ऊर्जा का जो बहना है, वही दक्षिणायण है। निश्चित ही, ऐसा पुरुष स्त्री से मुक्त मालूम पड़ेगा। ठीक वैसा ही मुक्त मालूम पड़ेगा जैसा ऊर्ध्वगमन की ओर बहती हुई चेतना मालूम पड़ेगी। लेकिन दोनों में एक बुनियादी फर्क होगा। और वह फर्क यह होगा कि बाहर का गमन तो दोनों का बंद होगा, लेकिन जिसने दमन किया है अपने भीतर, उसकी ऊर्जा नीचे की ओर बहेगी और जिसने अपने भीतर ऊर्ध्वगमन की यात्रा पर प्रयोग किए हैं, उसकी ऊर्जा ऊपर की ओर बहेगी।
काम-केंद्र से नीचे भी ठीक वैसे ही छः सेंटर हैं, जैसे छः सेंटर काम-केंद्र के ऊपर हैं। इन छः पर अगर ऊर्जा बहे, तो भी कुछ अनुभूतियां उपलब्ध

हो सकती हैं। हठयोग की अधिक क्रियाएं काम ऊर्जा को बाहर से रोक लेती हैं, लेकिन ऊपर की तरफ प्रवाहित नहीं कर पातीं। शरीर में ही अंतर्प्रवाह शुरू हो जाता है नीचे की ओर, पैरों की तरफ।
ऐसा साधक भी अनेक उपलब्धियों को पा सकता है। लेकिन ऐसे साधक की जो उपलब्धियां हैं, पश्चिम में जिसे ब्लैक मैजिक कहते हैं और पूरब में जिसे मैली विद्या कहते हैं, उस तरह की होंगी। फिर भी इस साधक की एक क्षमता तो तय ही है कि इसने काम ऊर्जा को बाहर जाने से अवरुद्ध किया है। तो जीवन के प्रवाह में बायोलाजिकल जोशृंखला है, जीवन के उस प्रवाह से तो यह आदमी बाहर हो गया। और यह जो बाहर हो जाना है, यही इसका पुण्य है। इस पुण्य के बल पर यह व्यक्ति गहनतम सुखों को पा सकेगा; आनंद को नहीं।
गहनतम सुखों को पाने की अवस्था का नाम ही स्वर्ग है। यह ऐसे सुख पा सकेगा, जो बाहर ऊर्जा बहती हो, वैसे व्यक्ति ने कभी भी नहीं जाने होंगे। लेकिन यह वैसा आनंद कभी न पा सकेगा, जैसा आनंद ऊपर की ओर बहती हुई ऊर्जा के मार्ग में उपलब्ध होता है। लेकिन बाहर बहने वाली ऊर्जा से तो बहुत गहन आनंद इसे उपलब्ध होंगे।
तंत्र ने भी इस आंतरिक प्रवाह में बहुत-से प्रयोग किए हैं। और जो लोग सुखाकांक्षी हैं, जिन्हें आनंद का न कोई स्मरण है, न कोई ख्याल; और जिन्हें मुक्त होने की भी कोई भावना नहीं है, क्योंकि स्वतंत्रता की कामना, परम स्वतंत्रता की कामना अति कठिन बात है। यदि हम चाहते भी हैं ज्यादा से ज्यादा, तो यही चाहते हैं कि दुख मिट जाएं और सुख उपलब्ध हों। धर्म की खोज में जाने वाले लोग भी सौ में निन्यानबे मौकों पर दुख से बचने के लिए सुख की खोज में जाते हैं।
इसलिए बर्ट्रेंड रसेल जैसे लोग कहते हैं कि जिस दिन विज्ञान जमीन पर सुख की सारी व्यवस्था जुटा देगा, उस दिन धर्म का विनाश हो जाएगा।
उनकी बात निन्यानबे मौकों पर सही है। वह रसेल का वक्तव्य निन्यानबे मौकों पर सही है। यह बात सच है, अगर विज्ञान उन सारे सुखों को आपको दे दे, उन सारे दुखों को मिटा दे जो आपको पीड़ित करते हैं, तो मंदिर और मस्जिद और चर्च में इकट्ठे होने वाले सौ लोगों में से निन्यानबे लोग तो तत्काल विदा हो जाएंगे। क्योंकि जिन सुखों के लिए वे मंदिर में आए थे और प्रभु की प्रार्थना के लिए आए थे, वे सुख अब विज्ञान ही उन्हें दे सकता है।
लेकिन एक आदमी फिर भी मंदिर, मस्जिद और गिरजाघरों में बच जाएगा। या हो सकता है, एक आदमी गिरजाघरों और मंदिरों को न बचा सके, तो जहां भी होगा, वहीं मंदिर में होगा, वहीं मस्जिद में होगा। वह एक आदमी सुख की तलाश में नहीं है, वह आनंद की तलाश में है। थोड़ा-सा फर्क ख्याल में ले लें, तो आगे की बात समझ में आ जाएगी और प्रतीक भी समझ में आ सकेंगे।
दुख से जो मुक्त होना चाहता है, वह सुख चाहता है। लेकिन दुख और सुख दोनों से जो मुक्त होना चाहता है, वह आनंद चाहता है। आनंद का अर्थ है, मैं सुख-दुख दोनों से मुक्त होना चाहता हूं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो सुख-दुख दोनों से मुक्त होना चाहे। यद्यपि जिस आदमी ने भी जीवन का अनुभव लिया है, वह जानता है कि सुख भी दुख का ही एक रूप है। और सुख भी थोड़ी ही देर में दुखदायी हो जाते हैं। और वह यह भी जानता है कि सुख का भी एक तनाव है, सुख की भी एक विक्षिप्तता है और सुख की भी एक उत्तेजना है और सुख भी उसी तरह थका डालता है जैसे दुख थका डालता है।
दुख ही नहीं उबाता, सुख की भी अपनी बोर्डम है, अपनी ऊब है। और वही सुख, वही सुख रोज मिले, तो उससे भी हम इतने ही ऊब जाते हैं जैसे दुख से ऊब जाते हैं। बल्कि सचाई तो यह है कि हम दुख से इतने जल्दी कभी नहीं ऊबते, जितने जल्दी हम सुख से ऊब जाते हैं। दुख से हम इसलिए नहीं ऊबते कि दुख से हम छूटने की खुद ही चेष्टा में रत रहते हैं। सुख से हम इसलिए ऊब जाते हैं कि सुख से हम छूटना भी नहीं चाहते और सुख भी रोज-रोज दोहरकर बेरस, बेस्वाद और नीरस हो जाता है।
इसलिए एक बहुत अदभुत घटना मनुष्य के इतिहास में दिखाई पड़ती है कि दुखी समाज इतने ऊबे हुए नहीं होते, क्योंकि उनको एक आशा होती है कि आज नहीं कल दुख मिटेगा और सुख मिलेगा। उस आशा के भरोसे वे जी लेते हैं। इसलिए दुखी

समाज बहुत संतापग्रस्त नहीं होते। दुखी समाज, दीन-दरिद्र, भिखारी समाज बहुत चिंतित, बहुत परेशान नहीं होते। दुखी समाज में आत्महत्याएं कम होती हैं, लोग कम पागल होते हैं। दुखी समाज में मानसिक बीमारी कम होती है। उसका कारण कि एक आशा, एक भविष्य तो आगे होता ही है। आज दुख है, कल सुख हो सकेगा। लेकिन सुखी समाज में यह आशा भी नष्ट हो जाती है।
आज अमेरिका की पीड़ा यही है कि जिन-जिन सुखों को आदमियों ने सदा चाहा है, आज दुर्भाग्य से वे उसे पाने में सफल हो गए हैं और अब आगे कोई भविष्य दिखाई नहीं पड़ता है। सब सुख मिल गए हैं--अब? अब भविष्य बिल्कुल अंधकारपूर्ण है, आशा का दीया बिल्कुल बुझ गया। और जब आशा का दीया बुझ जाए, तो सुख इतना दुख देता है, जितना कोई दुख कभी नहीं दे सकता है।
इसलिए आज अमेरिका की नई पीढ़ी के लड़के और लड़कियां दुखों की तलाश में घूम रहे हैं। वे जो कार पर बैठ सकते हैं, पैदल चलना चाहते हैं। वे जो हवाई जहाज में उड़ सकते हैं, वे दीन-दरिद्र वेष में, गंदे, गांव-गांव, सड़कों-सड़कों पर, सारी दुनिया के कोने-कोने में छा गए हैं। आज दुख को वरण करना जैसे स्वाद को बदलना हो गया है। और एक चेंज, एक बदलाहट फिर सुखद मालूम पड़ती है। सुख भी उबा देता है।
जीवन का अनुभव कहता है कि सुख और दुख जब दोनों से ही छुटकारे की कामना पैदा होती है, तो मनुष्य उत्तरायण की तरफ चलता है। उत्तरायण की तरफ चलने का अर्थ है कि मनुष्य अब मुक्ति चाहता है, कोई अनुभव नहीं, क्योंकि सभी अनुभव बंधन हैं। सभी अनुभव बंधन हैं, चाहे वे दुख के हों और चाहे सुख के, और चाहे अशांति के और चाहे शांति के। सभी अनुभव बंधन हैं, चाहे संसार का और चाहे परमात्मा का। सभी अनुभव बंधन हैं, क्योंकि प्रत्येक अनुभव से अंततः छूटने का मन हो जाएगा।
अगर आपको ईश्वर भी मिल जाए और आप उसके आलिंगन में हों, तो कितनी देर लगेगी जब आपका मन करने लगेगा कि अब छुटकारा कब हो? अब हम हटें कैसे? रवींद्रनाथ ने एक छोटा-सा गीत लिखा है। लिखा है कि खोजता हूं प्रभु को जन्मों-जन्मों से। कभी उसकी झलक दिखती है। कभी दूर किसी तारे के पास उसकी आकृति दिखती है। कभी उसकी छाया दिखाई पड़ती है। लेकिन जब तक उस जगह पहुंचता हूं जहां उसकी छाया थी, तब तक वह और दूर जा चुका होता। जब तक वहां पहुंचता हूं जहां उसकी झलक दिखी, तब तक वह न मालूम कहां खो चुका होता। ऐसे जन्म-जन्म भटककर, लेकिन एक दिन मेरी यात्रा पूरी हो गई है, और मैं उस द्वार पर पहुंच गया जो प्रभु का धाम है।
मैं उसकी सीढ़ियां चढ़ गया और मैंने उसके द्वार की सांकल अपने हाथ में
ले ली, और मैं सांकल बजाने को ही था, तभी मेरे मन में सवाल उठा कि यदि आज प्रभु मिल गया, तो फिर आगे क्या होगा? आगे फिर मैं क्या करूंगा? अब तक तो उसी की खोज में ये जन्म-जन्म मैंने बिताए। मैं व्यस्त था। मैं दौड़ रहा था। मैं कुछ कर रहा था और कुछ पा रहा था। होने की, बिकमिंग की एक लंबी यात्रा थी, उसमें मैं रसलीन था। मंजिल थी आगे, उसे पाने में अहंकार को तृप्ति थी। लेकिन अगर आज प्रभु मिल ही गया, तो कल, फिर कल नहीं होगा! फिर कोई भविष्य नहीं। फिर कोई आशा नहीं। फिर आगे कोई मंजिल नहीं।
तो रवींद्रनाथ ने लिखा है, मैंने वह सांकल आहिस्ता छोड़ दी, कि कहीं कोई आवाज न हो जाए और कहीं द्वार खुल ही न जाए। मैं अपने जूते हाथ में उठा लिया, कि कहीं सीढ़ियों से लौटते वक्त पैरों की ध्वनि न हो जाए और कहीं द्वार खुल ही न जाए। और मैं जो भागा हूं उस घर से, तो मैंने फिर लौटकर नहीं देखा।
अब भी मैं ईश्वर को खोजता हूं। अब भी मैं ईश्वर को खोजता हूं। अब भी मैं गुरुओं से पूछता हूं कि कहां है उसका मार्ग? और भलीभांति हृदय के अंतस्तल में जानता हूं उसका मार्ग। अब भी मैं पूछता हूं कि कहां है उसका घर? और भलीभांति मुझे पहचान है उसके घर की। लेकिन अब मैं उसके घर के रास्ते से बचकर ही उसे खोजता हूं कि कहीं वह मिल न जाए। कहीं वह मिल न जाए! हम जो चाहते हैं जब वह मिल जाता है, तब जितना दुख उपलब्ध होता है, उतना चाहते क्षण में कभी भी नहीं हुआ था। असल में चाहत कभी दुख नहीं देती, उपलब्धि दुख देती है। जिसे हमने चाहा, अभागे हैं हम, अगर उसे पा लें।

भाग्यवान हैं, अगर पाने से बच जाएं। क्योंकि जिसे हम नहीं पा पाते, उसकी आकांक्षा का रस जारी ही रहता है--इंतजार में, प्रतीक्षा में, सपने में, आशा में। फूल मुरझाते नहीं, पौधा सूखता नहीं; वासना हरी ही बनी रहती है। उसमें नए-नए पत्ते निकलते ही चले जाते हैं। लेकिन मिल जाए जिसे हमने चाहा, जो हमने चाहा वह हम पा लें, तब अचानक सब गिर जाता है, सब स्वप्न भंग हो जाते हैं।
अमेरिका में जो आज डिसइलूजनमेंट है, एक भ्रम का टूट जाना, स्वप्नभंग,
वह उन सारी उपलब्धियों को पा लेने का परिणाम है, जो आदमी ने हजारों-हजारों साल तक चाही थीं और आज मिल गई हैं। आगे अब कोई भविष्य नहीं है। सुख बड़े गहन दुख में उतार देता है।
सुख भी दुख है, ऐसी जिस दिन प्रतीति होती है, उस दिन आदमी का उत्तरायण, उसके भीतर का सूर्य ऊपर की ओर उठना शुरू होता है। मुक्ति की दिशा! ध्यान रहे, मैं नहीं कह रहा हूं, मुक्ति की आकांक्षा। क्योंकि जब तक आकांक्षा है, तब तक आशा है, तब तक सुख है, तब तक भविष्य है। मुक्ति का आयाम, डायमेंशन आफ फ्रीडम, डिजायर फॉर फ्रीडम नहीं। मुक्ति के आयाम में भीतर का सूर्य उठना शुरू होता है।
लेकिन मुक्ति की आकांक्षा तो बड़ी दुर्लभ है। मुक्त कोई होना नहीं चाहता। जो कहते भी हैं कि हम मुक्त होना चाहते हैं, वे भी मुक्त होना नहीं चाहते।
और इसलिए एक बहुत मजे की घटना घटती है। जिनसे हम मुक्त होना चाहते हैं, जब उनसे मुक्त हो जाते हैं, तो हम पाते हैं कि उनसे मुक्त होकर हमारा जीवन बिल्कुल बेस्वाद हो गया, तिक्त हो गया, एकदम रूखा हो गया। एकदम हम पाते हैं कि हम वहां खड़े हो गए, जहां अब करने को फिर पुनः कुछ भी नहीं बचा है।
वोल्तेयर का एक शत्रु मर गया था, तो वोल्तेयर उसकी कब्र पर जाकर रोया। मित्रों ने पूछा कि जिस शत्रु को तुम देखना पसंद नहीं करते थे, और जो रास्ते से आता दिख जाए तो तुम गली में मुड़ जाते थे कि उसकी छाया तुम्हें न छू जाए, जिसका नाम तुमने कभी अपने मुंह से नहीं लिया, उसकी कब्र पर जाकर रोने का प्रयोजन?
वोल्तेयर ने कहा, जब से शत्रु मर गया, तब से मेरे भीतर भी बहुत कुछ मर गया, क्योंकि उससे लड़कर ही मैं जीता था। मेरी ताकत ही दीन-हीन हो गई। मुझे पहली दफा उसके मरने पर पता चला कि उसके बिना मैं नहीं हूं। वह था, लड़ाई थी, तो रस था, मैं था। उसके मरते ही मैं मर गया हूं। मेरा बहुत कुछ तो ढह गया। हम अपने मित्रों को खोकर इतना कभी नहीं खोते, जितना अपने शत्रुओं को खोकर खो देते हैं। क्योंकि मित्र कभी हमारे जीवन के इतने अनिवार्य अंग नहीं होते। और मित्र जो हैं, वे रिप्लेस किए जा सकते हैं; उन्हें बदलना बहुत कठिन नहीं है। शत्रु बहुत आसानी से रिप्लेस नहीं होते। शत्रु बड़ी स्थायी घटना है। और आदमी शत्रुओं में जीता है। और शत्रुओं के बीच उनसे ही मुक्त होने को, उन्हें ही समाप्त करने को जीता है, और उनको समाप्त करके पाता है कि वह बिल्कुल निर्वीर्य हो गया।
जिससे हम मुक्त होना चाहते हैं, अगर हम मुक्त हो जाएं उससे, तो हम शायद पुनः चाहें कि फिर से वह बंधन मिल जाए तो बेहतर है। क्योंकि मुक्त होने का रस उस व्यक्ति से, उस स्थिति से भिन्न नहीं है, जिससे हम मुक्त होना चाहते हैं।
इसलिए मुक्त होने की कामना, फ्रीडम फ्राम समवन, फ्राम समथिंग--फ्रीडम फ्राम--किसी से मुक्त होने की जो वासना है, वह मोक्ष की वासना नहीं है।
संसार से मुक्त होने की जो वासना है, वह मोक्ष की वासना नहीं है। मोक्ष का आयाम बिल्कुल निर्वासना का आयाम है। वहां किसी से मुक्त नहीं होना है।
वहां बस मुक्त होना है। जस्ट फ्रीडम, नाट फ्राम समथिंग।
इसे और एक तरफ से समझ लें।
तीन तरह की मुक्तताएं होती हैं, तीन तरह की फ्रीडम होती हैं। किसी से स्वतंत्रता; किसी के लिए स्वतंत्रता; और बस स्वतंत्रता। किसी से स्वतंत्रता का अर्थ होता है, अतीत से मुक्ति, पीछे से मुक्ति। और किसी के

लिए स्वतंत्रता का अर्थ होता है, भविष्य की वासना। दोनों ही स्थितियों में मन मौजूद होता है, और उत्तरायण की पूरी यात्रा नहीं हो सकती है। लेकिन बस स्वतंत्रता--नाट फ्राम, नाट फॉर--जस्ट। न ही किसी से स्वतंत्र होने की वासना; न ही किसी के लिए स्वतंत्र होने की वासना; बस स्वतंत्र होने का आयाम, बस स्वतंत्र होना।
इसलिए बुद्ध, जब कोई पूछता कि ईश्वर है? चुप रह जाते। जब कोई पूछता, मोक्ष है? हंसते, मौन रह जाते। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि जब भी मोक्ष की बात करो, जब भी ईश्वर की बात करो, तो लोग ईश्वर को पाने के लिए, मोक्ष को पाने के लिए आतुर हो जाते हैं। वासना पुनः निर्मित हो जाती है।
इसलिए बुद्ध को हम समझ भी नहीं सके। हमारे मुल्क में जो सर्वाधिक, मनुष्यों में जो कोहनूर पैदा हुआ, उसे हमने अपने ही हाथों मुल्क के बाहर हटा दिया। हम बुद्ध को नहीं समझ सके, क्योंकि हम यह समझ ही न पाए कि बस स्वतंत्रता भी कोई बात हो सकती है।
हमने पूछा, किसलिए साधना? तो बुद्ध ने कहा, बस साधना काफी है। किसलिए
मत पूछो। क्योंकि किसलिए के साथ वासना आ जाती है। हमने पूछा कि तुम्हारे निर्वाण में क्या होगा? क्या मिलेगा हमें? बुद्ध ने कहा, जहां तक मिलता है कुछ, वहां तक संसार है। हमने पूछा कि आनंद होगा वहां? बुद्ध ने कहा, शब्दों की बात ही मत उठाओ। क्योंकि आनंद यदि मैं कहूं, तो तुम जो भी समझोगे, वह सुख से ज्यादा नहीं हो सकता। तुम्हारी समझ केवल सुख की है। आनंद को तुम न समझ पाओगे। और मैं कहूं हां, तो तुम समझोगे कि कोई सुख होगा। अगर मैं कहूं कि दुख नहीं होगा, तो भी तुम समझोगे कि जो दुख तुम्हें है, वे वहां नहीं होंगे। जैसे यहां किसी को नौकरी नहीं मिलने का दुख है, तो वहां नौकरी मिल जाएगी। या यहां किसी की टांग टूट गई है, तो वहां टांग नहीं टूटेगी। या यहां कोई बीमार है, तो वहां बीमार नहीं होगा। तो बुद्ध ने कहा, तुम चुप ही रहो। उस संबंध में पूछो ही मत। और मुझे गलत सवाल के गलत जवाब देने को मजबूर मत करो।
हम नहीं समझ पाए; हमने बुद्ध को बहिष्कृत कर दिया। हमने कहा, यह आदमी महानास्तिक मालूम होता है। ईश्वर की बात नहीं करता, मोक्ष की बात नहीं करता!
हम थे महानास्तिक। हम असल में मोक्ष को भी संसार की भाषा में ही समझ सकते हैं। हमें अगर ईश्वर से भी मिलना हो, तो हम दुकान की ही भाषा में मिलने की तैयारी करते हैं। हमारी सारी खोज सशर्त है, क्या दोगे? क्या पाओगे? क्या मिलेगा? वही हमारी आकांक्षा का केंद्र बना रहता है। उत्तरायण तो तब शुरू होता है, जब कोई व्यक्ति सुख-दुख दोनों से छूटता है। छूटता है अर्थात दोनों के अनुभव ने उसे बता दिया, व्यर्थ हैं दोनों, निरर्थक हैं दोनों, असार हैं दोनों; और अब दोनों में कोई चुनाव नहीं करना है, दोनों को एक साथ ही छोड़ देना है।
और चुनाव संभव भी नहीं है। जैसे कोई एक ही सिक्के के एक पहलू को बचाना चाहे और दूसरे को छोड़ना चाहे, उसे हम पागल कहेंगे। क्योंकि जब एक सिक्के का एक पहलू बचाया जाता है, तो दूसरा अनिवार्य रूप से बच जाता है। सिक्के का एक पहलू बच नहीं सकता; दो ही बचते हैं, या दोनों ही फेंक देने पड़ते हैं। जिसने सुख को बचाना चाहा, दुख को हटाना चाहा, वह दुख को भी पीछे बचा लेगा। जिसने दोनों फेंक दिए, वही केवल दुख से मुक्त हो पाएगा। जिसने सुख को फेंकने की भी तैयारी कर ली। इस सुख-दुख को फेंकते ही ऊर्ध्वगमन शुरू होता है।
लेकिन अगर आप दुख को हटाना चाहते हैं, सुख को बचाना चाहते हैं, तो दक्षिणायण का पथ, तो नीचे की यात्रा है। यदि आप सुख को बचाना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं, तो बाहर जाना बंद कर दें, दुख कम से कम हो जाएंगे; क्योंकि दुख सदा किसी के कारण और किसी के द्वारा मिलते हुए मालूम पड़ते हैं।
इसलिए आदमी जब बहुत दुखी होता है, तो शराब पी लेता है, बेहोश हो जाता है। शराब कोई सुख नहीं देती। शराब एक काम करती है, सिर्फ बाहर से संबंध टूट जाता है। आदमी एनक्लोज्ड, अपने में बंद हो जाता है। और जब बाहर से संबंध

टूट जाते हैं, तो जिस पत्नी के कारण दुख मिलता था, जिस पति के कारण चिंता होती थी, जिस बेटे के कारण मन में व्यथा आती थी, जिस परिवार के कारण विक्षिप्तता पैदा होती थी, जिस समाज को नष्ट कर डालने का मन होता था या स्वयं मर जाने की वृत्ति पैदा होती थी, वह फिर कुछ भी पैदा नहीं होता। शराब संबंधों के जगत को तोड़ डालती है। इतना बेहोश कर देती है आपको कि बाहर का आपको स्मरण नहीं रह जाता; अपने में बंद। जब आप होश में आते हैं, तो कहते हैं, बड़ा सुख अनुभव किया। सुख अनुभव नहीं किया, केवल दुख के जगत से थोड़ी देर के लिए विस्मरण में डूब गए; तंद्रा में, निद्रा में, बेहोशी में, मूर्च्छा में खो गए। जब भी हम कहते हैं, हमें सुख मिला, तो आमतौर से यही होता है कि हम उन संबंधों से टूट गए होते हैं, जिनसे हमें दुख मिलता है। दक्षिणायण का पथ समस्त संबंधों को बिना बेहोश हुए तोड़ने का पथ है। बिना बेहोश हुए तोड़ने का पथ है। बेहोश नहीं होना है, लेकिन समस्त वासना को काम-केंद्र पर इकट्ठा करके काम-केंद्र का द्वार बंद कर लेना है। दमन का जो ब्रह्मचर्य है, वह यही है। काम-केंद्र को अवरुद्ध कर लेना है। ऊर्जा इकट्ठी होगी और मुक्ति की कोई दिशा नहीं है, तो ऊर्जा गति करेगी।
ऊर्जा का नियम है कि ऊर्जा गत्यात्मक है, डायनैमिक है। ऊर्जा स्टैटिक नहीं है। ऊर्जा थिर नहीं रह सकती; ऊर्जा दौड़ती है। अगर आपने नदी का एक द्वार बंद कर दिया, तो नदी दूसरे द्वार से दौड़ना शुरू कर देगी। अगर आपने दूसरा द्वार भी बंद कर दिया, नदी तीसरा द्वार खोज लेगी और तीसरे मार्ग से दौड़ना शुरू कर देगी।
तीन पथ हैं। एक, मनुष्य की ऊर्जा का बहिर्गमन, जो कि प्राकृतिक, नेचरल मार्ग है; जिससे सब पशु-पक्षी, पौधे जीते हैं और जिससे अधिक मनुष्य भी जीते हैं। वह प्राकृतिक है।
दूसरा मार्ग है, ऊर्ध्वगमन का। वह अति प्राकृतिक है, वह प्रकृति के पार जाने का है, वह परमात्मा तक जाने का है।
एक तीसरा मार्ग भी है, नीचे की ओर जाने का। वह भी अति प्राकृतिक है, वह
भी प्रकृति के पार है। लेकिन ऊपर जाने वाला मार्ग है बियांड नेचर; नीचे जाने वाला मार्ग है बिलो नेचर। एक ऊपर की तरफ जाने वाली अति है, दूसरी नीचे की तरफ जाने वाली अति है।
इस नीचे जाने वाली अति का कृष्ण ने जो ब्यौरा दिया है वह ऐसा है, तथा जिस मार्ग में धुआं है... ।
अग्नि की जगह धुआं। पहले मार्ग में अग्नि थी, इस मार्ग में अग्नि की जगह धुआं है।
जिस मार्ग में धुआं है, रात्रि है, कृष्ण पक्ष है और दक्षिणायण के छः माह हैं, उस मार्ग में मरकर गया हुआ योगी चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने कर्मों का फल भोगकर पीछे वापस लौट आता है।
इन प्रतीकों को समझें।
उत्तरायण के मार्ग पर अग्नि पहला प्रतीक थी। ऊपर की तरफ अग्नि बढ़ती,
तो ज्योति बन जाती। ज्योति और ऊपर बढ़ती, तो दिन बन जाती। दिन और ऊपर बढ़ता, तो शुक्ल पक्ष बन जाता। और पूर्णिमा पर अंत होता। नीचे के मार्ग पर--अग्नि अब बीच में है। ऊपर की तरफ जाती, तो ज्योति बनती; नीचे की तरफ जाती है, तो धुआं बन जाती है। क्योंकि जितना ही हम नीचे उतरते हैं वासना में, उतना ही गीला ईंधन अग्नि को उपलब्ध होता है। वासना गीला ईंधन है।
फकीर हसन ने कहा है, एक सूखी लकड़ी को जलाओ, तो धुआं नहीं पैदा होता या
कम पैदा होता है। गीली लकड़ी को जलाओ, तो धुआं ज्यादा पैदा होता है और बहुत पैदा होता है। जितनी गीली हो उतना ही धुआं पैदा होता है। बहुत गीली हो, तो लपट तो निकलती ही नहीं, धुआं ही धुआं पैदा होता है।
गीली और सूखी लकड़ी में फर्क क्या है? गीली लकड़ी अभी भी जीवन के प्रति आतुर है, रस से भरी है। अभी भी जीवन का जल-स्रोत उसमें बहता है। अभी भी जीव-ऊर्जा उसमें प्रवाहित है। सूखी लकड़ी मृतवत है, मुर्दा है। जीवन का सब रस-स्रोत सूख गया है। अब कोई धारा रस की उसमें नहीं बहती, इसलिए सूखी है। जितना वासना भरा मन हो, उतना गीला है, उतनी लकड़ी गीली है अभी। अभी बहुत
रस बहता है।

तो जिसने अपनी कामवासना को रोक लिया बाहर जाने से, वासना तो रुक जाएगी, रस नहीं रुकता है। ऊर्जा रुक जाएगी, एनर्जी रुक जाएगी, लेकिन वह जो वृत्ति का रस था भीतर, वह नहीं रुकता है। वह रस अभी भी भीतर बहा जा रहा है। वह रस गीलापन है।
इसलिए प्रतीक कृष्ण ने चुना है, धूम का, धुएं का। अब नीचे की तरफ बढ़ने
पर जो पहली घटना घटती है, वह गहन धुएं का अनुभव है।
अगर कभी आपने जबरदस्ती किसी वासना को रोका हो, तो आपको सफोकेशन, बड़ी भीतर रुकावट और भीतर सब धुआं-धुआं हो गया, ऐसी प्रतीति भी हो सकती है। ज्योति की जो प्रकटता है, स्पष्टता है--निर्धूम ज्योति की--वह कभी दबी हुई, दबाई गई वासनाओं में अनुभव नहीं होती।
इसलिए दबे हुए व्यक्ति बहुत धुआं-धुआं हो जाते हैं। उनके भीतर सब धुंधियारा हो जाता है। और सब तरफ से उनके भीतर स्पष्टता खो जाती है, क्लैरिटी खो जाती है। जिस व्यक्ति ने भी वासना को रोका तीव्रता से, उसके भीतर जो स्पष्टता होनी चाहिए चित्त की, वह खो जाती है। और दर्पण पर जैसे धुआं जम जाए, ऐसा उसके चित्त पर भी धुआं जम जाता है। फिर उसमें कुछ ठीक-ठीक प्रतिफलित नहीं होता। फिर साफ-साफ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। फिर वह अंधेरे में अंधे जैसा टटोलने लगता है।
सभी वासनाएं अंधी हैं और सभी वासनाएं अंधेरे में टटोलती हैं। और अगर
एक बार किसी ने ऊर्जा को रोक लिया, तो बहुत गहन धुआं भीतर पैदा होता है। यह धुआं अगर बढ़ता ही चला जाए नीचे की ओर, तो शीघ्र ही रात्रि में परिवर्तित हो जाता है। गहन हो गया धुआं, सघन हो गया धुआं, रात्रि का अंधकार बन जाता है। जैसे दिवस बन जाती है ज्योति, ऐसे ही धुआं बन जाता है रात्रि। अग्नि
है बीच में, ऊपर बढ़ें तो ज्योति, नीचे बढ़ें तो धुआं। और ऊपर बढ़ें तो दिन, और नीचे आएं तो रात्रि। धुएं का अर्थ है, चित्त की स्वच्छता का खो जाना। इसलिए आपने देखा होगा अनेक हठयोगियों को, कि वे बड़ी साधना में रत होते हैं, लेकिन बुद्धिमान नहीं मालूम होते, ईडियाटिक मालूम होते हैं।
एक व्यक्ति को अभी मुझे किसी ने मिलाया था। वे दस वर्ष से खड़े हुए हैं। बैठे नहीं, सोए नहीं। सोते भी हैं, तो खड़े हुए ही सहारा लेकर। लेकिन पैर उन्होंने दस वर्ष से नहीं मोड़े। पैर करीब-करीब जम गए हैं, मोटे हो गए हैं, जैसे हाथी-पैर की बीमारी में पैर हो जाएं, वैसे हो गए हैं। अब शायद मुड़ भी नहीं सकते। दस वर्षों में सब जाम हो गया होगा। मसल्स ठहर गए होंगे, खून भर गया होगा, हड्डियां सख्त हो गई होंगी, मोड़ों ने मुड़ना छोड़ दिया होगा। दस वर्ष से वे यह कर रहे हैं। दस वर्ष से!
निश्चित ही, बड़े संकल्प की जरूरत है। बड़े संकल्प की जरूरत है! दस घंटे
भी खड़ा रहना मुश्किल पड़ेगा। संकल्प है, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन अगर उन व्यक्ति की आंखों में देखें, तो परम मूढ़ता दिखाई पड़ती है, ईडियाटिक; इम्बेसाइल। आंख में कहीं भी कोई बुद्धिमत्ता की किरण दिखाई नहीं पड़ती। संकल्प महान है।
काश, इतना ही संकल्प ऊर्ध्वगमन में होता, तो शायद वह सहस्रार को छेद
कर जाता। लेकिन यह संकल्प ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन नहीं बन पा रहा है, यह संकल्प भी किसी सुख को पाने का संकल्प है। यह संकल्प भी सुख प्रेरित है। तो सब तरह से अपने को रोक लिया है।
अब जो आदमी दस वर्षों से सीधा खड़ा है, उसकी कामवासना बिल्कुल थिर हो जाएगी। क्योंकि सारी मसल्स, जो कामवासना के काम में आती हैं, वे सब जड़ हो जाएंगी, उनकी फ्लेक्सिबिलिटी खो जाएगी। उसकी जननेंद्रिय का पूरा का पूरा यंत्र जो है, विकृत हो जाएगा, अवरुद्ध हो जाएगा और ऊर्जा इकट्ठी हो जाएगी। लेकिन वह ऊर्जा नीचे की तरफ बहेगी।
अब इस व्यक्ति के पैरों में खून ही ज्यादा है, ऐसा नहीं, इस व्यक्ति के पैरों में बायो-एनर्जी भी ज्यादा है। समस्त कामवासना, समस्त वासना इसके पैरों में प्रविष्ट हो गई है। इसका सारा जीवन ही पैरों में चला गया है। अगर ठीक से समझें, तो इसका सिर अब खोपड़ी में नहीं है, इसका सिर अब पैरों के तलुओं में है। इसकी आंखों में से तेजस्विता चली जाएगी। धुंधियारी हो गईं आंखें, उन पर धुएं की जाली आपको स्पष्ट दिखाई पड़ सकती है। आंखों के भीतर

कोई ज्योति नहीं दिखाई पड़ती, कुछ जलता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। आंखों के भीतर कोई प्रकाशित चित्त और चेतना है, यह भी दिखाई नहीं पड़ता। आंखों के भीतर गहन अंधकार हो गया है। जड़ हो गई हैं, जिसको हम कहते हैं पथरीली आंखें, वैसी हो गई हैं। चेहरे पर किसी तरह की बुद्धिमत्ता की कोई झलक नहीं है। चेहरा आदमी का कम और पशु का ज्यादा मालूम पड़ता है। पड़ेगा ही! पड़ेगा ही, क्योंकि जो भी किया है, उस करने में और मनुष्यता की ऊंचाइयों को छूने का उपाय नहीं हुआ है, बल्कि प्रकृति से भी नीचे, बिलो नेचर, प्रकृति से नीचे गिर जाने की व्यवस्था हुई है।
लेकिन एक बात पक्की है, इस आदमी को दुख मिलने बंद हो गए हैं। यह आदमी
अब दुखी नहीं है। यह आप ध्यान रखना, यह आदमी दुखी बिल्कुल नहीं है। और जितने इसके दुख गिर गए हैं, उसी मात्रा में इसे हम सुखी भी कह सकते हैं। और जो काम ऊर्जा बाहर जाकर क्षणिक सुख लाती थी, वही काम ऊर्जा, इसके नीचे के हिस्से के शरीर में वर्तुल बनाकर भी इसे सुख दे रही है। वह बहुत भीतरी सुख है।
इसलिए अब यह आदमी अपने पैरों को मोड़कर कभी बैठेगा भी नहीं। क्योंकि
अब इसे जो एक बहुत ही अंधकारपूर्ण सुख मिलना शुरू हुआ है, एक बहुत तामसिक सुख मिलना शुरू हुआ है, उसे छोड़ना कठिन है।
एक व्यक्ति को मैंने देखा है, जो वर्षों से कांटों पर लेटे रहते हैं।
उनकी आंखों की भी यही हालत है, धुआं-धुआं। शरीर को उन्होंने सख्त पत्थर जैसा कर लिया है। लेकिन शरीर को पत्थर जैसा करते साथ ही मन भी पत्थर जैसा हो जाता है। असल में शरीर और मन की लोच, सेंसिटिविटी साथ-साथ चलती है। जितना शरीर लोचपूर्ण होता है, उतना ही मन लोचपूर्ण होता है।
मन से मुक्त होना है जरूर, लेकिन मन को पत्थर जैसा करके जो मुक्त होने
की कोशिश करेगा, वह मुक्त नहीं हो रहा है, केवल जड़ हुआ जा रहा है। मन से मुक्त होने का अर्थ जड़ता को पा लेना नहीं है। लेकिन जड़ता भी अगर कोई पा ले, तो एक अर्थ में मन से मुक्त हो जाता है, क्योंकि मन की चंचलता मिट जाती है, नष्ट हो जाती है।
तो उनके मन में कोई चंचलता नहीं है अब। अगर उनसे आप पूछें कि आपको कोई स्वप्न आते हैं? तो वे कहते हैं, कोई स्वप्न मुझे वर्षों से नहीं आए! वे कांटे पर लेटे रहते हैं, उन्हें कोई स्वप्न नहीं आएंगे। क्योंकि स्वप्न आने के लिए मन में सक्रियता चाहिए; वह सक्रियता खो गई है। उनसे पूछिए, कोई विचार चलते हैं? वे कहते हैं, कोई विचार भी नहीं चलते। लेकिन वे निर्विचार स्थिति में नहीं हैं; अविचार की स्थिति में हैं।
यह फर्क समझ लेना चाहिए।
निर्विचार स्थिति में वह व्यक्ति है, जो चाहे तो विचार कर सकता है, लेकिन विचार नहीं करता। और अविचार की स्थिति में वह व्यक्ति है, जो चाहे भी तो विचार नहीं कर सकता है। नपुंसकता और ब्रह्मचर्य में जो फर्क है, वैसा ही फर्क निर्विचार और अविचार में है।
नपुंसक भी एक अर्थ में ब्रह्मचारी है। लेकिन वह ब्रह्मचारी इसलिए नहीं है, कि ब्रह्मचारी न होना चाहे, तो स्वतंत्र नहीं है। ऊर्जा ही नहीं है, पुंसत्व ही नहीं है। वह चाहे तो भी ब्रह्मचर्य को नहीं तोड़ सकता। और जो ब्रह्मचर्य चाहकर तोड़ा न जा सके, उस ब्रह्मचर्य का क्या मूल्य हो सकता है! ब्रह्मचर्य तो वही है--जीवंत, पोटेंशियल, शक्तिवान--जो चाहा जाए, तो तोड़ा जा सके। लेकिन नहीं चाहते, नहीं तोड़ते, यह अलग बात है, यह भिन्न बात है। ऊर्जा भीतर है, उसके प्रवाह की मालकियत हमारे हाथ है। लेकिन ऊर्जा ही भीतर नहीं है! जो धन आपके पास नहीं है, उसको अगर आप खर्च नहीं करते, तो आप किस स्थिति में धनी हैं!
सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन मरा, तो उसने अपनी वसीयत लिखी। और वसीयत में उसने लिखा कि मेरी समस्त संपत्ति का आधा हिस्सा मेरी पत्नी को मिले, शेष आधे में लड़कों को, लड़कियों को सबको बांटा जाए। और सब बांट देने के बाद, जब वह सब बांट चुका, तो उसके वकील ने पूछा, लेकिन आप परसेंटेज तो लिखा रहे हैं कि पचास प्रतिशत इसको, दस प्रतिशत इसको, संपत्ति कितनी है? मुल्ला ने कहा, संपत्ति तो बिल्कुल नहीं है। लेकिन नियमानुसार वसीयत

लिखनी चाहिए, इसलिए वसीयत लिखता हूं। और मुल्ला ने कहा, आपने बीच में टोक दिया, अभी मुझे कुछ और लिखवाना है! पर उस वकील ने कहा कि सौ परसेंट तो पूरा हो गया! जो नहीं है, उसका सौ प्रतिशत बंट चुका! मुल्ला ने कहा, नीचे इतना और लिखो कि जो शेष बचा हो, वह मस्जिद को दे दिया जाए। जो नहीं था, वह सौ प्रतिशत बांटा जा चुका। अब भी अगर कुछ शेष बचा हो, तो वह मैं मस्जिद को दान करता हूं!
इस तरह की मनोदशाएं भी हैं। जब जो हम नहीं कर सकते हैं, हम सोचते हैं, हमने उसका त्याग कर दिया है। इस कांटों पर लेटे हुए साधक को देखकर मैंने उनसे पूछा था कि विचार उठते हैं? उन्होंने कहा, विचार! नहीं।
लेकिन वह निर्विचार अवस्था नहीं है, क्योंकि निर्विचार के साथ तो आंखें ऐसी स्वच्छ हो जाती हैं, जैसी कोई झील कभी नहीं होती। निर्विचार के साथ तो आंखें इतनी गहरी हो जाती हैं, अतल, जैसे किसी खाई में हम गिरते चले जाएं और कोई तल ही न मिले।
लेकिन नहीं, उनकी आंख तो बिल्कुल ऐसी दिखाई पड़ती है, जैसे ऊपर की पर्त
भर ही हो, भीतर कुछ भी न हो। सब संवेदनशील तंतु सिकुड़कर सख्त हो गए हैं। लेकिन फिर भी यह आदमी संकल्पवान है। और जो आदमी वर्षों से कांटों पर लेटा हुआ है, उसकी काम ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है।
असल में कोई भी संकल्पवान व्यक्ति अगर संकल्प ही कर ले, किसी भी भांति
का संकल्प कर ले, तो सबसे पहला परिणाम यह होता है कि उसकी काम ऊर्जा बहनी बंद हो जाती है। क्योंकि जो व्यक्ति वर्षों खड़ा रह सकता है, जो व्यक्ति वर्षों कांटों पर लेटा रह सकता है, जो वर्षों नग्न बर्फ पर बैठा रह सकता है, ऐसे व्यक्ति को कामवासना हिला नहीं सकती। कामवासना इकट्ठी हो जाएगी, लेकिन नष्ट नहीं हो जाएगी, तिरोहित नहीं हो जाएगी। इकट्ठी होकर नीचे की तरफ भीतर ही प्रवाह शुरू हो जाएगा।
इस भीतर के प्रवाह पर पहला अनुभव धुएं का होगा। धुएं का अर्थ है, भीतर
एक क्लैरिटी का, स्वच्छता का खो जाना। दूसरा अनुभव अंधकार का होगा। भीतर गहन, निबिड़ रात्रि का छा जाना, जहां कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। कोई परवस्तु दिखाई नहीं पड़ती। स्वयं का थोड़ा-सा बोध शेष रह जाता है।
जैसे आप गहरे से गहरे अंधेरे में भी हों, तो कुछ और दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन इतना तो पता चलता ही रहता है कि मैं हूं। अंधेरी से अंधेरी रात में, अमावस में भी इतना तो पता चलता ही रहता है कि मैं हूं। सब दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। घर नहीं दिखाई पड़ता, मित्र-प्रियजन नहीं दिखाई पड़ते, वस्तुएं नहीं दिखाई पड़तीं, पर मैं हूं इतना स्मरण बना रहता है। रात्रि जितनी गहन हो जाएगी, उतना ही पर का बोध खोता चला जाएगा।
अब यह बहुत मजे का, यह समानांतर विचार ठीक से समझ लें। जितने आप ऊपर बढ़ेंगे, उतना स्व का बोध कम होता चला जाएगा। और जितने आप नीचे उतरेंगे, उतना पर का बोध कम होता चला जाएगा। जितना उत्तरायण के मार्ग पर आगे जाएंगे, स्व का बोध विसर्जित होता चला जाएगा।
अग्नि जब तक है, तब तक स्व का सघन बोध होगा, जलन से भरा हुआ बोध होगा।
दि ईगो विल बी फेल्ट टू मच। बहुत गहन अनुभव होगा अहंकार का। लेकिन जैसे ही अग्नि ज्योति बनेगी, वैसे ही अहंकार विरल हो जाएगा। और जैसे ही ज्योति दिन बनेगी, वैसे ही अहंकार बिल्कुल बिखरा-बिखरा हो जाएगा। और जब दिन भी शीतल शुक्ल पक्ष बनने लगेगा, तो उधर चांद बड़ा होने लगेगा और इधर अहंकार क्रमशः क्षीण होने लगेगा। जिस दिन पूर्णिमा का चांद होगा, उस दिन अहंकार शून्य हो जाएगा।
लेकिन नीचे की यात्रा पर, दक्षिणायण के पथ पर अहंकार महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ेगा; महत्वपूर्ण मालूम पड़ेगा, पर का बोध कम होता चला जाएगा। जितना अंधेरा बढ़ेगा, धुआं आएगा बीच में, तो दूसरे धुंधले दिखाई पड़ने लगेंगे। पत्नी धुंधली हो जाएगी, पुत्र धुंधले हो जाएंगे, धन-संपत्ति धुंधली हो जाएगी। छूट नहीं जाएगी, धुंधली हो जाएगी। बीच में धुएं की एक पर्त आ जाएगी। और आदमी अपने भीतर सिकुड़ने लगेगा। और जितना भीतर सिकुड़ेगा, उतना ही अहंकार सख्त और ठोस और क्रिस्टलाइज्ड होने लगेगा।

रात्रि जब गहन हो जाएगी, अंधकार काफी हो जाएगा, धुआं सघन हो जाएगा, तो दूसरे दिखाई पड़ने बंद हो जाएंगे। उनसे सिर्फ टकराहट होगी, दिखाई नहीं पड़ेंगे। कभी-कभी टकराहट होगी, तो मालूम पड़ेगा, दूसरा है। लेकिन दूसरे का बोध क्रमशः कम होने लगेगा, जड़ता घनी होने लगेगी। आदमी चारों तरफ एक परकोटे से घिर जाएगा अंधकार के। लेकिन अभी भी दूसरे की टकराहट का पता चलेगा।
और फिर आता है कृष्ण पक्ष, अंधेरी रातों का बढ़ता हुआ क्रम, अमावस की तरफ यात्रा। फिर रोज-रोज रात भी और अंधेरी होने लगती है। और चांद की रोशनी रोज-रोज कम, और चांद रोज-रोज घटने लगता है। अंधेरी रात रोज-रोज बढ़ने लगेगी। जिस मात्रा में, जैसा मैंने कहा, शुक्ल पक्ष के पंद्रह क्रम होंगे, वैसे ही कृष्ण पक्ष के भी पंद्रह खंड होंगे और रोज-रोज अंधकार गहन होगा। जिस मात्रा में अंधकार गहन होगा, उसी मात्रा में पर, संसार भूलने लगेगा। मिटने नहीं लगेगा, भूलने लगेगा। और इसी से भ्रम पैदा होता है कि जो अब भूलने लगा, वह शायद मिट गया।
इसलिए शुक्ल पक्ष के यात्री की तरह से कृष्ण पक्ष का यात्री सोच सकता
है कि मैं भी उसी मार्ग पर चल रहा हूं। वह अर्थ ले सकता है कि अब मुझे संसार नहीं दिखाई पड़ता, तो मैं मुक्त हो गया हूं!
लेकिन जब तक अहंकार भीतर है, संसार से कोई मुक्त नहीं होता। कितने ही दूर हो जाए, कितने ही दूर और कितने ही गहन अपने अंधेरे में खो जाए, संसार से उसके संबंध विसर्जित नहीं होते और वह कभी भी वापस लौट आता है। जब तक अहंकार शेष है, जब तक वापसी शेष है। तब तक आदमी वापस लौट आएगा।
एक-एक दिन, जैसे कृष्ण पक्ष बढ़ता है, अमावस करीब आती है, वैसे-वैसे जगत खोता चला जाता है। और अमावस के दिन, अमावस की रात, जैसे पूर्णिमा की रात्रि अहंकार शून्य हो जाता है और परमात्मा पूर्ण हो जाता है, ठीक वैसे ही अमावस की रात्रि अहंकार पूर्ण हो जाता है और पर बिल्कुल शून्य हो जाता है। और पर के साथ परमात्मा भी शून्य हो जाता है, लेकिन अहंकार पूर्ण हो जाता है। मजे की बात है--और शब्द इसीलिए धोखा दे सकते हैं-- पूर्णिमा की रात को उपलब्ध हुआ व्यक्ति भी कह सकता है, अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। लेकिन उसका अर्थ होता है कि मैं अब नहीं हूं, ब्रह्म ही है। अमावस की स्थिति में पहुंचा हुआ व्यक्ति भी कह सकता है, अहं ब्रह्मास्मि। लेकिन उसका मतलब बिल्कुल भिन्न होता है। वह भी कहता है, मैं ब्रह्म हूं। लेकिन उसका मतलब यह होता है, अब और कोई ब्रह्म नहीं, मैं ही ब्रह्म हूं! पूर्णिमा की रात्रि को पहुंचा हुआ व्यक्ति कहता है, अहं ब्रह्मास्मि! क्योंकि वह कहता है, जो कुछ भी है, सभी ब्रह्म है। मैं भी ब्रह्म हूं, क्योंकि सभी कुछ ब्रह्म है। उसके इस अहं ब्रह्मास्मि में, उसके इस अहं में, उसके इस मैं में, मैं बिल्कुल नहीं है और सब समा गया है। कहें, उसका यह अहं पूर्णरूपेण अहं-शून्य है, ईगोलेस ईगो। शब्द भर मैं है, लेकिन उसमें मैं-पन जरा भी नहीं है। क्योंकि वह पूरे ब्रह्म के साथ अपने को एक अनुभव करता है।
जैसे बूंद सागर में गिर जाए और कहे कि मैं सागर हूं। लेकिन गिरते ही बूंद तो खो जाती है। और अब मैं सागर हूं, इसका मतलब ही यह होता है कि अब सागर ही है, और मैं नहीं हूं। एक ही अर्थ होता है।
अमावस की रात को पहुंचा हुआ व्यक्ति भी यही कह सकता है, अहं ब्रह्मास्मि! जैसे बूंद सागर को बिल्कुल भूल जाए और सागर का उसे पता ही न रहे और तब अकड़कर बूंद कह सके कि मैं ही सागर हूं, क्योंकि मुझसे बड़ा और कौन है! तब मैं ही सब कुछ रह जाता है और सब पर आरोपित हो जाता है।
अहं ब्रह्मास्मि की दक्षिणायण की भी अनुभूति है, उत्तरायण की भी। इसलिए बहुत बार भूल भी हो जाती है, जैसे कि मुसलमानों ने मंसूर को सूली दी। सूली देने का कारण सिर्फ इतना था कि मंसूर कह रहा था, अनलहक। मैं ब्रह्म हूं। आई एम दि डिवाइन। अहं ब्रह्मास्मि का अनुवाद है, अनलहक, मैं ब्रह्म हूं।
बड़ा मुश्किल है तय करना कि यह फकीर मंसूर, शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को पहुंचकर कह रहा है या अमावस की अंधेरी रात में पहुंचकर कह रहा है। कौन तय करे? कैसे तय करे? जो मंसूर को प्रेम करते हैं, वे कहते हैं कि यह पूर्णिमा

की घोषणा है। और जो मंसूर के विरोधी थे, उन्होंने कहा, यह अमावस की घोषणा है। अमावस की घोषणा मानकर मुसलमानों ने मंसूर की हत्या कर दी।
लेकिन वह घोषणा अमावस की न थी। और जिन्होंने हत्या की, उनसे भूल हो गई। क्योंकि अगर वह अमावस की घोषणा होती, तो मरते वक्त पता चल जाता। क्योंकि मरते वक्त सब कुछ पता चल जाता है। अंतिम क्षण में, काल-क्षण में मंसूर ने जाहिर कर दिया कि जिन्होंने सूली दी, वे भूल में थे।
जब मंसूर के हाथ काटे जा रहे थे, तब भी वह हंस रहा था। जब उसके पैर काटे
जा रहे थे, तब भी वह हंस रहा था। जब उसकी आंखें फोड़ी जा रही थीं, तब भी वह परमात्मा से दुआ मांग रहा था उन सबके लिए, जो उसकी हत्या कर रहे थे। जब उसके हाथ काटे गए और उसके हाथ से खून गिरने लगा, तो उसने दूसरे हाथ से खून को हाथ में लेकर वजू की, जैसा कि मुसलमान नमाज के पहले करते हैं।
एक आदमी ने चिल्लाकर पूछा कि मंसूर, यह तुम क्या कर रहे हो? वजू पानी
से की जाती है!
मंसूर ने कहा, पानी की वजू भी कोई वजू है! प्रार्थना करने जिन्हें जाना है, उन्हें अपने खून से ही अपने को शुद्ध करना पड़ता है। और तुमने मुझे मौका दिया, तुम्हारा मैं अनुगृहीत हूं, शुक्रगुजार हूं कि तुमने मुझे खून से, अपने ही खून से वजू करने की सुविधा जुटा दी।
और मरते वक्त जब सारे लोगों ने उससे चिल्लाकर पूछा कि मंसूर, तुम नाराज भी नहीं हो, और तुम्हारी आंखें अभी भी प्रेम से भरी हैं, और तुम्हारे होंठों से अभी भी प्रेम की वर्षा हो रही है! बात क्या है?
तो मंसूर ने कहा, ताकि तुम जान सको कि तुमने जो किया, वह भूल भरा था; और तुमने जिस आदमी को मारा, वह आदमी वही नहीं था, जैसा तुमने उसे समझा था। ईसा के साथ भी वही भूल हुई। जब ईसा ने कहा कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं,
तो उनके विरोधियों ने समझा कि यह अमावस की रात में कही गई बात है। और तय करना सदा मुश्किल है। सदा मुश्किल है कि यह घोषणा जो की जा रही है, कहां से की जा रही है? घोषणा बिल्कुल एक जैसी है। और निर्भर करता है इस बात पर कि आस-पास जो लोग इकट्ठे हैं, वे किस तरह के हैं, उनका इंटरप्रिटेशन!
अधिक लोग तो अमावस की रात की तरफ चलते हुए लोग हैं। अधिक लोग तो अंधेरे पक्ष की तरफ बढ़ते हुए लोग हैं। अधिक लोग तो नीचे गिरते हुए लोग हैं, ऊपर उठते हुए नहीं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनकी व्याख्या नीचे ही गिरने की व्याख्या हो। और जब वे जीसस या मंसूर के मुंह से सुनें कि मैं ही ब्रह्म हूं, तो वे समझें कि यह आदमी अहंकारी है। हम अहंकारी कुछ और समझ भी कैसे सकते हैं! हम अहंकारी हैं, इसलिए हम अहंकार की ही भाषा समझ पाते हैं। और अगर कोई निरहंकारी भी बोले--और बोले तो अहंकार की भाषा बोलनी पड़ती है, क्योंकि और कोई भाषा नहीं है--तो हम समझते हैं कि वही बात फिर हुई जा रही है। यह आदमी कह रहा है कि मैं ब्रह्म हूं। यह आदमी अहंकार की भाषा बोल रहा है, और अहंकार तो बड़ा पाप है। और मजा यह है कि हम सब अहंकारी हैं और हम कभी भी नहीं सोचते कि कहीं भूल तो नहीं हुई जा रही। हमारे अहंकार तो कहीं व्याख्या में बाधा नहीं डाल रहे?
अगर कृष्ण भी आकर हमारे बीच खड़े होकर कहें कि मैं ब्रह्म हूं, तो हम कहेंगे, यह आदमी अहंकारी है। क्राइस्ट भी कहें कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं, तो हम कहेंगे, यह अहंकारी है। हमने ही कहा है युग-युग में, और हमने ही इन सारे लोगों को सूलियां और फांसियां दे दी हैं।
हम तो उस महात्मा को मानते हैं, जो हमारे पैरों पर सिर रख दे और कहे कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं। तब हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न होता है कि यह है महात्मा! लेकिन इसके महात्मा होने का कारण क्या है? इसके महात्मा होने का कारण यह है कि आपके चरणों पर इसने सिर रखा और आपके अहंकार की गहरी खुशामद की।
एक मेरे मित्र मुझसे कहते थे कि एक बहुत बड़े महात्मा के वे पास गए। उन महात्मा के शिष्य उनको बड़ा महात्मा बताते हैं। तो उन्होंने कहा कि मैं जरा परीक्षा करूं। वे गए महात्मा के पास, उन्होंने जाकर उनसे पूछा कि आपके शिष्य आपको बहुत बड़ा महात्मा बताते हैं, क्या आप भी अपने को बहुत बड़ा महात्मा मानते हैं? उन महात्मा ने कहा, मैं तो तुच्छ आदमी हूं, आपके पैरों

की धूल हूं। वे मित्र बिल्कुल निर्णीत होकर आए और कहा कि वह आदमी बहुत बड़ा महात्मा है!
मैंने कहा, तुम्हें कैसे पता चला? उन्होंने कहा कि जब मैं गया, तो उन महात्मा ने कहा, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं। इससे पता चला तुम्हें! अगर तुम इतने समझदार हो, तो वह महात्मा भी तुमसे तो थोड़ा-बहुत ज्यादा समझदार होगा ही। अगर वह महात्मा कहता है कि हां, मैं बहुत बड़ा महात्मा हूं, तो तुम क्या ख्याल लेकर लौटते? उन्होंने कहा, तब मैं पक्का मानकर लौटता कि यह आदमी बेईमान है।
तो मैंने कहा, जब तुम जानते हो ट्रिक, तो वह भी जानता होगा। इतनी-सी ट्रिक है कि तुम्हारे सामने अगर महात्मा सिद्ध होना हो, तो कहना चाहिए कि मैं तुम्हारे चरणों की धूल हूं। और अगर महात्मा सिद्ध न होना हो, तो घोषणा कर देनी चाहिए कि मैं महात्मा हूं। इतनी सरल-सी बात तुम्हें पता है, उसे पता न होगी! तुम फिर से जाओ।
मुश्किल है। क्योंकि भाषा जो हम समझते हैं, हम समझते हैं। और हमारी समझ, समझ ही कहां है!
जैसे-जैसे अंधेरे की तरफ, नीचे की तरफ बढ़ेगी चेतना, ऊर्जा, वैसे-वैसे
पर का बोध खोता जाएगा। दि कांशसनेस आफ दि अदर, दूसरे का जो होश है हमें, वह विलीन हो जाएगा। एक घड़ी आएगी, जब मुझे सिर्फ मेरा ही होश रह जाएगा। एक घड़ी आएगी, जब मुझे मेरा ही होश रह जाएगा, मैं ही रह जाऊंगा। सारा जगत बंद और मैं एक अलग जगत, अपने भीतर हो जाऊंगा।
लीबनिज ने मोनोड की बात की है। लीबनिज ने कहा है कि प्रत्येक आदमी एक मोनोड है। मोनोड का अर्थ होता है, ऐसा मकान, जिसमें द्वार-दरवाजे नहीं हैं।
पता नहीं, हर आदमी मोनोड है या नहीं, लेकिन जब कोई अमावस की स्थिति में पहुंचता है, तो आदमी मोनोड हो जाता है। मोनोड, विंडोलेस, डोरलेस हाउस, कोई द्वार-दरवाजा नहीं। सब बंद हो गए द्वार-दरवाजे; मैं अपनी गुहा में भीतर कैद हो गया। मैं ही जगत हूं वहां, मैं ही परमात्मा हूं वहां। मैं ही हूं, और कुछ भी नहीं है।
लेकिन इस यात्रा में भी बड़ी साधना करनी पड़ती है संकल्प की। अब इसे और ठीक से समझ लें।
जो उत्तरायण में जाते हैं, उनकी साधना है समर्पण की, सरेंडर की। जो दक्षिणायण में जाते हैं, उनकी साधना है संकल्प की, विल की। और ये साधनाएं बड़ी उलटी हैं।
संकल्प का अर्थ ही है, स्वयं को, मैं को साधना। समर्पण का अर्थ है, स्वयं को, मैं को विसर्जित करना, खोना। दोनों की अलग-अलग साधनाएं हैं। हठयोग संकल्प की साधना है, राजयोग समर्पण की साधना है।
और जगत में दो ही तरह के योग हैं। उन्हें नाम कुछ भी दे दें। एक संकल्प
के योग हैं, जिनमें अपने संकल्प को मजबूत करना है। इतना मजबूत करना है कि कोई जगत की ताकत मेरे संकल्प को न तोड़ पाए। तब मैं एक किले की दीवाल बनाकर उसके भीतर छिप जाऊंगा। फिर मैं सुरक्षित हूं।
और एक साधना है समर्पण की, कि अपने सब द्वार-दरवाजे खुले छोड़ देने हैं,
कि कमजोर से कमजोर ताकत भी आए, कमजोर से कमजोर हवा का झोंका भी आए, तो भीतर चला आए, कोई बाधा न हो। मुझे मिटाने के लिए कोई ताकत आए, तो उसे जरा भी अड़चन न हो। मुझे मार डालने को कोई शक्ति निकले, तो मैं उसे द्वार पर ही स्वागत करता मिलूं। उसे दरवाजा खोलने की भी असुविधा न पड़े। समर्पण का अर्थ है, टु बी वलनरेबल, सब तरह से खुले हो जाना, जो हो उसके लिए राजी हो जाना।
ये दो साधनाएं हैं। एक साधना उस जगह पहुंचा देती है, जहां से कोई लौटना नहीं। दूसरी साधना भी कहीं पहुंचाती है, लेकिन वहां से लौटना है। कृष्ण कहते हैं, इस दूसरे मार्ग से मरकर गया हुआ योगी--योगी कहते हैं उसे भी; वह भी संकल्प का योग साध रहा है--स्वर्ग में अपने कर्मों का फल भोगकर पीछे आता है। लेकिन एक बात और कही है, जो थोड़ी दुविधा में डालेगी, और वह यह है, धूम है, रात्रि है तथा कृष्ण पक्ष है और दक्षिणायण के छः माह हैं। उस मार्ग में मरकर गया हुआ योगी चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर,

चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर, स्वर्ग में अपने कर्मों को भोगकर पीछे आता है।
यह चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर! इसे थोड़ा समझना पड़ेगा, क्योंकि इस अंधेरे के रास्ते पर चंद्रमा की ज्योति कहां? इस दक्षिणायण के मार्ग पर अमावस मिलेगी। यहां चंद्रमा की ज्योति कहां? यहां चंद्रमा कहां? इसे थोड़ा समझना पड़ेगा, यह थोड़ा दुरूह है, लेकिन समझेंगे तो ख्याल में आ जाएगा।
जैसा मैंने कहा कि आकाश में चांद हो, तो झील में उसका प्रतिबिंब बन जाता है। जब कोई व्यक्ति अंधकार की झील हो जाता है, जस्ट ए डार्कनेस, गहन अंधकार की झील हो जाता है, तो अंधकार इतना सघन हो जाता है कि झील बन जाता है। तो भी, उसकी ही ऊर्ध्व यात्रा का जो अंतिम बिंदु है, उसकी झलक इस गहन अंधकार में दिखाई पड़ने लगती है।
यह थोड़ा समझना पड़ेगा।
जब नीचे का हिस्सा व्यक्ति का पूर्ण अंधकार से भर जाता है, तो इस अंधकार की गहराई में ही, इस गहनता में ही अंधकार की, वह जो ऊपर का शीर्ष बिंदु है व्यक्ति का, वह झलक उसकी दिखाई पड़ने लगती है। यह झलक अंधकार के अति पारदर्शी होने से घटित होती है; अंधकार के भी ट्रांसपैरेंट हो जाने से घटित होती है। संकल्प जब अंधकार से जुड़ता है और अंधकार को संवारता है, साधता है, तो अंधकार भी झलक देने लगता है।
सच तो यह है, अंधकार में, अंधकार की पृष्ठभूमि में, कंट्रास्ट में, जब स्वयं का शीर्ष बिंदु दिखाई पड़ता है, तो बड़ी भ्रांति पैदा होती है। ठीक ऐसी ही भ्रांति पैदा हो जाती है, जैसे झील में चांद को देखकर कोई समझ ले कि चांद यह रहा। और जितना गहरा उतरता जाता है, उतनी ही यह झलक साफ दिखाई पड़ती है। इसे आप एक छोटा-सा प्रयोग करें, तो समझ में आ जाए।
रात आकाश में तारे होते हैं। अभी भी तारे हैं। सुबह सूरज निकलता है, तारे खो जाते हैं। लेकिन कभी आपने सोचा कि तारे खोकर जाएंगे कहां? क्या अचानक सब तारे छिप जाते हैं कहीं! ये तारे सूरज के निकलने से जाएंगे कहां? ये तो अपनी ही जगह होंगे। सिर्फ सूरज की रोशनी के आ जाने से हमारी आंखों पर रोशनी इतनी तेज होती है कि हम इन तारों को देख नहीं पाते। ये तारे सब अपनी ही जगह होते हैं। जब रात सांझ होने लगती है, तो आप कहते हैं कि यह तारा उगा, यह दूसरा तारा उगा।
आप गलत भाषा बोल रहे हैं। ये तारे दिनभर यहीं थे। सिर्फ इस तारे पर से सूरज की रोशनी हट गई और आपकी आंख देखने लगी। दूसरे तारे पर से रोशनी हट गई, आपकी आंख देखने लगी। सूरज डूब रहा है, तारे वापस दिखाई पड़ने शुरू हो रहे हैं। उग नहीं रहे हैं। तारे अपनी जगह मौजूद थे, सिर्फ सूरज की रोशनी की वजह से, एक लंबा प्रकाश का पर्दा बीच में आ गया था, उसकी वजह से दिखाई नहीं पड़ते थे।
ध्यान रखें, अंधेरे का ही पर्दा नहीं होता, प्रकाश का भी पर्दा होता है। तेज प्रकाश आ जाए, तो कई चीजें दिखाई पड़नी बंद हो जाती हैं। सूरज की चकाचौंध थी, उसमें ये तारे दिखाई नहीं पड़ते थे।
आप एक काम करें; दिन में किसी गहरे कुएं में उतर जाएं। कुआं इतना गहरा होना चाहिए कि नीचे अंधेरा हो। कुएं में खड़े हो जाएं और आकाश को देखें। आप चकित हो जाएंगे। कुएं के भीतर से जो आकाश दिखाई पड़ेगा, उसमें आपको तारे दिन की दोपहरी में भी दिखाई पड़ेंगे। कुएं के अंधेरे में उतरकर जब आप देखते हैं ऊपर, तो जो तारे रोशनी में नहीं दिखाई पड़ रहे थे, वे अंधेरे से दिखाई पड़ने लगते हैं। अंधेरा कंट्रास्ट बन जाता है।
ठीक ऐसी ही घटना भीतर भी घटित होती है। जब कोई अपने ही अंधेरे के गर्त में उतर जाता है, अंधेरे के कुएं में नीचे और नीचे, और ऊपर उठकर देखता है, तो अपने ही शीर्ष पर जो चांद सदा से छिपा है, उसकी झलक उसे इतनी साफ दिखाई पड़ती है, जितनी साफ इस अंधेरे के कुएं के बाहर रहकर कभी दिखाई नहीं पड़ी थी, पता ही नहीं चला था। विपरीत की पृष्ठभूमि में चीजें बहुत साफ होकर दिखाई पड़ती हैं। इस अंधेरे से झलक मिलती है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर!

चंद्रमा की एक ज्योति उसे उपलब्ध होती है, चंद्रमा उपलब्ध नहीं होता। चंद्रमा तो उपलब्ध होता है उत्तरायण के व्यक्ति को। इस व्यक्ति को तो चंद्रमा की ज्योति दिखाई पड़ती है, बड़ी प्रकट, बड़ी स्पष्ट। उसे यह उपलब्ध होती है। और स्वर्ग में अपने कर्मों का फल भोगकर वापस लौट आता है। स्वर्ग के संबंध में दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए।
एक, स्वर्ग दोहरा अर्थवाची है। एक तो स्वर्ग उस अवस्था का नाम है, जहां दुख का हमने सब भांति निषेध कर दिया और केवल सुख का एक छोटा-सा कोना बचा लिया। सब दुख बंद कर दिए और केवल सुख को बचा लिया। पीछे छिपे रहेंगे दुख, जा नहीं सकते, क्योंकि वे सुख के ही हिस्से हैं। हमने एक ऐसा घर बना लिया, जिसमें हमने सिक्के चांदी के लगाकर उनका मुख अपनी तरफ कर लिया और पीठ पीछे की तरफ कर दी। हम उस घर के भीतर छिपकर खड़े हो गए। अब हम कह सकते हैं कि हमारे सभी सिक्कों में एक ही पहलू है। शक्ल वाला हिस्सा हमें दिखाई पड़ता है, पीठ पीछे है। लेकिन पीठ पीछे मौजूद है, बहुत जल्द वह पीठ हमें अनुभव में आनी शुरू हो जाएगी। वही लौटना है वापस।
स्वर्ग का एक अनुभव है, दुख को छिपाकर सुख को पूरी तरह बचा लेने की स्थिति। यह मानसिक अवस्था भी है, भौतिक अवस्था भी है। ऐसे स्थान हैं इस विश्व में, जिन स्थानों पर ऐसे सुख की अधिकतम संभावना है। ऐसे स्थान हैं इस विश्व में, जहां इससे विपरीत दुख ही दुख हैं, उनकी संभावना है। लेकिन जो व्यक्ति भी ऐसी अवस्था को, या ऐसी स्थिति को, या ऐसे स्थान को उपलब्ध होता है, उसके पास संचित पूंजी है, वह उसे खर्च करके वापस लौट आता है। नर्क से भी लौट आता है आदमी, पाप की सारी पूंजी खर्च करके। स्वर्ग से भी लौट आता है आदमी, पुण्य की सारी पूंजी खर्च करके।
अब एक बात यहां ख्याल ले लें। जब भी आप पाप करते हैं, तो संकल्प की कमी
के कारण करते हैं। आपने तय किया है कि चोरी नहीं करूंगा, लेकिन हीरा पड़ा हुआ मिल जाता है। संकल्प कहता है, मत करो; लेकिन वासना कहती है, यह मौका चूकने जैसा नहीं। कसम फिर खा लेना, व्रत फिर ले लेना; यह हीरा फिर दुबारा मिले न मिले। व्रत तो कभी भी लिया जा सकता है। तोड़ भी दिया, तो पश्चात्ताप की व्यवस्था हो सकती है। प्रायश्चित्त कर लेना; कुछ दान-पुण्य कर देना। जो चाहो, कर देना, लेकिन इसे मत छोड़ो। पाप सदा ही संकल्प की कमी से होते हैं, ध्यान रखना; संकल्प की कमी से।
मुल्ला नसरुद्दीन का बाप उसे समझा रहा है कोई दवा लेने को। अभी लड़का
ही है वह। और बाप उससे कह रहा है कि यह दवा तुझे पीनी ही पड़ेगी। और देख, ध्यान रख, माना कि यह कड़वी है, लेकिन आदमी को संकल्पवान होना चाहिए। विल पावर होनी चाहिए आदमी में। जब मैं तेरी उम्र का था, तो कितनी ही कड़वी दवा हो, जब मैं एक दफा तय कर लेता था कि पीऊंगा, तो पीकर ही रहता था।
नसरुद्दीन ने कहा, मैं भी संकल्प में आपसे पीछे नहीं हूं। जब मैं एक दफा तय कर लेता हूं कि नहीं पीऊंगा, तो नहीं ही पीता हूं!
संकल्प का अर्थ है, जो तय कर लिया, वह कर लिया।
सब पाप--क्योंकि पापी से पापी व्यक्ति भी पाप करने का तय कभी नहीं करता, हालांकि पाप कर लेता है। यह ख्याल में रखना आप। पापी से पापी व्यक्ति भी पाप करने का तय नहीं करता, तय तो सदा पुण्य करने का ही करता है, लेकिन पाप कर लेता है। सब पाप संकल्प की कमी से पैदा होते हैं। संकल्प की कमी नर्क का द्वार है।
सब पुण्य संकल्प की सामर्थ्य से पैदा होते हैं, इसलिए संकल्प स्वर्ग
की कुंजी है।
लेकिन मोक्ष न संकल्प से मिलता और न संकल्प की कमी से मिलता। संकल्प
की कमी भी संकल्प की ही कमी है। वहां भी संकल्प मौजूद है, कमजोर, दीन-हीन, कुटा-पिटा, लेकिन मौजूद है। मोक्ष मिलता है संकल्प के विसर्जन से, संकल्प के पूर्ण विसर्जन से, संकल्प के समर्पण से, सरेंडर से।
तीन बातें। संकल्प हो पूरा, तो आदमी दक्षिणायण के पथ पर विकसित हो जाता है। संकल्प न हो पूरा, तो आदमी प्रकृति के मार्ग पर ही भटकता रहता है।
अगर संकल्प बहुत कमजोर हो, तो भटकता है, भटकता है, नर्क बना लेता है।

संकल्प मजबूत हो, तो स्वर्ग निर्मित कर लेता है। लेकिन स्वर्ग से भी वापसी है, नर्क से भी वापसी है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, इस मार्ग को गया हुआ व्यक्ति भी अपने कर्मों के
फल को भोगकर वापस लौट आता है। क्योंकि जगत के ये दो प्रकार, शुक्ल और कृष्ण अर्थात देवयान और पितृयान की गति अर्थात मार्ग सनातन माने गए हैं। इनमें एक के द्वारा गया हुआ पीछे न आने वाली गति को प्राप्त होता है; और दूसरे के द्वारा गया हुआ पीछे आता है अर्थात जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है। संक्षिप्त में, एक है हमारे कर्मों की उपलब्धि, हमारे किए हुए का फल। बुरा होगा तो बुरा मिल जाएगा, भला होगा तो भला मिल जाएगा, लेकिन है हमारे कर्मों का किया हुआ। जो हम कर्म से करते हैं, वह चुक जाएगा।
हमारा किया हुआ शाश्वत नहीं हो सकता। कितनी ही बड़ी संपदा हो, चुक जाएगी। कितने ही बड़े पुण्य हों, खर्च हो जाएंगे, भोग लिए जाएंगे। कितना ही बड़ा सुख हो, रिक्त हो जाएगा। सागर भी बूंद-बूंद गिरकर रिक्त हो सकता है। क्योंकि सागर भी बूंद-बूंद गिरकर ही भरता है। कितना ही महापुण्य हो, कितना ही दूर-दूर, वर्षों-वर्षों, जन्मों-जन्मों तक चलने वाला सुख हो, चुक ही जाता है। और चुककर हम वापस रिक्त, दीन-हीन, वहीं खड़े हो जाते हैं, जहां से हमने एक दिन संकल्प करके उसे कमाया था। कर्म शाश्वत को नहीं देते, कर्म नित्य को नहीं देते। कर्म जो भी देते हैं, वह क्षणिक है। वह क्षण कितना ही लंबा हो सकता है।
और एक मजे की बात है कि स्वर्ग कितना ही लंबा हो, क्षणिक से ज्यादा कभी नहीं होता। यह थोड़ा कठिन लगेगा। वही काल का रहस्य फिर थोड़ा ख्याल में लेना पड़ेगा। स्वर्ग कितना ही लंबा हो, क्षण से ज्यादा नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि जितना ज्यादा सुख हो, उतना ही समय छोटा मालूम पड़ता है।
मैंने पीछे कहा आपको कि सुख ज्यादा हो, समय छोटा हो जाता है। दुख ज्यादा हो, समय लंबा हो जाता है। ईसाई कहते हैं कि नर्क इटरनल है, शाश्वत है; वहां से कोई छूट नहीं सकता।
बर्ट्रेंड रसेल ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि ईसाइयों की यह बात मुझे बहुत अनजस्टीफाइड मालूम होती है, बहुत न्यायपूर्ण नहीं मालूम होती, अन्यायपूर्ण मालूम होती है। क्योंकि मैंने कितने ही पाप किए हों, लेकिन मेरे कितने ही पापों की कितनी ही बड़ी संख्या हो, तो भी मुझे सदा के लिए नरक में डालना न्यायपूर्ण नहीं हो सकता। मैंने जितने पाप किए हैं, उस अनुपात में मुझे नरक में डाला जाना चाहिए।
और रसेल ने कहा है कि मैंने जितने पाप किए, अगर उनको जोड़ लूं; और जो मैंने नहीं किए और सिर्फ सोचे, करना चाहता था, नहीं कर पाया, उनको भी जोड़ लूं और सबको प्रकट कर दूं, तो इस जमीन पर सख्त से सख्त कानून की व्यवस्था भी मुझे चार-पांच साल से ज्यादा की कैद नहीं दे सकती।
आदमी भला था। और वह ठीक कह रहा है। चार-पांच साल भी ज्यादा कह रहा है; इतनी भी सजा उसको नहीं दी जा सकती।
तो रसेल का कहना ठीक है कि जब मैं कहता हूं कि मेरे सारे पापों का हिसाब लगा लिया जाए, जो मैंने किए; और जो मैंने सोचे, वे भी जोड़ लिए जाएं; तो भी सख्त से सख्त कानून मुझे पांच साल का कठोर दंड दे सकता है। तो मुझे शाश्वत, सदा के लिए, इटरनली नरक में डालने वाली ईसाइयत अन्यायपूर्ण मालूम पड़ती है।
बर्ट्रेंड रसेल को कोई ईसाई जवाब नहीं दे सका, क्योंकि रसेल आदमी बहुत पुण्यात्मा था। अच्छे से अच्छे, भले से भले लोगों में एक था। जिनको हम शुभ और नैतिक से नैतिक व्यक्ति कहें, परम नैतिक, वैसा व्यक्ति था। तो ऐसे व्यक्ति को ईसाइयत जवाब न दे पाई।
बात तो साफ दिखाई पड़ती है। हिटलर को भी अगर नर्क में डालना हो, तो भी सदा के लिए डालना अन्यायपूर्ण मालूम पड़ेगा। कितना ही पाप हो, आखिर एक अनुपात है, उस अनुपात में दंड मिलना चाहिए। लेकिन ईसाइयत जवाब नहीं दे पाई, क्योंकि ईसाइयत को काल का जो रहस्य है, उसका स्पष्टीकरण नहीं है।
जब मैंने रसेल का यह वक्तव्य पढ़ा, तो रसेल मर चुका था। जिंदा होता, तो मैं उससे कहना चाहता कि नर्क चाहे क्षणभर के लिए मिले, इटरनल मालूम पड़ता

है। चाहे क्षणभर के लिए कोई नर्क में जाए, तो ऐसा लगता है, अब इसका अंत कभी नहीं होगा।
नरक शाश्वत नहीं है, लेकिन नरक की प्रतीति सभी को शाश्वत जैसी मालूम पड़ती है। और स्वर्ग भी क्षणिक नहीं, लेकिन स्वर्ग की प्रतीति सभी को क्षणिक जैसी मालूम पड़ती है। क्योंकि सुख समय को छोटा कर देता है, दुख समय को लंबा कर देता है। और नर्क का अर्थ है, परम दुख, तो समय बहुत लंबा हो जाएगा, ओर-छोर दिखाई नहीं पड़ेंगे। और स्वर्ग का अर्थ है, परम सुख, समय बिल्कुल सिकुड़ जाएगा और क्षण में स्वर्ग बीत जाएगा।
पर आदमी के किए हुए कर्म सभी चुक जाते हैं। क्या ऐसा भी कुछ है आदमी के जीवन में, जो उसके कर्म से नहीं मिलता? जो उसका किया हुआ नहीं है? अगर ऐसा कुछ है, तो आदमी उससे कभी वापस नहीं लौटेगा।
इसलिए संकल्प के मार्ग से गया हुआ व्यक्ति वापस लौट आएगा, क्योंकि संकल्प है आदमी का कर्म।
समर्पण के मार्ग से गया हुआ व्यक्ति कभी वापस नहीं लौटेगा, क्योंकि समर्पण के मार्ग पर जो घटना घटती है, वह व्यक्ति के कर्म का फल नहीं, व्यक्ति के समर्पण का फल है। और समर्पण कर्म नहीं है, समस्त कर्मों का विसर्जन है। असल में समर्पण से जो उपलब्ध होता है, वह प्रभु-प्रसाद है, वह ग्रेस है, वह अनुकंपा है। संकल्प से जो मिलता है, वह मेरी उपलब्धि है। समर्पण से जो मिलता है, वह मैं मिट जाता हूं, तब मिलता है; वह मेरी उपलब्धि नहीं है, वह मेरे खो जाने की उपलब्धि है।
जीसस ने कहा है, जो अपने को बचाएंगे, वे खो देंगे; और जो अपने को खो देते हैं, वे सदा के लिए अपने को बचा लेते हैं।
आज इतना ही।
लेकिन जाएंगे नहीं। इस चांद की रात में पांच मिनट हम कीर्तन करेंगे।
और फिर जाएंगे। अपनी जगह पर बैठे रहें। उठकर आगे आने की कोशिश न करें। अब तो चांद में हम सब दिखाई भी पड़ने लगे हैं। थोड़ा उत्तरायण शुरू हुआ। थोड़े अपनी जगह बैठे रहें। हमारे संन्यासी तो खड़े होंगे, वे कीर्तन करेंगे। आप भी साथ दें। और फिर हम विदा होंगे।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 8
ग्यारहवां प्रवचन

तत्वज्ञ--कर्मकांड के पार

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।। 27।।
वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।। 28।।
और हे पार्थ, इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता हुआ, कोई भी योगी मोहित नहीं होता है। इस कारण हे अर्जुन, तू सब काल में योग से युक्त हो अर्थात निरंतर मेरी प्राप्ति के लिए साधन करने वाला हो।
क्योंकि योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर, वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दानादि के करने में जो पुण्यफल कहा है, उस सब को निस्संदेह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परम पद को प्राप्त होता है।

प्रभु की खोज में, परम सत्य की खोज में दो मार्गों की बात हमने समझी।
उस संबंध में दो-तीन बातें और भी ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं। और तब आसान होगा आज के इस अक्षर ब्रह्म योग अध्याय के अंतिम दो सूत्रों को समझने में। इधर सिग्मंड फ्रायड ने विगत आधी सदी में शायद गहनतम प्रभाव आदमी के मस्तिष्क पर छोड़ा है। सिग्मंड फ्रायड इधर तीन सौ वर्षों में तीन बड़े नामों में से एक है। एक व्यक्ति है गैलीलियो, दूसरा व्यक्ति है चार्ल्स डार्विन और तीसरा व्यक्ति है सिग्मंड फ्रायड। इन तीन व्यक्तियों ने मनुष्य की चेतना और मनुष्य के जीवन को आमूल बदलने की दृष्टि दी है। सिग्मंड फ्रायड की जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोज है, वह खोज है, डिस्कवरी आफ दि अनकांशस, आदमी के भीतर जो अचेतन है, उसकी खोज। आदमी का मन, जैसा हम जानते हैं उसे, वह केवल ऊपर की पर्त है, चेतन मन, कांशस माइंड है। उससे गहरी पर्त, उससे नीचे दबा हुआ मन, जो कि ज्यादा महत्वपूर्ण, ज्यादा प्रभावशाली और जड़ों में छिपा है, और जिससे हम चालित होते हैं जीवनभर, जिससे हम चलते, उठते, बैठते और काम करते हैं, वह गहरा मन अनकांशस है, अचेतन है। फ्रायड ने उस अचेतन के महाद्वीप को खोजा है।
यह खोज बड़ी आकस्मिक थी। फ्रायड ऐसे तो खोज कर रहा था काम-विकारों के संबंध में, सेक्स परवरशंस के संबंध में आदमी के चित्त में जितनी विक्षिप्तताएं पैदा होती हैं, उनमें से कोई नब्बे प्रतिशत उसकी कामवासना की विकृतियां हैं। तो फ्रायड तो चिकित्सक की भांति, आदमी के काम-विकार क्यों पैदा होते हैं, इसकी खोज में लगा था।
इस खोज में उतरते-उतरते अचानक ही उसे मनुष्य के मन के नीचे छिपे हुए
मन का पता चला। वह मन इस मन से बहुत बड़ा है, जिसे हम समझते हैं, मैं हूं। जैसे कि हम एक बर्फ की चट्टान पानी में डाल दें, तो नौ हिस्सा चट्टान नीचे डूब जाती है, एक हिस्सा ऊपर रहती है। फ्रायड ने अनुभव किया कि जिस मन को हम अपना सब कुछ समझकर बैठे हुए हैं, वह एक हिस्सा है, और नौ हिस्सा हमारा असली मन नीचे अंधेरे में डूबा हुआ है।
फ्रायड के शिष्य और बाद में फ्रायड से अलग और विरोध में हो गए कार्ल गुस्ताव जुंग ने इस अनकांशस, इस अचेतन मन की और भी गहरी खोज की। और उसे पता चला कि अचेतन के नीचे और भी गहरा अचेतन छिपा है, जिसे उसने कलेक्टिव अनकांशस, समूह-अचेतन का नाम दिया। उसने कहा कि व्यक्ति के मन के नीचे एक मन है, जो अचेतन है। अचेतन के नीचे भी और गहरा मन मालूम पड़ता है, जो कि समूह-अचेतन है। सबका अचेतन जुड़ा हुआ है।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं, ताकि आपको दक्षिणायण की पूरी की पूरी धारणा वैज्ञानिक रूप से समझ में आ जाए। फ्रायड और जुंग जो काम किए हैं, वह दक्षिणायण के पथ पर है।

अगर हम मनुष्य के अचेतन में प्रवेश करेंगे, तो हम नीचे उतरते जाते हैं। लेकिन मनुष्य के अचेतन की भांति ही मनुष्य का अति-चेतन, सुपर-कांशस माइंड भी है। यदि हम ऊपर की तरफ यात्रा करें, तो सुपर-कांशस, अति-चेतन मन की यात्रा शुरू होती है।
अब हम ऐसा समझ लें कि जिस मन से हम परिचित हैं, वह मन है चेतन; उससे नीचे उतरें, तो अचेतन; और भी नीचे उतरें, तो समूह-अचेतन। ऊपर बढ़ें, तो अति- चेतन; और ऊपर बढ़ें, तो ब्रह्म-चेतन।
उत्तरायण का पथ अभी भी वैज्ञानिक रूप से आविष्कृत नहीं हुआ है। दक्षिणायण का पथ वैज्ञानिक रूप से भी आविष्कृत हो गया है। और अगर दक्षिणायण का पथ ही आविष्कृत रहा, तो पश्चिम अपना आत्मघात कर लेगा। क्योंकि नीचे उतरने का पता चल जाए और ऊपर चढ़ने का पता न हो और ऐसा अनुभव में आने लगे कि नीचे उतरना ही स्वाभाविक है, तो मनुष्य जाति की सारी संभावनाएं विलुप्त हो जाएंगी।
पश्चिम में आज जो हमें नैतिक ह्नास और आध्यात्मिक पतन दिखाई पड़ता है, उसका वास्तविक कारण पश्चिम का भौतिकवाद नहीं है, मैटीरियलिज्म नहीं है। वस्तुतः तो जब कोई समाज बहुत भौतिक हो जाता है, तो वहां आध्यात्मिक जागृति शुरू होती है। क्योंकि जैसे ही भौतिक सुविधाएं उपलब्ध होती हैं, उन सुविधाओं की व्यर्थता भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। जैसे ही धन मिलता है, धन की सार्थकता खो जाती है। और जैसे ही हम सब कुछ पा लेते हैं वस्तुओं के जगत में, वैसे ही पता चलता है कि आत्मा वस्तुओं से घिर गई है, लेकिन आत्मा बिल्कुल खाली, रिक्त और अर्थहीन हो गई है। भौतिकवाद तो अध्यात्म के लिए बड़ी गहरी स्फुरणा बन जाती है।
इसलिए जब भी कोई समाज भौतिक रूप से समृद्ध होता है, तो उसका अंतिम शिखर आध्यात्मिक होता है। गरीब समाज आध्यात्मिक होने में बड़ी कठिनाई अनुभव करता है। क्योंकि गरीब को अनासक्त होना अति कठिन मालूम पड़ता है। जिसके पास छा.ेडने को कुछ नहीं है, निश्चित ही उसे छोड़ना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है। और जिसके पास है ही नहीं, उसकी अनासक्ति का कोई बहुत मूल्य भी नहीं मालूम होता। और जिसके पास कुछ भी नहीं है, उसकी अनासक्ति बहुत गहरे में संतोष होती है, कंसोलेशन होती है। लेकिन जिसके पास है, उसकी अनासक्ति केवल संतोष और कंसोलेशन, सांत्वना नहीं होती; उसकी अनासक्ति एक आंतरिक उपलब्धि होती है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि गरीब आदमी अध्यात्म को उपलब्ध नहीं हो सकता। गरीब व्यक्ति तो उपलब्ध हो सकता है, गरीब समाज उपलब्ध नहीं हो पाता। गरीब व्यक्ति, व्यक्तिगत बात है। लेकिन यह गरीब व्यक्ति भी अपने अन्य जन्मों में धन को जाना हो, तो ही इस जन्म में धन से मुक्त हो सकता है। हम जो जान लेते हैं, उसी से मुक्त होते हैं। ज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति का कोई भी उपाय नहीं है।
लेकिन धनी समाज पूरा का पूरा धन से, वस्तुओं से, पदार्थ से गहरी विरक्ति से भर जाता है।
पश्चिम का पतन, पश्चिम की नैतिक गिरावट, भौतिकवाद का परिणाम नहीं है। पश्चिम की नैतिक गिरावट का मूल कारण है, पश्चिम ने दक्षिणायण, नीचे की तरफ उतरने वाली पद्धति और मार्ग को तो खोज लिया है; और ऊपर की तरफ जाने वाली पद्धति को खोजने की पहली किरण भी पश्चिम में अभी नहीं उतरी है।
लेकिन पश्चिम के विचारशील मनुष्यों को संदेह पैदा हो गया है। यदि मन
के नीचे पर्तें हो सकती हैं, तो मन के ऊपर भी पर्तें हो सकती हैं। कल तक, केवल साठ-सत्तर वर्ष पहले तक पश्चिम का कोई विचारक मानने को राजी नहीं था कि जो मन हम जानते हैं, इसके अलावा भी कोई मन हो सकता है। लेकिन नीचे उतरकर पश्चिम को अनुभव में आया है कि बहुत अंधेरी पर्तें मनुष्य की हैं, वे भी हैं। और वे ज्यादा शक्तिशाली हैं और मनुष्य की गर्दन उनके हाथों में है। अगर इतना ही अनुभव हमारा रहा... ।
और पश्चिम का विचार पूरब पर भी छाता चला जा रहा है। आज पूरब का विचारशील, शिक्षित, सुसंस्कृत व्यक्ति भी पूरब का मनुष्य नहीं है। वह भी पश्चिम की पैदावार है, वह भी पश्चिम की ही बाइप्रोडक्ट है। पूरब के

विश्वविद्यालय, पूरब के शिक्षाशास्त्री पूरब के संबंध में शायद ही कुछ जानते हैं। वे जो भी जानते हैं, सब पश्चिम से आया हुआ, निर्यात किया हुआ है। और वह भी सेकेंड हैंड, वह भी बासा। क्योंकि पश्चिम में जो बीस-तीस साल पुराना हो जाता है--उसके पूरब में आते-आते इतना वक्त लग जाता है--जब वह वहां आउट आफ डेट हो जाता है, फिंक जाता है कचरे में, तब यहां के विश्वविद्यालय उसे अपनी टेक्स्ट बुक्स में रखना शुरू करते हैं।
यह स्वाभाविक है। जो भी लोग उधार जीते हैं, उन्हें इतना पीछे जीना ही पड़ेगा। पश्चिम की टेबल से जो भोजन नीचे गिरा दिए जाते हैं, वे पूरब के भिक्षापात्र में गिर जाते हैं। पश्चिम जिन बातों को व्यर्थ मानकर छोड़ देता है, जब तक वह व्यर्थ मान पाता है, तब तक हम उनको समझकर सार्थक मानने की स्थिति में आ पाते हैं।
पश्चिम के फ्रायड और जुंग की खोजों ने मनुष्य के नीचे उतरने की सीढ़ियां तो बहुत साफ कर दीं, लेकिन बहुत खतरनाक स्थिति हो गई है। इस नीचे के मन को जानकर ऐसा लगना शुरू हुआ पश्चिम के मनसविद को कि आदमी का नीचे उतरना बिल्कुल ही स्वाभाविक है और आदमी के चेतन मन की कोई भी सामर्थ्य नहीं है। अचेतन शक्तिशाली है और अचेतन के हाथों में जीना ही स्वस्थ होने का उपाय है। और जो व्यक्ति अपने अचेतन से लड़ेगा, वह विक्षिप्त होगा, परवर्ट होगा, विकृत होगा, रुग्ण हो जाएगा।
मैंने सुना है कि एक मानसिक बीमार था। उसे एक आदत थी, एक आब्सेशन था कि
जब भी वह किसी शराबघर में या चायघर में या काफीघर में जाता, तो आधा गिलास तो पी लेता, और आधा गिलास दुकान के मालिक के ऊपर उंडेल देता। अनेक लोगों ने उसे सलाह दी। और फिर वह क्षमा मांगता और कहता कि मेरी मजबूरी है; मैं कर नहीं पाता कुछ और। यह मुझे करना ही पड़ता है। यह मेरे भीतर से कोई करवा लेता है।
एक दुकान में उसने यही किया, शराबघर में, आधा गिलास मालिक के ऊपर उंडेला। तो मालिक नाराज हुआ और उस मालिक ने कहा, अच्छा हो कि तुम किसी मनसविद की सलाह लो, किसी साइकोएनालिस्ट, किसी मनोविश्लेषक के पास जाओ। यह तो बड़ी खतरनाक बात है!
छः महीने बाद वह आदमी दुबारा आया। बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ रहा था। आकर उसने फिर एक गिलास में शराब ली। आधी पी और आधी बड़े आनंद से फिर मालिक के ऊपर उंडेली। मालिक ने कहा, हद्द हो गई। मैंने तो सुना था कि तुमने मनोविश्लेषक के पास जाना शुरू कर दिया। और छः महीने से तुम इलाज करवा रहे हो!
उस आदमी ने कहा कि निश्चित ही छः महीने से मैं इलाज करवा रहा हूं और मुझे बड़ा फायदा हुआ है। उस दुकानदार ने कहा, फायदा कोई दिखाई नहीं पड़ता। फिर तुमने वही काम किया! उसने कहा, वही काम किया, लेकिन अब मैं पश्चात्ताप जरा भी नहीं करता हूं। नाउ आई डोंट फील गिल्टी। क्योंकि मनसविद ने मुझे समझा दिया है कि यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह होगा ही। इसे तुम नार्मल समझो। इसमें कुछ एबनार्मल नहीं है। अब मुझे पश्चात्ताप नहीं होता है। पश्चिम की पूरी की पूरी विकृति का कारण यह है कि पश्चिम में मनसविद ने
यह समझा दिया है लोगों को कि तुम जो भी कर रहे हो--अगर तुम होमोसेक्सुअल हो, अगर तुम समलिंगी-काम से पीड़ित हो, अगर तुम हर रोज अपनी पत्नी को बदलना चाहते हो, अगर तुम पत्नी के साथ उलटे-सीधे कामवासना के प्रयोग करना चाहते हो--तो यह सब स्वाभाविक है, क्योंकि यह मनुष्य के अचेतन में छिपा पड़ा है। यह होगा ही। और अगर तुमने यह नहीं किया, तो तुम रुग्ण हो जाओगे। यह तुम्हें करना ही चाहिए, तो ही तुम सामान्य, स्वस्थ रह पाओगे।
पश्चिम में जो सारा उपद्रव का जाल फैला है, वह भौतिकवाद का परिणाम नहीं, पश्चिम में फ्रायड की खोज का--अधूरी खोज का--स्वाभाविक रूप से हुआ घातक फल है। अधूरी खोज सदा ही घातक होती है। आधा ज्ञान सदा ही खतरनाक सिद्ध होता है। आधा ज्ञान कभी-कभी तो आत्मघाती होता है।
कृष्ण ने दोनों मार्गों की सीधी बात की है। ऊपर का मार्ग साफ न हो, तो अच्छा है कि नीचे के मार्ग से हम परिचित ही न हों। ऊपर का मार्ग स्पष्ट हो जाए, तो नीचे के मार्ग की कठिनाई समाप्त हो जाती है।

तो कृष्ण कहते हैं, हे पार्थ, इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता हुआ, कोई भी योगी मोहित नहीं होता है।
इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता हुआ, कोई भी योगी मोहित नहीं होता है। जिस व्यक्ति ने, जिस साधक ने इन दोनों तत्वों को, इन दोनों मार्गों को उनकी आंतरिक गहनता में स्पष्ट रूप से जान लिया, पहचान लिया, अनुभव कर लिया, वह मोहित नहीं होता है।
यह मोहित होने की बात को थोड़ा ख्याल में ले लें। इस मोहित होने का क्या अर्थ होगा? जिसने इन दोनों मार्गों को जान लिया, वह मोहित नहीं होता है। जो एक को जानेगा, वह मोहित हो सकता है।
मोह का मैकेनिज्म, मोह की जो यांत्रिक प्रक्रिया है, वह ख्याल में ले लें।
मोहित हम सदा विपरीत से होते हैं। मोहित हम सदा विपरीत से होते हैं--
दि अपोजिट इ.ज आलवेज दि अट्रैक्शन। और हर आदमी जिससे मोहित होता है, वह उसके विपरीत होता है। यह विपरीत का नियम जीवन के समस्त पहलुओं पर लागू होता है। पुरुष स्त्रियों में आकर्षित होते हैं, उनकी विपरीतता के कारण। स्त्रियां पुरुषों में आकर्षित होती हैं, उनकी विपरीतता के कारण।
आप हैरान होंगे यह जानकर कि आप जो कुछ भी जीवन में पसंद करते हैं; जिसको आप कहते हैं, मैं बहुत पसंद करता हूं--आपको ख्याल में ही न होगा--वह आपसे विपरीत चीज है। इसलिए जिसको आप पसंद करते हैं, अगर उससे दूर रहें, तो पसंदगी जारी रह सकती है। जिसे आप पसंद करते हैं, अगर उसके ही साथ रहने लगें, तो कलह अनिवार्य है। क्योंकि जो विपरीत है, उससे आप आकर्षित हो सकते हैं, लेकिन साथ नहीं रह सकते। क्योंकि साथ रहने पर विपरीत से कलह होनी शुरू हो जाएगी। जो विपरीत है, उससे संघर्ष होगा ही।
यह बड़े मजे की बात है। यह आदमी के मन का बहुत पैराडाक्सिकल हिसाब है
कि विपरीत से आकर्षित होते हैं, लेकिन विपरीत के साथ रह नहीं सकते। आकर्षण दूर पर होता है, पास आने पर संघर्ष शुरू हो जाता है। वस्तुतः हमें जो आकर्षित करता है, बहुत गहरे में हम उससे भयभीत हो जाते हैं। और जो हमें आकर्षित करता है, बहुत गहरे में हमें वह शत्रु भी मालूम पड़ता है। क्योंकि हम उसके गुलाम हो जाते हैं, और उसका आकर्षण हमारे ऊपर पजेशन, मालकियत बन जाता है।
लेकिन सभी मोह, सभी अटैचमेंट, विपरीत से, अपोजिट से होता है। ठीक अपने समान व्यक्ति को आप प्रेम नहीं कर सकते। समान एक-दूसरे को रिपेल करते हैं। जैसे कि चुंबक, ऋण और धन एक-दूसरे को खींचते हैं। धन और धन को अगर पास लाएं, तो एक-दूसरे को खींचते नहीं हैं। ऋण और ऋण, एक-दूसरे को खींचते नहीं हैं। खिंचावट के लिए ऋण और धन चाहिए। निगेटिव और पाजिटिव पोल एक-दूसरे को खींचते हैं। समानजातीय, समानधर्मा व्यक्ति एक-दूसरे को खींचते नहीं। इसलिए बहुत आश्चर्य की बात नहीं है कि बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति
एक ही समय में हों, लेकिन एक-दूसरे के पास बिल्कुल नहीं आते। पोलेरिटी नहीं है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है, अक्सर ऐसा होता है कि समानधर्मा व्यक्ति एक-दूसरे से फासले पर ही बने रहते हैं। विपरीत आकर्षित हो जाते हैं और निकट आ जाते हैं। विपरीत ही आकर्षण का सूत्र है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो इन दोनों मार्गों को तत्व से जानता है!
तत्व से जानने का अर्थ है, वन हू हैज एक्सपीरिएंस्ड; जिसने अनुभव से जाना, वही तत्व से जानता है। और जिसने अनुभव से नहीं जाना, वह केवल सिद्धांत से जानता है, तत्व से नहीं। तो सिद्धांत से तो कोई भी पढ़कर जान सकता है। लेकिन वह ज्ञान तत्व-ज्ञान नहीं है। वह ज्ञान नालेज नहीं है, एक्वेनटेंस है।
बर्ट्रेंड रसेल ने ज्ञान के दो विभाजन किए हैं। एक को कहा है नालेज, ज्ञान; और एक को कहा है एक्वेनटेंस, परिचय। तो जो हम सिद्धांत से जानते हैं, वह परिचय मात्र है, मियर एक्वेनटेंस। वह ज्ञान नहीं है। जिसको रसेल ने ज्ञान कहा है, उसी को कृष्ण तत्व से जानना कहते हैं। टु नो ए थिंग इन इट्स एलिमेंट, उसकी जो गहरी से गहरी तात्विकता है, उसकी जो गहरी से गहरी

बुनियाद है, उसमें ही जानना। अनुभव के अतिरिक्त बुनियाद में जानने का कोई उपाय नहीं है।
जो व्यक्ति इन दोनों मार्गों को अनुभव से जानता है, वह मोहित नहीं होता। क्योंकि जो दोनों को जान लेता है, उसके लिए विपरीत का आकर्षण विलीन हो जाता है।
इसे ऐसा समझें, जो व्यक्ति दक्षिणायण के मार्ग पर चलेगा, वह चलता रहे दक्षिणायण के मार्ग पर, लेकिन उसके चित्त में निरंतर ही आकर्षण उत्तरायण की तरफ बना रहेगा; विपरीत खींचता रहेगा। जो व्यक्ति उत्तरायण की तरफ चलेगा सीधा, बिना दक्षिणायण के अनुभव के, उस व्यक्ति को दक्षिणायण का मार्ग निरंतर ही आकर्षित करता रहेगा, बुलाता रहेगा, पुकारता रहेगा, बाधा बनता रहेगा। और सदा मार्ग में ऐसी अड़चनें आ जाएंगी, जब वह आदमी कभी उत्तरायण की तरफ, कभी दक्षिणायण की तरफ डोलने लगेगा। और जो व्यक्ति विपरीत की तरफ डांवाडोल होता रहे, वह अग्रसर नहीं हो पाता है।
इन दोनों मार्गों को जो उनके तत्व में जान लेता है, वह फिर मोहित नहीं होता है। वह इन दोनों मार्गों में ही मोहित नहीं होता है, ऐसा नहीं, वह समस्त विपरीतता के चक्कर से मुक्त हो जाता है।
संसार से मुक्त होने का गहनतम जो अर्थ है, वह है, मुक्त हो जाना संसार
की विपरीतता के नियम से, दि ला आफ दि अपोजिट। वह जो विपरीत खींचता है... । इसलिए योगी स्त्री को छोड़कर इसलिए नहीं जाता कि वह स्त्री है। या योगी स्त्री के साथ रहकर भी स्त्री को इसलिए नहीं छोड़ देता है कि वह स्त्री है। या अगर योगिनी है, तो पुरुष को छोड़कर इसलिए नहीं जाती, या पुरुष के साथ रहकर भी पुरुष का आकर्षण इसलिए नहीं छोड़ देती कि वह पुरुष है, बल्कि इसलिए कि वह अपोजिट है, वह विपरीत है।
और विपरीत से मुक्त हुए बिना कोई भी व्यक्ति शांत नहीं हो सकता। मोह
से मुक्त हुए बिना, निर्मोह हुए बिना कोई भी व्यक्ति शांत नहीं हो सकता। क्योंकि वह दूसरा खींचता ही रहेगा। और जब आप एक तरफ होते हैं, तब दूसरा आपको खींचता है; जब आप दूसरी तरफ जाते हैं, तब जिससे आप हट गए हैं, वह आपको पुनः खींचने लगता है। पूरा जीवन इसी तरह घड़ी के पेंडुलम की तरह दो अतियों के बीच में डांवाडोल होता है। जिसे छोड़ देते हैं, वह फिर आकर्षक हो जाता है, फिर पुकारने लगता है, फिर बुलाने लगता है।
पश्चिम के मनोवैज्ञानिक दंपतियों को सलाह देते हैं कि अगर पत्नी से न
बन रही हो ठीक, या पति से ठीक न बन रही हो, तो थोड़ी देर के लिए दूसरे स्त्री- पुरुषों के साथ प्रेम के अस्थायी संबंध निर्मित कर लेने चाहिए।
बड़ी हैरानी की बात है। क्योंकि कोई स्त्री यह नहीं सोच सकती कि उसका पति, जब उससे नहीं बन रही है, अगर किसी और स्त्री के थोड़े-बहुत दिन के प्रेम में पड़ जाए, तो इससे कुछ लाभ होगा। इससे तो बात बिल्कुल टूट जाएगी।
लेकिन पश्चिम का मनोवैज्ञानिक ठीक कहता है। वह कहता है, दूसरी स्त्री
से थोड़े दिन संबंध बनाकर वह फिर अपनी स्त्री के प्रति आकर्षित हो जाता है; अतियों में डोल जाता है।
इसलिए पश्चिम में एक बहुत ही अजीब-सी घटना चल रही है, और वह यह है कि स्त्रियों की बदलाहट करनी--स्वोपिंग क्लब्स, जहां मित्र अपनी पत्नियों को बदलने का गुप्त प्रयोग करते रहते हैं। और हैरानी की बात है कि जिन पति- पत्नी के बीच नहीं बनता था, उनके बीच फिर से बनाव आ सकता है।
असल में जिससे हम दूर हटते हैं, उसके प्रति हम फिर आकर्षित होने लगते हैं। दूर हटना, पास आने की तरकीब है; पास आना, दूर जाने की व्यवस्था है। हर चीज ऐसे ही खींचती रहती है।
आज अमेरिका में करोड़पति परिवारों के बच्चे भिखमंगों की भांति सड़कों
पर घूमने सारी दुनिया में निकल पड़े हैं। गरीबी भी अब आकर्षण बन गई है। अमीरी बहुत है, तो गरीबी पुकारती है। विपरीत फिर खींचने लगता है।
तो जिसे परम मुक्ति चाहिए, उसे विपरीत से मुक्त होना पड़ेगा।
ये दो विपरीत मार्ग मनुष्य के भीतर हैं। यदि इनको तत्व से कोई जान ले,
तो इन दोनों का आकर्षण खो जाता है। और जब दोनों का ही आकर्षण खो जाता है, जब दोनों ही नहीं पुकारते, जब दोनों ही नहीं बुलाते, जब दोनों की विपरीतता

मिट जाती है, और दोनों ही एक सिक्के के पहलू मालूम पड़ने लगते हैं--उसी क्षण व्यक्ति परम मुक्ति को उपलब्ध हो जाता है; उसी क्षण। उस क्षण के बाद उसके लिए संसार में कोई भी अर्थ नहीं है। उसके बाद उसके लिए मोह, वासना और तृष्णा का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, तत्व से जानता हुआ कोई भी योगी फिर मोहित नहीं होता है। इस कारण हे अर्जुन, तू सब काल में योग-युक्त हो।
सब काल में, सब समय में, हर स्थिति में योग-युक्त हो। यहां योग-युक्त
का अर्थ दोनों अतियों के बीच मध्य में थिर हो जाना है; दो अतियों के बीच मध्य में थिर हो जाना है, निर्मोह हो जाना है।
जो पुकारते हैं आकर्षण के बिंदु, बहुत आसान है एक से दूसरे पर हट जाना। एक आदमी बहुत भोजन करता है, उसे उपवास आकर्षित करने लगता है। इसलिए उपवास जहां-जहां करवाया जाता है, वहां अक्सर ज्यादा भोजन करने वाले पेटू लोग चिकित्सा के लिए इकट्ठे होते हैं। आपके उरली कांचन में आप सदा पाएंगे, वे ही लोग वहां चिकित्सा के लिए आएंगे, जो ज्यादा खा गए हैं, ओवर फेड!
यह बड़े मजे की बात है कि जो भी समाज धनी होता है, वह ज्यादा खाने लगता है, तो उस समाज में उपवास सहज बन जाता है। हिंदुस्तान में जैनों के समाज में उपवास भारी चीज है। और उसका कुल कारण यह नहीं कि उपवास भारी चीज है; उसका कुल कारण यह है कि हिंदुस्तान में ओवर फेड, ज्यादा खाने वाला समाज जैनों का है। जहां भी ज्यादा भोजन होगा, वहां उपवास आकर्षित करने लगेगा। यह बड़े मजे की बात है कि गरीब समाज का जब धार्मिक दिन आएगा, तो उस दिन
वे अच्छा भोजन बनाएंगे। और अमीर समाज का जब धार्मिक दिन आएगा, तो उस दिन वे उपवास करेंगे, दि अपोजिट! अगर गरीब आदमी का धार्मिक दिन आएगा, मुसलमान का अगर धार्मिक दिन आएगा, तो वह नए, ताजे और रंगीन कपड़े पहनकर सड़क पर निकलेगा। और अगर अमीर धार्मिक का धर्म का दिन आ जाए, तो वह सादगी वरण करेगा, उस दिन वह सादा होगा।
वह जो विपरीत है, वह हमारे मन में जगह बना लेता है। वह जो विपरीत है, वह हमें खींचता रहता है। इसलिए ज्यादा खाने वाला उपवास में उत्सुक हो जाएगा। ज्यादा पहनने वाला नग्न होने की भी तैयारी दिखा सकता है।
लेकिन विपरीत पर चले जाने से अंत नहीं होता। विपरीत पर जो गया है, वह मोह के ही बंधन में गया है। इसलिए उलटे को मत चुनना। उलटे का चुनाव खतरनाक है। अगर चुनना ही हो, तो दोनों के मध्य को चुनना। दि एग्जेक्ट मिडिल इ.ज दि प्वाइंट आफ फ्रीडम। दो अतियों के बीच जो बिल्कुल ठीक मध्य है, वही मुक्त होने की जगह है।
अगर बहुत भोजन करते हों, तो उपवास को मत चुनना, सम्यक भोजन को चुनना; बीच में रुक जाना। वह कठिन होगा। उपवास आसान पड़ेगा, क्योंकि अति आसान है सदा। अगर क्रोधी आदमी है, तो क्षमावान बनना आसान है, अक्रोधी होना मुश्किल है। दूसरी तरफ जाना सदा आसान है। क्योंकि हम एक तरफ अति पर आकर मोमेंटम इकट्ठा कर लेते हैं। फिर पेंडुलम को छोड़ दो, वह अपने आप दूसरी तरफ चला जाता है। बीच में रुकना बहुत कठिन है।
योग-युक्त होने का अर्थ है, जो व्यक्ति सदा अतियों के बीच में खड़ा हो जाता है, वही योगी है। उसने ही जाना वह बिंदु, जहां से मुक्ति का आयाम शुरू होता है।
कृष्ण कहते हैं, इस कारण हे अर्जुन, तू सब काल में योग-युक्त हो और सदा
ही मेरी प्राप्ति के लिए साधन करने वाला हो।
यह बिंदु भी थोड़ा-सा कठिन है। हम सदा ही परमात्मा को संसार के विपरीत रखते हैं। हम सदा ही मोक्ष को संसार के विपरीत रखते हैं। हम सदा यही सोचते हैं कि संसार को छोड़ना है और परमात्मा को पाना है। हमारे मन में परमात्मा भी एक अपोजिट है, एक विपरीतता है, संसार के विपरीत। जो संसार से ऊब गया, वह कहता है, अब तो मुझे परमात्मा को पाना है। संसार के विपरीत हम परमात्मा के वैपरीत्य को खड़ा करते हैं, एक पोलर अपोजिट की तरह। एक आदमी कहता है, अब धन तो बहुत कर लिया, अब धर्म करना है।
लेकिन परमात्मा विपरीत नहीं है। और जिसका परमात्मा संसार के विपरीत है, उसका परमात्मा सांसारिक ही होगा। और जिसका परमात्मा संसार से उलटा है,

उसका परमात्मा संसार के बाहर नहीं है, विदिन दि पोलर अपोजिट; वह जो विपरीत है, उसके भीतर ही है। वह भी संसार की एक अति है।
इसलिए कृष्ण का जीवन बहुत अदभुत है। कृष्ण का जीवन उन थोड़े-से जीवन में से एक है, जो संसार के विरोध में नहीं हैं। कृष्ण का जीवन विरागी का जीवन नहीं है, और कृष्ण का जीवन रागी का जीवन भी नहीं है। और कृष्ण वहीं खड़े हैं, जहां सब रागी खड़े रहते हैं। और कृष्ण ऐसे खड़े हैं, जैसे विरागी खड़े रहते हैं। कृष्ण का जीवन, दो विपरीत के बीच मध्य की खोज है। इतना मध्यस्थ व्यक्ति पृथ्वी पर शायद ठीक दूसरा नहीं हुआ।
हम तो आमतौर से कहेंगे कि अगर कृष्ण शांतिवादी हैं, तो युद्ध में कदम नहीं रखना चाहिए। और अगर युद्धवादी हैं, तो फिर परमात्मा और दिव्यता और ब्रह्म, इनकी बात नहीं करनी चाहिए। दो में से कुछ एक साफ चुन लो।
हम तो कहते हैं, अगर कृष्ण कहते हैं, अनासक्ति ही जीवन का सूत्र है, तो
यह गोपियों के बीच नृत्य इनकंसिस्टेंट है, असंगत है। यह नहीं चलना चाहिए। यह बंद होना चाहिए। और अगर यह गोपियों के बीच नृत्य ही चलना है और यह बांसुरी ही बजनी है, और यह मोर-मुकुट बांधकर नाचना ही है, तो फिर अनासक्ति और योग और समाधि और ब्रह्म, इसकी चर्चा बंद कर देनी चाहिए। दो में से कुछ साफ चुन लो।
और कृष्ण कहते हैं, हम चुनेंगे ही नहीं। इसलिए कृष्ण बहुत बेबूझ हैं, बहुत रहस्यमय हैं। गणित की तरह साफ-सुथरे नहीं हैं, काव्य की तरह रहस्यमय हैं। तर्क की तरह कटे-बंटे नहीं हैं, प्रेम की तरह बहुत रहस्यपूर्ण हैं। दोनों हैं एक साथ। और दोनों नहीं हैं। योग-युक्त होने का यही अर्थ है। इसलिए हम कृष्ण को महायोगी कह सके। महायोगी कहने का कारण है, और वह कारण यह है कि कृष्ण शायद पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने दोनों अतियों के बीच में--ठीक बीच में--खड़े होने की व्यवस्था दी है। अगर हम ठीक बीच में भी खड़े हों, तो थोड़ा-सा मन डांवाडोल होता है। अगर हम बीच में भी खड़े हों, तो हम इसीलिए खड़े होना चाहते हैं कि संसार से कैसे मुक्त हो जाएं! अगर संसार से कैसे मुक्त हो जाएं, यही भीतर लगा हुआ है, तो आप थोड़े-से झुके हुए खड़े होंगे, बीच में खड़े नहीं हो सकते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की दो पत्नियां थीं। और निश्चित ही,
दो पत्नियां जिसकी होती हैं, वह जानता है कि उसकी क्या मुसीबत हो सकती है! एक पत्नी में आप हजार का गुणा कर लें, दो का नहीं। क्योंकि जब दो पत्नियां होती हैं, तो जोड़ नहीं होता, गुणनफल होता है। बड़ी मुसीबत में था और निरंतर यह विवाद था; दोनों पत्नियां आमने-सामने पूछ लेती थीं उससे, कि बोलो, हम दोनों में सुंदर कौन है? मुल्ला नसरुद्दीन कहता था, तुम दोनों एक-दूसरे से ज्यादा सुंदर हो!
लेकिन पत्नियों को शक था कि वह किसी की तरफ ज्यादा झुका हुआ होगा ही।
दो स्त्रियां मान ही नहीं सकतीं कि उनके बीच में कोई पुरुष खड़ा हो, तो वह जरा-सा कहीं ज्यादा झुका हुआ नहीं होगा। और ऐसे सौ में निन्यानबे मौके पर यह बात सच भी है। उनका शक काफी दूर तक सही है। हम बीच में खड़े हो ही नहीं सकते।
पहली पत्नी की मृत्यु हुई, तो उसने कहा कि जिंदगी में जो हुआ हुआ, लेकिन एक बात का वायदा कर दो कि मरने के बाद दोनों पत्नियों की तुम कब्र बनाना और अपनी कब्र बिल्कुल ठीक बीच में बनाना, जस्ट राइट इन दि मिडिल। क्योंकि जिंदगी में जो हुआ हुआ; लेकिन मरने के बाद कयामत तक मैं कब्र में परेशान नहीं होना चाहती कि तुम जरा उस तरफ झुके हुए हो। बिल्कुल ठीक ज्यामिति के हिसाब से, गणित के हिसाब से साफ कर लेना। नसरुद्दीन ने वायदा किया।
दूसरी पत्नी का भी आग्रह यही था। कभी नसरुद्दीन ने बताया नहीं। पहली पत्नी का नाम था फातिमा, दूसरी पत्नी का नाम था सुल्ताना। उसका मन सदा दूसरी की तरफ थोड़ा झुका हुआ था, लेकिन यह कहने की हिम्मत उसे कभी जुटी नहीं।
दोनों मर गईं, तो नसरुद्दीन ने अपने कब्र बनाने वाले को कहा कि बिल्कुल ठीक बीच में बनाना मेरी कब्र, लेकिन जरा-सी झुकी हुई सुल्ताना की

तरफ; जरा-सी, जस्ट ए बिट लीनिंग टुवर्ड्स सुल्ताना। बनाना बीच में, लेकिन जरा तिरछी बनाना, झुकी हुई!
लेकिन कब्र बनाने वाले ने कहा कि तुम्हारी दोनों पत्नियों की वसीयत में लिखा हुआ है, ठीक बीच में होनी चाहिए। और दो मृत आत्माओं को मैं कष्ट नहीं देना चाहूंगा। और फिर कौन झंझट में पड़े तुम्हारी। तो मैं किसी झंझट में पीछे नहीं पड़ना चाहता हूं। मैं तो ठीक बीच में बना दूंगा। मैं झुकी हुई नहीं बना सकता।
तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, तो फिर ऐसा करना कि मुझे करवट लेकर भीतर लिटा देना, सुल्ताना की तरफ करवट लेकर; सीधा मत लिटाना!
बीच में होना बड़ा कठिन है। रस हमारा चुनाव करना चाहता है। अगर हम परमात्मा को भी चुनते हैं, तो संसार के खिलाफ। लेकिन जो आदमी संसार के खिलाफ परमात्मा को चुनता है, वह परमात्मा को चुनता ही नहीं। क्योंकि परमात्मा को केवल वही चुन सकता है, जिसने सब चुनाव छोड़ दिए, च्वाइसलेस हो गया, जिसका कोई चुनाव नहीं है। जो कहता है, संसार भी मेरे लिए परमात्मा है; जो कहता है, परमात्मा भी मेरे लिए संसार है; अब मुझे कुछ फर्क न रहा। जो कहता है, जीवन मुझे मृत्यु है, मृत्यु मुझे जीवन है। जो कहता है, धन भी मेरे लिए निर्धनता है, और निर्धनता भी मेरे लिए धन है। ऐसा व्यक्ति ही ठीक मध्य में खड़ा होता है। और ऐसे मध्य में खड़े व्यक्ति का नाम ही योग-युक्त है। योग-युक्त का अर्थ है, पूर्ण रूप से संतुलित हो गया जो। जैसे कि तराजू
का कांटा बीच में खड़ा हो जाए और दोनों पलड़े बराबर हों, जरा भी यहां-वहां झुके हुए नहीं। जब तराजू का कांटा ठीक बीच में होता है, तो योग-युक्त होता है। ऐसे ही जब आपका चित्त ठीक बीच में होता है, तो योग-युक्त होता है। जीवन के समस्त विरोधों में मध्य में खड़े हो जाने का नाम योग है। जीवन
की समस्त विपरीतताओं में अचुनाव का नाम योग-युक्त होना है। और ऐसा जो योग-युक्त है, वही, कृष्ण कहते हैं, मेरी प्राप्ति का अधिकारी है।
इसे ठीक से ख्याल में ले लें।
परमात्मा को कभी भी संसार के विपरीत लक्ष्य न बनाएं। मोक्ष को कभी भी संसार के विरोध में खड़ा न करें। मोक्ष किसी का भी विरोध नहीं है। मोक्ष केवल चुनाव का विरोध है। चुनाव ही मत करें। और जिस क्षण भी आप चुनाव-शून्य हैं, च्वाइसलेस हैं, उसी क्षण वह परम घटना घट जाती है, जिसकी कृष्ण चर्चा कर रहे हैं।
क्योंकि योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर, वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दानादि के करने में जो पुण्य फल कहा है, उस सबको निस्संदेह उल्लंघन कर जाते हैं और सनातन परम पद को प्राप्त होते हैं।
यह बड़ा क्रांतिकारी वचन है। और गीता में होगा, इसका ख्याल भी एकदम से नहीं आता। क्योंकि कृष्ण यह कह रहे हैं कि जो पुरुष, जो योगी पुरुष इस तत्व के रहस्य को जान लेते हैं, उनके लिए वेद का ज्ञान, यज्ञ के फल, दान का पुण्य, सब व्यर्थ हो जाते हैं। वे सब का उल्लंघन कर जाते हैं।
वेद के ज्ञान का फिर कोई मूल्य नहीं है उसे, जिसने तत्व से जान लिया।
तब वेद सिर्फ तोतारटंत रह जाते हैं। तब वेदपाठी केवल शब्दों का जानकार रह जाता है, मात्र कोरा पंडित। और कोरे पंडित से ज्यादा दयनीय अवस्था इस जगत में किसी की भी नहीं है; अज्ञानी की भी नहीं है।
अज्ञानी के लिए भी उपाय है, पंडित के लिए उपाय भी नहीं बचता। क्योंकि अज्ञानी को एक तो विनम्रता होती ही है कि मैं नहीं जानता हूं। पंडित को वह विनम्रता भी खो जाती है। पंडित को लगता है, मैं जानता तो हूं ही, और जानता बिल्कुल नहीं है।
पंडित का अज्ञान और भी अहंकारी अज्ञान हो जाता है। जानता हुआ, झूठा ही जानता हुआ... । क्योंकि शब्द को जानकर सत्य कभी जाना नहीं गया है। हां, सत्य को जानकर शब्द में कोई सत्य को खोज लेता है, वह दूसरी बात है। लेकिन सत्य, शब्द को जानकर कभी नहीं जाना गया है। सत्य को जानकर शब्द जान लिए जाते हैं। जो तत्व से जान लेता है, अनुभूति से, उसके लिए वेद परम ज्ञान के आधार हो जाते हैं। लेकिन जो वेद को ही जानता है, जो वेद को ही जानता है, वह वैसी स्थिति में होता है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक राह से गुजरता था और पानी भरने
को कुएं पर झुका। भूल-चूक हो गई और कुएं में गिर गया। बड़ी देर तक हाथ-पैर मारे, बड़ी देर तक चिल्लाया। और तब राह से कोई ग्रामीण, कोई बुद्धू, बिल्कुल गंवार निकला। झांककर उसने नीचे देखा। उसने कहा, अच्छा! अरे! तो तुम हो! तो मैं तुम्हें अभी निकाले देता हूं। लेकिन नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हारा बोलना बिल्कुल असंस्कृत है। मैं-तू करके अजनबियों से बात की जाती है? तो उस आदमी ने कहा, रुको। मैं महीने, पंद्रह दिन में वापस लौटूंगा सुसंस्कृत होकर! नसरुद्दीन ने कहा कि मैं रुक सकता हूं महीने, पंद्रह दिन। लेकिन जिस आदमी को शब्दों का भी ठीक-ठीक बोध नहीं, बोलचाल की भाषा भी ठीक नहीं आती, उसके हाथ से निकाला जाना पसंद नहीं कर सकता हूं।
शब्द से घिरे हुए लोग, संसार में नसरुद्दीन जैसा कुएं में पड़ा है, ऐसे
पड़ जाते हैं। अगर कबीर जैसा आदमी आकर उनका द्वार खटखटाए, तो उन्हें बिल्कुल न जंचेगा। क्योंकि कबीर वेद को बिल्कुल नहीं जानते। अगर नानक उनका हाथ पकड़कर कहें कि आओ, मैं तुम्हें कुएं के बाहर निकाल लूं; तो वे कहेंगे कि संस्कृत कहां तक पढ़ी है? काशी में कितने दिन रहे हो? कितने वेदों के जानकार हो? नानक को किसी वेद का कोई भी पता नहीं है। और फिर भी वेदों में जो कहा है, वह सब पता है। और कबीर ने कोई वेद पढ़ा नहीं है, फिर भी वेदों में जो कहा है, कबीर जितना जानते हैं, वेदपाठी नहीं जानते।
जानने का एक और द्वार भी है सीधा, इमीजिएट, माध्यम से मुक्त, शब्द से मुक्त, उसको ही तत्व-ज्ञान कहा है; वही है तत्व-ज्ञान। उस तत्व-ज्ञान को जो उपलब्ध होता है, तब फिर वेदों का पढ़ना और यज्ञ करना, और तप और दान, इन सभी का उल्लंघन कर जाता है। इन सब का फिर कोई अर्थ नहीं रह जाता। ये सब उनके लिए हैं, जिन्होंने अभी जानने की वास्तविक यात्रा शुरू ही नहीं की है; जिन्होंने अभी खोज के ऊपर पहला कदम ही नहीं रखा है।
बहुत हैं लेकिन ऐसे लोग, जो शब्दों के संग्रह को सोच लेते हैं ज्ञान
की उपलब्धि। जो इकट्ठा करते जाते हैं शब्दों को, शास्त्रों को, और सोचते हैं कि मुक्ति करीब आ रही है। उन्हें पता नहीं कि वे केवल शब्दों के बोझ से और भी दबे जा रहे हैं। मुक्ति शायद और भी दूर हुई जा रही है। शायद शब्दों का, शास्त्रों का बोझ उन्हें और भी संसार की गहरी पर्तों में डुबाने वाला सिद्ध होगा। क्योंकि शास्त्र बोझ ही बन जाते हैं, सत्य ही मुक्ति बनता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वेदों का कोई उपयोग नहीं है। इसका यह भी अर्थ नहीं कि वेदों में रहस्य नहीं छिपा है। इसका यह भी अर्थ नहीं कि शब्द की सामर्थ्य नहीं है। लेकिन शब्द की सामर्थ्य भी उसी के लिए है, जो शब्द पर रुकने के लिए तैयार नहीं है, शब्द के पार जाना चाहता है। और वेद भी उसके लिए सहयोगी हो जाता है, जो वेद को पार करने की क्षमता रखता है। और गुरु केवल उन्हीं के लिए गुरु सिद्ध होते हैं, जो गुरु से भी मुक्त होने की क्षमता, साहस से भरे हैं।
नहीं तो गुरु भी बंधन बन जाते हैं। नहीं तो शास्त्र भी बंधन बन जाते हैं। नहीं तो वे शब्द भी, जो सत्यों के लिए प्रयुक्त किए हैं, वे भी केवल कारागृह ही सिद्ध होते हैं और हम उनमें कैद हो जाते हैं।
कृष्ण कहते हैं, जो तत्व से जान लेता है योगी, वह सबसे मुक्त हो जाता है।
लेकिन वेद से ही नहीं। उन्होंने और बातें भी कही हैं। उन्होंने कहा, यज्ञ से भी मुक्त हो जाता है। क्योंकि यज्ञ से अर्थ है, समस्त क्रिया-कांड, रिचुअल, धर्मों का समस्त क्रिया-कांड। धर्मों के समस्त शास्त्र-ज्ञान से अर्थ है, वेद। धर्मों के समस्त रिचुअल, क्रिया-कांड, उससे अर्थ है, यज्ञ। उससे भी मुक्त हो जाता है। क्योंकि जिसने अपने भीतर परमात्मा को जाना, अब कोई भी क्रिया, अब कोई भी कर्म, अब कोई भी रिचुअल, कोई भी उपासना-पद्धति व्यर्थ हो गई। अब बाहर दौड़ने का कोई प्रयोजन न रहा।
जिसने भीतर की ही अग्नि को जान लिया, अब बाहर अग्नियां जलाकर वह उनकी पूजा करने बैठेगा, तो पागल है। और अगर कभी बैठ भी जाता हो, तो सिर्फ इसीलिए कि जिन्होंने भी भीतर की अग्नि नहीं जलाई है, शायद उनके लिए सहयोगी हो सके। और अगर खंडन भी नहीं करता है कि यह व्यर्थ है, तो सिर्फ इसीलिए कि

जिनको अभी भीतर का कोई पता नहीं, शायद बाहर की अग्नि भी उनके लिए प्रतीक बने, सहयोगी बने, यात्रा में साथी हो जाए।
लेकिन जब भी ऐसा व्यक्ति देखेगा कि बाहर की अग्नि भीतर की अग्नि तक पहुंचने में सहयोगी न रही, बाधा बन गई, तो विरोध भी करता है, खंडन भी करता है। और इसीलिए निरंतर धार्मिक व्यक्ति पुराने रिचुअल्स, पुराने क्रिया- कांड के विपरीत पड़ जाते दिखाई पड़ते हैं। लेकिन तय करना मुश्किल है कि वह क्या करेगा।
अगर आप यज्ञ कर रहे हों, तो वैसा योगी जिसने तत्व से जाना है, क्या करेगा, कहना मुश्किल है। अगर उसको आपके भीतर भी बाहर जलती अग्नि की थोड़ी- सी भी झलक दिखाई पड़े, तो वह बराबर आपके यज्ञ का सहयोग करेगा। लेकिन अगर आपके भीतर धुआं ही धुआं, अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़े और बाहर की अग्नि उस अंधकार को और भी बढ़ाती हो, तो वह निश्चित ही विरोध करेगा।
इसलिए ऐसे व्यक्ति के वक्तव्य निरंतर असंगत होंगे, इनकंसिस्टेंट होंगे। कभी वह कहेगा कि ठीक है मंदिर; और कभी कहेगा, व्यर्थ है। और कभी कहेगा कि इस मूर्ति में परमात्मा है; और कभी कहेगा, इस मूर्ति को तोड़ डालो, इसी के कारण परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता है। निर्भर करेगा इस बात पर कि वह किससे कह रहा है।
लेकिन यज्ञ की ही बात नहीं करते छोड़ने की, वे कहते हैं, तप भी, तप भी व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि जिसे भीतर का स्रोत दिखाई पड़ गया, अब वह व्यर्थ अपने को कष्ट देने की चेष्टा में संलग्न नहीं होता है।
और अक्सर तो ऐसा होता है कि जो लोग अपने को कष्ट देते हैं, वे कष्ट देने में रस पाते हैं--सैडिस्ट हैं। अपने को सताने में या दूसरे को सताने में। या सैडिस्ट हैं या मैसोचिस्ट हैं। जो लोग तप को बहुत आदर देते हैं, वे अक्सर मैसोचिस्ट होते हैं, खुद को सताने में रस पाते हैं।
मैसोच एक लेखक हुआ है, जो अपने को कोड़े मारता, तभी प्रफुल्लित हो सकता। अपने को कांटे चुभाता, अपने को सताता, भूखा मारता, अपनी नसों को काट लेता, तभी उसे थोड़ी-सी सुख की रसानुभूति होती।
और एक दूसरा लेखक हुआ, मारकुस सादे। वह जब तक दूसरे को सता न ले! तो वह अपने प्रेमियों को मारने के लिए हंटर रखता; अपनी प्रेयसियों को सताने के लिए पूरा इंतजाम अपने साथ रखता। एक झोला रखता। क्योंकि नाखून ज्यादा नहीं सता सकते, तो वह छुरी-कांटे अपने साथ रखता। ताला बंद कर देता, और तब प्रेयसी को प्रेम करना शुरू करता, और प्रेम का अंत अक्सर होता कि वह लहूलुहान कर देता। लेकिन जब तक वह दूसरे को लहूलुहान न कर ले, तब तक उसे रस की अनुभूति न होती।
ये विकृतियां हैं। अध्यात्म में भी ये विकृतियां खूब प्रवेश कर जाती हैं। कुछ लोग हैं, जो अपने को सताने में ही मजा लेने लगते हैं। और इन लोगों के आस-पास, जो अपने को सताने में मजा लेते हैं, मैसोच जैसे लोग, इनके आस-पास सैडिस्ट इकट्ठे हो जाते हैं, जो दूसरे को सताने में मजा लेते हैं।
अगर एक आदमी ने बीस दिन का उपवास किया है, तो उसके जुलूस में पचासों लोग इकट्ठे होकर सम्मिलित होंगे। आप देख लेना, जो उपवास किया है, वह मैसोचिस्ट है; और जो जुलूस में सम्मिलित हुए हैं, वे सैडिस्ट हैं। इनको मजा आ रहा है कि इसने उपवास किया, इनको बड़ा मजा आ रहा है कि यह आदमी भूखा मरा। यह भूखा मरने वाला है, इसने अपने को सताकर मजा लिया। ये इसके सताए जाने में मजा ले रहे हैं। इनको बड़ा रस आ रहा है।
तप के नाम से सौ में निन्यानबे मौकों पर मानसिक बीमार संलग्न होते हैं। लेकिन एक व्यक्ति सौ में ऐसा भी होता है, जो तप में मानसिक बीमारी की तरह नहीं जाता। वस्तुतः सत्य की खोज में जो भी कष्ट आ जाएं, उन्हें सहने की तैयारी दिखाता है, उसी का नाम तप है। सत्य की खोज में जो भी कष्ट आ जाएं! कष्टों को निर्मित नहीं करता। अगर वह ध्यान करने खड़ा है और धूप आ जाए, तो वह धूप को सहने को तैयार होता है। लेकिन वह ध्यान करने के लिए धूप की खोज नहीं करता, कि छाया में बैठा हो, तो ध्यान न कर सके। अगर उसे लगे कि ध्यान करते वक्त अगर भोजन नहीं लिया जाए तो ध्यान गहरा हो जाता है, तो वह उपवास भी करता है। लेकिन वह ऐसा नहीं कहता कि उपवास करो, तो ही ध्यान हो सकेगा।

सहज जो भी कष्ट उसे झेलने पड़ें परम सत्य की खोज में, वह उनके लिए तैयार होता है, सहर्ष!
लेकिन तब उनकी प्रशंसा की वह चिंता नहीं करता। अगर आप उससे कहें कि तुमने धूप में रहकर बड़ा काम किया है, हम तुम्हारी पूजा करेंगे। तो वह कहेगा कि तुम पागल हो। धूप में खड़े रहकर मैंने कोई काम नहीं किया है। काम तो मैं भीतर कर रहा था; धूप आ गई, तो मैंने उसकी बाधा को अस्वीकार नहीं किया। मैंने उसे स्वीकार कर लिया। ध्यान तो मैं भीतर कर रहा था। भूख लग गई, अगर भोजन के लिए जाऊं तो बाधा पड़ेगी, इसलिए भोजन के लिए नहीं गया; भूख के लिए राजी हो गया। काम तो मैं भीतर कर रहा था। मैं भूखा नहीं रहा हूं। मैं धूप में नहीं खड़ा हूं। यह परिस्थिति थी, उसे मैंने शांति से सह लिया है। तप का वास्तविक अर्थ है, सत्य की खोज में जो भी दुख आ जाएं, उन्हें सहज स्वीकार करने की तैयारी। लेकिन सत्य की खोज से विचलित न होना, सत्य की खोज से रंचमात्र भी यहां-वहां न जाना, चाहे कितने ही कांटे हों पथ पर।
लेकिन बीमार आदमी उस पथ पर चलेंगे ही नहीं, जहां कांटे न हों। वे कहेंगे, कांटे कहां हैं! पहले कांटे बिछाओ, तब हम चलेंगे। यह फर्क समझ लेना। सत्य का खोजी अगर कांटे रास्ते पर हों, तो उन कांटों को भी झेलने को तैयार रहेगा। लेकिन रुग्ण, परवर्टेड माइंड, सैडिस्ट हो या मैसोचिस्ट, वह कहेगा, यह सत्य का रास्ता हो ही नहीं सकता। इस पर कांटे कहां हैं? पहले कांटे बिछाओ, तब हम चलेंगे! अगर उसको फूलों वाला रास्ता मिल जाए, तो वह मुकर जाएगा कि इस पर हम नहीं जाते। इस पर तो फूल बिछे हैं! और सत्य के रास्ते पर तो सूली ही लगती है; फूल कहां!
यह आदमी सूली में उत्सुक है, सत्य में नहीं। यह कांटों में उत्सुक है, सत्य में नहीं। तो यह अपने लिए कांटे निर्मित करता रहेगा। ऐसा तप रुग्ण है।
लेकिन वह एक प्रतिशत तप भी, कृष्ण कहते हैं, छूट जाता है।
निश्चित ही! जब तत्व का बोध हो जाए, तो तप करने की क्या जरूरत रही? जब मंजिल मिल जाए, तो रास्ते पर दौड़ने का फिर क्या प्रयोजन है? फिर कोई भी प्रयोजन नहीं है। अगर कभी सत्य को पा लेने वाला भी तप करता है, तो उसका एक ही कारण होता है, ताकि दूसरे तप को सहने की सामर्थ्य को पैदा कर लें। और कोई प्रयोजन नहीं होता।
अगर महावीर ने ज्ञान के बाद भी उपवास किए, तो इसलिए नहीं कि अब उन्हें उपवास की कोई भी जरूरत थी। और अगर महावीर ज्ञान के बाद भी नग्न ही बने रहे, उन्होंने वस्त्र न पहने, तो इसका यह कारण नहीं कि वस्त्रों से उन्हें अब कोई भय था, और नग्न रहने की कोई जरूरत थी। लेकिन जो पीछे लोग आ रहे हैं, अगर महावीर उपवास छोड़ दें, नग्नता छोड़ दें, महावीर वापस महल में आकर रहने लगें, तो वे जो पीछे आने वाले लोग हैं, वे बीच की यात्रा कभी कर ही न पाएंगे। शायद वे यही समझेंगे कि महावीर को अपनी भूल पता चल गई, लौट आए अपने घर! हम पहले से ही अपने घर हैं। अच्छा हुआ, झंझट में न पड़े!
महावीर को महल का अब कोई भय नहीं है। महावीर के लिए महल और जंगल बराबर
हो गए। लेकिन फिर भी महावीर जंगल में रहे चले जाते हैं, केवल उन लोगों के प्रति करुणावश, जिनको अभी महल के कारागृह से ऊपर उठना है।
वैसा व्यक्ति अगर तप जारी भी रखे, तो सिर्फ इसलिए; अगर वैसा व्यक्ति वेद की चर्चा भी जारी रखे, तो सिर्फ इसलिए कि किसी के काम पड़ जाए। वैसा व्यक्ति अगर यज्ञ में भी सहयोगी हो, तो इसीलिए कि जो अभी तत्व तक नहीं उठ सकते, वे शायद रिचुअल के माध्यम से, उपासना से, कोई क्रिया-कांड से सहारा पा लें और ऊपर उठ जाएं।
कृष्ण कहते हैं, वैसा व्यक्ति दान से भी मुक्त हो जाता है।
दान भी सत्य की खोज में एक सहयोगी मार्ग है। दान का अर्थ है, जो भी हम
दे सकें, वह दे दें; और जिसको जरूरत हो, उसे दे दें। दान का मौलिक अर्थ है, हम, जो व्यर्थ है, उसे संगृहीत न करें। दान का गहरा अर्थ है, अपरिग्रह। हम, जो जरूरी हो, उतना काफी; शेष सब उन्हें दे दें, जिन्हें उसकी जरूरत है। और कभी ऐसा क्षण भी आ जाए कि हमसे ज्यादा जरूरत किसी को हो, तो भी हम दे दें।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, ऐसा व्यक्ति दान से भी मुक्त हो जाता है। यह और
भी कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि इसका अर्थ हुआ कि वैसा व्यक्ति दान नहीं करता है।
नहीं, इसका यह अर्थ नहीं कि वैसा व्यक्ति दान नहीं करता। इसका यह अर्थ हुआ कि वैसा व्यक्ति अब पाता ही नहीं कि कोई पराया है। वैसा व्यक्ति अब पाता ही नहीं कि मैं अलग हूं। वैसा व्यक्ति अब पाता ही नहीं कि यह जगत और मेरे बीच कोई फासला है। वैसा व्यक्ति दान नहीं करता, उसका इतना ही अर्थ है कि वैसे व्यक्ति के पास अब दान करने को कुछ बचा नहीं; उसने स्वयं को ही दान कर दिया है। अब सब समर्पित हो गया है; सब विसर्जित हो गया है। एक छोटी-सी घटना कहूं, शायद उससे ख्याल में आए।
कबीर के घर बहुत लोग इकट्ठे होते हैं रोज। वे रोज उन्हें भोजन करा देते हैं। कबीर का बेटा मुश्किल में पड़ गया है। और उसने कहा, हम पर कर्ज होता चला जाता है। रोज लोग आते हैं, आप रोज उनसे जाते वक्त कहते हैं, भोजन कर जाओ। वे भजन-कीर्तन करने आते हैं, उनको जाने दें; भोजन के लिए मत रोकें। कबीर रोज कहते कि कल ख्याल रखूंगा। कल फिर वही भूल होती। लोग भजन-कीर्तन करने सुबह आते, और जब जाने लगते, तो कबीर कहते, भोजन तो कर जाओ!
आखिर एक दिन उसके बेटे ने कहा कि अब यह असंभव है और आगे खींचना। क्या मैं चोरी करने लगूं? कर्ज बढ़ता चला जाता है!
तो कबीर एकदम आनंदित हो गए और उन्होंने कहा, पागल, अगर चोरी से यह हल
हो सकता था, तो तूने पहले क्यों न सोचा? कमाल तो थोड़ा दिक्कत में पड़ा; उनका बेटा तो दिक्कत में पड़ा। समझा उसने कि शायद कबीर समझ नहीं पाए कि मैंने क्या कहा, चोरी! उसने कहा, आप समझे भी! सुना भी! मैं कह रहा हूं, क्या मैं चोरी करने लगूं? कबीर ने कहा, बिल्कुल समझा। लेकिन इतने दिन से तेरी बुद्धि कहां गई थी?
कमाल ने कहा, अब बात को आखिर तक ही खींचना पड़ेगा। कमाल था बेटा, और कमाल का ही बेटा था। कबीर ने उसे नाम दिया था और अदभुत बेटा था। उसने कहा, तो फिर ठीक है। तो आज मैं चोरी को जाता हूं।
रात उठा, आधी रात, और उसने कहा, मैं जा रहा हूं। आज्ञा है? आशीर्वाद है? कबीर ने कहा कि प्रभु तेरी सब भांति सहायता करें। कमाल केवल कबीर की परीक्षा ले रहा है कि बात कहां तक जाती है! हद्द इसकी कहां है! कमाल ने कहा, लेकिन अकेला शायद सामान ज्यादा चुरा लूं, तो लाने में दिक्कत हो। क्या आप भी साथ चलने को तैयार हैं? कबीर ने कहा, अब तो नींद टूट ही गई। चलो, चला चलता हूं।
तब कमाल की बेचैनी बहुत बढ़ने लगी। यह क्या हो रहा है! कबीर! और चोरी को
जा रहा है! पर कमाल ही था, उसका बेटा ही था, उसने कहा, इतनी जल्दी छुटकारा ठीक नहीं। बात पूरे लाजिकल एंड, तर्क के अंत तक ले जानी जरूरी है, तभी शायद पहचान हो पाए कि यह मजाक है या गंभीरता है।
जाकर उसने सेंध लगाई। कबीर पास खड़ा रहा। सेंध लगाते वक्त उसका हाथ कंपता था। कभी चोरी की नहीं। कभी चोरी का सोचा नहीं। लेकिन कबीर ने उससे कहा, तेरा हाथ क्यों कंपता है? चोरी ही कर रहे हैं न, कुछ बुरा तो नहीं कर रहे! कबीर के बेटे ने अपने सिर पर हाथ ठोंक लिया। उसने कहा, हद्द हो गई! चोरी ही कर रहे हैं, कुछ बुरा तो नहीं कर रहे हैं! अब बुरा और क्या होता है? कबीर ने कहा, यह हाथ का कंपना बहुत बुरा है। जब चोरी कर रहे हैं, तो पूरी कुशलता से करनी चाहिए।
योग कर्म की कुशलता है; हाथ न कंपे।
फिर कमाल भीतर गया, और एक बोरा गेहूं खींचकर बाहर लाया। कबीर ने उसे खींचने में सहायता दी। और जब कमाल उसे अपने कंधे पर रखने लगा, उठाने लगा, तो कबीर ने कहा, रुक। घर के लोगों को बता आया कि नहीं? घर के लोगों को जाकर कम से कम कह दे कि हम एक बोरा चुराकर लिए जा रहे हैं! कमाल ने कहा, यह चोरी हो रही है या क्या हो रहा है!
और जब कमाल ने कबीर से पूछा कि इस सबका मतलब क्या है? तो कबीर ने कहा
कि जब से हम न रहे, वही रह गया, तो अब किसकी चोरी, और कौन करे! और कौन दान दे और कौन ले? उसी का माल है। वही वहां सोते सोच रहा है कि मेरा है। मैं भी उसी

का। वही मेरे भीतर कह रहा है कि ले चलो। वही सुबह कीर्तन करने आएगा। उससे कैसे कहूं कि बिना भोजन किए जाओ? सभी उसका है।
इस तल पर उठ जाने की भी संभावना है तत्वविद की। तत्वविद निश्चित ही इस
तल पर उठ जाता है, जहां चोरी चोरी नहीं रह जाती; जहां दान दान नहीं रह जाता; जहां नीति-अनीति की सब सीमाएं अतिक्रमित हो जाती हैं। जहां सब, जिसे हम धर्म कहते हैं, वह कचरे की भांति नीचे गिर जाता है और व्यक्ति उस परम चैतन्य के साथ इतना एकरस, एकभूत हो जाता है कि जो करवा रहा है, वही। जो कर रहा है, वही। जिस पर हो रहा है, वही। भेद जहां नहीं, वहां नीति कहां? भेद जहां नहीं, वहां दान, धर्म, पुण्य कहां!
भेद जहां नहीं, वही कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि अगर तू तत्वविद हो जाए, तो कौन मारता है और कौन मरता है! पागलों की बातें हैं। न कोई मरता, और न कोई मारता है। और ये जो सामने तेरे खड़े हैं, इनमें भी वही है, जो कभी मरता नहीं। और तू जो लड़ने खड़ा है, तुझमें भी वही है, जो कभी मरता नहीं। और जो ये देहें खड़ी हैं, ये देहें तो मर ही जाती हैं।
कृष्ण का यह जो संदेश है, बहुत एमारल है, बहुत अतिनैतिक है। इसलिए जिन लोगों ने--ड्यूसन ने, या शापेनहार ने जब पहली दफा गीता पढ़ी, तो बहुत घबड़ा गए। घबड़ा गए, क्योंकि इसका मतलब क्या हुआ? इतनी अतिनैतिक बात, तो हमारी नीति का क्या होगा? हमारी नीतिमत्ता का क्या होगा? हमारी मारैलिटी का क्या होगा? अगर दान भी व्यर्थ हो जाता है, तप भी व्यर्थ हो जाता है, यज्ञ भी व्यर्थ हो जाता है, वेद भी व्यर्थ हो जाते हैं, तो सभी कुछ व्यर्थ हो जाता है, जिसे हमने आधार समझा है।
निश्चित ही, जो परम आधार की तरफ चलता है, उसके लिए हमारे समाज के द्वारा दिए गए सभी आधार व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन वह अनैतिक नहीं हो जाता; वह अतिनैतिक हो जाता है। वह इम्मारल नहीं होता, एमारल हो जाता है या सुपर मारल हो जाता है। शायद वही परम नैतिकता है, सुप्रीम मारैलिटी है। समस्त नीति के पार हो जाना ही शायद परम नीति है। और समस्त धर्मों के ऊपर उठ जाना ही शायद परम धर्म है।
कृष्ण ने यह उल्लंघन की बात कही है कि इन सबका उल्लंघन करके, वह सनातन
पद को, परम पद को प्राप्त होता है। वह फिर ब्रह्म जैसा हो जाता है। वह ब्रह्म ही हो जाता है।
आज इतना ही।
लेकिन अभी उठेंगे नहीं। एक पांच मिनट और। पांच मिनट अपनी जगह ही आप बैठे रहेंगे। हमारे संन्यासी कीर्तन करेंगे। अंतिम दिन का उनका प्रसाद लेकर जाएं। अपनी जगह पर ही कीर्तन में सम्मिलित हों।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
पहला प्रवचन

श्रद्धा का अंकुरण

श्रीमद्भगवद्गीता
अथ नवमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।। 1।।
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।। 2।।
अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।। 3।।
श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, तुझ दोष-दृष्टि रहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय ज्ञान को रहस्य के सहित कहूंगा, कि जिसको जानकर तू दुखरूप संसार से मुक्त हो जाएगा।
यह ज्ञान सब विद्याओं का राजा तथा सब गोपनीयों का भी राजा एवं अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फल वाला और धर्मयुक्त है, साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है।
और हे परंतप, इस तत्व-ज्ञान-रूप धर्म में श्रद्धारहित पुरुष मेरे को प्राप्त न होकर, मृत्युरूप संसार-चक्र में भ्रमण करते हैं।

जीवन को देखने की एक दृष्टि नकारात्मक भी है और एक दृष्टि विधायक भी। जीवन को ऐसे भी देखा जा सकता है कि उसमें पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई न पड़े, और ऐसे भी कि परमात्मा के अतिरिक्त कोई पदार्थ शेष न रहे। जो कहते हैं कि जीवन मात्र पदार्थ है, वे केवल इतना ही कहते हैं कि उनकी देखने की दृष्टि नकारात्मक, निगेटिव है। जो कहते हैं कि जीवन पदार्थ नहीं, परमात्मा है, वे भी इतना ही कहते हैं कि उनकी देखने की दृष्टि विधायक, पाजिटिव है।
इस सूत्र में उतरने के पहले इन दो दृष्टियों को ठीक से समझ लेना जरूरी है; क्योंकि जगत वैसा ही दिखाई पड़ता है, जैसी हमारी दृष्टि होती है। जो हम देखते हैं, वह हमारी आंख की खबर है। जो हम पाते हैं, वह हमारा ही रखा हुआ है। जो हमें दिखाई पड़ता है, वह हमारा ही भाव है, और हमारे ही भाव का प्रत्यक्षीकरण है।
विज्ञान सोचता था कि मनुष्य तटस्थ होकर भी देख सकता है। और विज्ञान
की आधारशिला यही थी कि व्यक्ति तटस्थ होकर निरीक्षण करे--कोई भाव न हो उसका, कोई दृष्टि न हो उसकी--तभी, सत्य क्या है, वह जाना जा सकेगा। लेकिन विगत तीन सौ वर्षों की वैज्ञानिक खोज ने विज्ञान की अपनी ही आधारशिला को डगमगा दिया है। और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई उपाय ही नहीं है कि व्यक्ति दृष्टि को छोड़कर और तथ्य को देख सके।
एक बहुत कीमती विचारक पोल्यानी ने इस सदी की महत्वपूर्ण किताब लिखी है। उस किताब को नाम दिया है, पर्सनल नालेज। और पोल्यानी का कहना है कि कोई भी ज्ञान व्यक्ति से मुक्त नहीं हो सकता। जानने में जानने वाला समाविष्ट हो जाता है। जो हम देखते हैं, उसमें हमारी आंख की छाप पड़ जाती है। जो हम छूते हैं, छूने से हमें जो अनुभव होता है, वह वस्तु का ही नहीं, अपने हाथ की क्षमता का भी है। जो मैं सुनता हूं, उस सुनने में मेरे कान पर पड़ी हुई ध्वनियों की चोट ही नहीं, मेरे कान की व्याख्या भी सम्मिलित हो जाती है। व्याख्यारहित देखना असंभव है। कोई उपाय नहीं है। हम कितनी ही चेष्टा करें, जो निरीक्षण कर रहा है, वह बाहर नहीं रह जाता; वह भीतर प्रविष्ट हो जाता है। अगर आप एक वृक्ष के पास से गुजरते हैं और वह वृक्ष आपको सुंदर दिखाई पड़ता है, तो इसमें वृक्ष का सौंदर्य तो है ही; आपकी देखने की क्षमता,

आपकी व्याख्या, आपके मनोभाव, आपकी मनःस्थिति, आप भी सम्मिलित हो गए। क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि जब आप दुखी हों, तब यह वृक्ष सुंदर दिखाई न पड़े। और ऐसा भी होगा कि जब आप आनंदित हों, तो यह वृक्ष भी नाचता हुआ दिखाई पड़ने लगे।
और जब एक चित्रकार वृक्ष के पास से निकलता है, तो उसे जो रंग दिखाई देते हैं, वे गैर-चित्रकार को कभी भी दिखाई नहीं दे सकते। और जब एक कवि उस वृक्ष के पास से निकलता है, तो उस वृक्ष के फूलों में जो काव्य लग जाता है-- वह, जिसके पास कवि का हृदय नहीं है, उसे कभी भी अनुभव में नहीं आ सकता है। और उसी वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति दुकानदार की तरह बैठा हो, तो उसे वृक्ष में यह कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा।
तो जब हम वृक्ष को देखते हैं, तो वृक्ष को ही देखते हैं या हम भी उसमें समाविष्ट हो जाते हैं? या कि कोई ऐसा उपाय भी है कि वृक्ष को हम वैसा देख सकें, जैसा वृक्ष अपने में है--स्वयं को उसके साथ संयुक्त किए बिना?
कुछ लोग सोचते रहे हैं कि यह संभव है। यह संभव नहीं है। यह बस अप्राकृतिक है। देखने में, देखने वाला प्रविष्ट हो जाएगा। जैसा स्वरूप है जगत का, उसका ही यह हिस्सा है। और अब वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि हमने जो विज्ञान विकसित किया है, वह भी तथ्य कम है, व्याख्या ज्यादा है। जो हम देखते हैं, उसे हम शुद्ध नहीं देखते; वह हमसे सम्मिश्रित हो जाता है। मनुष्य का कोई भी ज्ञान मनुष्य से मिश्रित हुए बिना नहीं बच सकता है। अगर यह ठीक है, अगर यह सत्य है, तो फिर हम नास्तिक के साथ भी विरोध करने का कोई कारण नहीं पाते। अगर वह कहता है, जगत में ईश्वर नहीं है, तो वह केवल इतना ही कहता है कि मेरी जो दृष्टि है, उससे जगत में ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता है। तब आस्तिक से भी कोई कठिनाई नहीं है किसी को। अगर वह कहता है, मुझे जगत में ईश्वर दिखाई पड़ता है, तो वह असल में भाषा गलत उपयोग कर रहा है। उसे इतना ही कहना चाहिए कि जैसी मेरी दृष्टि है, उसमें मुझे जगत में ईश्वर दिखाई पड़ता है।
कृष्ण ने इस सूत्र की शुरुआत की है, अर्जुन को उन्होंने कहा है, हे अर्जुन! तुझ दोष-दृष्टि रहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय ज्ञान के रहस्य को अब मैं कहूंगा।
दोष-दृष्टि रहित! भक्त की वह व्याख्या है। जब आप किसी व्यक्ति को दुश्मन की तरह देखते हैं, तब आप उसमें जो खोजते हैं, वह दोष के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता। ऐसा नहीं कि उसमें दोष ही दोष हैं; क्योंकि कल वही आपका मित्र था और आपको दोष दिखाई नहीं पड़े थे। और कल आपने उसे प्रेम की आंख से देखा था, और उसमें आपको जो श्रेष्ठ है, उसका दर्शन हुआ था। और आज घृणा की आंख से उसी व्यक्ति में जो निकृष्ट है, वह दिखाई पड़ता है। कल आपको उस व्यक्ति में उज्ज्वल शिखर दिखाई पड़े थे, आज उसी व्यक्ति में अंधेरी खाई दिखाई पड़ती है। कल आपने उसकी ऊंचाई को चुना था, आज आप उसकी नीचाई को चुन रहे हैं। और आप जो चुनना चाहते हैं, वही आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। इसे ऐसा समझें कि मैं अगर अपने मकान की खिड़की के पास खड़ा हूं। बाहर आकाश में चांद निकला है। मैं चांद को देखूं, तो खिड़की मुझे दिखाई नहीं पड़ेगी; खिड़की भूल जाएगी। चांद दिखाई पड़ेगा; आकाश में घूमते हुए बादल दिखाई पड़ेंगे; खिड़की विस्मृत हो जाएगी, खिड़की मौजूद ही नहीं होगी। मेरी दृष्टि से, मेरे दर्शन से खिड़की का विलोप हो जाएगा। लेकिन आप चाहें तो अपनी दृष्टि बदल ले सकते हैं; भूल जाएं चांद को, देखें खिड़की को। जब आप खिड़की को देखेंगे, तो चांद पृष्ठभूमि में छूट जाएगा। और अगर आप ध्यानपूर्वक खिड़की को देखेंगे, तो चांद विलीन हो जाएगा; आकाश के बादल खो जाएंगे; बाहर के वृक्ष नहीं हो जाएंगे। खिड़की का चौखटा आपको दिखाई पड़ने लगेगा।
पश्चिम के मनसविद इसे गेस्टाल्ट कहते हैं। वे कहते हैं कि जब भी हम कुछ देखते हैं, तो हम जिस बात पर ध्यान देते हैं, वही हमें दिखाई पड़ता है; और जिस पर हम ध्यान नहीं देते, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। ध्यान ही हमारा अनुभव है।
तो जब मैं एक व्यक्ति को दुश्मन की तरह देखता हूं, तो मुझे कुछ और दिखाई पड़ता है, क्योंकि मेरा ध्यान किन्हीं और चीजों की तलाश करता है; और

जब मैं मित्र की तरह देखता हूं, तब उसी व्यक्ति में मुझे कुछ और दिखाई पड़ता है, मेरा ध्यान कुछ और तलाश करता है। वह जो व्यक्ति बाहर है, उसे तो मैं जानता नहीं। जब भी मैं उस व्यक्ति के संबंध में कुछ भी निष्कर्ष निकालता हूं, तब वह मेरी ही व्याख्या है।
जगत को जो दोष-दृष्टि से देखेगा, जगत में उसे कुछ भी श्रेष्ठ दिखाई नहीं पड़ेगा; सत्य की कोई प्रतीति होती नहीं मालूम पड़ेगी; सौंदर्य का कोई अनुभव नहीं; काव्य की कोई प्रतीति नहीं; कोई पुलक नहीं; नृत्य का उसे कोई भी आभास नहीं होगा। जगत एक उत्सव है, यह उसकी प्रतीति नहीं बनेगी। जगत उसे एक उदास व्यवस्था मालूम पड़ेगी। आंसू उसे दिखाई पड़ सकते हैं, मुस्कुराहटें उसकी आंख से खो जाएंगी, ओझल हो जाएंगी। उसे कांटे दिखाई पड़ सकते हैं; फूल? फूल बस तिरोहित हो जाएंगे। और इन सबका जो जोड़ होगा, वही नास्तिक का जगत है। दोष-दृष्टि से जगत को देखा जाए, तो नास्तिक के दर्शन का जन्म होता है।
लेकिन भक्त जगत को और तरह से देखता है।
कृष्ण कहते हैं कि अब मैं तुझ दोष-दृष्टि रहित भक्त के लिए रहस्य की बात कहूंगा।
वह रहस्य की बात कही ही तब जा सकती है, जब दोष-दृष्टि मौजूद न हो।
अन्यथा उसे कहा नहीं जा सकता, क्योंकि कहना व्यर्थ है। क्योंकि कहा भी जाए, तो सुना नहीं जा सकता। अगर अर्जुन अभी दोष देखने की मनोदशा में हो, तो कृष्ण रहस्य की परम गोपनीय बात को कहने में समर्थ नहीं हो सकते। अर्जुन सुन ही न पाएगा।
जीसस ने बार-बार बाइबिल में कहा है, जिनके पास आंखें हों, वे देखें; और जिनके पास कान हों, वे सुन लें; मैं कहे जा रहा हूं, मैं प्रकट किए जा रहा हूं।
जिनसे वे बोल रहे थे, वे अंधे भी नहीं थे और बहरे भी नहीं थे। उनके पास ठीक आपके जैसी ही आंखें थीं, और आपके जैसे ही कान थे। लेकिन जीसस को यह बार-बार कहना पड़ा है कि जिनके पास आंख हो, वे देख लें, क्योंकि मैं मौजूद हूं; और जिनके पास कान हो, वे सुन लें, क्योंकि मैं बोल रहा हूं; जिनके पास हृदय हो, वे अनुभव कर लें, क्योंकि अनुभव सामने साकार है।
कृष्ण कहते हैं, अब मैं गोपनीय बात कह सकूंगा।
आठ लंबे अध्यायों की चर्चा के बाद कृष्ण श्रद्धा के सूत्र पर विचार करना शुरू करते हैं। अब तक वे तर्क की बात कर रहे थे। अब तक वे अर्जुन को समझाने की कोशिश कर रहे थे; क्योंकि अर्जुन नासमझ बने रहने की जिद्द पर अड़ा था। अब तक वे अर्जुन के संदेह काटने में लगे थे; क्योंकि अर्जुन संदेह पर संदेह खड़े किए जाता था। अब तक वे अर्जुन के नास्तिक से संघर्ष कर रहे थे। अब वे कहते हैं, तेरा नास्तिक विसर्जित हुआ। अब तेरी दोष-दृष्टि खो गई। अब तू संदेह से भरा हुआ दिखाई नहीं पड़ता। अब तेरे मन में दुविधा नहीं है। अब तू किसी जिद्द पर अड़ा हुआ नहीं है। अब तू विपरीत अपेक्षा से सोचेगा नहीं। अब तेरे हृदय का द्वार खुला। अब तू दोष-दृष्टि को छोड़कर देख सकेगा। तो मैं अब तुझसे परम गोपनीय रहस्य की बात कहता हूं।
जब चित्त संदेह से भरा हो, तो क्षुद्र बातें ही कही जा सकती हैं। उन्हें भी कहना मुश्किल है, क्योंकि क्षुद्र बातों पर भी संदेह खड़ा हो जाता है। जब गहन बातें कहनी हों, तो एक आत्मीयता चाहिए, एक इंटिमेसी, एक ऐसा नैकट्य, एक ऐसा अपनापन, जहां संदेह भेद खड़ा नहीं करता है, जहां शंकाएं उठकर बीच में जो नैकट्य की शांत झील बनी है, उस पर लहरें नहीं उठातीं, कोई कंपन नहीं है संदेह का--तभी जो रहस्यपूर्ण है, वह कहा जा सकता है। जरा-सा भी संदेह का कंपन हो, तो रहस्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। कहना व्यर्थ है, क्योंकि सुना नहीं जा सकेगा। बताना फिजूल है, क्योंकि देखा नहीं जा सकेगा।
कृष्ण प्रसन्न होकर इस सूत्र को कहते हैं। इन आठ अध्यायों में उन्होंने निरंतर अर्जुन की बुद्धि से संघर्ष किया है, बुद्धि को काटा है। ताकि बुद्धि हट जाए, तो हृदय उभर आए। और बुद्धि जब तक काम करती है, तब तक हृदय विश्राम करता है। और जब बुद्धि विश्राम पर चली जाती है, तो हृदय सक्रिय हो जाता है। और कुछ रहस्य हैं, जो केवल हृदय से ही समझे जा सकते

हैं। ऐसा समझें कि जो भी रहस्य हैं, वे हृदय से ही समझे जा सकते हैं। क्योंकि हृदय जरा-सी भी भेद की रेखा नहीं खींचता। हृदय निकट आ सकता है, बुद्धि दूर ले जाती है।
अगर दो व्यक्ति बैठे हों और उनके बीच बुद्धि का संबंध हो, तो उनके बीच इतना फासला है, जितना किन्हीं दो आकाश के तारों के बीच है। वे कितने ही निकट बैठे हों, वे एक-दूसरे के गले में हाथ डालकर बैठे हों; लेकिन अगर उनके बीच बुद्धि का आवागमन है, अगर उन दोनों के बीच विचार का लेन-देन है, अगर उनका संबंध बौद्धिक है, इंटलेक्चुअल है, तो वे इतने फासले पर हैं, जितने फासले पर दो बिंदु हो सकते हैं। लेकिन अगर दो दूर के ताराओं पर भी दो व्यक्ति बैठे हों, और उनके बीच विचार का आवागमन नहीं है, और हृदय के द्वार खुल गए हैं, तो वे इतने निकट हैं, जितने निकट कभी भी दो प्रेमी नहीं हुए। नैकट्य, निस्तरंग आत्मीयता का नाम है। जब दोनों के बीच कोई तरंग न उठती हो। जब अर्जुन अर्जुन न रहे और अपनी बुद्धि को तिलांजलि दे दे, तो ही कृष्ण जो रहस्य उसे कहना चाहते हैं, उसके कहने की भूमिका निर्मित होती है; अर्जुन पात्र बनता है।
अब तक उसने उठाए हैं सवाल। सवाल दो तरह से उठाए जाते हैं। एक तो इसलिए
कि जो कहा गया है, उसे और गहरे में समझना है; तब सवाल हृदय से आते हैं। और एक इसलिए कि जो कहा गया है, उसे गलत सिद्ध करना है; तब सवाल बुद्धि से उठाए जाते हैं। एक तो तब, जब मैं जानता हूं पहले से ही कि सही क्या है, और उसके आधार पर सवाल उठाए चला जाता हूं। तब वे बुद्धि से उठाए जाते हैं। और एक तब, जब मुझे तो पता नहीं कि सही क्या है, लेकिन मैं सही को जानना चाहता हूं; तब हृदय से सवाल उठाए जाते हैं।
जो सवाल हृदय से आते हैं, वे संदेह नहीं हैं। वे प्रश्न सत्संग बन जाते हैं। और जो सवाल बुद्धि से आते हैं, वे सवाल दो के बीच खाई को और गहरा कर देते हैं।
बुद्धि और बुद्धि के बीच की खाई को पाटना असंभव है। बुद्धि और बुद्धि
के बीच किसी तरह का सेतु निर्मित नहीं होता है। बुद्धि और बुद्धि के बीच सिर्फ टूट हो सकती है, मेल नहीं हो सकता। हृदय और हृदय के बीच टूट का कोई उपाय नहीं, मेल स्वाभाविक है। इसलिए कृष्ण ने पूरी कोशिश की है कि अर्जुन की बुद्धि को काटकर गिरा दें। बुद्धि हट जाए, बुद्धि का पर्दा हट जाए, तो हृदय उन्मुख हो जाता है, सामने आ जाता है।
अब अर्जुन का हृदय कृष्ण को सामने मालूम पड़ रहा है। अब वे देख पा रहे हैं कि अब उसकी दोष-दृष्टि खो गई है। और जब दोष-दृष्टि खोती है, तो आंख से, चेहरे से, एक-एक भाव-भंगिमा से, एक-एक गेस्चर से वह प्रकट होने लगती है। जब आपके भीतर संदेह होता है, तो आपकी आंख भी संदेह से भर जाती है, आपके होंठ भी, आपकी भाव-भंगिमा भी। आपका प्राण ही संदेह से नहीं भरता, आपका रोआं-रोआं शरीर का संदेह से भर जाता है।
किसी दिन अगर विज्ञान समर्थ हो सका, तो संदेह से भरे हुए आदमी के खून में और श्रद्धा से भरे हुए आदमी के खून में अगर रासायनिक फर्क खोज ले, तो कोई आश्चर्य न होगा। अगर केमिकल फर्क मिल जाए, तो कोई आश्चर्य न होगा। क्योंकि विज्ञान यह तो अनुभव करने लगा है कि जब एक आदमी प्रेम से भरता है, तो उसके खून की केमिकल, उसके खून की रासायनिक व्यवस्था रूपांतरित हो जाती है। और जब एक आदमी क्रोध से भरता है, तब उसके खून की रासायनिक व्यवस्था रूपांतरित हो जाती है। उसके खून में जहर फैल जाता है। जब एक आदमी उदास होता है, तब उसके खून का रासायनिक रूप और होता है; और जब एक आदमी प्रफुल्लित होता है, आशा से, उमंग से भरा होता है, जब उसकी हृदय की धड़कनें आशा के गीत गाती होती हैं, तब उसके खून की रासायनिक व्यवस्था बदल जाती है। शरीर का कण-कण भी बदल जाता है, जब भीतर का मन बदलता है; क्योंकि शरीर मन
की छाया मात्र है। क्योंकि शरीर जो भी है, वह मन का ही प्रतिफलन है।
कृष्ण कहते हैं कि अब यह संभव है अर्जुन, तू दोष देखने वाली दृष्टि से मुक्त हुआ, रिक्त हुआ, खाली हुआ, तो अब मैं तुझसे रहस्य की बात कह सकूंगा।
दोष की दृष्टि क्या है? यह नकारात्मक देखने का ढंग क्या है?

अगर मैं आपसे कहूं कि ईश्वर है, तो जो दोष की दृष्टि है, वह पूछेगी, कहां है? इसलिए नहीं कि उसे खोजना है; बल्कि सिर्फ इसलिए कि जो कहा गया है, वह सही नहीं है। भक्तों ने भी पूछा है कि कहां है? लेकिन इसलिए नहीं कि जो कहा गया है, वह गलत है; बल्कि इसलिए कि उसे कहां खोजें? कहां पाएं उसे? किस तरफ देखें? किस मार्ग पर चलें?
भक्त ने जब भी पूछा है, उसने पूछा है कि समझा, है। कैसे उसे पाएं? उसने
जब भी प्रश्न उठाए हैं, तो वे प्रश्न हैं, कैसे? उनका रूप कुछ भी रहा हो। उसने यह पूछा है कि ठीक है; वह है। कहां है? कैसे उसे खोजें? क्या है मार्ग? क्या है विधि? कहां तक, कैसे मैं अपने को रूपांतरित करूं कि वह मुझे मिल जाए? उसने भी प्रश्न पूछे हैं, लेकिन उसके प्रश्न किसी अनुभूति की पिपासा से उठे हैं।
और जब एक नकारात्मक दृष्टि पूछती है, तब वह यह पूछती है कि गलत है यह बात। कहां है? प्रत्यक्ष मेरे सामने लाकर रखो। यहां मेरे सामने हो, तो मैं मानूं। वह असल में यह कह रहा है कि अगर परमात्मा एक पदार्थ हो, तो मैं स्वीकार करूं। परमात्मा अगर एक वस्तु हो, तो मैं स्वीकार करूं। प्रयोगशाला में अगर परीक्षण हो सके, तो मैं स्वीकार करूं। मैं उसे डिसेक्ट कर सकूं, काट-पीट सकूं। जैसे कि चिकित्साशास्त्र का विद्यार्थी अपनी टेबल पर रखकर मेंढक को काट-पीट रहा है, जांच-पड़ताल कर रहा है, आदमी के अस्थिपंजर में खोज कर रहा है। ऐसा अगर तुम्हारा ईश्वर कहीं हो, तो लाओ, उसे रखो प्रयोगशाला की टेबल पर, सर्जरी की टेबल पर, हम उसे काटें-पीटें, उसे खोजें, क्या है उसके भीतर? कुछ है भी या धोखा है!
नकारात्मक दृष्टि विश्लेषण मांगती है; एनालिसिस, तोड़ो, खंड-खंड करो, तभी हम स्वीकार करेंगे कि है। अगर हमने तोड़कर भी पाया कि है, तो ही हम मानेंगे कि है।
नकारात्मक दृष्टि खंड-खंड करने में भरोसा रखती है। अगर हम एक फूल दें,
तो नकारात्मक दृष्टि तोड़कर सौंदर्य की खोज करेगी। पंखुड़ियों को काट डालेगी। एक-एक रस को पृथक कर लेगी। एक-एक खनिज को तोड़ डालेगी। और तब अलग-अलग शीशियों में बंद करके फूल के सौंदर्य की खोज करेगी।
स्वभावतः, फूल का सौंदर्य नहीं मिलेगा; क्योंकि फूल का सौंदर्य फूल
की पूर्णता में है, उसकी समग्रता में है, उसकी टोटेलिटी में है। तोड़ते ही खो जाता है। फूल का सौंदर्य उसके खंडों में नहीं, उसकी अखंडता में है। और जो भी अखंडता में है, नकारात्मक दृष्टि उसे कभी भी नहीं पा पाएगी। परमात्मा परिपूर्ण अखंडता है। अगर फूल अपनी अखंडता में है, तो फूल की समग्रता। परमात्मा का अर्थ है, सारे अस्तित्व की समग्रता। पूरा अस्तित्व अगर एक फूल है, तो परमात्मा उसकी समग्रता का सौंदर्य है।
नकार की दृष्टि इंद्रियों पर भरोसा करती है। जो इंद्रियों को प्रतीत हो, वही सत्य है; जिसे इंद्रियां इनकार कर दें, वह सत्य नहीं है। लेकिन इस दृष्टि को भी धीरे-धीरे जैसे-जैसे गहरे उतरने का मौका मिला, उसे ऐसी बातों को स्वीकार करना पड़ा है, जिनकी इंद्रियां कोई भी खबर नहीं देतीं।
आज का सारा विज्ञान परमाणु की खोज पर खड़ा है, इंद्रियां उसकी कोई खबर नहीं देतीं। ज्यादा से ज्यादा हम परमाणु के जो परिणाम हो सकते हैं, इफेक्ट्स हो सकते हैं, उन्हें जान सकते हैं, लेकिन स्वयं परमाणु को नहीं। लेकिन इसी बुद्धि ने कल यह मानने से इनकार कर दिया था कि आदमी के भीतर प्रेम है। प्रेम के परिणाम तो दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि एक मां अपने जीवन के न मालूम कितने कीमती समय को प्रेम के लिए विलीन कर देती है! कि कोई प्रेमी अपने प्रेमी के लिए मर जाता है! जीवन को भी छोड़ देता है प्रेम के लिए!
तो प्रेम के परिणाम तो भारी हैं, लेकिन प्रेम को काटकर जानने का कोई
भी उपाय नहीं है। तो फिर प्रेम एक कल्पना होगी। फिर प्रेम एक ख्याल है, फिर उसकी कोई वस्तुगत सत्ता नहीं है, ऐसा जो मानते थे, वे भी परमाणु को स्वीकार करेंगे। और वे भी परमाणु के नीचे उतरेंगे, तो इलेक्ट्रांस को स्वीकार करेंगे। इंद्रियां उनकी कोई भी गवाही नहीं देतीं।

विज्ञान भी तोड़-तोड़कर इस नतीजे पर पहुंचा है कि वे जो अंतिम खंड हाथ में आते हैं, वे हाथ में आते ही नहीं। अंतिम खंड भी हाथ से चूक जाते हैं। इंद्रियों की पकड़ उन पर भी नहीं बैठ पाती। लेकिन एक और दृष्टि भी है, जिसे विधायक, पाजिटिव दृष्टि कहें। जो जीवन को तोड़कर नहीं, जोड़कर देखती है। जो पूछती है, तो इसलिए कि पहुंचें कैसे। जो सवाल भी उठाती है, तो इसलिए ताकि जवाब मिल सके। जवाब गलत है, इसलिए नहीं; ताकि जवाब किसी और का है अभी, कल मेरा भी कैसे हो जाए इसलिए।
आज जो कृष्ण कहते हैं, कल वह अर्जुन का भी हो जाए, इसलिए अगर सवाल पूछा जाए, तो उस सवाल की गरिमा और गौरव अलग है। उस सवाल की गुणवत्ता, उसकी क्वालिटी और है। कृष्ण को लगता है कि अर्जुन अब उस जगह आकर खड़ा हुआ है, जहां उसकी दोष की दृष्टि खो गई है। अब उससे परम रहस्य की बात कही जा सकती है।
वे कहते हैं, तुझ दोष-दृष्टि रहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय ज्ञान के रहस्य को कहूंगा।
दोष-दृष्टि से जैसे ही कोई व्यक्ति रहित हुआ, वह भक्त हो गया। भक्त की
इस परिभाषा को ठीक से हृदय में ले लें। क्योंकि भक्त से हम कुछ न मालूम क्या समझते हैं!
भक्त से हमारे मन में जो तस्वीर उठती है, वह बहुत बचकानी है। भक्त से हमारे मन में ख्याल उठता है कि मंदिर में पूजा का थाल लिए जो खड़ा है! भक्त से हमारे मन में ख्याल उठता है कि जो रोज नियम से, विधि से प्रार्थना कर रहा है! भक्त से हमें ख्याल उठता है--जनेऊधारी, टोपी लगाए हुए, टीका लगाए हुए! भक्त से हमें कुछ ख्याल उठते हैं; कुछ तस्वीरें मन में घूम जाती हैं। लेकिन भक्त का जो अर्थ है, वह है, जिसकी दोष-दृष्टि नष्ट हुई; जो अब जीवन को नकारात्मक ढंग से नहीं देखता; जिसने अब जीवन को उसकी विधायकता में देखने की तैयारी जुटा ली।
इसे हम ऐसा भी समझें, तो ठीक होगा, मैंने कहा कि नकारात्मक जो जीवन-दृष्टि है, वह चीजों को तोड़कर देखती है। तोड़ने के लिए हमारे पास एक शब्द है, विभक्त। चीजों को बांटती है, विभक्त करती है। भक्त का अर्थ इससे उलटा है, जो तोड़ता नहीं, जोड़ता है। भक्त का अर्थ है, जो जोड़ता है। विभक्त का अर्थ है, जो तोड़ता है।
अंग्रेजी में भक्त के लिए हम डिवोटी शब्द का उपयोग करते हैं। वह एकदम
ही गलत है। उस डिवोटी से हमारी वही तस्वीर ख्याल में आती है, मंदिर में पूजा का थाल लिए। ठीक भक्त का अगर अंग्रेजी में कोई शब्द हो सके पर्यायवाची, तो वह इंडिविजुअल है। लेकिन ख्याल में नहीं आएगा। इंडिविजुअल शब्द का भी अर्थ होता है, दैट व्हिच कैन नाट बी डिवाइडेड, इनडिविजिबल। जो तोड़ा न जा सके। जो टूटा हुआ न हो। जिसका भरोसा तोड़ने पर न हो। जोड़ा जा सके, जोड़ने की तैयारी हो, जुड़ा हुआ हो।
कार्ल गुस्ताव जुंग ने अपने मनोविज्ञान को ए थियरी आफ इंडिविजुएशन कहा है--एक होने का विज्ञान। भक्त का अर्थ भी वही है। भक्त का अर्थ है, जो जीवन को जोड़ने वाली दृष्टि से देखने में समर्थ हुआ है। यह सामर्थ्य तभी आती है, जब हम तोड़ने वाली दृष्टि को छोड़ देते हैं, त्याग कर देते हैं। और जल्दी में कोई छलांग नहीं लगा सकता।
कृष्ण यह सूत्र गीता के प्रारंभ में भी कह सकते थे, लेकिन तब वह व्यर्थ हुआ होता। हममें से बहुत लोग ऐसे ही हैं, जो गीता के आठ अध्यायों की यात्रा न करते, सीधे इस सूत्र से शुरू करते। वे कृष्ण से भी ज्यादा समझदार अपने को सोच लेते होंगे!
कोई भी व्यक्ति सीधा भक्ति में उतरने में बहुत असफलता पाएगा। क्योंकि
जब तक बुद्धि अपनी दौड़-धूप को शांत न कर ले, तब तक भक्त का भाव उदय ही नहीं होता। जब तक बुद्धि थककर हार न जाए, पराजित होकर गिर न जाए, अपने ही हाथों अपनी आत्महत्या न कर ले--दौड़ ले, कोशिश कर ले, संघर्ष कर ले, विजय की चेष्टा कर ले, और सब विफल हो जाए--तब तक हृदय का आविर्भाव नहीं होता।
इसलिए हृदय का अर्थ, अज्ञान मत समझ लेना। इसलिए हृदय का अर्थ एक तरह
का भोला-भाला बुद्धूपन मत समझ लेना। इसलिए हृदय का अर्थ बुद्धि की कमजोरी

मत समझ लेना। इसलिए यह मत समझ लेना कि जिनकी बुद्धि कमजोर है, वे बड़े धन्यभागी हैं। यह भी मत समझ लेना कि जो सोच-विचार नहीं सकते, उनका तो भक्ति का द्वार खुला ही हुआ है!
नहीं। भक्त तभी कोई हो पाता है, जब बुद्धि की सारी चेष्टाएं असफल हो जाएं। इसलिए भक्ति बुद्धि के पार ले जाती है, नीचे नहीं। और जो बुद्धि तक भी नहीं पहुंच पाते, ध्यान रखें, वे भक्ति तक नहीं पहुंच पाएंगे। यह मेरी बात कठोर मालूम पड़ेगी, क्योंकि भक्त ऐसा सोचते हैं कि ठीक है, बुद्धि का तो बहुत कठिन काम है। हमारे में तो बुद्धि है नहीं, तो हम तो मंदिर में घंटी बजाकर, फूल चढ़ाकर काम चला लेंगे!
इस धोखे में कोई भी न पड़े। जीवन के सत्य की प्रतीति श्रम मांगती है।
और कोई भी क्षमा नहीं किया जा सकता। और जीवन के मंदिर के प्रवेश में सभी को संघर्ष के रास्ते से गुजरना ही पड़ता है। वह अनिवार्यता है। और पीछे का कोई भी दरवाजा नहीं है कि आप कोई रिश्वत देकर, कि भगवान की स्तुति करके पीछे के किसी द्वार से प्रवेश कर जाएं।
इसलिए कोई यह न सोचे कि भक्ति का मार्ग बड़ा सुगम है। कृष्ण खुद कहेंगे
कि सुगम है। लेकिन ध्यान रखें कि यह आठ अध्यायों के बाद वे अर्जुन से कह रहे हैं। आठ अध्याय को मत भूल जाएं। अगर ऐसा ही सुगम था, तो कृष्ण बिल्कुल पागल हैं! यह आधी गीता व्यर्थ! जब ऐसी सुगम ही बात थी, तो इसे शुरू में ही कह देना चाहिए था। इतनी देर तक अर्जुन का समय गंवाने की क्या है जरूरत? कठिन मार्ग पहले बताए, अब सुगम बताते हैं! सीधा गणित तो यही है कि सुगम पहले बता दिया जाए। अगर सुगम न हो सके, तो फिर कठिन बताया जाए।
नहीं, कारण कुछ और है। भक्ति सुगम है, अगर गीता के आठ अध्याय आप पार कर
गए हों; निश्चित सुगम है। लेकिन अगर वे आठ आप सिर्फ उलट ही गए हों, छोड़ ही गए हों, तो भक्ति अति कठिन है। भक्ति की सुगमता बेशर्त नहीं है। उसमें एक शर्त है। और शर्त में ही सारा दांव है।
इसलिए लोग कहते सुने जाते हैं कि हमारा मार्ग तो भक्ति है। उनका मतलब
यह होता है कि बुद्धि की झंझट में हम नहीं पड़ते। उनका मतलब यह होता है कि कौन उस उपद्रव में पड़े! और अगर कोई बुद्धि की झंझट में पड़ा है, तो वे उसकी तरफ ऐसे देखते हैं, कि बेचारा!
अज्ञानी अपने अज्ञान में भी मजा लेते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, पढ़ने-लिखने से क्या होगा? उनका मतलब यह होता है कि पढ़ा-लिखा जो आदमी है, बेकार गया। ऐसे वे अपने मन में संतोष कमाते हैं।
मैं भी जानता हूं, पढ़ने-लिखने से क्या होगा! लेकिन पढ़ने-लिखने से क्या होगा, यह बहुत पढ़े-लिखे आदमी की बात है। किताबें बेकार हैं, यह उसकी बात नहीं है, जिसे काला अक्षर भैंस बराबर है। यह उसकी बात है, जिसने किताबों में से गुजरकर देखा है और पाया है कि वे बेकार हैं। लेकिन किताबें बेकार हैं, यह किताबों से गुजरे बिना कभी किसी को अनुभव नहीं होता है। और बुद्धि बेकार है, यह बुद्धि के मार्ग से गुजरे बिना कभी भी पता नहीं चलता है। इतनी उपादेयता है। बुद्धि से गुजरकर फिर आदमी बुद्धि का भरोसा खो देता है। लेकिन ध्यान रहे, इस भरोसे के खोने के लिए बुद्धि की बड़ी जरूरत है। इसलिए कृष्ण ने पूरी मेहनत की अर्जुन की बुद्धि के साथ। ऐसा नहीं कहा कि क्या जरूरत है? तू भक्ति-भाव को ग्रहण कर ले; तू भक्त हो जा, समर्पित हो जा। मान ले मेरी, जो मैं कहता हूं।
कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि दुनिया में कोई भी आदमी तब तक मान नहीं सकता, जब तक उसकी जानने की क्षमता पूरी तरह पराजित न हो जाए। जब तक प्रश्न गिर ही न जाएं, तब तक निष्प्रश्न चित्त पैदा नहीं होता। और जब तक संदेह अपनी पूरी चेष्टा और पूरा यत्न न कर लें, तब तक मरते नहीं हैं; दबाए जा सकते हैं।
हमारे पास जो तथाकथित भक्तों का समाज है, वह दबाया हुआ समाज है। वे दबाए हुए संदेह उसके भीतर भी हैं। उसने कभी संदेहों को पार नहीं किया है। वह उनको दबाकर बैठ गया है उनके ऊपर। इसलिए उसकी भक्ति कमजोर और नपुंसक भी है। क्षणभर में डांवाडोल हो जाती है। इसलिए भक्त होकर भी वह डरता है।

नास्तिक की बात सुनने में घबड़ाता है। कोई अगर ईश्वर के विपरीत बोलता हो, तो कान में हाथ डाल लेता है।
इतनी घबड़ाहट भक्त को? इतना कमजोर भक्त? कि अगर वह राम का भक्त है--यह
तो दूर की बात है कि नास्तिक की बात वह न सुने--अगर वह राम का भक्त है, तो कृष्ण की बात नहीं सुनेगा! इतनी नपुंसक भक्ति? इतनी कमजोर? इतनी दीन? भक्ति तो परम शक्ति है। जब उसका आविर्भाव होता है, तो उससे ज्यादा बलशाली कोई व्यक्ति ही नहीं होता। वह तो परम ऊर्जा का जागरण है। तो इस कमजोर भक्त और परम ऊर्जा के जागरण का क्या संबंध है?
एक महिला चार दिन पहले मेरे पास आई। और वह कहने लगी कि मैं आपसे यह पूछने आई हूं कि मेरे गुरु तो मर गए हैं, लेकिन वे कह गए हैं कि किसी और की बात सुनने कभी मत जाना, अन्यथा मार्ग से च्युत हो जाएगी। तो गुरु तो मर चुके हैं, मैं आपसे पूछने आई हूं कि अगर आपकी बात सुनने आऊं, तो कोई हानि तो न हो जाएगी?
सत्य इतने कमजोर? और गुरु इतने दीन? कहीं कोई दूसरी बात सुनकर डांवाडोल तो न हो जाएगा मन?
तो जानना कि डांवाडोल है ही। अपने को कब तक धोखा दोगे? ऐसे धोखे से नहीं चलेगा। जरा-सा हवा का झोंका और सब प्राण कंप जाएंगे; और सब मुर्दा पत्ते उड़ जाएंगे; और भीतर वे जो छिपे हुए संदेह हैं, ऊपर उघड़ आएंगे।
हम ऐसे भक्त हैं, जैसे अंगारे के ऊपर राख छा गई हो बस। थोड़ा अंगारा बुझ गया है, ऊपर-ऊपर राख हो गई है, भीतर अंगार जलती है। भीतर संदेह मौजूद हैं। इसलिए हम विपरीत बात से भयभीत होते हैं। भीतर संदेह मौजूद है, वही हमारा भय है। हम भलीभांति जानते हैं कि कोई भी राख को जरा-सी फूंक मार देगा, तो अंगारा भीतर से प्रकट हो जाएगा। ऐसी भक्ति का कोई भी मूल्य नहीं है, आत्मवंचना है।
कृष्ण ऐसी भक्ति की बात नहीं कर रहे हैं। कृष्ण तो उन मनीषियों में हैं, जो पलायन में भरोसा नहीं करते, भागने में भरोसा नहीं करते, लड़ने में भरोसा करते हैं--बाहर के युद्ध में ही नहीं, भीतर के युद्ध में भी।
अर्जुन से उन्होंने पूरी टक्कर ली। अगर बुद्धि के खेल में अर्जुन को
रस आ रहा है, तो कृष्ण ने भी उस रस में पूरा भाग लिया। उन्होंने यह नहीं कहा कि यह क्या तू बुद्धि की बातें करता है, बेकार! क्योंकि किसी के बेकार कहने से कुछ भी बेकार नहीं होता है। बल्कि अक्सर तो यह होता है, बेकार कहने से और भी ज्यादा रसपूर्ण हो जाता है। उन्होंने यह नहीं कहा कि बंद कर। श्रद्धा जन्मा! श्रद्धा कोई जन्माई नहीं जाती। उन्होंने यह नहीं कहा कि भरोसा रख! क्योंकि किसी के कहने से अगर भरोसा आता होता, तो सारी दुनिया कभी की भरोसे से भर गई होती। कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि भरोसा कहने से पैदा नहीं होता, भरोसा तो बुद्धि की असमर्थता से जन्मता है।
ध्यान रखें, जब बुद्धि असहाय हो जाती है, तभी श्रद्धा का जन्म होता है। जब बुद्धि थककर गिर जाती है, और पाती है कि अब एक इंच भी गति का उपाय नहीं है... बुद्धि के मरघट पर ही श्रद्धा का बीज अंकुरित होता है।
इसलिए कमजोर बुद्धि की नहीं, बड़ी संघर्षशील बुद्धि की जरूरत है, बड़ी जीवंत बुद्धि की जरूरत है। और भक्ति को ऐसा मत समझ लें कि वह उनका काम है, जिनके पास बुद्धि नाम मात्र नहीं है। भक्ति उनका काम है, जिनके पास बुद्धि की यात्रा के भी पार जाने का समय आ गया है; जो बुद्धि के भी ऊपर उठने के करीब पहुंच गए हैं; जो उस सीमा-रेखा पर, सीमांत पर खड़े हो गए, जहां बुद्धि समाप्त होती है, और भक्ति और हृदय की यात्रा शुरू होती है।
इसलिए कृष्ण ने कहा कि तुझ भक्त के लिए।
अब तक अर्जुन एक जिज्ञासु था। एक खोज थी उसकी। समझना चाहता था; लेकिन बुद्धि से। अब वह भक्त हुआ। अब वह समझना चाहता है; लेकिन अब खोज पिपासा बन गई है। अब खोज केवल एक इंटलेक्चुअल इंक्वायरी नहीं है, अब हृदय की अभीप्सा है। अब तक जो था, वह शब्दों का जाल था। अब अपने को दांव पर लगाने की भी हिम्मत उसमें आ गई है। इसलिए वे कहते हैं कि इस परम गोपनीय ज्ञान को रहस्य के सहित कहूंगा। यह ज्ञान परम गोपनीय है; गुप्त रखने योग्य है; न कहा जाने योग्य है।

बड़ी उलटी बात कृष्ण कहते हैं, कि जो गोपनीय है, उसे कहूंगा! उसे कहूंगा, जिसे नहीं कहना चाहिए! उसे कहूंगा, जो नहीं कहा जा सकता है! उसे कहूंगा, जो कि कहकर भी कभी नहीं कहा गया है! गोपनीय का यह अर्थ होता है, जो गुप्त है स्वभाव से। और उसको रहस्य सहित कहूंगा! उस गोपनीय की जो भी रहस्यमयता है, उसके आस-पास जो रहस्य का आभामंडल है, उसे भी उघाड़कर कहूंगा। जिसे नहीं उघाड़ना है, उसे निर्वस्त्र करूंगा! जिसे छिपाए रखना ही उचित है, उसे भी अब नहीं छिपाऊंगा! क्यों?
कुछ बातें ख्याल में ले लें।
पहली बात, जब तक हृदय में भक्त का भाव न हो, तब तक कोई भी ज्ञान खतरनाक सिद्ध हो सकता है। विज्ञान का ज्ञान ऐसे ही खतरनाक सिद्ध हो रहा है। ज्ञान खतरनाक नहीं होता, लेकिन ज्ञान जिसके हाथ में जाएगा, अगर उसके पास भक्त का भाव न हो, तो ज्ञान का खतरा निश्चित है।
विज्ञान ने बड़े ज्ञान की खोज की और पदार्थ के गुह्यतम रहस्यों को बाहर ले आया। लेकिन उसका परिणाम हिरोशिमा और नागासाकी हुआ। और उसका परिणाम अब यह है कि खुद वैज्ञानिक चिंतित हैं कि हमने पाप किया। ओपेनहेमर ने, या आइंस्टीन ने, जिन्होंने अणु की ऊर्जा के विस्फोट में सर्वाधिक काम किया, उनके भी अंतिम क्षण बड़े दुख और पश्चात्तापपूर्ण थे; अपराधपूर्ण थे, एक भारी गिल्ट, छाती पर एक बोझ था। लीनियस पालिंग या और दूसरे वैज्ञानिक भी अपने जीवन के अंतिम क्षणों में एक ही चीज से परेशान हैं। और वह परेशानी यह है कि हमने जो ज्ञान मनुष्य को दे दिया है, कहीं वह ज्ञान ही तो मनुष्य का आत्मघात सिद्ध न होगा? कहीं उसके कारण ही तो जगत विनष्ट नहीं हो जाएगा? हमने तो सोचा था कि ज्ञान सदा ही हितकारी है, लेकिन अब ऐसा मालूम नहीं पड़ता।
ज्ञान सदा हितकारी नहीं है। कभी-कभी तो अज्ञान भी हितकारी है। गलत आदमी के हाथ में अज्ञान ही ठीक है। सही आदमी के हाथ में ज्ञान ठीक हो सकता है, क्योंकि ज्ञान शक्ति है। बेकन ने कहा है, नालेज इ.ज पावर--ज्ञान शक्ति है। और शक्ति अगर गलत हाथों में है, तो खतरा निश्चित है।
भक्त का अर्थ है, अब जो गलत नहीं कर सकता। भक्त का अर्थ है, जिसके भीतर
से गलत करने वाली बुद्धि विलीन हो गई। भक्त का अर्थ है, जिसने जीवन में अब परम को देखने की क्षमता जुटा ली। अब वह निकृष्ट के लिए प्रयासशील नहीं होगा। उसके हाथ में शक्ति भी दे दी जाए, तो अब कोई खतरा नहीं है।
विज्ञान को जो भूल आज समझ में आ रही है, भारत को पांच हजार साल पहले किसी दूसरे संदर्भ में समझ में आ गई है। जिसे आज विज्ञान पदार्थ में गहरे उतरकर समझ रहा है, और पश्चिम के सारे वैज्ञानिकों के सारे सम्मेलन एक ही बात पर चिंता कर रहे हैं, कि क्या अब जो ज्ञान हमें मिल रहा है, वह सर्व-सामान्य के लिए सुलभ किया जाना चाहिए या नहीं? जो ज्ञान हमें मिल रहा है, वह राजनीतिज्ञों तक पहुंचना चाहिए या नहीं? जो हम जान लेंगे, हम कैसे समझें कि अगर हमने उसे प्रकट किया, तो वह अहितकर सिद्ध नहीं होगा? फिर कौन रोके? यह जो ज्ञान हाथ में आ जाए, इसे रोके कौन? यह रुकेगा कैसे? इसे छिपाओगे कैसे?
बहुत आश्चर्य न होगा, अगर आने वाले पंद्रह वर्षों में सारी दुनिया के वैज्ञानिकों को इकट्ठा होकर यह तय करना पड़े कि सिर्फ वैज्ञानिक ही वैज्ञानिक अनुसंधान से हुई उपलब्धियों को जान सकेंगे, बाकी कोई नहीं। और शायद उन्हें ऐसी भाषा विकसित करनी पड़े--जो विकसित हो रही है--कि जिस भाषा को गैर-वैज्ञानिक समझ ही न सके। आज भी नहीं समझ सकता। आज भी वैज्ञानिक की भाषा धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से गोपनीय होती चली जा रही है।
ठीक ऐसा ही एक अनुभव आत्मज्ञान का भारत को भी हुआ है। उससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। भारत ने भी मनुष्य के अंतर्भेदन में उस जगह को उपलब्ध कर लिया, जहां परम शक्ति का स्रोत था। उन सूत्रों को छिपाने का सवाल उठ गया, क्योंकि उन सूत्रों का बताया जाना खतरनाक हो सकता था।
इसलिए एक गोपनीय गुह्य-ज्ञान, एक इसोटेरिक नालेज निर्मित हुई। और उसे यहां तक गुह्य करना पड़ा कि उसे शास्त्र में भी न लिखा जाए; क्योंकि शास्त्र भी पढ़े जा सकते हैं। या इस ढंग से लिखा जाए कि पढ़ने वाला कुछ और

समझे, वह नहीं, जो कहा गया है। या इस ढंग से लिखा जाए कि उसके अनेक अर्थ हो सकें; और पढ़ने वाला जब तक जानता ही न हो, तब तक अनेक अर्थों में खो जाए। या इस ढंग से लिखा जाए कि उसके दो अर्थ हो सकें। एक, जो सामान्य आदमी समझ ले, और पाए कि बिल्कुल ठीक है; और एक वह आदमी समझे, जिसके हाथ में कुंजियां हैं।
फिर बहुत वर्षों तक, किताबें न लिखी जाएं, इसका आग्रह रहा। हजारों वर्षों तक हमने ज्ञान को मुखाग्र रखा; नहीं लिखने की चेष्टा की। मजबूरी में वह लिखा गया। इसलिए नहीं, जैसा कि पश्चिम के विचारक समझते हैं कि ज्ञान तब लिखा गया, जब लिखने का आविष्कार हुआ। नहीं; क्योंकि जो ज्ञान का आविष्कार कर सकते थे, वे निश्चित ही लिखने का आविष्कार कर सकते थे। लिखना बड़ी छोटी बात है। जो ज्ञान का आविष्कार कर सकते थे, वे लिखने का आविष्कार न कर सकते हों, यह बात समझ में आने जैसी नहीं है। असंगत है।
नहीं, जानने का आविष्कार रोका गया लिखने से हजारों वर्षों तक, ताकि वह जनसामान्य तक न पहुंच जाए; वह गोपनीय रखा जा सके। लिखने की मजबूरी तो तब आई, जब इतनी शाखाएं हो गईं उस ज्ञान की, और गुप्त मार्गों से यात्रा कर-करके वह इतने लोगों के हाथ में और इतने ढंगों से पहुंच गया कि अब जरूरी हो गया कि सुस्पष्ट हो सके, कि जो-जो बातें लोगों ने बीच में मिला ली होंगी, वे ठीक नहीं हैं। इसलिए स्मृति से उसे कागज तक उतारने की चेष्टा करनी पड़ी। फिर भी उसे सूत्रों में लिखा गया। सूत्र का मतलब होता है, उसे वही समझ सकेगा, जो सूत्र की भाषा में निष्णात है। अगर आइंस्टीन के सापेक्षवाद के सिद्धांत के फार्मूले को हम लिखें, तो तीन छोटे-छोटे शब्दों में पूरा हो जाता है; तीन वर्णों में पूरा हो जाता है। पूरा का पूरा उसका जीवन-दर्शन, जिस पर आधुनिक विज्ञान की सारी आधारशिला खड़ी है, आपके नाखून पर लिखा जा सकता है। बस, उतनी ही उसकी खोज है, शेष सब विस्तार है। लेकिन उस नाखून पर लिखे हुए सूत्र को आप समझ नहीं पाएंगे। वह भाषा और है।
सूत्र का मतलब होता है, संक्षिप्त, सार। इतना सार कि उसे वही जान सके, जिसे पूरे विस्तार का पता हो। सूत्र से विस्तार नहीं जाना जा सकता; विस्तार पता हो, तो सूत्र खोला जा सकता है। सूत्र जो है, वह स्मरण रखने के लिए है; ताकि पूरे विस्तार को याद न रखना पड़े। तो शास्त्र सूत्रों में लिखे गए।
फिर उन सूत्रों को भी जहां तक बन सके ओरल ट्रेडीशन से--गुरु शिष्य को कहता रहे, और शिष्य अपने शिष्यों को कहता रहे। सीधा मुंह से ही कहे, ताकि कहने में उसका जीवन भी समाविष्ट हो जाए। ताकि जब वह कहे, तो उसकी आत्मा भी उसमें प्रवेश कर जाए। जब वह कहे, तो उसका अनुभव भी उस कहे हुए को रंग और रूप दे जाए। अन्यथा खाली शब्द चली हुई कारतूस जैसे होते हैं। अनुभव से सिक्त, अनुभव से भरे, अनुभव के रस में डूबे हुए और पके हुए शब्द भरी हुई कारतूस की तरह होते हैं। तो सूत्र गुरु अपने शिष्य को कह दे। वह भी कान में कह दे। अभी भी कान में कहे जा रहे हैं सूत्र! लेकिन बड़े अजीब सूत्र। कान में गुरु किसी से कह देता है कि राम-राम जपना, यह मंत्र दे दिया।
कान में वही बातें कही जाती थीं, जो सुनने वाले ने पहले कभी सुनी ही न हों। राम-नाम का आप सूत्र दे रहे हैं उसको, वह भलीभांति सुना हुआ है। और फिर भी उसको कह रहे हैं कि किसी को बताना मत, गुप्त रखना!
कभी-कभी चीजें बेहूदगी की सीमा को भी पार कर जाती हैं! सूत्र थे वे, जो सुनने वाले ने कभी सुने ही नहीं थे। जो उसकी चेतना में पहली दफे अवतरित किए जा रहे थे। और इसलिए गुरु ही कहे उनको, क्योंकि उसके पास उसके पूरे जीवन से निकला हुआ, अनुभव से आया हुआ सूत्र है। वह दूसरे की चेतना पर ट्रांसफर करे। वह हस्तांतरण था एक अनुभव का, सूत्रबद्ध। और साधना से फिर उस सूत्र के अर्थ को खोज लेने के उपाय थे।
कृष्ण कहते हैं, मैं उन गोपनीय बातों को तुझसे कहूंगा, और रहस्य के सहित कहूंगा।
क्योंकि सिर्फ गोपनीय बातें कह देने से कुछ भी न होगा। उनका अर्थ भी बताना होगा। उनका रहस्य भी समझाना होगा। कि जिसको जानकर तू दुखरूप संसार से मुक्त हो जाएगा।

ज्ञान मुक्ति है। जो जान लेता है, वह दुख के बाहर हो जाता है। इसलिए नहीं कि जानना कोई नाव है और दुख कोई सागर है; कि जानने की नाव मिल गई, तो आप पार हो जाएंगे।
नहीं। बात थोड़ी और ही है। असल में अज्ञान ही दुख है। जान लिया, तो सागर विलीन हो जाता है; नाव की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
अज्ञान और दुख पर्यायवाची हैं। अज्ञान के कारण ही दुख है। ऐसा नहीं
कि दुख है, और मैं अज्ञानी हूं। मैं अज्ञानी हूं, इसलिए दुख है। मेरा अज्ञान ही मेरा दुख है। तो जिस दिन मैं जान लूंगा, उस दिन दुख तिरोहित हो जाएगा। ऐसा नहीं कि जानने के बाद फिर ज्ञान की नौका बनाकर और दुख के भवसागर को पार करूंगा। दुख का कोई भवसागर नहीं है। मेरा अज्ञान ही मेरा दुख है। मेरा अज्ञान ही मेरी पीड़ाओं का जन्मदाता है। मेरे अज्ञान के कारण ही मैं उलझ गया हूं। मेरे अज्ञान के कारण ही मैं अपने ही पैरों पर अपने ही हाथों कुल्हाड़ी मारे चला जाता हूं। मैं अपने अज्ञान के कारण ही अपने को ही जहर से भर लेता हूं और अमृत से वंचित हो जाता हूं। यह मेरी ही भूल है। यह सिर्फ भूल है।
इसे थोड़ा समझ लें; क्योंकि यह बहुत कीमती है।
पश्चिम में जो धर्म पैदा हुए, उन्होंने आदमी के पाप पर जोर दिया है।
यह बुनियादी फर्क है। इस्लाम, ईसाइयत और यहूदी, ये तीनों के तीनों यहूदी परंपरा के हिस्से हैं।
और दुनिया में दो ही तरह के धर्म की परंपराएं हैं। एक यहूदी धर्म परंपरा और एक हिंदू धर्म परंपरा; बस दो। जो भी धर्म दुनिया में पैदा हुए हैं या तो वे यहूदी धर्म परंपरा से जन्मे हैं, उसकी ही शाखाएं हैं; या जो धर्म पैदा हुए हैं--जैसे जैन, बौद्ध या और--वे हिंदू धर्म परंपरा की शाखाएं-प्रशाखाएं हैं। ये दो तरह की धर्म परंपराएं हैं। और इन दोनों धर्म परंपराओं की बुनियादी बात समझने जैसी है।
पश्चिम के जो भी धर्म हैं, यहूदी धर्म से संबंधित जो भी धर्म हैं, वे सभी धर्म पाप को मनुष्य का मूल कारण मानते हैं दुख का। भारत के सभी धर्म अज्ञान को दुख का मूल कारण मानते हैं, पाप को नहीं। इसलिए क्रिश्चिएनिटी कहती है, दि ओरिजिनल सिन, वह जो मूल पाप है, वही सब दुखों का आधार है। भारत कहता है, वह जो मूल अज्ञान है, वही सब दुखों का आधार है।
और यह जरा सोचने जैसा है। क्योंकि भारत का यह कहना है कि पाप भी अगर हो सकते हैं, तो तभी, जब अज्ञान हो। इसलिए पाप मूल नहीं हो सकता, अज्ञान उससे भी पहले चाहिए। पापी होने के लिए भी अज्ञानी होना जरूरी है। आदमी अगर गलत भी करता है, तो इसीलिए कि उसके जानने में कहीं भूल है। यह बहुत मजे की बात है कि कोई आदमी जानकर गलत नहीं कर सकता है!
लेकिन आप कहते हैं कि नहीं, मुझे पता है कि सच बोलना चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए, फिर भी मैं झूठ बोलता हूं!
आपको पता नहीं है। सुन लिया होगा आपने। किसी ने कहा होगा। कहीं पढ़ा होगा। लेकिन भीतर गहरे में आप यही जानते हैं कि झूठ बोलने में ही फायदा है। भीतर आप यही जानते हैं। जानना आपका झूठ के ही पक्ष में है। आपने कितना ही सुना हो कि सच बोलना ठीक है, लेकिन आप भीतर जानते हैं कि वह दूसरों के लिए ठीक है। और इसलिए भी ठीक है दूसरों के लिए कि अगर दूसरे सच न बोलें, तो मैं झूठ कैसे बोल पाऊंगा? अगर मेरे झूठ को भी सफल होना है, तो वह तभी सफल हो सकता है, जब बाकी लोग सच बोल रहे हों।
इसलिए झूठ बोलने वाला भी लोगों को समझाता रहता है, सच बोलो। क्योंकि अगर सारी दुनिया झूठ बोलने लगे, तो झूठ बिल्कुल व्यर्थ हो जाएगा। आखिर बेईमानी के सफल होने के लिए भी कुछ तो ईमानदार चाहिए; चोरी के सफल होने के लिए भी कुछ तो ऐसे लोग चाहिए, जो चोरी नहीं करते हैं। नहीं तो बहुत मुश्किल हो जाएगी।
अगर यहां हम सारे लोग बैठे हैं, और सभी जेबकट हैं; तो जेब नहीं कटेगी। फिर जेब किसकी काटिएगा? और क्या फायदा? कोई मतलब नहीं; बात बेकार है। जेब कट सकती है, इसलिए कि कोई जेबकट नहीं भी है। इसलिए जेबकट भी समझाता है कि जेब काटना बहुत बुरा है! समझाना चाहिए।

मैंने सुना है, एक आदमी पर मुकदमा चला और अदालत ने उससे कहा कि तुम कैसे आदमी हो? इस आदमी ने तुम्हारा इतना भरोसा किया और तुमने इसे ही धोखा दिया! तो उस आदमी ने कहा, अगर इसको मैं धोखा न देता, तो किसको धोखा देता! इसने मुझ पर इतना भरोसा किया, इसीलिए तो मैं धोखा दे पाया। अगर यह भरोसा पहले से ही न करता, तो धोखा असंभव था। सजा आप सिर्फ मुझे ही मत दें, इसे भी दें। हम दोनों भागीदार हैं। इसने भरोसा किया; मैंने धोखा दिया। यह घटना हम दोनों के सहयोग से घटी है।
और यह बात ठीक है। यह बात बिल्कुल ही ठीक है। शायद धोखा देने वाला उतना जिम्मेवार नहीं है, जितना धोखा खाने वाला जिम्मेवार है; क्योंकि उसके बिना धोखा नहीं दिया जा सकता।
आप जानते हैं कि सच बोलना ठीक है, दूसरों के लिए, समझाने के लिए; चेहरे बनाने के लिए; प्रदर्शन के लिए। लेकिन जब मौका आए, तो कुशलता से झूठ बोलना ही उचित है, वह आप भीतर जानते हैं। आपके भीतर झूठ ही आपका भरोसा है, सच नहीं।
आप कहते हैं, मैं जानता हूं, क्रोध करना बुरा है। लेकिन यह आप तभी जानते हैं, जब कोई दूसरा क्रोध कर रहा होता है; या आप यह तब जानते हैं, जब आपका क्रोध आकर जा चुका होता है। लेकिन जब क्रोध होता है, तब आपका रोआं- रोआं जानता है कि क्रोध ही उचित है; आपका रोआं-रोआं कहता है कि क्रोध ही उचित है।
भारत कहता है, अज्ञान के अतिरिक्त न कोई पाप है और न कोई दुख; और ज्ञान
के अतिरिक्त कोई मुक्ति नहीं है।
स्वभावतः, पश्चिम अगर मानता है कि पाप आधार है दुख का, तो पुण्य आधार होगा मुक्ति का। इसलिए ईसाई फकीर या ईसाई मिशनरी सेवा में लगा है। सेवा का प्रयोजन यह है कि पाप कट जाए; बुरा काम है, अच्छे काम से कट जाए।
इसलिए पश्चिम के विचारक को समझ में नहीं आता कि भारतीय साधु ध्यान करके क्या करता है? सेवा करनी चाहिए! और विवेकानंद और गांधी के प्रभाव में ईसाइयत का यह भाव, नासमझी से, हिंदू मन में भी प्रविष्ट हो गया है। हिंदू मन भी डरता है। वह भी कहता है, क्या फायदा? ध्यान से क्या होगा? अस्पताल खोलो। ध्यान से क्या होगा? जाकर गरीबों के झोपड़े में सेवा करो। रवींद्रनाथ ने गाया है कि मैं तो भगवान वहीं देखता हूं, जहां मजदूर गिट्टी फोड़ रहा है। रवींद्रनाथ को पता नहीं है कि अगर मजदूर कभी ऐसा वक्त आ गया और उसने गिट्टी न फोड़ी, तो रवींद्रनाथ भगवान को कहां देखेंगे! वे कहते हैं, मैं तो भगवान वहीं देखता हूं, जहां भिखारी भिक्षा मांग रहा है। उसकी सेवा करो। यह ठीक है; बुरा नहीं है; बहुत अच्छा है। उचित है कि सेवा की जाए। लेकिन इसमें मौलिक भेद हैं।
भारतीय साधु ध्यान पर जोर देता रहा है, क्योंकि ध्यान से ज्ञान जन्मेगा। और ईसाइयत जोर दे रही है सेवा पर, पुण्य पर, क्योंकि पुण्य से पाप कटेगा। मौलिक आधारों का भेद है। अगर ज्ञान चाहिए, तो ध्यान मार्ग होगा। और अगर पाप काटना है, तो पुण्य उपाय है।
लेकिन भारतीय मनीषा कहती है कि अगर बिना ज्ञान के तुम पुण्य भी करने लगे, तो पुण्य भी तुम्हें बहुत गहरे नहीं ले जाएगा। क्योंकि अज्ञानी के पुण्य का मूल्य कितना है? और अज्ञानी की सेवा किसी भी क्षण खतरनाक हो सकती है। और अज्ञानी की सेवा के पीछे भी अज्ञान तो खड़ा ही रहेगा।
तो मूल रोग तो हटता ही नहीं है। मैं आपकी गर्दन नहीं काटता; आपके पैर दबाने लगता हूं। लेकिन मैं तो मैं ही हूं, वही का वही। मेरे भीतर जो चेतना है, वह वही की वही है। उसमें कोई भेद नहीं पड़ गया है। मेरे लोभ अपनी जगह खड़े हैं; लेकिन उनका रूप बदल गया, मिट नहीं गए। मेरा क्रोध अपनी जगह खड़ा है। लेकिन उसका मार्गांतीकरण हो गया, सब्लिमेशन हो गया। लेकिन वह अपनी जगह खड़ा है। और नए-नए रूपों में प्रकट होता रहेगा।
भारत कहता है, जानने के अतिरिक्त कोई मुक्ति नहीं है। और इसलिए कहता
है कि जो जान लेता है, वह उससे विपरीत नहीं जा सकता। अगर मुझे पता है कि यह आग है, तो मैं हाथ नहीं डालता हूं। और अगर कभी डालता भी हूं, तो भलीभांति जानकर डालता हूं कि यह आग है और मैं जलूंगा। फिर मैं जलने के लिए पछताता

नहीं हूं। फिर जलने के लिए रोता नहीं फिरता हूं। फिर जलने के लिए शिकायत नहीं करता हूं। फिर बात ही शिकायत की नहीं है। मैंने जानकर जो किया है, तो फिर इस जगत में कोई शिकायत का उपाय नहीं है। मैं जिम्मेवार हूं।
लेकिन जानकर कोई आग में हाथ नहीं डालता है। डालने का कोई कारण नहीं है। अज्ञान में हाथ चला जाता है आग में, और दुख पैदा होता है। अज्ञान दुख है। हम सब तरह की आग में हाथ डालते हैं। हालांकि यह हो सकता है कि जब हम हाथ डालते हैं, तब हमको आग दिखाई ही न पड़ती हो।
अज्ञान में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; आदमी अंधे की तरह चलता है। सोचते हैं कि यह अच्छा है, और बुरा होता है। सोचते हैं, यह भला है, और भला नहीं निकलता। सोचते हैं, यह फूल है; और जब मुट्ठी बांधते हैं, तो कांटा छिद जाता है और लहूलुहान हो जाते हैं। लेकिन फिर भी कुछ नहीं सीखते। फिर कल एक फूल दिखाई पड़ता है, फिर जोर से मुट्ठी बांधते हैं, फिर कांटा चुभता है, फिर रोते हैं। परसों फिर एक फूल दिखाई पड़ता है, फिर हाथ मुट्ठी बांधते हैं, फिर वही दुख।
लेकिन यह ख्याल नहीं आता कि जरा फूल को अब गौर से देख लें, कहीं हर फूल कांटा तो नहीं है? या मेरे यह मुट्ठी बांधने में ही तो कांटे के चुभने की पैदाइश नहीं है? यह मेरा मुट्ठी बांधने का जो आग्रह है, यही तो मेरा दुख नहीं है? और मैं यह फूल से जो आकर्षित हो जाता हूं, यह क्यों हो जाता हूं? यह मेरी जो आत्मा फूल की तरफ बहने लगती है, यह जो आसक्ति और यह जो राग पैदा हो जाता है, यह क्यों हो जाता है? इस सबके मूल को जो जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है।
तो कृष्ण कहते हैं, इस ज्ञान को जानकर तू इस दुखरूप संसार से मुक्त हो जाएगा।
लेकिन ध्यान रखें, जानकर, सुनकर नहीं। कृष्ण को कहना चाहिए था, हे अर्जुन, इस ज्ञान को सुनकर तू मुक्त हो जाएगा! अर्जुन बहुत प्रफुल्लित हुआ होता। आप भी प्रफुल्लित होते रहे हैं।
लोग सोचते हैं, शास्त्रों को सुनकर धर्म हो जाएगा। लोग सोचते हैं, गीता को सुनकर ज्ञान हो जाएगा। इतना सस्ता अगर ज्ञान होता, तो अज्ञानी किसी को होने की जरूरत ही न थी। सुनकर नहीं होगा। इसलिए इंफेटिकली, जोर देकर कृष्ण कहते हैं, जिसको जानकर!
लेकिन हम सुनने को भी जानना समझ लेते हैं। जो-जो आप सुनते हैं, वह आपका ज्ञान हो जाता है। यह बड़े मजे की बात है। अखबार पढ़ लिया, आप ज्ञानी हो गए! गीता पढ़ ली, आप ज्ञानी हो गए! जो भी पढ़कर आपकी स्मृति में चला गया, आप ज्ञानी हो गए!
स्मृति ज्ञान नहीं है। लेकिन हमारा स्कूल, हमारा विश्वविद्यालय स्मृति को ही ज्ञान बताता है। सारा संसार स्मृति को ज्ञान मानकर चलता है। हम कहते हैं, एक आदमी बहुत जानता है, क्योंकि उसकी बहुत स्मृति है। हम कहते हैं, फलां आदमी को गीता कंठस्थ है। उनका कंठ पागल हो गया, और तो कोई सार नहीं है। कंठस्थ से क्या होगा? फलां आदमी को वेद कंठस्थ है, तो भारी गरिमा है। कंठस्थ से क्या होगा? कंठ का क्या कसूर है? कंठ को क्यों परेशान कर रहे हैं?
कंठ बड़ा ऊपर है, उससे कुछ हृदय बदलता नहीं। और कंठ में जिनके ज्ञान अटक जाता है, उनकी फांसी लग जाती है। फांसी में लटके रहते हैं वे। उनको वहम भी होता है कि ज्ञान है, और ज्ञान होता नहीं। बोलने के लिए हो सकता है। दूसरे को बताने के लिए हो सकता है। खुद के जीवन के लिए उसका कोई संबंध नहीं होता।
जानने का अर्थ स्मृति नहीं है। जानने का अर्थ है, अनुभव। तो कृष्ण कहते हैं, जो मैं तुझे रहस्य बताऊंगा, काश! तू उसे जान ले, अनुभव कर ले, तो दुख के सागर से मुक्त हो जा सकता है।
पर जानना और जानने में फर्क है। एक जानना है, वह हम सब जानते हैं। एक आदमी कहता है, ईश्वर है। जाना उसने बिल्कुल नहीं है। इससे तो बेहतर वह नास्तिक है, जो कहता है, मुझे कुछ पता नहीं चलता ईश्वर का। मैं कैसे मानूं? यह नास्तिक शायद किसी दिन आस्तिक भी हो जाए! लेकिन वह जो पहला आस्तिक है,

जो कहता है, ईश्वर है। क्योंकि उसने सुना है; क्योंकि उसके घर में कहा गया है; क्योंकि परंपरा से बात चली आई है। क्योंकि उसके पिता ने, उसके गुरु ने कहा है। क्योंकि शास्त्र में पढ़ा है। या भय की वजह से, या मौत के डर से, या सहारे के लिए, वह माने चला जा रहा है। लेकिन वह कहता है, मैं जानता हूं, ईश्वर है।
जानने शब्द का प्रयोग जरा सोचकर करना, ईमानदारी से करना। और जो आदमी जानने का ईमानदार अर्थ सीख जाए, उसकी जिंदगी में क्रांति हो जाती है। लेकिन हम सब बेईमान हैं। जानने के संबंध में हम बिल्कुल बेईमान हैं।
आप जरा एक बार अपनी खोपड़ी में वापस खोज-बीन करना। कितना है, जो आप जानते हैं? तब आपको पता चलेगा कि संभावना जीरो हाथ लगने की है। जीरो भी लग जाए, तो बहुत है। पाएंगे कि सब सुना हुआ है। जोर से पकड़े बैठे हैं, और डरते भी हैं कि जांच-पड़ताल की और अगर पता चल गया कि अपना जाना हुआ नहीं है। तो डरते भी हैं। तो जांच-पड़ताल भी नहीं करते। और ऐसे लोगों के पास जाते रहते हैं, जो आपकी इस नासमझी को मजबूत करते रहते हैं। वे कहते हैं, सुनते रहो। सुनते-सुनते हो जाएगा।
सुनते-सुनते सिर्फ बहरे हो जाएंगे। और सुनते-सुनते सुनना भी बंद हो जाएगा। और सुनते-सुनते आपको वहम पैदा होगा, इलूजन पैदा होगा कि सब जान लिया।
हमारा मुल्क ऐसे ही ज्ञान से पीड़ित और परेशान है! हम अज्ञान से इतने पीड़ित नहीं हैं। हमारे मुल्क में अज्ञानी तो कोई है ही नहीं। मैं बहुत खोजा, कोई एकाध अज्ञानी मिल जाए। वह मिलता ही नहीं। सब ज्ञानी हैं! और छोटे-मोटे ज्ञानी नहीं हैं; सब ब्रह्मज्ञानी हैं!
एक मित्र आए थे कुछ दिन हुए। मैंने उनसे पूछा कि बहुत दिन से दिखाई नहीं पड़ते हैं। क्या करते रहे?
उन्होंने कहा, कुछ नहीं। नौकरी-चाकरी मैंने सब छोड़ दी है। अब तो लोगों
को ब्रह्मज्ञान समझाने में लगा रहता हूं।
मैंने कहा, तुम्हें हो गया?
उन्होंने कहा, होगा क्यों नहीं? आज तीस साल से सत्संग के सिवाय कुछ किया ही नहीं है। ऐसा एक गुरु नहीं है भारत में, जिसके चरणों में मैं नहीं बैठा हूं। सब मुझे हो गया है। अब तो दूसरों को मेरे द्वारा हो रहा है। कई लोग आने लगे हैं, और उनको ज्ञान वितरित कर रहा हूं।
जिनके पास नहीं है, वे भी वितरित कर सकते हैं। वितरित करने में कोई कठिनाई नहीं है। खोपड़ी पर बोझ हो जाता है सुन-सुनकर, उसको बांटकर हल्कापन आ जाता है। लेकिन वह ज्ञान नहीं है; वह जानना नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, जान लेगा अगर तू, तो दुख से मुक्त हो जाएगा। यह ज्ञान
सब विद्याओं का राजा और सब गोपनीयों का भी राजा एवं अति पवित्र, उत्तम, प्रत्यक्ष फल वाला और धर्मयुक्त है, साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है। दो बातें। कृष्ण कहते हैं, श्रेष्ठतम है यह ज्ञान। इससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। यह राजविद्या है; समस्त विद्याओं में श्रेष्ठ। क्योंकि और विद्याओं से आदमी अपने अलावा कुछ भी जान ले, खुद को नहीं जान पाता। और विद्याओं से आदमी अपने को छोड़कर सब कुछ पा ले, अपने को नहीं उपलब्ध हो पाता। और जब मैं अपने को ही न जान पाऊं, सब भी जान लूं; और अपने को न उपलब्ध हो सकूं, और सब पा लूं; तो भी उस पाने और जानने का अर्थ क्या है?
इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह परम ज्ञान है, राजविद्या है; दि सुप्रीम नालेज, आर दि सुप्रीम साइंस, परम विज्ञान है। इससे तू स्वयं को जान लेगा। और जो स्वयं को जान लेता है, वह सब जान लेता है।
साधन करने को बड़ा सुगम और अविनाशी है।
और यह जो ज्ञान है, यह सनातन है। यह न कभी पैदा हुआ है और न कभी इसका अंत होगा। इसलिए इस ज्ञान से जो संयुक्त हो जाता है, वह भी अविनाशी हो जाता है। और एक बड़ी कीमती बात कहते हैं कि साधन करने को सुगम है।
उसके लिए सुगम है, जो इसका अभ्यास करेगा। जो सुनेगा, उसे बड़ा दुर्गम है। जो सिर्फ सुनेगा, चलेगा नहीं, उसे बड़ा कठिन है। जो चलेगा भी, उसे बड़ा सरल है।

इस सरलता में दो बातें छिपी हैं। एक तो मैंने कहा, यह आठ अध्याय के बाद कही गई सुगमता है। अर्जुन तैयार है, पात्र है। अगर आप पात्र हैं, तो सुगम होगा। अगर आप पात्र नहीं हैं, तो सुगम नहीं होगा। आप पर सब कुछ निर्भर करता है। इस अध्याय को पढ़कर कई लोग समझते हैं कि बस, बात ही सुगम है। खत्म हो गया, कुछ करने को भी नहीं है।
इस अध्याय को सीधा मत पढ़ना! आपकी पात्रता निर्मित होनी चाहिए। आपकी दोष-दृष्टि खो गई है, तो यह सुगम है; यह शर्त है। यह बेशर्त नहीं है। महात्मागण समझाते रहते हैं लोगों को कि कलियुग में तो भक्ति का साधन ही एकमात्र सुगम साधन है। सतयुग में कहते, तो थोड़ा ठीक भी होता। क्योंकि भक्ति जितना शुद्ध हृदय चाहती है, उतना सतयुग में भी मुश्किल है। महात्मागण समझाते हैं कि भक्ति सुगम साधन है कलियुग में। अजीब-सी और नासमझी की बात है। भक्त का हृदय जितना शुद्ध हो, उतना तो सतयुग में भी पाना मुश्किल होता है, तो कलियुग में कैसे आसान हो जाएगा? वे कहते हैं, राम-राम का नाम ले लिया, तो कलियुग में बड़ा सुगम साधन है। लेकिन नाम लेने के लिए जो पात्रता चाहिए, वह कहां से लाइएगा? नाम तो कोई भी ले लेता है। लेकिन जो शुद्ध हृदय चाहिए, जिसमें वह राम के नाम का फूल लगे, वह शुद्ध हृदय कहां है?
लेकिन लोगों को, आसान है कोई बात, ऐसा समझकर भी बड़ी राहत मिलती है। इसलिए कई बार तो यह हो जाता है कि कठिनाई से डरे हुए लोग, कोई भी बात कोई कह दे कि आसान है, तो उसके पीछे लग जाते हैं। इसलिए नहीं कि वह आसान है, बल्कि इसलिए कि वे कठिनाई से बहुत डरे हुए हैं।
और ध्यान रहे, जो कठिनाई से डरा है, वह परमात्मा से कभी भी न मिल सकेगा। क्योंकि वह परम कठिनाई है। वहां तो अपने को खोने की और मिटाने की हिम्मत चाहिए। वहां तो आखिरी दांव का साहस चाहिए। वह तो आखिरी एडवेंचर, दुस्साहस है। जैसे कोई छलांग लगाता हो किसी अनंत गड्ढ में, जिसके नीचे की तलहटी दिखाई ही न पड़ती हो। वह तो ऐसा है।
तो सरल का मतलब यह नहीं होता कि आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा। आपकी पात्रता हो, उस पात्रता के लिए बहुत कुछ करना पड़ेगा। जैसे मैं कह सकता हूं कि पानी तो एक क्षण में भाप बन जाता है, लेकिन इसका यह मतलब मत समझ लेना कि पानी को गरम नहीं करना पड़ता। सौ डिग्री तक तो पानी को गरम होना ही पड़ता है। सौ डिग्री पर एक क्षण में भाप बन जाता है। लेकिन सौ डिग्री की गर्मी एक क्षण में नहीं आती। सौ डिग्री की गर्मी के लिए वक्त लगता है। ये दोनों बातें सच हैं। अगर कोई पूछे कि पानी क्षणभर में भाप बनता है कि समय लेता है, तो क्या कहिएगा?
दो तरह के चिंतन दुनिया में रहे हैं। एक जो कहते हैं, सडेन एनलाइटेनमेंट, तत्काल निर्वाण हो सकता है, उपलब्धि हो सकती है। और एक जो कहते हैं, ग्रेजुअल एनलाइटेनमेंट, क्रमशः, सीढ़ी-सीढ़ी उपलब्धि होती है। उन दोनों में बड़ा संघर्ष रहा है; लेकिन एकदम नासमझी से भरा हुआ। क्योंकि उनकी बातचीत ठीक वैसी ही है, जैसे कोई पानी के संबंध में तय करे कि पानी क्षण में भाप बनता है कि समय लगता है! क्या कहिएगा?
पानी दोनों करता है। और पानी को बांटा नहीं जा सकता। सौ डिग्री तक गरम होने में उसे वक्त लगता है। और मजे की बात यह है कि निन्यानबे डिग्री से भी पानी अगर गर्म होना बंद हो जाए, तो वापस लौट जाएगा, भाप नहीं बनेगा। साढ़े निन्यानबे डिग्री से भी वापस लौट जाएगा। रत्तीभर कमी रह जाए सौ डिग्री में, तो पानी पानी ही रहेगा। और अगर गर्मी देनी बंद हो जाए, तो वापस लौट जाएगा।
सौ डिग्री पर आकर छलांग घटित होती है, और तत्काल पानी भाप हो जाता है।
यह घटना तो क्षण में घटती है। कहना चाहिए, क्षण के भी हजारवें हिस्से में घटती है। कहना चाहिए, समय के बाहर घटती है। जरा भी समय नहीं लगता पानी को भाप बनने में, लेकिन पानी को सौ डिग्री तक पहुंचने में बहुत समय लगता है।
भक्त बनने में बहुत समय लगता है। भक्त को उपलब्धि तो क्षण में हो जाती है। भक्त सौ डिग्री में उबलता हुआ व्यक्तित्व है।

तो आप यह मत सोचना कि आप उठे और भक्त हो गए! आप बिल्कुल ठंडे पानी हैं।
डर तो यह है कि बर्फ न जमा हो, फ्रोजन; जिसको पहले पिघलाना पड़े, तब वह पानी बने। फिर गरमाना पड़े, तब कहीं वह सौ डिग्री तक पहुंचे! और सौ डिग्री तक पहुंचने में पचास बार वह कहे कि कोई शार्टकट नहीं है? कहां इतना समय लगा रहे हैं!
इसलिए महेश योगी जैसे व्यक्तियों की बातें लोगों को थोड़े दिन के लिए बहुत प्रभावी हो जाती हैं; क्योंकि शार्टकट! वे कहते हैं, बस, यह मिनटभर का काम है। ऐसा कर लो, और सब हो जाएगा। कोई भी धोखे में पड़ जाता है। क्योंकि हमारे मन लोभी हैं। लगता है, जल्दी कुछ होता हो, तो ठीक है। इससे हमारा शोषण चलता है।
नहीं, कोई शार्टकट नहीं है। यात्रा पूरी ही करनी पड़ेगी। क्योंकि उस परम यात्रा में कोई धोखा नहीं चलेगा। और जीवन के शाश्वत नियम हैं।
तो सुगम है बहुत, अगर आपका हृदय भक्त होने की परिभाषा को पूरा करता हो। लेकिन दूसरी बात भी कही है कि इतने से ही सुगम हो जाएगा, ऐसा नहीं है।
भक्त का भी हृदय हो। और सुन लें सिर्फ, तो कुछ भी न होगा। फिर वापस गिर जाएंगे। सौ डिग्री तक पहुंचकर भी वापस गिरने का डर है, जब तक कि भाप बन ही न जाएं। इसलिए चलना भी पड़ेगा।
कृष्ण कहते हैं, साधन करने को बड़ा सुगम है।
बड़ा सरल है, अगर साधन करना हो। अगर सुनना ही हो, तो बहुत कठिन है। लेकिन हमें उलटी बात समझ में आती है। हमें लगता है, सुनना हो, तो बड़ा सुगम है; करना हो, तो बड़ा कठिन है। सुनना हमें सरल मालूम पड़ता है। लेकिन मैं भी आपसे कहता हूं, सुनना कठिन है। क्योंकि जिसे आप जानते ही नहीं हैं, उसे सुन कैसे सकिएगा? और जिसका आपको पता ही नहीं है, वह आपकी समझ में कैसे आएगा? और जिसे आपने जाना ही नहीं है, किसी के भी शब्द--वे कृष्ण के क्यों न हों--वे शब्द आपको कुछ भी न बता पाएंगे। वह भाषा ही अनजानी, अपरिचित है।
एक आदमी अरबी में आपके पास बोल रहा हो, आपको वहम होता है कि सुन रहे हैं, क्या खाक सुन रहे हैं! एक आदमी चीनी में बोले चला जा रहा है, आपको लगता है कि सुन रहे हैं, लेकिन क्या सुन रहे हैं? लेकिन चीनी और अरबी के मामले में झंझट नहीं है। आप समझते हैं, यह भाषा हमें आती ही नहीं!
आप भूल में मत पड़ना; यह कृष्ण की भाषा आपको और भी बड़ी अरबी है, और भी बड़ी चीनी है। यह बिल्कुल नहीं आ सकती। अरबी में थोड़ा-बहुत समझ में भी आ जाए, उस आदमी के होंठ की गति ख्याल में आ जाए, उस आदमी की आंख का इशारा समझ में आ जाए, उसकी भाव-भंगिमा कुछ कह दे। यह कृष्ण तो भाव-भंगिमा रहित हैं। इनके होंठों से कुछ पता नहीं चलेगा। इनकी आंखें कुछ न कहेंगी। क्योंकि ऐसे व्यक्ति ऐसे शून्य हो गए होते हैं, कठिन है इनसे कुछ पता लगा लेना। और जो ये कह रहे हैं, वह भाषा समझ में आती हुई मालूम पड़ती है, समझ में बिल्कुल नहीं आती। वह भाषा बिल्कुल ही कठिन है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि सुनने में तो नहीं है सुगम, लेकिन अगर तू करे,
तो सुगम है।
अगर कोई अंधा मुझसे कहे कि प्रकाश मुझे समझा दो, तो समझाना बहुत कठिन है। लेकिन अगर वह कहे कि मेरी आंख का इलाज करवा दो, या मेरी आंख का कोई अभ्यास करवाओ, जिससे मेरी आंखें खुल जाएं, तो मैं कहता हूं, वह सुगम है। अंधे की आंख खुल सकती है किसी दिन और वह प्रकाश को देख सकता है। कोई मुझसे कहे कि प्रेम समझा दो मुझे, तो कठिन है बहुत। लेकिन अगर वह तैयार हो प्रेम में कूद पड़ने को, प्रेम करने को, तो सुगम है।
जीवन में अनुभव के अतिरिक्त और कोई सुगमता नहीं है। शब्द सुगम मालूम पड़ते हैं, बिल्कुल दुर्बोध हैं। शब्दों से कुछ भी समझ में न कभी आया है, न आ सकता है। सिर्फ अनुभव, सिर्फ अपनी ही प्रतीति, अपना ही साक्षात्कार प्रकट करता है सत्य को।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, सुगम है, साधन करने को बड़ा सुगम है।
और हे परंतप, इस ज्ञानरूप धर्म में श्रद्धारहित पुरुष मेरे को प्राप्त न होकर मृत्युरूप चक्र में परिभ्रमण करते हैं।

जो श्रद्धारहित हैं, वे सुन लें, समझ लें, चलने की भी कोशिश करें, तो भी मुझ तक नहीं पहुंचते। मुझ तक तो वे ही पहुंचते हैं, जो श्रद्धायुक्त हैं। कारण?
कारण, परमात्मा तक पहुंचने का द्वार हृदय है। कारण, परमात्मा तक पहुंचने का भाव प्रेम है। कारण, उस तक पहुंचने की जो तैयारी है, वह केवल श्रद्धायुक्त हृदय में होती है। यह श्रद्धायुक्त हृदय का अर्थ है, ट्रस्टिंग हार्ट, भरोसा करने वाला हृदय।
छोटा बच्चा है; वह कहता है कि मुझे, सूरज उगता है सुबह, वह देखने चलना है। या कहता है कि बगीचे में सुना है कि फूल खिले हैं, मुझे देखने चलना है। या कहता है कि सागर में बड़ी तरंगें आई हैं, मुझे देखने चलना है। या कुछ और कहता है। उसका पिता कहता है, मेरा हाथ पकड़ और चल!
बेटा कह सकता है कि तुम्हारा हाथ पकड़कर चलूं? रास्ते में तुम छोड़ तो न दोगे? तुम्हें अपने हाथ का पक्का भरोसा है कि मैं भटक तो न जाऊंगा? क्या तुम्हें पक्का ख्याल है कि तुम जहां ले जा रहे हो, वह जगह है? और पहले तुम मुझे सब तर्कयुक्त रूप से समझा दो कि सूरज है, कि सागर है, कि फूल खिले हैं, कि पक्षी गीत गाते हैं। जब मैं सब समझ लूं, तब मुझे यह भी समझाओ कि तुम धोखेबाज तो नहीं हो? तब तुम मुझे यह भी बताओ कि तुम्हारे हाथ से तुमने कभी किसी को पहुंचाया भी है कि मुझको ही पहुंचाते हो? और मैं कैसे मानूं कि तुमने किसी को पहुंचाया है? इसकी कोई गवाहियां हैं? और फिर मैं कैसे मानूं कि वे गवाहियां तैयार की हुई नहीं हैं?
यह सब वह पूछने लगे, तो असंभव है यात्रा। लेकिन बेटा उठकर खड़ा हो जाता है; और पिता का हाथ पकड़ लेता है और चल पड़ता है। यह पिता का हाथ पकड़ने में जो भाव बेटे का है, उसका नाम श्रद्धा है।
श्रद्धा का अर्थ है, एक गहरा अपनापन, एक भरोसा। श्रद्धा का अर्थ है, एक आत्मीयता; अज्ञात के प्रति, अनजान के प्रति भी भरोसे का भाव।
ध्यान रहे, श्रद्धा करके भूल भी हो जाए, तो हानि नहीं है; और अश्रद्धा करके लाभ भी हो जाए, तो हानि है। अश्रद्धा करके लाभ भी हो जाए, तो हानि है। क्योंकि अश्रद्धा से जो मिलेगा, वह दो कौड़ी का होगा; लेकिन अश्रद्धा मजबूत हो जाएगी, जो कि बहुत बड़ी हानि है। श्रद्धा करके हानि भी हो जाए, तो हानि नहीं है, लाभ ही है। क्योंकि श्रद्धा की, यह बड़ी घटना है।
इस जगत में जो सबसे बड़ी घटना है, वह श्रद्धा है। यह बड़ी हैरानी की बात है। ख्याल में न आएगा। क्योंकि श्रद्धा एक असंभव बात है, इंपासिबिलिटी। किसी पर श्रद्धा करना एक असंभव बात है। क्योंकि हमारी पूरी की पूरी बुद्धि सब तरह के अड़ंगे खड़े करेगी। वह कहेगी अर्जुन से कि यह कृष्ण! यह मेरे साथ खेला है और मुझसे कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण! इसके गले में मैं हाथ डालकर नाचा हूं, कूदा हूं, यह मुझसे कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण! जिससे मौका पड़ा है, तो कुश्ती भी की है, यह कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण जो कि मेरा सारथी होकर खड़ा है इस युद्ध में, मुझसे कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण! इसको भी चोट लग जाती है, तो हाथ से खून निकल आता है। इसको भी भूख लगती है। रात नींद नहीं आती है, तो सुबह थका-मांदा होता है। यह मुझसे कहता है, श्रद्धा! यह कृष्ण भी मरेगा। यह कृष्ण भी एक दिन पैदा हुआ। यह कृष्ण भी प्रेम में पड़ता है; यह गोपियों के साथ नाचता है। यह कृष्ण भी लेन-देन करता है, राजनीति चलाता है। मुझसे कहता है, श्रद्धा! अर्जुन को हजार सवाल आने स्वाभाविक हैं। और बिल्कुल प्राकृतिक हैं।
श्रद्धा बड़ी असंभव घटना है। श्रद्धा ऐसा फूल है, जो कभी-कभी करोड़ों में कभी एक बार खिलता है। लेकिन जब खिलता है, तो उससे अनंत के द्वार खुल जाते हैं।
तो कृष्ण कहते हैं, श्रद्धारहित होकर, तो फिर मुझ तक कोई नहीं पहुंच पाता है। क्योंकि मुझ तक पहुंचने का द्वार और सेतु ही श्रद्धा है। और जो मुझ तक नहीं पहुंचता, वह मृत्यु और जन्म, जन्म और मृत्यु, मृत्यु और जन्म के पहिए में घूमता रहता है, भटकता रहता है।
आज इतना ही।

लेकिन उठेंगे नहीं। एक पांच-सात मिनट श्रद्धा रखकर कीर्तन संन्यासी करेंगे, उसमें सम्मिलित हों। सुनें मत, सम्मिलित हों।
जिन मित्रों को भी नाचने का भाव हो, वे भी यहां सामने आ सकते हैं। शेष
सब अपनी जगह बैठे रहेंगे। कोई उठेगा नहीं। ताली बजाएं। कीर्तन में सम्मिलित हों पांच-सात मिनट। इसे हमारे संन्यासियों का प्रसाद समझें।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
दूसरा प्रवचन

अतर्क्य रहस्य में प्रवेश

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।। 4।।
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः।। 5।।
यथाकाशस्थितोनित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।। 6।।
और हे अर्जुन, मेरे अव्यक्त स्वरूप से यह सब जगत परिपूर्ण है और सब भूत मेरे में स्थित हैं। इसलिए वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूं।
और वे सब भूत मेरे में स्थित नहीं हैं, किंतु मेरे योग-सामर्थ्य को देख कि भूतों को धारण-पोषण करने वाला और भूतों को उत्पन्न करने वाला भी मेरा आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं है।
क्योंकि जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा
ही आकाश में स्थित है, वैसे ही संपूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं, ऐसे जान।

श्रद्धा की बात कहकर कृष्ण ऐसी ही कुछ बात शुरू करेंगे, यह सोचा जा सकता था, जिसे कि तर्क मानने को राजी न हो। यह सूत्र अतर्क्य है, इल्लाजिकल है। इस सूत्र को कोई गणित से समझने चलेगा, तो या तो सूत्र गलत होगा या गणित की व्यवस्था गलत होगी। यह सूत्र तर्क की संगति में नहीं बैठेगा। यह सूत्र रहस्यपूर्ण है और पहेली जैसा है।
एक तो पहेली ऐसी होती है, जिसका हल छिपा होता है, लेकिन खोजा जा सकता है। एक पहेली ऐसी भी होती है, जिसका कोई हल होता ही नहीं; खोजने से भी नहीं खोजा जा सकता है।
यह सूत्र दूसरी पहेली जैसा है। जापान में झेन फकीर जिसे कोआन कहते हैं। ऐसी पहेली, जो हल न हो सके। ऐसा रहस्य, जिसे हम जितना ही खोजें, उतना ही रहस्यपूर्ण होता चला जाए। ऐसा सत्य, जिसे हम जितना जानें, उतना ही पता चले कि हम नहीं जानते हैं। जितना हो परिचय प्रगाढ़, उतना ही रहस्य की और गहराई बढ़ जाए। जितना लें उसे पास, उतना ही पता चले कि वह बहुत दूर है। छलांग तो लग सकती है ऐसे रहस्य में, लेकिन ऐसे रहस्य का कोई पार नहीं मिलता है। सागर में जैसे कोई कूद तो जाए, लेकिन फिर सागर के पार होने का उपाय न हो।
तो द्वार तो है प्रभु में प्रवेश का, लेकिन वापस निकलने के लिए कोई द्वार नहीं है। इसलिए अगम है पहेली। और कृष्ण ने इसीलिए श्रद्धा की बात अर्जुन से पहले कही कि अब तू श्रद्धायुक्त है, तो मैं तुझे उन गोपनीय रहस्यों की बात कहूंगा, जो कि श्रद्धायुक्त मन न हो, तो कहे नहीं जा सकते। इस सूत्र को समझने के पहले श्रद्धा के संबंध में थोड़ी बात और समझ लेनी जरूरी है, तभी यह सूत्र स्पष्ट हो सकेगा।
अस्तित्व में चार प्रकार के आकर्षण हैं। या तो कहें चार प्रकार के आकर्षण या कहें कि एक ही प्रकार का आकर्षण है, चार उसकी अभिव्यक्तियां हैं। या कहें कि एक ही है राज, लेकिन चार उसकी सीढ़ियां हैं। या कहें कि एक ही है सत्य, चार उसके आयाम हैं! अगर बहुत स्थूल से शुरू करें, तो समझना आसान होगा।
वैज्ञानिक कहते हैं, इस जगत के संगठन में, आर्गनाइजेशन में जो तत्व काम कर रहा है, उस तत्व को हम मैग्नेटिज्म कहें, उस तत्व को हम कहें एक चुंबकीय ऊर्जा, एक चुंबकीय शक्ति, जिससे पदार्थ एक-दूसरे से सटा है और एक-दूसरे से आकर्षित है। अगर विद्युत की भाषा में कहें, तो वह निगेटिव और पाजिटिव, ऋण और धन विद्युत है, जो जगत के अस्तित्व को बांधे हुए है। पदार्थ भी संगठित नहीं हो सकता, अगर कोई ऊर्जा आकर्षण की न हो।

एक पत्थर का टुकड़ा आप देखते हैं, अरबों अणुओं का जाल है। वे अणु बिखर नहीं जाते, भाग नहीं जाते, छिटक नहीं जाते; किसी केंद्र पर, किसी आकर्षण पर बंधे हैं। वैज्ञानिक खोज करता है, आकर्षण दिखाई पड़ने वाला नहीं है। लेकिन बंधे हैं, तो खबर मिलती है कि आकर्षण है।
हम एक पत्थर को आकाश की तरफ फेंकें, तो वापस जमीन पर गिर जाता है। हजारों-हजारों साल तक आदमी के पास कोई उत्तर नहीं था कि क्यों गिर जाता है। लेकिन न्यूटन को सूझा कि जरूर जमीन खींच लेती होगी। वह जो खिंचाव है, न्यूटन को भी दिखाई नहीं पड़ा है। वह खिंचाव किसी ने कभी नहीं देखा है।
केवल पत्थरों को हमने नीचे गिरते देखा है; परिणाम देखा है। वृक्ष से पत्ता गिरता है और नीचे आ जाता है। आप छलांग लगाएं पहाड़ से और जमीन पर आ जाएंगे। हर चीज जमीन की तरफ गिर जाती है, खिंच जाती है। कोई प्रबल आकर्षण, कोई कशिश, कोई ग्रेविटेशन जरूर पीछे काम कर रहा है जो दिखाई नहीं पड़ता।
न्यूटन की खोज कीमती सिद्ध हुई, क्योंकि जीवन का बहुत-सा उलझाव उसकी खोज के कारण साफ हो गया। जमीन में कशिश है, कोई मैग्नेटिज्म है, कोई आकर्षण है, कोई खिंचाव है। पदार्थ के तल पर खिंचाव को विज्ञान स्वीकार करता है, यद्यपि खिंचाव को कभी किसी ने देखा नहीं है। हमने केवल खिंचाव का परिणाम देखा है। हमने देखा है कि एक मैग्नेट को रख दें, तो लोहे के टुकड़े खिंचे चले आते हैं। खिंचाव नहीं दिखाई पड़ता, लोहे के टुकड़े खिंचते हुए दिखाई पड़ते हैं। चुंबक दिखाई पड़ता है, लोहे के टुकड़े दिखाई पड़ते हैं, वह जो शक्ति खींचती है, वह दिखाई नहीं पड़ती है; वह अदृश्य है। शक्ति मात्र अदृश्य है। लेकिन जब चुंबक खींच लेता है, तो वैज्ञानिक कहता है, खिंचाव का काम जारी है। जब जमीन खींच लेती है, तो वैज्ञानिक कहता है, खिंचाव का काम जारी है। जब एक पत्थर के अणु बिखर नहीं जाते, तो उसका अर्थ है, वे कहीं न कहीं सेंटर्ड हैं, कोई न कोई केंद्र उन्हें बांधे हुए है। वह केंद्र दिखाई नहीं पड़ता। वह केंद्र अनुमानित है। लेकिन एक बात विज्ञान को साफ हो गई है कि उस केंद्र के दो बिंदु हैं; एक जिसे धन बिंदु कहें, एक जिसे ऋण बिंदु कहें, पाजिटिव और निगेटिव कहें। उन दोनों के बीच आकर्षण है।
अगर पदार्थ के तल पर हम मनुष्य की भाषा का उपयोग करें, तो कहें कि पदार्थ में भी स्त्रैण और पुरुष जैसे बिंदु हैं। पदार्थ भी स्त्री और पुरुष में विभाजित है, और उन दोनों के आकर्षण से ही सारे अस्तित्व का खेल है।
पदार्थ से ऊपर उठें, तो इसी आकर्षण की दूसरी अभिव्यक्ति हमें स्त्री
और पुरुष में दिखाई पड़ती है। पदार्थ से ऊपर उठें, तो जीवन भी इसी ऊर्जा से बंधा हुआ चलता हुआ मालूम पड़ता है। स्त्री और पुरुष के भीतर भी जीवन की ऊर्जा एक-दूसरे को आकर्षित करती है। वही आकर्षण जीवन का प्रवाह है।
अगर पदार्थ बंधा है किसी आकर्षण से, तो जीवन भी किसी आकर्षण से बंधा है। स्त्री-पुरुष के जगत में वह आकर्षण सेक्स या यौन के नाम से प्रकट होता है। यौन, विद्युत-आकर्षण का ही दूसरा रूप है, जीवंत। जब चुंबकीय ऊर्जा जीवन को उपलब्ध हो जाती है, तो यौन निर्मित होता है।
उससे और ऊपर चलें, तो मनुष्य यौन से ही प्रभावित नहीं होता; कुछ ऐसे प्रभाव भी हैं जिनसे यौन का कोई भी संबंध नहीं है। उन प्रभावों को हम प्रेम कहते हैं।
पदार्थ के बीच जो आकर्षण है, वह है विद्युत। दो शरीरों के बीच जो आकर्षण है, वह है यौन। दो मनों के बीच जो आकर्षण है, वह है प्रेम। यौन से भी मनसविद राजी हैं। और प्रेम के संबंध में भी वैज्ञानिक न राजी हों, मनसविद न राजी हों, लेकिन कवि, साहित्यकार, कलाकार, चित्रकार--वे सब, जिनका सौंदर्य से संबंध है--वे राजी हैं। वे मानते हैं कि प्रेम भी एक प्रगाढ़ ऊर्जा है और उसके परिणाम भी प्रत्यक्ष होते हैं।
लेकिन न तो हम जमीन के आकर्षण को देख सकते हैं, और न हम यौन के आकर्षण
को देख सकते हैं; अनुभव कर सकते हैं। वैसे ही हम प्रेम के आकर्षण को भी नहीं देख सकते हैं। उसे भी अनुभव ही कर सकते हैं।
ये तीन सामान्य आकर्षण हैं; एक और चौथा आकर्षण है। मैंने कहा, दो पदार्थों के बीच, निर्जीव पदार्थों के बीच जो आकर्षण है, वह विद्युत है; या

चुंबकीय ऊर्जा है। दो शरीरों के बीच जो जैविक, बायोलाजिकल ग्रेविटेशन है, वह यौन है। दो मनों के बीच जो आकर्षण है, वह प्रेम है। लेकिन दो आत्माओं के बीच जो आकर्षण है, उसका नाम श्रद्धा है। वह चौथा आकर्षण है, और परम आकर्षण है।
जब दो मन एक-दूसरे में आकर्षित होते हैं, तो प्रेम बनता है। जब दो शरीर एक-दूसरे में आकर्षित होते हैं, तो यौन निर्मित होता है। जब दो पदार्थ एक-दूसरे में आकर्षित होते हैं, तो भौतिक कशिश निर्मित होती है। लेकिन जब दो आत्माएं एक-दूसरे में आकर्षित होती हैं, तो श्रद्धा निर्मित होती है। श्रद्धा इस जगत में श्रेष्ठतम आकर्षण है, और चुंबकीय आकर्षण इस जगत में निम्नतम आकर्षण है। लेकिन न तो चुंबकीय आकर्षण देखा जा सकता है और न दो आत्माओं के बीच का आकर्षण देखा जा सकता है। जब चुंबकीय आकर्षण जैसी स्थूल बात भी नहीं देखी जा सकती, तो श्रद्धा जैसी बात तो कतई नहीं देखी जा सकती। लेकिन श्रद्धा के भी परिणाम देखे जा सकते हैं।
बुद्ध के पास एक युवक आया है। वह उनके चरणों में झुका है। उसने आंख उठाकर बुद्ध को देखा है; वापस चरणों में झुक गया है! बुद्ध ने पूछा, किसलिए आए हो? उस युवक ने कहा कि जिस लिए आया था, वह बात घट गई, हो गई। अब मुझे कुछ पूछना नहीं, कुछ कहना नहीं। बुद्ध ने कहा, लेकिन और लोगों को बता दो, क्योंकि इन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा है।
वहां कोई दस हजार भिक्षुओं की भीड़ थी। किसी को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा था। वह युवक आया था, यह दिखाई पड़ा था। वह बुद्ध के चरणों में झुका था, यह भी दिखाई पड़ा था। बुद्ध का हाथ उस युवक के सिर पर गया था, यह भी दिखाई पड़ा था। उस युवक ने उठकर, खड़े होकर बुद्ध की आंखों में देखा था, यह भी दिखाई पड़ा था। वह वापस चरणों में झुका था कोई धन्यवाद देने, यह भी देखा। उसने जो कहा, वह भी सुना। लेकिन बुद्ध ने कहा, अब तू वह बात भी इन सबको बता दे, जो किसी को दिखाई नहीं पड़ी है। तुझे क्या हो गया है?
उस युवक ने चारों तरफ देखा और उसने कहा कि उसे मैं कैसे कहूं? मैं बदलने के लिए आया था और मैं बदल गया हूं। मैं रूपांतरित होने आया था और मैं रूपांतरित हो गया हूं। मैं किसी क्रांति के लिए आया था कि मेरी आत्मा किसी और जगत में प्रवेश कर जाए, वह प्रवेश कर गई है।
लोगों ने पूछा, लेकिन यह कैसे हुआ? क्योंकि न कोई साधना, न कोई प्रयत्न! यह हुआ कैसे?
उस युवक ने कहा, मैं नहीं जानता। इतना ही मैं जानता हूं, कोई अलौकिक प्रेम मेरे और बुद्ध के बीच घटित हो गया है, कोई श्रद्धा जन्म गई है, कोई भरोसा पैदा हो गया है। बुद्ध को देखकर मुझे भरोसा आ गया। उस भरोसे के साथ ही मैं बदल गया। शायद भरोसे की कमी ही मेरी क्रांति में बाधा थी। बुद्ध को देखकर मुझे यह भरोसा आ गया कि जो बुद्ध में हो सकता है, वह मुझ में भी हो सकता है। जो बुद्ध को हुआ है, वह मुझे भी हो सकता है। बुद्ध मेरा भविष्य हैं। जो मैं कल हो सकता हूं, वह बुद्ध आज हैं। इस भरोसे के साथ ही जब मैं चरणों में झुका और वापस उठा, तो मैं दूसरा आदमी हो गया हूं।
लोगों को भरोसा नहीं आया, लेकिन देखा कि वह आदमी बदल गया है। और वह आदमी साधारण आदमी नहीं था, हत्यारा था, डाकू था, लुटेरा था। और दूसरे दिन वह आदमी गांव में भिक्षा मांगने गया है। और लोगों ने अपनी छतों पर खड़े होकर उसे पत्थर मारे हैं, क्योंकि लोग तो उसे लुटेरा ही देख रहे थे। वह जो घटना घटी थी, वह तो उन्हें दिखाई नहीं पड़ सकती थी कि वह आदमी अब बुद्ध जैसा हो गया था। वह घटना तो आंख के बाहर थी; अगोचर थी।
उन्होंने पत्थर मारे हैं, क्योंकि वह हत्यारा था, चोर था, लुटेरा था। गांव उससे पीड़ित रहा है। उसे कौन भिक्षा देगा? पत्थरों के अतिरिक्त उसे भिक्षा में कुछ भी नहीं मिला। वह पत्थरों में दबकर सड़क के किनारे पड़ा हुआ है। बुद्ध भिक्षा मांगने निकले हैं। उन्होंने आकर उसके सिर पर हाथ रखा। उसने आंख खोली और बुद्ध ने कहा, कोई पीड़ा तो नहीं हो रही?
उस मरणासन्न व्यक्ति ने कहा, पीड़ा! पीड़ा जिसे हो सकती थी, वह आपके चरणों में मर चुका है। और जिसे पीड़ा नहीं हो सकती, वही अब बाकी बचा है। बुद्ध ने कहा, लेकिन तुम मर रहे हो!

उस युवक ने कहा, जो मर सकता था, वह आपके चरणों में मर चुका है। और अब जो नहीं मर सकता, वही केवल शेष है।
बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा कि देखो! जिसका तुम्हें भरोसा नहीं आया था, उसका परिणाम देखो।
श्रद्धा के परिणाम देखे जा सकते हैं। जीवन में शक्तियां दिखाई नहीं पड़ती हैं, केवल उनके परिणाम दिखाई पड़ते हैं। इसलिए आपसे मैं कहता हूं, आप अगर सोचते हों कि श्रद्धालु हैं, तो इतना काफी नहीं है। आपकी श्रद्धा का एक ही प्रमाण है कि आपका जीवन रूपांतरित होता हो। तो जो आस्तिक कहता है, मैं श्रद्धालु हूं, और नास्तिक और उसकी जिंदगी में कोई फर्क नहीं है, तो वह अपने को धोखा दे रहा है। क्योंकि श्रद्धा तो कशिश है, श्रद्धा तो क्रांति है।
तो जो कहता है, मैं श्रद्धालु हूं, उसका सबूत एक ही है कि उसका जीवन गवाही दे, उसका अस्तित्व गवाही दे, वह एक विटनेस हो जाए, वह एक साक्षी बन जाए परमात्मा के होने का।
लेकिन अगर वह कहता है कि नहीं, मैं श्रद्धा तो करता हूं, लेकिन मुझ में
और नास्तिक में कोई ऐसे फर्क नहीं है, तो जानना कि श्रद्धा झूठी है। और झूठी श्रद्धा से सच्चा संदेह भी बेहतर है। क्योंकि सच्चा संदेह कभी श्रद्धा तक पहुंच सकता है, लेकिन झूठी श्रद्धा कभी श्रद्धा तक नहीं पहुंच सकती है।
यह जो श्रद्धा है, जैसा मैंने कहा, दो पदार्थों के बीच जो कशिश है, आकर्षण है भौतिक; दो शरीरों के बीच जीवंत यौन बन जाता है; दो मनों के बीच सचेतन प्रेम बन जाता है; दो आत्माओं के बीच श्रद्धा हो जाती है। अगर दो पदार्थ आपस में न मिलें, तो अस्तित्व बिखर जाए। और अगर दो शरीर आपस में न मिलें, तो जीवन बिखर जाए। और अगर दो मन आपस में न मिलें, तो जगत से सब सौंदर्य बिखर जाए। और अगर दो आत्माएं आपस में न मिलें, तो परमात्मा के होने का फिर कोई उपाय नहीं है।
पदार्थ एक-दूसरे को खींचते हैं, इसलिए अस्तित्व संगठित है, आर्गनाइज्ड है। चाहे चांद-तारे घूमते हों; और चाहे सूरज के आस-पास पृथ्वी चक्कर मारती हो; और चाहे परमाणु घूमते हों; जहां भी पदार्थ है, उसका कारण पदार्थ को आपस में बांधने वाली ऊर्जा है।
हमारी सदी पूछती है, ईश्वर कहां है? असल में हमें पूछना चाहिए, श्रद्धा कहां है? क्योंकि श्रद्धा न हो, तो ईश्वर का कोई अनुभव नहीं होगा। श्रद्धा न हो, तो ईश्वर न होने जैसा हो जाएगा। ईश्वर के प्रकट होने के लिए जिस आकर्षण की जरूरत है, वह श्रद्धा है।
और हर आकर्षण सृजनात्मक है। पदार्थ खिंचता है, तो जगत निर्मित हो जाता है। अभी तक वैज्ञानिक नहीं समझा पाए कि पृथ्वी कैसे बन गई! अब तक वे नहीं समझा पाए कि चांद-तारे कैसे बन गए! अनुमान हैं बहुत, लेकिन सारे अनुमानों के बीच एक आधार है, और वह आधार यह है कि जरूर किसी ऊर्जा के कारण यह सारा संगठन फलित हुआ है, किसी शक्ति के कारण। उसके नाम कुछ भी दिए जा सकते हैं।
अगर दो शरीर संयुक्त न हों, तो जीवन की धारा बिखर जाती है। इसलिए यौन का, सेक्स का प्रबल आकर्षण है। लेकिन आदमी आदमी होकर भी पहले आकर्षण से भी ऊपर नहीं उठ पाता, तो आखिरी आकर्षण तक पहुंचना बहुत मुश्किल है। हममें से अधिक लोग यौन से भी नीचे जीते हैं। यह सुनकर आपको कठिनाई होगी। हममें से बहुत-से लोग हैं, जिनको यौन का आकर्षण भी ऊपर है अभी। जो पदार्थ के आकर्षण पर जीते हैं।
अब एक आदमी रुपए इकट्ठे करने के लिए जी रहा है; वह अभी यौन के आकर्षण
तक भी ऊपर नहीं उठा है। अभी वह पदार्थ के आकर्षण से बंधा है। अभी जब वह रुपए हाथ में रखता है, तो जो आनंद उसे अनुभव होता है, वह दो पदार्थों के बीच जो आकर्षण है, उसका ही आनंद है।
इसलिए धन के पीछे जो पागल है, वह पहले आकर्षण में जी रहा है। इसलिए लोभ काम से भी नीची अवस्था है। लोभ, ग्रीड सेक्स से भी नीचे की अवस्था है, ध्यान रखना। और बहुत-से लोग हैं ऐसे, जो धन के लिए सेक्स को कुर्बान कर

सकते हैं। और शायद मन में यह भी सोचते हों कि बड़ी ऊंचाई की तरफ जा रहे हैं। धन कमाने के लिए बहुत-से लोग अपने यौन की बलि चढ़ा देते हैं। शायद सोचते हों कि बड़ा ऊंचा काम कर रहे हैं! वे यौन से भी नीचे गिर रहे हैं। वे बिल्कुल ही स्थूल आकर्षण में पड़ रहे हैं।
एक आदमी है, जिसको कुर्सी का मोह है, पद का मोह है, सिंहासन का मोह है,
वह पहले आकर्षण पर जी रहा है। इसलिए राजनीतिज्ञ अक्सर अपनी पत्नी की फिक्र छोड़ सकता है। इसलिए नहीं कि वह भी बुद्ध जैसा हो गया है कि पत्नी को छोड़ सकता है; इसलिए कि पत्नी से भी नीचे गिरा; कुर्सी ज्यादा मूल्यवान है। पत्नी कुर्सी पर चढ़ाई जा सकती है। बच्चे कुर्सी पर चढ़ाए जा सकते हैं। वह पहला स्थूल आकर्षण है।
धन, पद, बहुत स्थूल आकर्षण हैं। वे आकर्षण वैसे ही हैं, जैसे चुंबक के पास लोहा खिंचता है। ऐसे ही हम खिंचे चले जाते हैं। ध्यान रखना, आप चुंबक नहीं हैं। जब आप धन की तरफ खिंचते हैं, तो ध्यान रखना, धन आपकी तरफ कभी नहीं खिंचता है। आप ही धन की तरफ खिंचते हैं। धन चुंबक होता है। ध्यान रखना, धन पुरुष हो जाता है, आप स्त्रैण हो जाते हैं।
इसलिए धन को प्रेम करने वाला रुपए को ऐसे देखता है, जैसे अपने प्रेमी को। वह उसका परमात्मा है। रुपए को छूता है ऐसे, जैसे किसी जीवित चीज को भी उसने कभी नहीं छुआ है। रुपए को उलट-पलटकर देखता है!
और हम सबको पता है। स्त्रियों को पता है। इसलिए स्त्रियां अपने शरीर
की उतनी फिक्र नहीं करती हैं, जितनी अपने गहनों की फिक्र करती हैं। क्योंकि आस-पास जो लोग हैं, वे पदार्थ से आकर्षित होते हैं। अभी शरीर का भी आकर्षण दूर है।
इसलिए स्त्री अपने शरीर को गंवा सकती है, लेकिन अपने हीरे को नहीं खो सकती। उसके हाथ में उतना आकर्षण नहीं मालूम पड़ता उसे, जितना हीरे की अंगूठी में मालूम पड़ता है। और उसकी समझ एक लिहाज से सही है। क्योंकि जब भी कोई उसके हाथ को देखता है, तो सौ में से नब्बे मौके पर हाथ को देखने वाले बहुत कम लोग हैं, हीरे की अंगूठी को देखने वाले ज्यादा लोग हैं। इसलिए अगर कुरूप हाथ भी हो और हीरे की अंगूठी हो, तो आपको हाथ का कुरूप होना दिखाई नहीं पड़ता। हीरे की अंगूठी का सौंदर्य हाथ पर छा जाता है। इसलिए कुरूप व्यक्ति आभूषणों से अपने को लादता चला जाता है। असल में कुरूपता ही केवल आभूषण के प्रति आकर्षित होती है; क्योंकि वह और नीचे के तल का आकर्षण है। पुरुष भी भलीभांति जानते हैं कि उनका बड़ा मकान एक स्त्री को आकर्षित
कर सकता है। उनका बैंक बैलेंस एक स्त्री को आकर्षित कर सकता है। उनकी बड़ी कार एक स्त्री को आकर्षित कर सकती है। इसलिए पुरुषों को भी अपने शरीर की भी उतनी चिंता नहीं है, जितनी अपनी कार की है, जितनी अपने मकान की है, जितनी अपनी तिजोड़ी की है। क्योंकि आदमी के जिस समाज में हम जी रहे हैं, वह पदार्थ के तल पर आकर्षित हो रहा है; और श्रद्धा बहुत लंबी यात्रा है फिर।
पदार्थ से ऊपर उठें; बड़ी कृपा होगी, लोभ से ऊपर उठें। कम से कम जीवित व्यक्ति में आकर्षित हों, मृत पदार्थों में नहीं। यह भी बड़ी क्रांति है। कुछ लोग जीवित व्यक्तियों में आकर्षित होते हैं, लेकिन यौन के बाहर उनका आकर्षण नहीं जाता। एक-दूसरे के शरीर तो मिलते हैं, लेकिन एक-दूसरे के मन कभी भी नहीं मिल पाते हैं।
इसलिए जिन मुल्कों में तलाक की सुविधा हो गई है, उन मुल्कों में विवाह
अब बच नहीं सकता। क्योंकि मन तो कहीं मिलते ही नहीं, तन ही मिलते हैं। और तन जल्दी ही बासे, और जल्दी ही उबाने वाले हो जाते हैं।
एक ही शरीर कितनी बार भोगा जा सकता है? और एक ही शरीर कितनी देर तक आकर्षक हो सकता है? और एक ही शरीर कितनी देर तक खींचेगा? फिर वह खिंचाव भी एक ऊब और बोर्डम हो जाती है। और मन तो मिलते नहीं।
इसलिए पश्चिम में, जहां तलाक सुविधापूर्ण होता चला जा रहा है, विवाह बिखरता चला जा रहा है। उन्नीस सौ में अमेरिका में चार शादियों में एक तलाक होते थे, अब चार शादियों में तीन तलाक की नौबत है। सिर्फ पचास साल में! और पचास साल, मैं आपको भरोसा दिलाता हूं, तलाक समाप्त हो जाएंगे, क्योंकि विवाह समाप्त हो जाएगा। तलाक बच नहीं सकते ज्यादा दिन तक, क्योंकि तलाक को

बचाने के लिए विवाह जरूरी है। और विवाह ही बचने वाला नहीं है। क्या कारण है? शरीर का आकर्षण यौन है, और मन का तो आकर्षण पैदा ही नहीं हो पाता।
हमारे पास मन जैसी कोई चीज भी है, और हम कभी किसी के मन से भी आकर्षित होते हैं, तो ही हमें प्रेम का अनुभव शुरू होगा। प्रेम, शरीर-मुक्त दो मन के बीच आकर्षण है। प्रेम मैत्री है।
लेकिन हमें प्रेम का अनुभव नहीं है। मित्रता दुर्लभ होती चली गई है।
और प्रेम का ही पता न हो, तो श्रद्धा बहुत कठिन हो जाएगी। मन का प्रेम मित्रता को जन्म देता है।
चौथा जो आकर्षण है, श्रद्धा, वह गुरु और शिष्य के बीच का संबंध है।
किसी की आत्मा इतनी आकर्षक हो जाती--उसका मन भी मूल्य का नहीं, उसका शरीर भी मूल्य का नहीं, उसके पास जो पदार्थगत कुछ भी हो, वह भी किसी मूल्य का नहीं--बस उस व्यक्ति का अस्तित्व, उसका होना ही मूल्यवान हो जाता है। इस मूल्य का भी एक जोड़ और एक संबंध है।
पदार्थ के तल पर निगेटिव और पाजिटिव मिलते हैं, वे भी स्त्री-पुरुष हैं। शरीर के तल पर यौन संयुक्त होता है, वे भी स्त्री-पुरुष हैं। यह आपको जानकर कठिनाई होगी कि जब दो मनों का भी मेल होता है, तो उसमें एक मन स्त्रैण और एक मन पुरुष जैसा होता है। असल में जहां भी मेल घटित होता है, जहां भी मिलन होता है, वहां स्त्री और पुरुष का अंश मौजूद होता है। और जब श्रद्धा जन्मती है, तब भी--आत्मा के तल पर भी--स्त्री और पुरुष का अंश मौजूद रहता है।
स्त्री और पुरुष का विभाजन शारीरिक ही नहीं है, जैविक ही नहीं है, सारा अस्तित्व बंटा हुआ है। इसलिए कृष्ण को प्रेम करने वाले भक्तों ने अगर कहा है कि एक ही पुरुष है जगत में, कृष्ण, तो उसका कारण है।
अगर मीरा ने वृंदावन के मंदिर में पुजारी को कहा है, क्योंकि उस पुजारी ने नियम ले रखा था कि किसी स्त्री को मंदिर में प्रवेश नहीं करने देगा। और मीरा जब नाचती हुई उस मंदिर के द्वार पर पहुंच गई, तो द्वार बंद कर दिए गए। और लोगों ने खबर दी कि मंदिर के पुजारी जो हैं, गोस्वामी जो हैं, वे स्त्री को भीतर प्रवेश नहीं करने देते हैं; आप लौट जाएं। मीरा ने कहा, इतनी खबर पुजारी तक पहुंचा दो, मैं तो सोचती थी कि जगत में केवल एक ही पुरुष है, कृष्ण। गोस्वामी भी पुरुष हैं? उनसे इतना पूछ आएं।
द्वार खुल गए। गोस्वामी मीरा के चरणों में गिर पड़ा। क्योंकि गोस्वामी
को संदेश मिल गया। गोस्वामी को ख्याल आ गया कि भक्त होकर कृष्ण का, वह पुरुष कैसे हो सकता है? एक आत्मिक तल पर कृष्ण पुरुष हो गए और गोस्वामी उनका भक्त है, तो स्त्रैण हो गया।
स्त्रैण और पुरुष शब्द का मैं सांकेतिक प्रयोग कर रहा हूं। पुरुष वह है, जो खींचता है; स्त्री वह है, जो समर्पित होती है। गुरु और शिष्य के बीच समर्पण का यही संबंध है। इस समर्पण के बाद वैसी बातें हो सकती हैं, जो अन्यथा नहीं हो सकतीं।
तो कृष्ण अब एक बहुत गुरु-गंभीर बात अर्जुन से कह रहे हैं; सुनकर सिर चकराता मालूम पड़ेगा। इस बात को कृष्ण भी इसके पहले नहीं कह सकते थे। जब पक्की हो गई बात कि अर्जुन श्रद्धा से भर गया है, समर्पित है; उसके हृदय के द्वार खुले हैं; संदेह की दीवालें गिर गई हैं; शंकाएं-कुशंकाएं निःशेष हो गई हैं; अब आतुर है। ठीक वैसे ही, जैसे कभी कोई स्त्री प्रेम के किसी क्षण में पुरुष को अपने भीतर लेने को आतुर होती है। प्रेम के किसी गहन क्षण में जैसे स्त्री पुरुष को अपने द्वारा पुनः जन्माने को आतुर होती है। प्रेम के किसी क्षण में जैसे स्त्री अपने भीतर नए जीवन के लिए, नए जीवन को जन्म देने के लिए, गर्भाधान के लिए, पुरुष के प्रति समग्ररूपेण समर्पित होती है। ऐसे ही श्रद्धा से भरा हुआ चित्त गुरु के प्रति अपने सब द्वार खोल देता है, ताकि गुरु की ऊर्जा उसमें प्रविष्ट हो जाए और जीवन रूपांतरित हो, और एक नए जीवन का जन्म हो सके।
मैंने कहा कि जब दो पदार्थ मिलते हैं, तब भी नई चीज निर्मित हो जाती है। अगर आक्सीजन और हाइड्रोजन मिल जाते हैं, तो पानी निर्मित हो जाता है। जब एक स्त्री और पुरुष का मिलन होता है, तो एक तीसरे जीवन का जन्म हो जाता

है। जब दो प्रेम से भरे हुए मन मिलते हैं, तो इस जगत में सौंदर्य के, आनंद के बड़े फूल खिलते हैं। और जब प्रेम से दो व्यक्तियों का मिलन होता है, तब भी वे दो व्यक्ति भी रूपांतरित हो जाते हैं। अगर आपने कभी प्रेम की पुलक अनुभव की है, तो आपने तत्काल पाया होगा, आप दूसरे आदमी हो गए हैं।
विनसेंट वानगाग के संबंध में मैंने पढ़ा है। वह एक बड़ा डच चित्रकार था। उसे किसी स्त्री ने कभी कोई प्रेम नहीं किया। कुरूप था। और मन को प्रेम करने वाले तो खोजने कठिन हैं। गरीब था। और धन को प्रेम करने वाले तो चारों तरफ हैं। उसे किसी ने कोई प्रेम नहीं दिया। वह जवान हो गया, उसकी जवानी भी उतरने के करीब आने लगी। उसे कभी किसी ने प्रेम की नजर से नहीं देखा। वह चलता था तो ऐसे, जैसे मुर्दा चल रहा हो; अपना बोझ खुद खींचता हो। अपने ही पैर उठाने पड़ते, तो लगता कि किसी और के पैर उठा रहा है। आंख उठाकर देखता तो ऐसे, जैसे आंखों की पलकों पर पत्थर बंधे हों।
वह जहां नौकरी करता था, वह मालिक भी परेशान हो गया था उसके आलस्य को देखकर, उसके तमस को देखकर। मालिक सोचता था, इतने तमस की क्या जरूरत है? इतने आलस्य की, इतने प्रमाद की? बैठा, तो बैठा रह जाता। उठने की भी कोई प्रेरणा नहीं थी। सोता, तो सोया रह जाता। सुबह किसलिए उठूं, इसका भी कोई कारण नहीं था।
लेकिन एक दिन मालिक देखकर चकित हुआ कि वानगाग, न मालूम कितने वर्षों
के बाद स्नान करके, न मालूम कितने महीनों के बाद कपड़े बदलकर, और शायद जीवन में पहली दफा गीत गुनगुनाता हुआ दुकान में प्रविष्ट हुआ है! उसने पूछा, आज क्या हो गया है तुम्हें? कोई चमत्कार! तुम और गीत गुनगुनाओगे! और तुमने क्या स्नान भी किया है? और क्या तुमने ताजे कपड़े भी पहन लिए हैं?
वानगाग ने कहा कि हां, किसी ने मुझे आज प्रेम से देख लिया है! किसी के प्रेम का मैं पात्र हो गया हूं!
अब यह आदमी दूसरा है। प्रेम से गुजरकर दोनों व्यक्तियों का पुनर्जन्म
हो जाता है।
श्रद्धा से गुजरकर जो होता है, वह आत्यंतिक क्रांति है। श्रद्धा से गुजरकर पुराना तो मर ही जाता है, नए का ही आविर्भाव हो जाता है। प्रेम में तो पुराना बदलता है, श्रद्धा में पुराना मरता है और नया आता है। प्रेम में एक कंटिन्युटी है, सातत्य है। श्रद्धा में डिसकंटिन्युटी है; सातत्य टूट जाता है। श्रद्धा के बाद आप वही नहीं होते, जो पहले थे। आप दूसरे ही होते हैं। दोनों के बीच कोई संबंध भी नहीं होता; दोनों के बीच कोई रेखा भी नहीं होती। पुराना बस समाप्त हो जाता है, और नया आविर्भूत हो जाता है।
श्रद्धा इस जगत में सबसे बड़ी छलांग है। छलांग का मतलब होता है, पुराने
से कोई संबंध न रह जाए। इसलिए श्रद्धा जब भी किसी जीवन में घटित होती है, तो इस जगत में सबसे बड़ी क्रांति घटित होती है। और सब क्रांतियां बचकानी हैं, सिर्फ आत्मक्रांति ही आधारभूत क्रांति है।
इस क्रांति के द्वार पर खड़ा देखकर कृष्ण ने अर्जुन से कहा, हे अर्जुन, मेरे अव्यक्त स्वरूप से यह सब जगत परिपूर्ण है।
अब ये सब बातें उलटी हैं। कबीर की उलटबांसी के संबंध में आपने सुना होगा। कबीर बहुत उलटी बातें कहते हैं, जो नहीं हो सकतीं। कहते हैं कि नदी में आग लग गई, जो नहीं हो सकता। कहते हैं कि मछलियां घबड़ाकर दरख्तों पर चढ़ गईं, जो नहीं हो सकता।
लेकिन कबीर इसलिए कहते हैं कि इस जगत में जो नहीं हो सकता, वह हो रहा है--यहीं, आंखों के सामने। जो हो सकता है, वह तो हो ही रहा है; वह महत्वपूर्ण नहीं है। और जो उसको ही देख पाता है, जो हो रहा है, वह अंधा है। जो नहीं हो सकता है, वह भी हो रहा है। जिसको कोई तर्क नहीं कहेगा कि हो सकता है, वह भी हो रहा है। कोई गणित जिस निष्पत्ति को नहीं देगा, वह भी हो रहा है। इस जगत में अनहोना भी हो रहा है। वही इस जगत में ईश्वर का सबूत है। वही चमत्कार है। वही मिरेकल है।
तो बड़ी अनहोनी बात कृष्ण कहते हैं। वे कहते हैं, मेरे अव्यक्त स्वरूप
से यह सब जगत परिपूर्ण है।

अब यह जगत है व्यक्त, दि मैनिफेस्ट। और कृष्ण कहते हैं, थ्रू दिस मैनिफेस्ट, माई अनमैनिफेस्ट इ.ज मैनिफेस्टेड। यह जो प्रकट है जगत, यह जो व्यक्त है, यह जो दिखाई पड़ रहा है, यह जो साकार है, यह जो सगुण है, यह जो रूप से भरा है, इसके भीतर मेरा अरूप, मेरा निर्गुण, मेरा निराकार, मेरा अव्यक्त, मेरा अदृश्य प्रकट हो रहा है।
अब ये दोनों बातें सही नहीं हो सकती हैं हमारे गणित से। हमारी बुद्धि
से ये दोनों बातें सही नहीं हो सकती हैं। सीधी बात कहनी चाहिए। अव्यक्त का अर्थ है, जो प्रकट नहीं होता, जो प्रकट हुआ ही नहीं कभी। तो जगत से प्रकट कैसे होगा? और अगर जगत से प्रकट हो रहा है, तो उसे अव्यक्त कहने की क्या जरूरत है? दो में से कुछ एक करो। तर्क अगर होगा, तो कहेगा, दो में से कुछ एक करो। या तो कहो कि यह जो प्रकट हुआ है, यही मैं हूं, प्रकट हुआ; और या कहो, यह जो प्रकट हुआ है, यह मैं नहीं हूं; अप्रकट हूं मैं।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, यह जो प्रकट हुआ है, इसमें मैं ही व्याप्त हूं; मैं ही इसमें भरा हूं; मैं ही इसमें परिपूर्ण हूं। रूप के भीतर मेरा ही अरूप है। आकार के भीतर मेरा ही निराकार है। दृश्य के भीतर मैं ही अदृश्य हूं।
यह हमें कठिनाई में डालता है। लेकिन इसे समझना पड़े। श्रद्धा हो, तब तो
यह तत्काल समझ में आ जाता है; समझना नहीं पड़ता। श्रद्धा न हो, तो इसे थोड़ा समझना पड़े। इसे थोड़ी चेष्टा करनी पड़े कि क्या प्रयोजन होगा ऐसी उलटी बात कहने का? और फिर यह उलटी बात आगे बढ़ती ही चली जाती है। वे इसे और उलटाते चले जाते हैं।
हमारी बुद्धि की सोचने की जो व्यवस्था है, हमारी बुद्धि की जो कैटेगरीज हैं, हमारे सोचने के जो नियम हैं, उन नियमों में ही बुनियादी भूल है। उन नियमों के कारण, जो जीवन में हो रहा है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। जैसे अगर मैं यह कहूं कि जन्म भी मैं हूं और मृत्यु भी मैं, तो गणित और तर्क के लिहाज से गलत है। क्योंकि अगर मैं जन्म हूं, तो मृत्यु कैसे हो सकता हूं? जन्म और मृत्यु तो विपरीत हैं।
हमारे सोचने में विपरीत हैं, वस्तुतः विपरीत नहीं हैं। अस्तित्व में जन्म और मृत्यु जुड़े हैं, एक हैं। जन्म, मृत्यु का ही पहला छोर है; और मृत्यु, जन्म का ही दूसरा। जन्म लेकर हम करते क्या हैं सिवाय मृत्यु तक पहुंचने के! जन्म और मृत्यु दो चीजें नहीं हैं। विपरीत तो हैं ही नहीं; दो भी नहीं हैं। दो तो हैं ही नहीं; भिन्न भी नहीं हैं। एक ही चीज के दो छोर हैं। जन्म एक छोर है, मृत्यु दूसरा छोर है--उसका, जिसे हम जीवन कहते हैं। लेकिन सोचने में मृत्यु दुश्मन और जन्म मित्र मालूम पड़ता है। तो जन्म
के समय हम बैंड-बाजे बजाकर स्वागत कर लेते हैं; और मृत्यु के समय रो-धोकर विदा कर देते हैं।
शायद हमें ख्याल हो कि हंसना और रोना भी विपरीत चीजें हैं, तो फिर हम गलती में हैं। हमारी भाषा और सोचने के नियम की भूल है। अगर आप रोते ही चले जाएं, तो थोड़ी ही देर में रोना हंसने में बदल जाएगा। प्रयोग करके देखें। यह तो कोई बहुत कठिन प्रयोग नहीं है। रोते ही चले जाएं, रुकें ही मत; एक क्षण आएगा कि आप पाएंगे, रोना समाप्त हो गया और हंसने का जन्म हो गया है! हंसते चले जाएं, रुकें ही मत, तो आप पाएंगे कि हंसना विलीन हो गया और रोना शुरू हो गया।
इसलिए ग्रामीण स्त्रियां भी जानती हैं कि बच्चों को ज्यादा हंसने नहीं देतीं। कहती हैं, अगर ज्यादा हंसेगा, तो फिर रोएगा। इसलिए हंसने में ही रोक लेना उचित है। लेकिन हमारी भाषा में हंसना और रोना विपरीत है; जन्म और मृत्यु विपरीत है; अंधेरा और प्रकाश विपरीत है; बचपन और बुढ़ापा विपरीत है; सर्दी और गर्मी विपरीत है।
यह भाषा की भूल है। यह तर्क की भूल है। ये विपरीत हैं नहीं! ऐसा कहीं प्रकाश देखा है आपने, जो अंधेरे से न जुड़ा हो? ऐसा कहीं कोई अंधेरा देखा है आपने, जो प्रकाश से न जुड़ा हो? सगे-साथी हैं, संगी हैं, ऐसा भी कहना ठीक नहीं है। एक ही चीज के दो छोर हैं। अगर यह ख्याल में आ जाए, तो कृष्ण का सूत्र इतना बेबूझ नहीं मालूम होगा।

लेकिन इस सूत्र ने बड़ी कठिनाइयां दी हैं। इस बात ने बड़ी कठिनाइयां दी हैं कि परमात्मा सगुण है या निर्गुण? कितने उपद्रव, कितने विवाद! नासमझी का कोई अंत नहीं मालूम पड़ता है। और जिन्हें हम सोचते हों कि समझदार हैं, वे भी बैठकर विवाद करते रहते हैं कि परमात्मा निर्गुण है या सगुण?
सगुण के उपासक हैं, वे कहते हैं, निर्गुण की बात ही मत करो। निर्गुण के उपासक हैं, वे कहते हैं, सगुण की सब बात बकवास है। आकार को मानने वाले हैं, तो मूर्तियां बनाकर बैठे हैं। निराकार को मानने वाले हैं, तो मूर्तियां तोड़ने में लगे हैं!
मुसलमान हैं, वे निराकार को मानने वाले हैं। उन्होंने कितनी मूर्तियां मिटा दीं दुनिया से! बनाने वालों ने जितनी मेहनत नहीं की, उन बेचारों ने उससे भी ज्यादा मेहनत की मिटाने में! बनाने वाले भी इतनी फिक्र नहीं करते मूर्ति की, जितनी मिटाने वाले को करनी पड़ती है। मिटाने वाला जान की जोखिम लगा देता है, मूर्ति को मिटा देता है, क्योंकि परमात्मा निराकार है।
लेकिन कैसे मूर्तियां मिटाओगे? बनाने वाले बनाए चले जाते हैं। जिन्होंने मूर्तियां बनाईं, उनका कोई हिसाब है? भारत में हम समझते हैं कि जितने आदमी हैं, उससे कम परमात्मा नहीं हैं, उससे कम परमात्मा की मूर्तियां नहीं हैं। पहले तैंतीस करोड़ आदमी हुआ करते थे, तो तैंतीस करोड़ देवता थे हमारे पास। इधर आदमियों ने तो थोड़ी संख्या बढ़ा ली है, पता नहीं देवता क्या कर रहे हैं!
बनाने वाले बनाए चले जाते हैं; क्योंकि वे कहते हैं, सगुण है, साकार है, रूपवान है। मिटाने वाले मिटाए चले जाते हैं।
लेकिन भाषा की भूल इतनी महंगी पड़ सकती है! जिसे हम सगुण कहते हैं, वह निर्गुण का ही एक छोर है। जिसे हम निर्गुण कहते हैं, वह सगुण का ही एक छोर है। सगुण और निर्गुण दो विपरीत घटनाएं नहीं, एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। जिसे हम रूप कहते हैं, वह अरूप का ही एक हिस्सा है।
इसे ऐसा समझें कि अरूप का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ में आ जाता है, उसे हम रूप कहते हैं। और रूप का भी जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ के बाहर चला जाता है, उसे हम अरूप कहते हैं। सगुण? जिसे हम नाप लेते हैं, तौल लेते हैं, वह सगुण हो जाता है। निर्गुण? जो हमारी नाप-तौल के पार निकल जाता है, तो निर्गुण हो जाता है।
मेरे घर में आंगन है, तो मेरे आंगन का अपना आकाश है, दीवाल है आंगन की। मेरा आकाश पड़ोसी के आकाश से जुदा है, भिन्न है। अगर पड़ोसी मेरे आकाश में आना चाहे, तो मैं इनकार करूंगा। मेरा आकाश, मेरे आंगन का आकाश!
लेकिन इससे क्या आकाश विभाजित होता है? कितनी ही हम दीवाल खड़ी करें, इससे केवल हमारी सीमा बनती है देखने की। लेकिन दीवाल के पार का आकाश और मेरे आंगन के आकाश में क्या कोई खंड हो जाता है? कोई टूट हो जाती है?
मेरी दीवाल मेरी ही आंख के लिए बाधा बनती है, आकाश के लिए नहीं। ध्यान रखें, मेरी दीवाल मेरी ही आंख की सीमा बनती है, आकाश की नहीं। तो मेरे लिए आकाश दो हिस्सों में बंट जाता है; आकाश नहीं बंटता है। मेरे आंगन का आकाश उस आकाश का ही हिस्सा है, जो बाहर है। और जो बाहर है, वह मेरे आंगन के ही आकाश का विस्तार है।
जितने भी विपरीत शब्द हैं हमारे पास, वे सभी एक ही अस्तित्व के छोर हैं। इसलिए कृष्ण कहते हैं, मेरे अव्यक्त स्वरूप से यह सब जगत परिपूर्ण है। मेरा निराकार इन सब आकारों में छिपा है। मेरा निर्गुण इन सब गुणों में प्रकट हुआ है। मेरा परमात्मा ही इस पदार्थ का आधार है। और सब भूत मुझमें स्थित हैं। और यह जो सारा जगत दिखाई पड़ रहा है, यह मुझमें स्थित है, मुझमें ही ठहरा हुआ है। और तब तत्काल एक विपरीत बात वे कहते हैं--विपरीत हमें दिखाई पड़ती है--और सब भूत मुझमें स्थित हैं, लेकिन मैं उनमें स्थित नहीं हूं।
सब भूत मुझमें हैं, लेकिन मैं उनमें नहीं हूं, यह कैसे होगा? अगर सब भूत परमात्मा में स्थापित हैं और अगर परमात्मा ही सब में प्रकट हो रहा है, तो फिर यह कहना कि मैं उनमें नहीं हूं, हमारे तर्क को नई दुविधा दे देगा।

श्रद्धा को कठिनाई नहीं है, क्योंकि श्रद्धा प्रश्न नहीं उठाती। श्रद्धा आर-पार देख लेती है, ट्रांसपैरेंट है। वह देख लेगी कि ठीक है; कुछ अड़चन नहीं है। बिल्कुल ठीक है।
झेन फकीर बोकोजू के पास एक जिज्ञासु आया है और उस जिज्ञासु ने पूछा कि परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग क्या है?
बोकोजू चुपचाप बैठा रहा और फिर उसने खिड़की के बाहर झांककर देखा और कहा कि देखो! सूरज ढलने लगा, सांझ होने के करीब है।
कोई संबंध न था! उस आदमी ने पूछा था, ईश्वर को पाने का मार्ग क्या है?
और यह आदमी खिड़की के बाहर हाथ उठाकर बोला, देखो, सांझ होने लगी, सूरज ढलने के करीब है। उस आदमी ने पैर छुए और चला गया।
एक दूसरा आदमी बैठा था, वह हैरान हो गया। यह बोकोजू तो पागल है ही, वह
जो आ गया था, वह महापागल मालूम पड़ता है! उसने जो प्रश्न पूछा था कि ईश्वर को पाने का मार्ग क्या है? हद्द पागल आदमी था! और इसने जो उत्तर दिया! कुछ लेन-देन ही नहीं दोनों में! कोई संबंध नहीं! कोई दूर की भी संगति नहीं। कहां ईश्वर को पाने का मार्ग! और क्या मतलब इससे कि सूरज डूबता है और सांझ हो रही है!
उस आदमी ने कहा कि मुझे भी एक सवाल पूछना है, लेकिन कृपा करके ऐसा जवाब
मत देना। मुझे यह पूछना है कि इस आदमी ने जो पूछा, उसका क्या हुआ?
बोकोजू ने कहा कि जवाब दे दिया गया। और केवल दे ही नहीं दिया गया, जवाब पहुंच भी गया है।
उस आदमी ने कहा, जवाब मेरी समझ में नहीं आया। जवाब था ही नहीं, पहुंच कैसे सकता है? सूरज डूब रहा है, इससे क्या लेना-देना है उसकी जिज्ञासा का? बोकोजू ने कहा, बेहतर हो कि तू उस आदमी से जाकर पूछ कि सवाल का जवाब मिल गया है या नहीं?
वह आदमी बाहर गया उस आदमी को खोजने। बाहर ही, द्वार के पास ही, वृक्ष
के नीचे वह आदमी आंख बंद करके ध्यान में बैठा था। उसे हिलाया और पूछा कि जवाब मिल गया है?
उस आदमी ने कहा, जवाब मिल गया है। सूरज डूबने के करीब है, मेरा जीवन भी डूबने के करीब है। और बोकोजू ने मुझे कह दिया है कि अगर जीवनभर की व्यर्थता भी तेरे लिए परमात्मा को पाने का मार्ग नहीं बन सकी, तो अब और क्या मार्ग बनेगा? अगर जीवनभर का अनुभव भी तुझे परमात्मा के दरवाजे पर नहीं ले आया है, तो अब और किस रास्ते से तू आ सकेगा? और मौत करीब है, सूरज डूबने के करीब है, सांझ होने लगी है। अब तू खो मत समय को।
उस आदमी ने पूछा, आप यहां क्या कर रहे हैं?
तो उस आदमी ने कहा कि अब मैं डूबने की तैयारी कर रहा हूं। जीवनभर मैंने जीने की तैयारी की थी, वह व्यर्थ गई है। अब मैं अपने हाथ से डूबने की तैयारी कर रहा हूं। जिस तरह वहां बाहर सूरज डूब रहा है, इसी तरह भीतर मैं भी डूब जाऊं, यही उनका संकेत है।
और सुबह जब सूरज उग रहा था दूसरे दिन, तब भी वह आदमी उसी झाड़ के नीचे बैठा था। बोकोजू बाहर आया। वह तीसरा आदमी भी रातभर मौजूद रहा कि यह क्या हो रहा है! सब बात बेबूझ हो गई थी। बोकोजू सुबह बाहर आया। उसने उस आदमी को-- जो ध्यान में रातभर बैठा रहा था--हिलाया और पूछा कि कुछ खबर दो।
उस आदमी ने आंख खोलीं। और उस आदमी ने कहा कि सूरज उग रहा है। सुबह होने
के करीब है। बोकोजू ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि अब तू जा सकता है।
उस आदमी ने कहा कि मैं अगर यहां ज्यादा रुका--तीसरे आदमी ने--तो मैं पागल हो जाऊंगा, इसका डर है। यह क्या हो रहा है?
यह एक और तरह की भाषा है, जो श्रद्धा समझ पाती है। उस आदमी ने कहा कि सूरज उगने लगा है। वह तो डूब गया, उसे छोड़ ही दिया, जो मैं था। अब दूसरे का ही जन्म हो रहा है; रास्ता मिल गया है।
कृष्ण कहते हैं, ये सब मुझमें स्थित हैं, ये सारे भूत, लेकिन मैं उनमें स्थित नहीं हूं।
यह इंगित है, और महत्वपूर्ण है। श्रद्धा तो सीधा समझ लेगी; विचार को थोड़ा-सा चक्कर काटना पड़ेगा। जो भी विराटतर है, वह क्षुद्रतर में प्रविष्ट

भी हो जाए, तो भी प्रविष्ट नहीं होता। एक छोटा-सा वर्तुल मैं खींचूं, एक छोटा सर्किल, और फिर एक बड़ा सर्किल उसके चारों तरफ बनाऊं, तो यह कहना तो बिल्कुल ठीक है, बड़ा सर्किल यह कह सकता है कि छोटा सर्किल मुझमें स्थित है, फिर भी मैं उसमें स्थित नहीं हूं। क्योंकि छोटा सर्किल तो पूरा ही बड़े सर्किल में उपस्थित है, लेकिन बड़ा सर्किल छोटे सर्किल के बाहर भी फैला हुआ है।
तो जीवन का एक अनिवार्य नियम है कि क्षुद्र तो विराट में स्थित होता है, लेकिन विराट क्षुद्र में नहीं। इसे ऐसा समझें, एक बूढ़ा आदमी कह सकता है कि मैं बच्चे में मौजूद हूं, बच्चा मुझमें स्थित है, फिर भी मैं बच्चे के बाहर हूं। एक बूढ़े आदमी में बचपन भी छिपा होता है, जवानी भी छिपी होती है। उन सबको उसने अपने में समा लिया है; फिर भी वह कुछ ज्यादा होता है, समथिंग मोर। उनसे कुछ फैला होता है। उसकी परिधि बड़ी है।
जो भी छोटा है, वह बड़े में समाया होता है; लेकिन बड़ा उस छोटे में समाया नहीं होता। छोटे से भी बड़ा प्रकट होता है, फिर भी समाया नहीं होता। सागर कह सकता है कि सभी नदियां मुझमें समाई हुई हैं, फिर भी मैं नदियों में नहीं समाया हुआ हूं।
अर्थ इतना ही है, तर्क और विचार की दृष्टि से, कि जो विराट है वह क्षुद्र के पार है। क्षुद्र से प्रकट भी होता है, तो भी क्षुद्र के पार है। यह जो पारगामिता है, ट्रांसेंडेंस है, यह जो सदा पार होना है, बियांडनेस है, इसका सूत्र है यह। इसका मूल्य है, इसका अर्थ है, वह हमारे ख्याल में आ सकेगा।
और वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं। पहले कहा, वे सब भूत मुझमें स्थित हैं। और अब तत्क्षण एक पंक्ति भी नहीं पूरी हो पाई और कृष्ण कहते हैं, और वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं।
किंतु मेरे योग को देख, मेरी माया को देख कि समस्त भूतों को धारण-पोषण करने वाला होकर भी मैं भूतों में स्थित नहीं हूं। क्योंकि जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला वायु सदा ही आकाश में स्थित है, वैसे ही संपूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं, ऐसा जान।
एक के बाद दूसरी पंक्ति पहले को खंडित करती चली जाती है। एकदम अतर्क्य वक्तव्य है। जो कहते हैं एक क्षण, दूसरे क्षण खंडित कर देते हैं। जो दूसरे क्षण कहते हैं, तीसरी पंक्ति में उसके पार निकल जाते हैं। क्या कहना चाहते हैं? क्या इशारा है? क्योंकि जो कहा है, वह अतर्क्य है। शायद यही कहना चाहते हैं कि मैं अतर्क्य हूं।
इसे समझ लें। इस वक्तव्य का सार भाव यही है कि कृष्ण यह कह रहे हैं कि
तू समझने से समझ सके, ऐसा मैं नहीं हूं। तू जानने से जान सके, ऐसा मैं नहीं हूं। तू पहचानने से पहचान सके, वह मैं नहीं हूं। तू जानना छोड़, तू पहचानना छोड़, तू समझ छोड़, तू गणित छोड़, तू तर्क छोड़, तो तू मुझे जान सकता है; क्योंकि मैं अतर्क्य हूं।
अतर्क्य का अर्थ है, मैं रहस्य हूं। रहस्य का अर्थ है, कोई भी सिद्धांत, कोई भी नियम मुझे नहीं घेर पाएगा। मैं पारे की तरह हूं। मुट्ठी तू बांधेगा तर्क की और मैं बिखरकर बाहर छिटक जाऊंगा। जब तक तू नहीं बांधेगा, तब तक शायद मुझे पाए भी कि मैं हूं; जैसे ही तू मुट्ठी बांधेगा, मैं छिटक जाऊंगा। बुद्धि जैसे ही जीवन के सत्य को पकड़ना चाहती है, सत्य छिटक जाता है पारे की तरह। तो तू मुझे बांधने की कोशिश मत कर।
कृष्ण ने अब तक जो अनुभव किया है, वह यही है कि अर्जुन उन्हें बांधने
की कोशिश कर रहा है। अर्जुन ने सब तरह से कोशिश की है। क्योंकि अगर अर्जुन कृष्ण को बांध ले तर्क में, विचार में, तो इस युद्ध से छुटकारा हो सकता है। क्योंकि कृष्ण कहते हैं कि यह सब माया है; तो अर्जुन कहना चाहता है कि अगर सब माया है, तो मुझे इसमें क्यों उलझाते हैं? कृष्ण कहते हैं कि ये कोई मरते नहीं मारने से; तो अर्जुन कहेगा कि जब ये मरते ही नहीं मारने से, तो मारने से भी क्या सार है? कृष्ण अगर कहते हैं कि तू अपने यश के लिए और प्रतिष्ठा के लिए लड़; तो अर्जुन कहेगा, यश और प्रतिष्ठा तो सब अहंकार है, और आप ही तो समझाते हैं कि अहंकार बाधा है! अगर कृष्ण कहते हैं कि धर्म के

लिए तुझे लड़ना है, तो अर्जुन कहेगा कि मुझ से क्या धर्म की स्थापना हो सकेगी? जब आप ही मौजूद हैं, तो धर्म की स्थापना उतने से काफी है। अगर कृष्ण कहते हैं कि यह जीवन असार है, तो अर्जुन चाहता है कि मुझे छुटकारा दो, ताकि मैं एकांत में जाकर समाधि में लीन हो जाऊं।
कृष्ण कुछ भी कहें, अर्जुन उन्हें बांध लेना चाहता है। उस बांधने में
ही उसे अपना छुटकारा दिखाई पड़ता है। अगर कृष्ण फंस जाएं, जो कह रहे हैं उसी में, तो अर्जुन कृष्ण से जीत जा सकता है।
एक बहुत मजे की बात है कि अगर यह चर्चा बिल्कुल तर्कयुक्त ढंग से चले,
तो कृष्ण की हार निश्चित है। अगर यह ठीक नियम से खेल चले तर्क के, तो कृष्ण की हार निश्चित है। अर्जुन सुनिश्चित जीतेगा।
कृष्ण ने सब तर्कों के जवाब दिए हैं। एक-एक तर्क को काटने की कोशिश की है। अर्जुन ऐसी जगह आ गया है कि अब और तर्क उठाने का उसका मन नहीं है। तो कृष्ण तत्काल अपना बेबूझपन प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि अब मैं तुझे बता दूं वह, जैसा मैं हूं। अब तक तू जो कह रहा था, तो मैं भी खेल रहा था। अब तक तू जो पूछ रहा था, तो मैं भी जवाब दे रहा था। लेकिन वह शतरंज का खेल था। मैं देख रहा था, तू किसलिए पूछ रहा है, तो क्या जवाब देना जरूरी है, वह मैं दे रहा था। अब मैं तुझे वही बताता हूं, जो मैं हूं। यह जो दिखाई पड़ रहा है, इसमें मैं न दिखाई पड़ने वाले की तरह छिपा हूं। यह सारा जगत मुझमें ठहरा हुआ है, और इसमें मैं नहीं हूं; और फिर भी मैं तुझसे कहता हूं कि यह जगत भी मुझमें ठहरा हुआ नहीं है; और फिर भी मैं तुझसे कहता हूं कि मैं इस जगत में समाया हुआ हूं।
अर्जुन का सिर घूम जाता। जो भी विचार से चलेगा, उसका घूमेगा। श्रद्धा नहीं घूमती है। श्रद्धा इतनी शक्तिशाली है कि कृष्ण भी उसे डांवाडोल नहीं कर सकते। इतनी बात कृष्ण ने अगर पहले कही होती, तो अर्जुन अब तक हजार सवाल उठा दिया होता। वह चुप है। वह समझने की कोशिश कर रहा है। समझने से ज्यादा वह कृष्ण को पीने की कोशिश कर रहा है। कृष्ण क्या कह रहे हैं, यह मूल्यवान नहीं रहा अब। कृष्ण क्या हैं, उनकी प्रेजेंस, उनकी मौजूदगी, उनका होना, वह अपने द्वार खोलकर उनको अपने भीतर समा रहा है। कृष्ण क्या कह रहे हैं, यह अब सवाल नहीं है बहुत महत्वपूर्ण। क्यों कह रहे हैं! क्या कह रहे हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। कौन कह रहा है!
इसलिए अर्जुन चुपचाप पी रहा है। जिन बातों में एक-एक पद पर संकट होना चाहिए, और संदेह होना चाहिए, उन्हें वह चुपचाप पीए जा रहा है। उसे कहीं कोई विरोध जैसे दिखाई भी नहीं पड़ रहा है।
ध्यान रखें, यह विरोध हो सकता है दो कारणों से दिखाई न पड़े। मैंने गीता के कई सतत पाठी देखे हैं, उन्हें भी नहीं दिखाई पड़ता। उसका कारण यह नहीं है कि उनकी श्रद्धा इतनी है कि उन्हें इसमें विरोध नहीं दिखाई पड़ता। वे इतनी बुद्धि भी नहीं लगाते कि विरोध दिखाई पड़े। पढ़ते चले जाते हैं। पढ़ते-पढ़ते आदत हो जाती है। और जो बीच में विरोध है स्पष्ट, वह भी दिखाई नहीं पड़ता। सुनते रहते हैं, विरोध दिखाई नहीं पड़ता।
विरोध न दिखाई पड़ना दो तरह से संभव है। एक तो श्रद्धा इतनी प्रगाढ़ हो
कि विरोध के बीच में वह जो आदमी खड़ा है, वही दिखाई पड़े; विरोध के पार वह जो चेतना खड़ी है, वही दिखाई पड़े; और या फिर बुद्धि इतनी कम हो कि पहले वक्तव्य में और दूसरे वक्तव्य में विरोध है, यह भी दिखाई न पड़े।
बुद्धि की कमी को श्रद्धा की गहराई मत समझ लेना। बहुत बार बुद्धि का उथलापन श्रद्धा की गहराई समझ ली जाती है। श्रद्धा की गहराई बुद्धि के उथलेपन का नाम नहीं है! श्रद्धा की गहराई बुद्धि से मुक्ति है।
इसे पढ़ना। पहले तो विरोध खोजने की कोशिश करना। सब तरह से विरोध देखने
की कोशिश करना। और जब बुद्धि थक जाए, जैसा कि मैं कुछ दो-तीन बातें कहूं, तो ख्याल में आ जाए।
इस सदी के मध्य में विज्ञान ने एक नया सिद्धांत खोजा। कहें खोजा, या कहना चाहिए, खोज में आ गया अचानक। जैसे ही परमाणु की खोज हुई, तो विज्ञान को पता चला कि परमाणु के जो घटक, इलेक्ट्रांस हैं, वे बड़े अदभुत हैं, रहस्यपूर्ण हैं। रहस्यपूर्ण इसलिए हैं कि हमारे पास कोई शब्द ही नहीं कि

हम उनको बताएं कि वे क्या हैं। किन्हीं वैज्ञानिकों ने खबर दी कि वे कण हैं। और किन्हीं वैज्ञानिकों ने खबर दी कि वे कण नहीं हैं, तरंग हैं। और तब किन्हीं वैज्ञानिकों ने खबर दी कि वे दोनों एक साथ हैं, कण भी और तरंग भी। कण का मतलब होता है कि जो कभी तरंग नहीं हो सकता। तरंग का मतलब होता है
कि जो कभी कण नहीं हो सकती। अगर मैं कहूं कि मैंने आपकी दीवाल पर एक बिंदु बनाया; यह बिंदु भी है और लकीर भी; प्वाइंट भी है और लाइन भी। तो आप कहेंगे, क्या कह रहे हैं आप! दो में से एक ही बात हो सकती है, अन्यथा युक्लिड बेचारे का क्या होगा? ज्यामेट्री का क्या होगा? आप क्या कहते हैं! अगर मैं कहूं कि यह बिंदु भी है और रेखा भी, दोनों एक साथ। तो आप कहेंगे, कृपा करें! यह दोनों एक साथ हो नहीं सकता। और अगर मैं खींचना भी चाहूं ऐसी कोई चीज तख्ते पर, तो खींच नहीं सकता, जो दोनों एक साथ हो। या तो बिंदु होगा, या रेखा होगी।
रेखा का मतलब ही है, बहुत-से बिंदु सतत, बहुत-से बिंदुशृंखला में। अगर
यह बिंदु है, तो रेखा नहीं हो सकती। अगर यह रेखा है, तो बिंदु नहीं हो सकता। बिंदु का मतलब ही है कि जो और विभाजित न किया जा सके। रेखा तो विभाजित की जा सकती है।
लेकिन वैज्ञानिक बड़ी मुश्किल में पड़ गए। युक्लिड को मानें कि इस इलेक्ट्रान को मानें? क्या करें? और यह इलेक्ट्रान है कि युक्लिड की फिक्र ही नहीं करता; ज्यामिति की फिक्र नहीं करता; गणित के नियम नहीं मानता; और दोनों तरह का व्यवहार करता है! बिहेव्स बोथ वेज साइमल्टेनियसली। कोई शब्द नहीं है हमारे पास। कण-तरंग, इसको क्या नाम दें? कण-तरंग कहें! दोनों विपरीत शब्द हैं। वैज्ञानिक बड़े पेशोपस में थे कि क्या करें।
लेकिन तथ्य को तो मानना ही पड़ेगा, चाहे युक्लिड के ही खिलाफ जाता हो। अंततः यही हुआ कि युक्लिड को छोड़ देना पड़ा; तथ्य को ही मानना पड़ा। आइंस्टीन से किसी ने पूछा है कि यह तो नियम के विपरीत है! तो आइंस्टीन
ने कहा, हम क्या करें? कहना चाहिए, नियम ही तथ्य के विपरीत है। नियम बदला जा सकता है, तथ्य नहीं बदला जा सकता। नियम बदला जा सकता है; नियम हमारा बनाया हुआ है। तथ्य नहीं बदला जा सकता है; तथ्य हमारा बनाया हुआ नहीं है। युक्लिड को हारना पड़ेगा, क्योंकि तथ्य यह है।
विपरीत एक साथ मौजूद है जीवन में। उसी तथ्य को भौतिकी इस इलेक्ट्रान
के व्यवहार में पाई, कि जीवन एक साथ मौजूद है।
फ्रायड ने अपने अंतिम जीवन के क्षणों में अनुभव किया कि आदमी के भीतर जीवन की लालसा तो है ही, मृत्यु की भी लालसा है। जिंदगीभर वह कहता था, आदमी के जीवन में एक ही खास चीज है, लिबिडो। लिबिडो उसके लिए शब्द था, जीवेषणा। आदमी जीना चाहता है। लेकिन आखिरी उम्र में, आदमी का अध्ययन जीवनभर करने के बाद उसे लगा कि यह बात अधूरी है। आदमी सिर्फ जीना ही नहीं चाहता, आदमी साथ ही मरना भी चाहता है। यह चाह भी आदमी के भीतर छिपी है।
अब बड़ी मुश्किल हुई। क्या ये दोनों चाहें एक साथ आदमी के भीतर छिपी हैं? क्या यह आदमी दोनों चाह है? फ्रायड खुद परेशान हुआ, क्योंकि वह तर्कयुक्त गणित में भरोसा करता था। उसे कठिनाई मालूम पड़ी कि आदमी में दो में से एक ही हो सकती है, या तो जीने की चाह हो या मरने की चाह हो। यह समझ में आता है कि एक आदमी में अभी जीने की चाह है; फिर बाद में मरने की चाह आ जाए, यह समझ में आ सकता है; लेकिन दोनों एक साथ!
वही, जो भौतिकविद पहुंचे पदार्थ में, मनसविद पहुंच गए मनुष्य की वासना में, तो पाया कि दोनों वासनाएं एक साथ मौजूद हैं। और अब जो और गहरे जा रहे हैं लोग, वे अनुभव करते हैं कि उन्हें दो वासनाएं कहना गलत है। आदमी के भीतर एक ही वासना है, जो जीने और मरने की दोनों है। तो जब तक अच्छा लगता है, तो आदमी उस वासना की व्याख्या करता है कि मैं जीना चाहता हूं। जब अच्छा नहीं लगता, तो उसी वासना की व्याख्या करता है कि मैं मरना चाहता हूं। बूढ़े आदमी कहते हुए सुने जाते हैं कि भगवान, अब हमें उठा ले! तो ऐसा मत समझना कि कुछ बदलाहट हो गई है उनमें, कि कोई क्रांति हो गई है उनमें। वही

चाह विफल होकर, असफल होकर, हारकर, पराजित होकर, जरा-जीर्ण होकर अब मृत्यु की भाषा बोल रही है। वही चाह है।
अभी कोई आ जाए और कहे कि एक नया यंत्र बन गया है। इस दरवाजे से घुसो, उधर से निकलो, जवान हो जाते हो! वह बूढ़ा आदमी कहेगा, भगवान! अभी थोड़ा ठहरना। मैं इस यंत्र से जरा गुजरकर एक बार देख लूं। अगर ऐसा होता हो, तो अभी मरने की ऐसी कुछ जल्दी नहीं है!
क्या हुआ? ये चाहें दो नहीं हैं। लेकिन भाषा में बड़ी कठिनाई है। दो ही कहना पड़ेंगी। ये एक ही हैं। मनसविद हमारे भीतर खोज कर-करके एक और तीसरे तथ्य पर पहुंचे हैं। आपको ख्याल में आ जाए कि वैपरीत्य वैपरीत्य नहीं है। मनसविद कहते हैं कि हम जिस व्यक्ति को प्रेम करते हैं, उसी को घृणा भी करते हैं।
यह जब पहली दफा उदघाटन हुआ, तो यह पहली दो बातों से भी ज्यादा मन को डंवाने वाली बात है। क्योंकि मां को अगर कोई कहे कि तू अपने बेटे को प्रेम भी करती है और घृणा भी, साथ ही; तो कोई मां राजी नहीं होगी। लेकिन फ्रायड कहता है कि उसका न राजी होना केवल उसके भीतर के भय को बताता है। वह जानती है गहरे में कि यह सच है।
अगर किसी प्रेमी से हम कहें कि तू जिस प्रेयसी के लिए मरा जा रहा है, उसी को कल मार भी सकता है। अभी उसके लिए अमृत की तलाश कर रहा है, कल दवाई की दुकान से उसी के लिए जहर भी खरीद सकता है। और कल तो दूर है; मनसविद कहते हैं, इसी समय भी, इस क्षण में भी प्रेम और घृणा दोनों साथ ही मौजूद हैं। पर हमें कठिनाई है। क्योंकि हमारे लिए प्रेम और घृणा विपरीत बातें हैं, अलग-अलग।
ऐसा नहीं है। इसलिए प्रेम क्षणभर में घृणा बन सकता है; और घृणा क्षणभर में प्रेम बन सकती है। जो आकर्षण है, वह विकर्षण बन सकता है। जो विकर्षण है, वह आकर्षण बन सकता है। वे बदलने योग्य हैं, एक्सचेंजेबल हैं, और लिक्विड हैं, तरल हैं, एक-दूसरे में बह जाते हैं। सच तो यह है कि वे दो नहीं हैं, एक ही हैं।
कृष्ण यही कह रहे हैं कि मैं दोनों हूं। जहां-जहां तुझे वैपरीत्य दिखाई पड़े, वह दोनों मैं हूं।
इस संबंध में हिंदू चिंतन बहुत अनूठा है। दुनिया के किसी धर्म ने भी द्वंद्व को इतनी गहराई से आत्मसात नहीं किया। इसलिए मैं कहता हूं कि आइंस्टीन के लिए या फ्रायड के लिए हिंदू चिंतन जितनी सहजता से आत्मसात कर सकता है, उतना क्रिश्चियन चिंतन आत्मसात नहीं कर सकता है। क्योंकि क्रिश्चियनिटी या इस्लाम द्वंद्व को मानकर चलते हैं।
यह भी ख्याल में ले लें। कल मैंने आपसे कहा था, दो धाराएं हैं, एक यहूदी और एक हिंदू। शेष धाराएं उनकी शाखाएं हैं। यहूदी धारा जीवन को द्वंद्व में तोड़कर चलती है। भगवान है एक, शैतान है एक; दोनों दुश्मन हैं। अच्छाई है एक, बुराई है एक; दोनों में दुश्मनी है। पाप है एक, पुण्य है एक; दोनों विपरीत हैं। नर्क है एक, स्वर्ग है एक; दोनों में विरोध है। सिर्फ हिंदू चिंतना द्वंद्व को आत्मसात करती है। इसलिए हमने कुछ अदभुत चीजें बनाईं। जैसे-जैसे मनुष्य की समझ बढ़ेगी, उन चीजों की गरिमा और महत्ता भी समझ में आएगी।
हम अकेली कौम हैं इस जमीन पर, जिन्होंने परमात्मा के विपरीत एक बुराई
का परमात्मा खड़ा नहीं किया। खड़ा ही नहीं किया। शैतान की, हमारी चिंतना में, कोई गुंजाइश नहीं है। मगर यह बड़ा कठिन काम है। ईसाई और मुसलमान एक लिहाज से सीधे और सरल हैं, साफ हैं। जटिलता नहीं है। क्योंकि जो-जो बुराई है, वह शैतान पर छोड़ देते हैं; और जो-जो भलाई है, वह परमात्मा पर रख लेते हैं। इसलिए उनका परमात्मा एकदम भला है। अंग्रेजी में जो शब्द गॉड है, वह गुड का ही रूपांतरण है। वह जो शुभ है, वही परमात्मा है। और जो अशुभ है, वही शैतान है।
लेकिन हम क्या करेंगे? हमारे परमात्मा को दोनों होना पड़ेगा एक साथ, परमात्मा भी और शैतान भी। इसलिए हमने एक कल्पना की है, जो बहुत गहरी है। वह यह है कि परमात्मा निर्माता भी है और विध्वंसक भी। ईसाइयत कहेगी,

परमात्मा बनाता है, शैतान मिटाता है। हम कहते हैं, परमात्मा दोनों ही काम करता है; वही बनाता है, वही मिटाता है।
हमने अर्द्धनारीश्वर की प्रतिमा बनाई है। हमने शिव की प्रतिमा बनाई है, जिसमें वे आधे पुरुष हैं और आधे स्त्री। दुनिया में कोई ऐसी कल्पना नहीं कर सकता। एक ही व्यक्ति दोनों कैसे हो सकता है? या तो स्त्री हो या पुरुष हो। लेकिन दोनों हैं; दोनों एक साथ।
इसलिए कृष्ण यह भी कहते हैं कि यह सारा संसार मुझमें समाया हुआ है और फिर भी मैं इसमें नहीं हूं। अगर कृष्ण से कोई पूछे कि ये जो पाप हो रहे हैं, इनके संबंध में आपका क्या ख्याल है? तो कृष्ण कहेंगे, सारे पापियों में भी मैं समाया हुआ हूं और फिर भी मैं उनमें नहीं हूं। और सारे पाप मेरे ही भीतर हो रहे हैं और फिर भी मैं उनमें नहीं हूं।
यह जो द्वंद्वातीत, ट्रांसेंडेंटल, दोनों को स्वीकार करके भी उनके पार होने की बात है, यही भारतीय धर्म का गुह्यतम सूत्र है। इसलिए हमारा परमात्मा, हमारी जो परमात्मा की धारणा है, वह दुनिया के दूसरे लोगों को बहुत अजीब मालूम पड़ती है। उनकी कल्पना में नहीं आती है कि यह कैसी बात है! हमारे मुल्क में भी ऐसे लोग हैं, जिनकी समझ में नहीं आती।
जैसे कृष्ण का ही व्यक्तित्व है, यह जैनों की समझ में नहीं आ सकता। क्योंकि वे कहेंगे, यह आदमी कैसा है? यह बांसुरी भी बजा सकता है, यह युद्ध के मैदान पर भी खड़ा हो सकता है! यह अहिंसा की परम बात भी कह सकता है और हिंसा के बड़े युद्ध में अर्जुन को जाने की सलाह देता है! सलाह ही नहीं देता, फुसलाता है। और इतने ढंग से फुसलाता है कि किसी सेल्समैन ने कभी किसी दूसरे को नहीं फुसलाया होगा। उसको धक्का देता है कि जा और जूझ जा; बिल्कुल बेफिक्र रह! और एक अजीब सूत्र देता है; उससे कहता है, बेफिक्री से मार; क्योंकि आत्मा कभी मरती ही नहीं!
यह जो द्वंद्वातीत अतिक्रमण की क्षमता है, यह गहनतम खोज है। इस सूत्र में कृष्ण यही कह रहे हैं कि तू मेरे रूप को दो विरोधों में मत बांट। दोनों में मैं मौजूद हूं--रूप में भी, अरूप में भी; मूर्त में भी, अमूर्त में भी; पदार्थ में भी, परमात्मा में भी--मैं ही हूं। और फिर भी मैं तुझसे कहता हूं कि इन सबमें होकर भी मैं बाहर रह जाता हूं। इन सबके बीच में खड़े होकर भी मैं इनमें डूब नहीं जाता हूं।
इसे आप अनुभव कर सकते हैं। यहां आप भीड़ में बैठे हुए हैं, भीड़ में बिल्कुल डूबे हुए हैं। फिर भी अगर आपको थोड़ी-सी भी ध्यान की क्षमता हो, आंख बंद कर लें, अपने भीतर ध्यान में हो जाएं, तो आप कह सकते हैं कि मैं भीड़ में मौजूद हूं और फिर भी भीड़ में नहीं हूं।
आप जंगल में चले जाएं और ध्यान की बिल्कुल क्षमता न हो; एक वृक्ष के नीचे बैठ जाएं; कोई वहां नहीं है, निराट सुनसान है; आंख बंद करें, भीड़ मौजूद है! तब आपको वहां कहना पड़ेगा, भीड़ यहां बिल्कुल नहीं है, फिर भी मैं भीड़ में मौजूद हूं।
इस भीड़ में बैठकर भी आप भीड़ के बाहर हो सकते हैं। तब आपको एक जटिल सत्य
का अनुभव होगा, भीड़ में हूं, भीड़ में समाया हूं, बैठा हूं, चारों तरफ भीड़ है, फिर भी मैं भीड़ में नहीं हूं। तब आपको ख्याल में आएगा कि यह द्वंद्वातीत अतिक्रमण क्या है! यह नान-डुअल ट्रांसेंडेंस क्या है! यह कृष्ण किस गहन पहेली की बात कर रहे हैं!
वे यह कह रहे हैं, मैं ही लड़ता हूं, मैं ही लड़ाता हूं; मैं ही भागता हूं, मैं ही भगाता हूं; और फिर भी मैं इस सब में नहीं हूं।
लेकिन यह ध्यान की या श्रद्धा की, समाधि की जो परम अवस्था है, तभी ख्याल में आती है। तभी ख्याल में आती है।
एक सूफी फकीर मरने के करीब था। चिकित्सक उसे दवा दे रहे हैं। वह दवा
पी रहा है। लेकिन चिकित्सक को उसकी आंखों को देखकर शक हुआ कि वह दवा नहीं पी रहा है। चिकित्सक ने कहा कि आप दवा पी तो जरूर रहे हैं, लेकिन आपकी आंखों से ऐसा लग रहा है कि आपको कोई प्रयोजन नहीं है।

उस फकीर ने कहा, तुम्हारे लिए दवा पी रहा हूं; मैं दवा नहीं पी रहा हूं। दवा तो पी ही रहा है, लेकिन उसने कहा, तुम्हारे लिए दवा पी रहा हूं। मैं दवा नहीं पी रहा हूं।
अगर कोई मोहम्मद के हाथ में तलवार को देखकर मोहम्मद से पूछता कि आप यह तलवार क्यों लिए हुए हैं? तो शायद वे भी यही कहते, तुम्हारे लिए लिए हुए हूं। मेरे हाथ में तलवार नहीं है। इसलिए मोहम्मद ने अपनी तलवार पर लिख रखा था, शांति मेरा संदेश है।
पागलपन है! तलवार पर, शांति मेरा संदेश है! उलटी हो गई बात। कृष्ण जैसी
हो गई। तलवार पर लिखना कि शांति मेरा संदेश है! और कोई जगह नहीं मिलती लिखने को! इस्लाम शब्द का अर्थ होता है, शांति।
लेकिन मोहम्मद ठीक कह रहे हैं। तलवार उनकी तलवार के लिए नहीं उठी है।
और तलवार उनके हाथ में है ही नहीं। मगर यह कठिन है। यह तो एक गहन अनुभव हो, तो ही ख्याल में आ सकता है। कुछ प्रयोग करें, तो समझ में आएगा। कुछ थोड़े-से प्रयोग करें, तो आसान हो जाएगा।
जैसे मैंने कहा, यहां भीड़ में बैठे हैं। एक क्षण को बदल लें ध्यान, भूल जाएं भीड़ को। भीड़ खो गई; आप अकेले हो गए। भीड़ फिर भी रहेगी, आप अकेले हो गए। भोजन कर रहे हैं। समझ लें, जान लें कि शरीर में भोजन जा रहा है, आप में नहीं। शरीर में भोजन जाता रहेगा; आप बाहर हो गए।
कोई आपको चांटा मार रहा हो, तब समझें कि पदार्थ से पदार्थ टकराया; हाथ चेहरे से लगा; मैं दूर ही खड़ा रह गया हूं; मुझे छुआ नहीं जा सका। तब चांटे की आवाज भी होगी, गाल पर निशान भी आ जाएगा, वह आदमी तृप्त होकर भी लौट जाएगा और आप भीतर अछूते बाहर खड़े रह जाएंगे! थोड़े प्रयोग करें, तो यह पहेली ख्याल में आ सकती है।
आज इतना ही।
लेकिन अभी उठें नहीं। पांच मिनट बैठे रहें। यहां कीर्तन होगा। पांच मिनट सम्मिलित हों। और बैठे ही न रहें, सम्मिलित हों। दोहराएं साथ में आनंद से और फिर वापस जाएं।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
तीसरा प्रवचन

जगत एक परिवार है

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।। 7।।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।। 8।।
न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु।। 9।।
और हे अर्जुन, कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात मेरी प्रकृति में लय होते हैं। और कल्प के आदि में उनको मैं फिर रचता हूं।
अपनी त्रिगुणमयी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के वश से परतंत्र हुए इस संपूर्ण भूत समुदाय को बारंबार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूं। हे अर्जुन, उन कर्मों में आसक्तिरहित और उदासीन के सदृश स्थित हुए मुझ परमात्मा को वे कर्म नहीं बांधते हैं।

इस सूत्र के निकट पहुंचने के लिए हम दो-चार मार्गों से यात्रा करें,
तो आसान होगा। यह सूत्र, मनुष्य के चिंतन में जो मूलभूत प्रश्न है, उससे संबंधित है। आदमी ने निरंतर जानना चाहा है, कैसे यह सृष्टि निर्मित होती है? कैसे विलीन होती है? कौन इसे बनाता? कौन इसे सम्हालता? किस में यह विलीन होती है? कोई है इसे बनाने वाला या नहीं है? इस प्रकृति का कोई प्रारंभ है, कोई अंत है? या कोई प्रारंभ नहीं, कोई अंत नहीं? इस प्रकृति में कोई प्रयोजन है, कोई लक्ष्य है, जिसे पाने के लिए सारा अस्तित्व आतुर है, या यह लक्ष्यहीन एक अराजकता है? यह जगत एक व्यवस्था है या एक अराजक संयोग है? और इस प्रश्न के उत्तर पर जीवन का बहुत कुछ निर्भर करता है, क्योंकि जैसा उत्तर हम स्वीकार कर लेंगे, हमारे जीवन की दशा भी वही हो जाएगी।
ऐसे विचारक रहे हैं, जो मानते हैं कि जीवन एक संयोग, एक एक्सिडेंट मात्र है। कोई व्यवस्था नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है, कहीं पहुंचना नहीं है, कोई कारण भी नहीं है; सिर्फ जीवन एक दुर्घटना है। ऐसी दृष्टि को जो मानेगा, वह जो कह रहा है, वह सच हो या न हो, उसका जीवन जरूर एक दुर्घटना हो जाएगा। वह जो कह रहा है, वह सारे जगत को प्रभावित नहीं करेगा, लेकिन उसके अपने जीवन को निश्चित ही प्रभावित करेगा।
यदि मुझे ऐसा लगता हो कि यह सारा विस्तार, यह पूरा ब्रह्मांड एक संयोग मात्र है, तो मेरे अपने जीवन का केंद्र भी बिखर जाएगा। तब मेरे जीवन की सारी घटनाएं भी संयोग मात्र हो जाएंगी। फिर मैं बुरा करूं या भला, मैं जीऊं या मरूं, मैं किसी की हत्या करूं या किसी पर दया करूं, इन सब बातों के पीछे कोई भी प्रयोजन, कोई सूत्रबद्धता नहीं रह जाएगी। ऐसा जिन्होंने कहा है, उन्होंने जगत को अराजक बनाने में सुविधा दी है।
और कठिनाई यह है कि चाहे कोई विचारक कितना ही कहे कि जगत अराजक है, खुद उसकी चेतना इस बात को स्वीकार नहीं कर पाती। क्योंकि ऐसे विचारक जब अपना प्रस्ताव करते हैं कि जगत अराजक है, तो इसे भी बहुत तर्कयुक्त ढंग से सिद्ध करते हैं। ऐसे विचारक भी जब यह कहते हैं कि जगत अराजक है, तो इसकी भी सुसंगत व्यवस्था निर्मित करते हैं। वे एक सिस्टम बनाते हैं। अगर आप उनका विरोध करेंगे, तो वे आपके विपरीत तर्क उपस्थित करेंगे। वे आपके तर्कों का खंडन करेंगे। वे अपने तर्कों का समर्थन करेंगे।
लेकिन उन्हें शायद ख्याल नहीं आता कि अगर जगत एक अराजकता है, तो किसी
को भी समझाने का कोई प्रयोजन नहीं है; और फिर न कोई सही है और न कोई गलत।

अगर जगत एक अराजकता है, एक अनार्की है, एक केआस है, तो फिर मैं आपको समझाऊं कि सही क्या है, तो मैं मूढ़ हूं। क्योंकि अराजकता में सही कुछ भी नहीं हो सकता है। सही और गलत व्यवस्था में होते हैं।
फिर अगर मैं कहूं कि मैं ही सही हूं और आप गलत हैं, तो मैं अपनी ही बात
का खंडन कर रहा हूं; क्योंकि सही और गलत किसी प्रयोजन से होते हैं। अगर मैं कहूं कि यह रास्ता गलत है, और साथ ही यह भी कहूं कि यह रास्ता कहीं पहुंचता नहीं है, तो मैं पागल हूं। क्योंकि अगर रास्ता कहीं भी नहीं पहुंचता है, तो रास्ता गलत और सही नहीं हो सकता। क्योंकि रास्ते का गलत और सही होना इस पर निर्भर होता है कि मंजिल मिलेगी या नहीं मिलेगी। अगर मंजिल है ही नहीं, तो सभी रास्ते समान हैं; न वे गलत हैं, न वे सही हैं। क्योंकि कोई रास्ता कहीं भी पहुंचता नहीं है, इसलिए जांचिएगा कैसे, मापिएगा कैसे कि कौन सही है, कौन गलत है?
जो कहते हैं कि जगत अराजक है, वे भी सिद्ध करना चाहते हैं कि हम जो कह रहे हैं, वह सत्य है। अराजकता में कोई सत्य और असत्य नहीं हो सकता। सत्य और असत्य व्यवस्था की बातें हैं। इसलिए मैं कहता हूं, जिन्होंने ऐसा कहा है, वे भी व्यवस्था को स्वीकार करते हैं। उनकी चेतना भी गहन रूप में व्यवस्था को अस्वीकार नहीं कर पाती। अव्यवस्था से वे भी राजी नहीं हो पाते हैं।
अब तक ऐसा कोई भी जगत में व्यक्ति नहीं हुआ है, जो अव्यवस्था के लिए अंतर्मन से राजी हो। अगर आप ऐसे व्यक्ति को भी जाकर छुरा उसके हाथ में भोंक दें, तो वह भी पूछेगा, क्यों? तुमने छुरा मुझे क्यों मार दिया है? लेकिन अगर जगत अराजक है, तो क्यों का प्रश्न अनुचित है। यहां घटनाएं घटती हैं, बिना किसी कारण के। तो मैं कह सकता हूं कि यह संयोग है कि मेरे हाथ में छुरा है, तुम्हारा हाथ करीब है। और यह संयोग है कि मेरा हाथ तुम्हारे हाथ में छुरे को भोंकता है। इसमें कोई कारण नहीं है। लेकिन अराजक आदमी भी पूछेगा कि छुरा मुझे क्यों मारा गया है? वह भी जानना चाहता है कारण।
मैं आप से यह कह रहा हूं कि मनुष्य की चेतना ही ऐसी है कि वह व्यवस्था
को अस्वीकार नहीं कर सकती है। विचार में भी अस्वीकार करे, तो भी अव्यवस्था के लिए भी व्यवस्था निर्मित करेगी। अगर कोई आदमी यह भी कहे कि जगत नहीं है, तो इसे भी वह सिद्ध करने में लग जाता है। अगर वह यह कहे कि यह सब झूठ है, जो है, तो भी वह इसे सिद्ध और सत्य करने में लग जाता है। इससे एक भीतरी बात की खबर मिलती है।
पश्चिम में एक विचारक हुआ, बर्कले। बर्कले कहता है कि जगत एक स्वप्न है, एक विचार; बाहर कोई जगत नहीं है। लेकिन वह भी लोगों को समझाने जाता है कि मैं जो कहता हूं, वह ठीक है।
वह किन्हें समझाने जाता है? अपने ही विचारों को? अपने ही सपनों को? अपने ही सपने के पात्रों को? और जब कोई उसको मानकर राजी हो जाता है और ताली बजाता है, तो वह प्रसन्न होता है। अपने ही सपनों के पात्रों से सुनी गई तालियों से प्रसन्न होता है? और जब कोई राजी नहीं होता है और इनकार करता है, तो वह दुखी और पीड़ित होता है।
वह कहता भला हो कि जगत मेरा विचार है, लेकिन उसकी चेतना स्वयं भी इसे नहीं मान पाती है।
आप क्या कहते हैं, यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है; आपका अंतर्चित्त क्या स्वीकार करता है, वह महत्वपूर्ण है।
तो एक द्वार आपको कहूं, और वह पहला द्वार यह है कि मनुष्य की चेतना स्वभावतः व्यवस्था को स्वीकार करती है। इस जगत में अगर कोई व्यवस्था है, तो ही हम तृप्त हो सकते हैं। अगर इस जगत में कोई व्यवस्था नहीं है, तो हम तृप्त नहीं हो सकते हैं; क्योंकि हमारे प्राणों की गहराई से व्यवस्था की मांग है। इस मांग का ही परिणाम ईश्वर की धारणा है।
ईश्वर की धारणा का अर्थ है कि जगत एक व्यवस्था है, एक कास्मास है, केआस नहीं। यहां जो भी हो रहा है, वह प्रयोजनपूर्वक है। और यहां जो भी हो रहा है, उसका कोई गंतव्य है। और यहां जो भी हो रहा है, उसके पीछे कोई सुनियोजित हाथ

हैं। यहां जो भी दिखाई पड़ रहा है, वह कितना ही सांयोगिक हो, सांयोगिक नहीं है, कार्य और कारण से आबद्ध है।
ईश्वर की धारणा का जो मौलिक आधार है, वह पहला आधार यही है कि मनुष्य कुछ भी करे, विचार कुछ भी करे, विचार व्यवस्था के पार नहीं जा सकता है।
विचार स्वयं ही व्यवस्था का आधार है। विचार व्यवस्था की मांग है। सोचने का अर्थ ही है कि प्रयोजन है, अन्यथा सोचने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। समझाने का अर्थ है, क्योंकि कोई प्रयोजन है।
और हम जहां भी देखें, वहां जीवन में व्यवस्था के चरण सब जगह दिखाई पड़ते हैं। छोटे-से परमाणु से लेकर आकाश में घूमते हुए विराट महाकाय ताराओं की तरफ हम आंख उठाएं, चाहे क्षुद्रतम में और चाहे विराटतम में, एक गहन, निबिड़ योजना परिलक्षित होती है।
एडिंगटन ने अपने मरने के पहले लिखा है--और एडिंगटन तो विशुद्ध वैज्ञानिक चिंतक था--उसने लिखा है कि जब मैंने अपना विचार शुरू किया जगत के बाबत, तो मैं सोचता था, जगत वस्तुओं का एक समूह है। लेकिन जीवनभर की निरंतर खोज के बाद अब मुझे ऐसा लगता है, जगत वस्तुओं का समूह नहीं, विचार की एक व्यवस्था है। एडिंगटन ने कहा है कि नाउ दि वर्ल्ड लुक्स मोर लाइक ए थाट दैन लाइक ए थिंग।
वस्तु में और विचार में क्या फर्क है? वस्तु अलग-अलग टुकड़ों में भी हो सकती है, लेकिन विचार सदा एक संयोजना में होता है। विचार का एक पैटर्न है। विचार के भी भीतर एक आर्गेनिक यूनिटी, एक सावयव एकता है। इसे थोड़ा ख्याल में ले लें, तो इस सूत्र को समझना आसान हो जाए।
यह मेरा हाथ है। ये मेरे हाथ की पांच अंगुलियां हैं। यह मेरा पैर है।
यह मेरा सिर है। यह मेरा शरीर है। अगर ये सब वस्तुएं हैं, तो इनके भीतर कोई ऐक्य नहीं हो सकता। लेकिन मेरे मन में विचार उठता है, और मेरा हाथ उस विचार को पूरा करने के लिए उठ जाता है। मेरे मन में कामना उठती है, और मेरे पैर चलने को तत्पर हो जाते हैं। मेरी आंख देखती है, और मेरे कान, जो मेरी आंख देखती है, उसे सुनने को उत्सुक हो जाते हैं। मेरे पैर और मेरी आंख में, और मेरे कान में, और मेरे हाथ में, और मेरे मन में एक अंतर्व्यवस्था है, एक इनर सिस्टम है। ये सिर्फ जोड़ नहीं हैं। ये सिर्फ जोड़ नहीं हैं कि हाथ मेरे पैर से जुड़ा है, पैर मेरे शरीर से जुड़े हैं। ये सिर्फ जोड़ नहीं हैं। इन सबके भीतर बहती हुई कोई एकता है। उस एकता का नाम आर्गेनिक यूनिटी है।
ईश्वर की धारणा इस बात की घोषणा है कि यह जगत भी वस्तुओं का समूह नहीं,
एक अंतर-ऐक्य है। एक इनर यूनिटी इस सारे जगत के भीतर दौड़ रही है। अगर वृक्ष उग रहा है और आकाश में तारे चल रहे हैं, वर्षा हो रही है और नदियां सागर की तरफ भाग रही हैं, सूरज सुबह उग रहा है और चांद रात को आकाश में यात्रा करता है--यह सब का सब अलग-अलग घटनाओं का जोड़ नहीं है। इन सारी घटनाओं के बीच जैसे मेरे शरीर में मेरी एकता व्याप्त है, इन सबके बीच कोई अंतर्व्यवस्था व्याप्त है। उस अंतर्व्यवस्था का नाम ईश्वर है।
ईश्वर व्यक्ति नहीं है, ईश्वर अंतर्व्यवस्था है। समस्त व्यक्तियों
के बीच जो अंतर्व्यवस्था है, उसका नाम ईश्वर है, समस्त वस्तुओं के बीच जो जोड़ने वाली कड़ी है।
अब यह मजे की बात है कि अगर मेरे हाथ को काट दें, तो मेरा हाथ कटकर गिर जाएगा, मेरा शरीर अलग हो जाएगा, लेकिन दोनों के बीच की जोड़ने वाली कड़ी दिखाई नहीं पड़ेगी। पकड़ में भी नहीं आएगी। अब तक तो नहीं आ सकी है। और जितना गहरे जो जानते हैं, वे कहते हैं, कभी पकड़ में नहीं आ सकेगी। वह अंतर्व्यवस्था अदृश्य है।
यह तो निश्चित है कि मेरे हाथ और मेरे बीच कोई अंतर-कड़ी है, तभी मेरे
मन में विचार कंपता है और मेरा हाथ सक्रिय हो जाता है। विचार और मेरे हाथ में भी कोई जोड़ है। लेकिन हाथ को काटते हैं, तो हाथ में और मेरे शरीर में जो जोड़ है, वह तो दिखाई पड़ता है--नसें दिखाई पड़ती हैं, मसल्स दिखाई पड़ते हैं, स्नायु, हड्डियां दिखाई पड़ती हैं--लेकिन मेरे हाथ और मेरे विचार में जो जोड़ है, वह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता! वह जोड़ है जरूर। क्योंकि इधर मैं सोचता हूं, उधर मेरा हाथ सक्रिय हो जाता है।

जब कभी वह जोड़ खो जाता है, तो हम कहते हैं, आदमी को लकवा लग गया, पक्षाघात हो गया। अब वह सोचता है कि मेरा हाथ उठे और हाथ नहीं उठता। तो वह आदमी कहता है, मैं पैरालाइज्ड हो गया।
लेकिन इस जगत में जो लोग व्यवस्था को नहीं देखते, वे एक पैरालाइज्ड जगत देख रहे हैं; एक पक्षाघात, एक लकवे से लगा हुआ जगत है उनका। इसलिए नास्तिक जिस जगत को देखता है, वह पैरालाइज्ड है। उसमें अंतर्व्यवस्था उसे दिखाई नहीं पड़ रही है।
और ध्यान रहे, जिसका जगत पैरालाइज्ड है, वह खुद भी उसके साथ पैरालाइज्ड हो जाएगा। जिसका जगत एक मुर्दा जोड़ है, वह आदमी भी अपने भीतर एक मुर्दा जोड़ हो जाएगा। उसकी आत्मा बिखर जाएगी। जिसे इस जगत में आत्मा नहीं दिखाई पड़ती, उसे अपने भीतर भी आत्मा दिखाई नहीं पड़ेगी; क्योंकि तब वह भी एक वस्तुओं का जोड़ है। जैसा कि चार्वाक ने कहा है कि आदमी केवल वस्तुओं का जोड़ है, उसके भीतर आत्मा जैसी कोई भी वस्तु नहीं है।
अगर हम आदमी को काटें, तो यह बात सच है। अगर आदमी को तोड़ें, तो यह बात
सच है। हमें कहीं भी वह अंतर्व्यवस्था दिखाई नहीं पड़ेगी। वह अंतर्व्यवस्था अदृश्य है और इसलिए परमात्मा अदृश्य है।
पहली बात, परमात्मा से प्रयोजन है, इस सारे जगत के भीतर एक जीवंत जोड़ है। यहां एक पत्ता भी नहीं हिलता, जब तक कि पूरे जगत का उसे साथ न हो। यहां अगर मैं एक शब्द बोलता हूं, तो यह शब्द मैं ही नहीं बोलता, बोल नहीं सकता हूं; अलग, अकेला, अलग-थलग जगत से मैं नहीं हूं। एक शब्द भी यहां बोला जाएगा, बोला जा सकता है तभी, जब पूरे जगत का उसे सहयोग हो, जब पूरी अंतर्व्यवस्था साथ हो।
आपकी आंख खुलेगी भी नहीं, अगर सूरज ढल जाए, समाप्त हो जाए। आपकी सांस चलेगी भी नहीं, अगर सूरज मर जाए। दस करोड़ मील दूर जो सूरज है, उसके साथ आपकी सांस जुड़ी है। जिस दिन सूरज समाप्त हो जाएगा, उस दिन हम समाप्त हो जाएंगे और हमें पता भी नहीं चलेगा कि सूरज समाप्त हो गया। क्योंकि पता चलने के लिए भी हम बचेंगे नहीं। हमें कभी पता नहीं चलेगा कि सूरज समाप्त हो गया। क्योंकि सूरज समाप्त हुआ, उसके साथ तत्क्षण हम समाप्त हो जाएंगे।
सारा जगत एक अंतर-संयोग है, अंतर-संबंध है। कहें कि जगत एक परिवार है।
ईश्वर की मान्यता का अर्थ है, जगत को एक परिवार के रूप में देखना।
ईश्वर को इनकार करने का अर्थ है, प्रत्येक व्यक्ति एटामिक हो गया, आणविक हो गया। अब जगत एक परिवार नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं है; और कहीं कोई संबंध नहीं है।
ध्यान रहे, मनुष्य की चेतना इसे स्वीकार नहीं करती है। परम नास्तिक
भी अपने जीवन में व्यवस्था को खोजता है। और परम नास्तिक भी व्यवस्था की मांग करता है।
मैं एक नास्तिक को जानता हूं। मेरे पड़ोसी थे। विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। दर्शनशास्त्र के ही प्रोफेसर हैं। अक्सर मेरे पास आते थे। कहते थे, जगत में कोई व्यवस्था नहीं है। कहते थे, जगत सिर्फ परमाणुओं का जोड़ है। इसके भीतर कोई अंतःस्यूत, कोई धागा नहीं है। जैसे कि माला में मनके डले होते हैं और भीतर एक अनस्यूत धागा उनको जोड़े होता है, ऐसा कोई धागा इस जगत में नहीं है; क्योंकि उसी धागे का नाम ईश्वर है। मनके ही मनके हैं, कहीं कोई जोड़ नहीं है। और सब चीजें सांयोगिक हैं।
वे कहते थे कि जैसे हम एक टाइपराइटर पर एक बंदर को बिठा दें और वह ठोंकता रहे टाइपराइटर को, अनंतकाल तक ठोंकता रहे, तो गीता भी निर्मित हो सकती है। क्योंकि एक संयोग ही है; गीता भी शब्दों का एक संयोग है। अगर एक बंदर अनंतकाल तक--हम सिर्फ कल्पना कर लें--एक बंदर अनंतकाल तक टाइपराइटर को बैठकर ठोंकता रहे बिना कुछ जाने, तो भी अनंत-अनंत संयोगों में एक संयोग गीता भी होगी। क्योंकि आखिर गीता है क्या? शब्दों का एक संयोग है। एक दफे में गीता निर्मित नहीं होगी, हजार दफे में नहीं होगी, करोड़ दफे में नहीं होगी। हम सोचें अनंतकाल तक वह बंदर और टाइपराइटर दोनों लगे हुए हैं, तो अनंत-अनंत संयोगों में एक संयोग गीता भी होगी।

यह गाणितिक बात है। यह प्रोबेबिलिटी है। इसमें कोई शक नहीं है। यह हो सकता है। लेकिन फिर भी गीता को पढ़कर ऐसा मालूम नहीं पड़ता कि यह एक संयोग है। फिर भी ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि किसी आदमी ने अचानक इन शब्दों को जोड़ दिया है। इन शब्दों के भीतर अनस्यूत धागा मालूम पड़ता है। लेकिन वे मानने को राजी नहीं थे। मैंने उन्हें न मालूम कितने-कितने रूपों से समझाया होगा, लेकिन वे मानने को राजी ही नहीं थे।
जो मानने को राजी नहीं ही है, वह बहरा हो जाता है, वह सुनना बंद कर देता है। तब फिर मेरे पास एक ही उपाय था, और वह उपाय मैंने उनसे किया। मैं उनसे असंगत बातें करने लगा। वे पूछते आकाश की, मैं जमीन का जवाब देता। वे ईश्वर की चर्चा उठाते, मैं मशीन की बात करता। वे किसी के मरने की खबर देते, और मैं किसी के विवाह की चर्चा छेड़ता। वे मुझसे कहने लगे, आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? मैं कुछ कहता हूं, आप कुछ कहते हैं! इन दोनों में कोई संबंध नहीं है!
मैंने उनसे कहा, आपका मन भी संबंध की तलाश करता है? आप भी एक व्यवस्था
की खोज करते हैं? आपको व्यवस्था का ख्याल छोड़ देना चाहिए। जब कोई व्यवस्था ही नहीं है, तो आप मरने की खबर दें, मैं विवाह की चर्चा करूं, इससे अड़चन क्या है? लेकिन आपकी भी अपेक्षा है कि आपने मरने की खबर दी, तो मैं मरने की खबर के संबंध में ही बात करूं। इतनी व्यवस्था की मांग आप भी करते हैं! हमारी चेतना व्यवस्था की मांग किए ही चली जाती है। अगर कल रास्ते पर
वे मुझे मिले थे और मैंने नमस्कार किया था और आज नहीं किया, तो उनका मन दुखी होता है। मैंने उनसे पूछा, दुखी होने की क्या जरूरत है? कल यह संयोग था कि नमस्कार हुई। आज यह संयोग है कि नमस्कार नहीं होती। दोनों के बीच कोई संबंध कहां है? तब उनका बहरापन टूटना शुरू हुआ। और उन्हें ख्याल आना शुरू हुआ कि मांग तो मेरी भी व्यवस्था की ही है।
चेतना व्यवस्था को मांगे ही चली जाती है। व्यवस्था चेतना की गहरी प्यास है। ईश्वर उसका अंतिम उत्तर है। ईश्वर का अर्थ है, हम जगत को एक व्यवस्था मानते हैं। यहां कुछ भी अकारण नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को ही प्राप्त हो जाते हैं, मेरी प्रकृति में लय हो जाते हैं। और कल्प के प्रारंभ में उन्हें मैं पुनः निर्मित करता हूं।
इसे हम दूसरे दरवाजे से भी चलें।
ऐसा अगर हो, मनुष्यता नष्ट हो जाए। कल कोई युद्ध हो--और अगर राजनीतिज्ञों की कृपा रही, तो होगा ही--मनुष्यता कल नष्ट हो जाए, आदमी समाप्त हो जाए, और फिर किसी अनजाने ग्रह से मनुष्यता के इस मरघट पर कोई यात्री उतरें। अगर उन्हें माइकलएंजलो के हाथ की बनी हुई कोई तस्वीर मिल जाए, तो वे क्या करें?
दो ही उपाय हैं। या तो वे सोचें कि किसी ने इसे बनाया होगा। क्योंकि इतने अनुपात में, इतने सुसंयोजन में, इतनी लयबद्ध, रंगों के साथ इतनी व्यवस्था, रूप का अवतरण, रंगों में निराकार की पकड़--यह आकस्मिक नहीं हो सकती, को-इंसिडेंटल नहीं हो सकती। ऐसा नहीं है कि रंग पड़ गए होंगे केनवस पर और यह चित्र बन गया होगा।
एक तो रास्ता यह है कि वे इस चित्र की व्यवस्था को देखकर सोचें कि किसी ने इसे निर्मित किया होगा। और दूसरा रास्ता यह है कि वे सोचें कि यह बन गई होगी।
लेकिन अगर एक चित्र हाथ में लगे, तो संयोग की बात भी हो सकती है। लेकिन फिर उन्हें मूर्तियां मिलें, खजुराहो के मंदिर मिलें, कि कोणार्क की मूर्तियां मिलें। और वे जमीन के कोने-कोने पर घूमते रहें और उन्हें अनेक यंत्र मिलें, और अनेक व्यवस्थाएं मिलें, तब भी अगर वे यही कहे चले जाएं कि यह संयोग की बात है! यह संयोग की बात है कि यह जो रेडियो का यंत्र पड़ा है, संयोग की बात है कि अनंत-अनंत काल में अनेक-अनेक चीजों के मिलने से निर्मित हो गया होगा।
लेकिन अगर एक रेडियो हो, तब भी यह संभव हो सकता है। जमीन पर बहुत रेडियो मिलें, रेल के इंजन मिलें, उजड़े हुए कारखाने मिलें, जगह-जगह

व्यवस्था के लक्षण मिलें, जगह-जगह बनाने वाले की खबर मिले, तब भी अगर वे यात्री जिद्द किए जाएं, तो वह जिद्द उनकी नासमझी होगी।
जमीन के इंच-इंच पर और प्रकृति के इंच-इंच पर और विश्व के इंच-इंच पर बनाने वाले की छाप है। यहां एक भी चीज निष्प्रयोजन नहीं मालूम पड़ती। और प्रत्येक चीज के भीतर एक गहन अनुपात है। अगर हम इनकार करे चले जाएं, तो हम अपने ही हाथ अपने को अंधा बनाते हैं।
देखें, चारों तरफ आंखें खोलकर देखें। बीज को बोते हैं जमीन में। बीज
को तोड़कर देखें, तो वृक्ष का कोई नक्शा दिखाई नहीं पड़ता, कोई ब्लू-प्रिंट दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन अब वैज्ञानिक मानते हैं कि बीज में ब्लू-प्रिंट है, नहीं तो यह वृक्ष निकलेगा कैसे?
एक छोटे-से बीज में तोड़कर देखने पर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन इस बीज को जमीन में बो देते हैं और वृक्ष अंकुरित होता है; हर कोई वृक्ष नहीं, एक विशिष्ट वृक्ष अंकुरित होता है। इस वृक्ष की शाखाएं हर वृक्ष जैसी नहीं होतीं। इसकी अपने ही ढंग की शाखाएं होंगी, अपने ही ढंग के पत्ते होंगे, अपने ही ढंग के फूल खिलेंगे। और आश्चर्य की बात यह है कि जब यह वृक्ष संपूर्ण होगा, तो जिस बीज को हमने बोया था, वही बीज करोड़ों होकर वापस निकल आएगा। हर कोई बीज नहीं, वही बीज करोड़ों होकर फिर प्रकट हो जाएगा!
एक बीज के भीतर भी ब्लू-प्रिंट है। एक बीज के भीतर भी व्यवस्था है। एक बीज के भीतर भी भविष्य की पूरी रूप-रेखा है।
एक मां के पेट में बच्चे ने गर्भ लिया है। वह जो पहला अणु है बच्चे का, उसके भीतर पूरा का पूरा ब्लू-प्रिंट है। उस व्यक्ति का पूरा का पूरा जीवन विकसित होगा; उस सब की कहानी छिपी है; उस सब के मूल निर्देश सूत्र छिपे हैं, सारे सुझाव छिपे हैं। और शरीर उन सारे सुझावों को मानकर चलेगा। उस व्यक्ति की आंख का रंग क्या होगा, यह उस छोटे-से अणु में छिपा है, जो खाली आंख से देखा नहीं जा सकता। उस व्यक्ति की कितनी बुद्धि होगी, कितनी मेधा होगी, कितना आई क्यू होगा, वह उस छोटे-से अणु में छिपा है। जिसको बुद्धि लाख उपाय करे, तो भी पता नहीं लगा पा सकती। वह व्यक्ति कितनी उम्र का हो सकेगा, कितनी उम्र का होकर मरेगा, उस व्यक्ति को कौन-सी खास बीमारियां हो सकती हैं, वह सब उस छोटे-से बीज में छिपा है।
अगर इतने छोटे-से बीज में यह वृक्ष का सारा ब्लू-प्रिंट छिपा होता है; अगर छोटे-से मनुष्य के अणु में, सेल में, उसके पूरे जीवन की कथा छिपी होती है, तो क्या यह सोचना गलत है कि इस पूरे जगत का भी कोई ब्लू-प्रिंट होना चाहिए? क्या यह सोचना गलत है कि इस सारे जगत की भी मूल व्यवस्था किसी अणु में छिपी हो? उस अणु का नाम ही परमात्मा है। यह जो इतना बड़ा विराट जगत है, इस सारे जगत के फैलाव की भी मूल व्यवस्था कहीं होनी चाहिए।
कृष्ण कहते हैं, मैं ही इसे सृजन करता और मैं ही फिर इसे अपने में लीन
कर लेता हूं।
इसे समझें। एक बीज से वृक्ष निर्मित होता है और फिर वृक्ष पुनः बीजों में लीन हो जाता है। प्रथम और अंतिम क्षण सदा एक होते हैं। जहां से यात्रा शुरू होती है, वहीं यात्रा पूर्ण हो जाती है। बीज से शुरू होती है यात्रा, बीज पर समाप्त हो जाती है।
इस सारे विराट अस्तित्व को अगर हम एक इकाई मान लें, तो इस इकाई का भी मूल कहीं छिपा होना चाहिए। लेकिन हम बीज को तोड़ते हैं, तो वृक्ष नहीं मिलता। और अगर हम आदमी के अणु को तोड़ें, उसके सेल को, कोष्ठ को तोड़ें, तो भी उसमें आदमी नहीं मिलता। तो एक बात साफ होती है कि बीज में वृक्ष छिपा है, लेकिन किसी अदृश्य ढंग से; किसी ऐसे ढंग से कि जब तक प्रकट न हो जाए, तब तक उसका पता ही नहीं चलता।
ईश्वर का भी पता हमें तभी चलना शुरू होता है, जब किन्हीं अर्थों में
वह हमारे लिए प्रकट होने लगता है। तब तक पता नहीं चलता। इसलिए सैद्धांतिक रूप से अगर कोई मान भी ले कि जगत में ईश्वर है, तब भी उसका कोई प्रयोजन नहीं, जब तक कि वह प्रकट न होने लगे; वह अदृश्य हमें दिखाई न पड़ने लगे। उस बीज में से वृक्ष निकलने न लगे, फूल न खिलने लगें, तब तक हमें उसका पूरा एहसास, उसकी पूरी प्रतीति नहीं होती।

लेकिन यह धारणा उपयोगी है; क्योंकि यह धारणा हो, तो उस प्रतीति की तरफ चलने में आसानी हो जाती है। और हम उसी तरफ यात्रा कर पाते हैं, जिस दिशा को हम अपने संकल्प में उन्मुक्त कर लेते हैं। जिस दिशा को हम बंद कर देते हैं, उस तरफ यात्रा कठिन हो जाती है।
पश्चिम में एक विचारक अभी था, जिसका पश्चिम पर बहुत प्रभाव पड़ा, एडमंड लूसेल्ड। उसका कहना है, मनुष्य का पूरा जीवन एक इनटेंशनलिटी है। मनुष्य का पूरा जीवन एक गहन तीव्र इच्छा है। तो जिस दिशा में मनुष्य अपनी गहन तीव्र इच्छा को लगा देता है, वही दिशा खुल जाती है; और जिस दिशा से अपनी इच्छा को खींच लेता है, वही बंद हो जाती है।
तो अगर एक चित्रकार चित्रकार होना चाहता है, तो अपने समस्त प्राणों
की ऊर्जा को उस दिशा में संलग्न कर देता है। एक मूर्तिकार मूर्तिकार होना चाहता है, एक वैज्ञानिक वैज्ञानिक होना चाहता है। लेकिन अगर आप कुछ भी नहीं होना चाहते, तो आप ध्यान रखिए, आप कुछ भी नहीं हो पाएंगे, क्योंकि आप किसी भी यात्रा पर अपनी चेतना को संगृहीत करके गतिमान नहीं कर पाते। आपके भीतर इंनटेंशनलिटी, आपके भीतर संकल्प का आविर्भाव ही नहीं हो पाता। तो आप एक लोच-पोच व्यक्ति होते हैं, जिसके भीतर कोई केंद्र नहीं होता। बिना रीढ़ की, जैसे कोई शरीर हो बिना रीढ़ की हड्डी का, वैसी आपकी आत्मा होती है बिना रीढ़ की।
यह जगत भी अपने समस्त रूपों में एक गहन इच्छा की सूचना देता है। यहां कोई भी चीज अकारण होती मालूम नहीं हो रही है। यहां प्रत्येक चीज विकासमान होती मालूम पड़ती है।
डार्विन ने जब पहली बार विकास का, इवोल्यूशन का सिद्धांत जगत को दिया,
तो पश्चिम में विशेषकर ईसाइयत ने भारी विरोध किया। क्योंकि ईसाइयत का ख्याल था कि विकास का सिद्धांत धर्म के खिलाफ है। लेकिन हिंदू चिंतन सदा से विकास के सिद्धांत को धर्म का अंग मानता रहा है।
असल में विकास के कारण ही पता चलता है कि जगत में परमात्मा है। विकास
के कारण ही पता चलता है कि जगत किसी गहन इच्छा से प्रभावित होकर गतिमान हो रहा है। जगत ठहरा हुआ नहीं है, स्टैटिक नहीं है, डायनैमिक है। यहां प्रत्येक चीज बढ़ रही है, और प्रत्येक चीज ऊपर उठ रही है। चीजें ठहरी हुई नहीं हैं, चीजों के तल रूपांतरित हो रहे हैं। और यह जो विकास है, इररिवर्सिबल है, यह पीछे गिर नहीं जाता। एक बच्चे को हम दुबारा बच्चा कभी नहीं बना सकते। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि विकास सुनिश्चित रूप से उसकी आत्मा का हिस्सा हो जाता है।
आप जो भी जान लेते हैं, उसे फिर भुलाया नहीं जा सकता। आपने जो भी जान लिया, उसे फिर मिटाया नहीं जा सकता। क्योंकि वह आपकी आत्मा का सुनिश्चित हिस्सा हो गया। वह आपकी आत्मा बन गई। इसलिए इस जगत में जो भी हम हो जाते हैं, उससे नीचे नहीं गिर सकते।
अगर यह संयोग मात्र है, तो ठीक है। एक बूढ़ा किसी दिन सुबह उठकर पाए कि बच्चा हो गया! एक ज्ञानी सुबह उठे और पाए कि सब अंधकार हो गया; अज्ञान ही अज्ञान छा गया! एक मूर्तिकार सुबह उठकर पाए कि उसकी छेनी-हथौड़ी को हाथ पकड़ नहीं रहे, हाथ छूट गए हैं! उसे कुछ ख्याल ही नहीं आता कि कल वह क्या था! नहीं, हमारा आज हमारे समस्त कल और अतीत के ज्ञान और अनुभव को अपने में समा लेता है, निविष्ट कर लेता है। न केवल अतीत को निविष्ट कर लेता है, बल्कि भविष्य की तरफ पंखों को भी फैला देता है।
जगत एक सुनिश्चित विकास है, एक कांशस इवोल्यूशन। अगर जगत विकास है, तो उसका अर्थ है कि वह कहीं पहुंचना चाह रहा है। विकास का अर्थ होता है, कहीं पहुंचना। जीवन कहीं पहुंचना चाह रहा है। जीवन किसी यात्रा पर है। कोई गंतव्य है, कोई मंजिल है, जिसकी तलाश है। हम यूं ही नहीं भटक रहे हैं। हम कहीं जा रहे हैं। जाने-अनजाने; पहचानते हों, न पहचानते हों; हमारा प्रत्येक कृत्य हमें विकसित करने की दिशा में संलग्न है।
और ध्यान रहे, हमारे जीवन में जब भी आनंद के क्षण होते हैं, तो वे वे ही क्षण होते हैं, जब हम कोई विकास का कदम लेते हैं। जब भी हमारी चेतना किसी नए चरण को उठाती है, तभी आनंद से भर जाती है। और जब भी हमारी चेतना ठहर जाती

है, अवरुद्ध हो जाती है, उसकी गति खो जाती है और कहीं चलने को मार्ग नहीं मिलता, तभी दुख, तभी पीड़ा, तभी परतंत्रता, तभी बंधन का अनुभव होता है। मुक्ति का अनुभव होता है विकास के चरण में।
जब बच्चा पहली दफा जमीन पर चलना शुरू करता है, तब आपने उसकी प्रफुल्लता देखी है? जब वह पहली दफा पैर रखता है जमीन पर, और पहली दफा डुलता हुआ, कंपता हुआ, घबड़ाया हुआ, भयभीत, झिझकता हुआ, पहला कदम उठाता है, और जब पाता है कि कदम सम्हल गया और जमीन पर वह खड़े होने में समर्थ है, तो आपको पता होना चाहिए, विकास का एक बहुत बड़ा कदम उठ गया है। यह सिर्फ पैर चलना ही नहीं है, आत्मा को एक नया भरोसा मिला, आत्मा को एक नई श्रद्धा मिली; आत्मा ने पहली दफा अपनी शक्ति को पहचाना। अब यह बच्चा दुबारा वही नहीं हो सकेगा, जो यह घुटने के बल चलकर होता था। अब यह दुबारा वही नहीं हो सकेगा। अब यह सारी दुनिया भी इसको घुटने के बल झुकाने में असमर्थ हो जाएगी। एक बड़ी ऊर्जा का जन्म हो गया।
इसलिए जब कोई हार जाता है, तो हम कहते हैं, उसने घुटने टेक दिए। घुटने टेकना हारने का प्रतीक हो जाता है। लेकिन कल तक यह बच्चा घुटने टेककर चल रहा था। इसे पता ही नहीं था कि मैं क्या हो सकता हूं, मैं भी खड़ा हो सकता हूं, अपने ही बल मैं भी चल सकता हूं। यह दुनिया की पूरी की पूरी ताकत, सारी दुनिया की शक्ति भी चेष्टा करे, तो मुझे गिरा नहीं पाएगी।
इस बच्चे के भीतर इनटेंशनलिटी, एक तीव्र इच्छा का जन्म हो गया। जिस दिन यह बच्चा पहली बार बोलता है और पहला शब्द निकलता है इसका--तुतलाता हुआ, डांवाडोल, डरा हुआ--उस दिन इसके भीतर एक नया कदम हो गया। जिस दिन बच्चा पहली बार बोलता है, उसकी प्रफुल्लता का अंत नहीं है। अपने को अभिव्यक्त करने की आत्मा ने सामर्थ्य जुटा ली।
इसलिए बच्चे अक्सर एक ही शब्द को--जब वे बोलना शुरू करते हैं--तो दिनभर दोहराते हैं। हम समझते हैं कि सिर खा रहे हैं, परेशान कर रहे हैं, वे केवल अभ्यास कर रहे हैं अपनी स्वतंत्रता का। वह जो उन्हें अभिव्यक्ति मिली है, वे बार-बार उसको छूकर देख रहे हैं कि हां, मैं बोल सकता हूं! अब मैं वही नहीं हूं--मौन, बंद। अब मेरी आत्मा मुझसे बाहर जा सकती है। नाउ कम्युनिकेशन इ.ज पासिबल। अब मैं दूसरे आदमी से कुछ कह सकता हूं। अब मैं अपने में बंद कारागृह नहीं हूं। मेरे द्वार खुल गए!
वह बच्चा सिर्फ अभ्यास कर रहा है। अभ्यास ही नहीं कर रहा है, वह बार-बार मजा ले रहा है। वह जिस शब्द को बोल सकता है, उसे बोलकर वह बार-बार मजा ले रहा है। वह कह रहा है कि ठीक! अब यह बच्चा दुबारा वही नहीं हो सकता, जो यह एक शब्द बोलने के पहले था। एक नई दुनिया में यात्रा शुरू हो गई। विकास का एक चरण हुआ।
न केवल हम ठहरे हुए ही नहीं हैं, हम प्रतिपल विकासमान हैं। और एक-एक व्यक्ति ही नहीं, पूरा जगत विकासमान है। यह जो विकास की अनंत धारा है, अगर है, तो ही जगत में ईश्वर है। क्योंकि ईश्वर का अर्थ है--टेल्हार्ड डि चार्डिन ने एक शब्द का प्रयोग किया है, दि ओमेगा प्वाइंट। अंग्रेजी में अल्फा पहला शब्द है और ओमेगा अंतिम। अल्फा का अर्थ है, पहला; ओमेगा का अर्थ है, अंतिम। चार्डिन ने कहा है कि गॉड इ.ज दि ओमेगा प्वाइंट। ईश्वर जो है, वह अंतिम बिंदु है विकास का। विकास की अंतिम संभावना, विकास का जो अंतिम रूप है, विकास की जो हम कल्पना कर सकते हैं, वह ईश्वर है।
ईश्वर का अर्थ है कि यह जगत किसी एक सुनिश्चित बिंदु की तरफ यात्रा कर रहा है। कितना ही हम भटकते हों, और कितना ही मार्ग से च्युत हो जाते हों, और कितने ही गिरते हों, कितने ही खाई-खड्ड हों, लेकिन इन सारे खाई-खड्डों, इन सारी गिर जाने की संभावनाओं के बावजूद भी हम उठते हैं, बढ़ते हैं; और कोई दिशा है, जहां हम खिंचे चले जा रहे हैं। आदमी की चेतना विकसित होती चली जा रही है।
इसे हम ऐसा समझें। अस्तित्व, जो है हमारे चारों तरफ, उसका नाम है। अस्तित्व से भी महत्वपूर्ण और कीमती, और अस्तित्व में जो केंद्रीय है, वह है जीवन। लाइफ इ.ज सेंट्रल इन एक्झिस्टेंस। क्यों?

एक पत्थर पड़ा है, पत्थर कितना ही खूबसूरत हो; और पास में एक फूल खिल रहा है, और फूल कितना ही बदसूरत हो, तो भी फूल पत्थर से कीमती है। क्यों? फूल विकासमान है, फूल जीवंत है; पत्थर मुर्दा है। फूल बढ़ रहा है। पत्थर की कोई संभावना नहीं है, फूल की संभावना है। पत्थर कल भी पत्थर रहेगा; फूल आज कली है, कल खिलेगा। फूल विकासमान है, डायनैमिक है।
अस्तित्व का जो केंद्र है, वह जीवन है। कहें हम ऐसा कि अस्तित्व जीवन
के लिए है। एक्झिस्टेंस इ.ज फार लाइफ। अस्तित्व का अंत है जीवन। अस्तित्व का लक्ष्य है जीवन। लेकिन जीवन भी किसी के लिए है। जीवन में अगर हम खोजें कि क्या है केंद्रीय, तो हम पाएंगे, चिंतन, मनन, विचार, मन।
जैसे अस्तित्व का केंद्र है जीवन, ऐसे जीवन का केंद्र है विचार। इसलिए एक फूल खिल रहा है, कितना ही खूबसूरत हो; और एक मोर नाच रहा है, कितनी ही उसकी नृत्य की गरिमा हो; लेकिन एक छोटा-सा मूढ़ बच्चा भी उसके पास बैठा है, तो यह बच्चा ज्यादा मूल्यवान है। यह बच्चा कुरूप हो, तो भी फूल से ज्यादा मूल्यवान है। और यह बच्चा बिल्कुल मूढ़ हो, तो भी मोर से ज्यादा मूल्यवान है! क्यों? क्योंकि इस बच्चे के पास एक भीतरी संभावना है, जो फूल के पास और मोर के पास नहीं है। इस बच्चे के पास भीतर एक मन की संभावना है, कितनी ही छोटी, लेकिन एक और नई संभावना का द्वार खुल गया है। यह विकास के एक ऊपर के तल पर खड़ा हो गया है।
पत्थर पड़ा है। पत्थर से फूल एक कदम ऊपर है; विकासमान है। फूल से यह बच्चा एक कदम ऊपर है, क्योंकि यह विकासमान ही नहीं है, यह मनन की क्षमता से भी भरा है; यह सोच भी सकता है।
माइंड इ.ज सेंट्रल टु लाइफ। मन जीवन का केंद्र है। लेकिन मन कितना ही विकसित हो, एक आइंस्टीन बैठा हो, जिसके पास विकसित से विकसित मन है; जिसने जगत को कीमती सिद्धांत दिए, शक्ति दी, विज्ञान दिया। लेकिन पास में ही एक साधारण-सा मनुष्य बैठा हो ध्यान में लीन, तो आइंस्टीन से ज्यादा कीमती है। एक साधारण-सा व्यक्ति ध्यान में लीन बैठा हो, तो आइंस्टीन से ज्यादा कीमती है।
क्यों? क्योंकि उसने और एक नया चरण पूरा किया। अब वह मन में ही नहीं जीता; मन को भी शांत करने पर, विचार के भी खो जाने पर जो चेतना शेष रह जाती है, उसमें जीता है।
कांशसनेस इ.ज सेंट्रल टु माइंड, मन का भी केंद्र चैतन्य है। चैतन्य शिखर है। अस्तित्व आधार है, चैतन्य शिखर है। लेकिन चैतन्य का भी प्रयोजन क्या? एक आदमी बैठा है शांत; मन के विचार खो गए, अशांति खो गई, सब खो गया। शांत है बिल्कुल। चेतना से भरा है। लेकिन उसके पास ही एक दूसरा आदमी बैठा है, जो सिर्फ शांत ही नहीं है--मात्र शांति निषेध है, नकार है, अभाव है--जो केवल शांत ही नहीं है, जो परमात्मा के अनुभव से नाच उठा है।
गॉड इ.ज सेंट्रल टु कांशसनेस। अकेले शांत हो जाना निषेध है। मन तो खो गया, लेकिन नया कुछ अवतरित नहीं हुआ है। लेकिन चेतना जब परमात्म से भर जाए और चेतना जब दिव्यता से भर जाए, तो अब एक नया रंग, एक नया आनंद, एक एक्सटैसी, एक वर्षा अमृत की हो गई है। यह शिखरों में भी शिखर है।
ये पांच--अस्तित्व, जीवन, मन, ध्यान, परमात्मा। और समझ में आने की बात होगी, आसान हो जाएगा--अगर परमात्मा पीक है, शिखर है हमारे अनुभव का, हमारे अस्तित्व का, तो जो अंत में प्रकट होता है, वह पहले ही मौजूद होना चाहिए, अन्यथा प्रकट नहीं हो सकता। इसे थोड़ा समझना कठिन होगा।
लेकिन अंत में वही प्रकट होता है, जो प्रथम में मौजूद होता है, यह जीवन
के शाश्वत नियमों में एक है। अगर फूल में से अंत में बीज निकलते हैं, बीज से अंत में बीज निकलते हैं, वृक्ष से अंत में बीज निकलते हैं, तो वे बीज खबर देते हैं कि प्रथम में भी बीज ही रहा होगा।
आपने या माली ने एक पौधा लगाया। यह माली मर जाएगा। इसके बेटे इस वृक्ष में आए हुए बीजों को बटोरेंगे। फिर भी वे कह सकते हैं कि बीज चूंकि अंतिम है, इसलिए बीज प्रथम में भी रहे होंगे। क्योंकि अंतिम वही होता है, जो प्रथम में मौजूद था। अंत में वही तो प्रकट होता है, जो पहले से छिपा था।
अंत प्रथम की अभिव्यक्ति है।

तो जैसा चार्डिन ने शब्द उपयोग किया है, ओमेगा, अंत। बट ओमेगा इ.ज आल्सो दि अल्फा। वह जो पहला है, वही अंतिम है। तो अगर ईश्वर जीवन की परम शिखर अनुभूति है, तो निश्चित ही वह प्रथम भी मौजूद होगी। इसलिए कृष्ण के इस सूत्र को अब हम समझें, तो आसानी हो जाएगी।
कहते हैं, कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं।
वे यह कह रहे हैं कि कल्प के अंत में सभी कुछ अंततः ईश्वरीय हो जाता है; एवरीथिंग बिकम्स डिवाइन। अंत में--अंत का अर्थ है, यह परम जो स्थिति होगी विकास होते-होते, यात्रा चलते-चलते, जो आखिरी मंदिर आएगा, उसमें पत्थर भी, प्राण भी, सभी कुछ मुझ में लीन हो जाता है। क्योंकि मैं ही प्रथम और मैं ही अंतिम हूं। कल्प के अंत में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं, अर्थात मेरी प्रकृति में लय हो जाते हैं। मेरा जो स्वभाव है, मेरा जो होना है, मेरा जो अस्तित्व है, अंत में सभी कुछ उसमें लीन हो जाता है।
इसलिए कल्प को दो तरह से देखें। उसको सिर्फ अंत ही न समझें; उसे लक्ष्य भी समझें। वह दोहरे अर्थों में अंत है। वह समाप्ति भी है, वह पूर्णता भी। और हर पूर्णता समाप्ति होती है। हर समाप्ति पूर्णता नहीं होती, लेकिन हर पूर्णता समाप्ति होती है।
जब सारा जीवन विकसित होकर प्रभु के पास पहुंच जाता है, तो जगत तिरोहित
हो जाता है, सिर्फ परमात्म-चेतना शेष रह जाती है। यह एक कल्प का अंत है। कृष्ण कहते हैं, और कल्प के प्रारंभ में मैं उनको फिर रचता हूं; फिर उनका निर्माण करता हूं।
ध्यान रहे, यह निर्माण भी विकास की यात्रा है। यह निर्माण भी फिर पुराने जैसा नहीं होता। यह निर्माण भी और एक अगला कदम है। यह फिर से निर्माण, फिर एक अगला कदम है।
अपनी त्रिगुणमयी प्रकृति को अंगीकार करके, स्वभाव के वश से परतंत्र हुए इस संपूर्ण भूत समुदाय को बारंबार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूं। और जो भी रचना घटित होती है, कृष्ण कह रहे हैं, वह रचना प्रत्येक के कर्मानुसार घटित होती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जो करता है, वैसा ही हो जाता है। और प्रत्येक भूत समुदाय जो-जो करके गुजरता है, वही करना उसकी आत्मा बनती चली जाती है। और वही आत्मा उसके नए जन्म का रूप देती है। वही आत्मा, वही कर्मों का समुच्चित रूप उसके नए जन्म का ब्लू-प्रिंट है। न केवल व्यक्ति के लिए, वरन समस्त जगत के लिए भी।
यह समस्त जगत जब पुनः निर्मित होगा, तो इस जगत ने जो भी किया, जो भी पाया, जो भी अनुभव, जो भी यात्रा का फल, वह सब का सब पुनः बीज बन जाता है। जब एक वृक्ष में बीज लगते हैं, तो क्या होता है? वृक्ष का सारा अनुभव, वृक्ष की सारी यात्रा, वृक्ष का सारा जीवन बीज में पुनः प्रविष्ट हो जाता है। सार में, इसेंस में सब बीज में छिप जाता है। फिर बीज जमीन में पड़ता है। फिर वृक्ष का जन्म होता है।
इस संबंध में एक बात और समझ लेनी जरूरी है कि भारतीय, हिंदू चिंतन जगत
को एक वर्तुलाकार यात्रा मानता है। ईसाई चिंतन जगत की यात्रा को रेखाबद्ध यात्रा मानता है। ईसाई चिंतन का ख्याल है कि समय एक रेखा में चलता है; सीधा, बिल्कुल सीधा--लीनियर कंसेप्ट आफ टाइम--सीधा। लेकिन हिंदू चिंतन मानता है कि समय एक वर्तुल में चलता है, सर्कुलर। जैसे गाड़ी का चाक घूमता है, ऐसा समय घूमता है।
अब यह आश्चर्य की बात है कि हिंदू चिंतन की जो धारणा है, वही वैज्ञानिक है; क्योंकि इस जगत में कोई भी गति सीधी नहीं होती। तो समय की भी होने का कोई कारण नहीं है। इस जगत में समस्त गतियां सर्कुलर हैं। चाहे जमीन सूरज का चक्कर लगाती हो, और चाहे सूरज महासूर्यों का चक्कर लगाता हो; चाहे यह आकाश के इतने अनंत-अनंत तारे चक्कर लगाते हैं किसी धुरी का; चाहे एक परमाणु को हम तोड़ें, तो परमाणु के जो इलेक्ट्रान और न्यूट्रान हैं, वे चक्कर लगाते हैं। जहां भी गति है, गति सर्कुलर है।
और अब तक जगत में ऐसी कोई गति नहीं मिली है, जो लीनियर हो, जो रेखाबद्ध हो। समय की गति तो देखी नहीं जा सकती, समय को पकड़ा नहीं जा सकता। अगर समय की

गति पकड़कर हम नाप-जोख करते, तो तय हो जाता कि ईसाई जैसा सोचते हैं, वह सही है; या हिंदू जैसा सोचते हैं, वह सही है! लेकिन समय को तो पकड़ा नहीं जा सकता, समय को देखा नहीं जा सकता, फिर कैसे तय करें?
तो हिंदू का चिंतन गहरा मालूम पड़ता है। वह कहता है, तुम मुझे कोई एकाध
भी ऐसी गति बता दो, जो पकड़ी जा सकती हो, जो सीधी हो, रेखाबद्ध हो। जितनी गतियां मनुष्य को पता हैं, सभी वर्तुल हैं। तो हिंदू कहता है, फिर जो गति हमें दिखाई नहीं पड़ती, ज्यादा उचित है कि हम मानें, वह भी वर्तुल होगी। कोई कारण नहीं है उसके रेखाबद्ध होने का। हिंदू मानता है कि गति मात्र वर्तुलाकार है।
बच्चा है, यह वर्तुल का पहला बिंदु है। इसलिए अक्सर बूढ़े जो हैं, फिर बच्चों जैसे हो जाते हैं--जैसे। बच्चे नहीं हो जाते, बच्चों जैसे हो जाते हैं--निरीह, असहाय--पुनः। एक वर्तुल पूरा हुआ।
हिंदू कहता है कि बच्चे और बूढ़े के बीच सीधी रेखा नहीं है; वर्तुलाकार है। इसलिए पैंतीस साल के करीब आदमी वर्तुल के शिखर पर होता है, फिर गिरना शुरू हो जाता है। फिर वापस आने लगा। कब्र में पहुंचते-पहुंचते वह वहीं पहुंच जाता है, जहां अपने घर के झूले में था--वापस। और अगर हम गौर से देखें, तो दिखाई पड़ेगा कि बूढ़ा धीरे-धीरे, धीरे-धीरे बच्चे जैसा निरीह होता चला जाता है; बच्चे से भी ज्यादा निरीह। क्योंकि बच्चे पर तो कोई दया भी करता था। अब उस पर कोई दया करने वाला भी नहीं मिलता। क्योंकि लोग समझते हैं, वह बूढ़ा है, उस पर क्या दया करनी!
इसलिए भारत ने जो ख्याल दुनिया को दिया था कि बच्चे से भी ज्यादा चिंता वृद्ध की करना, उसके पीछे कारण था। उसके पीछे कारण था कि वृद्ध दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन वह बच्चे जैसा हो गया है। बच्चे को हम माफ कर देते हैं, अगर वह नाराज हो। बूढ़े को हम माफ नहीं कर पाते, अगर वह नाराज हो। लेकिन भारत की बहुत गहरी समझ थी, और वह यह थी कि बच्चे को तुम चाहे माफ
मत भी करना, क्योंकि अभी बच्चे को कुछ पता भी नहीं है कि माफ किया जाता है कि नहीं किया जाता है, लेकिन बूढ़े को तो बिल्कुल माफ कर देना। माफ ही मत कर देना, मान लेना कि वही ठीक है, तुम गलत हो। क्योंकि उसे भी ख्याल है कि वह बूढ़ा है, लेकिन उसकी प्रकृति अब बिल्कुल बच्चे जैसी हो गई है। वर्तुल पूरा हो गया है। वह बच्चे ही जैसी नासमझियां करेगा, लेकिन समझदारी के ख्याल के साथ करेगा।
इसलिए बूढ़ा कठिन हो जाता है। बच्चे जैसी ही नासमझियां करेगा। बच्चे जैसी ही जिद्द बूढ़े आदमी में वापस लौट आती है। वैसा ही हठधर्मीपन आ जाता है। और एक और खतरा साथ हो गया होता है, क्योंकि उसे ख्याल होता है कि वह बच्चा नहीं है।
तो बूढ़े निरंतर कहते हैं कि मैं कोई बच्चा नहीं हूं। उसे ख्याल यह होता है कि वह बूढ़ा है; उसे सारे जीवन का अनुभव है। और उसे पता नहीं कि प्रकृति उसे वापस वर्तुल की पूर्णता की स्थिति पर ले आई है। क्योंकि मृत्यु वहीं होती है, जहां जन्म होता है। वह बिंदु बिल्कुल एक है। इसलिए वापस प्रकृति उसको ला रही है। मगर अनुभव, मन, स्मृति, उसे कहती है, वह सब जानता है; और व्यवहार वह ऐसा करता है, जैसे कुछ न जानता हो।
तो उसका व्यवहार उसके ही बच्चों को अखरने लगता है। उसके बच्चों को लगता है कि काम तो ऐसे करते हो, जैसे कुछ न जानते हो। और बातें ऐसी करते हो, जैसे सब जानते हो! इसलिए बच्चों को भी सहना मुश्किल हो जाता है।
लेकिन भारत की समझ थी कि बूढ़े के साथ ऐसे ही व्यवहार करना जैसे वह बच्चा है। उसकी हठधर्मी सही है। वह गलत हो, इससे कोई चिंता मत करना। वह ठीक हो कि गलत हो, हमेशा उसे ठीक मान लेना। वह गलत भी करे, तो भी उसके चरणों में सिर रख देना। वह वापस लौटता हुआ वर्तुल है। बच्चे से ज्यादा दयनीय है। बच्चे में तो अभी शक्ति जगेगी। अभी तो बच्चा शक्ति का स्रोत है। बूढ़ा तो चुक गया। उसकी शक्ति खो गई। इसलिए पूरब ने ब.ूढे को जो आदर दिया है, उसके पीछे बड़ी सूझ है, ख्याल है, कारण है। सारी गतियां वहीं शुरू होती हैं, वहीं अंत होती हैं।

कृष्ण कहते हैं, सब मुझमें लीन हो जाता है और फिर मुझसे पुनः रचा जाता है। यह रचना जगत के कर्मानुसार, भूतों के कर्मानुसार घटित होती है।
इस संबंध में भी पूर्वीय चिंतन अति वैज्ञानिक है। क्योंकि पूरब मानता है, अकारण कुछ भी घटित नहीं होता। जो भी होगा, वह कारण से बंधा होगा। अगर इस पूरे जगत को हम एक व्यक्ति मान लें, तो इस पूरे जगत के एक कल्प का जो कर्म होगा, वही कर्म इसके नए कल्प की शुरुआत होगी। यह विशाल है बात, और मस्तिष्क पकड़ नहीं पाएगा। लेकिन बूंद को भी समझ लें, तो सागर समझ में आ जाता है।
आप आज जो भी हैं, वह आपके समस्त कलों का जोड़ है। और कल आप जो होंगे, उसमें आज और जुड़ जाएगा। आप जो बोलेंगे, जो सोचेंगे, जो होंगे, जो व्यवहार करेंगे, जो करेंगे और जो नहीं करेंगे, वह भी--वह आपके समस्त सार से निकलेगा। आपके पूरे जीवन के कर्मों के सार से निकलेगा। एक अर्थ में यह सेल्फ प्रपोगेटिंग, स्वचालित व्यवस्था है। इससे अन्यथा होने का कोई उपाय नहीं है। अगर हम इस सारी बात को, पूरे जगत को एक व्यक्ति मान लें, तो पूरे जगत में भी ऐसा ही घटित होगा।
हे अर्जुन, उन कर्मों में आसक्तिरहित और उदासीन के सदृश स्थित रहते हुए वे कर्म मुझे नहीं बांधते हैं।
यह अंतिम सूत्र ख्याल में ले लेने जैसा है। क्योंकि यह सवाल उठ सकता
है कि अगर व्यक्ति कर्म करता है, तो अपने कर्मों से बंध जाता है; और अगर परमात्मा भी जगत को रचता है, बनाता है, मिटाता है, सम्हालता है, तो क्या ये कर्म उसे नहीं बांधते होंगे? क्या ये कर्म उसका बंधन न बन जाते होंगे? क्या ये कर्म फिर उसके लिए भी कारागृह निर्माण न करते होंगे? अगर व्यक्ति बंध जाता है, तो होगा वह महाव्यक्ति, लेकिन उसके महाकर्म भी तो उसे बांधने वाले सिद्ध होंगे।
इसलिए कृष्ण ने कहा है कि यह सब करता हूं, अनासक्त।
किस कर्म में व्यक्ति अनासक्त रह सकता है? सिर्फ व्यक्ति खेल में अनासक्त रह सकता है, बाकी सभी कर्मों में आसक्त हो जाता है। सिर्फ खेल में अनासक्त रह सकता है। हम तो खेल में भी नहीं रह सकते हैं। क्योंकि हमारे लिए खेल भी कर्म बन जाता है।
अगर दो आदमियों को ताश खेलते देखें, तो उनके माथे पर ऐसी सिक.ुडनें पड़ी होती हैं, जैसे जीवन-मरण का सवाल है। दो आदमियों को शतरंज खेलते देखें, तो जैसे इसी खेल पर सब कुछ निर्भर है। इस जगत का पूरा भविष्य, इनके इस खेल पर निर्भर है! यह जो शतरंज के सिपाहियों को यहां से वहां उठाकर रख रहे हैं, सारे प्राण उनके खिंचे हैं! उनका ब्लड प्रेशर नापें, बढ़ जाएगा। उनकी छाती की धड़कन बढ़ जाएगी। उनका एक घोड़ा मरेगा, कि एक हाथी मरेगा, तो न मालूम कितनी पीड़ा और कितना क्या हो जाएगा!
इस शतरंज के खेल पर बैठा हुआ आदमी भी खेल में नहीं है। यह भी कर्म हो गया! और अगर हार जाएगा, तो रातभर सो नहीं सकेगा। रातभर शतरंज चलती रहेगी। फिर रखता रहेगा, सोचता रहेगा। शतरंज के जो बड़े खिलाड़ी हैं, वे कहते हैं कि शतरंज में वही जीत सकता है, जो पांचवीं चाल तक को पहले से सोच ले--पांचवीं चाल! अभी मैं यह चलूंगा, यह उत्तर आएगा; तब मैं यह चलूंगा, तब यह उत्तर आएगा। ऐसे पांच को जो पहले से सोच ले, वही शतरंज में कुशल हो सकता है। निश्चित ही है, कुशल शतरंज में होगा कि नहीं होगा, एक बात पक्की है, पागल हो जाएगा।
तो मैंने सुना है कि इजिप्त का एक सम्राट शतरंज खेलते-खेलते पागल हो गया। बड़ा खिलाड़ी था। सब इलाज किए गए, वह ठीक न हो सका। तो फिर मनसविदों ने कहा कि अब एक ही उपाय है कि इससे भी बड़ा शतरंज का खिलाड़ी कोई मिले, तो शायद यह ठीक हो जाए। बहुत खोज की गई, आखिर एक आदमी मिल गया। उसने मना किया। बहुत प्रलोभन दिए गए, प्रलोभन में आकर वह चला आया। क्योंकि पागल के साथ वह शतरंज खेलने को तैयार नहीं होना चाहता था। ऐसे तो शतरंज का खेल ही पागल करने वाला है, फिर पागल खिलाड़ी भी सामने हो! तो वह खेलना नहीं चाहता था। लेकिन सम्राट का मामला था, बड़े प्रलोभन थे। लाखों रुपए का कहा गया, आ गया।

कहते हैं, सालभर यह खेल चला। सम्राट ठीक हो गया; लेकिन वह जो खेलने आया था, वह पागल हो गया! वह गरीब आदमी था। फिर उससे बड़ा खिलाड़ी खोजना भी मुश्किल था। और उतना वह पुरस्कार भी नहीं दे सकता था। वह पागल ही मरा। शतरंज भी आदमी खेलता है, तो भारी तनाव! और अगर तनाव न हो, दो आदमी ताश खेलते हों, तनाव ज्यादा न रहा हो, तो खीसे से कुछ निकालकर दांव पर लगा लेते हैं। क्योंकि ये रुपए जो हैं, ये तत्काल किसी भी खेल को काम में परिवर्तित कर देते हैं। तो थोड़ा आदमी दांव लगा लेता है। थोड़ा ही सही, तो फिर खेल में रस आ जाता है।
रस क्यों आ जाता है खेल में? खेल में रस ही नहीं है आपको, जब तक कि कर्म
न बन जाए। जब तक आसक्ति न बने, तब तक रस नहीं है। रुपए के साथ जुड़ते ही आसक्ति जुड़ जाती है। रुपया सेतु का काम कर जाता है। अनासक्त कर्म तो एक ही हो सकता है, जैसे छोटे बच्चे खेलते हैं।
बुद्ध ने कहा है कि गुजरता था एक नदी के किनारे से। बच्चों को रेत के
घर बनाते देखा, रुककर खड़ा हो गया। इसलिए खड़ा हो गया कि बच्चे भी रेत के घर बनाते हैं और बूढ़े भी। थोड़ा इनके खेल को देख लूं। रेत के ही घर थे। हवा का झोंका आता, कोई घर खिसल जाता। किसी बच्चे का धक्का लग जाता, किसी का घर गिर जाता। किसी का पैर पड़ जाता, किसी का बना-बनाया महल जमीन पर हो जाता। बच्चे लड़ते, गाली देते, एक-दूसरे को मारते। किसी ने किसी का घर गिरा दिया हो, तो झगड़ा तो सुनिश्चित है। सारे झगड़े ही घरों के हैं। किसी का धक्का लग गया, किसी का घर गिर गया। किसी ने बड़ी मुश्किल से तो आकाश तक पहुंचाने की कोशिश की थी; और किसी ने चोट मार दी, और सब जमीन पर गिर गया!
तो बुद्ध खड़े होकर देखते रहे। बच्चे एक-दूसरे से लड़ते रहे। झगड़ा होता रहा। फिर सांझ होने लगी। फिर सूरज ढलने लगा। फिर किसी ने नदी के किनारे आकर जोर से आवाज लगाई कि तुम्हारी माताएं तुम्हारी घर राह देख रही हैं; अब घर जाओ! जैसे ही बच्चों ने यह सुना, अपने ही बनाए हुए घरों पर कूद-फांद करके, उनको गिराकर, वे घर की तरफ चल पड़े।
बुद्ध खड़े थे, देखते रहे। उन्होंने कहा, जिस दिन हम अपने सारे जीवन को रेत के खेल जैसा समझ लें, और जिस दिन ख्याल हमें आ जाए कि अब यह खेल समाप्त हुआ, पुकार आ गई वहां से असली घर की, अब उस तरफ चलें, तो उस दिन हम भी इनको गिराकर इसी तरह चले जाएंगे। अभी लड़ रहे थे कि मेरे घर को गिरा दिया, अब खुद ही गिराकर भाग गए हैं!
बच्चे जैसे रेत के घर बनाकर खेल खेल रहे हों, वैसे ही जब कोई व्यक्ति जीवन को खेल बना ले, तो अनासक्त हो जाता है। परमात्मा के लिए जीवन एक खेल है।
ध्यान रहे, इसलिए हमने जो शब्द प्रयोग किया है, वह है, लीला। उसका अर्थ है, प्ले।
पृथ्वी पर किसी दूसरे धर्म ने जगत के निर्माण को लीला नहीं कहा है। ईसाई ईश्वर अति गंभीर है। इसलिए छः दिन में उसने इतना कठिन काम किया कि सातवें दिन विश्राम किया। ईसाई ईश्वर की धारणा है कि संडे जो है, वह विश्राम का दिन है। इसलिए हाली-डे है, इसलिए छुट्टी है। क्योंकि छः दिन में ईश्वर ने दुनिया बनाई, फिर वह इतना थक गया, इतना परेशान हो गया कि सातवें दिन उसने विश्राम किया। वह सातवें दिन इसीलिए ईसाई अभी भी काम करना पसंद नहीं करता। कि जब भगवान तक सातवें दिन काम नहीं करता, तो हमें तो करना ही नहीं चाहिए!
लेकिन ईसाई जो धारणा है ईश्वर की, वह बहुत सीरियस है, गंभीर है। तभी तो
थक गया। और ये कृष्ण कभी नहीं कहेंगे कि मैं थकता हूं। ये कहते हैं, कल्पों के बाद फिर रचता हूं। फिर सब मुझ में लीन हो जाते हैं, मैं फिर रचता हूं। ये फिर मुझ में लीन हो जाते हैं, मैं फिर रचता हूं--एड इनफिनिटम। इसका कोई हिसाब नहीं है। ये थकते ही नहीं। इन्होंने कोई हाली-डे नहीं मनाया। इसका कुछ कारण होगा। ये बहुत गंभीर नहीं मालूम पड़ते, नहीं तो थक जाते।
हिंदू धारणा ईश्वर की, गंभीर धारणा नहीं है। बहुत प्रफुल्लित, बहुत खेल जैसी धारणा है। इसलिए हमने जगत को लीला कहा है।

लीला अनूठा शब्द है। दुनिया की किसी भाषा में इसका अनुवाद नहीं किया
जा सकता। क्योंकि अगर हम कहें प्ले, तो वह खेल का अनुवाद है। लीला परमात्मा के खेल का नाम है। और दुनिया में किसी धर्म ने चूंकि परमात्मा को कभी खेल के रूप में देखा नहीं, इसलिए लीला जैसा किसी भाषा में कोई शब्द नहीं है। लीला अनूठे रूप से भारतीय शब्द है। इसका कोई उपाय नहीं है। अगर हमें करना भी हो कोशिश, तो उसको डिवाइन प्ले। लेकिन वह शब्द नहीं बनते। लीला काफी है। उसमें ईश्वर को जोड़ना नहीं पड़ता। लीला शब्द पर्याप्त है। उसका मतलब यह है कि यह सारा का सारा जो सृजन है, यह कोई गंभीर कृत्य नहीं है। यह एक आनंद की अभिव्यक्ति है। यह सारा जो विकास है, यह कोई सिर-माथे पर सलवटें पड़ी हों ईश्वर के, ऐसा नहीं है। यह एक नाचता हुआ, यह एक मौज से चलता हुआ प्रवाह है। यह भारी चिंता नहीं है; यह मौज है।
इसे थोड़ा ख्याल में ले लें, क्योंकि यह बहुत उपयोग का है। और जिस दिन कोई व्यक्ति अपने जीवन को भी लीला बना लेता है, उसी दिन मुक्त हो जाता है, उसी दिन वह ईश्वरीय हो जाता है, उसी दिन वह ईश्वर हो जाता है।
जब तक आपका जीवन काम है, तब तक आप एक गुलाम हैं, अपनी ही चिंताओं के, अपनी ही गंभीरता के। अपनी ही गंभीरता के पत्थरों के नीचे दबे जा रहे हैं। ये पहाड़ जो आपके सिर पर हैं, आपकी ही गंभीरता के हैं। उतार दें इन पहाड़ों को। जीवन को एक खेल समझें, एक आनंद, तो फिर सिर पर कोई बोझ नहीं है। फिर आप जीवन से नाचते हुए गुजर सकते हैं। फिर आपके होंठ पर भी बांसुरी हो सकती है। फिर आपके प्राण में भी गीत हो सकता है। और जिस दिन आपके प्राण में भी यह लीला का भाव उदय होगा, उस दिन आप इस सूत्र को समझ पाएंगे कि यह पूरा का पूरा जगत उस परमात्मा के लिए भी लीला है।
और ध्यान रहे, यह जगत इतना सुंदर इसीलिए है कि उस परमात्मा के लिए लीला है। यह इतना सुंदर नहीं हो सकता, अगर यह उसके लिए काम हो। सभी काम कुरूप हो जाते हैं। सभी काम कुरूप हो जाते हैं।
एक नर्स एक बच्चे की सेवा करती है, तब वह काम होता है; और एक मां जब अपने बच्चे को खिलाती है, तब वह खेल होता है, वह लीला होती है, काम नहीं होता। वह उसका आनंद है। इसलिए जब एक मां अपने बच्चे के साथ खेल रही होती है, तब एक अनूठा सौंदर्य प्रकट होता है। और जब एक नर्स भी उस बच्चे के साथ खेल रही होती है, तब एक कुरूपता प्रकट होती है। उस कुरूपता का कारण नर्स नहीं है, बच्चा नहीं है; उस कुरूपता का कारण काम है। जिस जगह भी काम आ जाएगा, वहीं चित्त उदास हो जाता है। और जहां खेल आ जाता है, वहीं चित्त नृत्य से भर जाता है।
लेकिन अगर हम अपने महात्माओं की तरफ देखें, तो हमें शक होगा। इनको देखें अगर हम, तो हमें लगेगा, ये तो भारी उदास हैं! अगर इन्हीं महात्माओं की तरफ से परमात्मा की तरफ जाना हो, तो हमें मानना चाहिए, परमात्मा तो सतत रो ही रहा होगा! महात्मा ही अगर उसका दरवाजा हैं, तो ये महात्मा तो ऐसे मरे हुए बैठे हैं कि जीवन की कोई पुलक इनमें मालूम नहीं होती। ये तो अपने भीतर जैसे मरघट लिए हुए हैं, ताबूत हैं, कब्रें हैं।
जीसस ने इस शब्द का उपयोग किया है। जीसस ने कहा है कि ये धर्मगुरु! तुम सफेद ताबूत हो। तुम पुती-पुताई सफेद कब्रें हो। तुममें जो स्वच्छता दिखाई पड़ रही है, वह केवल ऊपर की पुताई है; भीतर तुम सड़ी हुई लाशें हो।
महात्मा का उदास होना जरूरी है। महात्मा हंसता हुआ मिले, तो भक्त चले जाएंगे। क्योंकि महात्मा में हम प्रफुल्लता देखने को राजी नहीं हैं। हमने धर्म को एक गंभीर कृत्य बना लिया है। हमने धर्म को इतना गंभीर कृत्य बना लिया है कि उसमें ईश्वरीय तत्व तो विलीन ही हो जाएगा।
इसलिए आज अगर कृष्ण जैसा आदमी हमारे बीच हो, तो आप यह मत सोचना कि आप कृष्ण के पैर छू सकोगे। आप नहीं छू सकोगे। क्योंकि अगर यह कृष्ण चौरस्ते पर खड़े होकर चौपाटी पर बांसुरी बजाता मिल जाए, तो आप पुलिस में खबर करोगे! आप कहोगे, यह हमारा कृष्ण नहीं है। यह क्या बात है! कृष्ण और बांसुरी बजा रहे हैं? वह तो आप किताब में पढ़ लेते हो, तो टाल जाते हो। यू कैन टालरेट। अगर चौपाटी पर बजाएं, तो बहुत मुश्किल हो जाएगी।

क्योंकि हम सबकी आदत मुर्दा महात्माओं को देखने की हो गई है। जितना मरा हुआ आदमी हो, उतना बड़ा महात्मा मालूम होता है। जीवन की जरा-सी पुलक दिखाई न पड़े। और क्षुद्रतम बातों को भी वह गंभीरता दे देता है। और कृष्ण जैसे व्यक्ति विराटतम बातों को भी गैर-गंभीर आनंद दे देते हैं। क्षुद्रतम बातों को! वह पूछेगा कि यह खाना कितनी देर का बना है? यह ब्राह्मण ने बनाया है कि नहीं बनाया? इसको किसी स्त्री ने तो नहीं छू दिया?
यह महात्मा है! यह खाने तक को प्रफुल्लता से नहीं ले सकता। यह खाने में भी गणित रखता है! यह पूछता है कि घी कितने पहर का है? इतने पहर से ज्यादा हो गया, तो फिर घी नहीं ले सकता! यह दूध गाय का है कि नहीं?
यह जो बुद्धि है, यह जीवन को लीला नहीं बना सकती। यह जीवन को अति गंभीर बना देती है। अगर एक स्त्री बैठी हो, उठ जाए, तो यह महात्मा पूछेगा, स्त्री को उठे हुए इस जमीन से कितनी देर हुई? क्योंकि उसके हिसाब हैं, गणित हैं, कि स्त्री जब यहां से उठ जाए, तब इतनी देर तक भी उसका प्रभाव उस जमीन के टुकड़े पर रहता है। तो तब तक महात्मा वहां नहीं बैठेगा। अगर आप रुपया महात्मा को देंगे, तो वह अपने हाथ में नहीं लेगा; छोड़ भी नहीं सकता। वह एक शिष्य को साथ में रखेगा; उसको दिलवाएगा! क्योंकि रुपया लेना पाप है। लेकिन बिना रुपए लिए भी नहीं चल सकता, तो यह पाप दूसरे से करवाता रहेगा!
ये जो गुरु-गंभीर लोग हैं, हिंदू धर्म के प्राण इन्होंने ले डाले। हिंदू धर्म जमीन पर अकेला हंसता हुआ धर्म था और जिसमें हंसने की प्रगाढ़ क्षमता थी। उदासी जिसका लक्ष्य न था, आनंद जिसका गंतव्य था। लेकिन मूल सूत्र खो जाते हैं। और अक्सर ऐसा होता है कि हम वही करने लगते हैं, जो हम करना चाहते हैं।
जीवन को लीला की दृष्टि से देखा जा सके, तो कृष्ण का यह सूत्र आपको स्पष्ट हो जाएगा कि कैसे कोई जीवन-शक्ति इतने विराट जाल को रचते हुए दूर खड़े रहकर देख सकती है, अनासक्त!
इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह मुझे बांधता नहीं है। क्योंकि बांधती है आसक्ति, कर्म नहीं। और अगर कर्म अनासक्त हो, तो बंधन नहीं होता है।
शेष हम कल बात करेंगे।
लेकिन पांच मिनट रुकें। कोई उठे न! देखें पहले भी आपको कहा है कि बीच
से जिन लोगों को उठना हो, वे कल से बीच में बिल्कुल न बैठें। वे बाहर रहें।
बीच से उठकर कल से कोई जाएगा, तो आप जो पास में बैठे हैं, उसको बिठालें, लीलापूर्वक! उससे कहें कि बैठ जा! पांच मिनट कीर्तन में सम्मिलित हों, फिर विदा हों।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
चौथा प्रवचन

विराट की अभीप्सा

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। 10।।
अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।। 11।।
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।। 12।।
और हे अर्जुन, मुझ अधिष्ठाता की उपस्थिति मात्र से यह मेरी प्रकृति अर्थात माया चराचर-सहित सर्व जगत को रचती है और इस ऊपर कहे हुए हेतु से ही यह जगत बनता-बिखरता रहता है।
ऐसा होने पर भी संपूर्ण भूतों के महान ईश्वर रूप मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग, मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं। जो कि वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान वाले अज्ञानीजन राक्षसों के और असुरों के जैसे मोहित करने वाली प्रकृति अर्थात तामसी स्वभाव को ही धारण किए हुए हैं।

इस सूत्र में बहुत-सी बातें कही गई हैं महत्वपूर्ण, विचार के लिए भी, साधना के लिए भी, गहरी और ऊंची भी।
पहली बात। परमात्मा जगत का सृजन करता हो, तो कैसे करता होगा? क्या वैसे ही, जैसे कुम्हार अपने चके पर बर्तन रचता है? या वैसे, जैसे मूर्तिकार अपनी छेनी से पत्थर को काटता और मूर्ति को रचता है? या वैसे, जैसे एक कवि शब्दों की संयोजना करता और गीत को रचता है? परमात्मा का सृजन किस विधि का है?
इस सूत्र में एक बहुत गहरी बात कही गई है। और जो लोग विज्ञान को थोड़ा समझते हैं, उन्हें समझनी बहुत आसान हो जाएगी। क्योंकि विज्ञान मानता है कि कुछ ऐसा सृजन भी है, जब करने वाला कुछ भी नहीं करता, केवल उसकी मौजूदगी ही सृजन हो जाती है। विज्ञान उसे कैटेलिटिक एजेंट कहता है। उसके बिना घटना नहीं घटती; उसकी मौजूदगी से ही घटना घट जाती है; वह स्वयं कुछ करता नहीं।
जैसे अगर हाइड्रोजन और आक्सीजन को हम मिलाएं, तो पानी नहीं बनेगा; यद्यपि पानी को हम तोड़ें, तो हाइड्रोजन और आक्सीजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता है। अगर हम पानी को तोड़ें, तो हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलते हैं; लेकिन हाइड्रोजन और आक्सीजन को साथ रख दें, तो पानी नहीं बनता। यह बड़ी अजीब बात है! क्योंकि पानी को तोड़ने पर हाइड्रोजन और आक्सीजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता, इसलिए स्वभावतः हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से पानी बन जाना चाहिए।
लेकिन एक चीज खो रही है, एक मिसिंग लिंक है। हाइड्रोजन और आक्सीजन तब
तक नहीं मिलते, जब तक बिजली मौजूद न हो। अगर विद्युत मौजूद हो, तो आक्सीजन और हाइड्रोजन मिल जाते हैं और पानी बन जाता है।
और मजे की बात यह है कि बिजली मौजूदगी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं करती; वह पानी में सम्मिलित नहीं होती। अगर सम्मिलित होती, तो जब हम पानी को तोड़ते, तो बिजली भी मिलनी चाहिए। लेकिन पानी को तोड़ने पर हाइड्रोजन और आक्सीजन ही मिलते हैं। अगर बिजली मौजूद न हो, तो भी घटना नहीं घटती। बिजली मौजूद हो, तो बिजली प्रवेश नहीं करती, लेकिन उसकी मौजूदगी से ही घटना घट जाती है। जस्ट प्रेजेंस। मौजूदगी प्रविष्ट हो जाती है; बिजली प्रविष्ट नहीं होती।
इसे थोड़ा समझ लें। और मौजूदगी को तो तोड़कर पाया नहीं जा सकता। जब हम पानी को तोड़ेंगे, तो बिजली मौजूद थी पानी बनते वक्त, उसकी मौजूदगी को हम पानी से नहीं निकाल सकते हैं।

परमात्मा की मौजूदगी से जगत रचता है, कृष्ण यह कह रहे हैं। वह यह कह रहे हैं कि मैं कैटेलिटिक एजेंट हूं। मैं बनाता नहीं, मेरा होना ही सृजन का सूत्रपात है।
यह बहुत गहरी बात है। और होना भी यही चाहिए। क्योंकि परमात्मा को भी अगर घड़े की तरह निर्माण करना पड़े जगत को, तो कुम्हार से बड़ी उसकी हैसियत नहीं है फिर। अगर उसे भी कार्य में संलग्न होना पड़े, तो उसका मतलब यह हुआ कि जिस पर वह काम कर रहा है, उस पर उसकी पूरी मालकियत नहीं है। पूरी मालकियत का मतलब यह होता है कि इशारा भी न करना पड़े और काम हो जाए। मौजूदगी काफी होनी चाहिए।
अगर पिता अपने घर वापस लौटे और बेटे की तरफ आंख से इशारा करना पड़े कि मेरे पैर छू; मैं तेरा पिता हूं, मेरा आदर कर; तो वह पिता नहीं रहा। उसकी मौजूदगी ही आदर बन जानी चाहिए। वह मौजूद है, तो आदर घट जाना चाहिए।
एक शिक्षक अपने वर्ग में आए और डंडा ठोंककर टेबल पर विद्यार्थियों को शांत करे, तो उसका अर्थ यह हुआ कि वह शिक्षक है ही नहीं। उसका कमरे में प्रवेश ही शांति हो जानी चाहिए। उसकी मौजूदगी काफी होनी चाहिए।
शिक्षक आते हैं, वे मुझे कहते हैं, गुरुओं का कोई सम्मान नहीं रहा। तो मैं उनसे पूछता हूं, जब भी कोई गुरु होता है, तो सम्मान जरूर होता है। गुरु ही न रहे होंगे। अगर तुम कहते हो, गुरुओं का कोई सम्मान न रहा, तो मुझे शक होता है कि गुरु ही न रहे होंगे। क्योंकि गुरु का मतलब ही यह होता है कि वह मौजूद है, तो सम्मान की घटना घटती ही है, उसे घटाना नहीं पड़ता। उसके लिए आयोजन नहीं करना पड़ता। गुरु की परिभाषा ही यह होनी चाहिए कि जिसकी मौजूदगी में आदर उत्पन्न हो। अगर गुरु को भी आदर उत्पन्न करना पड़े, तो वह आदमी गुरु तो नहीं है, और कुछ भी होगा। क्योंकि जो उत्पन्न करना पड़े, वह कृत्रिम हो जाता है।
कृष्ण कहते हैं, मेरी मौजूदगी में रचना का सिलसिला शुरू होता है। मैं बनाता भी नहीं; यह मेरा कृत्य नहीं है; यह मेरी उपस्थिति मात्र, मेरे मौजूद होते ही जीवन चल पड़ता है।
सुबह सूरज निकलता है, फूल खिल जाते हैं। ऐसा सूरज एक-एक फूल पर आकर फूल
को खिलाता नहीं है। बस, उसकी मौजूदगी! पक्षी गीत गाने लगते हैं। अब सूरज एक-एक पक्षी की गर्दन पकड़कर गीत गवाता नहीं है। बस, उसकी मौजूदगी! नींद टूट जाती है, आंखें खुल जाती हैं, जागरण फैल जाता है। सूरज किसी के द्वार पर आकर खटखटाता नहीं, कि उठो! बस, उसकी मौजूदगी।
लेकिन इससे भी गहरी बात है, कैटेलिटिक एजेंट। सूरज की तो किरणें आती हैं। नहीं दरवाजा खटखटाती होंगी, फिर भी किसी सूक्ष्म तल पर दरवाजा खटखटाती हैं। और नहीं एक-एक कली को सूरज पकड़कर खोलता है, फिर भी उसकी किरणें आकर एक-एक कली को सहलाती हैं। और नहीं पक्षियों की गर्दन दबाता है कि गीत गाओ, फिर भी उसकी किरणें कोई गहरा संस्पर्श देती हैं और पक्षी के कंठ से गीत फूट पड़ता है। नहीं, आपको झकझोरता नहीं है कि उठो! लेकिन फिर भी किसी गहरे रासायनिक तल पर उसकी किरणों की मौजूदगी हवा में आक्सीजन को बढ़ा देती है; और आक्सीजन का बढ़ जाना आपके भीतर एक झकझोर ले आता है और आपको उठ जाना पड़ता है।
कैटेलिटिक एजेंट और भी सूक्ष्म बात है। इतना भी नहीं करता। बस, सिर्फ मौजूद होता है। एंड दि प्रेजेंस वर्क्स; सिर्फ मौजूदगी ही काम करती है; कोई रासायनिक प्रवेश नहीं होता। इसलिए हम पीछे, जो निर्माण हुआ है, अगर उसे तोड़ें, तो जिसकी मौजूदगी में हुआ था, उसे हम कभी भी न खोज पाएंगे। इसलिए जगत को हम कितना ही खोजें, हम परमात्मा को न खोज पाएंगे। इसलिए विज्ञान ठीक कहता है कि हम बहुत खोजते हैं, लेकिन परमात्मा मिलता नहीं। और जब तक न मिले, तब तक विज्ञान माने भी कैसे! उसकी बात भी ठीक है। क्योंकि हम हर चीज को खोज लेते हैं, परमात्मा कहीं मिलता नहीं। और अगर यह उसका सृजन है, तो कहीं न कहीं उसकी सृष्टि में उसको मिलना ही चाहिए।
लेकिन अगर कृष्ण का यह सूत्र याद रखा जाए, तो विज्ञान अधैर्य नहीं दिखाएगा। क्योंकि विज्ञान भलीभांति जानता है कि कैटेलिटिक एजेंट भी होते

हैं, और उनकी मौजूदगी से घटनाएं घटती हैं। फिर घटी हुए घटना को तोड़ने से कैटेलिटिक एजेंट को नहीं पाया जा सकता।
तो क्रिएटर की तरह नहीं, स्रष्टा की तरह नहीं, उपस्थिति मात्र काम करती हो, ऐसे कैटेलिटिक एजेंट की तरह मैं इस जगत को निर्मित करता हूं। यदि यह ठीक है, तो विज्ञान उसी दिन परमात्मा को अनुभव कर पाएगा, जिस दिन विज्ञान सृजन की प्रक्रिया में मौजूद हो, सृष्टि से उसे कभी खोजा नहीं जा सकता।
ध्यान रखें, यह और थोड़ा गहरे जाने की जरूरत पड़ेगी। सृष्टि का अर्थ है,
जो बन गई चीज। तो बन गई चीज से उसे कभी नहीं खोजा जा सकता, क्योंकि उसकी उपस्थिति से बनी है। उसके हाथ की कोई छाप नहीं है उस पर। उसके हस्ताक्षर नहीं हैं। तो हम कितने ही डिटेक्टिव्स लगाएं, और हम कितने ही जासूस लगाएं, कहीं कोई छाप उसकी मिलती नहीं है। फूल खिलता है, उसकी कोई छाप मिलती नहीं। पहाड़ बनते हैं, मिट जाते हैं, उसकी कोई छाप मिलती नहीं। चांद-तारे जन्मते हैं, खो जाते हैं, उसकी कोई छाप मिलती नहीं। जो चीज बन गई है, उसमें उसकी छाप नहीं मिलेगी।
इसलिए विज्ञान असमर्थ मालूम पड़ता है। वह करीब-करीब से गुजर जाता है
और परमात्मा की कोई झलक नहीं मिलती। और जब तक स्पष्ट प्रमाण न मिलें, तब तक विज्ञान की अपनी मजबूरी है, वह स्वीकार नहीं कर सकता।
परमात्मा की झलक किसको मिलती है? परमात्मा की झलक उसको मिलती है, जो सृष्टि में खोजने नहीं जाता, बल्कि सृजन की प्रक्रिया में मौजूद होता है। इसलिए बहुत मजे की बात है कि कभी किसी कवि को झलक मिल जाती है उसकी; वैज्ञानिक को नहीं मिल पाती। कभी किसी मूर्तिकार को भी उसकी झलक मिल जाती है। कभी किसी नृत्यकार को भी उसकी झलक मिल जाती है। ध्यानी को सदा उसकी झलक मिलती रही है। ये सारे के सारे लोग सृजन की प्रक्रिया में मौजूद होते हैं।
इसे हम ऐसा समझें। रवींद्रनाथ को जब भी कोई गीत जन्मता, तो वे खाना- पीना बंद कर देते थे--बंद हो जाता था। खा-पी नहीं सकते थे। द्वार-दरवाजे बंद कर लेते थे। मिलना-जुलना बंद कर देते थे--बंद हो जाता था। मिल नहीं सकते थे। होंठ बंध जाते थे। बोलने की असमर्थता हो जाती थी। द्वार-दरवाजे बंद करके, भूखे... । वे सो नहीं सकते थे। जब भी कोई गीत उनमें जन्म लेता था, तो जब तक वह पूरा जन्म न ले ले, तब तक वे और कुछ भी नहीं कर सकते थे। मनाही थी कि जब रवींद्रनाथ अपने कमरे में बंद होकर कुछ लिखते हों, तो कोई आस-पास न आए।
कभी ऐसा भी हो जाता था--क्योंकि सृजन के क्षणों के लिए कोई प्रेडिक्शन, कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती--रवींद्रनाथ बैठे हैं, मित्र पास बैठे हैं, या शिष्य पास बैठे हैं, और अचानक उनकी आंखें बंद हो गईं, और गीत का जन्म शुरू हो गया। तो लोगों को खबर थी कि चुपचाप हट जाना है। वहां फिर जरा भी बाधा नहीं डालनी है। इतना भी नहीं कहना है कि अब मैं जाऊं! क्योंकि इतना भी उस भीतर हो रही रचना की प्रक्रिया में बाधा बन जाएगी। गुरदयाल मलिक ने लिखा है कि मैं नया-नया गया था। नियम तो मुझे पता था, लेकिन मन में एक अभिलाषा भी थी कि जब सच में ही गीत जन्मता है, तब मैं भी छिपकर देख लूं कि रवींद्रनाथ को होता क्या है!
पांच-सात मित्र बैठकर गपशप करते थे और रवींद्रनाथ अपने हाथ से चाय बनाकर उनको पिला रहे थे। अचानक उनके हाथ से प्याली छूट गई। सब लोग चुपचाप वहां से अधूरी चाय पीए उठ गए। लोगों ने मलिक को भी इशारा किया। मन तो नहीं था उठने का, लोग नहीं माने तो उन्हें भी उठ जाना पड़ा।
लोग तो चले गए, मलिक बाहर दीवाल के पास छिपकर बैठ गए। रवींद्रनाथ की आंखों से आंसू बहने लगे, और उनके शरीर में एक पुलकन और एक सिहरन का दौर शुरू हो गया। जैसे रोआं-रोआं किसी अज्ञात ऊर्जा से भर गया हो, और जैसे रोएं-रोएं में कोई सूक्ष्म स्पंदन प्रवेश कर रहे हों। कोई अनूठी शक्ति ने सारे कमरे को घेर लिया है, ऐसा मलिक को भी अनुभव होने लगा। कोई मौजूदगी! जैसे कभी-कभी आपको भय लगता है; लगता है, कोई मौजूद है और दिखाई नहीं पड़ता। ऐसे ही मलिक भी घबड़ा गए। घबड़ाहट दोहरी थी। एक तो यह थी कि मैं अपराध

कर रहा हूं; मुझे यहां रुकना नहीं चाहिए। और दूसरी घबड़ाहट यह थी कि चारों तरफ कोई मौजूद हो गया था। वह जगह खाली न रही थी।
घड़ी दो घड़ी, फिर मलिक के पैर बंध गए। अब वे भागना भी चाहते हैं, वहां से
हट भी जाना चाहते हैं, लेकिन अब हट भी नहीं सकते; किसी चीज ने जैसे कि जमीन से कशिश बांध ली। आंखें झपकाना चाहते हैं, झपकती नहीं हैं। श्वास जैसे ठहर गई हो। वहां कोई विराट जैसे उतर आया चारों तरफ। सारा स्थान किसी की उपस्थिति से भर गया। रवींद्रनाथ डोल रहे हैं, जैसे कोई वृक्ष हवाओं में डोलता हो। कि रवींद्रनाथ नाच रहे हैं, जैसे कोई मोर आषाढ़ में नाचता हो। कि रवींद्रनाथ के भीतर कुछ हो रहा है, जैसे किसी मां के गर्भ से बच्चे का जन्म हो रहा हो।
रात गहरी होने लगी, और रवींद्रनाथ वैसी ही अवस्था में हैं। फिर वे स्वस्थ हुए, वापस हुए। और जैसे ही वे स्वस्थ और वापस हुए, मलिक के पैर जमीन से जैसे छूट गए, वे भागे। बाद में उन्होंने रवींद्रनाथ से जाकर दूसरे दिन पूछा कि अपराध मेरा क्षमा हो। रात मैं चोरी छिपे खड़ा रह गया था। ऐसा लगा कि आप तो मिट गए, कोई और मौजूद हो गया था!
रवींद्रनाथ ने कहा कि मैंने अब तक स्वयं कुछ भी नहीं लिखा है। जब मैं मिट जाता हूं, तभी कोई मुझसे लिखवा जाता है। जब मैं नहीं होता हूं, तभी कोई मुझसे गा जाता है। और मैं लाख कोशिश करूं, कितने ही सुंदर शब्दों को जमाऊं, तुकबंदी तो बन जाती है, लेकिन काव्य का जन्म नहीं होता। काव्य का जन्म तो तभी होता है, जब मैं मिट जाता हूं, जड़-मूल से खो जाता हूं।
अगर रवींद्रनाथ को इस काव्य के जन्म के क्षण में ही ईश्वर का अहसास हो, तो हो सकता है। क्योंकि जब भी जगत में कोई चीज सृजित होती है, कहना चाहिए, इन दि मोमेंट आफ क्रिएशन; नाट व्हेन इट हैज बीन क्रिएटेड; पैदा हो गई तब नहीं, सृजित हो गई तब नहीं, जब सृजन हो रही होती है; इन दि वेरी प्रोसेस, प्रक्रिया में होती है; जब जन्म हो नहीं गया होता, जन्म हो रहा होता है, तब कभी-कभी उसकी झलक मिल जाती है। क्योंकि उसकी मौजूदगी के बिना किसी भी चीज का जन्म नहीं होता है। उसकी मौजूदगी के बिना, उस कैटेलिटिक के मौजूद हुए बिना, एक कविता भी जन्मती नहीं है।
कभी-कभी सर्जकों को उसकी प्रतीति होती है, उसका कारण यह है। और जिस कवि को कवि के अंतरतम में सृजन का यह अनुभव न हुआ हो, वह तुकबंद है, कवि नहीं है। उसने शब्दों को जोड़ना सीख लिया है। उसकी कविता कंस्ट्रक्शन है, क्रिएशन नहीं। कंपोजीशन है, क्रिएशन नहीं। उसने जोड़-तोड़ बना ली है। वह भाषा जानता है, वह भाषा का खेल जानता है। वह नियम जानता है। वह शब्दों को बिठा लेता है। लेकिन उसने कभी काव्य का जन्म नहीं देखा है।
इसलिए हम अपने मुल्क में कवियों की दो कोटियां करते रहे हैं। एक कोटि कवियों की वह थी, जो शब्दों को निर्माण कर लेते थे, जमा लेते थे, उनको हम कवि कहते थे। एक वे भी कवि थे, जिनके भीतर कविता का जन्म होता था, उनको हम ऋषि कहते थे। ऋषि का अर्थ कवि है। लेकिन फर्क थोड़ा-सा है। ऋषि हम उसे कहते हैं, जो मिट गया और जिसने जन्म होते अपने भीतर किसी चीज को देखा।
कभी, सृजन के किसी क्षण में उसकी झलक मिल सकती है, क्योंकि हर सृजन में
वह मौजूद होता है। कभी आपने ख्याल किया हो, जब कोई स्त्री पहली दफा गर्भवती होती है, तो उसके सौंदर्य में शरीर के पार की कोई चीज उतरनी शुरू हो जाती है! असल में मां बने बिना स्त्री सौंदर्य के पूरे निखार को कभी उपलब्ध नहीं होती है। जब उसके भीतर कोई जन्म हो रहा होता है, कोई सृजन हो रहा होता है, तब उसके आस-पास परमात्मा की छबि और मौजूदगी अनिवार्य है। अगर स्त्रियां इस सत्य को जान लें कि जब उनके भीतर कुछ निर्मित हो रहा है, तब वे परमात्मा के अति निकट होती हैं, अगर वे क्षण उनके ध्यानपूर्ण हो जाएं, तो एक स्त्री को अलग से साधना करने की कोई भी जरूरत नहीं है। उसका मां होना ही उसकी साधना हो जा सकती है।
पुरुष इस लिहाज से वंचित है, स्त्री इस लिहाज से बहुत गरिमा युक्त है। क्योंकि पुरुष के भीतर कुछ भी निर्माण नहीं होता, सृजन नहीं होता, स्त्री के भीतर कुछ सृजन होता है। स्त्री के भीतर सृजन की प्रक्रिया गुजरती है।
और छोटा-मोटा सृजन नहीं होता। एक फूल जब खिलता है पौधे पर, तो सारा पौधा

सुंदर हो जाता है। क्यों? क्योंकि फूल का सृजन हुआ। लेकिन जब जीवन का श्रेष्ठतम फूल, मनुष्य, किसी स्त्री के भीतर निर्मित होता है, तो स्वभावतः उसका सारा व्यक्तित्व एक अनोखे सौंदर्य से भर जाता है। उस क्षण परमात्मा बहुत निकट है।
इसलिए मातृत्व एक गहरी धार्मिकता है। इसलिए जिस दिन स्त्री मां नहीं होना चाहेगी, उस दिन स्त्री का धार्मिक होना असंभव हो जाएगा।
मैंने कहा कि स्त्री को यह सुलभ है कि उसके भीतर सृजन की प्रक्रिया घटती है। जैसे इस पूरे जगत के गर्भ में किसी दिन सारे चांद-तारे पैदा हुए, एक बहुत छोटे-से रूप में स्त्री के भीतर जीवन पुनः निर्मित होता है; बार-बार निर्मित होता है।
यह उसका गौरव भी है, यह उसकी दुविधा भी है। क्योंकि इसी कारण स्त्री कुछ और सृजन नहीं कर पाती। स्त्री कोई अच्छे गीत नहीं निर्मित कर पाई। उसने कोई अच्छी मूर्तियां नहीं बनाईं। स्त्री के नाम पर कोई बड़ी कला नहीं है। स्त्री किसी धर्म को जन्म नहीं दे पाई। स्त्री ने कोई भी ऐसा अनूठा काम किया हो सृजन का? वह नहीं किया। उसका कुल कारण इतना है कि उसके भीतर सृजन की इतनी बड़ी घटना घटती है कि उसे बाहर सृजन का ख्याल नहीं आता है। यह दुर्भाग्य भी है। अगर भीतर की सृजन की घटना में ईश्वर का अनुभव न हो पाए और बाहर सृजन की क्षमता टूट जाए, तो यह दुर्भाग्य भी है।
पुरुष ने बहुत कुछ सृजन किया है। मनसविद कहते हैं, पुरुष कमी अनुभव करता है भीतर, इसलिए बाहर से पूर्ति करता है सृजन करके। इसलिए जब एक माइकलएंजलो एक चित्र निर्मित कर लेता है, जब एक मोजार्ट एक गीत की तरंग, एक संगीत की लय तय कर लेता है, या तानसेन जब एक राग को जन्म दे देता है, या जब एक महावीर एक जीवन के नए आयाम को पैदा कर देते हैं, या जब एक बुद्ध एक नया द्वार खोल देते हैं, तब इन्हें जो प्रतीति और जो तृप्ति होती है, वह प्रतीति और तृप्ति सृजन की है।
ध्यान रहे, जहां भी सृजन की क्षमता है, वहां परमात्मा का अनुभव आसान है। इसलिए नान-क्रिएटिव, असृजनात्मक लोग परमात्मा को कभी अनुभव नहीं कर पाते।
लेकिन बड़ी हैरानी की बात है। अनेक लोग हैं, जो परमात्मा की खोज में जाते हैं और बिल्कुल गैर-सृजनात्मक हो जाते हैं। हमारे मुल्क में तो बहुत लोग हैं। हमारे मुल्क में तो कुछ ऐसा है कि जो व्यक्ति परमात्मा की खोज में जाता है, उसका सृजन से कोई संबंध ही नहीं रह जाता।
और ध्यान रहे, सृजन निकटतम है, जहां से उसकी प्रतीति हो सकती है। इसलिए अगर एक साधु सृजन छोड़कर और मुर्दे की भांति जीने लगता है, तो उसे परमात्मा का अनुभव नहीं हो पाएगा, कठिन हो जाएगा। क्योंकि सृजन की घड़ी में परमात्मा की मौजूदगी अनिवार्य है। उसकी मौजूदगी के बिना कहीं भी सृजन नहीं होता। वह कैटेलिटिक एजेंट है। जहां भी कुछ पैदा होगा, वह सदा मौजूद होता है। उसके बिना पैदा ही नहीं होता। और जहां भी विध्वंस होगा, वहां वह सर्वाधिक दूर होता है।
ध्यान रहे, जितना सृजनात्मक क्षण हो, उसकी निकटता होती है। जितने विध्वंस का क्षण हो, उससे उतनी ही ज्यादा दूरी हो जाती है।
इसलिए महावीर ने अगर हिंसा को अधर्म कहा है, तो उसका कारण है। उसका कुल कारण इतना है कि जब भी हम विध्वंस कर रहे होते हैं, तब हम परमात्मा से सर्वाधिक दूरी के बिंदु पर होते हैं। अगर इसे इस भांति समझेंगे, तो अहिंसा का नया अर्थ ख्याल में आएगा। इसे ऐसा समझें, हिंसा का अर्थ है विध्वंस; अहिंसा का अर्थ है सृजन।
लेकिन नासमझ लोगों का कोई हिसाब रखना मुश्किल है। नासमझ लोगों ने अहिंसा का अर्थ लिया है कि हिंसा मत करो, अपने को रोककर बैठ जाओ। उनकी अहिंसा सृजनात्मक या क्रिएटिव नहीं है; मुर्दा, मरी-मराई है। हिंसा विध्वंस है, तो अहिंसा को सृजन होना चाहिए। तो ही अहिंसा उसके विपरीत होगी।
अगर मैं चींटियां न मरें, ऐसा सम्हल-सम्हलकर निकल जाऊं; मैं फूल न तोडूं, क्योंकि हिंसा हो जाएगी; मैं किसी को चोट न पहुंचाऊं कि हिंसा हो

जाएगी; मैं चलना-फिरना, सब गति रोक दूं, क्योंकि हिंसा हो जाएगी; मैं अपने मुंह पर पट्टियां बांध लूं कि कहीं श्वास में कोई जीव-जंतु न मर जाए; मैं पानी छानकर पी लूं कि कहीं कोई हिंसा न हो जाए; मैं रात का भोजन बंद कर दूं-- यह सब ठीक है। लेकिन यह बिल्कुल गैर-सृजनात्मक है, नान-क्रिएटिव है।
इतना काफी नहीं है कि चींटी न मरे; अपर्याप्त है। जरूरी है कि मेरे द्वारा जीवन को जन्म मिले। इतना काफी नहीं है कि कोई मुझसे मरे न; इतना जरूरी है कि मेरे द्वारा जीवन को गति मिले, जीवन बढ़े और फैले। इतना काफी नहीं है कि मैं फूल न तोडूं; यह जरूरी है कि मैं फूल लगाऊं, फूल मेरे द्वारा खिले।
जब तक अहिंसा सृजनात्मक न हो, तब तक नपुंसक होती है। और इस मुल्क की अहिंसा नपुंसक हो गई है, इंपोटेंट हो गई है। क्योंकि उसका अर्थ हो गया है, यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो! डोंट उसका स्वर हो गया है। तो इससे इतना तो हुआ कि विध्वंस मत करो, लेकिन क्या करो, उसका कोई स्वर नहीं है।
परमात्मा की गहनतम प्रतीति सृजन के क्षण में होती है, क्योंकि उसके बिना सृजन नहीं हो सकता।
तो कृष्ण कहते हैं, मैं मौजूद, मेरी मौजूदगी काफी है। हे अर्जुन! मेरी उपस्थिति मात्र से प्रकृति सर्व जगत को रच लेती है। और इस ऊपर कहे गए कारण से ही जगत बनता और बिखरता रहता है। मैं कुछ करता नहीं हूं। मुझे कुछ करना नहीं पड़ता है। मुझे हिलना भी नहीं पड़ता है। मुझे वासना भी नहीं करनी पड़ती है। मुझे इच्छा भी नहीं करनी पड़ती है। बस, मेरा होना ही सृजन है।
अगर हम इसे ऐसा कहें, तो बहुत आसान हो जाएगा। हम सदा कहते रहे हैं, गॉड इ.ज दि क्रिएटर, ईश्वर स्रष्टा है। बेहतर हो, हम कहें, गॉड इ.ज दि क्रिएटिविटी, ईश्वर सृजन की प्रक्रिया है; ईश्वर सृजनात्मकता है। व्यक्ति कम, प्रक्रिया ज्यादा। व्यक्ति कम, प्रवाह ज्यादा। क्योंकि व्यक्ति तो रुका हुआ हो जाता है, प्रवाह सतत गतिमान है। और व्यक्ति की तो सीमा हो जाती है, प्रवाह की कोई सीमा नहीं है।
तो परमात्मा एक सृजन का प्रवाह है। और जहां उसकी मौजूदगी है, वहीं अनंत-अनंत रूपों में सृजन प्रकट होने लगता है। जीवन का खेल उसकी मौजूदगी का आनंद है। उसके मौजूद होते ही जीवन उत्सव से भर जाता है। उसके मौजूद होते ही राग-रंग; उसके मौजूद होते ही फूल खिल उठते हैं और गीत का जन्म हो जाता है।
जहां भी कुछ जन्म रहा हो, वहां मौन होकर बैठ जाना; परमात्मा निकट है।
एक कली फूल बन रही हो, तो भागे हुए मंदिर मत चले जाना!
मगर पागलों का जगत है। फूल जन्म रहा है, वहां वे खड़े भी न होंगे! बल्कि
उस कली को तोड़कर भागेंगे मंदिर की तरफ, परमात्मा को चढ़ा देने के लिए! अच्छा होता कि वहीं बैठ जाते, जब कली फूल बन रही थी। वहां परमात्मा ज्यादा संभव था, बजाय उस मंदिर के, जहां आप फूल को तोड़कर ले आए हैं। पता ही नहीं।
जहां भी कोई चीज पैदा हो रही हो--सुबह का सूरज जन्म ले रहा हो या रात का आखिरी तारा डूब रहा हो; सुबह आ रही हो; भोर पैदा हो रही हो; या सांझ का पहला तारा उग रहा हो--वहां रुक जाना! पवित्र मंदिर बहुत करीब है; वहीं है; वहां ठहर जाना! वहां शांत, उस सृजन के साथ एक हो जाना! तो उसकी उपस्थिति अनुभव में आनी शुरू हो जाएगी।
इसलिए यह हमारी सदी परमात्मा से दूर हो गई मालूम पड़ती है, उसका कारण
यह है कि हम आदमी की बनाई हुई चीजों से इस बुरी तरह घिर गए हैं कि सृजन का कोई सवाल ही नहीं है! क्योंकि आदमी की बनाई हुई चीजों में ग्रोथ तो होती नहीं। आप एक मकान बनाते हैं, वह बढ़ता तो है नहीं। आप एक कार ले लेते हैं, वह बढ़ती तो है नहीं। आदमी की बनाई हुई कोई भी चीज में ग्रोथ तो होती नहीं, विकास तो होता नहीं, जन्म तो होता नहीं। आदमी की तो सब बनाई हुई चीजें मुर्दा हैं; उनमें जीवन की कोई धारा तो है नहीं।
तो बड़े मकान हैं सीमेंट-कांक्रीट के, वे आकाश को छू रहे हैं। उनके पास आदमी कितनी ही देर खड़ा रहे, परमात्मा की प्रतीति नहीं हो पाएगी, क्योंकि वहां कुछ भी तो जन्म नहीं हो रहा है। सीमेंट-कांक्रीट, जैसे मृत्यु का

साकार रूप! जैसे मुर्दा होने का इससे ज्यादा और कोई अच्छा ढंग नहीं हो सकता!
आदमी जितना आदमी की बनाई चीजों से घिर जाता है, उतना ही उसे जन्म के क्षण में खड़ा होना मुश्किल हो जाता है, उतना ही वह सृजन के करीब नहीं रह जाता।
अभी लंदन में सर्वे हुआ, तो दस लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने खेत नहीं देखा है। पांच लाख बच्चों ने कहा कि उन्होंने गाय नहीं देखी है।
अगर ये बच्चे बड़े होकर पूछें कि परमात्मा कहां है? तो कोई कठिनाई है? जिन्होंने गाय नहीं देखी, जिन्होंने खेत नहीं देखा, अगर ये कल कहें कि परमात्मा कहां है? तो इनके प्रश्न में कोई आपको बुराई मालूम पड़ती है? इनका प्रश्न बिल्कुल स्वाभाविक है; क्योंकि जीवन को इन्होंने कहीं भी बढ़ते हुए नहीं देखा। चीजों की दुनिया देखी है, सृजन की दुनिया नहीं देखी।
तो फिर स्वाभाविक है, अगर ये कविता भी लिखेंगे, तो उसमें रेल का इंजन आएगा, आकाश के तारे नहीं आएंगे। ये कविता लिखेंगे, तो उसमें भी मिल की चिमनियां आएंगी, खिलते हुए फूल नहीं आएंगे। अगर ये चित्र भी बनाएंगे--जैसा कि पिछले पचास साल की पूरी चित्रकला कहेगी--अगर ये चित्र भी बनाएंगे, तो उन चित्रों में भी अखबार की कटिंग काट-काटकर चिपका देंगे, कोलाज कहेंगे! उसमें भी आदमी की जो-जो विकृतियां हैं, वे उभरकर सामने आएंगी।
पिकासो के चित्रों को अगर देखा जाए, तो वे हमारे मन की पूरी कथा हैं। लेकिन उनमें फूल खिलते मालूम नहीं पड़ेंगे; उनमें कोई चीज बढ़ती हुई मालूम नहीं पड़ेगी; उनमें किसी का जन्म होता हुआ मालूम नहीं पड़ेगा। स्वाभाविक है। क्योंकि हम एक अस्वाभाविक वस्तुओं के जगत में घिरकर जी रहे हैं, जहां कोई चीज पैदा नहीं होती; हर चीज बनाई जाती है। जहां किसी चीज का जन्म नहीं होता, जहां हर चीज सिर्फ जोड़ी जाती है।
आदमी को प्रभु को खोजना हो, तो सृजन के निकट ही उसे खोज सकता है।
ऐसा होने पर भी संपूर्ण भूतों के महान ईश्वर रूप मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग, मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं।
मूढ़ एक पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ मूर्ख नहीं होता, यह पहले समझ लें। मूढ़, मूर्ख से भी खतरनाक अवस्था है। मूर्ख का मतलब होता है, जिसे पता नहीं है; मूढ़ का मतलब होता है, जिसे पता नहीं है, लेकिन जो सोचता है कि उसे पता है।
इस फर्क को ठीक से समझ लें।
मूर्ख वह है, जिसे पता नहीं है। उसे क्षमा किया जा सकता है। उसे पता ही नहीं है। अज्ञानी है। लेकिन यह अज्ञान सिर्फ अभाव है। इसमें उसे कसूरवार नहीं ठहराया जा सकता। पता नहीं है।
एक छोटा बच्चा है। छोटा बच्चा मूर्ख ही हो सकता है, मूढ़ कभी नहीं हो सकता। मूढ़ होने के लिए जरा ज्यादा उम्र होना जरूरी है। छोटा बच्चा मूर्ख ही हो सकता है, मूढ़ कभी नहीं हो सकता। वह सुविधा बूढ़ों के लिए ही है, मूढ़ होने की। तो जितनी ज्यादा उम्र हो, उतना आदमी ज्यादा मूढ़ हो सकता है। क्योंकि उसे पता बिल्कुल नहीं है, लेकिन ऐसा पता लगने लगता है जीवनभर के अनुभव से कि मुझे पता है।
ईश्वर को जो इनकार करने वाले लोग हैं, वे अज्ञानीजन नहीं हैं। वे वे लोग हैं, जिन्हें ख्याल है कि वे ज्ञानी हैं। स्वयं को ज्ञानी मानने का जिन्हें ख्याल है, वे मूढ़ हो सकते हैं। मूढ़ का मतलब है, अज्ञान अकेला नहीं, धन अहंकार भी। अज्ञान धन अहंकार, तो मूढ़ता पैदा होती है। मूढ़ता का मतलब है कि मैं जानता हूं; और मुझे कुछ भी भीतर पता नहीं है। लेकिन मेरा अहंकार कैसे स्वीकार करे कि मैं नहीं जानता हूं!
आप अपनी तरफ सोचें, तो आपको पता चलेगा, मूर्खता बड़ी बीमारी नहीं है, मूढ़ता बड़ी बीमारी है। कितने सवाल हैं, जिनके जवाब आप देते हैं, बिना जाने हुए!

अगर छोटा बच्चा अपने बाप से पूछता है कि ईश्वर है? बाप को बिल्कुल पता नहीं है। लेकिन वह या तो कहता है, है; या कहता है, नहीं है। कोई भी जवाब दे, लेकिन एक जवाब कभी नहीं देता कि मुझे पता नहीं है। यह मूढ़ता है।
लेकिन एक छोटे बच्चे के सामने बाप कैसे यह माने कि मैं नहीं जानता हूं! पर उसे पता नहीं है, यह बच्चा कितने दिन छोटा रहेगा? थोड़े दिन में इसे पता चल जाएगा कि यह बाप झूठ बोलता रहा है।
इसलिए अगर हर बेटा उम्र पाने के बाद बाप का आदर छोड़ देता है, तो उसका कुल कारण इतना है, बाप के द्वारा की गई बेईमानियां, जो बचपन में बच्चे के साथ की गई हैं। क्योंकि उस वक्त तो बाप ने बड़ा मजा लिया ज्ञानी होने का। फिर जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह पाता है, यह बाप भी उतना ही अज्ञानी है जितना मैं! इसको भी कुछ पता नहीं है। इसने नाहक ही झूठी शान और झूठा अहंकार मेरे ऊपर थोपा। तो आदर खो जाएगा।
सिर्फ वही बाप अपने बेटे का आदर पाने में समर्थ हो सकता है, जो ईमानदार है। ईमानदार का अर्थ है, जो मूढ़ नहीं है; जो मूढ़ता नहीं करता। क्या जरूरत है! जो हमें पता नहीं है, कह दें कि पता नहीं है। जो हमें पता है, कह दें कि पता है। इसमें जो आदमी डांवाडोल होता है, वह मूढ़ है।
कृष्ण कहते हैं, ऐसा होने पर भी--कि परमात्मा की मौजूदगी ही सारे जीवन
की सृजनात्मकता है, कि उससे ही सारा जीवन गतिमान है, कि उससे ही सारा जीवन परिपूर्ण है, कि वही है जीवन का मूल, कि वही उसकी आत्मा है--ऐसा होने पर भी, मूढ़ लोग चारों तरफ यह सब देखकर भी, इस चारों तरफ जीवन को अनुभव करके भी, अपनी मूढ़ता नहीं छोड़ते मालूम पड़ते हैं।
जब भी कोई व्यक्ति ईश्वर के संबंध में बिना जाने वक्तव्य देता है, तब
वह अपने ही साथ नहीं, औरों के साथ भी अपराध कर रहा है। लेकिन हम क्षुद्र बातों के संबंध में कहीं ज्यादा सही वक्तव्य देते हैं। जितनी विराटतर होती है बात, उतने ही हमारे वक्तव्य झूठे होते चले जाते हैं। जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, वे उनको समझाए चले जाते हैं, जो उनसे पूछने चले आए हैं।
एक महिला मेरे पास आती थीं। महत्वाकांक्षी हैं। अधिक लोग हैं। और जब पुरुष महत्वाकांक्षी होते हैं, तो उतना अस्वाभाविक उपद्रव नहीं होता। जब स्त्रियां महत्वाकांक्षी होती हैं, तो भारी उपद्रव होता है। क्योंकि स्त्री स्वभावतः महत्वाकांक्षी नहीं है। इसलिए जब कोई महत्वाकांक्षी स्त्री होती है, तो फिर पुरुष उससे जीत नहीं सकते। क्योंकि वह पागल की तरह होती है। फिर उसके सामने टिकना बहुत मुश्किल है।
आती थीं देवी। बहुत महत्वाकांक्षी हैं। गुरु बनने की महत्वाकांक्षा है। तो मुझसे आकर निरंतर वह एक ही बात पूछती थीं।
यह नहीं पूछती थीं, मैं क्या करूं? वह मुझसे पूछती थीं, मैं दूसरों को क्या करवाऊं? यह नहीं पूछती थीं कि मेरे मन को शांति कैसे मिले? वह मुझसे पूछती थीं, दूसरे लोग बहुत अशांत हैं, उनको शांति कैसे दी जाए? यह नहीं पूछती थीं कि उन्हें कुछ समझना है। वह यही पूछती थीं कि दूसरों को समझाना है, तो कैसे समझाया जाए?
ऊपर से देखने पर लगेगा, बड़ी सेवा की भावना है। मैं उनको कहा भी कि पहले समझो; दूसरों को समझाना महत्वपूर्ण नहीं है। तुम्हें समझ आ जाएगी, तो उसकी मौजूदगी ही दूसरों को समझाने का कारण हो जाएगी। पहले शांत हो जाओ। तुम शांत हो जाओगी, तो तुम्हारे पास जो भी आएगा, वह उस शांति से आकर्षित होगा। वह शांति संदेश बन जाएगी। पर उनका कोई रस ही नहीं था। उनका कोई रस स्वयं में नहीं था।
यह भी मूढ़ आदमी का बुनियादी लक्षण है, उसका स्वयं में, स्वयं के विकास में, सृजन में, स्वयं के रूपांतरण में कोई रस नहीं होता। उसकी उत्सुकता दूसरों में बहुत होती है। असल में वह दूसरों को मैनिपुलेट करने में, दूसरों को चलाने में रस लेता है।
यह बहुत हैरानी की बात है कि जब हम दूसरों को दबाते हैं, तो हम अच्छे ढंग से भी दबा सकते हैं। बुरे लोग बुरे ढंग से दबाते हैं, अच्छे लोग अच्छे ढंग से दबाने लगते हैं। और बुरे आदमी से तो छुटकारा भी कर सकते हो, अच्छे आदमी से छुटकारा बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह इतने प्रेम से दबाता है

आपकी गर्दन कि जिसका कोई हिसाब नहीं है! वह इतने भले मन से दबाता है कि आप यह भी नहीं कह सकते कि मेरी गर्दन घुटी जा रही है! इसलिए भले लोग बुरे लोगों से भी बुरे सिद्ध होते हैं।
उन महिला को एक ही रस था कि दुनिया में क्रांति लानी है, दुनिया को सुधारना है। रोज मेरे पास कोई न कोई आता है, जिसको दुनिया को ठीक करने का ख्याल पकड़ जाता है। अपने को ठीक करने की बात मूढ़ता से छुटकारा दिला सकती है; दूसरों को ठीक करने की बात गहरी मूढ़ता में फंसा देती है।
मैंने उन्हें समझाया, उनकी समझ के बाहर थी बात। वह मुझसे पूछती थीं कि मेरी कुंडलिनी जग गई है या नहीं? आप कह दो।
मैंने उनको कहा कि अगर जग जाएगी, तो तुम्हें पता चल जाएगा। मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं है। पूछती हो, उसका मतलब ही यह होता है कि नहीं जगी है।
जिस दिन मैंने उनसे यह कहा, उसी दिन से उन्होंने आना बंद कर दिया। अब मुझे पता चला है कि वह दूसरों की कुंडलिनी जगा रही हैं। और इतना ही नहीं कि वह जगा रही हैं, दूसरों की जगनी भी शुरू हो गई है! वह और कठिन बात है। मूढ़ता का कोई अंत नहीं है!
कृष्ण कहते हैं कि ऐसे मूढ़ लोग, चारों तरफ मैं मौजूद हूं, तो भी अनुभव नहीं कर पाते। चारों तरफ सब जगह मैं मौजूद हूं, तो भी अनुभव नहीं कर पाते। वे कहते हैं, सामने आ जाओ, तो हम पहचानें!
सदा से नास्तिकों ने यह कहा है। यह बहुत समझने जैसा है। सदा से नास्तिकों ने कहा है, अगर परमात्मा है, तो सामने आ जाए!
वह सब जगह सामने है। वही है; और दूसरा कोई भी नहीं है। लेकिन नास्तिक सदा कहता रहा है कि वह सामने आ जाए, तो हम मान लें। और मजे की बात यह है कि कृष्ण कहते हैं कि जब मेरे जैसा व्यक्ति सामने आ जाता है, कहते हैं कि जब मैं सामने खड़ा हो जाता हूं, तो वे ही मूढ़ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं। अगर मैं सामने आ जाऊं, तो वे कहते हैं कि अरे! तुम तो आदमी ही हो! तुम भगवान कैसे? अगर मैं सामने न आऊं, तो वे कहते हैं, सामने आ जाओ। क्योंकि अगर तुम हो, तो प्रकट हो जाओ। अगर मैं प्रकट हो जाऊं, तो वे मूढ़जन कहते हैं कि तुम? तुम तो ठीक हमारे ही जैसे हो! तुम भगवान कैसे?
एक बात तय है कि भगवान चाहे अप्रकट रूप से सब तरफ मौजूद हो, और चाहे प्रकट रूप से आपके सामने खड़ा हो जाए, अगर मूढ़ता की दृष्टि है, तो दोनों हालत में वह दिखाई नहीं पड़ सकता है। इसलिए सवाल यह नहीं है कि वह सामने है या नहीं, सवाल यह है कि भीतर मूढ़ता है या नहीं।
आप खुद ही सोचो! आपको भी कई दफे लगा होगा कि भगवान सामने हो, तो अभी मान लूं। लेकिन जरा यह सोचो कि अगर भगवान सामने हो, आप मान लोगे?
अति कठिन है। बहुत कठिन है। कठिनाइयों के कारण हैं। वे मूढ़ता की अनेक सीढ़ियां उसके कारण हैं। उनको हम थोड़ा समझ लें।
पहली बात, अपने से जो श्रेष्ठ है, उसे देखना बहुत मुश्किल है। मुश्किल नहीं, असंभव कहना चाहिए, करीब-करीब असंभव। क्यों? क्योंकि जहां तक हमारी चेतना गई है, उसके पार हमारी आंख उठ नहीं सकती। जो हम हैं, वहीं तक हम देख सकते हैं।
इसे ऐसा समझें, आप चल रहे हैं, पास से चींटियों का एक समूह जा रहा है। आपको ख्याल है, चींटियों को आपके होने का पता भी नहीं चल सकता! हां, चींटियों को एक ही ढंग से पता चल सकता है कि आपका पैर पड़ जाए और वे मर जाएं; और समझें कि कोई विपत्ति आ गई। लेकिन एक मनुष्य हमारे पास से गुजर रहा है, यह चींटियों को पता नहीं चल सकता। क्योंकि मनुष्य को देखने के लिए कम से कम मनुष्य की चेतना चाहिए।
हम केवल समान तल पर अनुभव कर सकते हैं। श्रेष्ठ जो है, वह हमारी आंख से ओझल हो जाता है। आप चींटी को देख सकते हैं, चींटी आपको नहीं देख पाती।
ऊंचाई से नीचे देखना आसान है; क्योंकि आप उस रास्ते से गुजर चुके हैं।
लेकिन नीचाई से ऊपर देखना असंभव है।

आप गीता लेकर बैठे पढ़ रहे हैं। आपका कुत्ता भी आपके पास बैठकर पूंछ हिला रहा है। क्या किसी भी तरह हम कल्पना कर सकते हैं कि उसे गीता का पता चल रहा होगा, जो आप हाथ में लिए बैठे हैं?
आप चाहे जोर-जोर से दोहरा रहे हों, तो भी कुत्ता बैठकर अपनी मक्खियां उड़ाता रहेगा। उसकी चेतना में कहीं से भी, यह आपका जो जोर से पाठ चल रहा है, प्रवेश नहीं करेगा। अगर आप गीता को छोड़कर चले जाएं, तो गीता उसे दिखाई पड़ सकती है, पर गीता की तरह नहीं। हो सकता है, वह उससे खेलने लगे। हो सकता है, उसे फाड़ने लगे। हो सकता है, उसे मुंह में दबाकर बाहर घूमने निकल जाए। वह गीता के साथ कुछ कर सकता है, लेकिन गीता का उसे कोई बोध नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है; उसकी चेतना बंद है।
चेतना वहीं तक देख पाती है, जहां तक विकसित होती है। तो परमात्मा अगर सामने भी मौजूद हो जाए, तो भी हम उसे समझ नहीं पा सकते, हम उसे देख नहीं पा सकते। हमारी हालत उसके सामने वैसी ही है, जैसी हमारे सामने एक चींटी की हो जाती है। उसका जो परमात्म रूप है, वह हमारी आंखें कैसे पकड़ें? जहां तक हमारी चेतना का विकास नहीं है, वहां हम देख कैसे पाएंगे? हम वही देख पाते हैं, जो हम हैं।
इसलिए अगर कृष्ण भी सामने खड़े हों, तो हमें कृष्ण में आदमी दिखाई पड़ेगा भलीभांति। और हम गलत नहीं हैं। हम गलत नहीं हैं। जहां तक कृष्ण में आदमी दिखाई पड़ता है, हम बिल्कुल सही हैं। गलती हमारी वहां शुरू होती है कि आदमी के पार हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। आदमी का दिखाई पड़ना तो बिल्कुल ठीक है। कृष्ण आदमी तो हैं ही, लेकिन तब हम सब जोड़ लगाकर कहते हैं कि आदमी तो दिखाई पड़ते हैं, लेकिन भगवान कहीं दिखाई नहीं पड़ते। और जब आदमी दिखाई पड़ते हैं, तो हमारे अहंकार को कष्ट होगा बहुत कि हम सामने खड़े आदमी को, मांस-हड्डी के आदमी को, इसको हम भगवान मान लें! तो हमारे अहंकार को भारी पीड़ा होगी।
ध्यान रहे, पहला सूत्र हमारी मूढ़ता का यह है कि जो हमें दिखाई पड़ता है, उसके पार हम झांकने को भी तैयार नहीं होते। दिखाई तो पड़ेगा ही नहीं, झांकने को भी तैयार नहीं होते। तैयारी भी नहीं दिखाते कि हम उसके पार भी देखने के लिए तैयार हैं, बल्कि हम गैर-तैयारी दिखाते हैं। वह हमारी मूढ़ता है।
हम कहेंगे कि कहां! भगवान तो दिखाई नहीं पड़ता? बल्कि हम सब तरह से सिद्ध करेंगे कि भगवान है ही नहीं। क्योंकि हम कहेंगे कि इस आदमी को कल मैंने देखा था। प्यास लगी थी, तो यह कह रहा था, पानी लाओ! भगवान को पानी की क्या जरूरत? हमने देखा, यह आदमी भोजन कर रहा था। भगवान को भोजन की क्या जरूरत? धूप पड़ती है, तो कृष्ण को भी पसीना आ जाता है। भगवान को पसीने की क्या जरूरत?
हम हजार कसौटियां रखेंगे। और सब कसौटियों से हम सिद्ध करेंगे कि यह आदमी भगवान नहीं है, आदमी ही है। और जब हम सिद्ध कर लेंगे कि यह आदमी है, तो हम को बड़ी तृप्ति होगी। यह हमारी मूढ़ता है।
मजा यह है कि इस सिद्ध करने से हमें कुछ मिलेगा नहीं। अगर यह सही भी है
कि यह आदमी ही है और हमने सिद्ध कर लिया कि आदमी है, तो भी हमें मिलेगा क्या? यह हमारी मूढ़ता है।
दूसरी बात सोचें, हो सकता है, यह भगवान न हो। लेकिन हम इस सिद्ध करने में न पड़ें कि यह भगवान नहीं है। बल्कि यह कहता है, तो हम थोड़ा खोज में लगें विधायक रूप से; मूढ़ता को तोड़ने में लगें। कोशिश करें कि यह आदमी कहता है कि हां, भगवान प्रकट हुआ है, तो देखें, चलें; थोड़ा आगे बढ़ें। थोड़ी अपनी चेतना को ऊपर उठाएं। थोड़ी अपनी जगह छोड़ें। थोड़ा अपना पर्सपेक्टिव, अपना परिप्रेक्ष्य बदलें। देखें कि शायद यह आदमी ठीक कहता हो।
तो मैं आपसे कहता हूं कि यह भगवान न भी हो, तो भी यह खोज आपकी चेतना को बड़ा कर जाएगी। अगर यह हो, तब तो बात ही अलग। अगर यह न भी हो, तो भी इस खोज में आप ऊपर उठ जाएंगे।
मूढ़ता हमारी कहती है कि सिद्ध करो, यह नहीं है। लेकिन हमें पता नहीं
कि इसे हम सिद्ध करके कि नहीं है, केवल अपने विकास की संभावनाओं को

अवरुद्ध कर रहे हैं, एक द्वार बंद कर रहे हैं। यह सवाल नहीं है महत्वपूर्ण कि यह है या नहीं, हम इसे देखने की कोशिश करें।
बुद्ध के पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हमें तो कोई ऐसी बात नहीं दिखाई पड़ती। महावीर के पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम आपको तीर्थंकर नहीं मान सकते।
न मानने से महावीर की कोई हानि नहीं होती। महावीर किसी वोट की तलाश में नहीं हैं कि कितने लोग मानते हैं। तो महावीर आपसे हाथ जोड़कर नहीं कहेंगे कि मानो कि मैं तीर्थंकर हूं! क्योंकि अगर तुमने न माना, तो मैं कहीं का न रह जाऊंगा! तुम्हारे मत पर तो मेरा सब दारोमदार है। तुम मुझे मानो। न बुद्ध आपसे हाथ जोड़कर कहेंगे कि मैं बुद्ध हूं, मुझे मानो। न कृष्ण कहेंगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप मानते हैं कि नहीं मानते। उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता।
लेकिन आपका न मानना, आपके लिए अवरोध हो जाता है। वे हैं या नहीं, यह भी गौण है, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है। अगर कोई व्यक्ति पत्थर को भी भगवान मानकर चल पड़े, तो पत्थर भगवान होगा कि नहीं होगा, यह सवाल नहीं है; वह आदमी जरूर ऊपर उठना शुरू हो जाएगा। यह सवाल उस आदमी के अपने अंतर्विकास का है। और हम जितने विराटतर को मान लेते हैं, उतने विराटतर तक पहुंचने की हमारी चेतना का मार्ग साफ हो जाता है।
इसे हम ऐसा देखें, अगर मूढ़ न हो आदमी, अमूढ़ हो, तो वह क्या करेगा?
मूढ़ आदमी कहेगा कि कृष्ण को भूख लगती हमारे जैसी, तो यह आदमी है। कृष्ण को भी कांटा गड़ता, खून निकलता, तो ये हमारे जैसे आदमी हैं। भगवान हम न मानेंगे। यह मूढ़ का तर्क है।
अमूढ़ का तर्क इससे उलटा होगा; यही, लेकिन दिशा बदल जाएगी। वह कहेगा, कृष्ण को भी भूख लगती है और ये भगवान हो सकते हैं; मुझे भी भूख लगती है, मैं भी भगवान क्यों नहीं हो सकता हूं! यह अमूढ़ आदमी का तर्क है। वही है, तर्क में कोई फर्क नहीं है। लेकिन दिशा बिल्कुल बदल गई है। वह कहेगा, कृष्ण के भी पैर में कांटा गड़ता है, तो खून निकलता है; मेरे पैर में भी कांटा गड़ता है, तो खून निकलता है। अगर कृष्ण भगवान हो सकते हैं, तो मैं भगवान क्यों नहीं हो सकता हूं!
कृष्ण की मनुष्यता कृष्ण के भगवान होने में बाधा नहीं बनेगी अमूढ़ के लिए; कृष्ण की मनुष्यता स्वयं की मनुष्यता के पार जाने का द्वार बन जाएगी। लेकिन कृष्ण कहते हैं, मूढ़जन मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं।
वे अपने को श्रेष्ठ नहीं समझ पाते मेरे कारण; अपने कारण मुझको भी तुच्छ समझते हैं। वह अपने को श्रेष्ठ समझने का एक मौका उन्हें था कि वे अपनी दीनता से मुक्त हो जाते, कि महिमा से भर जाते, कि गौरवान्वित हो जाते; कि देखते कि मेरी क्या अनंत संभावना है; कि उनका बीज भी भरोसे से भर जाता; कि आशाएं उनमें भी खिल जातीं; कि अभीप्सा उनकी भी जग जाती; दूर का आकाश उनको भी अपने पास मालूम होने लगता; अनंत की दूरी मिट जाती, अगर वे यह देखते कि ठीक मेरे जैसा मनुष्य भी भगवान है। लेकिन वे ऐसा नहीं देखते। वे ऐसा देखते हैं कि अच्छा, मेरे जैसा मनुष्य भगवान का दावा कर रहा है! धोखेबाज है, तुच्छ है। ऐसा दावा नहीं करना चाहिए; यह बात ठीक नहीं है!
मूढ़ता अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का नाम है। लेकिन अपने पैर पर कोई कुल्हाड़ी नहीं मारता। मारने वाला तो यही समझता है कि दूसरे के पैर पर मार रहे हैं। लेकिन कृष्ण के पैर पर कुल्हाड़ी मारने का कोई उपाय नहीं है। सब कुल्हाड़ी आखिर में अपने ही पैर पर पड़ जाएगी। इसलिए वे मूढ़ कह रहे हैं। कह रहे हैं, मुझे तुच्छ समझने में मैं तुच्छ नहीं हो जाता हूं; लेकिन मुझे तुच्छ समझने में तुम्हारी जो गरिमा की संभावना थी, वह खो जाती है।
बुद्ध को देखकर यह सोचने की जरूरत नहीं है कि बुद्ध को ज्ञान हुआ या नहीं। बुद्ध को देखकर यह देखने की जरूरत है कि बुद्ध को हो सका है, तो मुझे भी हो सकता है। यह भरोसा।
बुद्ध की आंखों में झांककर अपने भविष्य में झांकने का नाम ज्ञान है;
और अपने तराजू पर रखकर बुद्ध को तौल लेने का नाम मूढ़ता है। बुद्ध को

दरवाजा बनाओ। हम बुद्ध को तो दरवाजा नहीं बनाते, अपने को दीवाल बनाकर खड़े हो जाते हैं।
फिर आदमी की मूढ़ता का जो केंद्र है, वह उसका अहंकार है, ईगो है। इसलिए दूसरी बात, जब भी कोई आदमी हमें किसी के खिलाफ कुछ कहे, हमारे मन में बड़ी प्रफुल्लता होती है। इसे ख्याल करना।
अगर कोई आदमी किसी के संबंध में कुछ बुराई करे, तो हमारे हृदय का फूल ऐसे खिल जाता है, जैसे वर्षा हो गई, नई सब ताजगी आ गई भीतर। जैसे कोई किसी की निंदा करे हमारे कान में, तो ऐसा लगता है कि कोई संगीत बजने लगा! प्राण नाचने लगते हैं।
इसलिए मजे की बात है, जब भी हमसे कोई किसी की निंदा करे, हम कभी इसकी फिक्र में नहीं पड़ते कि यह सही है या गलत? हम मान लेते हैं। निंदा में कोई तर्क करता ही नहीं। अगर कोई आदमी आकर आपको मेरे बाबत कहे कि वह आदमी चोर है, तो आप एक गवाह तक न पूछेंगे उससे कि कोई गवाह है? आप कहेंगे, मैं तो पहले ही जानता था; पहले ही से पता था। एक गवाह की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। फिर यह भी न सोचेंगे आप कि यह जो आदमी बोल रहा है, कहीं यह खुद तो चोर नहीं है। न; यह भी न सोचेंगे। क्योंकि इस वक्त ऐसी बातें सोचना शोभनीय नहीं है। इस वक्त इस आदमी पर शक करना बिल्कुल ही अशोभन है। संदेह करना ही नहीं, इस वक्त तो श्रद्धा एकमात्र मार्ग है।
जब कोई किसी की निंदा कर रहा हो, तो हमारे चित्त ऐसे श्रद्धावान हो जाते हैं! क्यों? क्योंकि दूसरा अच्छा है, इससे हमारे अहंकार को पीड़ा पहुंचती है। क्योंकि ऐसा लगता है, फिर मैं? दूसरा बुरा है, हमारा अहंकार आनंदित होता है कि बिल्कुल ठीक। अगर सारी दुनिया बुरी है, तो फिर मैं ही अच्छा बच रहता हूं!
तो हम सारी दुनिया बुरी है, ऐसा मानकर चलते हैं। जिनके बाबत हमें अभी पता नहीं है, उनके बाबत भी हम समझते हैं कि सिर्फ पता नहीं है, बाकी होंगे तो बुरे ही। भला आदमी तो कोई हो नहीं सकता, यह हमारी अंतर्निहित आस्था है। यह हमारी आस्तिकता है। सारा जगत बुरा है। किसी का पता चल गया है, किसी का अभी पता नहीं चला है। यह सारा जगत बुरा है।
तो जिसका पता नहीं चला है, उसके बाबत हम अपने मन में संदेह रखते हैं कि
आज नहीं कल! आप एक दिन धोखा दे सकते हैं, दो दिन धोखा दे सकते हैं, कोई भी आदमी सदा तो धोखा नहीं दे सकता! आज नहीं कल कलई खुल ही जाएगी। आज नहीं कल वस्त्र झांककर हम देख ही लेंगे कि तुम भी नंगे हो। कब तक ढांके रहोगे!
तो हम यह भाव रखते हैं। और जैसे ही किसी का पता चल जाता है, हम प्रसन्न
हो जाते हैं। हम जानते हैं कि यह तो हम पहले ही जानते थे। यह हमारा अंतर्निहित विश्वास था। यह तो हमारी अंतरात्मा की पहले से ही दृढ़ आस्था थी कि यह आदमी बुरा है।
लेकिन जब कोई आदमी किसी के बाबत कहता है कि वह भला है, अच्छा है, तो हमारा मन मानने का नहीं करता। सुन भी लें, तो टालरेट करते हैं। सह लेते हैं कि ठीक है; होगा। होगा भी। दूसरी चर्चा छेड़ो! कोई दूसरी बात करें।
और अगर कोई ज्यादा जिद्द करे कि नहीं, भला है ही। संत है। महात्मा है। फलां है, ढिकां है। तो हम कहेंगे, कोई गवाही है? किसने कहा? कौन कहता है? जो कहते हैं, उनकी नैतिकता का कुछ पक्का है? तुमने कैसे जाना? क्या प्रमाण हैं?
जब भी कोई किसी की भलाई की बात करे, तो हमें पीड़ा होती है मानने में, क्योंकि हमारी अंतर्निहित निष्ठा के विपरीत है। यह हमारी मूढ़ता है। क्योंकि मजा यह है इस मूढ़ता का कि जितना ही हम सिद्ध करने में सफल हो जाते हैं कि सारी दुनिया बुरी है, उतना ही हमारे अच्छे होने का उपाय बंद हो जाता है। जब सारी दुनिया बुरी है, तो मुझे अच्छे होने का कोई भी कारण नहीं रह जाता। जब आप सुबह से अखबार पढ़ते हैं और देख लेते हैं कि कितनी औरतें भगाई गईं, कितनी हत्याएं की गईं, कौन-कौन कालाबाजारी में पकड़े गए, तब भीतर-भीतर कोई खड़ा खुश होने लगता है। वह कहता है कि सारी दुनिया ऐसी है।
इसका मतलब यह है कि हम बिल्कुल निश्चिंत रह सकते हैं। हम जैसे हैं, निश्चिंत रह सकते हैं। अभी तक न हमने किसी की औरत भगाई। सोचा है, भगाई नहीं

है! तो सोचने में क्या ऐसी बुराई है, जब लोग भगा ही रहे हैं! तो विचार मात्र कोई इतना बुरा नहीं है। यह सब कालाबाजारी हो रही है, हत्याएं हो रही हैं, सब हो रहा है। भीतर एक तृप्ति होती है कि हम काफी अच्छे हैं। और जिसको यह तृप्ति हो जाती है कि मैं काफी अच्छा हूं, उसने आत्महत्या कर ली अपनी। अच्छा आदमी कभी भी तृप्त नहीं होता अपनी अच्छाई से; बुरा आदमी सदा ही अपनी अच्छाई से तृप्त होता है। अच्छा आदमी सदा एक डिसकंटेंट में जीता है, एक असंतोष में, कि मैं और अच्छा, और अच्छा, और अच्छा कैसे होता चला जाऊं! बुरा आदमी सदा संतोषी होता है अपने बाबत, भीतर के बाबत, कि मैं बिल्कुल अच्छा हूं। और तब बुरा आदमी रोज-रोज नीचे गिरता जाता है। अगर आज वह पहले नर्क में राजी है, तो कल दूसरे में राजी हो जाएगा; परसों तीसरे नर्क में उतरकर राजी हो जाएगा। अच्छा आदमी पहले स्वर्ग में भी खड़ा हो, तो राजी नहीं होता है कि यह स्वर्ग है। वह दूसरे स्वर्ग की आकांक्षा रखता है। दूसरे में पहुंच जाए, तो तीसरे की आकांक्षा रखता है। वह बढ़ता चला जाता है।
ध्यान रहे, वह आदमी मूढ़ है, जो सारी दुनिया को बुरा सिद्ध करने में लगा है। क्योंकि अंततः यह सारी दुनिया की बुराई लौटकर उसकी अपनी बुराई हो जाएगी, और उसके विकास का कोई उपाय न रह जाएगा।
अमूढ़ उसे कहते हैं, जो सारी दुनिया के भले होने का भरोसा रखता है।
जिसकी अंतर्निहित आस्था इस बात की है कि सब लोग भले हैं। और अगर कभी किसी आदमी की बुराई की खबर मिलती है, तो भी वह यह नहीं कहता कि वह आदमी बुरा है।
इतना ही कहता है, आदमी भला है, लेकिन भले आदमी से भी भूल-चूक हो जाती है।
आदमी तो भला ही है। तो भला आदमी भी कभी भटक जाता है। अंतर्निहित आस्था उसकी भलाई की है। वह सारी दुनिया में चारों तरफ भलाई को खड़ा हुआ देखता है। तब उसे अपनी बुराई दिखाई पड़नी शुरू होती है। तब वह अनुभव करता है, इस दुनिया में शायद सबसे पिछड़ा हुआ मैं ही हूं! तब उसके विकास की संभावना, उत्क्रांति, उठ सकता है ऊपर।
लेकिन हमारी मूढ़ता का कोई अंत नहीं है। हम सिद्ध करने में लगे रहते हैं कि कृष्ण भगवान हैं या नहीं, कि बुद्ध भगवान हैं या नहीं, कि महावीर भगवान हैं या नहीं, कि जीसस ईश्वर के पुत्र थे या नहीं, या यह दावा झूठा है! यही तो झगड़ा था। जीसस के बाबत यहूदियों ने झगड़ा खड़ा किया कि वे ईश्वर के पुत्र नहीं हैं; इसलिए सूली दी। और दो-ढाई हजार साल से ईसाई मिशनरी, ईसाई धर्मगुरु सिद्ध करने में लगा है कि वे ईश्वर के पुत्र हैं।
ध्यान रहे, जब हम बहुत सिद्ध करने में लग जाते हैं कि फलां आदमी ईश्वर
का पुत्र है, तब भी हम गवाही देते हैं कि भरोसा हमें है नहीं। सिद्ध बहुत करने का मतलब भी यही होता है। अगर एक आदमी दिनभर कहे कि मैं सदा सच बोलता हूं, मैं सदा सच बोलता हूं, मैं झूठ कभी नहीं बोलता, तो आप पक्का समझना कि वह आदमी चौबीस घंटे झूठ बोलने से पीड़ित है। ये इतनी गवाही की कोई जरूरत नहीं है।
ठीक है; अगर यह अंतर्निहित आस्था है कि एक आदमी ईश्वर है, तो ठीक है।
यह हमारा विकास बन जाना चाहिए। इसे मैं दूसरे को समझाने जाने की कोई जरूरत नहीं है।
यह बड़े मजे की बात है कि आपको पक्का न हो, तो आप दूसरे को समझाने की कोशिश करते हैं। तो अगर ईसाई मिशनरी समझाता फिरता है लोगों को कि ईश्वर का पुत्र है जीसस; जब दूसरे की आंख में झलक आ जाती है भरोसे की, तो उसको भी लगता है कि होगा, जरूर होगा। क्योंकि इतने लोग भी मानने लगे हैं! उसे खुद भी कोई भरोसा नहीं है। क्योंकि भरोसा आत्मक्रांति बन जाता है।
यहूदियों को भरोसा नहीं है। वे सूली पर लटकाते हैं। ठीक सूली पर लटकाने के पहले पायलट ने जीसस से पूछा है, तुम सच-सच मुझे कह दो, क्या तुम ईश्वर के पुत्र हो?
इसे कैसे कहा जा सकता है! और अगर जीसस कह भी दें, तो कौन मानता है? ये कृष्ण चिल्लाकर कह रहे हैं, कौन मानता है? कोई मानने को तैयार नहीं होता। नहीं मानने का गहरा कारण यह है कि हम ऊपर उठने को तैयार नहीं हैं। और
ये बातें खतरनाक हैं। इनको मानें, तो ऊपर उठना पड़ेगा। हम बचाव कर रहे हैं। ये सब डिफेंस मेजर हैं। हम कहते हैं, ये बुद्ध, कुछ भी नहीं हैं। क्योंकि

अगर ये कुछ हैं, तो फिर मुझे आत्मग्लानि पैदा होगी। फिर मुझे पीड़ा होगी शुरू, फिर मुझे संताप होगा कि अगर ये बुद्ध इतने परम आनंद में हो सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं हो सकता हूं। तो फिर मुझे ग्लानि शुरू होगी। तो मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता। मैं कहता हूं, यह सब बनावट है, यह सब दिखावा है। यह आदमी बन-ठनकर, शांत होकर, आंख बंद करके बैठ गया है। कुछ हुआ-वुआ नहीं है। भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर कुछ भी नहीं है।
क्यों? बुद्ध के भीतर प्रवेश करके देखा, कि कृष्ण के भीतर प्रवेश करके देखा, कि यह आदमी भगवान है या नहीं हैं?
नहीं, देखने की जरूरत नहीं है। हम देखने के पहले ही जानते हैं कि नहीं है। यह हमारा जानना हमारी मूढ़ता है। और यह मूढ़ता बड़ी महंगी पड़ गई है। इसलिए एक बहुत मजे की घटना घटती है। वह घटना यह है कि इस जगत में हम कृष्ण, बुद्ध या महावीर जैसे लोगों को उनके मरने के बाद ही उनको भगवान मान पाते हैं, जिंदा में नहीं मान पाते। क्योंकि मरने के बाद कई आसानियां हो जाती हैं। पहली आसानी तो यह हो जाती है कि उनका मनुष्य रूप सामने नहीं रह जाता।
अब जैन मान सकते हैं कि महावीर के पसीने में सुगंध आती है। अब मान सकते हैं। लेकिन अगर महावीर सामने होते, तो मुश्किल पड़ती; इसको प्रमाणित करना पड़ता। अब मान सकते हैं, क्योंकि अब इसमें कोई झगड़ा नहीं है, इसमें कोई झंझट नहीं है। इसमें कोई झंझट नहीं है, इसमें अब कोई झगड़ा नहीं है।
इसलिए मुर्दा व्यक्तियों को भगवान मान लेना बहुत आसान है। आसान इसलिए
है कि उनकी मनुष्यता हमारे सामने से तिरोहित हो गई होती है। राम पर उनके गांव के धोबी को भी भरोसा नहीं था कि यह आदमी भगवान है। अब हम आराम से राम को भगवान मान सकते हैं। अब हमें तकलीफ नहीं है। अब मनुष्य रूप तिरोहित हो गया है। इसलिए अब हमें यह सोचने की सुविधा नहीं है कि वे भी हमारे जैसे मनुष्य हैं, भगवान कैसे हो सकते हैं!
फिर जैसे समय बीतता है, हम कथाएं गढ़ते चले जाते हैं। और उन कथाओं में
हम यह कोशिश करते हैं कि किसी भी तरह से उनका मनुष्य रूप तिरोहित हो जाए। हमारी सारी कथाएं उनके मनुष्य रूप को तिरोहित करने का उपाय हैं। यह सिद्ध हमको करना पड़ता है बाद में कि वे मनुष्य नहीं थे, सिर्फ मनुष्य रूप में दिखाई पड़ रहे थे। फिर सब तरह से हम सिद्ध करते हैं। यह सारा सिद्ध करना हमारी उस मूढ़ता का ही हिस्सा है। जब वे मनुष्य रूप में सामने होते हैं, तो हमें तकलीफ होती है, क्योंकि उस रूप को असिद्ध नहीं किया जा सकता।
बुद्ध भी बीमार पड़ते हैं। यह बुद्ध का भक्त, जो उनको भगवान मानता हो, उसे बड़ी तकलीफ देता है। बुद्ध भी बीमार पड़ते हैं! बुद्ध को तो बीमार नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि बुद्ध कोई मनुष्य तो नहीं हैं!
फिर बाद में उसे कथाएं गढ़नी पड़ती हैं कि बुद्ध इसलिए बीमार पड़े कि उन्होंने किसी भक्त की बीमारी अपने ऊपर ले ली। इसलिए बीमार पड़े। या बुद्ध इसलिए बीमार पड़े कि उन्होंने सारे जगत की बीमारियां अपने में लेकर उनका सबका छुटकारा कर दिया।
जीसस को सूली लगी, तो भक्तों को ख्याल था कि उनको मरना नहीं चाहिए सूली पर; क्योंकि अगर मर गए, तो फिर भगवान कैसे! मनुष्य रूप दिक्कत डाल रहा है। जीसस मर गए, तो भक्तों को बड़ी तकलीफ हुई। तो कथा बाद में गढ़नी शुरू हो गई कि वे तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित हो गए, रिसरेक्ट हो गए!
अगर यह मान लिया जाए कि वे तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित हो गए, तो वे फिर कब मरे? इसका ईसाइयों के पास कोई जवाब नहीं है। फिर वे मरे कब? अगर वे तीन दिन के बाद पुनरुज्जीवित हो गए और देखे गए, तो फिर वे मरे कब? फिर उन्हें दुबारा तो मरना चाहिए! कोई उत्तर नहीं है।
क्यों? हुए जीवित या नहीं, यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन आज दो हजार साल बाद इससे भरोसा मिलता है कि वे भगवान थे। सूली लगा दी, फिर भी जीवित हो गए। आदमी नहीं थे, आदमी होता तो मर जाता।
सूली जब लग रही थी, तब भक्त देख रहे थे आशा से कि कोई चमत्कार होगा! आखिरी क्षण में जीसस कोई खेल दिखाएंगे!

वही आदमी की मूढ़ता! आदमी भगवान को नहीं मानता, चमत्कार को मानता है। चमत्कार हो, तो उसे लगता है कि चलो, कुछ तो अपने से अलग है, कुछ भिन्न है। हाथ से राख निकाल देता है, ताबीज निकाल देता है; जरूर कुछ बात है!
आदमी से मतलब नहीं है। यह आदमी राख से भी दो कौड़ी का हो, तो चलेगा; लेकिन राख निकाल देता है हाथ से! मदारीगिरी से मतलब है। तो मदारी को हम चाहे एक दफा भगवान मान भी लें, हालांकि मन में हम जानते रहेंगे कि जरूर किसी ट्रिक से, कहीं चोगे वगैरह में छिपा रखी होगी--मन में। लेकिन जब तक खुल न जाए, तब तक कुछ कहना ठीक नहीं है। कहीं ताबीज निकाला होगा, क्योंकि स्विस मेड घड़ी अगर हाथ से निकलती हो, तो बिना छिपाए नहीं निकलेगी। हम जानते हैं कि स्विस मेड है; हाथ से निकल कैसे रही है!
ऐसे एक महात्मा बंबई में किसी के घर ठहरे होंगे। वे जब चले गए, तो वह महिला मेरे पास आई और उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। मैं तो सारे अपने मित्रों, परिवारों, संबंधियों को सबको उनका भक्त बना दी। सिर्फ इसीलिए कि वे घड़ी, ताबीज न मालूम क्या-क्या निकाल देते हैं। इस बार बड़ी मुश्किल हो गई है। वे गए हैं और उनका बैग घर में रह गया है। उसमें दो सौ स्विस मेड घड़ियां हैं।
तो मैंने उससे पूछा कि तुझे पहले पक्का भरोसा था?
उसने कहा, भरोसा तो नहीं था। शक तो होता था भीतर कि जरूर कहीं न कहीं घड़ी छिपी होगी। अब प्रमाण मिल गया।
तो अब तू क्या करेगी?
उसने कहा कि अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ी हूं। जिनको मैंने उनका भक्त बनाया, उनको भी मैं कहती हूं, तो वे कहते हैं, तेरा दिमाग खराब हो गया है! मैंने उससे पूछा कि तू जिनको कहती है, उनके कोई निहित स्वार्थ तो नहीं हैं?
उसने कहा, हैं। किसी का लड़का बीमार है; किसी को नौकरी नहीं मिल रही है; किसी का बाप पागल हो गया है; किसी का कुछ हो गया है।
तो अगर यह सिद्ध हो जाए कि वे बाबा चमत्कार जो कर रहे हैं, झूठा है, तो इनके लड़के की नौकरी का क्या होगा? इनकी बीमारी का क्या होगा? फलाने को कैंसर है, उसका क्या होगा?
तो मैंने कहा, तू ठहर! जब लड़के को नौकरी मिल जाए, तब तू बताना जाकर। तब
वे कहेंगे, हमको पहले से ही पता था। अभी उनका इनवेस्टमेंट है। अभी चमत्कार में थोड़ा न्यस्त स्वार्थ है।
कृष्ण को आप न मानेंगे! कृष्ण को आप मान सकते हैं, अगर कोई चमत्कार हो। चमत्कार को मान सकते हैं। क्योंकि हमारी मूढ़ता चमत्कार और मदारीगिरी से प्रभावित होती है। चमत्कार हम देख सकते हैं, हमारे तल पर होता है। हाथ खाली है और राख गिर गई! अब इसमें कोई दिक्कत नहीं है। कोई चेतना ऊपर उठाने की जरूरत नहीं है। यह तो हमारी आंख में भी दिख जाता है कि हाथ खाली था और राख गिर गई। तो चमत्कार हो गया।
जो चमत्कार आपको चमत्कार मालूम पड़ता है, वह आपकी चेतना को ऊपर उठाने वाला सिद्ध नहीं हो सकता। वह आपकी बुद्धि जहां है, वहीं दिख जाता है। बड़ा चमत्कार तो यह है कि हम अपनी मनुष्यता से ऊपर उठकर थोड़ा देख पाएं, तो हमें कृष्ण जैसे व्यक्ति का रूप दिखाई पड़ना शुरू हो।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, वे मुझे तुच्छ समझते हैं, क्योंकि मैं मनुष्य
के शरीर में खड़ा हूं।
वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान वाले अज्ञानीजन राक्षसों के और असुरों के जैसे मोहित करने वाली प्रकृति अर्थात स्वभाव को ही धारण किए हुए हैं।
एक आखिरी बात, मनुष्य अनिर्मित, अपूर्ण चेतना है। जानवरों के पास पूरा व्यक्तित्व है। एक गाय पूरी गाय है; एक कुत्ता पूरा कुत्ता है; आदमी पूरा आदमी कभी नहीं हो पाता। आदमी कम-ज्यादा होता रहता है। आदमी आदमी की तरह पैदा नहीं होता, आदमी उसे बनना होता है। आदमी में विकास है। एक कुत्ता कुत्ते की तरह पैदा होता है। फिर आप किसी कुत्ते से यह नहीं कह सकते कि तुम अधूरे कुत्ते हो, या कम कुत्ते हो। कोई अधूरा कुत्ता नहीं है, कोई कम

कुत्ता नहीं है। सब कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। वह जो कुत्तापन है, वह सबको मिला हुआ है एक-सा।
लेकिन आदमी से हम कह सकते हैं कि तुम थोड़े कम आदमी हो। किसी से हम कह सकते हैं कि तुम थोड़े ज्यादा आदमी हो। किसी से हम कह सकते हैं कि तुम्हारी आदमियत का क्या हुआ? किसी कुत्ते से कह सकते हैं कि तुम्हारे कुत्तेपन का क्या हुआ? कोई अर्थ नहीं है। व्यर्थ की बात है। कुत्ता हमेशा कुत्ता है। उसमें कभी कोई गड़बड़ नहीं होती।
आदमी इस जगत में अपूर्ण व्यक्तित्व है, बाकी सबके पास पूरा व्यक्तित्व है। इस लिहाज से बड़ी कठिनाई है। वह कठिनाई यह है कि आदमी पूरा आदमी न होने से, चाहे तो जानवरों से भी नीचे गिर सकता है। और यही उसकी गरिमा भी है कि वह चाहे तो आदमी से भी ऊपर, देवताओं से भी ऊपर उठ सकता है। इसलिए, आपको यह बात इसलिए कह रहा हूं कि जानवरों में राक्षस कोई भी नहीं होता, क्योंकि जानवरों में देवता कोई भी नहीं होता। आदमी आदमी भी हो सकता है; नीचे गिर जाए, तो राक्षस भी हो सकता है; ऊपर उठ जाए, तो देवता भी हो सकता है। आदमी एक संक्रमण व्यवस्था है। आदमी सुनिश्चित नहीं है; सृजन में, प्रक्रिया में है। तो आदमी दोनों तरफ जा सकता है।
और ध्यान रहे कि जीवन में ठहराव नहीं होता। अगर आप ईश्वर की तरफ नहीं
जा रहे हैं, तो आप राक्षस की तरफ जाने लगेंगे। क्योंकि जाना पड़ेगा ही; रुकाव नहीं है। जीवन में एक गति है। जाना तो पड़ेगा ही। आप रुक नहीं सकते। आप यह नहीं कह सकते कि मैं जहां हूं, वहीं ठहर जाऊंगा। आप कहीं हैं नहीं। जीवन एक गति है। आपको चलना तो पड़ेगा ही। इसमें कोई चुनाव नहीं है। अगर आप ऊपर की तरफ नहीं जा रहे हैं, तो आप नीचे की तरफ जाने लगेंगे।
इसलिए कृष्ण कहते हैं कि यह जो तुच्छ समझने वाली दृष्टि है, मुझे, ईश्वर अगर साकार खड़ा हो, तो तुच्छ समझती है; निराकार हो, तो कहती है, कहां है? यह जो बुद्धि है, यह जो मूढ़ता वाली बुद्धि है, यह राक्षसों जैसी हो जाती है, आसुरी हो जाती है। और फिर अपने ही--अपने ही--हाथ से बनाए गए अंधकार में अपने को डुबाती चली जाती है।
परमात्मा का कहीं भी लक्षण मिले, कहीं भी जरा-सी झलक मिले, उसे इनकार
मत करना। क्योंकि वह तुम्हारे विकास का रास्ता है। कहीं बुराई बिल्कुल पक्की भी हो, प्रमाणित भी हो, तो भी संदेह जारी रखना। क्योंकि उसे मान लेना, तुम्हारे गिरने का उपाय हो जाएगा। शैतान बिल्कुल दरवाजे पर भी आकर बैठ जाए घर के, तो भी समझना कि नहीं है। और परमात्मा कहीं भी दिखाई न पड़े, तो भी जानना कि यहीं है। क्योंकि उसकी यह प्रतीति तुम्हारे भीतर जो हो सकता है विकास, उसके लिए सहयोगी होगी।
श्रेष्ठ को स्वीकार कर लेना, न दिखाई पड़ता हो तो भी; अश्रेष्ठ को इनकार कर देना, बिल्कुल प्रत्यक्ष हो तो भी। तो ही मनुष्य ऊपर की ओर गति कर पाता है।
आज इतना ही।
लेकिन उठेंगे नहीं। पांच मिनट कीर्तन में सम्मिलित होंगे। कौन जाने, कीर्तन से ही उसकी झलक मिल जाए! और कीर्तन जब यहां चले, तो आप खड़े होकर न देखें; बैठकर ही देखें। यहां आस-पास भी लोग आने की कोशिश न करें। ताकि सब लोग देख सकें। पांच मिनट बैठे रहें। ताली बजाएं। कीर्तन में सम्मिलित हों।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
पांचवां प्रवचन

दैवी या आसुरी धारा

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।। 13।।
सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।। 14।।
परंतु हे पार्थ, दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन हैं, वे तो मेरे को सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त हुए
निरंतर भजते हैं।
और वे दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरंतर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए, और मेरे को बारंबार नमस्कार करते हुए, सदा मेरे ध्यान में युक्त हुए अनन्य भक्ति से मुझे उपासते हैं।

मनुष्य की मूढ़ता के संबंध में थोड़ी बातें और जान लेनी जरूरी हैं। क्योंकि उन्हें जानकर ही हम आज के सूत्र में प्रवेश कर सकेंगे। तीन लक्षण कृष्ण ने मूढ़ता के और कहे हैं, वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान वाले। इन तीन शब्दों को ठीक से समझ लेना उपयोगी है। क्योंकि व्यर्थ आशा में
जो उलझा हुआ है, वह सार्थक आशा करने में असमर्थ हो जाता है। व्यर्थ ज्ञान में जो उलझा है, सार्थक ज्ञान की ओर उसकी आंख नहीं उठ पाती। व्यर्थ कर्म में जो लीन है, वह उस कर्म को खोज ही नहीं पाता, जिसकी खोज से समस्त कर्मों के बंधन से मुक्ति संभव है।
व्यर्थ आशा क्या है? और हम सब जिस आशा में जीते हैं, उसमें हमने कभी कोई सार्थकता पाई है? सभी आशा में जीते हैं। आशा के बिना जीना तो कठिन है। आशा के सहारे ही जीते हैं। आशा का अर्थ है भविष्य। अतीत तो दुख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दे जाता। अपने अतीत को लौटकर देखें, तो दुख का एक समूह, दुख की एक राशि मालूम पड़ती है, विफलताओं का एक ढेर, सभी सपनों की राख। पीछे लौटकर देखें, तो कोई कणभर को भी आनंद की कोई झलक नहीं दिखाई पड़ती है। अगर मनुष्य को अतीत के सहारे ही जीना हो, तो मनुष्य इसी क्षण गिर जाए
और जी न सके। क्योंकि अतीत में कुछ भी तो नहीं है, जो प्रेरणा बने। अतीत में कुछ भी तो नहीं है, जो सहारा बने। अतीत में कुछ भी तो नहीं है, जो जीवन को आगे ले जाने के लिए गति दे।
तो अतीत से हम जी नहीं सकते, क्योंकि अतीत में हमारा कोई अनुभव जीवन
का नहीं है। अतीत तो दुख की एक लंबी कथा है। फिर भी हम जीते हैं, तो हमारे जीने की प्रेरणा कहां से आती होगी? पीछे से तो यह धक्का आता नहीं है। निश्चित ही यह खिंचाव आगे से आता होगा। भविष्य हमें खींचता है, और भविष्य के खिंचाव में हम चलते हैं। अतीत के धक्के में नहीं, भविष्य के खिंचाव में, भविष्य के आकर्षण में। भविष्य के आकर्षण का नाम आशा है।
आशा का अर्थ है, जो कल नहीं हुआ, वह आने वाले कल में हो सकेगा। जो कल नहीं मिला, वह कल मिलेगा। जो पीछे संभव नहीं हुआ, वह भी आगे संभव हो सकता है। इस संभावना का जो सपना है, वही हमें जिलाता है। अतीत व्यर्थ गया, कोई हर्ज नहीं; भविष्य में सार्थकता मिल जाएगी। असफलता लगी हाथ में अब तक, लेकिन कल सफलता के फूल भी खिल सकते हैं। यह संभावना, यह आशा हमें खींचती चली जाती है। आशा के वश हम जीते हैं।
उमर खय्याम ने अपने एक गीत की कड़ी में कहा है कि मैंने लोगों को दुख झेलते देखा और फिर भी जीते देखा! लोगों को पीड़ा पाते देखा और फिर भी जीवेषणा से भरा देखा, तो मैं बहुत चिंतित हुआ। इतना दुख है कि समस्त मनुष्य-जाति को आत्महत्या कर लेनी चाहिए। दुख इतना है कि जीवन कभी का

असंभव हो जाना चाहिए था। लेकिन जीवन असंभव नहीं होता। दुखी से दुखी व्यक्ति भी जीए चला जाता है।
तो उमर खय्याम ने कहा है कि मैंने पूछा ज्ञानियों से, बुद्धिमानों से, लेकिन कोई उत्तर न पाया। क्योंकि उन ज्ञानियों और बुद्धिमानों को भी मैंने दुख में ही पड़े हुए देखा। और उनके दरवाजे पर, उनके मकान पर, मैं जिस दरवाजे से प्रवेश किया, सब चर्चा के बाद उसी दरवाजे से मुझे वापस आ जाना पड़ा, वही का वही। कोई उत्तर हाथ न आया। सब जगह से निराश होकर एक दिन मैंने आकाश से पूछा कि जमीन पर इतने लोग रह चुके हैं अरबों-अरबों, न मालूम कितने कालों से! आकाश, तूने सबको देखा है। सब दुख में जीए। क्या तू मुझे बता सकता है कि उनके जीने का राज क्या है? सीक्रेट क्या है? इतना दुख, फिर भी आदमी जीए क्यों चला जाता है?
तो उमर खय्याम ने कहा है, आकाश ने एक ही शब्द उच्चारा, आशा, होप। एक ही छोटा-सा शब्द, आशा।
आदमी जीए चला जाता है, दौड़े चला जाता है। कोई स्वप्न पूरा हो सकेगा, इसलिए पैरों में गति बनी रहती है, प्राणों में ऊर्जा बनी रहती है। लेकिन यहीं व्यर्थ आशा को समझ लेना जरूरी होगा।
आदमी आशा करता है भविष्य की। जिसे उसने आज अतीत बना लिया है, वह भी कल भविष्य था। आज का दिन बीत गया, अतीत हो गया। कल चौबीस घंटे पहले यह भी भविष्य था और मैंने अपनी आशा का दीया इस चौबीस घंटे पर जला रखा था, आज वह भी अतीत हो गया। लेकिन मैं लौटकर भी न देखूंगा कि कल जो मैंने दीया जलाया था आशा का, वह इन चौबीस घंटों में पूरा हुआ या नहीं!
न, बिना यह फिक्र किए मैं अपने दीए की ज्योति को आगे आने वाले चौबीस घंटों में सरका दूंगा। रोज अतीत होता चला जाएगा समय, और मैं कभी लौटकर यह न देखूंगा कि मेरी आशा व्यर्थ तो नहीं है? क्योंकि रोज समय बीत जाता है और वह पूरी नहीं होती।
वृथा आशा का अर्थ है, इस बात की प्रतीति न हो पाए कि जो मैं चाहता हूं,
वह चाहना ही व्यर्थ है; वह कभी पूरा नहीं होगा। उस चाह का स्वभाव ही अपूर रहना है। जो मैं मांगता हूं, वह कभी नहीं मिलेगा। लेकिन समय का धोखा! हम रोज आगे सरका देते हैं, पोस्टपोन करते चले जाते हैं। और कभी यह नहीं सोचते कि जिसे हम आज अतीत कह रहे हैं, वह भी कभी भविष्य था। उसमें भी हमने आशा के बहुत-बहुत बीज बोकर रखे थे, वे एक भी फलित नहीं हुए, एक भी अंकुर नहीं निकला, एक भी फूल नहीं खिला।
तो पहली तो आशा की व्यर्थता इससे बनती है कि समय बीतता चला जाता है, लेकिन जो भूल हमने कल की थी, वही हम आज भी करते हैं, वही हम कल भी करेंगे। मौत आ जाएगी, लेकिन हमारी भूल नहीं बदलेगी।
बुद्धिमान व्यक्ति वह है, जो लौटकर यह देखे कि मैं पचास साल जी लिया, कौन-सी आशा पूरी हुई? अगर मैंने चाहा था प्रेम, तो मुझे मिला? अगर मैंने चाहा था सुख, तो मैंने पाया? अगर मैंने चाही थी शांति, तो फलित हुई? अगर मैंने आनंद की आशा बांधी थी, तो उसकी बूंद भी मिली? मैं पचास वर्ष जी लिया हूं, मैंने जो भी चाहा था, जो आशाएं लेकर जीवन की यात्रा पर निकला था, जीवन के रास्ते में वह कोई भी मंजिल घटित नहीं हुई। फिर भी मैं उन्हीं आशाओं को बांधे चला जा रहा हूं! कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरी आशाएं ही दुराशाएं हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि जो मैं चाहता हूं, वह जीवन का नियम ही नहीं है कि मिले; और वह मैंने चाहा ही नहीं, जो कि मिल सकता था।
हमने क्या चाहा है, उसे हम थोड़ा विस्तार में देखें, तो ख्याल में आ जाएगा कि दुराशा कैसी है।
हमने क्या चाहा है? जो भी चाहा है, एक बात पक्की है, वह मिला नहीं है।
और ऐसा नहीं कि आपने ही ऐसा किया है। पूछें पड़ोसियों से! इतिहास में पीछे लौटें। पूछें उन सबसे, जिन्होंने यही चाहा है। किसी को भी नहीं मिला है। आज तक एक भी मनुष्य ने यह नहीं कहा है कि मुझे दूसरे से सुख मिल गया हो।
लेकिन सभी ने दूसरे से सुख चाहा है। अब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य ने यह नहीं कहा है कि मैं दूसरे से सुख पाने में समर्थ हो गया हूं। जिन्होंने कहा है कि मुझे सुख मिला है, उन्होंने कहा है, सुख मैंने अपने भीतर खोजा, तब

मिला। और जब तक मैंने दूसरे के पास से सुख पाने की कोशिश की, तब तक केवल दुख पाया, सुख नहीं मिला।
लेकिन हम सभी दूसरे से सुख चाह रहे हैं। दूसरे बदल जाते हैं, लेकिन दूसरे से सुख चाहना नहीं बदलता। आज मैं एक स्त्री से सुख चाह सकता हूं, कल दूसरी स्त्री से, परसों तीसरी स्त्री से। स्त्रियां बदल जाती हैं। आज मैं बेटे से सुख चाहता हूं, कल मित्र से चाहता हूं, परसों किसी और से चाहता हूं। आज अपनी मां से सुख चाहता हूं, आज अपने पिता से सुख चाहता हूं, कल अपनी पत्नी से सुख चाहता हूं, लेकिन दूसरा, दि अदर मेरे सुख का केंद्र होता है। और मनुष्य के पूरे इतिहास में एक भी अपवाद नहीं है, एक भी एक्सेप्शन नहीं है, एक भी मनुष्य ने यह नहीं कहा है आज तक कि मुझे दूसरे से सुख मिला। आपको भी नहीं मिला है।
लेकिन एक बड़े मजे की बात है। जब दूसरे से सुख नहीं मिलता, तब आप एक दूसरी भूल करते हैं। और वह दूसरी भूल यह है कि दूसरे से दुख मिला। जब दूसरे से सुख नहीं मिल सकता, तो ध्यान रखना, दूसरे से दुख भी नहीं मिल सकता। भ्रांति एक ही है।
कोई सोचता है, दूसरे से सुख मिल जाए, यह हो नहीं सकता। क्योंकि सुख की सारी संभावना स्वयं से खुलती है, दूसरे से नहीं। खुलती ही नहीं। ठीक वैसे ही, जैसे कोई रेत से तेल निकालना चाहे और न निकले। इसमें कोई रेत का कसूर नहीं है। रेत में तेल है ही नहीं। दूसरे में सुख है ही नहीं। लेकिन जब दूसरे में विफलता आती है--जो कि आएगी ही--तो हम सोचते हैं, दूसरे से दुख मिला। यह दूसरी भूल है। क्योंकि जिससे सुख नहीं मिल सकता, उससे दुख भी नहीं मिल सकता।
तब दूसरा सूत्र आपसे कहता हूं। सब दुख स्वयं के कारण मिलते हैं और सब सुख स्वयं के कारण मिलते हैं। सुख और दुख का केंद्र स्वयं की तरफ है। लेकिन हमारी आशा के जो तीर हैं, वे दूसरे की तरफ लगे रहते हैं। यह वृथा आशा है; और ऐसा व्यक्ति मूढ़ है। मूढ़ वह इसलिए है कि वह जीवन के नियम को समझ ही नहीं पा रहा है। और जीवन का नियम प्रतिपल प्रकट हो रहा है।
जब भी चाहोगे दूसरे से सुख, तत्काल दुख मिलेगा। यह दुख दूसरे से नहीं मिलता, दूसरे से सुख चाहने के कारण मिलता है। आपने नियम के विपरीत चलने की कोशिश की, इसलिए दुख मिल जाता है। आपने नियम के प्रतिकूल बहने की कोशिश की, टांग टूट जाती है। आपने नियम के प्रतिकूल चलने की कोशिश की, दीवाल से सिर टकरा जाता है। इसमें दीवाल का कसूर नहीं है। दीवाल निकलने के लिए नहीं है। निकलना हो, तो दरवाजे से निकलना चाहिए।
लेकिन अगर आपका एक दीवाल से सिर टकराता है, तो आप तत्काल दूसरी दीवाल चुन लेते हैं कि इससे निकलने की कोशिश करेंगे। और जिंदगीभर दीवालें चुनते चले जाते हैं; और वह जो दरवाजा है, उसे चूकते चले जाते हैं। एक दीवाल से ऊबते हैं, तो दूसरी दीवाल को पकड़ लेते हैं। दूसरी से ऊबते हैं, तो तीसरी दीवाल को पकड़ लेते हैं। लेकिन दीवाल को नहीं छोड़ते!
हर आदमी दुखी है। दुख का कारण जीवन नहीं है। दुख का कारण जीवन बिल्कुल नहीं है। क्योंकि जीवन तो परमात्मा का स्वरूप है। दुख वहां हो नहीं सकता। दुख का कारण है, जीवन के जो शाश्वत नियम हैं, उनकी नासमझी।
जमीन में कशिश है। आप एक झाड़ पर से गिर पड़ेंगे, तो टांग टूट जाएगी। इसमें न तो झाड़ का कोई हाथ है और न जमीन का कोई हाथ है। जमीन तो सिर्फ चीजों को नीचे की तरफ खींचती है। आपको झाड़ पर सम्हलकर चढ़ना चाहिए। आप गिरते हैं, तो आप जिम्मेवार हैं। आप यह नहीं कह सकते हैं कि जमीन की कशिश ने मेरे पैर तोड़ डाले। जमीन को कोई आपसे मतलब नहीं है। आप न गिरे होते, तो जमीन की कशिश भीतर पड़ी रहती। वह नियम आप पर लागू न होता। नियम तो काम कर रहे हैं। जब आप उनके प्रतिकूल होते हैं, तो दुख उत्पन्न हो जाता है; जब उनके अनुकूल होते हैं, तो सुख उत्पन्न हो जाता है।
ध्यान रखें, सुख का एक ही अर्थ है, जीवन के नियम के जो अनुकूल है, वह सुख को उपलब्ध हो जाता है। दुख का एक ही अर्थ है कि जीवन के नियम के जो प्रतिकूल है, वह दुख को उपलब्ध हो जाता है। अगर आप दुखी हैं, तो स्मरण कर लें कि आप जीवन के आधारभूत नियम के प्रतिकूल चल रहे हैं। कभी भूल-चूक से

अगर आपको सुख की कोई झलक मिलती है, तो वह इसीलिए मिलती है कि कभी भूल-चूक से आप जीवन के नियम के अनुकूल पड़ जाते हैं। कभी भूल से आप दीवाल से निकलना भूल जाते हैं और दरवाजे से निकल जाते हैं। या कभी ऐसा हो जाता है कि आप दरवाजे को दीवाल समझ लेते हैं और निकल जाते हैं। लेकिन जब भी सुख फलित होता है, तो नियम की अनुकूलता से।
वृथा आशा का अर्थ है, नियमों के प्रतिकूल आशा। जैसा मैंने उदाहरण के लिए आपसे कहा, दूसरे से सुख मिल सकता है, यह एक वृथा आशा है। इसका चुकता परिणाम दुख होगा। और जब दुख होगा, तो हम कहेंगे, दूसरे से दुख मिल रहा है। हम अपनी भ्रांति नहीं छोड़ेंगे, यह मूढ़ता है। दुख मिल रहा है, सबूत हो गया कि मैंने जो चाह की, वह नियम के प्रतिकूल थी।
दूसरे से कुछ भी नहीं मिल सकता है। दूसरे से मिलने का कोई उपाय ही नहीं है। इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, वह हम अपने ही भीतर खोदकर पाते हैं।
और दूसरी तरफ से समझने की कोशिश करें। प्रत्येक व्यक्ति अपने चारों
ओर आशाओं का, इच्छाओं का एक जाल बुनता है। अगर आशाएं टूटती हैं, जाल टूटता है, इच्छाएं पूरी नहीं होतीं, तो वह समझता है कि परमात्मा नाखुश है, भाग्य साथ नहीं दे रहा है। लेकिन वह यह कभी नहीं सोचता कि मैंने जो जाल बुना है, वह जाल गलत है।
भाग्य हर एक के साथ है। भाग्य का अर्थ है, जीवन का परम नियम, दि अल्टिमेट ला। भाग्य सबके साथ है। जब आप भाग्य के साथ होते हैं, तो सफल हो जाते हैं। जब आप भाग्य के विपरीत हो जाते हैं, तो असफल हो जाते हैं। भाग्य किसी के विपरीत नहीं है। लेकिन हमारे जाल में ही बुनियादी भूलें होती हैं। थोड़ा अपने जाल की तरफ देखें।
एक आदमी चाहता है कि धन मुझे मिल जाए, तो मैं धनी हो जाऊंगा। भीतर एक निर्धनता का बोध है हर आदमी को, एक इनर पावर्टी है। हर आदमी को लगता है भीतर, मेरे पास कुछ भी नहीं है; एक खालीपन, एंप्टीनेस, रिक्तता है। भीतर कुछ भी नहीं है। इसे कैसे भर लूं! इस रिक्तता को भरने की दौड़ शुरू होती है। कोई आदमी धन से भरना चाहता है। गलत जाल रचना शुरू कर दिया। क्योंकि ध्यान रहे, धन भीतर नहीं जा सकता, और भीतर है निर्धनता। और धन बाहर रह जाएगा। धन भीतर जाता ही नहीं।
इसलिए एक बड़े मजे की घटना घटती है, जितना धन इकट्ठा होता है, उतनी भीतर
की निर्धनता और प्रकट होने लगती है। इसलिए अमीर आदमी से ज्यादा गरीब आदमी जमीन पर खोजना मुश्किल है। इसलिए कई बार ऐसा हुआ कि अमीरों के बेटे--बुद्ध और महावीर--अमीरी को छोड़कर सड़क पर भीख मांगने चले गए।
यह बड़े मजे की बात है! जैसे ही किसी मुल्क में अमीरी बढ़ती है, वैसे ही
उस मुल्क में एक भीतरी दीनता का भाव गहन हो जाता है। जब तक मुल्क गरीब होता है, तब तक भीतरी गरीबी का पता नहीं चलता। आज पश्चिम के सभी विचारक आंतरिक दरिद्रता की बात करते हैं। चाहे सार्त्र, चाहे कामू, चाहे हाइडेगर, वे सभी यह कहते हैं कि आदमी भीतर बिल्कुल खाली है, एंप्टी है। इसको हम कैसे भरें? गरीब आदमी को पता चलता है, पेट खाली है; अमीर आदमी को पता चलता है, आत्मा खाली है। पेट को भरना बहुत कठिन नहीं है, आत्मा को भरना बहुत कठिन है। असल में पेट खाली होता है, तो आत्मा के खाली होने का ख्याल ही नहीं उठ पाता। इसलिए असली गरीबी तो उस दिन शुरू होती है, जिस दिन यह बाहरी गरीबी मिटती है। उस दिन असली गरीबी शुरू होती है।
एक और गहरी गरीबी है। उस गरीबी को भरने का भाव मन में होता है। क्योंकि खाली कोई भी नहीं रहना चाहता। खाली होना पीड़ा है। भरापन चाहिए, एक फुलफिलमेंट चाहिए।
कैसे उसको भरें? आदमी धन इकट्ठा करने में लग जाता है। नियम की भूल हुई
जा रही है। धन इकट्ठा हो जाएगा, तो भी भीतर भर नहीं सकता। क्योंकि बैंक बैलेंस किसी भी तरह इनर बैलेंस नहीं बन सकता। वह तिजोड़ी में भरता जाएगा। आत्मा में कैसे धन जाएगा?

तो जो आदमी धन इकट्ठा करके सोचता हो कि मैं भरापन पा लूं, वह वृथा आशा
कर रहा है। अगर असफल हुआ, तब तो असफल होगा ही; अगर सफल हुआ, तो भी असफल हो जाएगा।
इसको और ठीक से समझ लें।
अगर असफल हुआ, धन न कमा पाया, तब तो असफल होगा ही। क्योंकि जीवन दुख से
भर जाएगा, फ्रस्ट्रेशन से, विषाद से, कि इतनी कोशिश की और धन भी न कमा पाया! और अगर सफल हो गया, तो और भी बड़ी असफलता अनुभव होगी कि धन कमा लिया; पूरा जीवन गंवा दिया; और धन का ढेर लग गया; और मैं तो खाली का खाली हूं!
कठिनाई धन में नहीं है, बुराई धन में नहीं है। धन का कोई कसूर नहीं है। आपको नियम की समझ नहीं है। आप उससे भरना चाहते थे भीतर की कमी को, जो भीतर नहीं जा सकता! इसमें धन का क्या कसूर है? फिर यह पागल धन को गालियां देना शुरू करेगा। दूसरी भूल शुरू हुई। फिर यह धन को गाली देना शुरू करेगा कि धन पाप है, कि धन बुरा है, कि धन मैं छूना नहीं चाहता। यह वही की वही भूल है। धन का इसमें कोई कसूर नहीं है। धन क्या कर सकता है? धन बाहर की चीज है, बाहर के काम आ सकता है। उसे भीतर भरने की कोशिश आपकी भूल थी, धन का कोई कसूर न था। तीसरी तरफ से देखें।
एक आदमी यश पाना चाहता है, प्रतिष्ठा पाना चाहता है, अहंकार पाना चाहता है--जाना जाए कि वह कोई है! एक अर्थ में ठीक है। खोज है यह भी आंतरिक। हर आदमी जानना चाहता है, वस्तुतः मैं कौन हूं। यह बिल्कुल भीतरी भूख है।
जानना चाहता है, मैं कौन हूं। लेकिन गलत रास्ते पर जा सकता है। बजाय यह जानने के कि मैं कौन हूं, दूसरों को जनाने चल पड़े कि मैं कौन हूं। तो उपद्रव शुरू हो गया! बजाय जानने के कि मैं कौन हूं, क्योंकि मैं कौन हूं यह तो भीतरी खोज है, दूसरों को जनाने की कोशिश कि मैं कौन हूं... ।
जरा देखें, किसी राजनीतिज्ञ को आपका धक्का लग जाए, तो वह आपकी तरफ आंख उठाकर कहेगा, जानते नहीं, मैं कौन हूं? उसको खुद भी पता नहीं है। लेकिन जब वह कह रहा है, जानते नहीं, मैं कौन हूं, तो उसका मतलब है कि अखबार में रोज फोटो छपती है, फिर भी जानते नहीं, मैं कौन हूं! अभी न भी होऊं मिनिस्टर, तो कोई हर्ज नहीं। पहले मिनिस्टर रह चुका हूं, भूतपूर्व हूं, एक्स मिनिस्टर हूं! जानते नहीं, मैं कौन हूं!
आदमी जानना चाहता है स्वयं कि मैं कौन हूं; यह उसकी भीतरी भूख है। लेकिन नियम की भूल हो सकती है। और तब वह आदमी दूसरों को जनाने निकल पड़ेगा कि मैं कौन हूं। जिंदगी बीत जाएगी दूसरों को समझाते-समझाते कि मैं यह हूं, मैं यह हूं। और आखिर में वह पाएगा, अगर सफल हो गया, तो भी असफल हो जाएगा। आखिर में पाएगा, सबने जान लिया है कि मैं कौन हूं--प्रधानमंत्री हूं, कि राष्ट्रपति हूं, कि यह हूं या वह हूं--और मुझे खुद तो अभी तक पता ही नहीं चला कि मैं कौन हूं। तब एक भारी विफलता हाथ लगेगी। अगर असफल हुआ, तो असफल होगा। अगर सफल हुआ, तो भी असफल हो जाएगा।
वृथा आशा का अर्थ है, सफलता संभव ही नहीं है। चाहे जीतो, चाहे हारो, हार निश्चित है। सफलता संभव ही नहीं है। तो दुनिया में जो लोग बहुत यश पा लेते हैं, बड़ी पीड़ा से भर जाते हैं। जिंदगीभर कोशिश की यश को कमाने के लिए। अखबारों की कटिंग काटकर घर में रख लेते हैं। फाइल बना लेते हैं। फिर कोई पूछता ही नहीं। फिर एक वक्त आता है कि सब जान लेते हैं। अब बात समाप्त हो गई। भीतर कुछ घटित नहीं होता। भीतर कुछ घटित नहीं होता।
इसलिए बहुत प्रतिष्ठित लोग भीतर बहुत अप्रतिष्ठा में मरते हैं। बहुत यशस्वी लोग भीतर बड़ी हीनता के बोध से भर जाते हैं; बड़ी इनफीरिआरिटी पकड़ लेती है। सब जानते हैं उन्हें, वे खुद ही अपने को नहीं जानते हैं! सब पहचानते हैं उन्हें, खुद ही वे अपने को नहीं पहचानते हैं! सारी दुनिया उन्हें जान लेती है, और वे अपने से अपरिचित खड़े हैं! पीड़ा पैदा होगी। वृथा आशा!
तो कृष्ण कहते हैं, मूढ़ता का पहला लक्षण, वृथा आशा।
वृथा कर्म। ऐसे कर्म हैं, जो वृथा हैं, लेकिन हम किए चले जाते हैं। वृथा कर्म से अर्थ है, ऐसा कर्म, जिससे सिवाय अहित के और कुछ भी नहीं होता।
उदाहरण के लिए, आप जानते हैं, क्रोध वृथा कर्म है, लेकिन रोज किए चले जाते

हैं। रोज करते हैं, रोज पछता भी लेते हैं। रोज मन में तय भी कर लेते हैं कि अब नहीं करूंगा, क्योंकि वृथापन समझ में आता है। लेकिन घड़ी दो घड़ी भी नहीं बीत पाती है कि क्रोध फिर होता है।
इस कर्म से आपको कोई फायदा नहीं होता। कभी किसी को नहीं हुआ। हो नहीं सकता है। क्योंकि क्रोध का अर्थ है, दूसरे की गलती के लिए अपने को सजा देना। एक आदमी ने मुझे गाली दे दी, यह गलती उसकी है। क्रोध मैं कर रहा हूं, सजा मैं अपने को दे रहा हूं। वृथा कर्म का अर्थ है, गलती किसी और की, अपराधी कोई और, सजा कोई और भुगत रहा है।
बुद्ध को किसी ने गाली दी। बुद्ध ने सुन ली और अपने रास्ते पर चलने लगे। बुद्ध के भिक्षु आनंद ने कहा, इस आदमी ने गाली दी है, इसको कुछ उत्तर नहीं देते हैं?
बुद्ध ने कहा, मैंने बहुत समय पहले से दूसरों की गलतियों के लिए अपने
को सजा देना बंद कर दिया है। दूसरे ने गलती की, गाली देना उसका काम है, वह जाने। मैं कहां आता हूं? दे, न दे; वजनी गाली दे, कम वजनी गाली दे; ताकत लगाए, न लगाए। उसने मेहनत की। गांव से यात्रा करके रास्ते तक आया गाली देने; दे दी। उसने अपना काम पूरा किया, वह लौट गया। मेरा क्या लेना-देना है? न मैंने उसे गाली देने को उकसाया, न मैंने उसे प्रेरित किया। मेरा कोई संबंध ही नहीं है। मैं असंबंधित हूं। मैंने बहुत समय पहले दूसरों की गलतियों के लिए अपने को सजा देना बंद कर दिया है। क्योंकि क्रोध मैं करूं, जलूंगा मैं, आग मेरे भीतर उठेगी। रोआं-रोआं मेरा झुलस जाएगा। प्राण मेरे कंप उठेंगे। रक्तचाप मेरा बढ़ेगा। रात मुझे नींद नहीं आएगी। और यह आदमी, हो सकता है, गाली देकर मजे से सो जाए। इसने अपना काम पूरा कर लिया।
वृथा कर्म का अर्थ है, जिससे सिवाय हानि के और कुछ भी नहीं होता, लेकिन फिर भी हम किए चले जाते हैं। क्यों किए चले जाते हैं? एक यांत्रिक आदत के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। एक मूर्च्छा, एक निद्रा पकड़े हुए है, और किए चले जाते हैं। कल भी किया था, आज भी किया है। सौ में निन्यानबे मौके हैं कि कल भी करेंगे। जीवनभर--अगर आप अपने वृथा कर्मों का अनुपात जोड़ें, तो आपको पता चलेगा कि आपका पूरा जीवन वृथा कर्मों का एक जोड़ है।
अहंकार के लिए हम कितने कर्म करते रहते हैं! शायद हमारे जीवन का निन्यानबे प्रतिशत हिस्सा ऐसे कर्मों में संलग्न होता है, जिससे हम अपने अहंकार को मजबूत करके दूसरों को दिखाना चाहते हैं। चाहे हम कपड़े पहनते हों, चाहे हम मकान बनाते हों, चाहे हम अपनी पत्नी को गहने से लाद देते हों, इन सबके पीछे, इस सारी दौड़ के पीछे, एक मैं को प्रकट करने की चेष्टा चल रही है कि मैं हूं। और मैं साधारण नहीं हूं, नोबडी नहीं हूं, समबडी हूं।
इस मैं को मजबूत करने की कोशिश चल रही है। इस कोशिश में हम सारा जीवन गंवा देते हैं। एक आदमी बड़ा मकान बनाता है, सिर्फ इसलिए कि दूसरों के मकानों को छोटा करके दिखा दे। समझ लीजिए, दिखा भी दिया। दूसरों के मकान छोटे भी हो गए, आपका मकान बड़ा हो गया। होगा क्या? इससे क्या फलित होगा?
यह छोटे बच्चे जैसी दौड़ है। छोटे बच्चे अक्सर अपने बाप के पास टेबल पर ऊपर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं, मैं आपसे बड़ा हो गया। अगर आपके मकान के बड़े होने से आप पड़ोसी से बड़े होते हैं, तो इस बच्चे के तर्क में कोई गलती नहीं है। तब तो जो छिपकली आपकी छत पर चल रही है, वह आपसे बड़ी हो गई! अगर मकान ऊंचा होने से आप बड़े हो सकते, तो बड़ा होना एकदम आसान था। तब तो आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं, बड़ी मुश्किल हो गई। तब तो उनके ऊपर और बादल उड़ रहे हैं, बड़ी मुश्किल हो गई। और चांद-तारे हैं; कहां तक ऊपर जाइएगा? और कहीं ऊंचाई, भौतिक ऊंचाई, भीतरी ऊंचाई से कोई संबंध रखती है?
अक्सर उलटा होता है। अक्सर यह होता है कि भीतरी ऊंचाई से भरा हुआ आदमी बाहरी ऊंचाई की चिंता ही नहीं करता। क्योंकि इतना आश्वस्त होता है भीतरी ऊंचाई से कि बाहरी ऊंचाई से क्या फर्क पड़ता है! इसलिए अक्सर अगर बाप से उसका बेटा कुर्सी पर चढ़कर कहे कि मैं तुमसे बड़ा हो गया, तो बाप खुश होता है, और कहता है, बिल्कुल ठीक, जरूर बड़े हो गए। अगर बाप से बेटा कुश्ती लड़ता है, तो बाप चित जमीन पर लेट जाता है, बेटे को जीत जाने देता है। क्योंकि खुद की

जीत इतनी सुनिश्चित है कि उसे सिद्ध करने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। बेटे को हराने में भी क्या अर्थ है? हारा ही हुआ है।
लेकिन अगर बाप कभी ऐसा मिल जाए--और बहुत बाप मिल जाएंगे, जो छोटे-से बेटे को दबाकर उसकी छाती पर बैठ जाएंगे कि मैं तेरा बाप हूं, तू मुझे हराने की कोशिश कर रहा है?
यह जो छाती पर बेटे की बैठा हुआ बाप है, यह हार गया। इसे भरोसा ही नहीं है, बाप होने का भी भरोसा नहीं है। जो गुरु अपने शिष्य को हराने में लगा हो, वह हार गया। गुरु की तो गुरुता इसमें है कि शिष्य अगर लड़ने आ जाए, तो वह हार जाए और कह दे कि बैठ जाओ मेरी छाती पर; जीत गए तुम।
जितना आश्वासन हो अपने भीतर की स्थिति का, यथार्थ का, उतनी ही बाहर की बातें बेमानी हो जाती हैं। लेकिन हम जो कर्म कर रहे हैं, वे बाहर की बातों के लिए हैं। हम सफल भी हो जाएंगे, तब हम पाएंगे कि वृथा हुआ कर्म, वृथा हुई दौड़।
नेपोलियन भी मरते वक्त वैसा ही दीन और दरिद्र है, सिकंदर भी मरते वक्त वैसा ही दीन और दरिद्र है, जैसा कोई बड़े से बड़ा भिखारी हो सकता है।
यह सारे जीवन की दौड़ का क्या हुआ? क्या है निष्पत्ति? यह इतना कर्म, इतने विराट कर्म का आयोजन, फल क्या है? इतनी दौड़-धूप, पहुंचना कहां होता है? पसीना बहुत बह जाता है, हाथ तो कुछ आता नहीं है!
कृष्ण इसे वृथा कर्म कहते हैं। कृष्ण कहते हैं, यह कर्म व्यर्थ है। मूढ़जन व्यर्थ कर्म करते रहते हैं।
सार्थक कर्म क्या है? सार्थक कर्म का अर्थ है, व्यर्थ कर्म से कितना
ही हम कुछ करें, कभी कुछ नहीं निकलता; और सार्थक कर्म से अभी निकलता है और यहीं निकलता है। व्यर्थ कर्म से कभी कुछ नहीं निकलता। और सार्थक कर्म से अभी निकलता है, यहीं निकलता है, कल की प्रतीक्षा नहीं करनी होती।
जैसा मैंने कहा, जब आप क्रोध करते हैं, तो आप भीतर जल जाते हैं। रास्ते
पर चलते हुए एक अनजान बच्चे की तरफ देखकर आप मुस्कुरा देते हैं, तो भीतर आप खिल जाते हैं। एक आदमी रास्ते पर चला जा रहा है, उसका सामान गिर जाता है, आप उठाकर दे देते हैं और अपने रास्ते पर चले जाते हैं। यह कृत्य बहुत छोटा है, लेकिन भीतर बहुत अर्थ रखता है। कृत्य बिल्कुल छोटा है। एक आदमी का छाता गिर गया है और आपने उठाकर दे दिया और अपने रास्ते पर चले गए। कहीं कोई विराट कर्म नहीं हो गया है। कोई अखबारों में इसकी खबर नहीं छपेगी। इतिहास में कोई लेखा-खोजा नहीं होगा।
लेकिन जो आदमी दूसरे के छाते के लिए झुक जाता है, उठाकर हाथ में दे देता है और चल पड़ता है, इसके भीतर इसी वक्त कुछ हो गया। दूसरे के लिए इतना करने का जो सदभाव है, वह भीतर आनंद को इसी क्षण जन्म दे जाता है--इसी क्षण; कल के लिए नहीं रुकना पड़ेगा।
लेकिन हम किसी का छाता भी इतनी आसानी से उठाकर नहीं दे सकते। छाता उठाकर हम खड़े होकर देखेंगे कि धन्यवाद देता है या नहीं। तब हमने व्यर्थ आशा शुरू कर दी। और हम चूक गए एक मौका, एक शुद्ध प्रेम के कृत्य का, ए प्योर एक्ट आफ लव। मौका चूक गए। हमने धन्यवाद में उसको भी बेच दिया। अपेक्षा ने उसे भी नष्ट कर दिया।
सार्थक कर्म वह है, जो हमारी आत्मा से सहज फलित होता है और जिस कर्म में अनिवार्य रूप से प्रेम मौजूद होता है। व्यर्थ कर्म वह है, जो हानिकर है, और जिसमें अनिवार्य रूप से क्रोध मौजूद रहता है; या अहंकार मौजूद रहता है; या ईर्ष्या मौजूद रहती है। वे सब एक ही बीमारी के अलग-अलग नाम हैं। सार्थक कर्म अगर हमारे जीवन में बढ़ जाएं, तो हमें कल के लिए आशा नहीं रखनी पड़ती, आज ही हम धनी हो जाते हैं। लेकिन सार्थक कर्म को पहचानने का क्या रास्ता है? एक ही रास्ता है, जो कर्म इसी क्षण सारे प्राण को आनंद से भर जाए--इसी क्षण।
और ध्यान रहे, इसी क्षण केवल वे ही कृत्य आपके प्राण को आनंद से भर सकते हैं, जिन्हें पुराने धर्मशास्त्रों में पुण्य कहा है। पाप का अर्थ है, वृथा कर्म, जिससे कभी कोई निष्पत्ति न होगी। पुण्य का अर्थ है, ऐसा कर्म, जो अभी आनंद से भर जाता है।

लेकिन हम ऐसे बेईमान हैं और ऐसे चालाक हैं कि हम पुण्य को भी वृथा कर्म की कोटि में बना लिए हैं, रख दिए हैं। हम अगर पुण्य भी करते हैं, तो इसलिए कि आगे कुछ मिले। एक आदमी अगर एक पैसा भी दान करता है, तो वह पक्का कर लेता है कि इसके कितने गुना ज्यादा मुझे स्वर्ग में मिलेगा।
व्यर्थ हो गया। पुण्य का शुद्ध कृत्य, किसी आदमी को एक पैसा देने का,
यह छोटा-सा कृत्य भी बहुत बड़ा हो सकता था, अगर इसके पीछे कोई मांग न होती, इसके पीछे अगर कोई आशा न होती, कोई अपेक्षा न होती। सिर्फ इस घड़ी में एक आदमी पीड़ा में था और मैंने, चूंकि मेरे पास था, दे दिया था। इससे ज्यादा इसमें कुछ भी न होता, तो यह पुण्य का कृत्य था और एक फूल की तरह मेरे जीवन में खिल जाता और इसकी सुगंध कभी भी समाप्त न होती। और यह फूल कभी भी मुर्झाता नहीं। और यह मेरे प्राणों की अनिवार्य संपत्ति हो जाती।
धन से प्राण नहीं भरे जा सकते, लेकिन ऐसे फूल इकट्ठे होते चले जाएं, तो प्राण भर जाते हैं। और फुलफिलमेंट, एक भरापन अनुभव होने लगता है।
लेकिन मैं चूक गया। मैंने पहले पक्का कर लिया कि यह एक पैसा जो मैं दे रहा हूं, इसका कितने गुना मुझे मिलेगा। मैंने इसको भी भविष्य में खींच दिया। मैंने इसे भी वासना बना दिया। मैंने इसमें भी भविष्य को निर्मित कर लिया और आशा निर्मित कर ली। अब मैं दुख पाऊंगा। यह क्षण भी मैंने खोया, यह पैसा भी मैंने खोया, और अब यह भविष्य मुझे दुख देगा। क्योंकि कोई स्वर्ग इसके उत्तर में मिलने वाला नहीं है। स्वर्ग इतना सस्ता नहीं है।
पुण्य से स्वर्ग नहीं मिलता; पुण्य स्वयं स्वर्ग है। तो पुण्यों के जोड़ से स्वर्ग नहीं मिलता; पुण्य में होना ही स्वर्ग में होना है। पुण्य एटामिक एक्ट का नाम है; एक-एक आणविक कृत्य। बस, मुझे आनंद था, बात समाप्त हो गई। इसके आर-पार नहीं देखना है। लेकिन हम हमेशा आशा में जीते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक टर्किश स्नानगृह में स्नान करने गया। यात्रा से आया था, फटे-पुराने उसके कपड़े थे, धूल-धंवास से भरा था। शक्ल पर भी धूल थी, लंबी यात्रा की थकान थी, दीन-हीन उसके कपड़े थे। तो टर्किश बाथ के सेवकों ने समझा कि कोई गरीब आदमी है।
स्वभावतः, जहां आशा में आदमी जीता है, वहां अमीर की सेवा की जा सकती है, गरीब की सेवा नहीं की जा सकती। होना तो उलटा चाहिए कि गरीब की सेवा हो; क्योंकि वह सेवा की ज्यादा उसे जरूरत है। अमीर को उतनी जरूरत नहीं है; उसे सेवा मिलती ही रही होगी। लेकिन आशा का जो जगत है... ।
नौकर-चाकरों ने उस पर कोई ध्यान ही न दिया। फटी-पुरानी तौलिया उसे दे दी; क्योंकि पुरस्कार की कोई संभावना न थी। उपयोग में लाया हुआ साबुन उसे दे दिया। पानी की भी किसी ने चिंता नहीं की कि गरम है कि ठंडा है। मालिश करने वाले ने भी ऐसे ही हाथ फेरा, जैसे जिंदा आदमी पर हाथ न फेरता हो। नसरुद्दीन सब देखता रहा। स्नान करके बाहर निकला। कपड़े पहने। किसी नौकर को आशा ही नहीं थी कि इससे कुछ टिप भी मिलेगी, कोई पुरस्कार भी होगा। लेकिन उसने अपने खीसे से उस देश की जो सबसे कीमती स्वर्णमुद्रा थी, वह बाहर निकाली। प्रत्येक नौकर को एक-एक स्वर्णमुद्रा दी, और अपने रास्ते पर चल पड़ा।
अवाक रह गए नौकर। छाती पीट ली दुख से। दुख से कह रहा हूं! छाती पीट ली दुख से। क्योंकि अगर इसकी सेवा ठीक से की होती, तो आज पता नहीं क्या हो जाता! स्वर्णमुद्रा कभी किसी ने नहीं दी थी। नवाब भी वहां से गुजरे थे, वजीर भी वहां से गुजरे थे। एक-एक नौकर को एक-एक स्वर्णमुद्रा किसी ने कभी भेंट न दी थी। और इतनी सेवा की थी! और यह आदमी सब को मात कर गया। छाती पर सांप लोट गया। उस रात नौकर सो नहीं सके। बार-बार यही ख्याल आया, बड़ी भूल हो गई। अगर ठीक से सेवा की होती--सेवा तो की ही नहीं उस आदमी की--अगर ठीक से सेवा की होती, तो पता नहीं क्या दे जाता!
मुल्ला नसरुद्दीन दूसरे दिन फिर उपस्थित हुआ। और भी फटे-पुराने कपड़े थे, और भी धूल-धंवास से भरा था। लेकिन ऐसे उसका स्वागत हुआ, जैसे सम्राट का हो। जो श्रेष्ठतम तेल था उनके पास, निकाला गया। जो श्रेष्ठतम साबुन थी, वह आई। नए ताजे तौलिए आए। गरम पानी आया। घंटों उसकी सेवा हुई। घंटों उसे नहलाया गया। वह शांत, जैसे कल नहाता रहा, वैसे ही नहाता रहा। जाते वक्त, जब

जाने लगा, अपने खीसे में हाथ डाला। नौकर सब हाथ फैलाकर आशा में खड़े हो गए। जो उस देश का सबसे छोटा पैसा था, वह उसने एक-एक पैसा उनको भेंट दिया!
छाती पर पत्थर पड़ गया। वे सब चिल्लाने लगे कि तुम आदमी पागल तो नहीं हो! यह तुम क्या कर रहे हो? कल जब हमने कुछ भी नहीं किया, तुमने स्वर्णमुद्राएं दीं! और आज जब हमने सब कुछ किया, तो ये पैसे तुम दे रहे हो? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, यह कल का पुरस्कार है। आज का पुरस्कार कल दे चुका हूं।
उस रात भी नौकर नहीं सो सके!
हम जो भी अपेक्षाएं बांधकर जीते हों। कुछ भी हो जाए, कुछ न करें और स्वर्णमुद्रा मिल जाए, तो भी दुख होता है। कुछ करें, स्वर्णमुद्रा न मिले, तो भी दुख होता है। अपेक्षा में दुख है, अपेक्षा में पीड़ा है।
कृष्ण कहते हैं, और वृथा ज्ञान वाले... ।
वृथा ज्ञान क्या है? जो ज्ञान अपने काम न आए, वह वृथा है। और हम सबके पास ऐसा-ऐसा ज्ञान है, जो काम कभी भी नहीं आता। दुनिया में ज्ञान की कोई भी कमी नहीं है। शायद जरूरत से ज्यादा है। और हर आदमी के पास पर्याप्त मात्रा में है, जरूरत से ज्यादा है। इसलिए हरेक बांटता रहता है, हर किसी को बांटता रहता है।
इस दुनिया में जितने मुक्तहस्त होकर हम ज्ञान बांटते हैं, और कोई चीज नहीं बांटते। हालांकि कोई लेता नहीं आपके ज्ञान को, पर आप बांटते चले जाते हैं। क्योंकि दूसरे के पास भी पहले से ही काफी है। कोई किसी की सलाह नहीं मानता। इस दुनिया में जो सबसे ज्यादा दी जाती है चीज, वह सलाह है। और जो सबसे कम ली जाती है, वह भी सलाह है। कोई नहीं मानता, लेकिन आप बांटे चले जाते हैं।
यह ज्ञान, जो आप बांटते फिरते हैं, आपके किसी काम आया है कभी? इसका आपने कभी कोई उपयोग किया? यह ज्ञान कभी आपके जीवन का अंतरंग हिस्सा बना? यह ज्ञान आपकी बीइंग, आपकी आत्मा बना? यह ज्ञान कभी आपके हृदय में धड़का और आपके खून में बहा? यह ज्ञान कभी आपके मस्तिष्क की मज्जा बन पाया? या बस कोरे शब्द हैं, जो आपके भीतर गूंजते रह जाते हैं? आप एक ग्रामोफोन रिकार्ड हैं?
जरा ख्याल करेंगे अपनी बुद्धि का तो आपको पता लगेगा कि बिल्कुल ग्रामोफोन रिकार्ड हैं। कुछ है, जो डाल दिया जाता है भीतर, फिर आप उसे बाहर डालते रहते हैं। यह ज्ञान वृथा है। क्योंकि जो ज्ञान जीवन को रूपांतरित न कर जाए, आपके खुद ही काम न आए, वह इस दुनिया में किसी और के काम न आ सकेगा। ज्ञान वही सार्थक है, जिसे जानने से ही मेरे जीवन में रूपांतरण हो। ज्ञान का अर्थ ही है, जो क्रांति हो जाए! जानूं और बदल जाऊं। जानूं और बदलूं न, जानकर भी वही रह जाऊं, जो अनजाने में था, अज्ञान में था, तो इस ज्ञान और अज्ञान में फर्क क्या है?
आप गीता पढ़ जाएं और वही के वही आदमी रहें, जो गीता पढ़ने के पहले थे, तो
इस गीता के साथ जो मेहनत हुई, वह व्यर्थ गई। और इस गीता ने जो आपको दिया, वह बेकार है, दो कौड़ी का भी नहीं है। क्योंकि आप वही के वही हैं; कहीं कोई फर्क नहीं हुआ।
मैं देखता हूं, गीतापाठी हैं, चालीस साल से गीता पढ़ रहे हैं। यहां बंबई में कई सत्संगी हैं, वे रोज सुबह से उठकर सत्संग करते रहते हैं। नियमित करते रहते हैं। कौन वहां बोल रहा है, कौन नहीं बोल रहा है, इससे भी कोई प्रयोजन नहीं है, सत्संग करना उनका धंधा है। अपना रोज सुबह सत्संग कर आते हैं। वह वैसे ही, जैसे कोई आदमी रोज सुबह उठकर चाय पीता है, कोई रोज सुबह उठकर सिगरेट पीता है, ये सत्संग करते हैं!
चालीस साल से ये सत्संग कर रहे हैं। शायद सिगरेट पीने वाले को कुछ असर
भी हुआ हो, कैंसर हो गया हो, टी.बी. हो गई हो, वह भी इनको नहीं हुआ। कुछ नहीं हुआ इन्हें। ये सत्संग से ऐसे बचकर निकल जाते हैं! और इनको करवाने वाले लोग भी बैठे हुए हैं कि वे इनको करवाते रहते हैं! वे भी इनको करवाते रहते हैं! उनको भी इससे प्रयोजन नहीं है।

कुछ हैं, जिनको सत्संग करवाना ही है, वह उनकी बीमारी है। कुछ हैं, जिनको सत्संग करना ही है, वह उनकी बीमारी है। ये दोनों तरह के बीमार मिल जाते हैं, फिर चलता रहता है ज्ञान का लेन-देन! कहीं कोई फल नहीं होता। हां, एक फल होता दिखाई पड़ता है कि धीरे-धीरे ये सुनने वाले सुनाने वाले बन जाते हैं, यह एक फल दिखाई पड़ता है! जो सुनते रहे काफी दिन, फिर इतना ज्ञान इकट्ठा हो जाता है कि अब उसका क्या करें? तो ज्ञान का एक ही उपयोग मालूम पड़ता है कि दूसरे को ज्ञानी बनाओ! स्वयं से उसका कोई लेना-देना नहीं है।
अपने भीतर आप जांच करना, कौन-सा ज्ञान है, जिसने आपको छुआ हो, जिसने आपको स्पर्श किया हो, जिसके बाद आप वही आदमी न रह गए हों, जो आप पहले थे; रत्तीभर भी बदल गया हो कुछ!
कुछ बदलता दिखाई नहीं पड़ता हो, तो कृष्ण कहते हैं, यह वृथा ज्ञान है। ऐसा ज्ञानी व्यक्ति, ऐसा वृथा ज्ञानी मूढ़ है। थोड़ा-सा ज्ञान काफी है, जो बदले। ऐसी आग को घर में जलाकर भी क्या करेंगे, जिससे आंच भी न निकलती हो! एक प्याली चाय भी बनानी हो, तो न बनती हो! और जला रहे हैं जिंदगीभर से, और घर में चिल्लाते फिर रहे हैं कि आग जल रही है! कुछ नहीं होता।
थोड़ा-सा इंचभर भी जीवन बदलता हो, ऐसे ज्ञान की तलाश करनी चाहिए; और ऐसे
ही ज्ञान पर भरोसा करना चाहिए; और ऐसे ही ज्ञान को भीतर जाने देना चाहिए। व्यर्थ के ज्ञान को भीतर नहीं जाने देना चाहिए, क्योंकि भीतर कचरा भरने के लिए स्थान नहीं है। जो बहुत कचरा भीतर भर लेता है, फिर कभी सार्थक भी दरवाजे पर आ जाए, तो वह कचरे की वजह से भीतर नहीं जा सकता।
ऐसा मैं देखता हूं बहुत लोगों को। वे मेरे पास आकर कभी कहते हैं कि यह बात तो ठीक लगती है, लेकिन पहले जो बातें सुनी हैं, उनकी वजह से बड़ी मुश्किल हो रही है!
मैं उनसे कहता हूं कि अगर पहली सुनी बातों ने तुम्हारी जिंदगी बदल दी हो, तो मेरी बात को भूल जाओ! और अगर पहली सुनी बातों ने तुम्हारी जिंदगी न बदली हो, तो कचरे की तरह उनको बाहर फेंक दो! इतनी हिम्मत रखनी चाहिए कि जिस ज्ञान से मेरे में कोई अंतर नहीं पड़ा, उसे मैं बाहर उतारकर रख सकूं। जिस दवा से कोई फायदा न हुआ हो, बल्कि बीमारी और सघन हो गई हो, उस दवा को कब तक लेते रहिएगा?
लेकिन बड़े खतरनाक बीमार भी हैं दुनिया में! वे बीमारी को ही नहीं पकड़ लेते, दवा तक को जोर से पकड़ लेते हैं! वे कहते हैं, एक दफे बीमारी रहे कि जाए, लेकिन दवा को हम न छोड़ेंगे!
दवा को कोई पकड़ ले, तो उस मरीज को क्या कहिएगा? यह पागल हो गया। ज्ञान पकड़ने की चीज नहीं है, रूपांतरित होने की है, बदलने की है, आत्मक्रांति की है, ट्रांसफार्मेशन की है।
तो कृष्ण कहते हैं, वह ज्ञान वृथा है, जिस ज्ञान से कोई अंतर नहीं पड़ता। ऐसा व्यक्ति मूढ़ है। वृथा आशा, वृथा कर्म और वृथा ज्ञान से भरे हुए मूढ़जन... ।
इसके बाद वे दूसरे हिस्से में उनकी बात करते हैं, जो मूढ़ नहीं हैं।
वे कहते हैं, हे पार्थ, दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन, मुझको सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त हुए निरंतर भजते हैं।
इसमें दो बातें समझ लेने की हैं। एक तो दैवी प्रकृति के आश्रित हुए--
यह कीमती हिस्सा है।
इस जगत में ऊपर की तरफ जाने वाला प्रवाह है, नीचे की तरफ जाने वाला प्रवाह है। आप जिस प्रवाह को चुन लेते हैं, वही प्रवाह आपके जीवन को गतिमान करने लगता है। इस जीवन में पूरब की तरफ भी हवाएं चलती हैं, और पश्चिम की तरफ भी। जब पश्चिम की तरफ हवाएं चलती हैं, तब अगर आप अपनी नाव को खोल देते हैं, तो आप पश्चिम की तरफ पहुंच जाते हैं। इस जगत में पूरब की तरफ भी हवाएं चलती हैं। जरा प्रतीक्षा करें और नाव का पाल तब खोलें, जब पूरब की तरफ हवाएं चलती हैं, तो आप पूरब पहुंच जाते हैं।
प्रतिपल जीवन में नीचे की तरफ जाने वाली हवाएं भी बहती हैं और ऊपर की तरफ जाने वाली हवाएं भी बहती हैं। आप जिन हवाओं का सहारा ले लेते हैं, आप

उसी यात्रा पर निकल जाते हैं। जब कोई आपको गाली देता है, तब यह हवा दूसरी तरफ जा रही है। अगर आपने अभी पाल खोल दी अपनी नाव की, तो आप क्रोध के जगत में उतर जाएंगे। यह आपका जिम्मा है, यह गाली देने वाले का नहीं है। इस जगत में सब हो रहा है, यह आप पर निर्भर है। जब कोई शांत ध्यान में बैठा है, तब भी एक हवा दूसरी तरफ बह रही है। काश, आप भी इसके पास शांत होकर थोड़ी देर बैठ जाएं, तो शायद आपकी नाव किसी दूसरी यात्रा पर निकल जाए।
बुद्ध एक गांव में बहुत बार गए। उस गांव में एक दुकानदार है। मित्र उसको कहते हैं कि बुद्ध आए हैं। वह कहता है कि अभी तो दुकान पर बहुत ग्राहक हैं। कभी बुद्ध आते हैं, वह कहता है, इस बार तो लड़के की शादी है। कभी बुद्ध आते हैं, वह कहता है कि आज तो मौसम ठीक नहीं है; आज बाहर न जा सकूंगा। कभी कहता है, आज तबियत खराब है।
तीस वर्ष बुद्ध उस गांव से अनेक बार गुजरे, लेकिन वह आदमी यही कहता रहा, कभी यह कारण है, कभी वह कारण है। लेकिन इस आदमी को कोई जाकर गाली दे, ग्राहकों को छोड़कर दरवाजे से बाहर निकल आएगा। कोई इसको गाली दे, धुआंधार वर्षा हो रही हो, फिक्र छोड़ देगा। कोई इसको गाली दे, बीमार हो, मर भी गया हो, तो फिर से प्राण आ जाएंगे; बाहर निकल आएगा कि किसने गाली दी? लेकिन बुद्ध इसके गांव से गुजरते हैं, तो यह तीस साल तक कोई न कोई बहाना खोजता रहता है। मैं पटना में था, वहां के कलेक्टर मुझे रात ग्यारह बजे मिलने आए। तो मैंने उनसे कहा कि अब तो मैं सोने जा रहा हूं, बिस्तर पर बैठ गया हूं, आप देख ही रहे हैं। बस, अब सिर रखने की देर थी और आप आ गए हैं। आप कल सुबह आठ बजे आ जाएं। उन्होंने कहा, आठ बजे तो मैं आ ही नहीं सकता, क्योंकि आठ बजे तो मैं सोकर ही नहीं उठता।
मैंने उनको कहा कि नौ बजे आ जाएं, क्योंकि फिर नौ से ग्यारह मैं उलझा रहूंगा। उन्होंने कहा, नौ बजे मैं बिल्कुल नहीं आ सकता।
क्या तकलीफ है?
उन्होंने कहा, नौ बजे तक तो मैं स्नान वगैरह करके कोर्ट जाने की तैयारी करता हूं।
तो मैंने उनको कहा कि आप पांच बजे आ जाएं। उन्होंने कहा कि पांच बजे
भी नहीं आ सकता, क्योंकि साढ़े चार बजे तो दफ्तर से लौटता हूं, थका-मांदा होता हूं।
तो मैंने उनसे पूछा कि आप मुझसे मिलना चाहते हैं कि मैं आपसे मिलना चाहता हूं? कौन किससे मिलना चाहता है, यह तय हो जाए!
अनेक लोग ऐसे हैं, वे कहते हैं कि हम तो इसी वक्त नाव छोड़ेंगे; हवा को पूरब की तरफ ले जाना चाहिए। हवा को पूरब की तरफ जाना है कि आपको पूरब की तरफ जाना है?
फिर मैंने उनसे कहा कि सोना छोड़ नहीं सकते पंद्रह मिनट पहले; स्नान पंद्रह मिनट पहले कर नहीं सकते; दफ्तर से थककर आए, तो मिलने आ नहीं सकते। तो यह जो आप कहते हैं कि मुझे परमात्मा की तलाश है, यह परमात्मा लास्ट आइटम मालूम पड़ता है! यह आखिरी, फेहरिस्त में आखिरी मालूम पड़ता है। क्योंकि नींद भी इससे महत्वपूर्ण है, दफ्तर भी इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है, थकान भी इससे ज्यादा महत्वपूर्ण है। तो ऐसा मालूम पड़ता है कि परमात्मा पर बड़ा उपकार कर रहे हैं!
कृष्ण कहते हैं, यह मूढ़ता है, यह मूढ़-भाव है।
अमूढ़, बुद्धिमान वह है, जो अपने को दैवी प्रकृति के आश्रित कर लेता है। जो चौबीस घंटे इस खोज में रहता है कि परमात्मा की तरफ कहां हवा बह रही है, मैं उसमें सम्मिलित हो जाऊं। मेरे सहारे तो शायद मैं न जा सकूं। शायद अकेला मेरा इतना बल नहीं; शायद मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं; लेकिन हवा जब बह रही हो, तो मैं सम्मिलित हो जाऊं।
हम भी खोजते हैं हवाएं, लेकिन हम वे हवाएं खोजते हैं, जो हमें नर्क की तरफ ले जाएं। हवाओं का कोई कसूर नहीं है। आप खोल लेते हैं पाल बेवक्त, फिर दुख पाते हैं। समझदार आदमी समय पर पाल खोलना जानता है। और सदा तलाश में रहता है कि कब पाल बंद कर ले, कब पाल को खोल ले; कब नाव को छोड़ दे; कब नाव को

रोक ले। थोड़े ही दिन में उसे पता चल जाता है कि इस जीवन में दो धाराएं हैं, दो आकर्षण हैं, दो मैग्नेट्स हैं, जो काम कर रहे हैं।
जैसा मैंने आपको कल कहा कि मनुष्य अपूर्ण है और वह नीचे की तरफ भी जा सकता है, आखिरी नीचाई तक जा सकता है; और वह आखिरी ऊंचाई तक भी जा सकता है। वह निम्नतम हो सकता है और श्रेष्ठतम भी। अब यह उस पर ही निर्भर है कि वह किस धारा के वशीभूत होता है।
दैवी धारा उसे कहते हैं, जो आपके भीतर रोज-रोज दिव्यता को बढ़ाती चली जाए। तो जांचते रहें अपने भीतर कि मैं जिस जीवन में चल रहा हूं, उसमें मेरी दिव्यता बढ़ रही है या घट रही है?
अक्सर तो ऐसा होता है कि बूढ़े लोग कहते हैं कि बचपन बहुत अच्छा था; स्वर्ग था। इसका मतलब क्या हुआ? मैं बूढ़े कवियों को मिलता हूं, तो वे गीत गाते हैं बचपन के। वे कहते हैं, बचपन स्वर्ग था। वह शांति! वह निर्दोषता! तो जिंदगीभर कहां बहे तुम? बचपन तो शुरुआत थी यात्रा की। अब बूढ़े हो गए, अस्सी साल के हो गए, अभी भी कहते हो, बचपन बड़ा निर्दोष था, तो यह पूरी जिंदगी यात्रा तुमने किस दिशा में की? गलत; कहीं तुम उलटे ही बहे। अन्यथा बूढ़े आदमी को कहना चाहिए कि बचपन निर्दोष था, अब महानिर्दोषता फलित हुई है। बचपन आनंद था, लेकिन इस आनंद के सामने कुछ भी नहीं था, जो आज उतरा है। तब तो यात्रा बढ़ती हुई, तब तो आप दिव्य की ओर बढ़े।
अगर एक आदमी बगीचे की तरफ जाता है, तो बगीचा नहीं भी आता, तो भी बहुत पहले ठंडी हवाएं मालूम पड़ने लगती हैं, तो भरोसा बढ़ता है कि बगीचा करीब होगा। अभी बगीचा नहीं आया, लेकिन फूलों की सुगंध आने लगती है, तो भरोसा बढ़ता है कि बगीचा करीब होगा। अभी बगीचा नहीं आया, लेकिन पक्षियों की चहचहाहट सुनाई पड़ने लगती है, तो भरोसा बढ़ता है कि बगीचा करीब आया। अगर आप बगीचे की तरफ बढ़ रहे हैं, और पक्षियों की आवाज खो जाती है, फूलों की सुगंध आनी बंद हो जाती है, फिर ठंडी हवाओं का भी पता नहीं चलता, तो एक दफा तो रुककर सोचें कि बगीचे की तरफ बढ़ रहे हैं कि बगीचे से विपरीत चले जा रहे हैं?
हम जिसे जिंदगी कहते हैं, वह जिंदगी हमें और घने दुख में ले जाती है।
हम जिसे जिंदगी कहते हैं, वह और बड़े नर्कों का द्वार खोलती चली जाती है। तो हम विकसित होते हैं या पतित होते हैं? हम नीचे गिरते हैं या ऊपर उठते हैं? दैवी धारा का अर्थ है, जहां से भी, जिस परिस्थिति में भी, जिस घटना में
भी खड़े हों, वहां तत्काल खोजें कि इसमें दैवता की तरफ जाने का मार्ग क्या है? और मैं आपसे कहता हूं, ऐसी कोई घटना नहीं है, जहां दोनों धाराएं मौजूद न हों।
एक आदमी आपको गाली देता है। आप यह भी सोच सकते हैं कि इस आदमी ने गाली दी। अगर ऐसे मैंने बरदाश्त कर लिया, तब तो हर कोई मुझे गाली देने लगेगा। इसका मुंह बंद करना जरूरी है। आपने एक धारा चुनी। आप वहीं खड़े होकर यह भी सोच सकते थे कि इस आदमी ने एक ही गाली दी; सिर्फ गाली ही दी, मुझे मारा नहीं। बड़ी कृपा है। आदमी बड़ा भला है। मार भी सकता था। आपने दूसरी धारा चुनी।
प्रत्येक घटना में दोनों धाराएं मौजूद हैं, चुनाव आपका है। ऐसा आदमी नहीं है बुरे से बुरा, जिसमें परमात्मा की झलक न हो। और ऐसा आदमी नहीं है भले से भला, जिसमें आप शैतान को न खोज लें। चुनाव आपका है। चुनाव बिल्कुल आपका है। और जो आप चुनेंगे, वही आपके जीवन का प्रवाह हो जाएगा।
तो कृष्ण कहते हैं, दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्माजन हैं... ।
और महात्मा का इतना ही अर्थ होता है कि जो दैवी प्रकृति के आश्रित हुआ, जो अब सब जगह दैवता का मार्ग खोजता है, जो सब जगह मंदिर की तलाश करता है।
मैंने लोगों को मंदिर में जाते देखा है। वहां वे पता नहीं क्या तलाश करते हैं! अगर मंदिर में बैठे हुए लोगों की बातचीत सुनें, तो पता चलेगा कि वे क्या बात कर रहे हैं! साधु समझा रहे हैं, उनके आस-पास बैठी हुई स्त्रियों की बातचीत सुनें कि वे क्या बातचीत कर रही हैं?

स्त्रियां इसलिए कह रहा हूं कि पुरुष तो अब साधुओं को सुनने जाते ही नहीं, इसलिए उनकी बात छोड़ दें। या जाते भी हैं, तो कुछ अपनी पत्नी के पीछे चले जाते हैं, कुछ दूसरों की पत्नियों के पीछे चले जाते हैं! साधु से कुछ लेना-देना नहीं होता।
ये जो बैठे हुए लोग हैं, इनसे पूछें कि वहां किसलिए जाते हैं? क्या बात करते हैं? क्या सोचते हो मंदिर में बैठकर? चर्च में भी बैठकर चिंतन क्या चलता है? मस्जिद में भी भीतर क्या होता रहता है? क्योंकि मस्जिद काम नहीं आएगी; वह जो भीतर हो रहा है, वही काम आएगा।
वेश्या के घर में भी बैठकर अगर भीतर दैवी आश्रित कोई बह रहा हो, तो शायद परमात्मा तक पहुंच जाए। और मंदिर में भी बैठकर अगर भीतर कोई उलटी धारा में जा रहा हो, तो परमात्मा कुछ भी नहीं कर सकता, कोई उपाय नहीं है। आप कहां है, यह सवाल नहीं है। आपकी अंतर्धारा किस ओर बही जा रही है!
मैंने सुना है कि एक साधु और एक वेश्या की एक साथ मृत्यु हुई, एक ही दिन। आमने-सामने घर था। मृत्यु के दूत लेने आए, तो दूत बड़ी मुश्किल में पड़ गए। उन्हें फिर जाकर हेड आफिस में पता लगाना पड़ा कि मामला क्या है! क्योंकि संदेश में कुछ भूल मालूम पड़ती है। साधु को ले जाने की आज्ञा हुई है नर्क, और वेश्या को आज्ञा हुई है स्वर्ग! तो उन्होंने कहा, इसमें जरूर कहीं भूल हो गई है! साधु बड़ा साधु था; वेश्या भी कोई छोटी वेश्या नहीं थी। मामला सीधा साफ है, गणित में कोई गड़बड़ है। वेश्या को नर्क जाना चाहिए, साधु को स्वर्ग जाना चाहिए।
काश, जिंदगी इतनी सीधी होती, तो सभी वेश्याएं नर्क चली जातीं और सभी साधु स्वर्ग चले जाते। लेकिन जिंदगी इतनी सीधी नहीं है, जिंदगी बहुत जटिल है।
ऊपर से पता लगाकर लौटे। खबर मिली कि वही ठीक आज्ञा है, वेश्या को स्वर्ग ले आओ, साधु को नर्क। उन्होंने पूछा, थोड़ा हम समझ भी लें, क्योंकि हम बड़ी दुविधा में पड़ गए हैं। तो दफ्तर से उन्हें खबर मिली कि तुम जरा नए दूत हो; तुम्हें अनुभव नहीं है। पहले ही दिन ड्यूटी पर गए थे। पुरानों से पूछो! यह सदा से होता आया है; यही नियम है। फिर भी उन्होंने कहा, थोड़ा हम समझ लें।
तो पता चला कि जब भी साधु के घर में सुबह कीर्तन होता, तो वेश्या रोती अपने घर में। सामने ही घर था। रोती, रोती इस मन से कि मेरा जीवन व्यर्थ गया। कब वह क्षण आएगा सौभाग्य का कि ऐसे कीर्तन में मैं भी सम्मिलित हो जाऊं! मन भी होता, तो कभी द्वार के बाहर निकल आती। साधु के मंदिर के पास कान लगाकर खड़ी हो जाती दीवाल के। लेकिन मन में ऐसा लगता कि मुझ जैसी पापी मंदिर में कैसे प्रवेश करे! तो कहीं साधु को पता न चल जाए, इसलिए चुपचाप छिप-छिपकर कीर्तन सुन लेती। मंदिर की सुगंध उठती, धूप जलती, मंदिर के फूलों की खबर आती, मंदिर का घंटा बजता; और चौबीस घंटे, पूरे जीवन वेश्या मंदिर में रही। चित्त मंदिर में घूमता रहा, घूमता रहा, घूमता रहा। और एक ही कामना थी कि अगले जन्म में चाहे बुहारी ही लगानी पड़े, पर मंदिर में ही जन्म हो। मंदिर के द्वार पर ही!
साधु भी कुछ पीछे न थे वेश्या से। जब भी वेश्या के घर रात राग-रंग छिड़ जाता, आधी रात होती, तो वे करवट बदलते रहते! वे सोचते, सारी दुनिया मजा लूट रही है। हम कहां फंस गए! और सामने ही, भगवान! सामने के सामने ही आनंद लुटा जा रहा है और एक हम मुसीबत में फंस गए। यह साधुता कहां से ले फंसे! कई बार भाग जाते निकलकर घर से; वेश्या के घर का चक्कर लगा आते। भीतर घुसने की कोशिश भी करते, तो हिम्मत न होती कि मैं साधु, भीतर कैसे जा सकता हूं! कोई देख न ले!
वेश्या मंदिर में रही, साधु वेश्यालय में रहे। देखा किसी ने नहीं यह, क्योंकि यह घटना भीतर की है। और जो बाहर से तौलते हैं, वे नहीं देख पाएंगे। महात्मा, कृष्ण उसे कहते हैं, जो दैवी प्रवाह में है। जो शुभ की, सौंदर्य की, सत्य की, सब दिशाओं से खोज करता रहता है। जिसका चुनाव शुभ का है। अशुभ दिखाई भी पड़े, तो आंख बंद कर लेता है। शुभ दिखाई न भी पड़े, तो भी देखता है। धीरे-धीरे सारा जगत शुभ हो जाता है।

सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त हुए निरंतर मुझे भजते हैं।
कुछ भी वे करते हों, कुछ भी वे सोचते हों, एक बात निरंतर, सब ओर, मैं उन्हें दिखाई पड़ता हूं। सबमें आत्यंतिक कारण की भांति छिपा हुआ, सबके भीतर सनातन मूल की तरह अप्रकट, सब स्थितियों में, सब दशाओं में मेरा भजन उनके चित्त में अनन्य रूप से चलता रहता है।
और वे दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरंतर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए, तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए और मेरे को बारंबार नमस्कार करते हुए, सदा मेरे ध्यान में युक्त हुए भक्ति से मुझे उपासते हैं।
इसमें दो-तीन बातें समझ लेने की हैं।
एक, परमात्मा है या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है; आप भक्त हो सकते हैं
या नहीं, यह महत्वपूर्ण है। इसे फिर से दोहरा दूं, परमात्मा न हो, चलेगा। आप भक्त न हुए, नहीं चलेगा। भगवान मूल्यवान नहीं, भक्त मूल्यवान है।
ऐसा समझें कि भगवान तो खूंटी की तरह है, भक्त टांग दिए कपड़े की भांति है। खूंटी के लिए तो कोई खूंटी नहीं लगाता, कपड़ा टांगने के लिए कोई लगाता है। कपड़ा टांगने को ही न हो, तो खूंटी व्यर्थ है। और कपड़ा टांगने को हो, तो हम किसी भी चीज को खूंटी बना सकते हैं। जिस घर में खूंटी नहीं होती, लोग दरवाजे पर टांग देते हैं, खिड़की पर टांग देते हैं, खीली पर टांग देते हैं। खूंटी हो, कपड़ा ही न हो, तो क्या टांगिएगा? कपड़ा हो, खूंटी न हो, तो कहीं भी टांग लेते हैं।
असली सवाल भगवान नहीं है; असली सवाल भक्त है। भगवान तो केवल निमित्त है। क्योंकि उसके बिना भक्त होना मुश्किल हो जाएगा। वह तो केवल सहारा है। इसलिए योग के जो पुराने शास्त्र हैं, वे बहुत अदभुत हैं। वे कहते हैं
कि भगवान भी एक साधन है; वह भी एक उपकरण है, जस्ट ए मीन्स। परम उपलब्धि के लिए, जीवन के परम आनंद की उपलब्धि के लिए भगवान भी एक उपकरण है, एक साधन है। और ऐसे लोग भी हुए हैं, जैसे कि बौद्ध हैं या जैन हैं; वे कहते हैं, भगवान के बिना भी चला लेंगे।
लेकिन भगवान के बिना भक्त होना बहुत मुश्किल है। भगवान के होते हुए भक्त होना मुश्किल है, तो भगवान के बिना भक्त होना बहुत मुश्किल हो जाएगा। महावीर ने चला लिया, लेकिन महावीर के भक्त नहीं चला पाए। उनको फिर महावीर को ही भगवान बना लेना पड़ा। महावीर ने कहा, कोई भगवान की जरूरत नहीं, उपासना काफी है, साधना काफी है, सदभाव काफी है, सत्य काफी है। और कोई जरूरत नहीं है।
महावीर बहुत सबल व्यक्ति हैं, वे बिना भगवान के भक्त हो सके। बड़ा कठिन है। कठिन ऐसा है कि प्रेमी मौजूद न हो, प्रेमिका मौजूद न हो और आप प्रेमी हो सकें। हो सकते हैं; कठिन नहीं है। जब कोई आदमी पूरे प्रेम से भरा होता है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि प्रेमी पास है या नहीं है। न हो, तो भी प्रेम तो मौजूद ही रहेगा। कोई प्रेमी के कारण तो प्रेम पैदा होता नहीं। प्रेम तो भीतर होता है; उसके कारण प्रेमी पैदा होता है। लेकिन हमारा प्रेम तो ऐसा है कि प्रेमी क्षणभर को हट जाए, तो प्रेम खो गया!
वह था ही नहीं। धोखा था, प्रवंचना थी, बहाना था। एक शक्ल थी, एक चेहरा था, कोई अंतर-अवस्था न थी।
बुद्ध बैठे हैं एक जंगल में। कोई निकले या न निकले; रास्ते से कोई गुजरे या न गुजरे; उनकी करुणा तो बरसती ही रहेगी; उनका प्रेम तो झरता ही रहेगा। जैसे निर्जन में एक फूल खिले; रास्ते पर कोई न निकले, तो भी फूल तो खिला ही रहेगा; सुगंध तो फैलती ही रहेगी। फूल यह तो नहीं सोचेगा कि बंद करो दरवाजे, कोई ग्राहक तो दिखाई नहीं पड़ता! फूल कोई दुकानदार तो नहीं है। ठीक ऐसे ही, प्रेमी भी हो सकता है बिना प्रेम-पात्र के, लेकिन बड़ा कठिन है। प्रेम-पात्र के साथ होते हुए हम प्रेमी नहीं हो पाते, तो बिना उसके बहुत कठिन होगा। कोई महावीर कभी हो सकता है। इसमें कठिनाई नहीं है। महावीर हो सके, वे पा सके परम अवस्था बिना भगवान की धारणा के; भगवान को पा सके बिना भगवान की धारणा के। लेकिन उनके पीछे का आदमी तो नहीं पा सकेगा;

फिर उसे कठिनाई हुई। कोई भगवान नहीं रहा जैन विचार में, तो फिर महावीर को भगवान की तरह मानकर पूजा करनी शुरू करनी पड़ी।
खूंटी तो चाहिए ही। भक्त हुआ नहीं जा सकता बिना भगवान के; भगवान होना चाहिए।
कृष्ण कहते हैं कि ये जो भक्तजन हैं, यह जो भक्ति की धारा है, यह जो सतत अनन्य चिंतन है, यह जो परमात्मा का स्मरण है--उसके नाम का, उसके गुणों का; उसकी स्तुति है--यह भक्त के हृदय को निर्मित करती है।
ठीक वैसे ही, जैसे बीज को हम बो देते हैं। वृक्ष तो बीज में छिपा होता है, वृक्ष बाहर से नहीं आता, वह तो बीज में छिपा होता है; लेकिन अगर पानी न डाला जाए, और अगर सूरज की धूप न मिले, तो वह जो छिपा है, वह भी प्रकट नहीं हो पाता। और अगर प्रकट भी हो जाए, और अगर माली का सहारा न मिले, और माली की सुरक्षा न मिले, तो प्रकट हो जाए, तो भी टूट जाता है।
जो है, वह तो बीज में है, लेकिन गौण सहारे आस-पास खड़े करने होते हैं। एक दिन जरूर बीज इतना बड़ा वृक्ष बन जाता है कि फिर पशुओं का डर नहीं रहता; कि फिर उसे कोई तोड़ सकेगा, इसका भय नहीं रहता। फिर वर्षा न भी हो, तो अब बीज वर्षा के भरोसे नहीं है। अब उसने अपनी जड़ें फैला ली हैं। वह दूर नीचे पाताल तक पहुंच गया है। अब वह अपना पानी खुद खींच सकता है। अब सूरज कुछ दिन न भी निकले, तो वृक्ष को बहुत चिंता नहीं है। अब उसने सूर्य की बहुत-सी ऊर्जा को छिपाकर अपने भीतर राशि-कोष निर्मित कर लिए हैं। अब वह उनसे काम चला लेगा। अब माली भूल भी जाए और छूट भी जाए, तो वृक्ष अब अपनी खुद ही सुरक्षा करने में समर्थ हो गया है। लेकिन बीज ये बातें नहीं कर सकता।
तो महावीर तो वृक्ष जैसे व्यक्ति हैं, इसलिए बिना ईश्वर के चला लेते हैं। कोई कठिनाई नहीं आती। और ईश्वर को पा लेते हैं। लेकिन हम तो छोटे- छोटे बीज हैं, इनके लिए आस-पास बहुत तरह की व्यवस्था चाहिए।
तो कृष्ण कहते हैं, ईश्वर की धारणा, ईश्वर की तरफ उन्मुखता, उपासना उपयोगी है।
उपासना का अर्थ होता है, उसके पास बैठना। उपासना का अर्थ होता है, उसके पास बैठना। कहीं भी बैठे हों, अगर अनुभव करें कि परमात्मा के पास बैठे हैं, तो उपासना हो गई। घर में बैठे हों, कि मंदिर में, कि जंगल में, कहीं भी बैठे हों, अगर उसकी उपस्थिति अनुभव कर सकें, अगर अनुभव कर सकें उसका स्पर्श--कि हवाओं में वही छूता है, और सूरज की किरणों में वही आता है, और पक्षियों के गीत में उसी के गीत हैं, और वृक्षों में जो सरसराहट होती है हवा की, पत्ते जो कंपते हैं, वही कंपता है; सागर की जो लहर हिलती है, यह उसी की तरंगें हैं--अगर ऐसी प्रतीति हो सके, तो उपासना हो गई।
उपासना का अर्थ यह नहीं कि गए मंदिर में, घंटा बजाया, पूजा की; घर लौट आए। ऐसा भी नहीं है कि उसमें उपासना नहीं हो सकती है। उसमें हो सकती है। लेकिन जितनी जल्दबाजी में आदमी घंटे बजाते हैं, उससे शक होता है। जितनी जल्दी में घंटा बजाते हैं, जितनी जल्दी में पूजा-प्रार्थना करते हैं!
और देखें उनकी पूजा-प्रार्थना का जो समय है, वह काफी फ्लेक्सिबल होता है। कभी जब उन्हें फुर्सत होती है, या पत्नी से घर झगड़ा हो गया हो, या दुकान आज बंद हो, या आज अदालत न जाना हो, तो उपासना लंबी हो जाती है। आज जल्दी दफ्तर पहुंचना हो, उपासना सिकुड़कर छोटी हो जाती है। संक्षिप्त में भी निपटा देते हैं। जल्दी से घंटी बजाई है, जल्दी से सब किया है!
जो और भी ज्यादा जल्दी में हैं और जिनके पास सुविधा है, वे खुद उपासना नहीं करते, नौकर-चाकर रख लेते हैं, उनसे करवा देते हैं। पंडित हैं, पुजारी हैं, उपासना के लिए आप बीच में दलाल रख लेते हैं। भगवान से आपको लेना-देना है, पंडित-पुजारी को आपसे कुछ लेना-देना है; दोनों के बीच संबंध हो जाता है, समझौता हो जाता है, सौदा हो जाता है। वह कहता है, हमें आप इतना दे देना, हम इतनी उपासना कर देंगे। और आप निश्चिंत हैं कि उपासना चल रही है!
उपासना भी उधार हो सकती है? उपासना का अर्थ है, खुद उसके पास होना। दूसरा उसके पास कैसे होगा? और वह दूसरा भी हो सकता था, उसको उसकी चिंता नहीं है। उसको चिंता आपसे पैसे लेने की है। वह जब उपासना कर रहा है मंदिर में, तब वह गिनती कर रहा है, महीने के कितने दिन बाकी बचे, कि आज तनख्वाह का

दिन आ गया कि नहीं आ गया; कि वह देख रहा है, यहां से उपासना करके दूसरे के घर जाना है, फिर तीसरे के घर जाना है। दिन में एक पंडित दस-पांच घरों को निपटा देता है! निपटाना है उसे।
इसलिए ध्यान रहे, पुजारी परमात्मा से जितने दूर रह जाते हैं, उतना शायद ही कोई रह पाता हो। क्योंकि पुजारी को प्रयोजन ही नहीं रह जाता। उसका मतलब कुछ और है। यह उसके लिए धंधा है।
उपासना आप उधार नहीं करवा सकते, आपको ही करनी पड़ेगी। और ऐसी उपासना का कोई मूल्य नहीं है कि मंदिर में तो परमात्मा के निकट होते हों और मंदिर के बाहर निकलते ही परमात्मा खो जाता हो। ऐसी उपासना से क्या होगा? अगर वह है, तो सब जगह है। और अगर नहीं है, तो कहीं भी नहीं है; मंदिर में भी नहीं है। अगर नहीं है, तो सब मंदिर व्यर्थ हैं। और अगर है, तो सारी पृथ्वी, सारा जगत उसका मंदिर है।
इन दो के बीच उपासक को चुन लेना चाहिए। या तो वह समझ ले कि वह मंदिर में भी नहीं है; और या फिर वह जान ले कि जहां भी अस्तित्व है, वहीं वह है। और उसकी यह जो खोज चलती रहे, जहां भी वह है।...
एक वृक्ष के पास बैठें, तो भी परमात्मा के पास बैठें। और एक पशु के पास खड़े हों, तो भी परमात्मा के पास खड़े हों। एक मित्र पास हो, तो भी परमात्मा पास हो; और एक शत्रु पास हो, तो भी परमात्मा पास हो। आपके लिए वही रह जाए। जितना यह बढ़ता चला जाए विस्तार, जितनी यह प्रतीति उसकी गहन होती चली जाए, उतने ही आप उपासना में रत हो रहे हैं।
उसके गुणों की चर्चा उपयोगी होगी। लेकिन हम गुणों की क्या चर्चा करते हैं? हम उसके गुणों की चर्चा कम करते हैं। हम गुणों की चर्चा में भी अपना हिसाब ज्यादा रखते हैं। मंदिर में मैं सुनता हूं लोगों को जाकर, वे कहते हैं कि हम पापी हैं और तुम पापियों का उद्धार करने वाले। इन्हें उसकी चर्चा से कम प्रयोजन है। इन्हें प्रयोजन इसका है, इनको एक बात का पक्का है कि ये पापी हैं! इसका बिल्कुल पक्का नहीं है कि वह पापियों का उद्धार करने वाला है। ये तो केवल अपने पापों से बचाव का उपाय खोज रहे हैं। ये अपने पापों से बचाव का उपाय कर रहे हैं। इन्हें उसमें उत्सुकता नहीं है।
और मजा यह है कि बाहर निकलकर मंदिर के, ये कोई पापों में कमी करने वाले नहीं हैं। अब ये बड़े निश्चिंत हैं, क्योंकि वह पापियों का उद्धार करने वाला है। अगर ये पाप न करेंगे, तो वह बेचारा किसका उद्धार करेगा! परमात्मा भी खाली पड़ जाए, अनएंप्लायड हो जाए, अगर ये पापी जो हैं, पाप न करें! इसलिए उसको काम में लगाए रखने के निमित्त ये बाहर आकर पाप किए चले जाते हैं। नहीं, कोई उससे प्रयोजन नहीं है। उसके गुणों की स्तुति का मतलब यह नहीं है कि हम एक खुशामद करें। स्तुति खुशामद नहीं है, वह फ्लैटरी नहीं है। और परमात्मा की आप कभी भी खुशामद नहीं कर सकते। क्योंकि खुशामद आप उसी की कर सकते हैं, जिसके और आपके बीच मूल्यों की समानता हो।
आप एक आदमी के पास जाकर कह सकते हैं कि आप जैसा महान कोई भी नहीं है।
और वह खुश होगा, क्योंकि वह अहंकार की तलाश में है। परमात्मा से आप यह कहकर उसे खुश न कर पाएंगे कि आपसे महान कोई भी नहीं है। क्योंकि अहंकार की कोई तलाश नहीं है। और आप कितना भी कहें, वह जितना विराट है, आपके शब्द उतना विराट होना प्रकट न कर पाएंगे। और वह जितना महान है, आपके कोई शब्द उसको छू न पाएंगे। इसलिए आपके कहने का कोई मतलब नहीं है।
उसकी स्तुति का क्या अर्थ है? उसकी प्रार्थना का क्या अर्थ है? उसके गुणों के कीर्तन का क्या अर्थ है?
बड़े अलग अर्थ हैं। बड़े अलग अर्थ हैं।
मंसूर निकल रहा है एक गली से, एक सूफी फकीर। फूल खिला है। खड़ा हो गया मंसूर। हाथ जोड़े, आकाश की तरफ देखा। उसके साधकों ने पूछा, यहां किसको हाथ जोड़ रहे हैं? कोई मस्जिद नजर नहीं आती! मंसूर ने कहा, फूल खिला है, प्रभु की कृपा! अन्यथा फूल कैसे खिल सकते हैं!
यह कीर्तन है।

सूरज निकला है, मंसूर हाथ जोड़े खड़ा है। साथी कहते हैं, क्या कर रहे हैं? क्या मूर्तिपूजक हो गए! मंसूर कहता है, सूरज निकल रहा है। इतना प्रकाश, इतना प्रकाश, प्रभु की कृपा है!
यह स्तुति है।
मंसूर मर रहा है, उसके हाथ-पैर काट दिए गए हैं। वह आकाश की तरफ आंखें उठाकर मुस्कुरा देता है। भीड़ पूछती है, यह तुम क्या कर रहे हो? दुश्मन इकट्ठे हैं, वे उसको मार रहे हैं। मंसूर कहता है, प्रभु की कृपा है! क्योंकि इधर तुम मुझे मार रहे हो, उधर वह मुझे मिलने को बिल्कुल तत्पर खड़ा है। इधर तुम मुझे गिराओगे, उधर मैं उसमें डूब जाऊंगा। प्रभु की बड़ी कृपा है। और शायद तुम सहायता न करते मुझे मारने में, तो मुझे पहुंचने में थोड़ी देर भी हो जाती।
यह स्तुति है।
जीसस को सूली लग रही है। और सूली पर आखिरी क्षण वे कहते हैं, हे परमात्मा, इन सबको माफ कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं, ये क्या कर रहे हैं!
यह उसका गुणगान है। यह उसका कीर्तन है। यहां भी अनुकंपा ही जीसस को ख्याल में आती है।
जीवन में कोई भी अवसर न जाए जब हम उसकी अनुकंपा को अनुभव न करें। दुख
हो कि सुख, शांति हो कि अशांति, सफलता मिले कि असफलता, रात हो कि दिन, सूरज उगता हो कि ढलता हो--उसकी अनुकंपा हमें प्रतीत होती रहे, उसके गुणों का एक सरगम हमारे भीतर बजता रहे, तो स्तुति है, तो कीर्तन है। हम जीएं कैसे ही, लेकिन भीतर एक सतत स्मरण उसका बना रहे। उसके स्मरण से हम न चूकें, तो उसका स्मरण है।
कृष्ण कहते हैं, ऐसे दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरंतर मेरा कीर्तन करते हुए मुझे बार-बार नमस्कार करते हुए... ।
बार-बार कैसे नमस्कार करिएगा? जहां भी आपको उसकी अनुकंपा अनुभव हो--
और कहां उसकी अनुकंपा नहीं अनुभव होगी? अनुभव करने की दृष्टि हो, तो सब जगह उसकी अनुकंपा अनुभव होगी।
मंसूर जा रहा है एक रास्ते से। पैर में पत्थर लग गया है, लहूलुहान हो गया। वहीं बैठकर, हाथ जोड़कर घुटने टेक दिए हैं। साथियों ने कहा, क्या करते हो? पागल हो गए हो! पैर से लहू बह रहा है।
मंसूर ने कहा, जहां तक मैं जानता हूं, जैसा मैं आदमी हूं, मुझे फांसी होती तो भी कम था। उसकी कृपा है। फांसी बची, सिर्फ पैर में जरा-सा पत्थर लगा है। जैसा मैं आदमी हूं, उसे तो फांसी भी हो, तो कम है। उसकी कृपा है कि फांसी बच गई और पैर में सिर्फ पत्थर लगा है।
अगर आपके पैर में पत्थर लगता, तो मालूम है आपके मुंह से क्या निकलता? आपके मुंह से गाली निकलती। सारी दुनिया उस क्षण में बिल्कुल बेकार हो जाती। सारा जीवन असार हो जाता। अगर आपका वश चले, तो आप उस वक्त पूरी दुनिया में आग लगा दें, सब नष्ट-भ्रष्ट कर दें। नहीं चलता वश, बात अलग है। लेकिन भीतर तो सोच लेते हैं। जरा-सा दांत में दर्द हो जाए, तो जगत में ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता। जरा-सी सिर में पीड़ा हो जाए, तो जगत एकदम नास्तिकता से भर जाता है, सब अंधेरा हो जाता है।
यह मंसूर कुछ और ढंग का आदमी है। यह हाथ जोड़कर उससे कह रहा है कि तेरी बड़ी कृपा है। ऐसे तो मैं आदमी ऐसा हूं कि फांसी भी लगे, तो कम है। तूने इतने में ही बचा लिया!
यह उसको बार-बार नमन है। और ऐसे भाव में जो जीएगा सतत, अगर उसकी जिंदगी क्रमशः उस परमात्मा की तरफ बहने लगे, तो...
(किसी व्यक्ति ने उठकर मंसूर के संबंध में कुछ उलटा-सीधा प्रश्न पूछा, निकट बैठे लोगों ने उसे पागल समझ वापस बैठा दिया। इस पर भगवान श्री ने हंसते हुए उसे समझाकर अपनी बात जारी रखी।)
कुछ फिक्र न करिए। कोई मंसूर के प्रेमी आ गए हैं। उन पर नाराज मत हो जाइए। उन पर नाराज हो गए, तो आसुरी प्रवृत्ति की तरफ बहना शुरू हो जाता है।

उन पर खुश हो जाइए। एक मौका आपको दिया नाराज होने का, अगर नहीं हों, तो यात्रा दूसरी तरफ शुरू हो जाती है।
जीवन प्रतिपल एक चुनाव है। परमात्मा की तरफ, हर जगह से हम खोज लें। अब
ये सज्जन आ गए, उनमें भी हम शैतान को देख सकते हैं; उनमें भी हम पागल को देख सकते हैं; उनमें भी हम परमात्मा को देख सकते हैं। हम पर निर्भर करेगा, उन पर निर्भर नहीं है। वे पागल हैं कि नहीं हैं, यह उनकी बात है। लेकिन हम यह देख सकते हैं, उनकी इस वृत्ति में भी हमें एक मौका है, अगर हम उनमें भी उसकी ही अनुकंपा अनुभव करें। उन्होंने सिर्फ कहा, आकर पत्थर ही मार सकते थे। उन्होंने सिर्फ कहा, कुछ और तो किया नहीं। जैसे हम आदमी हैं, इनके साथ कुछ भी किया जाए, तो थोड़ा है।
जीवन में हर घड़ी चुनते रहें, जहां से उसकी स्तुति और उसका स्मरण हो सके, तो एक दिन भीतर वह सघन भाव उपस्थित हो जाता है भक्त का, जो कि द्वार है भगवान के अनुभव के लिए।
आज इतना ही।
लेकिन उठेंगे नहीं। पांच मिनट कीर्तन करेंगे। एक बात कह दूं,
बीच में जब कीर्तन चले, तो आप उठें मत। कोई एक खड़ा हो जाता है, तो पीछे लोगों को खड़ा होना पड़ता है।
दूसरी बात, यहां नीचे जो लोग भी आकर खड़े होते हैं, वे अगर कीर्तन में नाचते हों, तो ही खड़े हों। आकर खड़े होकर देखना नहीं है। फिर वहीं बैठकर देखते रहें। यहां नीचे भी कोई आकर खड़ा नहीं होगा। कीर्तन में सम्मिलित होना हो, तो आ जाएं!

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
छठवां प्रवचन

ज्ञान, भक्ति, कर्म

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।। 15।।
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।। 16।।
कोई तो मुझ विराट स्वरूप परमात्मा को ज्ञान-यज्ञ के द्वारा पूजन करते हुए एकत्व भाव से अर्थात जो कुछ है सब वासुदेव ही है, इस भाव से उपासते हैं और दूसरे पृथकत्व भाव से अर्थात स्वामी-सेवक भाव से और कोई-कोई अनेक प्रकार से भी उपासते हैं।
क्योंकि श्रोत-कर्म अर्थात वेदविहित कर्म मैं हूं, यज्ञ मैं हूं, स्वधा अर्थात पितरों के निमित्त दिया जाने वाला अन्न मैं हूं, औषधि अर्थात सब वनस्पतियां मैं हूं एवं मंत्र मैं हूं, घृत मैं हूं, अग्नि मैं हूं और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूं।

मार्ग हैं अनेक, गंतव्य एक है। यात्रा-पथ बहुत हैं, यात्री भी बहुत हैं, यात्रा की विधियां भी बहुत हैं; लेकिन जब तक यात्री नहीं मिट जाता, यात्रा-पथ नहीं मिट जाता, यात्रा की विधियां नहीं मिट जातीं, तब तक वह उपलब्ध नहीं होता, जो गंतव्य है।
परमात्मा तक पहुंचने के लिए दो व्यक्तियों के लिए एक ही मार्ग नहीं
हो सकता, असंभव है, क्योंकि दो व्यक्ति भिन्न हैं। वे जो भी करेंगे, भिन्न होगा; वे जैसे भी करेंगे, भिन्न होगा। और हमें यात्रा वहां से शुरू करनी होती है, जहां हम हैं।
मैं वहीं से यात्रा शुरू करूंगा, जहां मैं हूं। आप वहां से यात्रा शुरू करेंगे, जहां आप हैं। हमारी यात्रा का प्रारंभिक बिंदु एक नहीं हो सकता, क्योंकि दो व्यक्ति एक ही जगह खड़े नहीं हो सकते। लेकिन यात्रा का अंतिम पड़ाव एक हो सकता है, क्योंकि उस पड़ाव पर व्यक्ति मिट जाते हैं। व्यक्तियों के मिटते ही व्यक्तियों की भिन्नता मिट जाती है।
जब तक मैं व्यक्ति हूं, तब तक मैं जो भी करूंगा वह भिन्न होगा, इस सत्य
को न समझ लेने से मनुष्य के धर्म का इतिहास अकारण ही रक्तपात से, अकारण ही हिंसा से, अकारण ही द्वेष से भर गया है।
प्रत्येक को ऐसी प्रतीति हो सकती है कि जिस मार्ग पर मैं जा रहा हूं,
वह सही है। इस प्रतीति में कोई भूल भी नहीं है। लेकिन जैसे ही यह भ्रांति भी भर जाती है कि जिस मार्ग से मैं जा रहा हूं, वही सही है, वैसे ही उपद्रव शुरू हो जाता है। शायद इतने से भी उपद्रव न हो, अगर मैं यह जानूं कि यह मार्ग मेरे लिए सही है। मेरे लिए यही मार्ग सही है। लेकिन अहंकार यहीं तक रुकता नहीं। अहंकार एक निष्कर्ष अनजाने ले लेता है कि जो मेरे लिए सही है, वही सबके लिए भी सही है।
इसलिए धर्मों के नाम से जो उपद्रव है, वह धर्मों का नहीं, अहंकारों का उपद्रव है। मेरा अहंकार यह मानने को राजी नहीं होता कि कोई और ढंग भी सही हो सकता है। यही मानने को तैयार नहीं होता कि मेरे अतिरिक्त कोई और भी सही हो सकता है। तो मेरा ही रास्ता होगा सही, मेरी उपासना पद्धति होगी सही, मेरा शास्त्र होगा सही। लेकिन मेरा यह सही होना तभी मुझे रस देगा, जब मैं सब दूसरों को गलत कर डालूं।
और ध्यान रहे, जो दूसरों को गलत करने में लग जाता है, उसकी शक्ति और ऊर्जा उस मार्ग पर तो चल ही नहीं पाती, जिसे उसने सही कहा है; उसकी शक्ति और ऊर्जा उनको गलत करने में लग जाती है, जिन पर उसे चलना ही नहीं है।
यह उपद्रव और भी गहन हो गया, क्योंकि हमने धर्मों को जन्मजात बना लिया। धर्म जन्मजात नहीं हो सकता। धर्म तो व्यक्तिजात होगा। कोई व्यक्ति पैदाइश से न हिंदू हो सकता है, न मुसलमान हो सकता है; न ईसाई हो सकता है, न

जैन हो सकता है। पैदाइश से तो केवल संभावना लेकर पैदा होता है कि धार्मिक हो सकता है या अधार्मिक हो सकता है।
ये दो संभावनाएं होती हैं, ये दो दरवाजे खुले होते हैं--धार्मिक हो सकता है या अधार्मिक हो सकता है। लेकिन हिंदू या मुसलमान या ईसाई पैदाइश से कोई नहीं होता। हो भी नहीं सकता। क्योंकि पिता का धर्म, या पिता की मान्यता खून से बच्चे में प्रवेश नहीं करती। और हम किसी आदमी की हड्डियों और खून की जांच करके नहीं कह सकते हैं कि ये मुसलमान की हैं, कि हिंदू की हैं, कि जैन की हैं। एक व्यक्ति के शरीर की हम सारी जांच-पड़ताल कर डालें, उसके जीवकोष्ठों में प्रवेश कर जाएं, उसके मूल बीज-कण में उतर जाएं, उसकी भी जांच कर लें, तो धर्म का कोई भी पता नहीं चलेगा।
लेकिन एक उपद्रव पैदा हुआ कि हमने धर्मों को जन्मजात कर लिया है। तो
एक मुसलमान के बेटे को मुसलमान होना पड़ता है; एक हिंदू के बेटे को हिंदू होना पड़ता है। जरूरी नहीं है कि यह बात उसके व्यक्तित्व के ढांचे से मेल खाए। तब खतरे होते हैं। तब खतरा बड़ा यह होता है कि जो धर्म उसका मार्ग बन सकता था, वह जन्म से उसे अगर न मिला हो, तो अड़चन पैदा हो जाती है। वह अड़चन गहरी है।
इधर मैं जानता हूं ऐसे लोगों को, जो कि हिंदू के घर में न पैदा होकर अगर मुसलमान के घर में पैदा हुए होते, तो उन्हें लाभ हो जाता। ऐसे लोगों को जानता हूं, जो मुसलमान के घर में पैदा न होकर हिंदू के घर में पैदा होते, तो उनके जीवन में धर्म के फूल खिल जाते। उनके व्यक्तित्व का ढांचा और उनके जन्म के ढांचे का कोई मेल नहीं है।
जन्म एक और बात है, धर्म एक और बात है। जन्म शरीर की बात है, धर्म व्यक्ति के टाइप की खोज है। धर्म व्यक्ति की अंतरात्मा की तलाश है। और प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही ढंग से अपने धर्म को खोजना चाहिए। स्वधर्म की खोज जन्म से पूरी नहीं होती, स्वधर्म की खोज करनी पड़ती है।
इसलिए एक और घटना घटती है कि सभी धर्म जब पहली दफा अवतरित होते हैं, तो उनमें जो जीवन और जो तेज होता है, वह समय के बीतते-बीतते क्षीण हो जाता है। जब भी कोई नया धर्म अवतरित होता है--नए धर्म का अर्थ है, जब कोई नया टाइप, व्यक्तित्व का कोई नया ढंग परमात्मा की तरफ जाने का मार्ग खोज लेता है, तो एक नए धर्म का सूत्रपात होता है--जब भी कोई नया धर्म पैदा होता है, तो उसमें एक ताजगी, एक प्रफुल्लता, एक जीवन का बहाव होता है।
मोहम्मद के समय में जो इस्लाम की खूबी थी, वह आज नहीं है। हो नहीं सकती। कृष्ण के समय में, कृष्ण की मौजूदगी में जो कृष्ण के आस-पास घटित हुआ था, वह आज नहीं हो सकता। महावीर के साथ जो पहली दफा जैन हुए थे, उनके बच्चे उसी अर्थों में जैन नहीं हो सकते। क्योंकि महावीर के पास जिन्होंने पहली दफा जैन होने का निर्णय लिया था, वह उनका कांशस डिसीजन था; वह उनका चेतना से लिया गया संकल्प था। वह उन्होंने चुना था। वह उनकी अपनी निष्ठा थी। वह उधार नहीं थी। वह बाप-दादों से नहीं आई थी। उसके लिए उन्होंने स्वयं खोज की थी।
इसलिए महावीर के आस-पास जो लोग जैन हुए, उनके जैन होने में जो रस था, उनके जैन होने में जो प्राण था, वह किसी जैन के बेटे को नहीं हो सकता। होने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि वह रस और प्राण स्वयं के चुनाव से उत्पन्न होता है।
अगर कोई व्यक्ति गलत मार्ग भी चुन ले अपनी पूरी निष्ठा के साथ, तो मैं कहता हूं, वह परमात्मा तक पहुंच जाएगा। क्योंकि निष्ठा पहुंचाती है, मार्ग नहीं। और कोई व्यक्ति अगर उधार निष्ठा से ठीक से ठीक मार्ग भी चुन ले, तो कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता है। क्योंकि निष्ठा पहुंचाती है, मार्ग नहीं। निष्ठा है बल। मार्ग में बल नहीं है; मेरे संकल्प में बल है। लेकिन जन्म से तो संकल्प मिलता नहीं! जन्म से सिद्धांत मिलते हैं, शास्त्र मिलता है; जन्म से शब्द मिलते हैं, संकल्प नहीं मिलता। इसलिए जन्म के साथ जब तक दुनिया में धर्म बंधा रहेगा, तब तक दुनिया अधार्मिक रहने को मजबूर रहेगी, आदमी को अधार्मिक रहना पड़ेगा। क्योंकि हम धार्मिक होने का चुनाव नहीं देते।

इसे ऐसा समझें, मैं मुसलमान घर में पैदा हुआ हूं। अगर वह मार्ग मेरी व्यक्तिगत रुझान में नहीं बैठता; अगर वहां मैं नहीं हूं, जहां से उस मार्ग पर चल सकूं; अगर मैं ऐसा नहीं हूं, जो उस मार्ग से संयुक्त हो सके; अगर मुझ में और उस मार्ग में कोई तालमेल नहीं बैठता, तो मेरे सामने एक ही उपाय रह जाता है कि मैं अधार्मिक हो जाऊं।
इस दुनिया में जो इतने अधार्मिक लोग दिखाई पड़ते हैं, इतने अधार्मिक नहीं हैं ये! इनका केवल दुर्भाग्य एक है कि ये जन्म के साथ धर्म को बांधने की चेष्टा में संलग्न हैं। और जब हम बीस-पच्चीस वर्ष तक एक व्यक्ति को एक धर्म की शिक्षा दें, तो वह उसके अंतस-चेतन में प्रवेश कर जाती है, फिर वह धर्म परिवर्तित भी नहीं कर सकता।
अगर एक हिंदू मुसलमान हो जाए, वह लाख उपाय करे मुसलमान होने का, उसके भीतर का हिंदू जो पच्चीस साल तक उसके भीतर निर्मित हुआ है, कभी भी मिट नहीं सकता। कभी भी मिट नहीं सकता, वह उसके भीतर बना ही रहेगा।
एक हिंदू ईसाई हो जाए, लेकिन उसके अंतस-चेतन में जो प्रवेश कर गया है,
वह उसकी आधारभूमि रहेगी। उसकी ईसाइयत के नीचे हिंदू का रंग रहेगा। वह चर्च में जीसस को हाथ जोड़ेगा, लेकिन हाथ जोड़ने के ढंग वही होंगे, जो राम के मंदिर में रहे थे। उसका अंतस-चेतन, उसका अनकांशस निर्मित हो चुका है।
अब मनसविद कहते हैं कि सात साल में अंतस-चेतन निर्मित हो जाता है। और सात साल के बाद उसे बदलना असंभव के करीब है। सात साल की उम्र में अंतस-चेतन निर्मित हो जाता है, आधार रख दिए जाते हैं, फिर भवन उसके ऊपर ही उठेगा। अगर एक व्यक्ति को ऐसे धर्म में जन्म मिल गया, जिससे उसका मेल नहीं खाता--और सौ में से नब्बे मौके पर यह घटना घटेगी। क्योंकि जन्म का धर्म से कोई संबंध नहीं है, धर्म का संबंध संकल्पपूर्वक चुनाव से है। व्यक्ति को धार्मिक होना पड़ता है, धार्मिक कोई पैदा नहीं हो सकता। और यह गौरव की बात है।
अगर हम धार्मिक पैदा ही होते हों, तो धर्म बड़ी साधारण बात रह जाएगी। अगर हम धार्मिक इसी तरह होते हों--जैसे बाप से आंख पाते हैं, जैसे बाप से हाथ पाते हैं, जैसे बाप से शरीर का रंग पाते हैं--अगर ऐसे ही हम धर्म भी पाते हों, तो धर्म भी बायोलाजिकल, एक जैविक घटना हो जाएगी।
तब तो इसका अर्थ हुआ कि शरीर ही नहीं, आत्मा भी हम बाप से पाते हैं; जो
कि सरासर झूठ है। शरीर मिलता है माता और पिता से; तो शरीर का जो भी है, वह माता-पिता से मिलता है। लेकिन आत्मा माता-पिता से नहीं मिलती; आत्मा की यात्रा अन्यथा है, अलग है।
और आत्मा की यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण मुकाम यह है कि आत्मा हर संकल्प से विकसित होती है। जितना बड़ा संकल्प, उतनी आत्मा सबल होती है। और धर्म इस जगत में सबसे बड़ा संकल्प है; सबसे बड़ी चुनौती है; सबसे बड़ा अभियान है; दुस्साहस है। क्योंकि अज्ञात में छलांग है; उसकी खोज है, जिसका हमें कोई भी पता नहीं; उस तरफ की यात्रा है, जिस तरफ के हमें कोई संकेत भी नहीं मिलते; उस सागर में उतरना है, जिसका कोई नक्शा नहीं है। और एक अनजान में, अपरिचित मार्ग पर भटक जाने का डर है, पहुंच जाने की उम्मीद कम है। इसलिए धर्म सबसे बड़ा साहस है; दुस्साहस है। कमजोर का काम नहीं है धर्म।
लेकिन आमतौर से हम देखते हैं, कमजोर धर्म से जुड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। अक्सर ऐसा दिखाई पड़ता है, जितने कमजोर लोग हैं, वे सब धर्म की आड़ में खड़े हो जाते हैं। इन कमजोरों ने ही धर्म को जन्म का हिस्सा बना दिया, क्योंकि सुविधा है उसमें। धर्म को भी चुनने की कठिनाई न रही! इतना भी श्रम न उठाना पड़ेगा अब कि धर्म को चुनें। वह भी जन्म के साथ जुड़कर लेबिल की तरह मिल जाएगा। उसे हमें चुनना नहीं पड़ेगा, खोजना नहीं पड़ेगा, अन्वेषण नहीं करना पड़ेगा, भूल-चूक नहीं करनी पड़ेगी, बच जाएंगे सब भूल-चूक से!
तो फिर एक लेबिल ही मिलेगा, धर्म मिलने वाला नहीं है!
कृष्ण ने कहा है कि स्वधर्म। लेकिन लोग अक्सर समझते हैं कि स्वधर्म
का मतलब है, जिस धर्म में पैदा हुए! भूलकर ऐसा मत समझना! कोई धर्म में पैदा होता ही नहीं; धर्म खोजना पड़ता है। यह एक अंतर्खोज है। यह एक अंतर्खोज है सत्य की, और निजी है। और हर आदमी को खोजना पड़ता है। यह उधार मिलता ही नहीं।

अगर कोई सोचता हो, किसी गुरु से मिल जाएगा, अगर कोई सोचता हो, किसी से मिल जाएगा, तो गलती है। खोजना ही पड़ेगा। खोजेंगे, तो ही गुरु भी मिलेगा।
खोजेंगे, तो ही किसी से भी मिलने का मार्ग साफ होगा। लेकिन यह मुरदे हस्तांतरण से नहीं मिलता। कोई ट्रांसफर नहीं कर सकता। कोई बाप लिख नहीं जा सकता कि मेरे धन के साथ मैं धर्म भी अपने बेटे को वसीयत में देता हूं। नहीं तो दुनिया में जैसे धन बढ़ गया, ऐसे ही धर्म भी बढ़ गया होता।
दुनिया में धन बहुत बढ़ गया है। दो हजार साल पीछे लौटें, धन और कम था।
और पांच हजार साल पीछे लौटें, धन और कम था। दुनिया में सब चीजें बढ़ गईं, जिनकी वसीयत हो सकती थी। सिर्फ धर्म नहीं बढ़ा। बल्कि धर्म कम हो गया मालूम पड़ता है। जरूर कहीं कोई फर्क है।
जो भी चीज वसीयत की जा सकती है, वह बढ़ जाएगी। दुनिया की भाषाएं बढ़ गईं; दुनिया का वैज्ञानिक ज्ञान बढ़ गया; दुनिया में किताबें बढ़ गईं; दुनिया के मकान बढ़ गए; दुनिया में आदमी बढ़ गए। दुनिया में सब बढ़ गया है, जो भी वसीयत हो सकती है। क्योंकि बाप दे जाता है बेटे को, तो बाप ने जो भी कमाया था, उसके ऊपर बेटा कमाना शुरू करता है। फिर बेटा उसमें जोड़ देता है, अपने बेटे को दे जाता है। बाप की भी कमाई, अपनी भी कमाई, बेटा वहां से शुरू करता है। तो जगत में सब चीजें बढ़ती जा रही हैं, प्रोग्रेसिव हैं, गतिमान हैं; सिर्फ एक चीज घटती जा रही है, वह धर्म है। लेकिन शायद आपने कभी सोचा न हो, इसका कारण क्या है? यह धर्म क्यों घटता जा रहा है?
नासमझ हैं, वे कहते हैं कि धर्म इसलिए घट रहा है कि वैज्ञानिकों ने अधार्मिक बातें कर दीं; वे कहते हैं, लोग नास्तिक हो गए; वे कहते हैं, लोग भौतिकवादी हो गए; वे कहते हैं, लोग बिगड़ गए।
ये सब बातें गलत हैं। कोई बिगड़ा नहीं है। कोई नास्तिक नहीं हो गया है। किसी भौतिकवादी की बातों से धर्म का कुछ बिगड़ नहीं सकता। और धर्म अगर इतना कमजोर है कि वैज्ञानिक की बातों से मिट जाए और भौतिकवादी की बातों से मिट जाए, तो किसी योग्य भी नहीं है, मिट ही जाना चाहिए। धर्म इतना कमजोर नहीं है। धर्म के घट जाने का कारण और है।
धर्म वसीयत नहीं किया जा सकता। इसलिए आप धर्म के मामले में अपने बाप
के कंधे पर खड़े नहीं हो सकते। आपको अपने ही पैर की जमीन खोजनी पड़ती है। इसलिए धर्म में बढ़ती नहीं हो सकती है हर पीढ़ी के साथ। एक ही रास्ता है बढ़ती का कि हर पीढ़ी धर्म को खोजती चली जाए। लेकिन अगर हम अपने बाप की वसीयत पर सोचते हों कि धर्म मिल जाएगा, तो धर्म खो जाएगा। तब हम झूठे धर्म में खड़े रह जाएंगे।
इसलिए कृष्ण ने इस सूत्र में बहुत कीमत की बात कही है। पहली, कि बहुत-बहुत रूपों से मेरी तरफ मार्ग आते हैं। कोई हैं, जो मुझ विराट स्वरूप परमात्मा को ज्ञान के द्वारा पूजते हैं। ज्ञान ही उनका यज्ञ है। एकत्व-भाव से, जो कुछ है, सब वासुदेव ही है, ऐसे भाव से उपासते हैं। यह पहला वर्ग है बड़ा।
तीन वर्ग हैं। एक वर्ग है, जिसके व्यक्तित्व का ढांचा ज्ञान का है। इसे हम थोड़ा समझ लें। इसमें भी बहुत शाखाएं होंगी, लेकिन फिर भी एक मोटा विभाजन किया जा सकता है।
एक वर्ग है मनुष्य का, जिसका ढांचा ज्ञान का है। ज्ञान के ढांचे से अर्थ है, ऐसा व्यक्ति जानने को आतुर होता है। ऐसा व्यक्ति अपना जीवन भी गंवा सकता है जानने के लिए। जानना उसका सबसे बड़ा रस है। जिज्ञासा उसका मार्ग है। वह कुछ भी खो सकता है। वह कुछ भी दांव पर लगा सकता है। उसे अगर इतना भर पता चले कि एक इंच ज्यादा मेरा जानना हो जाएगा, तो वह सब कुछ दांव पर लगा सकता है। अगर आप ऐसे व्यक्ति से पूछें कि जानकर क्या करोगे? तो वह कहेगा, जानकर करने की कोई जरूरत नहीं, जानना काफी है। ऐसा व्यक्ति कहेगा कि जानना पर्याप्त है, नालेज फार नालेज सेक। वह कहेगा, जानना जानने के लिए ही। जानना काफी है, और क्या करना है! बुद्ध जैसा व्यक्ति है, जानना काफी है। उसके लिए जानना ही उसकी आत्मा बन जाती है।
जो जानने की दिशा में चलेगा, वह अंततः पाएगा कि एक ही शेष रहा, क्योंकि ज्ञान का जो अंतिम चरण है, वह अद्वैत है। क्यों ऐसा है, इसे हम थोड़ा समझें।

जब भी हम कुछ जानते हैं, जब भी हम कुछ जानते हैं, तो जानने की घटना में तीन हिस्से टूट जाते हैं। जानने वाला अलग हो जाता है; जिसे जानता है, वह जानी जाने वाली चीज अलग हो जाती है और दोनों के बीच ज्ञान का संबंध घटित होता है। तो ज्ञान तीन हिस्से में टूट जाता है, ज्ञाता, ज्ञेय, और ज्ञान; दि नोअर, दि नोन, एंड दि नोइंग। ज्ञान तीन हिस्सों में टूट जाता है।
लेकिन ज्ञानी की जो आकांक्षा है, वह किसी चीज को बाहर से जानने की नहीं है। क्योंकि बाहर से जाना, तो क्या जाना! अगर मैं आपके पास आऊं और आपके चारों तरफ घूमकर आपको जान लूं, तो जानने वाले की इच्छा पूर्ण नहीं होगी, क्योंकि यह जानना न हुआ, केवल परिचय हुआ। अगर मैं जाऊं और एक वृक्ष के चारों तरफ चक्कर लगाकर देख लूं, तो यह जानना न हुआ; एक्वेनटेंस हुआ, पहचान हुई।
तो जानने की जिसकी खोज है, वह इतने से राजी नहीं होगा। वह तो कहेगा, जब
तक मैं वृक्ष ही न हो जाऊं, तब तक जानना पूरा नहीं है। क्योंकि जब तक मैं वृक्ष से जरा भी दूर रहूंगा, तब तक बाहरी परिचय रहेगा, भीतरी पहचान नहीं होगी। भीतरी पहचान का तो एक ही रास्ता है कि मैं वृक्ष के फूल को बाहर से न देखूं, इस तरह वृक्ष में लीन हो जाऊं कि मैं फैल जाऊं वृक्ष के पत्तों में, शाखाओं में, जड़ों में, फूल में। मैं वृक्ष के भीतर एक हो जाऊं। मुझमें और वृक्ष में रत्तीभर का फासला न रह जाए, तब जानना घटित होगा। तब मैं कह सकूंगा, मैंने वृक्ष को जाना। अगर बाहर से ही जाना, तो इतना ही कह सकूंगा कि वृक्ष की थोड़ी मुझे पहचान है। लेकिन दूरी है इस पहचान में।
तो ज्ञान की प्रक्रिया में टूट जाती है घटना तीन में। लेकिन जो ज्ञान
का खोजी है, वह इस कोशिश में रहेगा कि एक दिन ऐसा आए, जब ज्ञाता ज्ञेय हो जाए; व्हेन दि नोअर बिकम्स दि नोन, ऑर दि नोन बिकम्स दि नोअर, व्हेन दि आब्जर्वर इ.ज दि आब्जर्व्ड, जब दोनों एक हो जाएं। उसके पहले ज्ञानी की तृप्ति नहीं है।
इसलिए अगर हम ज्ञानी से कहें कि परमात्मा आकाश में है, वह मानने को राजी नहीं होगा। वह तो कहेगा, जब मेरी अंतरात्मा में होगा, तभी मैं मान सकता हूं। या मैं परमात्मा की अंतरात्मा में प्रविष्ट हो जाऊं, तब मैं मान सकता हूं। इसके पहले मेरे मानने का कोई भी उपाय नहीं है।
इसलिए आकाश का परमात्मा ज्ञानी के काम नहीं आएगा। अगर हम कहें कि मंदिर की प्रतिमा में परमात्मा है, तो वह उसे नहीं मान सकेगा। क्योंकि प्रतिमा के आस-पास घूमा जा सकता है, प्रतिमा में प्रवेश कैसे होगा? अगर हम कहें, शास्त्रों में परमात्मा है, तो वह कहेगा, शास्त्रों को पढ़ा जा सकता है, शब्दों को समझा जा सकता है, लेकिन प्रवेश कैसे होगा?
ज्ञानी की आत्यंतिक खोज इस बात के लिए है कि कब मैं उसके साथ एक हो जाऊं, तभी जानूंगा कि जाना। उसके पहले सब जानना फिजूल है। उसके पहले जिसे हम जानना कहते हैं, वह जानना नहीं है।
बर्ट्रेंड रसेल ने ज्ञान के दो हिस्से किए हैं; वे ठीक हैं। बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है, एक तो ज्ञान है, जिसे हम कहें एक्वेनटेंस, परिचय। और एक वस्तुतः ज्ञान है, जिसे हम नालेज कहें।
परिचय का मतलब है, बाहर से। और ज्ञान का मतलब है, भीतर से।
इसका तो यह अर्थ हुआ कि समस्त विज्ञान परिचय है, क्योंकि कोई वैज्ञानिक कितना ही जान ले, बाहर ही खड़ा रहता है। असल में विज्ञान का तो आधार ही यही है कि जानने वाले को बाहर खड़ा रहना चाहिए। यहीं धर्म और विज्ञान के जानने में फर्क पड़ जाता है।
वैज्ञानिक बाहर खड़ा रहता है। अपनी प्रयोगशाला में खड़ा है, जांच रहा है। घटना उसकी टेबल पर घट रही है, वह दूर खड़ा देख रहा है। बल्कि वैज्ञानिक का नियम यह है कि दूरी इतनी होनी चाहिए कि अपना भाव प्रविष्ट न हो जाए। वैज्ञानिक को बिल्कुल निष्पक्ष होना चाहिए। निष्पक्ष होने के लिए दूरी चाहिए, पर्सपेक्टिव चाहिए, फासला चाहिए। बहुत पास हो जाओ, तो मन का लगाव बन सकता है। लगाव नहीं होना चाहिए। निष्पक्ष, एक जज की हैसियत से दूर खड़े होकर देखते रहो। जो हो रहा है, वही देखो। अपने को उसमें प्रवेश मत करो। अन्यथा तुम वह भी देख सकते हो, जो नहीं हो रहा है; जो तुम चाहते हो, होना

चाहिए, वह भी देख सकते हो। इसलिए दूरी रखो, भीतर प्रवेश मत कर जाओ। बी एन आब्जर्वर, बट डोंट बी ए पार्टिसिपेंट। निरीक्षक तो रहो, लेकिन भागीदार मत बन जाओ।
इसलिए विज्ञान कभी परमात्मा को नहीं जान पाएगा उन अर्थों में, जिन अर्थों में कृष्ण ज्ञानी की बात कर रहे हैं। क्योंकि वहां दूसरी शर्त है। वहां यह शर्त है, डोंट बी जस्ट एन आब्जर्वर, बी ए पार्टिसिपेंट। बाहर मत खड़े रहो, भीतर आ जाओ। दूर मत खड़े रहो, दूरी गिरा दो। क्योंकि दूर से तुम जो जानोगे, वह बाहरी पहचान होगी। भीतर आओ, अंतरतम में प्रविष्ट हो जाओ। वहां आ जाओ, जिसके भीतर और जाने का उपाय नहीं है। आखिरी केंद्र पर आ जाओ, परिधि को छोड़ दो। उस केंद्र पर आ जाओ, जिसके भीतर और जाने की सुविधा ही नहीं है। तभी तुम जान पाओगे।
तो ज्ञान एक दिशा है। इस दिशा में बहुत मार्ग जाते हैं, क्योंकि फिर ज्ञान के भी बहुत-बहुत रूप हो जाते हैं। लेकिन मोटे अर्थों में मनुष्य का एक विभाजन है।
जिन लोगों को जानने की खोज है, उनके लिए भक्ति सदा फिजूल मालूम पड़ेगी। कीर्तन हो रहा होगा, तो वे कहेंगे, यह क्या पागलपन है! कोई गीत गा रहा होगा, वे कहेंगे, इससे क्या होगा! कोई मंदिर में पूजा करता होगा, तो उन्हें समझ में नहीं पड़ेगी।
दूसरे का मार्ग कभी भी समझ में नहीं पड़ता। लेकिन समझदार उसी का नाम है, जो दूसरे के मार्ग को भी होने की सुविधा देता है, चाहे उसकी समझ में न भी पड़ता हो। जब मैं यह कहूं कि मुझे यह कीर्तन समझ में नहीं पड़ रहा है, तो मैं इतना ही कह रहा हूं कि मुझसे इसका कहीं ताल-मेल नहीं खाता। लेकिन हम जल्दी आगे बढ़ जाते हैं। हम कहते हैं, यह गलत है। वहां भूल शुरू हो जाती है। मेरे लिए गलत होगा, तो भी किसी और के लिए सही हो सकता है। मेरे लिए भ्रांत होगा, मेरे लिए नहीं होगा ठीक, तो भी किसी और के लिए बिल्कुल ठीक हो सकता है।
कृष्ण कहते हैं, यह पहला विभाजन है ज्ञान का।
लेकिन जब भी कोई अपने विभाजन के आर-पार जाने लगता है, तो दूसरों को नुकसान पहुंचाना शुरू कर देता है। अपने मार्ग पर चलना तो उचित है, लेकिन दूसरों के मार्गों को विचलित करना अनुचित है।
बहुत बार ज्ञान के मार्ग पर चलने वाले लोगों ने भक्ति के मार्ग पर जाते हुए लोगों के मार्ग में बड़ी बाधाएं और बड़ी अड़चनें खड़ी कर दी हैं, अनजाने ही। क्योंकि उनके लिए जो ठीक नहीं लगता, वे कहते हैं, ठीक नहीं है। लेकिन किसी दूसरे मार्ग पर वह बिल्कुल ही ठीक हो सकता है।
कृष्ण कहते हैं, यह जो पहली उपासना है, ज्ञान-यज्ञ का पूजन करने वाले
जो लोग हैं, वे एकत्व-भाव से, जो कुछ है, परमात्मा है, ऐसी प्रतीति में रमते हैं। यही उनकी उपासना है। वे मुझे सभी में खोज लेते हैं। वे सभी में मुझे देख लेते हैं। वे सब पर्दों को हटा देते हैं और जो पर्दों के भीतर छिपा है, उसकी झलक पा लेते हैं।
यह झलक एक की झलक है; सारे भेद पर्दों के भेद हैं। पर्दे सब हट जाएं, तो
जो भीतर छिपा है, वह एक है। जैसे हम सब मकानों को गिरा दें, तो सभी मकानों के भीतर से जो आकाश प्रकट होगा, वह एक होगा।
लेकिन सब मकान जब तक बने हैं, तब तक सभी मकानों की दीवालों में घिरा हुआ आकाश अलग मालूम पड़ता है। किसी मकान की दीवालें लाल हैं, और किसी की पीली हैं, और किसी की गरीब हैं, और किसी की मकान की दीवालें धनी हैं, और किसी का मकान आकाश छूता है, और किसी का जमीन छू रहा है। बहुत-बहुत फासले हैं। झोपड़े हैं और महल हैं, वह भीतर छिपा जो आकाश है, अलग-अलग मालूम पड़ता है।
कौन मानने को तैयार होगा कि झोपड़े के भीतर भी वही आकाश है जो महल के भीतर है? कौन मानने को तैयार होगा?
कोई मानने को तैयार नहीं होगा। कहेगा कि महल में जो आकाश है, वह बात ही
और है। वह स्वर्णमंडित है, हीरे-जवाहरातों से सजा है। सुगंध से भरपूर है।

उसकी शान और है, उसका विलास और है। झोपड़े का भी एक गरीब आकाश है, दीन है, दरिद्र है।
लेकिन आकाश भी कहीं भिन्न हो सकता है? झोपड़ा होगा दीन-दरिद्र; महल होगा समृद्ध; लेकिन भीतर जो आकाश है, दोनों के भीतर जो रिक्त स्थान है, वह कैसे भिन्न हो सकता है? लेकिन झोपड़ा भिन्न दिखाई पड़ता है, महल भिन्न दिखाई पड़ता है।
अभिन्नता तब तक न दिखाई पड़ेगी, जब तक हम झोपड़े और महल को मिटाकर न देखें। झोपड़े को भी मिटा दें, महल को भी मिटा दें; और फिर फर्क करने जाएं कि दोनों के भीतर जो छिपा आकाश था, अब उसमें कुछ भेद रहा? एक दीन, एक समृद्ध! एक गरीब, एक अमीर! एक स्वर्णमंडित, एक भिक्षापात्र से भरा!
अब उन आकाशों में कोई भी भेद न रह जाएगा।
ज्ञानी की खोज उसकी खोज है, जो सभी रूपों के भीतर छिपा है, सभी आकारों
के भीतर छिपा है। और ज्ञानी जब तक उस निराकार को नहीं खोज लेता, जो सभी आकारों में रमा है, तब तक उसकी तृप्ति नहीं है। इसलिए ज्ञानी अक्सर, साकार की जो पूजा करते हैं, उनके खिलाफ मालूम पड़ेगा। उसके खिलाफ होने का कारण है, उसकी खोज। उसकी खोज निराकार की है। इसलिए जब आपको देखेगा किसी आकार की पूजा कर रहे हैं, तो कहेगा, क्या पागलपन में पड़े हो! उसे खोजो, जो निराकार है!
लेकिन उसे पता नहीं कि कोई और आकार से भी उसकी यात्रा पर जा सकता है। उसकी हम पीछे बात करेंगे।
यह जो निराकार, एकत्व, सब में ही वासुदेव को देख लेने वाला है, समझ लेना चाहिए कि क्या यह मेरा मार्ग है? खोज लेना चाहिए, तालमेल बिठाना चाहिए, क्या ज्ञान मेरी खोज है? क्या मैं उस तरह का व्यक्ति हूं जो सब आकारों को गिराकर निराकार की तलाश में लगा हूं? क्या उससे मेरी तृप्ति होगी? क्या वही मेरी आत्मा की अभीप्सा है? वही मेरी प्यास है? अगर नहीं है, तो उस उपद्रव में कभी भी पड़ना नहीं चाहिए। अगर है, तो शेष सब को भूलकर उसमें पूरी तरह लीन हो जाना चाहिए। यह स्वधर्म की खोज है।
कृष्ण कहते हैं, दूसरे पृथकत्व भाव से, द्वैत भाव से, अर्थात स्वामी- सेवक भाव से मेरी उपासना करते हैं।
दूसरा वर्ग है भक्त का। भक्त की खोज बिल्कुल भिन्न है। खोज का अंत बिल्कुल एक है, खोज का मार्ग बिल्कुल भिन्न है। भक्त कहता है, जानने से कोई प्रयोजन नहीं। जानने में भक्त को बिल्कुल रूखा-सूखापन मालूम पड़ता है। है भी शब्द रूखा। ज्ञान बड़ा रूखा शब्द है। उसमें कहीं कोई रस-धार नहीं बहती। ज्ञान बिल्कुल मस्तिष्क की बात मालूम पड़ती है, उसमें हृदय की धड़कन नहीं सुनाई पड़ती। ज्ञान एक गणित का फार्मूला मालूम पड़ता है, किसी फूल का खिलना नहीं।
भक्त कहता है, जानने से क्या होगा? प्रेम! जानना कुछ मतलब का नहीं है।
वह कहता है, जब तक मैं उसे प्रेम न कर पाऊं, तब तक मेरी कोई तृप्ति नहीं है। नोइंग नहीं, लविंग। जानना नहीं, उसके प्रेम में डूब जाना।
भक्त कहता है, जानना भी बाहर ही बाहर है; कितने ही भीतर चले जाओ, जानना फिर भी बाहर है। और भक्त ठीक कहता है। अपनी जगह से बिल्कुल ठीक कहता है। वह कहता है, जब तक प्रेम में न डूब जाओ, तब तक असली जानना कहां! क्योंकि भक्त कहता है कि प्रेम ही जानने का मार्ग है।
अब इसे ऐसा समझें, एक डाक्टर है, वह एक मरीज के पास खड़ा हुआ है एक घर में। मरीज मरणासन्न है। मर रहा है। डाक्टर उसकी नाड़ी अपने हाथ में लिए हुए खड़ा है, तत्पर। नाड़ी की एक-एक धड़कन उसकी समझ में आ रही है। मरीज के हृदय की धड़कन उसकी समझ में आ रही है। मरीज के खून की चाल उसकी समझ में आ रही है। मरीज की अवस्था उसके पूरे ज्ञान में है।
पास में ही उस मरीज की पत्नी छाती पीटकर रो रही है। हाथ उसका नाड़ी पर नहीं है मरीज की। हृदय की धड़कन का उसे कुछ पता नहीं है। मरीज की क्या अवस्था है, उसका उसे कोई ज्ञान नहीं है। लेकिन उसके आंसू बहे जा रहे हैं।
उसके प्राण संकट में हैं। वह मरीज नहीं मर रहा है, वह खुद मर रही है। इस मरीज के साथ उसका मरना घटित हो रहा है।

इन दोनों के जानने में बड़ा फर्क है। डाक्टर का जानना कितना ही गहरा हो, बहुत गहरा नहीं है। पत्नी का जानना बिल्कुल भी नहीं है। इसे कुछ भी पता नहीं है कि घड़ीभर बाद यह आदमी मर जाएगा कि बचेगा, कि क्या होगा! कि इसके शरीर में क्या कमी है और क्या ज्यादा है, और क्या घट रहा है--इसे कुछ भी पता नहीं है। गणित का इसे कोई भी पता नहीं है। लेकिन किसी अंतस्तल पर इसे पता है कि घटना समाप्त हो गई। जीवन बुझने के करीब है। इसे कुछ भी पता नहीं है। इसके पास कोई यंत्र जानने के नहीं हैं। लेकिन इसकी अंतस-चेतना आंसुओं से भर गई है। इसकी अंतस-चेतना पर मृत्यु की छाया आ गई है।
डाक्टर समझाता भी है कि घबड़ाओ मत, अभी कोई घबड़ाने की बात नहीं है, लेकिन घबड़ाहट नहीं रुकती। डाक्टर कहता है, मरीज बच जाएगा, तो भी उस स्त्री की आंखों में भरोसा नहीं आता। वह किसी और ही ढंग से जान रही है कि बचना असंभव है।
और ऐसा नहीं कि इसके लिए पास होना ही जरूरी है। ऐसी घटनाएं घटी हैं कि दूर बेटा मर रहा है, हजारों मील दूर, और मां यहां तत्काल हजारों मील दूर फासले पर बोध से भर गई है कि कुछ अघट हो रहा है। अभी तो इस पर वैज्ञानिक भी शोध करते हैं और वे कहते हैं कि इसमें वैज्ञानिक आधार है। क्योंकि जिस बच्चे का हृदय अपनी मां के हृदय के साथ नौ महीने धड़का हो, उन दोनों के हृदय के बीच एक लयबद्धता है। और वह लयबद्धता ऐसी है कि समय और स्थान के फासले को नहीं मानती। और अगर दूर बेटे का हृदय धड़कने लगे और मृत्यु के करीब आ जाए, तो मां के हृदय में भी धड़कन होती है; वह चाहे समझ पाए, चाहे न समझ पाए।
अभी इस पर रूस में बहुत प्रयोग चलते हैं। तो उन्होंने बहुत जमीन के भीतर ले जाकर पशुओं को, जमीन के भीतर पानी में समुद्र में ले जाकर हजारों फीट नीचे; और यहां ऊपर उस पशु के बेटे को मारा जा रहा है या उसके बेटे को काटा जा रहा है; और वहां उनके पशुओं के हृदय की धड़कनें, रक्तचाप का अध्ययन किया, तो वे चकित रह गए। यहां बेटा मरता है और वहां मां के हृदय में सब कुछ उथल-पुथल हो जाती है। यह तो पशुओं की बात है! उधर नीचे उन्होंने मां को मारा है, इधर बेटे को कुछ हो जाता है; बेचैनी हो जाती है, उदासी छा जाती है। इस पर हजारों प्रयोग हुए हैं। और एक बात उन्होंने तय कर ली है कि प्रेम का अपना एक अलग ही आयाम है, जिसका ज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं है। अब यह पत्नी भी जानती है कुछ, किसी और मार्ग से। यह डाक्टर भी मौजूद है, यह पत्नी भी मौजूद है। यह डाक्टर भी तत्पर है, यह भी उत्सुक है कि यह आदमी बच जाए, लेकिन इसकी बचाने की उत्सुकता एक वैज्ञानिक की उत्सुकता है। यह पत्नी भी उत्सुक है कि यह आदमी बच जाए, लेकिन इसकी बचाने की उत्सुकता एक वैज्ञानिक की उत्सुकता नहीं है।
अगर यह आदमी मर जाएगा, तो डाक्टर भी दुखी होगा। दुखी इसलिए होगा कि केस असफल हुआ। दुखी इसलिए होगा कि दवाएं काम न कर पाईं। दुखी इसलिए होगा कि मेरा निदान उपयोगी न हुआ। दुखी इसलिए होगा कि कहीं कोई गणित में भूल हुई। दुखी इसलिए होगा। यह आदमी जो मर रहा है, उसके लिए एक केस है।
इस पत्नी का दुख कुछ और ढंग का होगा। इस आदमी के मरने के साथ यह कभी दुबारा वही नहीं हो सकेगी, जो थी। इस आदमी के मरने के साथ ही उसके भीतर बहुत कुछ मर जाएगा, जो फिर कभी पुनरुज्जीवित नहीं होगा। उसका कोई हिस्सा कट जाएगा और गिर जाएगा।
वहीं हम समझें कि एक तीसरा आदमी भी बैठा हुआ है, वह एक अखबार का रिपोर्टर है। वह खबर लेने आया है कि यह आदमी कब मरे, मैं दफ्तर में जाकर खबर कर दूं। वह भी वहीं मौजूद है। वह भी अपना कागज-कलम लिए बैठा है कि यह आदमी मरे और मैं जल्दी से लिखूं। वह भी उत्सुक है। वह भी उत्सुक है। उसकी उत्सुकता और ही तीसरे ढंग की है। वह सोच रहा है कि किस ढंग से ब्योरा लिखा जाए। किस ढंग से खबर दी जाए। किस ढंग से अखबार के पढ़ने वाले लोग इस पूरी स्थिति को जान पाएंगे, जो यहां घटित हो रही है। डाक्टर से उसके जानने का फासला और भी तीसरे ढंग का है।
एक चौथा आदमी भी वहां मौजूद है, जो एक चित्रकार है। वह भी उत्सुक है इस आदमी में। लेकिन वह प्रतीक्षा कर रहा है कि मौत कब आ जाए। क्योंकि वह मौत पर एक चित्र बनाना चाहता है। और जब मौत इस आदमी के सिर पर उतर आए, और इसकी

मौत की छाया इस आदमी को घेर ले, तब वह अनुभव करना चाहता है कि क्या होता है? रंग कैसे बदल जाते हैं? धूप-छाया कैसी भिन्न हो जाती है? वह भी उत्सुक है।
वह भी उत्सुक है। लेकिन इन सब की उत्सुकताएं अलग हैं।
अगर हम इन चारों से अलग-अलग पूछें, तो शायद हमें वहम भी हो कि ये एक ही आदमी की खाट के पास मौजूद थे या चार अलग आदमियों के पास मौजूद थे। इन चारों के वक्तव्य बिल्कुल अलग होंगे।
शायद वह स्त्री कोई वक्तव्य ही न दे पाए। डाक्टर जो कहेगा, उसकी भाषा मेडिकल साइंस की होगी। पत्रकार जो कहेगा, उसकी खबर-पत्री की भाषा होगी। चित्रकार जो कहेगा, वह कहेगा, रुको! जब तक मेरा चित्र न बन जाए, तब तक कुछ कहना मुश्किल है। मेरा चित्र ही कहेगा।
और इन चारों को, अगर हमें पता न हो कि ये एक ही आदमी के करीब मौजूद थे,
तो हम कभी कल्पना न कर पाएंगे कि वह एक ही आदमी था, जिसके चारों तरफ ये चारों मौजूद थे!
ठीक परमात्मा के चारों तरफ भी हम इसी तरह मौजूद हैं। और हम सबके उससे संबंधित होने के रास्ते अलग हैं। और एक का रास्ता दूसरे के लिए बिल्कुल बेबूझ है।
दूसरा रास्ता है, भक्त का। भक्त कहता है, जानने का क्या प्रयोजन? और जानकर भी क्या होगा? हम उसके प्रेम में डूब जाना चाहते हैं। हम उसे जानना नहीं चाहते, हम उसमें लीन हो जाना चाहते हैं। हम जानना नहीं चाहते; जानने में दूरी है। हम तो उसके हृदय में प्रवेश करना चाहते हैं और अपने हृदय में उसे प्रवेश देना चाहते हैं।
अगर भक्त से कोई कहेगा कि एक ही है, तो भक्त को समझ में नहीं आएगा। क्योंकि प्रेम की घटना, अगर एक ही है, तो घटेगी कैसे? प्रेम की घटना के लिए कम से कम दो चाहिए।
मैंने आपसे कहा कि ज्ञान की घटना तभी घटेगी, जब दो मिट जाएं और एक बचे।
जब एक बचे, तो ज्ञान की घटना घटेगी। ज्ञान की अनिवार्य शर्त है कि दो-पन मिट जाए और एक ही बचे। प्रेम की शर्त है कि अगर एक ही बचा, तो प्रेम कैसे घटित होगा? तो प्रेम कहता है कि दो!
भक्तों ने गाया है कि नहीं तेरा मोक्ष चाहिए, नहीं तेरा निर्वाण; हमें तेरी वृंदावन की गली में अगर कुत्ता होने को भी मिल जाए, तो हम तृप्त हैं! पर तेरी गली हो। और जन्मों से हमें छुटकारा नहीं चाहिए। एक ही प्रार्थना है कि जन्मों-जन्मों में जहां भी हम हों, तेरी स्मृति बनी रहे, उतना काफी है।
यह कोई और ही भाषा है। इन दोनों भाषाओं में विरोध है। विरोध होगा। लेकिन ये दोनों भाषाएं एक ही घटना की तरफ खबर देती हैं। भक्त कहता है, दो तो होने ही चाहिए!
अब यह जरा मजे की बात है कि प्रेम में भी एकता घटित होती है, लेकिन वह एकता ज्ञान की एकता से भिन्न भाषा में प्रकट होती है। जैसे, ज्ञान में एकता घटित होती है, जब दो मिट जाते हैं। प्रेम में भी एकता घटित होती है, जब दो ऐसे हो जाते हैं, जैसे एक हों, लेकिन दो बने रहते हैं। प्रेम में भी एकता घटित होती है। दो बने रहते हैं और भीतर कोई एक हो जाता है। दो धड़कनें होती हैं, लेकिन धड़कनों का स्वर एक हो जाता है। दो प्राण होते हैं, लेकिन दोनों के बीच एक धारा प्रवाहित होने लगती है।
प्रेम भी एक तरह की एकता को जानता है। और एक लिहाज से प्रेम की जो एकता है, वह ज्यादा समृद्ध है ज्ञान की एकता से। ज्ञान की एकता उतनी समृद्ध नहीं है। क्योंकि उसमें निश्चित रूप से एक हो जाता है। वह गाणितिक एकता है; मैथेमेटिकल यूनिटी है। दो मिलकर एक हो जाते हैं। ज्यादा जटिल नहीं है, सरल है। प्रेम की एकता ज्यादा जटिल है। दो दो रहते हैं और फिर भी एक का अनुभव करने लगते हैं। ज्यादा समृद्ध है।
इसलिए ज्ञानियों से सूखे वक्तव्य पैदा हुए हैं। प्रेमियों ने बहुत रसपूर्ण वक्तव्य दिए हैं। प्रेमियों ने गाया है, नाचा है, रंगा है, चित्र बनाए हैं, मूर्तियां बनाई हैं।

ऐसा समझें कि अगर सारा जगत ज्ञानी हो, तो सुखद नहीं होगा। क्योंकि जगत में जो रौनक है, वह जटिलता की है, कांप्लेक्सिटी की है। जगत में अगर सब बिल्कुल सरल-सरल हो और सीधा-सीधा हो, तो जगत का सारा सौरभ खो जाए। भक्तों ने जगत को सौरभ दिया है। इसलिए जिन धर्मों ने सिर्फ ज्ञान को ही प्रतिष्ठा दी, वे रूखे हो गए हैं, मरणासन्न हो गए हैं।
नहीं यह कह रहा हूं कि जगत में भक्त ही भक्त हो जाएं। अगर भक्त ही भक्त जगत में हों, तब भी एक कमी हो जाएगी। वह ज्ञानी भी एक रंग देता है अपनी मौजूदगी से। वह भी एक स्वर देता है और एक दिशा देता है। वह दिशा भी वंचित हो जाए, तो भी नुकसान होता है।
इस जगत में जितने रूप हैं, वे सभी इस जगत को समृद्धि देते हैं। इसलिए समृद्धतम धर्म वह है, जो सभी रूपों को आत्मसात कर लेता है। इस लिहाज से हिंदू धर्म बहुत अदभुत है। अदभुत इस लिहाज से है कि वह सभी मार्गों को आत्मसात कर लेता है। वह ज्ञानी को ज्ञान का मार्ग दे देता है, भक्त को भक्ति का मार्ग देता है। दुनिया में कोई भी ऐसा धर्म नहीं है दूसरा। दूसरे सारे के सारे धर्म किसी एक विशिष्टता को आधार बनाकर चलते हैं।
जैसे जैन हैं। तो भक्ति उपाय नहीं है, ज्ञान ही उपाय है। इसलिए जैन साधु के चेहरे पर एक रूखा-सूखापन छा जाएगा। अनिवार्य है। जैन साधु नाचता हुआ मिले, तो बेचैनी होगी हमें। मीरा नाचे, तो हमें कोई बेचैनी नहीं होगी। चैतन्य नाचता हुआ गांव से गुजर जाए, तो हमें कोई तकलीफ नहीं होगी। लेकिन जैन साधु नाचे, तो इनकंसिवेबल है; यह कुछ मेल नहीं खाती बात।
उसका कारण है। क्योंकि मार्ग शुद्धतम ज्ञान का है, सूखे ज्ञान का है। जरूरत है उसकी। कुछ हैं, जो उसी मार्ग से जा सकेंगे। कुछ हैं, जिनके लिए वही उपाय है। और जिनके लिए वही उपाय है, उनके लिए श्रेष्ठतम वही है। लेकिन जो विपरीत है, उसको कठिनाई खड़ी हो जाएगी। वह अपने को सताना शुरू कर देगा। अब अगर एक व्यक्ति जैन धर्म में पैदा हुआ है और भक्ति उसका मार्ग है,
तो बड़ी कठिनाई खड़ी होगी। कठिनाई इसलिए खड़ी होगी कि जैन धर्म में भक्ति के लिए उपाय नहीं है। अगर वह कोशिश करके उपाय करेगा, तो वे उपाय झूठे होंगे। जैनों ने कोशिश की है। जैनों ने कोशिश की है कि भक्ति का भी कोई मार्ग खोज लिया जाए। मगर उसमें आधार नहीं रहता, जड़ें नहीं रहतीं। और उसमें एक तरह का अन्याय भी मालूम पड़ता है।
अब अगर महावीर के सामने कोई भक्ति-भाव से नाचने लगे, तो महावीर के साथ निश्चित अन्याय है। अन्याय इसलिए है कि महावीर की खड़ी नग्न प्रतिमा, उससे इस नृत्य का कोई मेल नहीं होता। यह नृत्य बेमानी है।
कृष्ण के सामने यह नृत्य सार्थक मालूम होता है। इसमें तालमेल है। कृष्ण खड़े हैं मोर-मुकुट लगाए हुए, हाथ में बांसुरी लिए हुए। उनके सामने कोई नाच रहा है, तो इस नाचने में और कृष्ण के बीच एक संगति है। लेकिन महावीर नग्न खड़े हैं, उनके सामने कोई नाच रहा है, तो वह केवल इतना कह रहा है कि जिस धर्म में मैं पैदा हो गया, वह मेरे लिए नहीं था। और कुछ नहीं। वह इतना ही कह रहा है।
अगर कोई ज्ञानी को आप कृष्ण के मंदिर में ले जाएं, तो सारी बात व्यर्थ मालूम पड़ेगी। यह सब क्या पागलपन है! यह मोर-मुकुट, यह बांसुरी, यह सब क्या पागलपन है!
यह भाषाओं का भेद है। और भक्त की जो भाषा है, वह दो को स्वीकार करके चलती है। वह सारे जगत को दो में तोड़ लेती है, एक तरफ भगवान को और एक तरफ भक्त को। और तब संबंध निर्मित करती है।
कृष्ण कहते हैं, और दूसरे हैं, जो पृथक भाव से मेरी उपासना करते हैं।
जो कहते हैं मुझसे कि हम तुमसे अलग हैं। और कहते इसीलिए हैं कि हम तुमसे अलग हैं, क्योंकि एक होने का मजा तभी आएगा, जब हम तुमसे अलग हैं।
इस भक्त के विरोधाभास को ठीक से समझ लें।
भक्त कहता है, हम तुमसे अलग हैं, क्योंकि मिलने का मजा तभी आएगा, जब हम तुमसे अलग हैं। अगर हम तुमसे एक ही हैं सदा से, तो मिलने का सारा अर्थ ही खो गया। फिर मिले न मिले, बराबर है।

यह नदी जो दौड़ती जाती है सागर की तरफ, यह जो नाचती हुई उमंग है, यह जो उत्सवपूर्ण भागना है, यह इसीलिए है कि सागर वहां दूर है और अलग है। और यह मिलन एक घटना होगी।
इस नदी को कोई कहे कि तू पागल है, तू सागर से एक है ही।
यह भी ठीक है। नदी सागर से एक है ही। उसी से पैदा हुई है। सूरज की किरणों पर चढ़कर, हवाओं में जाकर, उसी से उठकर आई है। उसी सागर से भाप उठी है, वाष्पीभूत हुई है, आकाश में बादल बनी है, बरसी है पहाड़ों पर, गंगोत्री से उतरी है, गंगा बनी है, चली है सागर की तरफ।
ज्ञानी कहेगा, व्यर्थ का इतना उत्सव है! नाहक इतनी दौड़धूप है! इतने शोर-गुल की कोई भी जरूरत नहीं है। इतने नदी-पहाड़ और इतने मैदान पार करके भागने का प्रयोजन क्या है? तू सागर के साथ एक है ही।
लेकिन नदी कहेगी कि सागर को अलग ही रहने दो, उसे दूर ही रहने दो, उसे दूसरा ही रहने दो, क्योंकि मैं मिलने का आनंद लेना चाहती हूं। और यही प्रार्थना रहेगी परमात्मा से कि सदा यह मिलने की घटना घटती रहे। इतनी दूरी बनाए रखना कि मिलन संभव होता रहे। इतने दूर तो रखना ही।
अब यह जो स्थिति है, जैसे इस्लाम कहता है कि कोई आदमी यह न कहे कि मैं परमात्मा के साथ एक हूं, उसका कारण कुल इतना ही है। कल मैंने कहा कि मंसूर को सूली लगा दी। लगाने का कारण कुल इतना था, मंसूर का मार्ग था ज्ञान। मंसूर कहता था, अनलहक। मैं ईश्वर हूं; मैं ब्रह्म हूं।
वह वेदांत की बड़ी गहरी बात कह रहा था। सूफी दृष्टि का ठीक उदघोषक था। मैं ब्रह्म हूं; अहं ब्रह्मास्मि। अगर उसने उपनिषदों के वक्त में हिंदुस्तान में कहा होता, तो हमने उसकी महर्षि की तरह पूजा की होती। उसने जरा गलत वक्त चुना। उसने उनके बीच में कहा, जो कह रहे थे कि कोई यह न कहे कि मैं ब्रह्म हूं। क्योंकि जब ब्रह्म हम हो गए, तो फिर भक्ति का, मिलन का आनंद कहां रहेगा? वह भक्तों के बीच ज्ञान की बात कहकर मुसीबत में पड़ा। उन भक्तों ने कहा कि बंद करो यह बात! यह बात ठीक नहीं है; यह कुफ्र है, यह पाप है।
ठीक है; भक्त की दृष्टि से यह पाप है। ज्ञानी की दृष्टि से, भगवान अलग है, यह अज्ञान है। भक्त की दृष्टि से, मैं भगवान हूं, ऐसी घोषणा पाप है। और दोनों सही हैं। इससे जटिलता होती है। इससे जटिलता होती है, क्योंकि दूसरे के मार्ग को समझने में हमें बड़ी कठिनाई होती है।
यह जो भक्त है, इसकी खोज का तारा है प्रेम। और यह कहता है कि प्रेम काफी है; जानना व्यर्थ है। प्रेम में लीन हो जाना सार्थक है। क्योंकि प्रेम में आत्मक्रांति घटित हो जाती है।
कृष्ण कहते हैं, ऐसे जो लोग हैं, वे स्वामी-सेवक भाव से, या प्रेमी- प्रेमिका के भाव से, या किन्हीं और रूपों में, लेकिन संबंध में मुझे सोचते हैं। वे कोई संबंध निर्मित करते हैं।
भक्तों ने सब तरह के संबंध बनाए हैं।
जैसे सूफियों ने बहुत प्यारा संबंध बनाया है। ऐसी हिम्मत कोई हिंदू साधक नहीं कर सका। हिंदू साधकों ने जो भी संबंध बनाए हैं, वे इतने हिम्मतवर नहीं हैं। हिंदू धारणा में परमात्मा पुरुष है और साधक उसकी प्रेयसी, पत्नी, दासी के भाव से चलता है।
सूफियों ने हद कर दी। उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी बना दिया और खुद प्रेमी! परमात्मा को प्रेयसी और खुद प्रेमी! इस वजह से ही इस्लाम के प्रभाव में जो भी काव्य की धाराएं पैदा हुईं, सूफियों के संपर्क में जो भी काव्य पैदा हुए--चाहे अरबी, चाहे ईरानी और चाहे उर्दू--उन काव्यों में प्रेम की जो झलक उठी, वह हिंदुस्तान की किसी भाषा में पैदा हुए काव्य में नहीं उठ सकी। उसका कारण था। उसका कारण था, क्योंकि जब परमात्मा को प्रेयसी बना दिया, तो सब द्वार खुल गए। तब परमात्मा के साथ प्रेम की सारी खुलकर चर्चा हो सकी। फिर कोई बात ही न रही।
ध्यान रहे, अगर परमात्मा पुरुष है और भक्त स्त्री है, पत्नी है, प्रेयसी है, तो स्त्री लज्जावश प्रेम का निवेदन भी बहुत-बहुत झिझककर करती है। करेगी ही। इसलिए हिंदू भक्तों ने जो गाया है, वह बहुत झिझकपूर्ण है।

मीरा कितनी ही हिम्मत करे, लेकिन मीरा ही है। हिम्मत कितनी ही करे--बहुत हिम्मत की है--लेकिन हिम्मत छिपी-छिपी है। जैसा कि स्त्री का स्वभाव है। वह अगर कहती भी है, तो बड़े परोक्ष, बड़े पर्दे और बड़ी ओट से कहती है। घूंघट उसका पड़ा ही रहता है। वह कहती है घूंघट उठाने की बात, फिर भी वह घूंघट के पीछे से ही कहेगी। अनिवार्य है; होगा ही ऐसा।
लेकिन जब कोई सूफी फकीर प्रेमी की तरह, पुरुष की तरह ईश्वर की तरफ जाता है, उसको पत्नी और प्रेयसी मानकर, तब पुरुष जितनी अभिव्यक्ति दे सकता है प्रकट, एक अर्थ में निर्लज्ज, उतनी स्त्री नहीं दे सकती। इसलिए उर्दू या अरबी या ईरानी, इन भाषाओं में जो प्रेम की भंगिमा प्रकट हुई, और थोड़े से शब्दों में प्रेम का जो प्रगाढ़ रूप प्रकट हुआ, वह दुनिया की किसी भाषा में नहीं हो सका है। उसका कुल मात्र कारण यही था कि परमात्मा को प्रेयसी मानते से ही, अब कोई अड़चन न रही, अब गीत कोई भी गाया जा सकता है।
और पुरुष गा रहा है। और पुरुष तो आक्रामक है, इसलिए वह संकोच नहीं करेगा। वह संकोच करे, तो पुरुष कम है, इसकी खबर देगा। स्त्री संकोच न करे, तो स्त्रैण न रही। संकोच में ही उसका सौंदर्य है। और निस्संकोच आक्रमण में ही पुरुष का शौर्य है।
भक्त या तो परमात्मा को प्रेयसी मान ले, या प्रेमी मान ले, ये दो रूप हैं। सूफियों ने वह रूप चुना परमात्मा को प्रेयसी मानने का; हिंदुओं ने परमात्मा को प्रेमी मानने का रूप चुना।
लेकिन और भी प्रेम के रूप हैं। क्योंकि प्रेम के कितने रूप हैं! परमात्मा मां हो सकता है, परमात्मा पिता हो सकता है, परमात्मा पुत्र हो सकता है; वे सारे रूप भी चुने गए। वे सारे रूप भी चुने गए। परमात्मा मां हो सकता है, तब उसके साथ प्रेम की जो धारा बहेगी, उसका ढंग और होगा। बेटा भी मां को प्रेम करता है। लेकिन इस प्रेम का ढंग और होगा, रंग और होगा; इसकी चाल और होगी। परमात्मा को पिता भी मानकर कोई प्रेम कर पाता है।
लेकिन एक बात तय है, कोई भी संबंध हो, भक्त संबंध खोजेगा ही, क्योंकि संबंध ही उसके प्रेम के लिए मार्ग बनेगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि भक्त एकता को उपलब्ध नहीं होता। एकता को उपलब्ध होता है--संबंधों की सघनता से, संबंधों के नैकट्य से, संबंधों की आत्मीयता से।
और सच तो यह है कि बाकी हमारे जीवन के सारे संबंध सिर्फ हमें धोखा देते हैं कि हम एक हो गए, एक हम हो नहीं पाते हैं। न कोई पति पत्नी से एक हो पाता है; न कोई बेटा किसी मां से एक हो पाता है; न कोई मित्र किसी मित्र से एक हो पाता है। कभी क्षणभर को वहम होता है। कभी क्षणभर को ऐसा लगता है कि एक हो गए; और लग भी नहीं पाता कि विछोह शुरू हो जाता है। सिर्फ परमात्मा के साथ, उसके दोहरेपन में भी, उसके द्वैत में भी एकता सध जाती है। वह फिर टूटती नहीं।
इसलिए भक्ति जो है, वह प्रेम की शाश्वतता है, वह प्रेम की चरम ऊंचाई है। और जितने भी प्रेमी दुनिया में तकलीफ पाते हैं, उस तकलीफ का कारण प्रेम नहीं है, उस तकलीफ का कारण यह है कि वे प्रेम से जो चाह रहे हैं, वह केवल भक्ति से मिल सकता है। जो वे प्रेम से चाह रहे हैं, वह प्रेम से नहीं मिल सकता।
प्रेम से क्षण का संबंध ही मिल सकता है; प्रेम से शाश्वतता नहीं मिल सकती। लेकिन जब भी कोई प्रेम से शाश्वतता मांगने लगता है, तभी दुख में पड़ जाता है। शाश्वतता भक्ति से मिल सकती है। वह एक ऐसा द्वैत है, जिसके भीतर सदा के लिए अद्वैत सध सकता है। बाकी हमारे सब द्वैत ऐसे हैं कि जिनके भीतर झलक मिल जाए, तो भी बहुत है। झलक भी लेकिन काफी है। और झलक को भी बुरा कहने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि शायद वही झलक हमें और ऊपर उठाने के लिए इशारा बने। लेकिन जो उस झलक में ही उलझ जाता है, वह खो जाता है। भक्त प्रेम की खोज है।
कृष्ण कहते हैं, और तीसरे लोग भी हैं, जो बहुत प्रकार से मुझे उपासते हैं। ये तीसरे लोग मूलतः कर्म से संबंधित होते हैं।
ये तीन हिस्से हैं। मनुष्य के मनस के, मनुष्य के मन के तीन हिस्से हैं, ज्ञान, भाव और कर्म। ज्ञान हमारे मस्तिष्क को केंद्र बनाकर जीता है; भाव

हमारे हृदय को केंद्र बनाकर जीता है; कर्म हमारे हाथों को केंद्र बनाकर जीता है।
अब जैसे जीसस; जीसस कहते हैं कि अगर तू प्रार्थना करने आया है मंदिर में और तुझे ख्याल आ जाए कि तेरा पड़ोसी बीमार है, तो मंदिर को छोड़, पड़ोसी की सेवा में जा; वही उपासना है। जीसस कहते हैं, सेवा ही धर्म है।
इसलिए ईसाइयत ने दुनिया में धर्म की एक बिल्कुल नई प्रतिभा को जन्म दिया। वह प्रतिभा थी सेवा की। और ईसाइयों ने जितनी सेवा की है, उतनी सारी दुनिया के सारे लोगों ने मिलकर भी नहीं की है। कर भी नहीं सकेंगे। क्योंकि कर्म ही उपासना है, ऐसे गहन भाव पर सारी ईसाइयत की दृष्टि खड़ी है। कर्म ही उपासना है। भूल जाओ परमात्मा को, चलेगा; कर्म को मत भूल जाना। ज्ञानी कहेगा, भूल जाओ कर्म को, चलेगा; परमात्मा को मत भूल जाना।
यह जो तीसरा मार्ग है--हममें बहुत लोग हैं, जिनके व्यक्तित्व का केंद्र कर्म है; जो कुछ करेंगे, तो ही पा सकेंगे। उनसे अगर कहा जाए, खाली बैठ जाएं, शांत बैठ जाएं, तो वे और भी अशांत हो जाएंगे। इसलिए बहुत लोग हैं, दिक्कत में पड़ते हैं। इसलिए मैंने पहले कहा कि मार्ग का ठीक-ठीक चयन न हो पाए, तो हम व्यर्थ ही कष्ट पाते हैं।
अब कोई व्यक्ति है, वह पहुंच जाता है किसी साधु-संन्यासी के पास। साधु-संन्यासी उसे समझाता है कि शांत बैठो, एक घंटेभर बिल्कुल शांत, निश्चल होकर बैठ जाओ। वह एक सेकेंड शांत नहीं बैठ सकते, घंटाभर! उनके लिए ऐसा कष्टपूर्ण हो जाता है कि घंटेभर वे बैठेंगे, तो उस वक्त पाएंगे कि दुनियाभर में जितनी परेशानी है, सब उन पर आ गई है। इससे तो जब वे भाग-दौड़ में रहते हैं, तभी शांत रहते हैं।
इसलिए अक्सर लोगों को ख्याल में आता है कि जब वे ध्यान करने बैठते हैं, तब उनकी अशांति बढ़ जाती है। उसका मतलब है कि वह टाइप उनका ध्यान वाला नहीं है। उनके लिए कर्म ही ध्यान का द्वार बनेगा। ध्यान उनके लिए सीधा द्वार नहीं बन सकता। उन्हें किसी ऐसे कर्म की जरूरत है, जिसमें वे पूरा लीन हो जाएं। इस बुरी तरह डूब जाएं कि कर्ता न बचे, कर्म ही रह जाए। फिर वह कुछ भी हो--चाहे वे कोई चित्र बना रहे हों, और चाहे कोई मूर्ति बना रहे हों, और चाहे किसी के पैर दाब रहे हों, और चाहे गड्ढा खोद रहे हों, और चाहे बगीचा लगा रहे हों--वह कोई भी कर्म हो; कोई ऐसा कर्म, जो उनकी उपासना बन जाए। लेकिन अगर आपको अपने टाइप का ठीक-ठीक पता नहीं है, तो आप मुश्किल में पड़ते रहेंगे। और एक कठिनाई जरूरी रूप से पैदा हो जाती है। वह इसलिए पैदा हो जाती है कि सभी प्रकार के लोगों ने इस जगत में परमात्मा को पाया है। एक चैतन्य ने नाचकर भी पाया है। और एक बुद्ध ने शरीर का जरा भी अंग न हिलाकर भी पाया है। चैतन्य नाचकर पाते हैं, बुद्ध बिल्कुल शरीर को निश्चल करके पाते हैं।
अब संयोग से अगर आप बुद्ध के पास से गुजर गए, तो आप बिना सोचे-समझे बुद्ध के पास शांत होकर बैठने की कोशिश करेंगे। या संयोग से आप चैतन्य के पास से गुजर गए, तो आप चैतन्य की तरह नाचने की कोशिश करेंगे। लेकिन इस बात को पहले ठीक से जान लें कि आप क्या हैं? क्या आपके लिए उचित होगा?
इधर मैंने अनुभव किया है कि अगर आपके टाइप का ठीक-ठीक ख्याल हो जाए, तो साधना इतनी सुगम हो जाती है, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। टाइप का ठीक ख्याल न हो, तो साधना अकारण कठिन हो जाती है। और ध्यान रहे, दूसरे के टाइप से पहुंचने का कोई भी उपाय नहीं है। जन्मों-जन्मों खो सकते हैं, अगर आप अपने को न पहचान पाए कि आपके लिए क्या उचित हो सकता है।
तो कृष्ण कहते हैं, और तीसरे लोग भी हैं, वे भी बहुत प्रकार से मुझे उपासते हैं। लेकिन उपासना हो कोई, मार्ग हो कोई, विधि कोई, कोई कैसा भी चले, दिशा चुने कोई, एक बात निश्चित है कि चाहे श्रोत-कर्म हो, वेद-विहित कर्म हो, गहरे में मैं ही हूं। और चाहे यज्ञ हो, गहरे में यज्ञ की लपटों में मेरी ही अग्नि है। और चाहे पितरों के निमित्त दिया जाने वाला अन्न हो, मैं ही महापितर हूं। मैं ही तुम्हारे सब पिताओं का पिता हूं। क्योंकि मैं ही सारे जन्म और सारी सृष्टि के मूल में हूं। औषधि हों, कि वनस्पतियां हों, कि कोई वनस्पतियों से पूजा कर रहा हो, कि कोई फूल चढ़ा रहा हो, मैं ही हूं।

मंत्र मैं हूं, घृत मैं हूं, अग्नि मैं हूं और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूं।
यह सूत्र इतनी ही बात कह रहा है कि करो तुम कुछ, अगर निष्ठा से और मुझे स्मरण करते हुए तुमने किया है, तो तुम मुझे पा लोगे। चाहे तुम यज्ञ में डालो घी, अगर निष्ठा से, मुझे स्मरण करते हुए, मेरी उपस्थिति को अनुभव करते हुए और मेरे लिए ही तुमने वह डाला है, तो घृत भी मैं हूं, और जिस अग्नि में तुमने डाला है, वह भी मैं हूं। लेकिन ध्यान रहे, शर्त ख्याल में रहे, अन्यथा घी व्यर्थ जाएगा। अग्नि थोड़ी देर में बुझ जाएगी।
उपासना भीतर हो, तो जो कुछ भी तुम करोगे, वहीं से मुझे पा लोगे; क्योंकि सब जगह मैं हूं। और अगर उपासना भीतर न हो, तो तुम सब कुछ घेर लो, तुम मुझे नहीं पा सकोगे; क्योंकि कहीं भी तुम मुझे नहीं खोज पाओगे। उपासना आंख है। उपासना आंख है। उपासना का सूत्र मौलिक है। इसलिए क्या करते हो, यह सवाल नहीं है। कैसे करते हो, किस हृदय से करते हो, किस आत्मा से करते हो, वही सवाल है।
हम इसे भूल ही जाते हैं। इसलिए एक आदमी कहता है कि मैं पूजा कर रहा हूं। पूजा एक बाह्य कर्म हो जाता है। क्रिया पूरी कर देता है; खुद को वह क्रिया कहीं भी छूती नहीं। कहीं कोई एक बूंद भी उस क्रिया की अंतस में नहीं जाती।
फिर रोज-रोज करता रहता है। तो रोज-रोज करने से, पुनरुक्त करने से आदत
का हिस्सा हो जाता है, यांत्रिक हो जाता है। वैसे ही यांत्रिक हो जाता है, जैसे आप अपनी कार चलाते हैं। फिर कार चलाते वक्त आपको ड्राइविंग करनी नहीं पड़ती, ड्राइविंग होने लगती है। जब तक ड्राइविंग करनी होती है, तब तक आपको लाइसेंस मिलना नहीं चाहिए, क्योंकि उसका मतलब ही यह है कि अभी खतरा है, अभी आपसे भूल-चूक हो सकती है।
ड्राइविंग उसी दिन आपकी कुशल हो पाती है, जिस दिन आप ड्राइविंग को भूल सकते हैं। अब चाहे सिगरेट पीएं, अब चाहे गीत गुनगुनाएं, चाहे रेडियो सुनें, चाहे मित्र से गपशप करें; अब चाहे कुछ भी करें, शरीर का जो रोबोट है, शरीर का जो यंत्र हिस्सा है, वह ड्राइविंग करता रहेगा। आपकी जरूरत कभी-कभी पड़ेगी, कोई अचानक एक्सिडेंट का मौका आ जाए, तो आपकी जरूरत पड़ेगी, तो आपको ध्यान देना पड़ेगा, अन्यथा गाड़ी चलती रहेगी! आप अपने रास्ते पर बाएं मुड़ जाएंगे, दाएं मुड़ जाएंगे; अपने घर के सामने आ जाएंगे, अपने गैरेज में चले जाएंगे। इस सब में आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा।
हमारे शरीर में, हमारे मन में एक हिस्सा है, जिसको वैज्ञानिक रोबोट पार्ट कहते हैं। वे कहते हैं कि हम इतने कर्म कर पाते हैं इसीलिए कि हमारे शरीर में एक यंत्र हिस्सा है, जिसे कुशल कर्म को हम सौंप देते हैं। फिर वह करता रहता है। फिर हमें बीच-बीच में जरूरत नहीं रहती है करने की। एक नौकर को काम दे दिया है, वह कर लेता है। जरूरत हमारी तब पड़ती है, जब कोई अनहोनी नई बात हो। तो नौकर पूछता है कि मालिक, यह काम मैं कैसे करूं? क्योंकि यह कोई नई घटना है, इसका पहले कोई अंदाज नहीं है।
अगर रास्ते पर जाते हुए एक्सिडेंट होने के करीब हो, तो मालिक की जरूरत पड़ेगी। रोबोट, आपका यंत्र-मानव कहेगा, आ जाओ शीघ्रता से, जरूरत है, क्योंकि इसका कोई अभ्यास नहीं है। और एक्सिडेंट का कोई अभ्यास किया भी कैसे जा सकता है? उसका मतलब ही यह है कि वह अनहोना होगा, जब भी होगा। तो हमारे भीतर यह हिस्सा है।
लेकिन ध्यान रखें, ड्राइविंग और पूजा में यही फर्क है कि पूजा को जिसने अपने रोबोट को दे दिया, उसकी पूजा व्यर्थ हुई। आप सब काम रोबोट को दे दें। ड्राइविंग देनी ही पड़ेगी, नहीं तो फिर ड्राइविंग ही कर पाएंगे जिंदगी में; फिर और कुछ न कर पाएंगे। खाना खाने का काम रोबोट को देना पड़ता है। सब काम रोबोट को देने पड़ते हैं। टाइपिस्ट अपनी टाइपिंग रोबोट को दे देता है। हम सब अपने काम बांट देते हैं, ताकि हम मुक्त रहें। लेकिन पूजा बिल्कुल उलटी ही बात है। पूजा रोबोट से नहीं की जा सकती। पूजा आपको करनी पड़ेगी। और ध्यान रखना पड़ेगा कि कभी भी वह यांत्रिक, मैकेनिकल न हो जाए। क्योंकि जिस दिन वह यांत्रिक हो गई, उसी दिन व्यर्थ हो गई।

उपासना का अर्थ है, परमात्मा का सतत स्मरण बना रहे, ऐसी कोई भी क्रिया, उसका स्मरण न खोए, ए कांस्टेंट रिमेंबरिंग। कोई भी क्रिया, परमात्मा के स्मरण को सतत बनाए रखे, तो उपासना है।
और कृष्ण कहते हैं फिर वह कुछ भी हो, यज्ञ हो, कि श्रोत-कर्म हो, कि अग्नि हो, कि हवनरूप क्रिया हो, कि मंत्र हो, कि तंत्र हो, कुछ भी हो, मैं तुझे भीतर मिलूंगा। कहीं से भी तू आ, तू मेरे पास पहुंच जाएगा।
पर एक ही बात ख्याल रहे, उपासना यांत्रिक बन गई कि मिट जाती है। और हमारी हालतें ऐसी हैं कि यांत्रिक बनने का सवाल ही नहीं उठता, हम पहले से ही उसे यांत्रिक मानकर चलते हैं। बाप अपने बेटे को मंदिर में ले जाता है और कहता है, पूजा करो। बेटे को स्मरण कुछ भी नहीं दिलाया जाता, सिर्फ पूजा करवाई जाती है। बेटे को अभी यह भी पता नहीं कि ईश्वर है। अभी उसे यह भी पता नहीं कि यह क्या हो रहा है! बाप सिर झुकाता है, बड़े-बूढ़े सिर झुकाते हैं, वह भी सिर झुकाता है। यह सिर झुकाना रोबोट हो जाएगा। फिर यह जिंदगीभर झुकाता रहेगा।
ऐसे मैं लोगों को देखता हूं। सड़कों पर से जा रहे हैं, मंदिर देखकर जल्दी से उनका सिर झुक जाता है। रोबोट! उनसे अगर पूछो कि क्या किया, तो वे कहेंगे, कुछ किया नहीं।
एक मित्र को मैं जानता हूं। गांव में कोई भी मंदिर पड़े, तो वे उसको नमस्कार करते हैं। मेरे साथ घूमने जाते थे सुबह। तो मैंने उनसे कहा, एक दफा ठीक से एक मंदिर के सामने घड़ी दो घड़ी बैठकर यह कर लो, तो ज्यादा बेहतर है बजाय फुटकर दिनभर करने के। इसमें कुछ सार नहीं मालूम पड़ता, जहां से भी निकले, जल्दी से सिर झुकाया, आगे बढ़ गए!
मेरी बात उनकी समझ में पड़ी। एक दिन उन्होंने किया। फिर मेरे साथ घूमने गए। मंदिर पड़ा, तो उनको बड़ी बेचैनी हुई। उनको अपने हाथ-पैर रोकने पड़े। दस कदम मेरे साथ आगे बढ़े और मुझसे बोले, माफ करिए! मैंने कहा, क्या हुआ? उन्होंने कहा, मुझे वापस जाकर नमस्कार करनी पड़ेगी! क्या मामला है? मुझे भय लग रहा है। जिंदगी में ऐसा मैंने कभी नहीं किया। इस मंदिर को तो मैं कभी चूकता ही नहीं। तो मुझे भय लग रहा है कि पता नहीं इससे कुछ नुकसान न हो जाए। मैंने कहा, जाओ!
अब यह ठीक वैसी ही आदत हो गई, जैसे किसी को सिगरेट पीने की हो जाए। न पीए, तो मुश्किल मालूम पड़ती है। अब यह मंदिर को हाथ जोड़ना एक आदत का हिस्सा हो गया। अब यह जबरदस्ती हाथ को रोकना पड़ता है।
मैंने उनसे पूछा, कितने साल से करते हो? वह कहते हैं, मुझे याद नहीं आता। जब से बचपन से मैं यह कर रहा हूं। मेरे पिता भी ऐसा ही करते थे। उन्हीं के साथ-साथ मैं भी सीख गया। कुछ अनुभव हुआ जिंदगी में? वे कहते हैं, कुछ अनुभव नहीं हुआ।
पचास साल के हो गए हैं। पता नहीं चालीस साल से, पैंतालीस साल से, कब से
कर रहे हैं! कोई अनुभव नहीं हुआ, और यह पैंतालीस साल मंदिरों के सामने सिर झुकाने में गए। तो ये सिज्दा बेकार हो गया। यह प्रार्थना फिजूल है। यह यांत्रिक हो गई। अब यह एक मजबूरी है। एक रोबोट का हिस्सा हो गई है कि करनी पड़ती है। करते रहेंगे और मर जाएंगे।
उपासना ऐसे नहीं होगी। उपासना का अर्थ है, स्मरणपूर्वक, माइंडफुली; ईश्वर को स्मरण करते हुए किया गया कोई भी कृत्य उपासना है। गड्ढा खोदते हों जमीन में, ईश्वर को स्मरणपूर्वक खोदते हों; मिट्टी न निकलती हो, ईश्वर ही निकलता हो, तो प्रार्थना हो गई, उपासना हो गई। उस गड्ढे में भी वही मिलेगा। किसी मरीज के पैर दाबते हों, मरीज मिट जाए, ईश्वर ही रह जाए। ईश्वर के ही पैर हाथ में रह जाएं। स्मरणपूर्वक ईश्वर के ही पैर दबने लगें। उसी मरीज में ईश्वर मिल जाएगा। कहां, यह सवाल नहीं है; कैसे!
तो कृष्ण कहते हैं, सब जगह मैं हूं, सबके भीतर मैं छिपा हूं। तुम कहीं
से भी आ जाओ, सब रास्ते मेरे पास ले आते हैं। सिर्फ मुझे स्मरण रखना, इतनी ही शर्त है।
आज इतना ही।

लेकिन उठेंगे नहीं। पांच मिनट कीर्तन में डूबें। पांच मिनट उपासना के बना लें। कोई उठेगा नहीं, बैठे रहें। और जब तक कीर्तन खतम न हो, तब तक उठें न। एक पांच मिनट शांति से अपनी जगह बैठे रहें।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
सातवां प्रवचन

मैं ओंकार हूं

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च।। 17।।
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।। 18।।
और हे अर्जुन! मैं ही इस संपूर्ण जगत का धाता अर्थात धारण करने वाला, पिता, माता और पितामह हूं, और जानने योग्य पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूं।
और हे अर्जुन, प्राप्त होने योग्य गंतव्य तथा भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, सबका साक्षी, सबका वास स्थान और शरण लेने योग्य तथा हित करने वाला,
और उत्पत्ति और प्रलयरूप तथा सबका आधार, निधान अर्थात प्रलयकाल में सबका जिसमें लय होता है, और अविनाशी, बीज कारण भी मैं ही हूं।

जैसे मार्ग हैं अनेक और मंजिल एक है, वैसे ही प्रभु के रूप भी हैं अनेक, वह जो रूपायित हुआ है, वह एक है। ऐसा नहीं है कि उसे एक ही रूप में देखा जा सके! कोई रूप की सीमा नहीं है। जो जिस रूप में खोजना चाहे, उसे खोज ले सकता है। सभी रूप उसके हैं। जो भी है, वही है।
कृष्ण इस सूत्र में बहुत-से शब्दों का संकेत किए हैं। वे शब्द-संकेत समझने जैसे हैं; क्योंकि उन शब्द-संकेतों से ही साधना का पथ भी विस्तीर्ण होता है। कहा है, अर्जुन, मैं ही इस संपूर्ण जगत का धाता अर्थात धारण करने वाला हूं।
धर्म शब्द से हम परिचित हैं। धर्म शब्द का अर्थ होता है, जो धारण करे,
जो धारण किए हुए है! धर्म शब्द से अर्थ रिलीजन नहीं होता। धर्म शब्द से अर्थ मजहब भी नहीं होता। मजहब का अर्थ होता है, पंथ, सेक्ट, संप्रदाय। रिलीजन शब्द का मौलिक अर्थ होता है, जिससे हम बंधे हैं, रिलीगेर, जिससे हम बंधे हैं। लेकिन यह बड़ी कीमती बात है कि भारत धर्म को इस भांति नहीं सोचता कि जिससे हम बंधे हैं, बल्कि इस भांति सोचता है कि जिस पर हम सधे हैं। बंधन शब्द अप्रीतिकर भी है, कुरूप भी है। शायद पश्चिम ने धर्म को एक बांधने वाली सीमा-रेखा की तरह देखा है, इसीलिए पश्चिम ने धर्म से मुक्त होने की चेष्टा भी की है। जिससे हम बंधे हैं, उससे हम मुक्त भी होना चाहेंगे। बंधन चाहे कितना ही स्वर्ण का क्यों न हो, विद्रोह पैदा करेगा। भारतीय मनीषा धर्म को एक बंधन नहीं मानती, धर्म को एक मुक्ति मानती है। धर्म एक ग्रंथि नहीं है, जिससे हम बंधे हैं; धर्म एक स्वतंत्रता है, जिसमें हम मुक्त हो सकते हैं। धर्म शब्द का अर्थ है, जिसने हमें धारण किया है। उससे हम बंधे नहीं हैं, हम उससे ही निष्पन्न हुए हैं।
एक वृक्ष है। वृक्ष के नीचे उतरें, तो जड़ों का फैलाव है। वृक्ष ऐसा भी सोच सकता है कि जमीन वह है, जिससे मैं बंधा हूं। और इस सोचने में भी गलती न होगी। क्योंकि वृक्ष ऐसा देख सकता है कि यह जमीन ही है, जिसमें मेरी जड़ें उलझी हैं और जिससे मैं बंधा हूं। वृक्ष जड़ों और जमीन के बीच के संबंध को बंधन की भांति भी देख सकता है। और वृक्ष इस भांति भी देख सकता है कि जमीन मेरा बंधन नहीं है; यह जमीन ही है, जिस पर मैं सधा हूं। यह जड़ों और जमीन के बीच बंधन नहीं है, जड़ों और जमीन के बीच प्राणों का संबंध है।
अगर वृक्ष ऐसा देखे कि जमीन से मैं बंधा हूं, तो जमीन से मुक्त होने की कोशिश शुरू हो जाएगी। इस देखने से ही कोशिश शुरू हो जाएगी। यह दृष्टि ही छुटकारे का प्रारंभ होगी। और अभागा होगा वह वृक्ष। क्योंकि जहां तक देखने का संबंध है, वहां तक तो कोई हर्ज नहीं है कि वृक्ष समझे कि मैं जमीन से बंधा हूं, क्योंकि आकाश में उड़ नहीं सकता, लेकिन जिस दिन वृक्ष इस बंधन से

मुक्त होने की कोशिश करेगा, उस दिन वृक्ष अपने ही हाथों अपनी आत्महत्या कर लेगा। क्योंकि जड़ें बंधन नहीं हैं, जीवन हैं।
धर्म का अर्थ है, जिसने हमें धारण किया है। वह बंधन नहीं है, वह हमारे प्राणों का स्रोत है। जड़ें बंधन नहीं हैं, जड़ें वृक्ष के प्राण हैं। और पृथ्वी ने उसे बांधा नहीं है, जीवन दिया है। सच तो यह है कि जड़ों के कारण ही वह आकाश में फैलने में समर्थ हुआ है। जड़ों में जो रस, जड़ों में जो प्राण, जो ऊर्जा उसे उपलब्ध हो रही है, वही उसके पत्ते और फूल बनकर आकाश में खिली है। यह जो वृक्ष की यात्रा है आकाश की तरफ उठने की, यह जो महत्वाकांक्षा है कि आकाश को छू लूं, यह जड़ों के ही आधार पर है।
और ध्यान रहे, जितनी जड़ें गहरी जाएंगी जमीन में, उतना ही वृक्ष ऊपर जाएगा आकाश में। अगर जड़ें जमीन के पूरे के पूरे प्राणों में प्रविष्ट हो जाएं, तो वृक्ष आकाश को स्पर्श कर लेगा। जितनी होगी गहराई जड़ों की, उतनी ऊंचाई हो जाएगी वृक्ष की। जड़ें दुश्मन नहीं हैं; और जड़ें ऊंचे उठने में बाधा भी नहीं हैं; और जड़ें आकाश में उड़ने में सहयोगी हैं, साथी हैं। उनके बिना वृक्ष बचेगा ही नहीं, आकाश में उड़ने का तो सवाल ही नहीं है।
भारतीय मनीषा कहती है कि धर्म है वह, जो हमें धारण किए है।
इसमें एक और मजे की बात है कि अगर आपको बंधन में डाला जाए, तो आपकी जानकारी के बिना नहीं डाला जा सकता। और बंधन में डालने का तो अर्थ ही यह होगा कि पहले कभी आप बंधन के बाहर भी थे, और कभी बंधन में डाल दिए गए हैं, और कभी बंधन से फिर अलग भी हो सकते हैं।
यहां एक दूसरा सूत्र आप ख्याल ले लें। भारतीय मनीषा की दृष्टि ऐसी है
कि धर्म वह है, जिससे हम चाहें तो भी अलग नहीं हो सकते; कोई उपाय नहीं है। हम चाहें तो भी हम धर्म से अलग नहीं हो सकते, क्योंकि धर्म हमारे प्राणों का आधार है। धर्म से अलग होकर हम हो ही नहीं सकते, हमारा अस्तित्व भी नहीं होगा।
जैसे वृक्ष जमीन से अलग होकर नहीं हो सकता, और जैसे मछली सागर से अलग होकर नहीं हो सकती। क्योंकि सागर सिर्फ मछली के लिए माध्यम ही नहीं है, जिसमें वह होती है, वह उसका प्राण भी है। सागर ने उसे धारण भी किया है, जन्माया भी है, जिलाया भी है। सागर उसे लीन भी करेगा अपने में। सागर ही मछली के भीतर भी दौड़ रहा है। इसलिए सागर के बाहर आकर मछली को जीना असंभव है। थोड़ी-बहुत देर जी सकती है, जितनी देर तक, भीतर जो सागर था, वह सूख न जाए। थोड़ी-बहुत देर वृक्ष भी हरा रहेगा, जितनी देर तक जमीन से खींची गई रस-धार मौजूद रहेगी। फिर सूख जाएगा।
धर्म वह है, जिससे हम अलग नहीं हो सकते। वह हमारी आत्मा है। इसलिए धर्म की जो दूसरी बड़ी व्याख्या भारत ने की है, वह महावीर ने की है। हिंदुओं ने व्याख्या की है कि धर्म वह है, जो धारण किए है। महावीर ने व्याख्या की है कि धर्म वह है, जो हमारा स्वभाव है। बात एक ही है। क्योंकि स्वभाव ही हमें धारण किए हुए है; या जो हमें धारण किए हुए है, वही हमारा स्वभाव है; वही हमारा इनट्रिंजिक नेचर है; वही हम हैं।
तो कृष्ण अपनी पहली परिभाषा देते हैं; वे कहते हैं, मैं धर्म हूं; मैं धाता हूं; मैं वह हूं, जो धारण किए है।
जो हमें धारण किए है, उसे हम भूल सकते हैं, उससे हम दूर नहीं हो सकते।
जो धारण किए है, उसे हम भूल सकते हैं, उससे हम दूर नहीं हो सकते। उसका हम विस्मरण कर सकते हैं, उससे हम विच्छिन्न नहीं हो सकते। उसे हम जन्मों- जन्मों तक याद न करें, यह हो सकता है, लेकिन हम क्षणभर को भी उससे भिन्न नहीं हो सकते।
इसलिए सारी दुनिया में धर्म को सीखने की भाषा में समझा गया है; धर्म
भी एक लर्निंग है, एक शिक्षण है। भारत ने उसे इस भाषा में नहीं समझा। भारत के लिए धर्म शिक्षण नहीं है, पुनर्स्मरण है; रिमेंबरिंग है। हम सिर्फ भूल सकते हैं, खो नहीं सकते। और जो बहुत निकट होता है, उसे भूलना आसान है। वृक्ष अगर अपनी जड़ों को भूल जाए, तो बहुत कठिन नहीं है। कई कारण हैं। पहला तो कारण यह है कि जड़ें छिपी होती हैं जमीन के भीतर। असल में जहां भी जन्म होता है, वहां गुह्य अंधकार चाहिए। चाहे मां के पेट में बच्चे का

जन्म होता हो, तो भी गुह्य अंधकार चाहिए। और चाहे जड़ों में वृक्ष का जन्म होता हो, तो भी पृथ्वी का गुह्य अंधकार चाहिए। जहां भी जन्म होता है, वहां इतनी निजता चाहिए कि प्रकाश भी बाधा न डाले। वहां इतना मौन चाहिए, इतनी शांति चाहिए कि प्रकाश की किरण भी आकर कंपन पैदा न करे।
प्रकाश के साथ हलन-चलन शुरू हो जाता है। अंधकार महाशांति है। और इसलिए हम अंधकार से डरते हैं, क्योंकि हम कोई भी शांति नहीं चाहते। जो भी शांति चाहेगा, वह अंधकार से नहीं डरेगा, अंधकार को प्रेम करने लगेगा। जो जितनी ज्यादा अशांति से भरा होगा, उतना अंधकार से डरेगा, भयभीत होगा। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जो अंधकार में सो भी नहीं सकते! रात को प्रकाश जलाकर ही सोएंगे। यह अशांति की आखिरी सीमा है।
जड़ें तो अंधकार में बड़ी होती हैं, इसलिए छिपी होती हैं। जो भी महत्वपूर्ण है, वह गुप्त होता है। जो प्रकट होता है, वह महत्वपूर्ण नहीं है।
ध्यान रहे, जो भी महत्वपूर्ण है, वह सदा गुप्त होता है। जड़ें गुप्त हैं, वे महत्वपूर्ण हैं; उन्हें उघाड़ा नहीं जा सकता। शाखाएं उघड़ी हैं, जो उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। हम एक वृक्ष की शाखाओं को काट दें, नई शाखाएं आ जाएंगी। एक पूरा वृक्ष गिर जाए, नए अंकुर निकल आएंगे और नया वृक्ष निर्मित हो जाएगा। क्योंकि वह जो प्राण है, वह नीचे छिपा है। उस पर आघात भी नहीं पहुंचता है। लेकिन जड़ें काट दें, फिर सारा वृक्ष कुम्हला जाएगा और मर जाएगा।
तो जहां जीवन का सूत्र है, उसे छिपाकर रखा है जीवन ने। जड़ें छिपी हैं; वृक्ष भूल सकता है। बहुत स्वाभाविक है कि वृक्ष को जड़ों की कोई याद न आए। फूल दिखाई पड़ें; शाखाएं दिखाई पड़ें। रोशनी में हैं; आकाश में फैली हैं; महत्वाकांक्षा का हिस्सा हैं। पक्षी आते हैं, शाखाओं पर विश्राम करते हैं। फूल आते हैं, पक्षी गीत गाते हैं। सुबह सूरज निकलता है, हवाएं झोंके देती हैं। तूफान आते हैं, आंधियां आती हैं। वर्षा होती है, रात में चांदनी बरसती है। सब वृक्ष के ऊपर घटित होता है। वृक्ष इसमें खो जा सकता है, जड़ें भूल जा सकता है।
लेकिन जब वृक्ष को जड़ों की बिल्कुल भी याद नहीं है, तब भी जड़ें ही उसे धारण किए हुए हैं। जब उसे बिल्कुल भी स्मरण नहीं है, जब वह कभी धन्यवाद का एक शब्द भी जड़ों से नहीं कहता, जब कभी लौटकर जड़ों का कोई आभार भी नहीं मानता, तब भी जड़ें उसे धारण किए हुए हैं।
तो एक व्यक्ति नास्तिक हो, ईश्वर को इनकार कर दे, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता है; ईश्वर ही उसे धारण किए हुए है। और एक व्यक्ति भूल जाए, और ईश्वर की उसे कोई सुध न रहे, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता; ईश्वर ही उसे धारण किए हुए है।
कृष्ण कहते हैं, मैं हूं धाता; मैं वह हूं, जो धारण किए हुए है। कोई जाने, न जाने; पहचाने, न पहचाने; स्मृति आती हो, न आती हो; चाहे तो इनकार भी कर दे, तो भी मैं धारण किए हुए हूं।
आप इनकार कर सकते हैं, लेकिन ईश्वर से बच नहीं सकते। आप भाग सकते हैं; कितने ही भागें! जैसे कोई मछली सागर में सागर से भागती हो, भागती जाए, मीलों के चक्कर लगाए और फिर भी पाए कि सागर में है। ऐसे ही हर व्यक्ति जो ईश्वर से भागता है, एक दिन पाता है कि वह जिसमें भाग रहा था, वही तो ईश्वर है। कहां भागकर जाने का उपाय है?
इसलिए हमने बहुत मौलिक और आधारभूत व्याख्या पकड़ी है धर्म की; और वह है
कि जो हमें धारण किए है। और आपको ही नहीं... ।
सारी दुनिया में धर्मों ने मनुष्य को केंद्र बना लिया है। इसलिए बहुत धर्म हैं, जो कहेंगे कि जानवरों में तो कोई आत्मा ही नहीं है, इसलिए उनकी हिंसा की जा सकती है; वृक्षों में कोई आत्मा नहीं है, उन्हें काटा जा सकता है; सिर्फ आदमी में आत्मा है। अधिकतर धर्म एन्थ्रोपोसेंट्रिक हैं; आदमी को केंद्र मान लिया है।
भारत ऐसा नहीं मानता। भारत यह नहीं कहता कि जो आदमी को धारण किए हुए है, वह ईश्वर है। भारत यह कहता है कि अस्तित्व ही जिसमें सम्हला हुआ है, जो

अस्तित्व को ही धारण किए हुए है, वह ईश्वर है। वही नहीं है ईश्वर, जो आपको धारण किए हुए है; वह जो वृक्ष को धारण किए हुए है, वह भी ईश्वर है। वह जो नदी में बह रहा है, वह भी ईश्वर है। वह जो सूरज में पिघलकर आग बन रहा है, वह भी ईश्वर है। और वही ईश्वर नहीं है, जो आपको प्रीतिकर है; जो अप्रीतिकर है, वह भी ईश्वर है। अमृत ही ईश्वर नहीं है, जहर भी ईश्वर है। जहर के होने के लिए भी उसका ही आधार चाहिए। उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता है।
इसे हम ऐसा समझें, कि ईश्वर से हमारा अर्थ है, अस्तित्व का जो सार है। इसलिए ईश्वर हमारे लिए व्यक्ति नहीं है। वह कहीं आकाश में सात आसमानों के ऊपर बैठा हुआ सिंहासन पर कोई व्यक्ति नहीं है, जो राज-काज चला रहा है। इतनी बचकानी हमारी धारणा नहीं है। यह बच्चों का ईश्वर है। इससे और गहरे ईश्वर को बच्चे नहीं समझ सकते। लेकिन हमारे लिए ईश्वर का अर्थ है, जिसमें सभी कुछ धारा हुआ है--सभी कुछ; जन्म भी और मृत्यु भी; और सृजन भी और प्रलय भी। तो इसका साधक के लिए क्या अर्थ होगा?
साधक के लिए अर्थ होगा कि जब भी आप किसी चीज को देखें, तो उसकी शाखाओं
पर कम, उसकी जड़ों पर ज्यादा ध्यान दें। और जब भी किसी चीज को आप देखें, तो जो प्रकट है, उस पर कम; और जो अप्रकट है, उस पर ज्यादा ध्यान दें। जो दिखाई पड़ रहा है, उस पर कम; और जिसके कारण दिखाई पड़ रहा है, उसकी खोज करें। मछली को देखें, तो सागर की याद करें। और वृक्ष को देखें, तो जड़ों का स्मरण आ जाए। सदा ही उसकी खोज करते रहें, जो नीचे छिपा है और सभी को सम्हाले हुए है।
तो कृष्ण कहते हैं, मैं धाता हूं। और अगर कोई धर्म की खोज करता रहे, तो मुझ तक पहुंच जाता है।
मैं पिता हूं, माता हूं, पितामह हूं।
अजीब है बात। क्योंकि वे कह रहे हैं, मैं पिता भी हूं! पिता कहते हों,
तो फिर माता नहीं कहना चाहिए; कहते हैं, मैं माता भी हूं! और यहां तक भी ठीक था, फिर बात और भी अतर्क्य हो जाती है; वे कहते हैं, पिता का पिता भी मैं ही हूं; पितामह भी मैं ही हूं! ऐसा कहकर क्या कहना चाहते हैं? ऐसा कहकर वे यह कहना चाहते हैं--इसे हम थोड़ा दो-तीन तरफ से समझने की कोशिश करें।
आप पैदा हुए। तो शायद आपको ख्याल होगा, जन्म की एक तिथि है और फिर मृत्यु की एक तिथि है, इन दोनों के बीच आप समाप्त हो जाएंगे। लेकिन इस जगत में कोई भी चीज आइसोलेटेड नहीं है। इस जगत में कोई चीज अलग-थलग नहीं है। जन्म के पहले भी आपको किसी न किसी रूप में होना ही चाहिए, अन्यथा आपका जन्म नहीं हो सकता। जगत एकशृंखला है, जगत एक कड़ियों का जोड़ है, जिसमें हर कड़ी पीछे की कड़ी से जुड़ी है; और हर कड़ी आगे की कड़ी से भी जुड़ी है। जिसे आप जन्म कहते हैं, वह सिर्फ एक कड़ी की शुरुआत है; पिछली कड़ी पीछे छिपी है। और जिसे आप मृत्यु कहते हैं, वह फिर एक कड़ी का अंत है; लेकिन अगली कड़ी आगे मौजूद है। इस जगत में कोई चीज विच्छिन्न नहीं है। जीवन एक सततशृंखला है, एक प्रवाह है।
अगर ईश्वर को खोजना है, तो प्रवाह को देखना पड़ेगा; और अगर ईश्वर से बचना है, तो व्यक्ति को देखना पड़ेगा। अगर आप व्यक्ति को देखेंगे, तो ईश्वर को खोजना मुश्किल है।
मैं पैदा हुआ, मैं मर जाऊंगा; अगर यही जीवन है, तो इस जगत में ईश्वर का कोई अनुसंधान नहीं हो सकता। मेरा जन्म भी तब बेबूझ है, क्योंकि कोई कारण नहीं, एक एक्सिडेंट, एक दुर्घटना मालूम होती है कि मैं पैदा हुआ; और मेरी मृत्यु भी एक दुर्घटना होगी। इन दोनों के पार, जगत के अस्तित्व से मेरा क्या संबंध है? जब मैं नहीं था, तब भी जगत था; और जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी जगत रहेगा। तो मैं इस जगत से अलग हो गया, मेरे संबंध टूट गए।
और जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी फूल खिलते रहेंगे। और जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी वसंत आएगा और पक्षी गीत गाते रहेंगे। और जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी झरने बहेंगे और नाचेंगे और सागर की तरफ चलेंगे। तब तो इस जगत से मेरी शत्रुता भी निर्मित हो गई! क्योंकि मेरे होने न होने से इस जगत की धारा का कोई भी संबंध नहीं मालूम पड़ता। मैं अलग हो गया। मैं टुकड़ा हो गया।

पश्चिम की दृष्टि ऐसी ही है, व्यक्ति को एक टुकड़े की तरह देखने की। और इसलिए पश्चिम में जीवन को देखने का ढंग संघर्ष का हो गया। अगर मैं अलग हूं, तो जीवन संघर्ष है; और अगर मैं एक हूं, तो जीवन समर्पण होगा।
अगर मैं इस जगत से अलग हूं और मेरे जन्म से इस जगत को कोई प्रयोजन नहीं है; मैं जब नहीं था, तो जगत में कौन-सी कमी थी? कोई भी तो मेरे न होने से फर्क नहीं पड़ता था। और जब मैं कल नहीं हो जाऊंगा, तो जगत में कौन-सी कमी हो जाएगी? कोई भी तो फर्क नहीं पड़ेगा।
तो मेरा होना और जगत का होना, दोनों संबद्ध नहीं मालूम होते। नहीं तो
जब मैं नहीं था, तो जगत में कुछ कमी होनी चाहिए। और जब मैं न रह जाऊं, तब एक खाली जगह, एक रिक्त जगह छूट जानी चाहिए, जो फिर भरी न जा सके।
लेकिन ऐसा नहीं होगा। मेरे होने न होने से इस विराट प्रवाह में कहीं
भी कोई भनक भी न पड़ेगी। तो फिर मैं अलग हूं और यह जगत अलग है। और निश्चित ही इस जगत और मेरे बीच जो संबंध है, वह मैत्री और प्रेम का नहीं, संघर्ष का और शत्रुता का है। इस जगत से मुझे जीतना है, ताकि मैं ज्यादा जी सकूं। इस जगत से मुझे बचना है, ताकि यह जगत मुझे पीस न डाले।
जगत बिल्कुल बेरुखा मालूम पड़ता है। वृक्ष के नीचे खड़े हों, वृक्ष ऊपर गिर जाता है! और जरा भी खबर नहीं देता है कि मैं गिर रहा हूं, हट जाओ! और तूफान आता है, और आप गिर जा सकते हैं। आंधी आपको मिटा दे सकती है। सागर आपको डुबा ले सकता है। पहाड़ आपको दबा दे सकता है। इस जगत में चारों तरफ अस्तित्व को आपकी कोई भी चिंता नहीं है। एक शत्रुता है; जगत आपको मिटाने पर तुला है। तो आप जगत से संघर्ष करने को तत्पर हो जाएं।
इसलिए पश्चिम ने एक भाषा खोजी है; वह भाषा युद्ध की भाषा है, संघर्ष की भाषा है। इसलिए ऐसी किताबें लिखी गई हैं पिछले पचास वर्षों में। बर्ट्रेंड रसेल ने भी एक किताब लिखी है; नाम दिया है, कांक्वेस्ट आफ नेचर, प्रकृति की विजय!
विजय की भाषा ही संघर्ष और युद्ध की भाषा है। हम उसे कैसे जीत सकते हैं, जो हमारा प्राण है? हम उसे कैसे जीत सकते हैं, जो हमें धारण किए है? हमारा उससे क्या संघर्ष हो सकता है? मछली का क्या संघर्ष सागर से? वृक्ष की जड़ों का क्या संघर्ष पृथ्वी से? लेकिन दृष्टि पर निर्भर करेगा।
तो कृष्ण कहते हैं, मैं तुम में ही नहीं हूं, मैं तुम्हारी मां में भी हूं, तुम्हारे पिता में भी, पिता के पिता में भी।
शृंखला की खबर दे रहे हैं वे। वे यह कह रहे हैं कि तुम तुम में ही नहीं हो, तुम तुम्हारी मां में भी थे; तुम तुम्हारे पिता में भी थे; और तुम तुम्हारे पिता के पिता में भी थे। और तुम अपने बच्चों में भी रहोगे; और तुम अपने बच्चों के बच्चों में भी रहोगे। यह जगत तुमसे कभी भी खाली नहीं होगा; और यह जगत तुमसे कभी खाली नहीं था। यह जगत तुमसे सदा ही भरा रहा है; और यह जगत सदा तुमसे भरा ही रहेगा। इस जगत के तुम अनिवार्य हिस्से हो। इस जगत में और तुम्हारे बीच एक पारिवारिक नाता है। यह जगत तुम्हारा पड़ोसी ही नहीं है; इस जगत के और तुम्हारे बीच, जैसे मां और बेटे के बीच, पिता और बेटे के बीच नाता हो, वैसा नाता है। तुम इसकी ही कड़ी हो।
एक लहर उठती है सागर में, क्षणभर को नाचती है आकाश में, सूरज को छूने
की कोशिश करती है, और फिर गिर जाती है। लहर सोच सकती है कि मैं सागर से अलग हूं। सोच सकती है। अलग होती भी है क्षणभर को। प्रकट ही दिखाई पड़ता है कि सागर से अलग है। छलांग भरती है आकाश की तरफ, पूरा सागर नीचे पड़ा रह जाता है; सिर्फ लहर उठती है।
तो लहर को यह ख्याल अगर आ जाए, यह अहंकार अगर आ जाए कि मैं अलग हूं, तो गलती तो कुछ भी नहीं है। और जब लहर को सागर नीचे खींचने लगे, तो लहर को ऐसा लगे कि सागर मुझे मिटाने को तत्पर है, और हवाएं मुझे तोड़ देने को उत्सुक हैं, और सारा जगत मेरे खिलाफ है, और सारा जगत मुझे मिटाने की चेष्टा में लगा है, तो मुझे लड़ना है! यह भी तर्कयुक्त होगा। पहले निर्णय के बाद, यह दूसरी बात स्वाभाविक है।
लेकिन लहर को सागर मिटाने को उत्सुक है? सागर लहर को मिटाने को उत्सुक
हो भी कैसे सकता है! और यह सच है कि लहर सागर में ही मिटती है। फिर भी सागर

लहर को मिटाने को उत्सुक नहीं है। क्योंकि लहर को यह पता ही नहीं है कि वह सागर का बढ़ा हुआ हाथ है, और कुछ भी नहीं है। वह सागर की ही छाती पर उठी एक तरंग है। वह सागर की ही छाती है। वह सागर की ही महत्वाकांक्षा है, जो छलांग लगा गई है। इससे भिन्न नहीं है। सागर उसे क्यों मिटाएगा! सागर ही है वह। कृष्ण कहते हैं, मैं मां भी हूं, पिता भी हूं, पितामह भी हूं।
वे यह कह रहे हैं कि मैं वह अनंतशृंखला हूं, जिसकी तुम एक कड़ी हो। मैं तुम्हारे पीछे तुम्हारे पिता की तरह छिपा हूं; तुम्हारे पीछे तुम्हारी मां की तरह छिपा हूं; उनके भी पीछे, उनके भी पीछे, मैं सदा तुम्हारे पीछे खड़ा हूं। तुम मेरे ही बढ़े हुए हाथ हो; तुम मेरी ही लहर हो; तुम मेरी ही तरंग हो। और तुम्हीं नहीं हो, तुम्हारी मां भी थी; तुम्हारे पिता भी थे; उनके पिता भी थे।
समझें। एक दृष्टि है व्यक्ति को व्यक्ति मानने की, एटामिक, अणु की तरह अलग। लीबनिज ने इसके लिए एक ठीक शब्द पश्चिम में खोजा है। उसने शब्द दिया है, मोनोड। मोनोड का मतलब होता है, एक ऐसा अणु, जिसमें कोई खिड़की-दरवाजे नहीं हैं; जो सब तरफ से बंद है।
तो हम व्यक्ति को मोनोड समझ सकते हैं; विंडोलेस, डोरलेस, एटामिक, क्लोज्ड; सब तरफ से बंद एक मकान, जिसमें कोई खिड़की नहीं, कोई दरवाजा नहीं। सब तरफ से बंद। कहीं बाहर से जुड़ने का कोई सेतु नहीं। कोई चर्चा नहीं हो सकती। पड़ोसी से मिलने का कोई उपाय नहीं। हाथ फैलाकर दोस्ती नहीं बांधी जा सकती। सब तरफ से बंद। ऐसा प्रत्येक व्यक्ति एक बंद अणु है। अगर ऐसा है, तो जगत एक भयंकर संघर्ष होगा और एक भयंकर असफलता भी।
कृष्ण कहते हैं, जगत या व्यक्ति, अलग-अलग चीजें नहीं हैं, एक लंबीशृंखला है। जिसमें हर चीज पिछली कड़ी से और अगली कड़ी से जुड़ी है। यह जो वृक्ष की जड़ है, यह जो वृक्ष के शिखर पर फूल खिला है, इससे जुड़ी है। अगर फूल से बात कर रहे होते अर्जुन की जगह कृष्ण, तो फूल से वे कहते कि मैं तेरे भीतर तो हूं ही; तेरी जड़ों के भीतर भी मैं ही हूं। और तेरी जड़ें जिस बीज से पैदा हुई थीं, उसके भीतर भी मैं ही था। और वह बीज जिस वृक्ष पर लगा था, वह भी मैं हूं। और वह वृक्ष जिन जड़ों से आया था, वह भी मैं। और तू लौटता जा पीछे; मैं तेरा पूरा इतिहास हूं; दि होल हिस्ट्री। मैं तेरा अनंत इतिहास हूं। सब जो हुआ है पहले, उसमें मैं था। और अभी जो हो रहा है, वह उससे जुड़ा हुआ अंग है।
व्यक्ति अपने को अस्तित्व से अलग न समझे, तो ही धर्म के अनुभव में उतरता है। अलग समझे, तो अधर्म के अनुभव में यात्रा शुरू हो जाती है। व्यक्ति अपने को जगत से एक जान पाए, तो तत्क्षण लहर फैलकर सागर बन जाती है। और काश! मैं यह देख सकूं कि मैं अपने पिता में, अपनी मां में, उनके पिता में, उनकी मां में, अनंत-अनंतशृंखलाओं में किसी न किसी रूप में मौजूद था, तो फिर मेरा जन्म कोई अनहोनी घटना नहीं रह जाती, एक लंबीशृंखला का हिस्सा हो जाता है। फिर मेरी मृत्यु भी मृत्यु नहीं होगी; क्योंकि जब मेरा जन्म मेरा जन्म नहीं है, तो मेरी मृत्यु भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती। मेरा जन्म एक लंबीशृंखला का हिस्सा है और मेरी मृत्यु भी एक लंबीशृंखला का हिस्सा होगी।
और तीसरी बात कहते हैं, और जानने योग्य पवित्र ओंकार मैं हूं।
अतीत की बात कही कि यह मैं हूं। अतीत की सारीशृंखला मैं हूं; आई एम दि पास्ट, दि होल पास्ट। पूरा बीता हुआ सब मैं हूं। और तत्क्षण भविष्य की बात कहते हैं कि जानने योग्य ओंकार भी मैं हूं।
ओंकार का अनुभव इस जगत का आत्यंतिक, अंतिम अनुभव है। कहना चाहिए, दि अल्टिमेट फ्यूचर। जो हो सकती है आखिरी बात, वह है ओंकार का अनुभव।
तो कृष्ण कहते हैं, भविष्य भी मैं हूं। कहते हैं, अतीत ही मैं नहीं हूं, तुम्हारा पिता ही मैं नहीं हूं, पिता का पिता ही मैं नहीं हूं, तुम्हारी जो भी संभावना है भविष्य की, वह भी मैं हूं। तुम जो हो सकते हो, वह भी मैं हूं। तुम जो थे, वह मैं हूं ही। तुम जो हो, वह मैं हूं ही। तुम जो हो सकते हो; वह फूल, जो अभी नहीं खिला, खिलेगा; वह भी मैं हूं। और वह जो बीज अभी

नहीं लगा, लगेगा, वह भी मैं हूं। इस जगत का अतीत ही मैं नहीं हूं, इस जगत की संपूर्ण संभावना भी मैं हूं। जो कुछ भी हो सकेगा, वह भी मैं हूं।
क्योंकि अगर परमात्मा सिर्फ अतीत है और भविष्य नहीं, तो व्यर्थ है। क्योंकि अतीत तो हो चुका। जो हो चुका, अब उससे कुछ लेना-देना नहीं है। जो नहीं हुआ है, वही हमारी आशा है। अगर परमात्मा सिर्फ हमारा अतीत है, तो भविष्य अंधकार है। अतीत तो जा चुका, मर चुका, हो चुका। मौलिक रूप से परमात्मा को हमारा भविष्य होना चाहिए। तो ही आशा, सार्थक आशा का जन्म होता है, तो ही सार्थक अभीप्सा का, उस महत्वाकांक्षा का, जो अंतिम को अनुभव करना चाहती है।
कृष्ण कहते हैं, मैं तुम्हारा भविष्य भी हूं। और भविष्य में जो अंतिम घटना घट सकती है, वह वे कहते हैं। वे कहते हैं, ओंकार भी मैं हूं।
ओंकार का अर्थ है, जिस दिन व्यक्ति अपने को विश्व के साथ एक अनुभव करता है, उस दिन जो ध्वनि बरसती है। जिस दिन व्यक्ति का आकार में बंधा हुआ आकाश निराकार आकाश में गिरता है, जिस दिन व्यक्ति की छोटी-सी सीमित लहर असीम सागर में खो जाती है, उस दिन जो संगीत बरसता है, उस दिन जो ध्वनि का अनुभव होता है, उस दिन जो मूल-मंत्र गूंजता है, उस मूल-मंत्र का नाम ओंकार है। ओंकार जगत की परम शांति में गूंजने वाले संगीत का नाम है।
संगीत दो तरह के हैं। एक संगीत जिसे पैदा करने के लिए हमें स्वर उठाने पड़ते हैं, शब्द जगाने पड़ते हैं, ध्वनि पैदा करनी पड़ती है। इसका अर्थ हुआ, क्योंकि ध्वनि पैदा करने का अर्थ होता है कि कहीं कोई चीज घर्षण करेगी, तो ध्वनि पैदा होगी। जैसे मैं अपनी दोनों ताली बजाऊं, तो आवाज पैदा होगी। यह दो तालियों के बीच जो घर्षण होगा, जो संघर्ष होगा, उससे आवाज पैदा होगी। तो हमारा जो संगीत है, जिससे हम परिचित हैं, वह संगीत संघर्ष का संगीत है। चाहे होंठ से होंठ टकराते हों, चाहे कंठ के भीतर की मांस-पेशियां टकराती हों, चाहे मेरे मुंह से निकलती हुई वायु का धक्का आगे की वायु से टकराता हो, लेकिन टकराहट से पैदा होता है संगीत। हमारी सभी ध्वनियां टकराहट से पैदा होती हैं। हम जो भी बोलते हैं, वह एक व्याघात है, एक डिस्टरबेंस है।
ओंकार उस ध्वनि का नाम है, जब सब व्याघात खो जाते हैं, सब तालियां बंद
हो जाती हैं, सब संघर्ष सो जाता है, सारा जगत विराट शांति में लीन हो जाता है, तब भी उस सन्नाटे में एक ध्वनि सुनाई पड़ती है। वह सन्नाटे की ध्वनि है; वॉइस आफ साइलेंस; वह शून्य का स्वर है। उस क्षण सन्नाटे में जो ध्वनि गूंजती है, उस ध्वनि का, उस संगीत का नाम ओंकार है।
अब तक हमने जो ध्वनियां जानी हैं, वे पैदा की हुई हैं। अकेली एक ध्वनि है, जो पैदा की हुई नहीं है; जो जगत का स्वभाव है; उस ध्वनि का नाम ओंकार है। इस ओंकार को कृष्ण कहते हैं, यह अंतिम भी मैं हूं। जिस दिन सब खो जाएगा, जिस दिन कोई स्वर नहीं उठेगा, जिस दिन कोई अशांति की तरंग नहीं रहेगी, जिस दिन जरा-सा भी कंपन नहीं होगा, सब शून्य होगा, उस दिन जिसे तू सुनेगा, वह ध्वनि भी मैं ही हूं। सब के खो जाने पर भी जो शेष रहेगा, वह मैं हूं। या ऐसा कहें, जब सब खो जाता है, तब भी मैं शेष रह जाता हूं। जब कुछ भी नहीं बचता, तब भी मैं बच जाता हूं। मेरे खोने का कोई उपाय नहीं है, वे यह कह रहे हैं।
वे कह रहे हैं, मेरे खोने का कोई उपाय नहीं है। मैं मिट नहीं सकता हूं, क्योंकि मैं कभी बना नहीं हूं। मुझे कभी बनाया नहीं गया है। जो बनता है, वह मिट जाता है। जो जोड़ा जाता है, वह टूट जाता है। जिसे हम संगठित करते हैं, वह बिखर जाता है। लेकिन जो सदा से है, वह सदा रहता है।
इस ओंकार का अर्थ है, दि बेसिक रियलिटी; वह जो मूलभूत सत्य है, जो सदा रहता है। उसके ऊपर रूप बनते हैं और मिटते हैं, संघात निर्मित होते हैं और बिखर जाते हैं, संगठन खड़े होते हैं और टूट जाते हैं, लेकिन वह बना रहता है।
वह बना ही रहता है।
यह जो सदा बना रहता है, इसकी जो ध्वनि है, इसका जो संगीत है, उसका नाम ओंकार है। यह मनुष्य के अनुभव की आत्यंतिक बात है। यह परम अनुभव है।

इसलिए आप यह मत सोचना कि आप बैठकर ओम, ओम का उच्चार करते रहें, तो आपको ओंकार का पता चल रहा है। जिस ओम का आप उच्चार कर रहे हैं, वह तो उच्चार ही है। वह तो आपके द्वारा पैदा की गई ध्वनि है।
इसलिए धीरे-धीरे होंठ को बंद करना पड़ेगा। होंठ का उपयोग नहीं करना पड़ेगा। फिर बिना होंठ के भीतर ही ओम का उच्चार करना। लेकिन वह भी असली ओंकार नहीं है। क्योंकि अभी भी भीतर मांस-पेशियां और हड्डियां काम में लाई जा रही हैं। उन्हें भी छोड़ देना पड़ेगा। भीतर मन में भी उच्चार नहीं करना होगा। तब एक उच्चार सुनाई पड़ना शुरू होगा, जो आपका किया हुआ नहीं है। जिसके आप साक्षी होते हैं, कर्ता नहीं होते हैं। जिसको आप बनाते नहीं, जो होता है, आप सिर्फ जानते हैं।
जिस दिन आप अपने भीतर ओम की उस ध्वनि को सुन लेते हैं, जो आपने पैदा नहीं की, किसी और ने पैदा नहीं की; हो रही है, आप सिर्फ जान रहे हैं, वह प्रतिपल हो रही है, वह हर घड़ी हो रही है। लेकिन हम अपने मन में इतने शोरगुल से भरे हैं कि वह सूक्ष्मतम ध्वनि सुनी नहीं जा सकती। वह प्रतिपल मौजूद है। वह जगत का आधार है।
इस संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है। पश्चिमी मनोविज्ञान, पश्चिमी विज्ञान, पश्चिम की समस्त खोज इस नतीजे पर पहुंची है कि जगत का जो आत्यंतिक आधार है, वह विद्युत है, इलेक्ट्रिसिटी है। और इसलिए पश्चिम का आधुनिक चिंतन कहता है कि ध्वनि मूल नहीं है, विद्युत मूल है। और ध्वनि, साउंड भी विद्युत का एक प्रकार है। साउंड जो है, ध्वनि जो है, वह भी विद्युत का ही एक प्रकार है, ए मोड।
लेकिन पूरब की बात बिल्कुल ही भिन्न है। पूरब कहता है कि साउंड, ध्वनि
जो है, वह अस्तित्व का मूल उपकरण है; और विद्युत जो है, वह ध्वनि का ही एक प्रकार है, ए मोड। पश्चिम विद्युत को मूल मानता है, ध्वनि को विद्युत का ही एक रूप; पूरब ध्वनि को मूल मानता है और विद्युत को ध्वनि का ही एक रूप। इसलिए पूरब में वे लोग हुए, जिन्होंने ध्वनि के माध्यम से दीए जला दिए। जिन्होंने एक राग गाया और बुझा दीया जला। यह बात सही हो कि न हो, पर पूरब की मान्यता यह है कि विद्युत ध्वनि का ही एक रूप है। तो अगर ध्वनि की एक खास ढंग से चोट की जाए, तो आग जल जानी चाहिए। अगर ध्वनि एक खास ढंग से की जाए, तो आकाश में बिजली कड़कने लगनी चाहिए। अगर विद्युत ध्वनि का ही एक रूप है, तो ध्वनि की तरंगों के आघात से अग्नि का जन्म हो जाना चाहिए।
भविष्य तय करेगा कि इन दोनों मान्यताओं में क्या संभावना है। जहां तक मेरा संबंध है, मैं मानता हूं, यह झगड़ा वैसा ही बचकाना है, जैसा कुछ लोग मुर्गी और अंडे के बाबत किए रहते हैं। कुछ लोग कहते हैं, मुर्गी पहले है और अंडा बाद में; और कुछ लोग कहते हैं, अंडा पहले है और मुर्गी बाद में। मगर दोनों नासमझ हैं। क्योंकि जब भी हम मुर्गी कहते हैं, तो उसके पहले अंडा आ ही जाता है। और जब भी हम अंडा कहते हैं, तो उसके पहले मुर्गी आ ही जाती है। इसलिए ज्यादा उचित हो कि हम मुर्गी और अंडे में पहले कौन है, इसकी फिक्र छोड़ें। क्योंकि कोई भी पहले हो नहीं सकता। कैसे अंडा पहले होगा मुर्गी के? कैसे होगा? उसके होने के लिए ही मुर्गी की जरूरत पड़ जाती है। कैसे मुर्गी होगी पहले अंडे के? उसके होने के लिए ही अंडे की जरूरत पड़ जाती है।
इसलिए शायद कहीं भाषा की भूल है, लिंग्विस्टिक भूल है। असल में अंडा
और मुर्गी दो चीजें नहीं हैं; अंडा और मुर्गी एक ही चीज के दो रूप हैं। ऐसा कहना चाहिए कि अंडा जो है, वह छिपी हुई मुर्गी है; मुर्गी जो है, वह प्रकट हो गया अंडा है। इनको दो में बांटने की बात ही गलत है। दो में बांटने से फिर कभी हल नहीं होता।
मुझे ऐसा ख्याल में आता है कि विद्युत और ध्वनि के बीच ठीक वैसा ही संबंध है। इसलिए ध्वनि के बिना विद्युत नहीं हो सकती; और विद्युत के बिना ध्वनि नहीं हो सकती। लेकिन पूरब और पश्चिम में यह बुनियादी फर्क क्यों आया, उसका कारण है। उसका कारण कीमती है। वह समझ लेना चाहिए।
वह फर्क इसलिए है कि पश्चिम ने जो खोज की है, वह पदार्थ को तोड़कर की है। पदार्थ को तोड़ा, आखिरी परमाणु की खोज की, कि कौन-सी चीज से पदार्थ बना

है? विद्युत मिली। पूरब ने जो खोज की है, वह पदार्थ को तोड़कर नहीं की है, वह अपने ही मन को तोड़कर की है। ध्यान रखें, मैटर हैज बीन एनालाइज्ड इन दि वेस्ट एंड माइंड इन दि ईस्ट।
अगर आप पदार्थ को तोड़ेंगे, तो जो अंतिम अणु हाथ में आने वाला है, वह विद्युत का होगा। अगर आप मन को तोड़ेंगे, तो जो अंतिम अणु हाथ में आने वाला है, वह ध्वनि का होगा। किसी न किसी दिन पदार्थ का जो अंतिम अणु है वह, और मन का जो अंतिम अणु है वह, वे एक ही सिद्ध होंगे; या एक के ही दो रूप सिद्ध होंगे।
अगर मुझसे पूछें, तो मैं ऐसा कहूंगा कि वह जो पदार्थ का अणु है, वह अप्रकट मन है; और वह जो मन का अणु है, वह प्रकट हो गया पदार्थ है। परमाणु भी पदार्थ का छिपा हुआ मन है, ए हिडेन माइंड। क्षुद्रतम में भी विराट छिपा हुआ है, और विराट को भी प्रकट होना हो, तो क्षुद्र का ही सहारा है।
ओंकार कहकर कृष्ण कहते हैं कि मैं वह परम अस्तित्व हूं, जहां केवल उस ध्वनि का साम्राज्य रह जाता है, जो कभी पैदा नहीं हुई और कभी मरती नहीं है, जो अस्तित्व का मूल आधार है। उस संगीत के सागर का नाम ओंकार है।
उस तक पहुंचना हो, तो अपने मन से सब ध्वनियां समाप्त करनी चाहिए। अपने
मन से एक-एक ध्वनि को छोड़ते जाना चाहिए, एक-एक शब्द को, एक-एक विचार को और मन की ऐसी अवस्था ले आनी चाहिए, जब मन निर्ध्वनि हो जाए, साउंडलेस हो जाए। और जिस दिन आप पाएंगे कि मन हो गया ध्वनिशून्य, उसी दिन आप पाएंगे, ओंकार प्रकट हो गया! ओंकार वहां निनादित हो ही रहा था। ओंकार की धुन वहां बज ही रही थी सदा से, अनंत से, अनादि से। लेकिन आप इतने शोरगुल में व्यस्त थे, आप इतने जोर में लगे थे बाहर कि आपको वह ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती थी।
आपका यह उपद्रव शांत हो जाए, आपका यह बुखार से भरा हुआ, दौड़ता हुआ पागलपन शांत हो जाए, तो जो सदा ही भीतर बज रहा है, वह अनुभव में आने लगता है। वह मनुष्य की आत्यंतिक अवस्था है। वह उसका परम भविष्य है।
कृष्ण कहते हैं, मैं ओंकार हूं। और कृष्ण कहते हैं, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद भी मैं ही हूं।
ओंकार के बाद वेद की बात कहने का कारण है, प्रयोजन है। कृष्ण कहते हैं,
वह परम ध्वनि मैं हूं, और उस परम ध्वनि को पहुंचने वाले जितने भी शास्त्र हैं, वह भी मैं हूं। उस परम ध्वनि की ओर जिन-जिन शास्त्रों ने इशारा किया है, वह भी मैं हूं। वह ध्वनि तो मैं हूं ही, लेकिन जो इंगित; वह चांद तो मैं हूं ही, जिन अंगुलियों ने चांद की तरफ इशारा किया है, वे अंगुलियां भी मैं ही हूं। क्योंकि मेरे अतिरिक्त मेरे उस गुह्यतम रूप की तरफ इशारा भी कौन कर सकेगा? मेरी तरफ अंगुली भी कौन उठा सकेगा सिवाय मेरे?
तो कृष्ण कहते हैं, वेद भी मैं ही हूं।
वेद का अर्थ है, वह सब, जिसने ओंकार की ओर इशारा किया है। वेद का अर्थ है, वह सारा ज्ञान, जिसने उस परम ध्वनि की तरफ ले जाने का मार्ग खोला है। उन्होंने तीन वेद का नाम लिया है। विचारपूर्वक ही यह बात है। क्योंकि कल मैंने आपसे कहा, तीन प्रकार के मनुष्य हैं। तो तीन प्रकार के वेद होंगे।
तीन प्रकार के मन हैं, तो तीन प्रकार के ज्ञान होंगे। तीन तरह के टाइप हैं, प्रकार हैं, तो तीन प्रकार के इशारे होंगे।
कृष्ण ने कहा कि वे तीनों वेद मैं हूं।
चाहे कोई कर्म से अपने कर्ता को मिटा दे, तो ओंकार में प्रवेश कर जाता है। चाहे कोई अपने प्रेम से प्रेमी को डुबा दे, तो ओंकार में प्रवेश कर जाता है। और चाहे कोई अपने ज्ञान से द्वैत के पार हो जाए, अद्वैत में प्रवेश कर जाए, तो उस ओंकार को उपलब्ध हो जाता है।
वेद का अर्थ है, वे किताबें नहीं, जो वेद के नाम से जानी जाती हैं। वेद
से अर्थ है, वे समस्त इशारे, जो मनुष्य-जाति को कभी भी और कहीं भी उपलब्ध हुए हों, जो ओंकार की तरफ ले जाते हैं।
ध्यान रखें, वेद शब्द बहुत अदभुत है। इसके बड़े विस्तीर्ण अर्थ हैं।
वेद शब्द का अर्थ होता है, ज्ञान। इसलिए वेद को किसी किताब में बांधा नहीं जा सकता। जहां भी ज्ञान है, वहीं वेद है। जहां भी इशारा है, वहीं वेद है।

उन दिनों तक कृष्ण ने जब यह बात कही, तो वह सारा ज्ञान तीन पुस्तकों में संगृहीत था। इसलिए इन तीन पुस्तकों का नाम लिया। अगर आज कृष्ण हों, तो इन तीन का नाम नहीं लेंगे। इसमें कुरान भी सम्मिलित होगा, इसमें बाइबिल भी सम्मिलित हो जाएगी, इसमें जेंदावेस्ता भी जुड़ेगा, इसमें लाओत्से का ताओ तेह किंग भी आने ही वाला है। इन पांच हजार वर्षों में, कृष्ण के बाद, जो-जो इशारे उस ओंकार की तरफ हुए हैं, वे भी वेद का हिस्सा हो गए।
वेद एक विकासमान धारा है। वेद कोई सीमित किताब नहीं है। इसीलिए वेद
का कोई लेखक नहीं है। एक-एक वेद में सैकड़ों ऋषियों के वचन हैं। उस जमाने तक जितने ऋषियों का ज्ञान था, वह सब संगृहीत हो गया। फिर वेद के दरवाजे बंद हो गए। और जिस दिन वेद के दरवाजे बंद हुए, उसी दिन हिंदू धर्म मुर्दा हो गया। वेद का दरवाजा खुला ही रहना चाहिए। उसमें नए ऋषि होते रहेंगे। उनके वचन संगृहीत होते ही चले जाने चाहिए। चाहे वे कहीं भी हों।
वेद किसी व्यक्ति की किताब नहीं है। यह बड़े मजे की बात है। वेद न मालूम कितने व्यक्तियों का संग्रह है। उस जमाने तक जितने लोगों ने जाना था, उन सबका संग्रह है। लेकिन फिर द्वार बंद हो गए।
जब कोई धर्म जीवंत होता है, तो भयभीत नहीं होता, खुले दरवाजे रखकर सोता है। जब कोई धर्म कमजोर हो जाता है, मरने के करीब आता है, बूढ़ा हो जाता है, तो दरवाजे बंद कर देता है और पहरे लगा देता है। ये कमजोरी के लक्षण हैं। लेकिन जिस दिन दरवाजा बंद होता है, उसी दिन ज्ञान तो आगे बढ़ता चला जाता है, किताब रुक जाती है। किताब रुक जाती है। ठीक वैसी घटना अभी थोड़े दिन पहले फिर घटी। उससे आपको बात समझ में आ जाएगी।
सिक्खों का वेद है, गुरु-ग्रंथ। नानक के समय में, उस समय के जितने ज्ञानियों के इशारे थे, सब उसमें संगृहीत किए गए हैं। उसमें फिक्र नहीं की गई है कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है, कौन ब्राह्मण है, कौन शूद्र है। उसमें फरीद के भी वचन हैं, उसमें और कबीर के भी, उसमें दादू के भी। उस समय जितने भी फकीर इशारे वाले थे, उन सबके वचन संगृहीत कर लिए गए हैं।
लेकिन फिर धीरे-धीरे बात मरने लगी। फिर धीरे-धीरे दरवाजे सख्त होने लगे। फिर उसमें वही सम्मिलित हो सकेगा, जो सिक्ख है। फिर दसवें गुरु ने द्वार बंद कर दिए। धर्म कमजोर हो गया। फिर दसवें गुरु ने कहा कि अब इस किताब में आगे नहीं जोड़ा जा सकेगा। उसी दिन यह किताब बूढ़ी होकर मर गई। क्योंकि अब इसमें ग्रोथ नहीं हो सकती। लेकिन दस गुरुओं तक यह किताब विकासमान होती रही, बढ़ती होती रही। इसमें जुड़ता रहा।
ज्ञान एक धारा है, जैसे गंगा एक धारा है। गंगा अगर कह दे प्रयाग में आकर कि अब नदी-नाले मुझमें नहीं जुड़ सकेंगे, अब कोई मुझमें आगे नहीं जुड़ेगा। अब मैं गंगा हूं। और एक गंदे नाले को मैं नहीं गिरने दूंगी। क्योंकि कहां पवित्र गंगा, और एक साधारण-सा नाला आकर मुझमें गिर जाए
और गंदा कर जाए!
जिस दिन गंगा यह कहती है कि एक साधारण-सा नाला मुझमें गिरकर मुझे गंदा
कर देगा, उस दिन वह गंगा नहीं रही। क्योंकि गंगा का मतलब ही यह है कि जिसमें कोई भी गिरे, गिरते से पवित्र हो जाए। अब नाला गंगा को गंदा कर देगा, तो नाला ज्यादा शक्तिशाली हो गया!
जब भी कोई धर्म भयभीत हो जाता है और डरता है कि कुछ मिश्रित न हो जाए, कुछ गलत न हो जाए, इसलिए सब घेराबंदी कर लो, उस दिन किताबें बंद हो जाती हैं।
वेद की जब कृष्ण ने यह बात कही, तब ये तीनों किताबें जिंदा किताबें थीं। अब ये तीनों किताबें जिंदा किताबें नहीं हैं। एक जगह इनके द्वार बंद हो गए। अगर वे द्वार खुले होते, तो वेद ने जगत के सारे ज्ञान को संगृहीत किया होता।
जैसा कि आपने देखा होगा, वेद ठीक वैसी ही चीज थी इस मुल्क में, जैसे कि
आज इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका है। हर वर्ष उसको नए एडीशन करने पड़ते हैं। क्योंकि ज्ञान विकसित होता है, उसे सम्मिलित कर लेना होता है। रोज ज्ञान बढ़ता है, तो इनसाइक्लोपीडिया को रोज ज्ञान को बढ़ाए जाना पड़ता है। उसके पुराने एडीशन बाहर होते जाएंगे। रोज यह ज्ञान बढ़ता रहेगा। किसी दिन

अगर इनसाइक्लोपीडिया वाले यह सोचें कि बस, अब हम और ज्ञान को भीतर नहीं आने देंगे, उसी दिन इनसाइक्लोपीडिया आउट आफ डेट हो जाएगा, उसी दिन मर जाएगा। वेद हमारा इनसाइक्लोपीडिया था। ओंकार की तरफ जितने इशारे किए गए थे, हमने वेद में संगृहीत किए थे।
तो कृष्ण कहते हैं, वे तीनों वेद मैं ही हूं।
और हे अर्जुन, प्राप्त होने योग्य गंतव्य, भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, सबका साक्षी, सबका वास स्थान, शरण लेने योग्य, हितकारी, उत्पत्ति, प्रलय सबका आधार, निधान और वह, जिसमें सबका लय होता है, अविनाशी, बीज कारण भी मैं ही हूं।
इसमें तीन-चार बातें महत्वपूर्ण हैं, वह हमें ख्याल में ले लेनी चाहिए।
गंतव्य, दि एंड, आखिरी मंजिल, जो पाने योग्य है, वह मैं ही हूं। और अगर मेरे अतिरिक्त कुछ भी तुझे पाने योग्य लगता है, तो थोड़ा सोच-समझ लेना, वह पाने योग्य नहीं हो सकता। परमात्मा के अतिरिक्त जो भी व्यक्ति कुछ और पाने में लगा है, सच पूछिए तो पाने में नहीं, खोने में लगा है।
परमात्मा के अतिरिक्त अगर आपने कुछ पा भी लिया, तो आखिर में आप पाएंगे
कि आपने सब खो दिया, पाया कुछ भी नहीं है। क्योंकि और हम कुछ भी पा लें, वह हमारी संपदा नहीं बनती, सिर्फ विपत्ति बनती है। संपत्ति नहीं, विपत्ति। कुछ भी हम इकट्ठा कर लें, वह हमसे बाहर ही छूट जाता है। वह हमारे प्राणों का विकास नहीं होता, सिर्फ प्राणों पर बोझ बन जाता है। और एक न एक दिन मृत्यु सब छीन लेती है। मृत्यु सब छीन लेती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपनी मरणशय्या पर पड़ा है। आखिरी घड़ी है। वह आंख खोलता है और अपनी पत्नी से कहता है कि मेरा जो सागर के तट पर भवन है, चाहता हूं कि मेरे मित्र अहमद को दे दिया जाए--वसीयत कर रहा है।
उसकी पत्नी कहती है, अहमद को? इस आदमी की शक्ल मुझे पसंद ही नहीं। बेहतर हो, यह हम रहमान को दे दें!
मुल्ला दुख में आंख बंद कर लेता है। फिर आंख खोलता है और कहता है, ठीक, मेरा जो पहाड़ पर बंगला है, वह मैं चाहता हूं कि मेरी बड़ी लड़की को दे दिया जाए।
उसकी पत्नी कहती है, बड़ी लड़की को? उसके पास काफी है! मेरी छोटी लड़की के लिए एक मकान की पहाड़ पर जरूरत है। वह उसको दे देना उचित है।
मुल्ला और भी थोड़ी देर तक आंख बंद किए पड़ा रहता है। फिर आंख खोलता है
और कहता है कि मेरी जो बड़ी कार है, वह मेरे मित्र मर गए हैं, उनका बेटा है, उसको दे देना चाहता हूं।
उसकी पत्नी कहती है, उस पर तो मेरी बहुत दिन से आंख है। वह मैं किसी को नहीं दे सकती हूं। वह तो मेरे छोटे बेटे के काम में आने वाली है।
मुल्ला तब आंख बंद करके कहता है कि एक बात पूछूं आखिरी? मैं यह जानना चाहता हूं, मर कौन रहा है? मैं मर रहा हूं कि तू मर रही है? तू कम से कम इतना धीरज तो रख कि मुझे मर जाने दे। फिर तुझे जो करना हो, करना। इतना तो मुझे पता ही है कि जब जिंदगी अपनी न हुई, तो वसीयत क्या अपनी होने वाली है!
मौत सब छीन लेती है। लेकिन फिर भी आदमी वसीयत तो कर जाना चाहता है। यह मरने के बाद भी अपना दावा रखने की चेष्टा है। जो भी हम इकट्ठा कर लेंगे, मौत छीन लेगी। सिर्फ एक संपदा है, जो मौत नहीं छीन पाती है। वह संपदा परमात्मा की है। वह संपदा प्रभु के अनुभव की है। वह संपदा उस स्वभाव की है, जो हम में ही छिपा है। वह उस ओंकार की है, जो सदा है और कभी छीना नहीं जा सकता।
कृष्ण कहते हैं, गंतव्य मैं हूं; सबका स्वामी, सबका साक्षी, सबका वास स्थान! जहां सब रह रहे हैं, वह मैं हूं। जो सबको चला रहा है, वह मैं हूं। और जो सबको देख रहा है, वह भी मैं हूं। शरण लेने योग्य, जिसकी शरण तुम आओ, ऐसा भी मैं हूं। हित करने वाला; उत्पत्ति-प्रलय-रूप। जन्म मुझसे तुम्हारा हुआ, सम्हाला मैंने तुम्हें, खोओगे भी तुम मुझमें ही। सबका अंतिम बीज कारण मैं हूं।

यह कृष्ण क्यों कह रहे हैं अर्जुन को? वह इसलिए कह रहे हैं कि अर्जुन
तू व्यर्थ अपने को बीच में मत ला।
यह अंतिम सूत्र ठीक से समझ लें।
वे यह कह रहे हैं, तू व्यर्थ अपने को बीच में मत ला। बनाया मैंने, सम्हाला मैंने, मिटाऊंगा मैं; तू व्यर्थ अपने को बीच में मत ला।
वह अर्जुन कह रहा है कि युद्ध में मैं नहीं जाना चाहता हूं, क्योंकि मुझे लगता है, यह पाप है। कृष्ण कहते हैं, मालिक मैं हूं, साक्षी मैं हूं, निर्माता मैं हूं, और तुझे लगता है कि पाप है! गवाही मैं हूं, तेरी अंतिम गवाही मैं हूं; और तू कुछ भी करेगा, मैं ही तेरे भीतर करूंगा, तू जाने या न जाने। लेकिन तू कहता है कि यह मुझे लगता है, पाप है! तू कहता है कि मेरे मन को पीड़ा होती है, कि अपने ही प्रियजनों से कैसे लडूं!
वह कृष्ण कहते हैं, सबका आधार मैं हूं, सबका पिता मैं हूं, सबका भविष्य मैं हूं, लेकिन तू अपने को बीच में क्यों ला रहा है?
मतलब यह है कि अहंकार अपने को मालिक समझता है, और अहंकार अपने को निर्णायक समझता है। और अहंकार समझता है कि मैं ही निर्णय करूंगा, वैसा ही मुझे चलना है। अहंकार समर्पण करने को तैयार नहीं है।
समर्पण तो तभी हो सकेगा, जब हमें पता चले कि न मैंने मुझे बनाया है, न मैं स्वयं को सम्हाले हुए हूं। अभी यह शब्द मेरे मुंह से निकलता है, दूसरा न निकले, उसे भी निकालने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है। एक सांस आती है, और फिर न आए, तो एक सांस लेने का भी कोई उपाय नहीं है। इतना निरुपाय, इतना असहाय, इतना न होने के बराबर मैं हूं। लेकिन फिर भी मैं निर्णय करता हूं कि मैं यह करूंगा और यह नहीं करूंगा, और यह ठीक है, और यह गलत है! निर्णायक मेरा अहंकार बनना चाहता है।
कृष्ण उसे यही समझा रहे हैं कि अगर तू गौर से देखेगा, तो नीचे-ऊपर सब दिशाओं में सब भांति मुझे छाया हुआ पाएगा। और अच्छा हो कि तू अपनी यह मालकियत छोड़ दे। यह मालकियत ही तेरा दुख और तेरा पाप है।
एक ही पाप है, स्वयं की अस्मिता को, अहंकार को मजबूत किए जाना। और एक
ही पुण्य है, स्वयं की अस्मिता को, अहंकार को पिघलाते चले जाना। एक घड़ी आ जाए, जिस दिन मैं न रहूं, मेरा बोध न रहे, तो उस दिन मेरे भीतर जो बोलेगा, जो चलेगा, जो उठेगा, जो करेगा, वह परमात्मा है। उस दिन न मेरा कोई पाप है, न मेरा कोई पुण्य है। उस दिन न मेरा कोई कर्तव्य है और न कुछ अकर्तव्य है। उस दिन जो होगा, वह सहज होगा; जैसे श्वास चलती है, खून बहता है, हवाएं चलती हैं, सूरज निकलता है। उस दिन मेरी कोई जरूरत ही नहीं है।
कृष्ण उस दिशा में अर्जुन को इशारा कर रहे हैं कि तू थोड़ा समझ। तू यह फिक्र छोड़ कि तू इनका मारने वाला है, कि तू इनका बचाने वाला हो सकता है। तू यह भी फिक्र छोड़ कि तेरे ऊपर यह निर्णय है कि यह युद्ध शुभ है या अशुभ है। तू जरा चारों तरफ गौर से देख। तू सिर्फ एक लहर है। एक क्षण को उठा है और एक क्षण बाद खो जाएगा। मैं सागर हूं। मैं तुझसे कहता हूं कि तू मेरे से ही उठा है, मुझसे ही सम्हाला गया है। मैं ही तेरा अभी भी मालिक हूं, अभी भी मैं ही तेरा साक्षी हूं। जब तू नहीं था, तब भी मैं था; जब तू नहीं होगा, तब भी मैं रहूंगा। तू मेरी तरफ देख और अपने कर्ता के भाव को मेरे ऊपर छोड़ दे। मुझे हो जाने दे कर्ता और तू बन जा केवल उपकरण, तू बन जा केवल एक बांस की पोंगरी। गीत मुझे गाने दे, तू बीच में मत आ। तू बीच में आएगा, वही तेरा दुख, वही तेरी पीड़ा, वही तेरा संताप है।
यह सारी की सारी बात समझाने के पीछे अहंकार को पिघलाने का इशारा है। अहंकार बर्फ की तरह हमारे भीतर जमा हुआ है, फ्रोजन। उसे थोड़ा पिघलाना जरूरी है।
कभी आपने ख्याल किया, सागर में एक बर्फ की चट्टान तैर रही हो, तो सागर
से बिल्कुल अलग मालूम पड़ती है। पीछे मैंने कहा, लहर सागर से अलग मालूम पड़ती है। लेकिन लहर का भ्रम ज्यादा देर नहीं चल सकता, क्योंकि लहर कितनी देर उठी रहेगी? क्षणभर बाद गिर जाएगी और खो जाएगी। लेकिन लहर अगर फ्रोजन हो जाए, जम जाए, बर्फ बन जाए, फिर लहर का भ्रम बहुत देर चल सकता है। क्योंकि जब तक बर्फ न पिघले! और अगर चारों तरफ दूसरी लहरें भी जमकर बर्फ हो गई हों,

तो यह भ्रम और भी बहुत देर चल सकता है। क्योंकि गर्मी भी कहीं से नहीं मिलेगी, सब तरफ से अहंकार की ठंडक ही मिलेगी, यह और जम जाएगी।
हम सब ऐसी ही लहरें हैं, फ्रोजन वेव्स। और चूंकि हम चारों तरफ सभी बर्फ बन गए हैं जमकर; एक-दूसरे को हम ठंडक देते रहते हैं और जमाते रहते हैं। हम सब एक-दूसरे के अहंकार को जमाने की चेष्टा में लगे रहते हैं, हमें पता हो या न पता हो।
बाप बेटे से कहता है कि शाबाश, तू पहला नंबर आ गया है स्कूल में! आएगा क्यों नहीं; आखिर मेरा ही बेटा जो है! ये एक-दूसरे को जमा रहे हैं। बेटे के अहंकार को जमाने की चेष्टा चल रही है।
बेटा आज अगर प्रथम नहीं आया है, तो घर बिल्कुल उदास है। मां बेचैन है, बाप पराजित मालूम पड़ रहा है। बेटा भी चिंतित है। क्या हुआ है? जरा बर्फ पिघलने लगी। वह अहंकार, मैं--हमारे घर में कभी कोई नंबर दो आया ही नहीं, और यह बेटा नंबर दो आ गया!
हम सब एक-दूसरे को जमाने की कोशिश में लगे हैं। हमारी शिक्षा, हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, सब एक-दूसरे को जमा रही है; सब जम जाएं, सख्त हो जाएं भीतर।
अगर जब सारी लहरें एक-दूसरे को जमाने में लगी हों, तो फिर नीचे के सागर
का ख्याल आना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए जिन लोगों को समाज को छोड़कर भागना पड़ा--बुद्ध को या महावीर को या जीसस को या मोहम्मद को भी एकांत में भाग जाना पड़ा--उसका कारण अगर मौलिक आप समझना चाहें, तो सिर्फ इतना ही है कि आप सब इतने जमे हुए बर्फ की चट्टानें हैं कि आपके बीच में पिघलना बहुत मुश्किल है! पूरा टेंपरेचर नहीं है पिघलने का वहां। सब जीरो डिग्री से नीचे जमे हुए हैं। वहां अगर कोई पिघलना भी चाहे, तो पिघलना मुश्किल है। चारों तरफ जमाने वाले लोग मौजूद हैं।
इसलिए बुद्ध या महावीर को समाज छोड़कर भागना पड़ता है। समाज को छोड़कर भागने का और कोई कारण नहीं है। अकेले में जाना पड़ता है, ताकि वहां कम से कम अपनी ही ठंडक से लड़ना पड़े; दूसरों की ठंडक से तो न लड़ना पड़े। अकेले, एकांत में, जहां चारों तरफ कोई ठंडक न हो।
मैंने सुना है, फकीर बोकोजू जंगल में था। उसके ज्ञान की खबर राजधानी
तक पहुंच गई। सम्राट उससे मिलने आया। सम्राट आया था मिलने, तो सम्राट था, कुछ भेंट लानी चाहिए। तो एक बहुत बहुमूल्य, लाखों रुपए की कीमत का एक कोट सिलवा लाया। उसमें लाखों रुपए के हीरे-जवाहरात लगा दिए। बड़ा कीमती वस्त्र था। शायद पृथ्वी पर वैसा खोजना दूसरा मुश्किल हो। सम्राट उसे बड़ी मेहनत से बनवाकर लाया था।
जब सम्राट फकीर के सामने मौजूद हुआ, तो फकीर एक चट्टान पर नग्न, एक वृक्ष से टिका हुआ बैठा है। सम्राट ने चरण छुए, भेंट रखी। फकीर भेंट को देखकर हंसा। फिर फकीर ने ऊपर वृक्ष की तरफ देखा। फिर आस-पास हिरण घूमते थे, उनकी तरफ देखा। फिर आकाश में चीलें उड़ती थीं, उनकी तरफ देखा।
उस सम्राट ने कहा, आप क्या देख रहे हैं? तो उसने कहा, मैं यह देख रहा हूं कि तुम्हारा यह कोट मुझे बड़ी दिक्कत में डालेगा। क्योंकि अगर यह कोट तुमने मुझे राजधानी में दिया होता, तो राजधानी में सभी आदमी इस कोट की प्रशंसा करते और कहते कि मैं बहुत महान हो गया हूं, क्योंकि मुझे यह राजा का कोट मिल गया है। लेकिन यहां जंगल में बेपढ़े-लिखे जानवर हैं, असभ्य, इन को कुछ पता नहीं है। मैंने ऊपर देखा इसलिए कि वे जो तोते बैठे हैं, वे हंस रहे हैं। मैंने ऊपर देखा कि वह जो चील उड़ रही है, वह मजाक उड़ाएगी। मैंने हिरण की तरफ देखा, उसकी आंख में शरारत है। आपके जाते ही ये सब कहेंगे, बन गए बुद्धू! कैसे मुक्त थे, कैसे आनंद में थे, नग्न! कैसे स्वतंत्र थे, कैसे परमात्मा की हवाएं सीधा छूती थीं! पहन लिया कोट! और फिर यहां हीरे-जवाहरात का कोई पता रखने वाला भी नहीं है। तो मैं शान भी बघारूंगा, तो किसके सामने? और अकड़कर चलूंगा भी, तो कहां? यहां अगर अकड़कर चलूंगा, तो यह सारा जंगल मुझ पर हंसेगा। तो यहां मैं सम्राट के द्वारा सम्मानित कम और किसी सर्कस का जोकर ज्यादा मालूम पडूंगा। यह कोट तुम ले जाओ, इतनी कृपा करो।

जंगल में आपके आस-पास ठंडक देने वाला कोई भी नहीं है, आपके अहंकार को ठंडा करने वाला कोई भी नहीं है, पिघल जाएगा आसानी से। इसलिए भागते रहे लोग।
कृष्ण उसी अहंकार को पिघलाने के लिए कह रहे हैं, सब मैं हूं। अगर तुझे
यह स्मरण आ जाए अर्जुन, तो तू जो इस ख्याल से भर रहा है कि तू ही केंद्र है और तेरे ऊपर ही सब दारोमदार है, यह ख्याल तेरा छूट जा सकता है। और यह ख्याल न छूटे, तो आदमी की आंखें अंधी ही रह जाती हैं।
अहंकार अंधापन है। और अहंकार के छूट जाते ही प्रज्ञा की आंख खुलती है,
और जीवन जैसा है वैसा पहली बार दिखाई पड़ता है।
आज इतना ही।
लेकिन कोई उठेगा नहीं। पांच मिनट कीर्तन में सम्मिलित हों। और कीर्तन पूरा हो जाए तभी उठें।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
आठवां प्रवचन

जीवन के ऐक्य का बोध--अ-मन में

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।। 19।।
त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्टवा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्
अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।। 20।।
मैं ही सूर्यरूप हुआ तपता हूं तथा वर्षा को आकर्षित करता हूं और वर्षाता हूं। और हे अर्जुन, मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत और असत भी, सब कुछ मैं ही हूं।
परंतु, जो तीनों वेदों में विधान किए हुए सकाम कर्मों को करने वाले और सोमरस को पीने वाले एवं पापों से पवित्र हुए पुरुष मेरे को यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्यों के फलरूप इंद्रलोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं।

जीवन है एक, अस्तित्व है एक, लेकिन मन सभी कुछ तोड़कर देखता है। मन जब
तक तोड़ न ले, तब तक देख ही नहीं पाता है। मन के देखने की प्रक्रिया में ही जीवन खंड-खंड हो जाता है।
इसे ऐसा समझें, प्रकाश की एक किरण है; उसे एक कांच के प्रिज्म से निकालें, तो सात टुकड़ों में टूट जाती है, सात रंगों में विभाजित हो जाती है। प्रकाश की किरण अविभाज्य है, अपने में अखंड है। प्रिज्म के टुकड़े से गुजरकर टूट जाती है, हिस्सों में बंट जाती है।
हमारा मन अस्तित्व की किरण को भी ऐसे ही तोड़ देता है। हमारा मन जहां
भी देखता है, वहां पूरे को कभी भी नहीं देख पाता है। बड़ी चीजों की तो बात ही छोड़ दें, छोटी-सी चीज को भी मन पूरा देखने में असमर्थ है। एक छोटा-सा कंकड़ का टुकड़ा आपके हाथ में रख दूं, तो भी आपकी आंखें, आपकी इंद्रियां, आपका मन उस टुकड़े को पूरा नहीं देख सकते; एक हिस्सा छिपा रह जाएगा। और जब आप दूसरा हिस्सा देखेंगे, तो पहला हिस्सा छिप जाएगा। एक छोटा-सा कंकड़!
उसे भी छोड़ दें। एक धूल का, रेत का टुकड़ा अपने हाथ पर रख लें। उसे भी आपकी इंद्रियां पूरा नहीं देख सकती हैं, उसे भी तोड़कर ही देखेंगी। एक हिस्सा दिखाई पड़ेगा, एक अनदेखा रह जाएगा। जो अनदेखा है, उसका आप अनुमान ही करेंगे कि होगा, वह दिखाई नहीं पड़ेगा। और ऐसा कभी नहीं कर सकते कि दोनों हिस्सों को आप एक साथ देख लें। एक छोटे-से रेत के टुकड़े के भी दोनों हिस्से एक साथ नहीं देखे जा सकते हैं। जब एक देखेंगे, दूसरा ओझल हो जाएगा। तो विराट की तो कठिनाई और भी बढ़ जाती है।
हमारा मन अंश को ही देख पाता है। यह पहली बात ठीक से समझ लें। यदि यह बात ठीक से समझ में आ जाए, तो बहुत-सी बातें समझ में आ सकेंगी। और अगर यह बात ठीक से समझ में न आए, तो धर्म के बहुत से सूत्र बेबूझ रह जाते हैं। यह बहुत बुनियादी है।
मन की सामर्थ्य ही नहीं है किसी चीज को उसकी पूर्णता में देखने की। मन
का स्वभाव ही नहीं है किसी चीज को उसकी पूर्णता में देख लेने का। वैसे ही, जैसे आंख चाहे भी, तो भी ध्वनि को सुन नहीं सकती; और कान चाहे भी, तो भी रूप को देख नहीं सकता। कान का स्वभाव नहीं है, आंख का स्वभाव नहीं है कि ध्वनि को सुन सके। आंख देख सकती है, सुन नहीं सकती।
फिर अगर कोई आंख से सुनने की कोशिश करे, और उसे कुछ भी सुनाई न पड़े, और उसे लगे कि जगत में कोई ध्वनि नहीं है, तो कसूर किसका होगा? और अगर कोई कान से देखने की कोशिश करे, और उसे कुछ भी दिखाई न पड़े, और वह कहे कि जगत में कुछ भी नहीं है, तो कसूर किसका होगा? कान का कोई कसूर नहीं है, क्योंकि कान देख

ही नहीं सकता। आंख का कसूर नहीं है, क्योंकि आंख सुन ही नहीं सकती। कसूर उस व्यक्ति का है, जो आंख और कान के स्वभाव को नहीं समझ पा रहा है।
मन के स्वभाव के संबंध में पहली बात कि मन किसी भी वस्तु को उसकी समग्रता में, टोटेलिटी में नहीं देख सकता है। जब भी देखेगा, अंश को देखेगा, पूर्ण को नहीं, पहली बात।
आज तक किसी व्यक्ति के मन ने किसी चीज की पूर्णता नहीं देखी है। इसलिए जहां भी मन होगा, वहां अपूर्ण ही अनुभव होगा, अपूर्ण ही दृष्टि होगी, अधूरा ही ख्याल होगा। इसलिए जो लोग मन से पूरे का निर्माण करते हैं, उनका निर्माण काल्पनिक हो जाता है, अनुमान हो जाता है। जो उन्हें नहीं दिखाई पड़ता, उसका वे अनुमान करके पूरा कर लेते हैं। जो दिखाई पड़ता है, उसमें उसे भी जोड़ देते हैं, जिसको वे सोचते हैं कि होगा। इसलिए मन से निर्मित दुनिया में जितने भी शास्त्र हैं, वे सभी व्यर्थ हैं, पूर्ण की तरफ ले जाने वाले नहीं हैं।
और दुनिया में दो तरह के शास्त्र हैं। एक तो वे शास्त्र हैं, जो उन लोगों ने कहे हैं, जिन्होंने मन को मिटाकर पूर्ण को जाना। और एक वे शास्त्र हैं, जो उन लोगों ने कहे हैं, जिन्होंने मन को व्यवस्थित करके, शिक्षित करके, अध्ययन से, विचार से, मनन से, चिंतन से, तर्क से, अनुभव से मन को विकसित किया और फिर जगत के संबंध में दृष्टि को लिपिबद्ध किया। फिलासफी और रिलिजन, धर्म और दर्शन में यही फर्क है।
धर्म उन लोगों के वक्तव्य हैं, जिन्होंने मन को मिटाकर जाना, जिन्होंने मन के प्रिज्म को तोड़ डाला और अस्तित्व की किरण को सीधा देखा-- अविभाज्य, बिना बंटा हुआ, अखंड। और दर्शन, फिलासफी उन लोगों के वक्तव्य हैं, जिन्होंने मन को खूब विकसित किया, ट्रेन किया, प्रशिक्षित किया, समझाया, सिखाया, पढ़ाया, और फिर जगत के संबंध में एक दृष्टि निर्मित की। इसलिए सब फिलासफीज अधूरी हैं; होंगी ही। कोई और उपाय नहीं है। साक्रेटीज कितनी ही बड़ी बात कहे, वह बात मन की ही है। और साक्रेटीज के पास मन का कितना ही विकसित रूप हो, वह मन ही है। अगर साक्रेटीज यह भी कहे कि ये सातों जो रूप टूट गए हैं किरण के, इनको जोड़ लेने से फिर एक किरण बन सकती है, तो भी वह मन का ही अनुमान है। अरस्तू कितना ही कहे, प्लेटो कितना ही कहे, कांट और हीगल कितना ही कहें; वे जो कह रहे हैं, वह उनके विचार का निष्कर्ष है, अनुभव का नहीं। वे जो कह रहे हैं, वह उनका तर्कबद्ध आयोजन है, प्रतीति नहीं। वह उनके मन की ही दृष्टि है, मन से मुक्त उनका साक्षात्कार नहीं। मन से पैदा होती है फिलासफी। मन के पार उठ जाने से जो पैदा होता है, वही धर्म है।
मन जो भी कहेगा, वह अधूरा होगा। इसलिए मेरा मन जो कहेगा और आपका मन जो कहेगा, उसमें मेल होने का कोई भी उपाय नहीं है। मन का कहना करीब-करीब वैसा ही है, जैसा पंचतंत्र की एक पुरानी कथा में हम सब जानते हैं, पांच अंधे एक हाथी को अनुभव करते हैं। और वे जो भी कहते हैं, वह सभी सच है। जिस अंधे ने हाथी के पैर को छुआ है, उसने कहा, किसी महल के सुदृढ़ स्तंभों की भांति है हाथी। और जिसने हाथी के कानों को छुआ, उसने कहा कि जैसे स्त्रियां अनाज को साफ करती हैं सूप में, वैसे सूप की भांति है हाथी!
गलत दोनों ने नहीं कहा, गलत पांचों ने नहीं कहा; और पांच हजार अंधे भी इकट्ठे हो जाते, तो कोई भी गलत न कहता। वे सभी ठीक कहते। फिर भी उनका ठीक आंशिक था। और भूल उनके कहने में नहीं थी, भूल उनके विस्तार में थी। जब किसी अंधे ने कहा कि हाथी किसी महल के खंभों की भांति है, तब भूल इसमें नहीं थी, जो उसने जाना था। जो उसने जाना था, वह उसने पैर जाने थे; जो उसने कहा, वह हाथी के बाबत कहा। जो जाना था, वह अंश था; और जिसके संबंध में कहा, वह पूर्ण था। और जब भी कोई अंश को पूर्ण के संबंध में कहता है, तो असत्य हो जाता है। इसलिए मन परमात्मा के संबंध में जो भी कहेगा, वह असत्य होगा।
ध्यान रहे, वे लोग जो कहते हैं, ईश्वर है--मन से, उतने ही असत्य होंगे, जितने वे लोग जो कहते हैं, ईश्वर नहीं है--मन से। मन अंश को ही जानता है, और मन की इच्छा होती है कि पूर्ण को कह दे कि यही है।

ये पांचों अंधे अगर एक-दूसरे की बात सुनकर चुप रह जाते--पर नहीं, संभव नहीं था कि चुप रह जाते! क्योंकि अंधों में कलह अनिवार्य हो गई। क्योंकि जब एक अंधे ने कहा कि हाथी खंभों की तरह है, और दूसरे अंधे ने कहा कि हाथी सूप की तरह है, और तीसरे ने कुछ और चौथे ने कुछ कहा, तो उन सबने कहा कि ये सभी सही तो नहीं हो सकते। और मेरा अनुभव सही है, तो निश्चित ही दूसरे लोग गलत हैं।
इसलिए फिलासफीज लड़ती रहती हैं, संघर्ष चलता रहता है। पांच हजार साल में मनुष्य ने बहुत तरह के दर्शनशास्त्रों को जन्म दिया; वे सब एक-दूसरे से कलह करते रहते हैं। वे कहते हैं कि तुम गलत हो, हम सही हैं। और जब वे कहते हैं, हम सही हैं, तो निश्चित ही कारण हैं; उनकी प्रतीति है।
वह जो आदमी कह रहा है कि हाथी खंभे की तरह है, वह गलत नहीं कह रहा है।
और चूंकि उसे हाथी खंभे की तरह मालूम पड़ता है, वह कैसे मान ले कि हाथी सूप की तरह भी है? ये दोनों बातें एक साथ सही कैसे हो सकती हैं?
लेकिन जिनके पास आंख है, वे जानते हैं, ये दोनों बातें एक साथ सही हैं। हाथी सूप भी है, हाथी खंभा भी है; हाथी और बहुत कुछ भी है। और जितने अंधे आते चले जाएं, हाथी उतने ही रूप लेता चला जाएगा।
मन जो भी देखता है, वह सही है, लेकिन आंशिक--एक बात। और इसलिए मन के अनुभव को कभी पूर्ण पर मत फैलाना, अन्यथा वही फांसी बन जाती है। और मन के अनुभव पर कभी मत कहना दूसरे को गलत, क्योंकि दूसरे का मन जो जानता है, वह भी सही हो सकता है।
धर्मों में विवाद नहीं है; हो नहीं सकता; सब विवाद दर्शनों का है। और प्रत्येक धर्म जन्मता तो उनके बीच है, जो पंडित नहीं होते, लेकिन हाथ उनके पड़ जाता है अंततः, जो पंडित होते हैं। यह दुर्भाग्य है, लेकिन यह भी नियम है।
जब भी धर्म का जन्म होता है, तो वह उस आदमी में होता है, जिसका मन खो गया होता है; तब वह पूर्ण को जानता है। लेकिन जब लोग उससे समझते हैं, तो वे मन से ही समझेंगे; कोई और उपाय नहीं है। अगर मैं कोई ऐसी बात आपसे कहूं, जो मैंने मन के पार जानी हो, तो आपसे जब कहूंगा और आप जब सुनेंगे, तो आप मन से ही सुनेंगे। और मन से सुनकर अगर आपने उसे मान लिया या न माना, आपने कोई भी नतीजा लिया, तो वह नतीजा आंशिक होगा। और उस नतीजे पर ही कल मेरी बात के आधार पर कोई निर्माण हो सकता है, कोई शास्त्र बन सकता है, कोई धर्म बन सकता है। वह धर्म अधूरा होगा और झूठा हो जाएगा।
धर्म जब जन्मते हैं, तो पूर्ण होते हैं--महावीर में, कृष्ण में, या बुद्ध में, या मोहम्मद में। और जब चलते हैं, तो अपूर्ण हो जाते हैं। चलते हैं मन के सहारे; अधूरे हो जाते हैं। और अधूरे होते ही दूसरे अधूरे वक्तव्यों से संघर्ष शुरू हो जाता है। मोहम्मद का और महावीर का कोई संघर्ष नहीं है। बुद्ध का और कृष्ण का कोई संघर्ष नहीं है। लेकिन हिंदू और मुसलमान का है, जैन और बौद्ध का है। होगा ही।
जहां मन मिट गया है, वहां सभी वक्तव्यों के भीतर जो छिपा है, वह दिखाई
पड़ जाता है। और जहां मन है, वहां एक वक्तव्य सही और शेष गलत मालूम पड़ते हैं। यह मन की पहली अड़चन है कि मन बांटकर देखता है।
दूसरी अड़चन, जो इससे भी कठिन है, और वह यह है कि मन विरोध में बांटकर देखता है। मन जब भी दो चीजों को तोड़ता है, तो दोनों के बीच विरोध देखता है। जैसे जीवन है। अगर जीवन को मन देखेगा, तो उसे जीवन में दो हिस्से दिखाई पड़ेंगे, जन्म और मृत्यु। और मन कैसे माने कि जन्म और मृत्यु एक ही हैं? बिल्कुल उलटे हैं। एक कैसे हो सकते हैं? कहां जन्म और कहां मृत्यु? जीवन को बांटेगा मन, तो दो हिस्से दिखाई पड़ेंगे, जन्म का और मृत्यु का। और दोनों उलटे मालूम पड़ेंगे; कंट्राडिक्टरी; एक-दूसरे के विरोध में। जब भी मन बांटेगा, तो विरोध में बांटेगा; और जीवन अविरोधी है, नान-कंट्राडिक्टरी है। जीवन में कोई तकलीफ ही नहीं है। जन्म और मृत्यु, जीवन में एक ही चीज के दो नाम हैं, एक ही चीज का विस्तार है। जो जन्म की तरह शुरू होता है, वही मृत्यु की तरह पूर्ण होता है। अगर जन्म प्रारंभ है जीवन का, तो मृत्यु उसकी पूर्णता है।

जन्म और मृत्यु में अगर मन को हम बीच में न लाएं, तो कोई भी विरोध नहीं है। लेकिन मन को हम बीच में कैसे न लाएं! हमारे पास और कोई उपाय नहीं है। मन ही हमारे पास उपाय है जानने के लिए। जैसे ही मन को हम लाते हैं, मन जीवन को दो हिस्सों में तोड़ देता है; एक हिस्सा जन्म हो जाता है, एक हिस्सा मृत्यु हो जाती है।
यह मन सभी जगह चीजों को दो में तोड़ देता है। यह कहता है, यह आदमी अच्छा है, वह आदमी बुरा है। सच्चाई बिल्कुल उलटी है; अच्छाई और बुराई एक ही चीज का विस्तार है। तो जब हम कहते हैं, यह आदमी अच्छा है और वह आदमी बुरा है; या हम कहते हैं, यह बात अच्छी है और वह बात बुरी है; तब हमने तोड़ दिया।
बड़ी अड़चन होगी यह मानने में कि अच्छाई और बुराई एक ही चीज का विस्तार है। यह मानने में बड़ी कठिनाई होगी कि साधु और असाधु एक ही चीज के दो छोर हैं। यह मानने में बड़ी कठिनाई होगी कि राम और रावण दुश्मन हैं हमारे मन के कारण; अन्यथा अस्तित्व में एक ही लीला के दो छोर हैं।
इसे ऐसा समझें, क्या रामायण संभव है रावण के बिना? अगर संभव हो, तो रावण को विदा करके सोचने की कोशिश करें। रावण को हटा दें राम की कथा से। और तब आप पाएंगे कि राम के भी प्राण निकल गए! राम के प्राण भी रावण से जुड़े हैं। इधर रावण गिरेगा, तो राम भी गिर जाएंगे। राम भी रावण के बिना खड़े नहीं रह सकते।
और अगर इतना गहरा जोड़ है, तो विपरीत कहना नासमझी है। अगर इतना गहरा जोड़ है कि राम का अस्तित्व नहीं हो सकता रावण के बिना, न रावण का अस्तित्व हो सकता है राम के बिना, तो दोनों को दुश्मन देखना हमारे मन की भूल है। एक खेल के दोनों ही हिस्से हैं; जिसमें दोनों अनिवार्य हैं; जिनमें एक भी छोड़ा नहीं जा सकता।
लेकिन मन तो तोड़कर ही देखेगा। मन कैसे मान सकता है कि राम और रावण एक हैं! कभी भी नहीं मान सकता। मन कहेगा, कैसी बात कर रहे हो? कहां राम, कहां रावण! विपरीत हैं; तभी तो इतना संघर्ष है दोनों में, तभी तो युद्ध है। तब फिर ऐसा देखें; एक को हटा दें।
अगर सच में रावण राम के दुश्मन हैं, तो रावण अगर न रहे, तो राम और भी खिलकर प्रकट होना चाहिए। अगर रावण सच में ही राम का दुश्मन है, तो रावण के हटते ही राम की प्रतिभा और खिल जानी चाहिए। अगर रावण विरोध में है, तो रावण के हटते ही राम के फूल की सब पंखुड़ियां पूरी खिल जानी चाहिए। क्योंकि विरोधी रोक रहा था खिलावट को; विरोधी दुश्मन था; अड़चन डाल रहा था; अड़चन हट गई, अब राम को पूरा खिलना चाहिए।
लेकिन राम को खिलना तो बहुत दूर, रावण को अगर बिल्कुल हटा दें, तो राम
का आपको पता ही नहीं चलेगा कि वह कभी हुए हैं! उनका पता ही नहीं चलेगा। और यह बात दोनों तरफ लागू है। राम के बिना रावण को भी होने का कोई उपाय नहीं है। अगर यह ऐसा है, तो फिर हमारे देखने में कहीं भूल है। वह जो हम शत्रुता देखते हैं, वह हमारी भूल है। कहना चाहिए, एक ही चीज के दो छोर हैं। और एक भी छोर दूसरे के बिना नहीं हो सकता। अनिवार्य छोर!
तो जब भी राम होंगे, तब रावण होगा। और जब भी रावण होगा, तब राम होंगे।
यह युद्ध नहीं है; यह युद्ध हमारे मन की प्रिज्म में से गुजरकर दिखाई पड़ता है। जब मन को कोई हटा देगा, तो पता चलेगा, एक ही ऊर्जा, एक ही शक्ति दोनों तरफ है। उस शक्ति के बहाव के लिए दोनों उतने ही जरूरी हैं।
ऐसा समझें कि गंगा बहती है दो किनारों के बीच। और हम मान ले सकते हैं
कि दोनों किनारे अलग हैं। एक किनारे को हटा दें और फिर गंगा को बहाकर देखें, तब पता चलेगा कि वे दोनों किनारे अलग न थे। और हमें ऐसा भी लग सकता है कि एक किनारे से दूसरे किनारे की प्रतिद्वंद्विता है, कांपिटीशन है; और एक किनारा दूसरे से मुठभेड़ ले रहा है। और हमें ऐसा भी लग सकता है कि एक किनारा गंगा को अपनी तरफ खींचने की कोशिश में लगा है। लेकिन ध्यान रहे, गंगा उन दोनों किनारों के बीच ही चलती है। वे दोनों किनारे गंगा के ही दो छोर हैं। और एक को भी हटाकर दूसरा नहीं बचेगा!
कठिन होगी यह बात; और हमारी बुद्धि को अति कठिन पड़ेगी, क्योंकि हमें सदा तोड़कर देखने में आसानी हो जाती है। राम को अच्छा बना लेते हैं, रावण को

बुरा बना देते हैं; गणित साफ हो जाता है। रावण छोड़ने जैसा है, राम पूजने जैसे हैं। रावण बुरा है, राम अच्छे हैं। बंटाव सीधा हो गया, गणित साफ हो गया।
जिंदगी हमारे गणित को नहीं मानती। जिंदगी हमारे गणित के सब हिसाब को अस्तव्यस्त कर देती है। राम इसको भलीभांति जानते हैं। राम को यह भलीभांति पता है। इसलिए संघर्ष गहरा है, लेकिन द्वेष कहीं भी नहीं है। युद्ध प्रगाढ़ है, लेकिन खेल से ज्यादा महत्ता नहीं है। राम को भलीभांति पता है कि वह जो दूसरा छोर है, वह अलग नहीं है। इसलिए लक्ष्मण को भेज देते हैं रावण के पास ज्ञान जानने के लिए।
राम को भी पता है कि मेरा भी जो अनुभव है, वह एक छोर का है; रावण का भी
जो अनुभव है, वह दूसरे छोर का है। और ज्ञान पूरा लक्ष्मण का तभी होगा, जब वह दोनों छोरों को संयुक्त रूप से जान ले। राम को तो उसने जाना है, उसे रावण के पास भेजते हैं अंत में कि तू उससे भी शिक्षा ले ले; वह महापंडित है, वह महाज्ञानी है; उसका भी अपना अनुभव है; उसकी भी अपनी यात्रा है; उसने भी कुछ जाना है दूसरे किनारे से, जो कि अनूठा होगा और तू अधूरा रह जाएगा। तू राम को ही मत जान, रावण को भी जान ले। और दोनों को जानकर तू ज्यादा पूर्ण होगा; अनुभव ज्यादा समृद्ध, ज्यादा सघन होगा।
और विपरीत जहां मिल जाते हैं, वहां अनुभव पूर्ण हो जाता है। लेकिन हमारा मन? हमारा मन ऐसा है कि राम की पूजा करेंगे और रावण को आग लगाएंगे। यह हमारा मन है! मन हमारा ऐसा है कि हम एक को पूजेंगे, दूसरे की निंदा करेंगे; एक को मित्र मानेंगे, दूसरे को शत्रु मानेंगे।
(किसी ने बीच से उठकर मन की परिभाषा पूछी।)
पूछ रहे हैं एक मित्र कि मन की परिभाषा क्या है? तो मन की थोड़ी परिभाषा समझें। अब देखें, जो मैं कह रहा था, पूछते हैं, मन की परिभाषा कैसे है? लेकिन आप उनकी तरफ मत देखें! आप ऐसे देख रहे हैं, जैसे उन्होंने बड़ी शत्रुता से पूछा है; वहीं भूल हो जाती है। आवाज जरा जोर की है, लेकिन मित्र की है; ऐसा क्या परेशान होना! उनकी तरफ मत देखें।
मन की परिभाषा; मन का अर्थ होता है, मनन, विचार, चिंतन; जो दिखाई पड़े, उसके साथ चिंतन की धारा को जोड़ना। समझें; एक फूल मुझे दिखाई पड़ता है। जहां तक दिखाई पड़ता है, वहां तक मन नहीं आता; लेकिन जैसे ही मैं कहता हूं, सुंदर है, मन आ गया; जैसे ही मैं कहता हूं, सुंदर नहीं है, मन आ गया; जैसे ही मैं कहता हूं, बहुत प्यारा है, मन आ गया; जैसे ही मैं कहता हूं, बेकार है, मन आ गया। जब तक दर्शन है, तब तक मन नहीं है। जैसे ही दर्शन के साथ शब्द और विचार जुड़ते हैं, मन की गति शुरू हो गई।
मन का अर्थ है, विचार को, शब्द को पैदा करने वाला यंत्र। मन का अर्थ है, विचार को जन्म देने वाला स्रोत। फूल को अगर मैं देखता रहूं और सोचूं न, तो मेरी आत्मा और फूल के बीच मिलन होगा। अगर सोचूं, तो मेरी आत्मा और फूल के बीच में एक नई विचारों कीशृंखला खड़ी हो जाएगी, शब्दों का एक जाल खड़ा हो जाएगा। तब मैं फूल को न देख पाऊंगा सीधा; तब इन शब्दों के पार से, इन शब्दों के भीतर से फूल को देखूंगा। तब फूल के संबंध में जो भी निर्णय मैं लूंगा, वह फूल के संबंध में नहीं, मेरे मन के संबंध में है। क्योंकि अगर मैं बचपन से ऐसे घर में बड़ा हुआ हूं, जहां गुलाब को सुंदर समझा जाता है, अगर मुझे बचपन से सिखाया गया है कि गुलाब सुंदर है, तो मेरे मन में विचारों की एकशृंखला है गुलाब के संबंध में, सौंदर्य की। अब अगर गुलाब का फूल मैंने देखा और मेरे मन की धारा खड़ी हुई, मेरे विचार खड़े हुए, और उन्होंने कहा, फूल सुंदर है, तो यह मेरी प्रतीति न हुई, यह मेरे मन का वक्तव्य हुआ। और मन का वक्तव्य शब्दों का वक्तव्य है। निःशब्द जब कोई होता है, तो मन खो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि शब्दों की हमारे भीतर जो प्रक्रिया है, दि वेरी प्रोसेस आफ लैंग्वेज इ.ज माइंड। हमारे शब्दों की जो प्रक्रिया है, हमारे शब्दों का जो संग्रह है, हमारे शब्दों का जो जाल है, वह हमारा मन है। मन हमारे समस्त शब्द, हमारी समस्त भाषा, हमारे समस्त सोचने की क्षमता का इकट्ठा जोड़ है।

आदमी गैर-मन की हालत में दो तरह से हो सकता है। बेहोश पड़ा हो, तो भी गैर-मन की हालत में हो जाता है। यह मन से नीचे की अवस्था है। आदमी समाधि में हो, तो भी मन के बाहर हो जाता है। यह मन से ऊपर की अवस्था है।
इसलिए ऋषियों ने कहा है कि प्रगाढ़ निद्रा में भी आदमी समाधि जैसी अवस्था में पहुंच जाता है। एक ही लक्षण समान है, मन नहीं होता। प्रगाढ़ निद्रा में भी मन नहीं होता, क्योंकि विचार खो जाता है। लेकिन विचार तो खो जाता है, होश भी खो जाता है। समाधि में भी प्रगाढ़ निद्रा की घटना घटती है, मन खो जाता है; लेकिन होश पूरा होता है।
मन हमारे चिंतन का यंत्र है। और इसलिए जितना ही ज्यादा हम इस चिंतन के यंत्र का उपयोग करके जगत को देखते हैं, उतना ही जगत बंट जाता है। इस बंटाव में कई कारण हैं। हमारी भाषा चीजों को तोड़कर देखती है, क्योंकि मन से निर्मित है। और मन भी चीजों को तोड़कर देखता है, क्योंकि भाषा के पार मन का कोई अस्तित्व नहीं है। यही मैं कह रहा था कि हम जहां भी कुछ देखते हैं, वहां तत्काल विपरीत का अनुभव शुरू हो जाता है। अगर हम सौंदर्य देखते हैं, तो कुरूप का बोध तत्काल शुरू हो जाता है। क्या आप ऐसा कर सकते हैं कि किसी चीज को सुंदर कहें बिना किसी चीज को असुंदर कहे?
बुद्ध से महाकाश्यप ने पूछा है। महाकाश्यप एक दिन सुबह बुद्ध के पास पहुंचा है, उनका एक प्रमुख शिष्य है। सूरज उग रहा है, पक्षी गीत गा रहे हैं और महाकाश्यप बुद्ध से पूछता है कि यह जो चारों तरफ फैला है, क्या यह सुंदर नहीं है?
बुद्ध चुप रह जाते हैं। महाकाश्यप की तरफ देखते हैं, मुस्कुराते हैं, लेकिन बोलते नहीं। महाकाश्यप फिर पूछता है कि क्या मेरे प्रश्न में कोई असंगति है? आप उत्तर क्यों नहीं देते हैं?
बुद्ध फिर चारों तरफ देखते हैं, फिर महाकाश्यप की तरफ देखते हैं, मुस्कुराते हैं और चुप रह जाते हैं। महाकाश्यप तीसरी बार पूछता है कि इतना ही कह दें कि आप जवाब न देंगे।
बुद्ध फिर चारों तरफ देखते हैं और चुप रह जाते हैं। महाकाश्यप से वे
तब कहते हैं कि तू जो पूछ रहा है, उससे तू मुझे बड़ी मुश्किल में डाल रहा है। मुश्किल में इसलिए डाल रहा है कि अगर मैं कहूं, यह सब सुंदर है, तो मैं किसको कुरूप कहूं? क्योंकि जब भी सुंदर का उपयोग करें, तो कुरूप की धारणा सुनिश्चित हो जाती है।
और बुद्ध ने कहा कि अब मुझे न कुछ कुरूप रहा है और न कुछ सुंदर रहा है;
जो जैसा है, वैसा ही रह गया है। यह मन के बाहर से देखा गया जगत है। कांटा कांटा है, फूल फूल है; गुलाब गुलाब है, चंपा चंपा है। न कुछ सुंदर है, न कुछ कुरूप है। जो जैसा है, वैसा है।
बुद्ध ने कहा, जो जैसा है, वह मुझे दिखाई पड़ता है। यह सुंदर है या कुरूप, यह मैं कैसे कहूं? क्योंकि जिस मन से मैं बांटता था, वह खो गया है। मन जो मेरे पास था, जिससे मैं तौलता था, वह खो गया है।
समझें, एक तराजू है हमारे पास; उससे हम तौल लेते हैं, कौन-सी चीज वजनी है, कौन-सी चीज गैर-वजनी है। तराजू खो गया। फिर कोई मुझसे पूछता है कि यह ज्यादा वजनी है या कम वजनी है? मैं अपने हाथ पर रखकर थोड़ा अंदाज कर सकता हूं; हाथ से तराजू का काम ले सकता हूं। यद्यपि उतना सुनिश्चित तो नहीं होगा, तोला-तोला, रत्ती-रत्ती नहीं बता सकूंगा; लेकिन फिर भी कह सकता हूं कि यह सेरभर है, यह तीन पाव है! साफ तो नहीं होगा उतना।
लेकिन मेरा हाथ भी टूट गया; अब मेरे पास कोई भी उपाय नहीं है, जिससे मैं इसे नाप लूं। तो अब मैं आंख से ही देखकर अंदाज लगाऊंगा कि यह थोड़ा ज्यादा मालूम पड़ता है, यह थोड़ा कम मालूम पड़ता है। मात्रा देखकर कहूंगा। भूल अब ज्यादा होगी।
लेकिन मेरी आंख भी चली गईं। अब मेरे पास कोई भी उपाय नहीं है कि मैं कहूं कि कौन ज्यादा है, कौन कम है! हाथ नहीं, तराजू नहीं, आंख नहीं। अब तो मैं यही कहूंगा कि यह यह है और वह वह है। लेकिन मेरे पास वह तौलने का यंत्र नहीं है, जिससे मैं तौल लेता, बांट लेता, कौन कम है, कौन ज्यादा है।

बुद्ध ने कहा, जो है, वह है। सूरज उग रहा है। फूल खिल रहे हैं। पक्षी गीत गा रहे हैं। और मैं यहां बैठा सुन रहा हूं। लेकिन वह जो कह सकता था सुंदर और असुंदर, वह मौजूद नहीं है। वह खो गया है।
ध्यान का अर्थ है, मन का खो जाना। ध्यान का अर्थ है, भाषा का, शब्द का, विचार का भीतर से तिरोहित हो जाना।
इसका यह अर्थ भी नहीं है कि जो ध्यान में प्रवेश करेगा, वह बोल न सकेगा। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि जो ध्यान में प्रवेश करेगा, वह शब्द का उपयोग न कर सकेगा। सच तो यह है कि वही उपयोग कर सकेगा। लेकिन तब उपयोग उपयोग होगा; वह मालिक होगा। बुद्ध भी बोल रहे हैं; वे कह रहे हैं कि मेरा मन खो गया। शब्द का उपयोग हो रहा है, भाषा का उपयोग हो रहा है, लेकिन बस उपयोग की तरह। जैसे आदमी जब चलता है, तो पैर का उपयोग करता है; जब बैठ जाता है, तो पैर का उपयोग बंद कर देता है।
लेकिन आपका मन पागल है; आप नहीं भी काम लेना चाहते हैं उससे, वह काम करता ही चला जाता है। आप कहते हैं, चुप हो जाओ; वह चुप होता ही नहीं! आप कहते हैं, बंद करो, मुझे सोना है; और वह बंद नहीं होता। और आप कहते हैं, ठहर जाओ, यह बात मुझे सोचनी ही नहीं है; और वह सोचे चला जाता है। और आप बिल्कुल बेबस हैं।
यह आपकी विवशता, यह आपकी बेचैनी, यह आपकी मजबूरी--आपकी आत्मा की मालकियत खो गई है और मन आपका मालिक है। यह मालकियत मिटे, मन नीचे उतरे, आप मालिक हो जाएं, तो आप जगत को दूसरे ढंग से देखना शुरू करेंगे।
यह मैंने क्यों कहा? यह मैंने इसलिए कहा कि कृष्ण का यह जो सूत्र है,
यह आपकी तभी समझ में आ सकेगा, जब आप मन और गैर-मन, दो ढंग से जगत को देखने की व्यवस्था को समझने में समर्थ हो जाएं।
कृष्ण कहते हैं, मैं ही सूर्यरूप हुआ तपता हूं और मैं ही वर्षा को भी आकर्षित करता हूं। मैं ही बरसाता हूं, मैं ही वर्षा हूं।
इसे हम ऐसा समझें, आग को और जल को हम सदा विपरीत देखते हैं। अगर आग लगी हो, तो हम पानी से उसे बुझा देते हैं। और अगर हम पानी में आग लगाना चाहें, तो कोई उपाय नहीं है। आग और पानी हमारे लिए विपरीत हैं। आग की पानी से क्या मैत्री? पानी दुश्मन है।
पर कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं आग और मैं ही हूं जल; मैं ही भभकता हूं, मैं ही बुझाता हूं; मैं ही हूं सूर्य, जो तपता है; और मैं ही हूं वह वर्षा, जो आकर्षित होती है सूर्य से।
अगर हम मन का हिसाब छोड़ दें और जरा अस्तित्व को देखें, तो पता चलेगा, सूर्य ही तो खींचता है सागर से पानी को, सूर्य ही तो बनाता है बादलों को, सूर्य ही तो बरसाता है। तो आग और पानी में जो वैमनस्य हमें दिखाई पड़ता है, वह कहीं न कहीं हमारे मन के कारण ही होगा! वह वैमनस्य राम और रावण जैसा ही है। सूर्य के बिना पानी नहीं हो सकेगा। पानी के बिना सूर्य नहीं हो सकेगा। वे कहीं बहुत गहरे में संयुक्त और इकट्ठे हैं।
उनके संयुक्त होने की खबर वे देते हैं और कहते हैं, हे अर्जुन, मैं ही अमृत हूं और मैं ही मृत्यु।
दुनिया में ईश्वर के संबंध में जिन लोगों ने भी सोचा है, उनमें सिर्फ हिंदू दृष्टि ईश्वर के साथ मृत्यु को भी जोड़ती है; बाकी कोई भी नहीं जोड़ता है। पृथ्वी पर जितनी चिंतनाएं हैं, वे सभी कहती हैं कि ईश्वर जीवन है, लेकिन कोई भी यह कहने की हिम्मत नहीं करता कि ईश्वर मृत्यु भी है। उसका कारण है। वह जो हमारे मन का विभाजन है, उसमें हम कैसे दोनों कहें? कैसे? ईश्वर दोनों कैसे हो सकता है?
लेकिन ईश्वर दोनों है; क्योंकि जीवन दोनों है। हमारे तर्क में न आए,
तो हमें तर्क छोड़कर देखना चाहिए। लेकिन हमारे तर्क के पीछे जीवन चलने को आबद्ध नहीं है। अगर हम पूछें किसी और से, तो वह कहेगा, ईश्वर जीवन है। लेकिन ईश्वर मृत्यु है, यह कहने में घबड़ाहट होगी उसे। क्योंकि मृत्यु को हम सोचते हैं, वह जीवन के विपरीत है। और जीवन को हम अच्छा और मृत्यु को बुरा समझते हैं।

इसलिए मित्र के लिए हम जीवन की प्रार्थना करते हैं, और शत्रु के लिए मृत्यु की प्रार्थना करते हैं। चाहते हैं मित्र जीए, और चाहते हैं शत्रु मर जाए। लेकिन हमें पता नहीं; मर तो वही सकता है, जो जीएगा। और हमें यह भी पता नहीं कि जो जीएगा, उसे मरना ही पड़ेगा। तो जब हम किसी की मृत्यु की प्रार्थना करते हैं, तब हम उसके जीवन की भी प्रार्थना कर रहे हैं। और जब हम किसी के जीवन के लिए शुभकामना करते हैं, तब हम मृत्यु की भी शुभकामना कर रहे हैं। क्योंकि जीवन बिना मृत्यु के हो नहीं सकता है; वे एक ही चीज के दो छोर हैं।
जीवन और मृत्यु बड़े विपरीत छोर हैं। हम सबको ऐसा अब तक लगता रहा होगा
कि जीवन को जो समाप्त करती है, वह मृत्यु है। लेकिन वह दृष्टि गलत है। जीवन को जो पूर्ण करती है, वह मृत्यु है। जीवन मृत्यु में जाकर अपने चरम शिखर को छूता है।
इसलिए भारत ने जवानी को बहुत मूल्य नहीं दिया, वार्धक्य को मूल्य दिया। पश्चिम जवानी को मूल्य देता है; वृद्ध को कोई मूल्य नहीं देता। वृद्ध होना अवमूल्यित हो जाना है, डिवेल्युएशन हो जाता है। आदमी बूढ़ा हुआ पश्चिम में कि डिवेल्युएशन हुआ, उसका अवमूल्यन हो गया। उसका जो भी मूल्य था जगत से, वह खो गया।
क्यों? क्योंकि अगर जीवन और मृत्यु विपरीत हैं, तो फिर जवान ही जीवन
के शिखर को छूता है; बूढ़ा तो मौत की तरफ जाने लगा।
इसे ऐसा समझें, अगर मृत्यु बुरी है, तो बूढ़ा अच्छा कैसे हो सकता है? क्योंकि बूढ़े का मतलब है, जो मृत्यु में जाने लगा। वह मृत्यु का पथिक है; मृत्यु उसके करीब आने लगी। बूढ़े का मतलब है, जिससे मृत्यु प्रकट होने लगी। तो फिर जवान शिखर है जीवन का। अगर मृत्यु जीवन के विपरीत है, तो जवानी जीवन होगी। फिर जवानी का मूल्य होगा, बूढ़े का अवमूल्यन हो जाएगा
पश्चिम ने मृत्यु को जीवन की समाप्ति समझा है, इसलिए बूढ़ा अनादृत हो गया। इस भाव के साथ बूढ़े का कोई आदर नहीं हो सकता। पूरब ने मृत्यु को जीवन की पूर्णता समझा है, इसलिए बूढ़ा आदृत हुआ। क्योंकि वही चरम शिखर है जीवन का, जवान नहीं; वृद्ध ही चरम शिखर है जीवन का। और मृत्यु का क्षण सिर्फ अज्ञान के कारण अवसाद का क्षण है; अगर समझ हो, तो उत्सव का क्षण भी हो सकता है।
च्वांगत्से की पत्नी मर गई है, सम्राट उसे दुख प्रकट करने आया है, और च्वांगत्से खंजड़ी बजाकर वृक्ष के नीचे बैठा गीत गा रहा है। सम्राट थोड़ा बेचैन हुआ। यह च्वांगत्से बड़ा फकीर था, तभी तो सम्राट खुद आया था चलकर कि उसकी पत्नी मर गई है तो उसे जाकर दो शब्द संवेदना के कह आए। लेकिन यहां संवेदना का कोई उपाय ही न था! यह आदमी खंजड़ी बजाकर गीत गा रहा था! संवेदना प्रकट करनी तो दूर रही... ।
सम्राट तय करके आया था, जैसा कि सभी लोग तय करके जाते हैं, जब कोई मर जाता है, कि क्या कहना! कैसे शुरू करना! कठिन मामला भी है। किसी के घर कोई मर गया, कहां से शुरू करो! क्या कहो! भाषा मुश्किल में पड़ती है, साहस जवाब देता है।
सब तय करके आया था, यह-यह कहूंगा, ऐसे-ऐसे बात शुरू करूंगा, किसी तरह निपटाकर निकल आऊंगा। लेकिन यहां और मुश्किल बढ़ गई, क्योंकि च्वांगत्से खंजड़ी पीट रहा है। सम्राट बिल्कुल उदास होकर आया था, तैयार होकर आया था। स्वभावतः, दूसरे का जीवन हमें जब प्रफुल्लित नहीं करता, तो दूसरे की मृत्यु हमें दुखी क्यों करेगी! और अगर दूसरे का जीवन हमें प्रफुल्लित ही कर पाए, तो हम उस स्थिति को जान लेंगे, जहां फिर मृत्यु भी दुखी नहीं कर पाती।
सम्राट आया था उदास बाना पहनकर। देखा, तो रहा नहीं गया। उसने च्वांगत्से से कहा कि महानुभाव! दुख न मनाएं, इतना ही काफी है। लेकिन खंजड़ी बजाएं और गीत गाएं, यह जरा ज्यादा हो गया! दुख न मनाएं, चलेगा, ठीक है। लेकिन यह जरा ज्यादा हो गया!

च्वांगत्से ने कहा, क्या कहते हैं! जिसके साथ मैंने जीवन के परम आनंद जाने, और जिसके साथ जीवन की लंबी यात्रा पूरी की, क्या उसके पूर्ण होने के क्षण में मैं गीत गाकर विदा भी न दे सकूं!
मगर यह कुछ और ढंग है देखने का। यह मन से देखी गई बात नहीं है। अगर मन
से देखी गई हो, तो मृत्यु दुख का कारण है, जन्म खुशी का कारण है। यह मन के कहीं पार से देखी गई बात है, जहां जन्म और मृत्यु विपरीत नहीं रह जाते, जहां दोनों ही एक ही जीवन की धारा के अंग हो जाते हैं। और जहां जीवन मृत्यु और जन्म के बीच की धारा बन जाता है, दोनों किनारे उसी के हो जाते हैं।
तो च्वांगत्से कहता है कि उसकी महापूर्णता के क्षण में मैं उसे गीत गाकर विदा न दे सकूं, तो मुझसे ज्यादा अकृतज्ञ कौन होगा?
सम्राट की समझ में नहीं पड़ा होगा। आपकी भी समझ में पड़ना मुश्किल पड़ेगा। लेकिन जिनकी समझ में पड़ जाए, वे ही केवल समझदार हो पाते हैं। प्रयोजन इतना ही है कि जिसे हम विपरीत कहते हैं, वह विपरीत नहीं है। विपरीत हमारी भ्रांति है। और जहां-जहां विरोध दिखे, वहां-वहां खोजेंगे, तो नीचे एकता की धारा मिल जाएगी। कांटा है, गुलाब है। फूल खिला है, कांटा लगा है। आप फूल तोड़ने जाते हैं, कांटा हाथ में छिद जाता है; लहू की धार फूट पड़ती है। स्वभावतः, आपको लगेगा कि फूल और कांटा दुश्मन हैं। कहां फूल, कहां कांटा! गए थे फूल तोड़ने, लग गया कांटा!
अगर आप किसी को कांटा भेंट करने जाएं, तो वह भी चौंकेगा कि आपका दिमाग
तो खराब नहीं हो गया है! भेंट तो फूल किए जाते हैं। कभी देखें; गुलाब के कांटे तोड़कर किसी को भेंट करने चले जाएं। फिर दुबारा वह आपको दिखाई भी नहीं पड़ेगा। आपसे बचकर निकलने लगेगा। जिस रास्ते आप गुजरते हैं, उस रास्ते नहीं गुजरेगा।
लेकिन फूल और कांटे क्या दुश्मन हैं? तो फिर जरा गुलाब की शाखा में नीचे उतरें। शाखा में बहती हुई रसधार से पूछें कि यह फूल और यह कांटा क्या अलग-अलग जगह से आते हैं?
वही रस कांटा बनता है, वही रस फूल बनता है। ये दोनों अलग-अलग हमें दिखाई पड़ते होंगे, ये अपने में अलग-अलग नहीं हैं। और गुलाब के सब कांटे तोड़ डालें, तो फूल भी उदास हो जाएंगे; क्योंकि भीतर की रसधार को चोट लगेगी। वही रसधार तो है। और जब गुलाब के फूल तोड़ लिए जाते हैं, तो कांटे भी पीड़ा अनुभव करते हैं। क्योंकि वे तो संयुक्त हैं, अस्तित्व इकट्ठा है। मन बांटता है; फिर फूल अच्छे हो जाते हैं, कांटे बुरे हो जाते हैं। फिर कांटे को कोई भेंट नहीं दे सकता, फूल को ही भेंट देना पड़ता है। लेकिन अस्तित्व कांटे और फूल एक साथ उगाए चला जाता है। अस्तित्व एक साथ दोनों को जीवन दिए चला जाता है। कृष्ण कहते हैं, मैं ही हूं अमृत, मैं ही मृत्यु हूं।
जब पहली बार भारतीय चिंतन की कुछ झलक भारत के बाहर फैलनी शुरू हुई, तो
जो सबसे बड़ी हैरानी अनुभव होनी स्वाभाविक थी, वह यही थी। सबसे ज्यादा हैरान करने वाला पश्चिम में जो हमारा प्रतीक है, वह महादेव का, शिव का है। कभी आपने ख्याल नहीं किया होगा; क्योंकि न हम देखते, न हम सोचते, न हम खोजते!
आपने देखा है, जगह-जगह सड़क के किनारे एक वृक्ष के नीचे शंकर का शिवलिंग रखा है। कभी आपने ख्याल किया कि शंकर मृत्यु के देवता हैं, विध्वंस उनके हाथ में है। ब्रह्मा बनाता है, विष्णु सम्हालता है, शंकर विध्वंस में ले जाते हैं। शिव विध्वंस के देवता हैं! लेकिन जो शिवलिंग रखा है, वह फैलिक सिंबल है, वह जननेंद्रिय का सिंबल है, वह सृजन का प्रतीक है। वह जो शिवलिंग है, वह जन्म और जीवन का प्रतीक है। और शंकर देवता हैं विध्वंस के; उनके काम जो जिम्मा है, वह है मिटाने का।
बड़ी हैरानी, बड़े पागल लोग थे ये हिंदू! जब पहली दफा पश्चिम में शंकर का
यह प्रतीक पहुंचा, तो उन्होंने कहा, ये कैसे लोग हैं! विध्वंस का देवता है, जिसे कि दुनिया को नष्ट करना है, और यह फैलिक सिंबल है! और यह जननेंद्रिय का सिंबल है, जीवन का प्रतीक; जहां से समस्त जीवन जन्मता है और विकसित होता है! यह किस प्रकार का प्रतीक है? यह प्रतीक होना ही नहीं चाहिए। यह प्रतीक शंकर के साथ मेल नहीं खाता।

खाता भी नहीं है। अगर हम भी सोचेंगे गणित से, तो मेल नहीं खाता। अगर विध्वंस का देवता है, तो कुछ विध्वंस की बात होनी चाहिए थी। यह तो जीवन है।
जीवन का प्रतीक चुना है और विध्वंस का देवता है। कारण वही है।
कृष्ण कहते हैं, मैं ही अमृत और मैं ही मृत्यु हूं।
ये विपरीत प्रतीक हमें मालूम पड़ते हैं, लेकिन भारत ने सदा यह कोशिश की
है कि विपरीत के भीतर जो एक धारा है, वह ख्याल में आए। इसलिए जानकर विध्वंस के देवता के सामने सृजन का प्रतीक रखा है; जानकर, सोचकर, बहुत खोजकर। यही प्रतीक उनका प्रतीक हो सकता है। क्योंकि जिसे विध्वंस की अंतिम सीमा छूनी है, उसे जन्म के पहले क्षण में भी उपस्थित होना चाहिए। जिसे मृत्यु का रास्ता बनना है, उसे जन्म का भी द्वार बनना चाहिए। इसलिए दोनों विपरीत-- मृत्यु उनका काम, जन्म उनका प्रतीक। यहां भी इतनी ही बात होती, तो भी आसान था, और भी कठिन सूत्र है।
कृष्ण कहते हैं, एवं सत और असत भी मैं ही हूं।
सत का अर्थ है, जो है; और असत का अर्थ है, जो नहीं है। जो है, वह तो मैं हूं ही; जो नहीं है, वह भी मैं ही हूं! यह आखिरी कंट्राडिक्शन है। तर्क में, चिंतन में, विचार की पद्धति में, जो है और जो नहीं है, यह सबसे बड़ा विरोध है। होना और न होना, यह सबसे बड़ी खाई है। इससे बड़ी कोई भी खाई नहीं हो सकती। तो कोई मान भी ले सकता है, थोड़ा कल्पना को फैलाए तो मान ले सकता है कि जन्म और मृत्यु जुड़े हैं--चलो एग्रीड; माना। कोई यह भी मान ले सकता है-- थोड़ी हिम्मत जुटाए, थोड़ी आदतों को तोड़े--कि चलो माना कि राम और रावण की कथा भी, एक गिर जाए, तो नहीं हो सकेगी; किसी तरह दोनों जुड़े हैं, माना। यह भी माना जा सकता है कि फूल और कांटा जुड़े हैं। लेकिन यह तो बिल्कुल नहीं माना जा सकता कि जो है, वह उससे जुड़ा है, जो है ही नहीं! क्योंकि जो है ही नहीं, उससे जोड़ कैसा? जोड़ का तो मतलब ही होता है कि दो चीजें हों, तो जोड़ हो सकता है। जो नहीं है, उससे कैसा जोड़?
यह आत्यंतिक खाई है, होने में और न होने में। न होने और होने के बीच तो हमारा मन बिल्कुल ही इनकार कर देगा कि जोड़ बन नहीं सकता। खींच-तानकर राम और रावण के बीच बना लें; खींच-तानकर शत्रु और मित्र के बीच बना लें, खींच-तानकर जन्म और मृत्यु के बीच बना लें; सुंदर-असुंदर के बीच बना लें; प्रकाश-अंधकार के बीच बना लें; लेकिन जो है ही नहीं, दैट व्हिच इ.ज नाट, एंड दैट व्हिच इ.ज, इन दोनों के बीच क्या जोड़ है? और जोड़ बनेगा कैसे?
दो किनारों के बीच जोड़ हो सकता है, क्योंकि दोनों किनारे हैं। लेकिन
एक किनारा है और दूसरा किनारा नहीं है, इनके बीच जोड़ कैसे होगा?
यह सर्वाधिक कठिन मालूम पड़ेगा, और मन के लिए सबसे बड़ी चोट भी है। लेकिन इसे समझें, तो समझ में आ सकेगा। इसे हम दो-तीन प्रकार से समझने की कोशिश करें। थोड़ा कठिन है, लेकिन असंभव नहीं कि ख्याल में झलक न आ जाए। और ख्याल में झलक ही आ सकती है, अनुभव तो ख्याल में नहीं आ सकता। झलक आ जाए, तो अनुभव की तरफ कदम बढ़ाए जा सकते हैं।
थोड़ी मेहनत लें।
एक वृक्ष है; कल नहीं था, आज है, कल फिर नहीं हो जाएगा। तो होना और न होना किसी न किसी तरह जुड़े होने चाहिए। वृक्ष कल नहीं था, आज है, कल फिर नहीं हो जाएगा। तो जो नहीं था, वह हो सका; जो है, वह कल नहीं हो जाएगा। आप कल नहीं थे, आज हैं, कल फिर नहीं हो जाएंगे। नहीं से आते हैं, नहीं को लौट जाते हैं। तो वह जो बीच में थोड़ी देर के लिए होना है, वह दो नहीं के बीच में है। अब इसे हम ऐसा समझें कि दो नहीं किनारे हैं और होना बीच की नदी है। दो नहीं किनारे हैं; कल मैं नहीं था, कल फिर नहीं हो जाऊंगा, आज हूं। आज मेरे होने की गंगा बहती है। दो मेरे किनारे हैं। कल भी मैं नहीं था, कल फिर मैं नहीं रहूंगा। यह दो न होना मेरे दो किनारे हैं, और मेरा होना बीच की धारा है। उन दो के बिना मैं नहीं हो सकूंगा। वे दोनों मेरे तरफ मुझे घेरे हुए हैं।
सुबह थी; सांझ हो गई; रात आ गई; फिर सुबह आएगी। कभी आपने देखा, हर दिन को दोनों तरफ दो रातें घेरे हुए हैं। हर रात को दोनों तरफ दो दिन घेरे हुए

हैं। विपरीत किनारा बना हुआ है। जो भी है, वह दोनों ओर नहीं से घिरा है। और जो भी नहीं है, वह भी दोनों ओर है से घिरा है।
होना और न होना इतने विपरीत नहीं हैं, क्योंकि एक-दूसरे में हम बदलते हुए देखते हैं। जो आदमी था, वह अब नहीं हो गया। इसका मतलब हुआ कि जो था, वह नहीं है में प्रवेश कर जाता है, लिक्विड है, बह सकता है; ठोस विभाजन नहीं मालूम होता।
आदमी जवान है, फिर यही जवान बूढ़ा हो जाता है। आप बता सकते हैं, कब बूढ़ा
हो जाता है? कौन-सी तिथि में, कौन-सी तारीख में, कौन-सी समय की सीमा पर जवानी चली जाती है और बुढ़ापा आ जाता है?
नहीं बता पाएंगे। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि बुढ़ापा और जवानी दो चीजें नहीं हैं; तरल हैं, लिक्विड हैं; एक-दूसरे में बह जाती हैं। पता ही नहीं चलता, कब जवान बूढ़ा हो गया। कब तक बूढ़ा जवान था, यह भी पता नहीं चलता। कब बच्चा जवान होता है, यह भी पता नहीं चलता!
तो जवानी या बुढ़ापा विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन एक-दूसरे में बह जाते हैं; एक-दूसरे में डोलते रहते हैं। होना और न होना भी इसी तरह एक-दूसरे में डोलता रहता है। अभी बीज है, वृक्ष नहीं है। यह बीज अचानक कल वृक्ष के होने में प्रकट हो जाएगा। तो होना, न होना; अस्तित्व, अनस्तित्व; सत और असत--ये विपरीत हमें दिखाई पड़ते हैं, विपरीत नहीं हैं।
इसे हम और एक तरह से देखें।
जो भी चीज है, उसकी संभावना है कि वह नहीं हो जाएगी। ऐसी कोई चीज आप जानते हैं, जो नहीं न हो जाए? जो भी है, वह नहीं हो सकती है। दैट व्हिच इ.ज, कैन बी दैट व्हिच इ.ज नाट। इ.ज, कैन बी इ.ज नाट।
(भीड़ में से कोई खड़ा होकर कुछ चिल्लाकर कहता है। भगवान श्री हंसते हुए उसे समझाते हैं और साथ ही सभी लोगों को शांत रहने को कहते हैं। और अपनी बात जारी रखते हैं।)
छोड़िए! अपन अपनी बात शुरू करें।
जो नहीं है और जो है, उन दोनों के बीच कोई अलंघ्य खाई नहीं है। वे दोनों एक के ही दो रूप हैं। जो नहीं है, वह है में प्रवेश कर सकता है; जो है, वह नहीं है में प्रवेश कर सकता है। लेकिन हम बांटकर देखते हैं, इससे कठिनाई हो जाती है।
आप शांत बैठे हैं; एक मित्र अशांत हो गए; इतनी देर तक शांत थे। शांति अशांति में चली गई। फिर शांत हो जाएंगे। क्योंकि कितनी देर अशांत रहेंगे? जब शांति अशांति बन सकती है, तो अशांति फिर शांति बन जाएगी। इतनी देर मौन से बैठे थे, क्रोध में आ गए। मौन क्रोध बन सकता है। कितनी देर रहेगा? जब मौन क्रोध बन सकता है, तो क्रोध फिर मौन बन जाएगा। लेकिन हम विपरीत में एकता को नहीं देख पाते हैं, उससे अड़चन हो जाती है; उससे कठिनाई हो जाती है। आप भी शांत बैठे हैं, आपको ख्याल भी नहीं आ सकता कि आप भी इसी तरह अशांत हो सकते हैं! बिल्कुल हो सकते हैं। क्योंकि अब तक वे भी आप ही जैसे बैठे हुए थे।
वह जो विपरीत है, उसमें हम डोल सकते हैं कभी भी, किसी भी क्षण में, किसी
भी क्षण में। और मन हमारा बांटकर देखता है। उनके मन को बंटकर दिखाई पड़ गया कि यह हिंदी है, यह अंग्रेजी है; हिंदी होनी चाहिए, अंग्रेजी नहीं होनी चाहिए! बांटकर जहां भी हम देखते हैं, वहां विपरीत दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।
अब मजा यह है कि अगर हम भाषाओं के भीतर भी थोड़ा प्रवेश करें, तो हम पाएंगे कि एक ही स्वर गूंजता है। सारी दुनिया की भाषाओं में अगर हम थोड़ा- सा गहरे उतरें, तो लगता है कि कोई एक ही भाषा बहुत-बहुत ढंग से बोली गई है। और अंग्रेजी और हिंदी तो भीतर इतनी गहरी जुड़ी हैं कि जिसकी हमें कल्पना नहीं हो सकती; सिस्टर लैंग्वेजेज हैं। संस्कृत से दोनों का जन्म हुआ है, अंग्रेजी का भी और हिंदी का भी। और हिंदी जितनी संस्कृत के करीब है, उतनी ही करीब अंग्रेजी भी है। अगर हम दोनों में थोड़ा प्रवेश करें, तो हमें पता लगेगा कि दोनों के बीच वैपरीत्य नहीं है, एक धारा बह रही है।

हिंदी में आप मां कहते हैं, संस्कृत में मातृ कहते हैं, लैटिन और ग्रीक में मैटर हो जाता है, अंग्रेजी में मदर हो जाता है। वह मदर मातृ का ही रूप है, जैसे मां और माता मातृ का ही रूप है। संस्कृत में पितृ कहते हैं, पितर कहते हैं, हिंदी में पिता कहते हैं; अंग्रेजी में वह फादर हो जाता है; पीटर, पैटर और फिर फादर हो जाता है।
लेकिन अगर कोई पिता कहे, तो हमें लगेगा, हमारी भाषा बोली; और कोई फादर कहे, तो लगेगा, कोई विदेशी भाषा बोल दी। नासमझी है। पिता और फादर जिस शब्द से पैदा हुए हैं, वह एक है। ये फासले कितने ही हो जाएं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता है। संस्कृत में जो मूल रूप हैं, वे सारी दुनिया की भाषाओं में फैल गए हैं।
इसलिए संस्कृत किसी की भाषा नहीं है, संस्कृत सब भाषाओं की भाषा है। लेकिन जल्दी हमारा मन करता है और कठिनाइयां खड़ी कर लेता है। मन बांटकर देखता है और बंटकर मुसीबत में पड़ जाता है।
कृष्ण कहते हैं, सत भी मैं हूं, असत भी मैं हूं। जो है, वह भी मैं ही हूं; और जो नहीं है, वह भी मैं ही हूं। यह सबसे कठिन कोटि है, सबसे कठिन कैटेगरी है; क्योंकि नहीं है को हम सोच भी नहीं पाते; लेकिन प्रतिपल घटना घट रही है। जो तारा कल नहीं था, वह आज निर्मित हो गया है।
वैज्ञानिक कहते हैं, रोज नए तारे निर्मित होते हैं। और जो तारा कल था,
वह आज खो गया है।
आप रात को जब आकाश में तारे देखते हैं, तो आप इस भ्रांति में न रहें कि
जो तारे आप देखते हैं, सब वहां हैं। क्योंकि तारों से प्रकाश आने में करोड़ों-करोड़ों वर्ष लग जाते हैं, अरबों वर्ष भी लग जाते हैं। और यह हो सकता है कि वह तारा कभी का मिट चुका हो। लेकिन जब वह था, तब उसका प्रकाश चला था, और अब आज की रात आपको वह दिखाई पड़ता है, वह प्रकाश। हो सकता है, करोड़ वर्ष पहले वह प्रकाश चला हो, वह तारा कभी का मिट गया। लेकिन उसका प्रकाश पृथ्वी तक आने में समय लगता है। वह आज की रात आ पाया। आज की रात वह है नहीं। एक तो पक्की बात है कि उस जगह तो है ही नहीं, जहां से प्रकाश चला था। जहां आपको दिखाई पड़ेगा, वहां तो नहीं है। और दूसरी बात भी संभव है कि वह मिट ही गया हो, अब कहीं हो ही नहीं। फिर भी दिखाई पड़ रहा है।
प्रतिपल चीजें बन रही हैं और मिट रही हैं। बनना और मिटना एक साथ चल रहा है। अगर हम और गौर से देखें, तो बनना और मिटना दो अलग-अलग समय में नहीं घटते, एक ही समय में घटते हैं। जब मैं जवान हो रहा हूं, तभी मैं बूढ़ा भी हो रहा हूं। इसीलिए तो पता नहीं चलता कि किस दिन बूढ़ा हो गया। जब मैं जी रहा हूं, तभी मैं मर भी रहा हूं। इसीलिए तो पता नहीं चलता कि मृत्यु कहां से आ गई। यह मृत्यु कहीं बाहर से नहीं आती। जब मैं जी रहा हूं, तभी मैं मर भी रहा हूं।
जब आप एक मकान बना रहे हैं, तभी उसका गिरना भी शुरू हो गया। लेकिन यह दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि सौ साल बाद गिरेगा, हजार साल बाद गिरेगा। गिरने की प्रक्रिया हजार साल में पूरी होगी, लेकिन गिरना शुरू हो गया इसी क्षण। बच्चा पैदा हुआ और मरना शुरू हो गया। सत्तर साल बाद पूरी होगी यह प्रक्रिया। सत्तर साल बाद आपको पता लगेगा, चाहे आप बचेंगे भी नहीं तब तक। दूसरों को पता लगेगा कि यह आदमी जो सत्तर साल पहले पैदा हुआ था, आज मर गया। लेकिन सत्तर साल पहले जिस दिन जन्मा था, उसी दिन मौत शुरू हो गई, मरना शुरू हो गया।
हम रोज जी भी रहे हैं और मर भी रहे हैं। इसका मतलब कि हम रोज हो भी रहे हैं और नहीं भी हो रहे हैं; बन भी रहे हैं और मिट भी रहे हैं। यह एक साथ चल रहा है। ये हमारे दो पैर हैं, बायां और दायां। जब बायां चलता है, तो दायां रुका मालूम पड़ता है; जब दायां उठता है, तो बायां रुका मालूम पड़ता है। लेकिन बायां इसलिए रुकता है कि दायां उठ जाए, दायां इसलिए रुकता है कि बायां उठ जाए। जब आप लगते हैं कि जवान हैं, तब बुढ़ापा उठ रहा है। जब आप लगते हैं कि जी रहे हैं, तब मौत भी कदम उठा रही है। वे दोनों साथ चल रहे हैं। होना, न होना, एक ही अस्तित्व के हिस्से हैं।
कृष्ण कहते हैं, दोनों मैं हूं।

परंतु जो तीनों वेदों में विधान किए हुए सकाम कर्मों को करने वाले, सोमरस को पीने वाले एवं पापों से पवित्र हुए पुरुष, मेरे को यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्यों के फलरूप इंद्रलोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं।
कृष्ण कहते हैं, लेकिन... ।
इस लेकिन शब्द पर ख्याल रखना--परंतु। यह तो उन्होंने जो बात कही, आत्यंतिक है, अल्टिमेट है, आखिरी है। लेकिन लोग, वेदों में जो कहा है, उन कर्मों को, यज्ञों को, हवनों को, क्रियाकांडों को करके, अपने को पापों से मुक्त करके स्वर्ग जाने की कामना करते हैं, सुख को पाने की कामना करते हैं।
यह परंतु बहुत महत्वपूर्ण है। इसका मतलब यह हुआ कि ऐसे लोग अभी भी स्वर्ग और नर्क को बांटते हैं। इसका अर्थ हुआ, ऐसे लोग अभी भी सुख और दुख को बांटते हैं। ऐसे लोग अभी भी सुख चाहते हैं; दुख से बचना चाहते हैं। ऐसे लोग अभी भी मन से ही जी रहे हैं।
सकाम का अर्थ है, मन से जीना; अभी कामना मिटी नहीं, अभी कामना बाकी है। अगर इस जगत की कामना से ऊब गए हैं, तो उस जगत की कामना शुरू है; अगर यहां मकान नहीं बनाना, तो स्वर्ग में कोई मकान बन जाए, इसकी चेष्टा करनी है; अगर यहां धन नहीं जुटाना, तो कोई पुण्यों की संपदा इकट्ठी हो जाए, इसका प्रयास करना है। लेकिन अभी उनकी भाषा नहीं बदली; अभी उनका सोचने का ढंग नहीं बदला; अभी उनकी दृष्टि नहीं बदली; अभी उनका ढांचा वही है।
फिर भी, ऐसे लोग अपने को पापों से छुड़ाते हैं; पुण्य करते हैं; बुरा नहीं करते, भला करते हैं; वेदविहित कर्म करते हैं; पूजा, यज्ञ, हवन करते हैं। इन पुण्यों के फलस्वरूप इंद्रलोक को प्राप्त होकर वे स्वर्ग में दिव्य देवताओं के सुखों को भोगते हैं, लेकिन मुझे उपलब्ध नहीं होते। मुझे तो वही उपलब्ध होगा, जिसे स्वर्ग और नर्क में भेद न रहा। मुझे तो वही उपलब्ध होगा, जिसे पुण्य और पाप में भेद न रहा। मुझे तो वही उपलब्ध होगा, जिसे मृत्यु और जीवन एक हुए। मुझे तो वही उपलब्ध होगा, जो चुनाव ही नहीं करता। जो नहीं कहता, यह छोडूंगा, वह पाऊंगा; यह नहीं चाहिए, वह चाहिए, ऐसा जो चुनाव ही नहीं करता; वन हू हैज बिकम च्वाइसलेस, जो बिल्कुल चुनावरहित हो गया, जिसके मन में कोई विकल्प न रहा। जो कहता है, जो भी है, राजी हूं। दुख है, तो दुख से राजी हूं; सुख नहीं चाहिए। सुख है, तो सुख से राजी हूं; सुख के त्याग की भी चिंता नहीं करता हूं। जीवन है, तो धन्यवाद। और मृत्यु आए, तो स्वागत। और नर्क में डाल दो, तो भी तुम्हीं को देखता रहूंगा; और स्वर्ग में भेज दो, तो भी तुम्हीं मेरे सुख हो।
जो ऐसा हुआ, वह तो मुझे उपलब्ध होता है। लेकिन इसके पहले वे कहते हैं, परंतु ऐसे लोग भी हैं, जो शायद इतनी निर्द्वंद्व, इतनी द्वंद्वातीत, इतनी अद्वैत की दृष्टि को न पा सकें, वे लोग भी इंद्रलोक को तो पा ही सकते हैं, स्वर्ग को तो पा ही सकते हैं।
स्वर्ग का मतलब है, जो कम बुरा करेगा, कम पाप करेगा, कम दूसरों को दुख पहुंचाएगा, वह ज्यादा सुख पा सकता है--आनंद नहीं, ध्यान रखना! इसके भेद को ठीक से समझ लेना जरूरी होगा; आनंद नहीं, सुख पाएगा।
आनंद है सुख और दुख दोनों के पार। आनंद वह पाता है, जिसके सुख और दुख दोनों की दृष्टि खो जाती है। आनंद तीसरी बात है। आनंद सुख नहीं है। जैसा कि आमतौर से लोग समझते हैं कि आनंद सुख का ही परम रूप है। बिल्कुल नहीं है। आनंद का सुख से उतना ही लेना-देना है, जितना दुख से। आनंद न दुख है, और न आनंद सुख है। इसलिए सुख दुख के विपरीत है, दुख सुख के विपरीत है। जिसको विपरीतता दिखाई पड़ रही है, वह सुख दुख में घूमेगा।
कृष्ण अगले सूत्र में कहते हैं कि यह स्वर्ग भी मिल जाए, तो फिर लौटकर आना पड़ेगा। क्योंकि फिर दुख में आना पड़ेगा। जो सुख में गया है, उसे दुख में आना ही पड़ेगा। द्वंद्व में जिसने विभाजन किया है, वह एक से दूसरे में जाएगा। जिसने जन्म को पकड़ा, उसे मरना ही पड़ेगा। जिसने सुख को पकड़ा, पकड़ते ही दुख में जाना शुरू हो गया।

कृष्ण कहते हैं, उसे तो लौट आना पड़ेगा। उसने अच्छे कर्म किए, उसने सदभाव रखे, उसने धार्मिक जीवन जीया, वह स्वर्ग तक पहुंच सकता है। सुख के आखिरी छोर को छू लेगा, लेकिन छूते ही लौटना शुरू हो जाएगा।
जैसे घड़ी का पेंडुलम जाता है बाएं तरफ, आखिरी छोर पर पहुंच जाता है।
पहुंचते से ही वापस यात्रा शुरू हो जाती है। दाएं तरफ जाने लगता है।
ठीक ऐसे ही सुख का आखिरी बिंदु आ जाएगा। फिर यात्रा शुरू हो जाएगी वापसी। क्योंकि द्वंद्व में कोई मुक्ति नहीं है। वह वापस लौट आएगा। उसके कर्म चुक जाएंगे और वह वापस जमीन पर खड़ा हो जाएगा। मुझे नहीं पा सकेगा। मुझे तो वही पा सकेगा, जो सत में और असत में, स्वर्ग में और नर्क में, पाप में और पुण्य में, दोनों में ही बिना किसी भेद-भाव के मुझ को ही देख लेता है। फिर कोई उपाय न रहा, फिर टूट गया पेंडुलम। फिर उसकी कोई यात्रा न रही, कोई मोमेंटम न रहा।
कृष्ण का सारा संदेश इस सूत्र में है कि द्वंद्व न दिखाई पड़े। लेकिन
मन है, तो द्वंद्व दिखाई पड़ेगा ही। तो इस सूत्र का मतलब हुआ, मन न रहे; नो माइंड, अ-मन पैदा हो जाए। तो ही हम जीवन के ऐक्य को देख पा सकते हैं। ऐक्य ही मुक्ति है और ऐक्य ही आनंद।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट रुकें। कीर्तन में सम्मिलित हों और फिर जाएं। कोई बीच में न उठे।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
नौवां प्रवचन

वासना और उपासना

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।। 21।।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। 22।।
और वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्ग के साधनरूप तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म के शरण हुए और भोगों की कामना वाले पुरुष बारंबार जाने-आने को प्राप्त होते हैं।
और जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरंतर चिंतन करते हुए निष्काम भाव से उपासते हैं, उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थिति वाले पुरुषों का योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूं।

मन बाहर तो बांटता ही है, भीतर भी बांटता है। मन से बाहर जो भी हम जानते हैं, वह तो खंड-खंड हो ही जाता है, मन के ही कारण हम भीतर भी खंड-खंड हो जाते हैं। मन के इस दूसरे पहलू को भी समझ लेना जरूरी है।
मन के साथ कभी भी कोई व्यक्ति एक व्यक्ति नहीं होता, बल्कि एक भीड़ होता है। भीतर भी मन एक नहीं है, अनेक है। सदा से आदमी ऐसा समझता रहा है कि उसके भीतर एक मन है। वैसा सत्य नहीं है। आपके भीतर बहुतेरे मन हैं, बहु-मन हैं। अब मनोविज्ञान स्वीकार करता है कि मैन इ.ज पोलीसाइकिक; बहुत मन हैं भीतर, एक मन नहीं है। ये बहुत मन भी इसीलिए हैं कि मन जहां भी चरण रखता है, वहीं खंड हो जाते हैं।
समझें, भीतर मन की इस खंड-खंड हो गई स्थिति को भी समझना जरूरी है।
आपने शायद ही कभी ऐसी कोई मन की दशा पाई हो, जिसके विपरीत स्वर आपके भीतर मौजूद न रहा हो। किसी को आपने किया हो प्रेम और साथ ही उसे घृणा न की हो, ऐसा असंभव है। किसी को की हो श्रद्धा, और साथ ही भीतर मन का एक हिस्सा अश्रद्धा से न भरा रहा हो, असंभव है। चाहा हो किसी को, और साथ ही चाह से बचना भी न चाहा हो, ऐसा नहीं होगा।
मन जब भी कुछ तय करता है, तो द्वंद्व में ही तय करता है; उसका विपरीत स्वर भी भीतर मौजूद होता है। जिसको आप मित्र मानते हैं, कहीं किसी मन की गहराई में उसे आप शत्रु भी मानते हैं। इसीलिए तो मित्रता इतनी जल्दी शत्रुता बन जाती है! अन्यथा जिस आदमी को मैं पचास साल तक मित्र समझा हूं, एक क्षण में शत्रु कैसे हो जाएगा? कोई उपाय नहीं है; कोई रासायनिक प्रक्रिया नहीं है कि पचास साल की मित्रता एक क्षण में, एक शब्द से शत्रुता बन जाए।
बन जाती है लेकिन। गहरे खोजेंगे, तो पाएंगे, ऊपर मित्रता बन रही थी, भीतर शत्रुता भी पल रही थी। इसलिए एक क्षण में मित्रता नीचे चली गई, शत्रुता ऊपर आ गई। यह सिर्फ पलड़ा भारी हो गया। जब हम एक पलड़े पर तराजू के मित्रता रख रहे थे, तभी हम शत्रुता भी दूसरे पलड़े पर रखे जाते थे। यह सिर्फ समय और संयोग की बात है कि जिस दिन भी पलड़ा भारी हो जाएगा शत्रुता का, उसी दिन शत्रुता प्रकट हो जाएगी। लेकिन मन से कोई आदमी किसी को अनन्य भाव से मित्र नहीं बना सकता है।
मन, एक तरह की समझें डेमोक्रेसी है, एक लोकतंत्र है। मन पार्लियामेंटरी है। उसमें जो भी निर्णय होते हैं, वे बहुमत से होते हैं, लेकिन अल्पमत विरोध में खड़ा ही रहता है। और भरोसा नहीं है कि जो सदस्य आज

पक्ष में मत दिया है, वह कल भी देगा। मन के भीतर भी दल-बदलू सदस्य हैं। वे दल बदल लेते हैं।
तो हम जो भी निर्णय मन से लेते हैं, वह मेजर माइंड का होता है। हमारे भीतर जो मन का बहुमत होता है, वह कहता है, ठीक। लेकिन अल्पमत प्रतीक्षा करता है कि कितनी देर तक ठीक! समय आएगा, स्थिति बदलेगी, और हम तोड़ लेंगे। इसलिए हमारा मन कभी भी एक स्वर उपलब्ध नहीं कर पाता। कर भी नहीं सकता है।
मन के काम करने का ढंग ही द्वंद्व है।
कीर्कगार्ड ने कहा है--और थोड़े से लोग जो मन की गहराइयों में उतरे हैं, उनमें कीर्कगार्ड एक है--उसने कहा है कि मन के साथ निरंतर ही एक डायलाग है, एक वार्तालाप है, जो मन अपने को ही दो हिस्सों में तोड़कर चलाए चला जाता है। जब आप सोचते हैं कुछ, तो आपका मन दो हिस्सों में टूट जाता है; एक पक्ष में बोलता है, एक विपक्ष में बोलता है। समस्त विचार, मन का दो हिस्सों में टूटकर वार्तालाप है। एक खेल है, जो आप भीतर खेलते हैं; इस तरफ से भी, उस तरफ से भी।
यह जो मन का भीतर भी दो हिस्सों में टूट जाना है और बाहर भी जगत दो हिस्सों में टूट जाता है, इसके परिणाम क्या होते हैं? पहला परिणाम तो यह होता है कि जगत में हमें उस एक के दर्शन नहीं हो पाते, जो कि सबके भीतर छिपा है। और जब भीतर भी द्वंद्व हो जाता है, तो भीतर भी उस एक के दर्शन नहीं हो पाते हैं, जो मौजूद है।
तो चाहे कोई बाहर उस एक को देख ले, शर्त एक ही होगी कि मन को छोड़कर देखे; और चाहे कोई भीतर उस एक को देख ले, शर्त फिर भी वही होगी कि मन को छोड़कर देखे। और जब भीतर का एक दिखाई पड़ता है, तो बाहर और भीतर का द्वंद्व भी गिर जाता है। क्योंकि वह भी दो की भाषा है। भीतर और बाहर, वह भी दो की भाषा है। जब भीतर का एक दिखाई पड़ता है, तो भीतर और बाहर दोनों खो जाते हैं; एक ही रह जाता है। जब बाहर का एक दिखाई पड़ता है, तब भी एक ही रह जाता है; भीतर और बाहर का द्वंद्व खो जाता है।
इसे अगर हम संक्षिप्त में कहें, तो ऐसे, कि समस्त धर्म की यात्रा मन को खोने की यात्रा है, और समस्त संसार की यात्रा मन को शक्तिशाली करने की यात्रा है। संसार का अर्थ है, मन को शक्तिशाली किए जाना। धर्म का अर्थ है, मन को विसर्जित किए जाना। धर्म का अर्थ है, ऐसी चेतना को पा लेना, जहां मन न हो। और संसार का अर्थ है, ऐसे मन को पा लेना, जहां चेतना न हो; मन ही मन रह जाए, आत्मा बिल्कुल पता न चले।
ऐसा हो जाता है। कभी किसी नदी पर देखा हो, पत्तों की बाढ़ आ जाती है, काई
छा जाती है। सारी नदी ढंक जाती है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। नीचे के जल का कण भी दिखाई नहीं पड़ता। सारी नदी की छाती पर पत्ते फैल जाते हैं, नदी भीतर छिप जाती है।
ठीक ऐसे ही, मन इतना फैल जाता है--फैल सकता है--कि वह जो आत्मा है, वह बिल्कुल दिखाई पड़नी बंद हो जाए। नदी बिल्कुल मौजूद है। एक पत्ते का जरा-सा फासला है। पत्ते की मोटाई ही कितनी है? लेकिन फिर भी दिखाई नहीं पड़ती, ओझल हो जाती है।
संसार का अर्थ है, मन ही मन रह जाए और आत्मा का बिल्कुल पता न चले।
आपको अपनी आत्मा का पता चलता है?
ऐसे ही मन को समझाने के लिए मत कह लेना कि हां, पता चलता है। आत्मा का पता चलना आसान नहीं है। क्योंकि हमारी सारी चेष्टा तो मन को मजबूत करने की है। ये जो मन के पत्ते हैं, इनको ही तो हम शक्ति दिए चले जाते हैं। और फिर इन्हीं को हम फैलाए चले जाते हैं। फिर भी हम मानते हैं कि आत्मा है। वह मानना भी हमारे मन का एक विचार है। वह भी मन का एक पत्ता है।
हम मानते हैं कि आत्मा है। वह भी मन के ही कारण है। इसलिए वह मानना भी हमारा कभी पूरा नहीं हो पाता। जरा-सी असुविधा आती है और शक पैदा हो जाता है कि है भी, या नहीं है।
आज एक मित्र ने मुझे पत्र लिखा है। वे आई.सी.एस. रिटायर्ड आफिसर हैं; पढ़े-लिखे आदमी हैं, बड़े भक्त हैं। इधर कैंसर हो गया। इधर कैंसर हो गया, चिकित्सकों ने इनकार कर दिया, अब कोई इलाज नहीं है, अब मरना ही होगा। बस,

समय की प्रतीक्षा है। वे आज, कल, कभी भी मर सकते हैं। महीने दो महीने लग सकते हैं।
मुझे पत्र लिखा है कि मेरी सब भक्ति खो गई, मुझे अब किसी ईश्वर पर कोई भरोसा नहीं रहा।
कैंसर शरीर पर ही नहीं फैला अब, उसका मतलब हुआ, आत्मा तक फैल गया। यह कैंसर शरीर की बीमारी न रही अब, यह आत्मा तक फैल गई।
लिखा है कि पहले मुझे भरोसा था।
और मैं जानता हूं कि उनको भरोसा था। और आज से दो साल पहले जब मैंने उनसे कहा था कि यह भरोसा बहुत कीमती नहीं है, थोड़ी-सी चीज इसे तोड़ देगी, क्योंकि यह मन का है, तो वे मानने को राजी न हुए थे; जिद्द की थी; नाराज हुए थे; कि आप मुझ पर भरोसा क्यों नहीं करते जब मैं कहता हूं, मुझे भरोसा है? मैंने उनसे कहा था, मुझे कोई अड़चन नहीं है भरोसा कर लेने में। मेरा कोई हर्ज और कोई लाभ नहीं है। लेकिन फिर भी आपसे मैं कहता हूं कि यह भरोसा मन का है। यह अनुभव नहीं है, यह ख्याल है। और यह ख्याल मन इसलिए बनाता है कि मन के अपने भय हैं, जिन्हें वह छिपाना चाहता है। मन जानता है कि मौत होगी। मौत से डर लगता है; आत्मा को मान लेता है कि आत्मा अमर है। मन को डर लगता है कि मैं अकेला हूं जगत में, परमात्मा को मान लेता है कि किसी का सहारा है। अब वह सब उखड़ गया है; क्योंकि चिकित्सक कहते हैं, नहीं कुछ हो सकता। मंदिर की पूजा-प्रार्थना कुछ नहीं कर पाती; साधु-संतों का प्रसाद कुछ नहीं कर पाता। अब सब भरोसा टूट गया।
इसी के लिए भरोसा था, इसी के लिए टूट गया। जिस चीज के लिए था, वही चीज
अब नहीं हो रही। ईश्वर साथ नहीं दे रहा है, मौत करीब आ रही है। उस मौत के भय में ही ईश्वर को माना था। उस मौत के भय में ही आत्मा को माना था। अब मौत तो चली आ रही है और भय सामने खड़ा है। अब उस ईश्वर को कैसे मानें? उस आत्मा को कैसे मानें?
मन भय के कारण मान लेता है। या यह भी हो सकता है, मन प्रलोभन के कारण मान ले। क्योंकि भय और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मन इसलिए भी मान ले सकता है कि प्रलोभन है आत्मा को मानने में स्वर्ग का, मोक्ष का; ईश्वर को मानने में उसके दर्शन का, उसके आनंद का प्रलोभन है। मन इसलिए भी मान ले सकता है।
लेकिन लोभ हो या भय, मन का माना ऊपर के पत्तों पर रखा गया विश्वास है, नीचे की जीवंत धारा का कोई भी पता नहीं है। इस जीवंत धारा को हम जान ही तब पाएंगे, जब हम मन के द्वंद्व से हटें।
द्वंद्व कोई भी हो--चाहे लोभ का हो, अलोभ का हो; भय का हो, अभय का हो-- द्वंद्व कोई भी हो; सत्य का हो, असत्य का हो; जीवन का हो, मृत्यु का हो; इससे कोई संबंध नहीं है। द्वंद्व की भाषा, मन की भाषा है।
कृष्ण इस सूत्र में कहते हैं कि वे लोग, जो सकाम साधना करते हैं अर्थात सुख की मांग करते हैं, वे फिर-फिर वापस लौट आते हैं। क्योंकि सुख की साधना का अर्थ है, दुख को हम अंगीकार करने को राजी नहीं है; दुख को इनकार करते हैं, सुख को अंगीकार करते हैं।
द्वंद्व शुरू हो गया। कुछ है, जिसे हम कहते हैं, यह नहीं चाहिए; और कुछ है, जिसे हम कहते हैं, यह चाहिए। हमने विभाजन कर लिया। हमने जीवन को अविभाज्य स्वीकार नहीं किया। यह टोटल एक्सेप्टिबिलिटी नहीं है कि हम समग्र जीवन को स्वीकार करते हैं; जीवन जैसा है, हम राजी हैं। इसमें हम भेद करते हैं कि हम जीवन के इस पहलू से राजी हैं; सुख दे जीवन तो हम राजी हैं, दुख दे तो हम राजी नहीं है।
लेकिन कठिनाई यह है कि दुख जो है, वह सुख की छाया है। तो मुझसे कोई राजी है, वह कहता है, आओ मेरे घर, लेकिन अपनी छाया को अपने साथ मत लाना; निमंत्रण है, स्वागत है, लेकिन छाया को छोड़कर आना।
ज्यादा से ज्यादा मैं इतना ही कर सकता हूं कि छाया को पीछे छिपाकर आ जाऊं; छोड़कर तो कैसे आ सकता हूं! इस भांति आऊं कि छाया सामने न पड़े, पीछे छिपी रहे। और जब घर में मैं प्रवेश करूंगा, तो छाया भी प्रवेश कर जाएगी।
क्योंकि छाया को काटा नहीं जा सकता।

दुख सुख की छाया है। जो सुख को मांगता है, वह दुख को भी मांग रहा है। जानकर नहीं मांगता, क्योंकि कोई दुख को नहीं मांगता है। फिर भी उसे पता नहीं कि वह मांगे या न मांगे, सुख की मांग में ही दुख को भी निमंत्रण मिल जाता है। दुख पीछे आता है, सुख सामने दिखाई पड़ता है। जब भेंट होती है, तो थोड़ी देर में सुख बिखर जाता है और दुख की राख हाथ में आ जाती है।
बार-बार हमें यह अनुभव होता है। जहां-जहां सुख पर मुट्ठी बांधते हैं, आखिर में पाते हैं कि दुख हाथ में रह गया। और जहां-जहां सुख के सपने संजोते हैं, वहीं-वहीं पाते हैं कि सिवाय दुख के, दुखस्वप्नों के कुछ हाथ नहीं लगता है। जहां-जहां सुख का फूल खोजने जाते हैं, वहां-वहां दुख का कांटा चुभ जाता है। लेकिन फिर भी मन मांगे चला जाता है सुख को। और जितने जोर से मांगता है, उतने ही जोर से दुख आए चला जाता है।
इस मांग को हम बदल भी सकते हैं; बदल लेते हैं लोग। फिर बड़े मकान बनाने
की मांग छोड़ देते हैं। फिर बड़ी दुकान सजाने की मांग छोड़ देते हैं। फिर बड़ी पद-प्रतिष्ठा, धन की मांग छोड़ देते हैं। लेकिन मन नहीं बदलता। मन फिर स्वर्ग में, परलोक में इन्हीं सुखों की मांग शुरू कर देता है।
तो कृष्ण कहते हैं, और वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म के शरण हुए और भोगों की कामना वाले पुरुष बारंबार आने-जाने को प्राप्त होते हैं।
वेद भी सहायता न कर सकेंगे; कृष्ण भी सहायता न कर सकेंगे; कोई भी सहायता न कर सकेगा। अगर आपकी मांग ही गलत है, तो इस जगत में कोई भी सहायता न कर सकेगा। जगत अपने नियमों से घूमता है। अगर आपने गलत मांगा है, तो गलत आपको मिल जाएगा।
आप कहेंगे, हमने तो सुख मांगा है! लेकिन वह जो सुख की छाया है, वह किसको मिलेगी? वह भी आपको ही मिलेगी। आप पूरा देखें। मन तोड़ देता है, इसलिए सुख अलग मालूम पड़ता है, दुख अलग मालूम पड़ता है। थोड़ा समझें और मन के बिना जगत को देखें, तब आपको पता चलेगा कि वे दोनों अलग नहीं हैं। मन के कारण ही दो मालूम पड़ते हैं; वे एक ही हैं।
किस चीज में हमें सुख मिलता है? और जिस चीज में हमें सुख मिलता है, उसी में दुख मिल सकता है, फिर भी हमारी आंख नहीं खुलती। सच तो यह है, उसी में दुख मिलता है, जिसमें हमें सुख मिलता है। ऐसी किसी चीज में आपको कभी दुख मिला है, जिसमें आपको सुख पहले न मिला हो? जहां सुख मिलता है, वहीं दुख मिलता है। जिसमें सुख मिलता है, उसी में दुख मिलता है। जिससे अपेक्षा बांधते हैं, उसी से अपेक्षा टूटती है। जिससे आशा बांधते हैं, उसी से विषाद फलित होता है। एक ही बीज होता है, फिर भी हम देख नहीं पाते और जन्मों- जन्मों तक यह कथा ऐसी ही दोहरती चलती है। यह आना-जाना ऐसे ही होता रहता है। कहां, कठिनाई कहां होगी? वही कठिनाई है मन के देखने में। मन जब किसी चीज में सुख देखता है, तो दुख दूसरा हिस्सा होता है; वह पीछे छिपा होता है, मन को पूरा दिखाई नहीं पड़ता। जब वह सुख देखता है, तो उसे सुख दिखाई पड़ता है, वह कहता है, सुख है यहां। दुख दिखाई नहीं पड़ता। वह ओझल होता है। वह विपरीत है। वह ख्याल में ही नहीं आता। और जब दुख दिखाई पड़ता है, तब सुख ओझल हो गया होता है। तब सुख दिखाई नहीं पड़ता।
यह मन के देखने का जो अधूरा ढंग है, उसके कारण जो एक इकट्ठा सत्य है, वह हमें दो हिस्सों में टूटकर दिखाई पड़ता है। क्या हम मन के बिना जीवन के सत्य को पूरा देख सकते हैं?
जिन्होंने भी देखने की कोशिश की है, उन्हें मन को छोड़ देना पड़ा। मन को छोड़ने का अर्थ ही होता है, कामना को छोड़ देना। क्योंकि मन कामना का विस्तार है। मन वासना है, मन डिजायरिंग है--यह मिल जाए, यह मिल जाए, यह मिल जाए, यह मिल जाए! और कठिनाई तो यह है, अगर न मिले, तो दुख होता है; और मिल जाए, तो भी सुख नहीं होता। न मिले, तो दुख होता है खोने का; और मिल जाए, तो बोर्डम, ऊब हो जाती है।
ऐसा कोई सुख आपने जाना है, जो आपको मिल जाए, फिर उबाए न? जिससे ऊब न होने लगे?

गरीब आदमी का दुख होता है अभाव का, और अमीर आदमी का दुख होता है उपलब्धि का। गरीब आदमी पीड़ित होता है, जो नहीं मिला उससे; अमीर आदमी पीड़ित होता है उससे, जो मिल गया।
बुद्ध को पीड़ा क्या है? बुद्ध को पीड़ा यह है कि जो भी मिल गया है, उसमें कोई सुख नहीं है। घर छोड़कर भाग जाते हैं। उस युग की, उस इलाके की जितनी सुंदर युवतियां थीं, सभी बुद्ध को उपलब्ध थीं। उनसे घबड़ाकर भाग जाते हैं। महावीर को क्या तकलीफ है? सब मिल गया है, और सुख तो दिखाई पड़ता नहीं! तो सड़क पर भीख मांगने निकल जाते हैं। अमीर आदमी का दुख है कि वह जो चाहता था, वह मिल गया। गरीब आदमी का दुख है कि जो उसने चाहा, वह नहीं मिला है।
गरीब और अमीर के दुख अलग-अलग होते हैं, लेकिन दुख में कोई फर्क नहीं होता। एक ही चीज के दो छोर होते हैं। गरीब वहां खड़ा है, जहां कभी अमीर खड़ा था। और अमीर वहां खड़ा है, जहां गरीब अगर कोशिश करता रहा, तो कभी खड़ा हो जाएगा। लेकिन दोनों दुखी हैं।
लेकिन गरीब को दिखाई पड़ता है कि चीजें नहीं हैं, इसलिए दुखी हूं। उसे दूसरा पहलू दिखाई नहीं पड़ता। अमीर को दिखाई पड़ता है कि चीजें हैं, और दुखी हूं। उसे भी दूसरा पहलू नहीं दिखाई पड़ता। और हम दूसरे पहलू को बदलने के लिए आतुर रहते हैं। इसलिए गरीब अमीर बनने को राजी रहता है। और बहुत बार अमीर गरीब बनने को राजी हो गए हैं।
आखिर अमीर लड़कों ने, बुद्ध ने और महावीर ने, सब छोड़कर भिखारी के रूप में खड़े हो गए! यह दूसरे छोर पर जाने की इनकी तैयारी का कारण क्या है? एक ही कारण है कि जो हमारे पास होता है, उसी से दुख मिलने लगता है। जितनी हो दूरी, उतने ही सुख का आभास होता है। जितनी हो निकटता, उतना ही दुख प्रकट होने लगता है। जो भी चीज पास आ जाए, वही दुख देने लगती है। जो भी चीज दूर हो, वही सुख देती मालूम पड़ती है। क्योंकि दूर है; दे तो नहीं सकती, सिर्फ आभास हो सकता है। अगर किसी व्यक्ति को, जो भी उसने चाहा है, सभी मिल जाए इसी वक्त, तो उससे ज्यादा दुखी आदमी खोजना संसार में मुश्किल होगा।
कल्पवृक्ष के बारे में हम सुनते हैं कि स्वर्ग में कल्पवृक्ष है। उसके नीचे आदमी बैठे, तो जो भी चाहे, उसे मिल जाए। शायद हम सोचते होंगे, उस वृक्ष के नीचे बैठकर लोग कैसे सुख को न उपलब्ध हो जाते होंगे! मैं आपसे एक राज की बात कहता हूं। कभी वह वृक्ष मिले, तो भूलकर उसके नीचे मत बैठना। अन्यथा आपसे बड़ा दुखी व्यक्ति फिर संसार में कोई भी नहीं होगा। क्योंकि सुख सिर्फ उसकी आशा में है, जो नहीं मिला है। और जब तक नहीं मिला है, तभी तक। और जब मिल जाता है, तभी दुख हो जाता है।
तो सुख का जो आभास है, वह वासना का आभास है। वासना जब तक अतृप्त है, तब
तक सुख का आभास है। वासना जब तृप्त होती है, तब सब बिखर जाता है। आदमी लेकिन चाहे चला जाएगा! यश को चाहेगा, अपयश को नहीं। सुख को चाहेगा, दुख को नहीं।
लेकिन जो यश को चाहेगा, उसे अपयश मिलेगा ही। वह उसकी छाया है। जो लाभ चाहेगा, वह हानि में पड़ेगा ही। वह उसकी छाया है। जो जीवन के प्रति मोहित होगा, मृत्यु उसे भयभीत करेगी ही। वह उसकी छाया है। अगर मृत्यु के भय से बचना है, तो जीवन के मोह से बचना पड़ेगा। और अगर दुख में गिरने से बचना है, तो सुख के आकर्षण को छोड़ देना पड़ेगा। सुख का आकर्षण जो छोड़ देता है, उसे फिर कोई दुखी नहीं कर सकता। और यश की जिसकी आकांक्षा न रही, उसका अपमान करना असंभव है।
मेरा अपमान मैं ही करवा सकता हूं, आप नहीं कर सकते हैं। अगर मैं मान की आकांक्षा करूं, तो अपमान करवा सकता हूं। अगर मैं यश चाहूं, तो अपयश मेरा किया जा सकता है। अगर मैं प्रशंसा चाहूं, तो मुझे गाली दी जा सकती है। लेकिन अगर मैं प्रशंसा ही न चाहूं, तो आपकी गाली बिल्कुल ही व्यर्थ हो जाती है। उसका कोई मूल्य ही नहीं रह जाता। क्योंकि जिसे मैं चाहता ही नहीं, उसको मिटाने के प्रयोजन से आप मिटा भी क्या पाएंगे? अगर मैं आदर चाहूं, तो निरादर के लिए मुझे तैयार होना चाहिए। और अगर निरादर की मेरी

तैयारी न हो, तो आदर का मुझे ख्याल छोड़ देना चाहिए। फिर कोई भी निरादर कर नहीं सकता। कोई उपाय नहीं है। मैं बाहर हो गया।
तो कृष्ण कहते हैं कि जो लोग सुख की कामना से धर्म की साधना में भी लगते हैं, वे अपने को कितना ही धोखा दे लें, वापस लौट आएंगे। कितने ही बड़े सुख को पा लें, लेकिन चुक जाएगा पुण्य। पाते ही चुक जाता है। कीमत वसूल हो गई। किया हुआ श्रम पूरा हो गया। फल मिल गया हाथ में; फिर स्वर्ग भी बासा हो जाता है।
सुना है मैंने कि स्वर्ग के देवी-देवता भी पृथ्वी के लिए तरसने लगते हैं। कथाएं हैं, पुराणों में कथाएं हैं कि स्वर्ग के देवता अप्सराओं से ऊब जाते हैं, बुरी तरह ऊब जाते हैं। पृथ्वी की स्त्रियों की कामना करने लगते हैं। पुरूरवा की कथा है कि स्वर्ग से आज्ञा मांगी उसने कि मुझे पृथ्वी पर जाने दें, ताकि मैं पृथ्वी की किसी स्त्री को प्रेम कर सकूं!
क्या हुआ होगा पुरूरवा को? यहां पृथ्वी पर तो अप्सराओं के लिए लोग दीवाने हैं। यहां भी कोशिश करते हैं स्त्रियों को अप्सराओं जैसी सजाने की! कोशिश असफल जाती है! लेकिन पुरूरवा को क्या हुआ? वह अप्सराओं को छोड़कर यहां पृथ्वी पर किसी स्त्री से प्रेम करने आना चाहता है! कोई स्त्री स्वर्ग में--कथाएं हैं--बूढ़ी नहीं होती! सोलह वर्ष पर ही उम्र ठहर जाती है! तो आदमी तो कितना चाहता है, कितनी कविताएं लिखता है, और स्त्रियां तो कितनी कोशिश करती हैं! सोलह साल के बाद उनकी उम्र बढ़ती ही नहीं! बहुत कोशिश करती हैं! फिर भी, यहां तो सब बढ़ ही जाती है। वहां तो बढ़ती ही नहीं! पुरूरवा क्यों ऊब गया होगा?
यह सोलह साल पर अगर सबकी उम्र ठहर जाए, तो भी उबाने वाली हो जाएगी; यह
भी घबड़ाने वाला हो जाएगा। और जो फूल कुम्हलाता ही न हो, वह प्लास्टिक का मालूम पड़ने लगेगा। जो फूल कुम्हलाता ही न हो, वह प्लास्टिक का मालूम पड़ने लगेगा। तो अप्सराएं बिल्कुल प्लास्टिक की मालूम पड़ी होंगी, कागजी मालूम पड़ी होंगी। न कुम्हलाती हैं; न पसीना आता है; न उम्र ढलती है; न कभी आंख से आंसू बहते हैं; होंठों की मुस्कुराहट है कि ऐसी बनी रहती है, जैसी कि नेताओं के मुंह पर चिपकी रहती है! वह चिपकी ही रहती है। वह कभी हटती ही नहीं। अप्सराएं सोती भी हैं, तो भी होंठ मुस्कुराते रहते हैं। यह मुस्कुराहट भी घबड़ाने वाली हो जाएगी, बेस्वाद हो जाएगी।
पुरूरवा घबड़ा गया। उसने कहा कि मुझे आज्ञा दो, मैं पृथ्वी पर जाऊं, किसी स्त्री को प्रेम करूं, जो बूढ़ी भी होती हो, जो रोती भी हो; जिसके शरीर पर पसीना भी आ जाता हो; जिसकी जिंदगी में सब उतार-चढ़ाव होते हों। ताकि मुझे कुछ असलियत का अनुभव हो; यहां तो सब कागजी हो गया है।
स्वर्ग पाकर भी वासना तो क्षीण नहीं होगी, वासना नए आयाम पकड़ लेगी, नई दुनियाओं में खोज करने लगेगी, नई जगह तलाश करने लगेगी। और फिर जो स्वर्ग पा लिया है, जो सुख पा लिया है... ।
स्वर्ग का अर्थ है मनोवैज्ञानिक कि जो भी सुख पा लिया है, वह पाते ही क्षीण होना शुरू हो जाता है--पाते ही। जिस शिखर को भी हम पा लेते हैं, पाते से ही उतार शुरू हो जाता है, उतरना शुरू हो जाता है।
कृष्ण कहते हैं, लौट आएगा वापस वह व्यक्ति, जिसने सकाम साधना की है। परमात्मा को भी जिसने वासना के माध्यम से चाहा और मांगा है, उसे सुख तो मिल जाएगा, लेकिन वह लौट आएगा।
और ध्यान रखें, सुख को जानकर जब कोई लौटता है, तो महादुख में पड़ जाता है। कभी आपने देखा है, रास्ते से गुजर रहे हैं; अंधेरी रात, सन्नाटा है, अंधेरा है रास्ते पर। फिर एक मोटरगाड़ी पास से गुजर जाती है। तेज प्रकाश आपकी आंख में पड़ता है। मोटर गुजर गई, पीछे आप और महाअंधकार अनुभव करते हैं, जितना कि इस गाड़ी के गुजरने के पहले नहीं था। अंधेरा तो वही है, पर आपकी आंखों की कठिनाई हो गई; आंखों ने प्रकाश जान लिया; अब अंधेरा और भी घना मालूम पड़ेगा।
तो जो भी व्यक्ति स्वर्ग में हो आता है, सुख को जान लेता है, गिरते ही महानर्क की गर्त को अनुभव करता है। सुख को जानना महंगा सौदा है, गिरना तो पड़ेगा। और जब चित्त गिरता है वापस, तो सभी कुछ दुख हो जाता है। सभी कुछ दुख

हो जाता है। चित्त का अनुभव अब सुख के लिए और भारी मांग से भर जाता है। और सभी चीजें उदास कर जाती हैं, और सभी चीजें दुख दे जाती हैं।
कृष्ण कहते हैं, ऐसे व्यक्ति का आना-जाना जारी रहता है। वह परिभ्रमण में भटकता रहता है। वह एक वर्तुल में पड़ जाता है। जैसे बैलगाड़ी के चाक में एक आरा ऊपर आता है, फिर नीचे जाता है, फिर ऊपर आता है, फिर नीचे जाता है। संसार हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण शब्द रहा है। संसार का मतलब होता है, चाक, दि व्हील। संसार का मतलब होता है, चक्के की तरह जो घूमता रहता है। जो अभी ऊपर है, वह थोड़ी देर में नीचे आ जाता है; जो अभी नीचे है, वह थोड़ी देर में ऊपर आ जाता है। और यह चाक घूमता चला जाता है। और जो नीचे है, वह ऊपर आने की आशा करता रहता है। और ऊपर आ भी नहीं पाता है कि नीचे जाना शुरू हो जाता है; क्योंकि चाक घूमता रहता है। जो ऊपर है, वह ऊपर बने रहने की कितनी ही कोशिश करे, बना नहीं रह पाता; नीचे उतरना पड़ता है।
कृष्ण कहते हैं, कामना से अगर स्वर्ग भी मिल जाए, तो भी लौट आना पड़ता है। कामना की कोई भी उपलब्धि वास्तविक नहीं है। कामना की कोई भी उपलब्धि यथार्थ नहीं है। कामना की कोई भी उपलब्धि स्वप्न से ज्यादा नहीं है। स्वप्न टूटेगा ही। कितना ही लंबा कोई स्वप्न देखे, स्वप्न टूटेगा ही। क्या कोई उपाय है कि व्यक्ति इस स्वप्न और इस चाक के परिभ्रमण से बाहर
हो जाए?
तो कृष्ण कहते हैं, जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरंतर चिंतन करते हुए निष्काम भाव से उपासते हैं, उन नित्य एकीभाव से मुझ में स्थित पुरुषों का योग-क्षेम मैं स्वयं सम्हाल लेता हूं।
इसमें तीन बातें समझने जैसी हैं।
एक, निष्काम भाव से जो मुझे उपासते हैं। कठिन है बहुत। यही उपासना और वासना का भेद है। हमारी उपासना भी वासना ही है। हम परमात्मा के पास भी जाते हैं, तो परमात्मा के लिए नहीं, कारण कुछ और ही होता है। कोई बीमार है, इसलिए मंदिर में जाता है। कोई बेकार है, इसलिए मंदिर में जाता है। कोई निर्धन है, इसलिए मंदिर में जाता है। कोई निस्संतान है, इसलिए मंदिर में जाता है।
जो किसी भी कारण से मंदिर में जाता है, वह मंदिर में पहुंच ही नहीं पाता है। शरीर भीतर प्रवेश कर जाएगा, मूर्ति सामने आ जाएगी, लेकिन उपासना संभव नहीं है। क्योंकि जहां वासना है, वहां उपासना संभव ही नहीं है। उपासना का अर्थ होता है, परमात्मा के पास होना। और जब मैं धन मांगने
के लिए उसके पास जाता हूं, तो मैं धन के पास होता हूं; उसके पास कैसे होऊंगा? मेरी मांग ही मेरी निकटता है। जो मैं चाहता हूं, वही मेरे निकट है; और जिससे मैं चाहता हूं, वह तो केवल साधन है। अगर परमात्मा पूरा कर दे, तो ठीक है; अगर पूरा न करे, तो फिर मैं वहां नहीं जाऊंगा। कोई और पूरा कर दे, तो उसके पास जाऊंगा। जहां मेरी वासना पूरी होगी, वहां मैं जाऊंगा। परमात्मा कर सकता है, तो वहां भी तलाश कर लेता हूं! लेकिन परमात्मा मेरी इच्छा का हिस्सा नहीं है। मेरी इच्छा कोई और है।
रामकृष्ण ने विवेकानंद को कहा था। कठिनाई में थे; पिता चल बसे थे; बहुत कर्ज छोड़ गए थे। घर में भूख के सिवाय और कुछ भी नहीं था। विवेकानंद सड़कों पर घूमकर भूखे-प्यासे वापस लौट आते थे। मां दुखी न हो, तो उससे कहते थे, आज मित्र के घर निमंत्रण है। वहां से हंसते हुए, पेट पर हाथ फेरते हुए, झूठी डकार लेते हुए घर में प्रवेश करते थे।
रामकृष्ण को पता चला, तो रामकृष्ण ने कहा कि तू पागल है। तू जाकर मंदिर में मां को क्यों नहीं कह देता है? अपनी तकलीफ कह दे।
रामकृष्ण ने कहा, तो विवेकानंद टाल भी न सके। दरवाजे पर रामकृष्ण बैठे हैं दक्षिणेश्वर के, और विवेकानंद को धक्का देकर भीतर भेजा है कि तू जा, मां से कह; सभी कुछ ठीक हो जाएगा। उस पर छोड़ दे, वह योग-क्षेम सम्हाल लेगी।
विवेकानंद भीतर गए। घंटा बीत गया। रामकृष्ण झांककर देखते हैं, हाथ जोड़े खड़े हैं; आंख से आंसू बह रहे हैं! फिर रामकृष्ण प्रतीक्षा करते हैं।

और घंटा बीत गया! फिर आवाज देते हैं। विवेकानंद बाहर आते हैं। आनंदित हैं।
आंसू फूल की तरह मुस्कुरा रहे हैं। चित्त आनंद से भरा है। नाचते हुए बाहर आते हैं।
रामकृष्ण कहते हैं, कहा था मैंने पहले ही; तू क्यों नहीं कह देता, वे
सब सम्हाल लेंगी।
विवेकानंद ने कहा, कौन-सी बात सम्हाल लेंगी?
रामकृष्ण ने कहा कि मैंने तुझे कहा था, उनसे कह दे कि घर में कुछ भी नहीं है।
विवेकानंद ने कहा, वह तो मैं भूल ही गया, वह तो मुझे याद ही न रहा। इतने पास था उनका होना कि दोनों के बीच में और किसी तीसरी चीज के होने की जगह भी नहीं थी।
वापस रामकृष्ण ने कहा, पागल! फिर से जा। ऐसे हल नहीं होगा। मां भी नहीं सुनती है, अगर रोने न लगे बच्चा। जा और कह!
विवेकानंद को फिर भेजा है; वे फिर वापस आ गए हैं आनंद से भरे हुए; लेकिन फिर भूल गए हैं।
रामकृष्ण ने कहा, इसमें भूलने की बात क्या है?
विवेकानंद ने कहा कि भूलने का सवाल ही नहीं है। इतने पास हो जाता हूं
कि दूसरी कोई चीज बीच में आए, इसके लिए जगह, स्पेस, स्थान ही नहीं बचता है। रामकृष्ण ने कहा, इसीलिए तुझे बार-बार भेजा; जानना चाहता था कि अभी वासना बनी है या उपासना भी बन सकती है!
वासना और उपासना का यह फर्क है। वासना सकाम होगी; कुछ मांगने के लिए होगी। तो जो हम मांगते हैं, वही श्रेष्ठ है; जिससे हम मांगते हैं, वह श्रेष्ठ नहीं है। उससे मिलता है, इसलिए हम उसको श्रेष्ठ मान लेते हैं। लेकिन जो मांगते हैं, वही श्रेष्ठ है।
उपासना का तो अर्थ ही यह है कि एक नया जगत शुरू हुआ किसी के पास होने का, जिससे कुछ भी मांगना नहीं है, जिसके पास होना ही काफी आनंद है; जिससे और कोई मांग का सवाल नहीं है। उपासना का अर्थ है, परमात्मा के पास होना। और पास होने में ही सारी उपलब्धि मानना। पास होने में ही, उसकी निकटता ही सब कुछ है। उसके पास होने में ही सब मिल गया। सब स्वर्ग, सब मोक्ष। उसकी निकटता से ज्यादा और कोई चाह नहीं है।
निष्काम साधना का अर्थ है, परमात्मा को चाहना उसके ही लिए, किसी और कारण से नहीं
इस जगत में हम सभी को किसी और कारण से चाहते हैं। अगर मैं एक स्त्री को प्रेम करता हूं, तो इसलिए कि वह सुंदर है। लेकिन कल वह असुंदर हो सकती है।
फिर प्रेम कैसे टिकेगा? क्योंकि जिस सौंदर्य के लिए प्रेम था, वह खो गया। फिर धोखा ही टिकेगा। फिर मुझे खींच-तानकर चलाना पड़ेगा। फिर मैं कहता रहूंगा कि ठीक है, अब भी प्रेम है। लेकिन प्रेम तिरोहित हो गया होगा।
क्योंकि प्रेम का कोई कारण था।
कोई जवान है, इसलिए मेरा उससे प्रेम है। कल वह बूढ़ा हो जाएगा, फिर कैसे प्रेम टिकेगा? कोई बुद्धिमान है, इसलिए मेरा उससे प्रेम है; कारण है। कोई धनी है, कोई स्वस्थ है, कोई कलाकार है। कुछ है कारण।
इस जगत में हम जितने भी संबंध बनाते हैं, वे सभी सकारण हैं, सभी सकाम हैं। इसी वजह से, आदत के वश, हम परमात्मा से भी जो संबंध बनाते हैं, वे भी सकाम हैं। इसलिए सकाम भक्त परमात्मा के संबंध में जो बातें कहता है, जो गीत गाता है, उनको ठीक से अध्ययन करें, तो पता चलेगा कि वह क्या-क्या कह रहा है!
वह कहता है कि तुम्हारे नयन बहुत प्यारे हैं, इसलिए; कि तुम बड़े मनमोहन हो, इसलिए; कि तुमने सबको रचा, कि तुम सबके पालनहार हो, इसलिए; कि तुम जो पतित हैं, उनके सहारे हो, इसलिए; कि तुमने पापियों को उद्धारा, इसलिए। लेकिन सबके पीछे देअरफोर, इसलिए है।
लेकिन अगर वह पापियों का उद्धारक नहीं, अगर उसकी आंखें बहुत सुंदर नहीं, बड़ी कुरूप हैं, मनमोहन नहीं, फिर क्या होगा?

हम जो इस जगत में संबंध बनाते हैं, उन्हीं के आधार पर हम परमात्मा से
भी संबंध बनाने की कोशिश करते हैं, यही सकाम धारणा है।
कृष्ण कह रहे हैं, जो निष्काम भाव से मुझे उपासेगा!
जो किसी कारण से नहीं, अकारण। जो कहेगा, कोई कारण नहीं है, कोई वजह नहीं है, बेवजह, बिना कारण, तुम्हारे पास होना बस काफी है। तुम कैसे हो, इसकी कोई शर्त नहीं है। तुम क्या करोगे, इसकी कोई मांग नहीं है। तुमने कब क्या किया है, उसका कोई हिसाब नहीं है। तुम सुख ही दोगे, यह भी पक्का नहीं है। तुम दुख न दोगे, इसका भी पक्का नहीं है। यह सब कुछ पक्का नहीं है। लेकिन तुम्हारे पास होना, और तुम जैसे भी हो, तुम्हारे पास होना ही मेरा आनंद है। बस, तुम्हारे पास होने में ही मेरा सब समाप्त हो जाता है, मैं मंजिल पर पहुंच जाता हूं।
इसलिए निष्काम साधना बड़ी कठिन है; आदमी सोच भी नहीं पाता। कोई आदमी चाहता है, मन अशांत है, इसलिए। दुखी है, इसलिए। संताप है, चिंता है, इसलिए। अकारण? अकारण की भाषा ही हमारी समझ में नहीं आती!
लेकिन ध्यान रहे, इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, सभी अकारण घटित होता है; और जो भी क्षुद्र है, वह सकारण होता है। अगर इस जगत में भी कभी प्रेम घटित होता है, तो वह उपासना जैसा होता है; वासना जैसा नहीं होता। कभी हम एक व्यक्ति को इसलिए प्रेम नहीं करते कि कोई भी कारण है। बस, उसके पास होना काफी है। वह क्या करेगा, यह नहीं। उससे कोई मांग नहीं, कोई अपेक्षा नहीं। बस, वह है, इतना काफी है। उसकी उपस्थिति काफी है। उससे क्या मिलता है, इसका भी कोई हिसाब नहीं है। बिना कारण।
तो जगत में भी प्रेम का फूल खिलता है कभी बिना कारण। प्रार्थना भी कभी बिना कारण हो, तो फूल बन जाती है।
मंदिर में जाएं, सब कारण बाहर रख जाएं जहां जूते उतारते हैं। एक बार जूता भी भीतर चला जाए, तो मंदिर अपवित्र नहीं होगा। लेकिन कारण भीतर मत ले जाएं। कारण भीतर ले गए, तो सब अपवित्र हो जाता है। कारणों को वहीं उतार जाएं, जहां जूते उतार देते हैं। सब कारण वहां रख जाएं। सब वासनाएं वहां रख जाएं। मंदिर में तो सिर्फ होने के आनंद के लिए जाएं। थोड़ी देर उसके पास होंगे। कुछ मत करें वहां। कुछ करना जरूरी नहीं है। बस, चुपचाप वहां बैठ जाएं। सिर्फ उसकी मौजूदगी अनुभव करें। उसमें भी अनुभव क्या करना है! शांत बैठें, तो अनुभव होने लगेगी। वह वहां है ही, सभी जगह है।
एक बार मंदिर में होने लगे, तो कोई कारण नहीं है कि मस्जिद में क्यों न हो! एक बार मस्जिद में होने लगे, तो कोई कारण नहीं है कि चर्च में क्यों न हो! और एक बार कहीं भी होने लगे, तो कोई भी कारण नहीं है कि और कहीं क्यों न हो! कहीं भी होगा। कहीं भी शांत बैठ जाएं, वह मौजूद है। चुप हो जाएं, सिर्फ उसकी मौजूदगी को अनुभव करें, तो उपासना है।
और मांग कोई भी न हो। रत्तीभर भी नहीं। रत्तीभर भी नहीं। अगर वह देने
को भी राजी हो जाए, अगर वह कहे भी कि मांग लो, तो भी खोजने से मांग का भीतर पता न चले। कहना पड़े उससे कि असमर्थ हूं, कोई मांग नहीं है। ऐसी स्थिति में होगी निष्काम भाव से उपासना।
और जो निष्काम भाव से उपासना करता है, कृष्ण कहते हैं, उसका योग-क्षेम, दोनों ही मैं सम्हाल लेता हूं।
योग और क्षेम शब्द को समझ लेना चाहिए।
योग से अर्थ है, वह परम प्रतीति, अंतिम प्रतीति प्रभु-मिलन की, पूर्ण
के साथ एक होने की। योग से अर्थ है, व्यक्ति के मिटने की घटना परमात्म में; वह मैं सम्हाल लेता हूं। और क्षेम से अर्थ है, जब तक वह घटना न घट जाए, तो जो भी जरूरी है, वह भी मैं सम्हाल लेता हूं। क्षेम से अर्थ है, योग जब तक न घटे, तब तक जो भी जरूरी हो! अगर शरीर की जरूरत हो, तो शरीर को सम्हाल लूंगा। अगर भोजन की जरूरत है, तो भोजन को सम्हाल लूंगा। अगर श्वास की जरूरत है, तो श्वास को सम्हाल लूंगा। जब तक वह परम घटना नहीं घटती है, तब तक उसके पहले जो-जो आवश्यक है, वह भी मैं सम्हाल लूंगा। उसका नाम है क्षेम। और जब क्षेम के बाद वह परम घटना घट जाएगी, आखिरी, वह भी मैं सम्हाल लूंगा।

कृष्ण यह कहते हैं कि एक बार तू अपनी मांग छोड़, तो मैं सब सम्हालने को तैयार हूं। और जब तक तू मांग किए जाता है, तब तक मैं कुछ भी नहीं सम्हाल सकता हूं। न सम्हालने का कारण है। क्योंकि जब तक तू मांग किए जाता है, तब तक तू अपने को मुझसे ज्यादा समझदार समझे चला जाता है।
मांग का मतलब ही यह होता है। एक आदमी जाता है मंदिर में और भगवान से कहता है कि यह क्या किया? यह कैंसर मुझे हो गया! यह कैसा न्याय है?
वह यह कह रहा है कि तुमसे ज्यादा अकल तो हममें है! हम समझते हैं कि यह न्याय नहीं है। और क्या कर रहे हो बैठे वहां?
जिन मित्र का मैंने उल्लेख किया, उन्होंने मुझे पत्र में लिखा है, क्या ईश्वर न्याय-युक्त है? अगर न्याय-युक्त है, तो मुझे कैंसर क्यों हुआ? लिखा है कि मैंने जिंदगी में कोई रिश्वत नहीं ली, कोई बुरा काम नहीं किया, किसी को सताया नहीं, फिर यह फल मुझे मिला! तो ईश्वर न्याय-युक्त है, इसे सिद्ध करके बताएं।
निश्चित ही अन्याय हो गया। निश्चित अन्याय हो गया, क्योंकि कैंसर आ गया! इसका मतलब यह हुआ कि यह आदमी कहता है कि मैंने कोई बुरा नहीं किया, इसका इसे भरोसा है! इस पर इसे शक नहीं आता, कि शायद कोई बुरा किया हो! इस पर इसे कोई शक नहीं आता। इस पर भी इसे कोई शक नहीं आता कि इसे कैंसर नहीं होना चाहिए। इस पर भी कोई शक नहीं आता। और इस पर भी इसे कोई शक नहीं आता कि कैंसर के होने में अन्याय है ही! या कैंसर कोई ऐसी बुराई है, जो होनी ही नहीं चाहिए! इस पर भी इसे कोई ख्याल नहीं आता। एक बात पक्की ख्याल आ जाती है कि ईश्वर अन्यायी है, न्याय-युक्त नहीं है। कोई जस्टिस नहीं है। अगर आज यह ईश्वर की प्रार्थना करे और इसका कैंसर ठीक हो जाए, तो फिर यह ईश्वर को मानेगा। अगर इसका कैंसर ठीक न हो, तो फिर यह नहीं मानेगा।
यह सशर्त, सकाम भावना है। भक्त, सच में निष्काम भक्त परमात्मा से कहेगा कि जो भी तूने दिया, मैं आनंदित हूं; वह फूल गिराए तो, और कैंसर बरसा दे तो। जो भी तूने दिया, मैं आनंदित हूं। क्योंकि तू जो देगा, वह ठीक होगा ही। गलत तो वह तब होता है, जब मेरी मांग के विपरीत पड़ता है। जब मेरी कोई मांग नहीं, तो गलत होने का कोई उपाय नहीं। अन्याय तो तब मालूम पड़ता है, जब मैं सोचता था कुछ और मिलेगा, और मिलता कुछ और है। जब मैं देखता हूं कि जो भी मिलता है, वही न्याय है, तब तो कोई सवाल नहीं है।
कृष्ण कहते हैं कि जो मुझ पर सब छोड़ देता है, उसे मैं सम्हाल लेता हूं।
और जो मुझ पर छोड़ता नहीं, खुद ही सम्हालता है, उसे खुद ही सम्हालना पड़ता है।
हम सब खुद सम्हाल-सम्हालकर बोझ से दबे जाते हैं। हम उन देहाती यात्रियों की तरह हैं, जो पहली-पहली दफा ट्रेन में सवार हुए थे, तो अपनी पोटलियां अपने सिर पर रखकर बैठ गए थे! क्योंकि उन्होंने सोचा, टिकट तो हमने सिर्फ अपने बैठने की ही चुकाई है! और फिर उन्होंने यह भी सोचा कि इतना वजन गाड़ी पर पड़े, गाड़ी चल सके, न चल सके! वैसे भले लोग थे। उन्होंने सिर पर अपनी पोटलियां रख लीं और बैठ गए।
हम भी अपनी पोटलियां अपने सिर पर रखे हैं। हम सोचते हैं, जीवन चले, न चले! अपना-अपना जीवन तो खींचना ही पड़ेगा। और अपना-अपना खींचने से भी जिनको बोझ काफी नहीं मालूम पड़ता, वे दूसरों का भी खींचते हैं! कई की उतने से भी तृप्ति नहीं होती। उन्हें एकाध राष्ट्र का जब तक बोझ न मिल जाए, उनकी खोपड़ी पर जब तक कोई चालीस-पचास करोड़ आदमियों का बोझ न हो, जब तक उन्हें ऐसा न लगे कि पचास करोड़ लोग उन्हीं के कारण चल रहे और जी रहे हैं, तब तक उनको चैन नहीं आता। इतनी बेचैनी न मिले, तो उन्हें कोई चैन नहीं है!
हम सबका मन होता है कि मैं चला रहा हूं सब! ऐसा व्यक्ति निष्काम भावना
को कैसे उपलब्ध हो सकता है? निष्काम भावना को तो वही उपलब्ध हो सकता है, जो जानता है कि वही चला रहा है, तो मैं फिर बीच-बीच में क्यों मांगें खड़ी करूं। फिर मैं बीच-बीच में क्यों कहूं कि ऐसा होना चाहिए और ऐसा नहीं होना चाहिए!
सुना है मैंने, एक मुसलमान बादशाह हुआ। गुलाम था उसका एक, बहुत प्रेम
था गुलाम से। पत्नी भी नहीं सो सकती थी उसके कमरे में, लेकिन गुलाम सोता

था। कोई भी साथ न जाए वहां, वहां भी गुलाम साथ होता था। कितनी ही गुफ्तगू की बात हो, बड़े दो सम्राटों से मिलना हो रहा हो, तो भी गुलाम मौजूद होता था। गहरी मैत्री थी। सम्राट कुछ भोजन भी करता था, तो पहला कौर गुलाम को देता था।
दोनों शिकार के लिए गए थे। रास्ते में खो गए। भूख लगी, बहुत परेशान थे। एक वृक्ष के पास रुके। एक ही फल था वृक्ष में, सम्राट ने हाथ बढ़ाकर तोड़ा। सदा के हिसाब के अनुसार उसने एक कली काटी और गुलाम को दी। उस गुलाम ने कली खाई और कहा कि आश्चर्य, ऐसा अमृत फल! एक कली और दे दें।
सम्राट ने दूसरी भी दे दी। गुलाम ने तीसरी भी मांगी। एक ही टुकड़ा सम्राट के पास बचा। सम्राट ने कहा कि अब बस! हद्द कर दी तूने! अगर इतना अमृत फल है, तो एक तो टुकड़ा मुझे खा लेने दे! गुलाम हाथ से छीनने लगा। उसने कहा कि नहीं मालिक, यह फल ऐसा अमृत है कि मुझे पूरा दे दें।
सम्राट ने कहा, यह ज्यादती है। यह सीमा के बाहर बात हुई जा रही है। तू तीन टुकड़े खा चुका है। दूसरा फल वृक्ष पर नहीं है। हम दोनों भूखे हैं। और मैंने तुझे तीन टुकड़े दे दिए। फल मैंने तोड़ा है। और तू आखिरी टुकड़ा भी नहीं छोड़ना चाहता।
गुलाम ने कहा कि नहीं, छोड़ने को राजी नहीं हूं।
लेकिन सम्राट न माना। उसने टुकड़ा अपने मुंह में रखा। जहर था बिल्कुल। उसने गुलाम से कहा, तू पागल तो नहीं है? इसे तू अमृत कहता है!
उस गुलाम ने कहा कि जिस हाथ से सदा मीठे फल खाने को मिले, उसके एक जरा-
से कड़वे फल की शिकायत भी करनी सारे जीवन के प्रेम पर पानी फेर देना है। और सवाल फल का नहीं है, सवाल तो उस हाथ का है, जिसने दिया है। वह हाथ इतना मीठा है। इसीलिए जिद्द कर रहा था कि वह टुकड़ा मुझे दे दें। आपको पता भी न चल पाए। क्योंकि पता भी चल गया, तो शिकायत हो गई। आपको पता भी न चल पाए। क्योंकि पता भी चल गया किसी कारण से, तो शिकायत हो गई। तो जिंदगीभर इतना प्रेम, उसमें यह छोटी-सी शिकायत, मेरे छोटे मन का सबूत है। यह फल बहुत मीठा था।
पर सम्राट ने कहा कि मुझे कड़वा लगता है।
तो उस गुलाम ने कहा कि मुझे आपके हाथ के संबंध में पता नहीं, आपके मुंह
के संबंध में मुझे कुछ पता नहीं, लेकिन आपने जिस हाथ से मुझे दिया है, उस हाथ में सभी कुछ मीठा हो जाता है।
निष्काम भावना का अर्थ है, परमात्मा जो भी दे रहा है, वह उसकी अनुकंपा है, हमारी कोई मांग नहीं है। और वह जो भी दे रहा है, उस सभी के लिए हम अनुगृहीत हैं। उसमें भेद नहीं है कि इस बात के लिए अनुग्रह है और इस बात के लिए शिकायत है। जिस आदमी के मन में शिकायत है, वह आस्तिक नहीं है।
आस्तिक की मेरी तरफ एक ही परिभाषा है, वह आदमी नहीं, जो कहता है, ईश्वर है। वह आदमी नहीं, जो कहता है कि ईश्वर है, इसके मैं प्रमाण दे सकता हूं। वह आदमी नहीं, जो ईश्वर है, ऐसी मान्यता रखकर जीता है। आस्तिक का एक ही अर्थ है, वह आदमी, जिसकी अस्तित्व के प्रति कोई शिकायत नहीं है। ईश्वर का नाम भी न ले, तो चलेगा। चर्चा ही न उठाए, तो भी चलेगा। ईश्वर की बात भी न करे, तो भी चलेगा। लेकिन अस्तित्व के प्रति, जीवन के प्रति उसकी कोई शिकायत नहीं है। यह सारा जीवन उसके लिए एक आनंद-उत्सव है। यह सारा जीवन उसके लिए एक अनुग्रह है, एक ग्रेटिट्यूड है। यह सारा जीवन एक अनुकंपा है, एक आभार है। उसके प्राण का एक-एक स्वर धन्यवाद से भरा है, जो भी है, उसके लिए। उसमें रत्तीभर फर्क की उसकी आकांक्षा नहीं है।
ऐसा व्यक्ति, कृष्ण कहते हैं, निष्काम भाव से उपासता है मुझे। उसके योग-क्षेम की मैं स्वयं ही चिंता कर लेता हूं। उसे अपने न तो योग की चिंता करनी है और न क्षेम की।
यहां एक बड़ी अदभुत बात है। और आमतौर से जब भी कोई इस सूत्र को पढ़ता है,
तो उसको कठिनाई क्षेम में मालूम पड़ती है, योग में नहीं! इस सूत्र पर, जितने व्याख्याकार हैं, उनको कठिनाई क्षेम में मालूम पड़ती है। वे कहते हैं, योग तो ठीक है कि परमात्मा सम्हाल लेगा, अंतिम मिलन को; लेकिन यह जो रोज दैनंदिन का जीवन है, यह जो रोटी कमानी है, यह जो कपड़ा बनाना है, यह जो मकान

बनाना है, यह जो बच्चे पालने हैं--यह सब--यह परमात्मा कैसे करेगा? हालत दूसरी होनी चाहिए। हालत तो यह होनी चाहिए कि ये छोटी-छोटी चीजें शायद परमात्मा कर भी लेगा। योग, साधना की अंतिम अवस्था, वह कैसे करेगा! लेकिन वह किसी को ख्याल नहीं उठता।
हम सबको डर इन्हीं सब छोटी चीजों का है, इसीलिए। उस बड़ी चीज पर तो हमारी कोई दृष्टि भी नहीं है।
मोहम्मद, सांझ जो भी उन्हें मिलता था, बांट देते थे। कोई भेंट कर जाता, कोई दे जाता, कोई चढ़ा जाता, वे सांझ सब बांटकर, रात फकीर होकर सो जाते थे।
मोहम्मद जैसा फकीर मुश्किल से होता है।
और एकबारगी सब छोड़ देना बहुत आसान है। महावीर ने एकबारगी सब छोड़ दिया;
यह बहुत आसान है। मोहम्मद ने एकबारगी सब नहीं छोड़ा; रोज-रोज छोड़ा। यह बहुत कठिन है।
सुबह लोग दे जाते, तो मोहम्मद ले लेते, और सांझ सब बांट देते। रात फकीर होकर सो जाते। आदेश था घर में कि एक चावल का टुकड़ा भी बचाया न जाए। क्योंकि जिसने आज सुबह दिया था, वह कल सुबह देगा। और नहीं देगा, तो उसकी मर्जी। नहीं देगा, तो इसीलिए कि देने की बजाय न देना हितकर होगा। सांझ सब बांट देना है। जिसने आज सुबह फिक्र की थी, कल सुबह फिक्र करेगा। नहीं करेगा, तो उसका अर्थ है कि वह चाहता है, आज हम भूखे रहें। उसका अर्थ है कि वह चाहता है, आज भोजन की बजाय भूख हितकर है।
ठीक चलता रहा। मोहम्मद की जिद्द थी, इसलिए कोई रोकता नहीं था। लेकिन फिर मोहम्मद बीमार पड़े और अंतिम रात आ गई। तो पत्नी को भय लगा! उसे लगा, और दिन तो सब ठीक था, लेकिन आज आधी रात में भी दवा की जरूरत पड़ सकती है। सुबह वह देगा, लेकिन आधी रात! पत्नी का मन, प्रेम के कारण ही, पांच दीनार, पांच रुपए उसने बचाकर रख लिए।
मोहम्मद बेचैन हैं। करवट बदलते हैं, नींद नहीं आती। रात बारह बज गए हैं। आखिर उन्होंने उठकर कहा कि मुझे लगता है कि मेरे जीवनभर का नियम आज टूट गया है। मुझे नींद नहीं आती! मैं तो सदा सो जाता था। आज मेरी हालत वैसी है, जैसी धनपतियों की होती है। करवट बदलता हूं, नींद नहीं आती। मैं सदा का गरीब, मुझे कभी कोई चिंता नहीं पकड़ी। रात मुझे कोई सवाल नहीं था। आज क्या हो रहा है? मुझे डर है कि कहीं कुछ बचा तो नहीं लिया गया!
पत्नी घबड़ा गई। उसने कहा कि क्षमा करें, भूल हो गई बड़ी! पांच रुपए मैंने बचा लिए, इस डर से कि बीमार हैं आप; पता नहीं, रात दवा-दारू की, चिकित्सक की, वैद्य की जरूरत पड़ जाए, तो मैं क्या करूंगी!
तो मोहम्मद ने कहा कि जीवनभर के अनुभव के बाद भी कि हर सुबह वह सम्हालने मौजूद रहा, तुझे बुद्धि न आई! जीवनभर के अनुभव के बाद! और जो हर सुबह मौजूद रहा, अगर जरूरत पड़ेगी तो आधी रात मौजूद नहीं होगा, ऐसे शक का क्या कारण था? कोई अनुभव है तेरा ऐसा? वह पांच रुपए बांट दे! अन्यथा मैं सो न सकूंगा। और यह मरते क्षण मेरे ऊपर इल्जाम रह जाए कि मोहम्मद, कुछ साथ था, तब मरे। जिंदगीभर की फकीरी को खराब किए देती है!
पत्नी बाहर गई। चकित हुई देखकर, एक भिखारी द्वार पर खड़ा है! मोहम्मद
ने कहा, देखती है! जब लेने वाला आधी रात को आ सकता है, तो देने वाला क्यों नहीं आ सकता? यह आधी रात, अंधेरा, कोई बस्ती में दिखाई नहीं पड़ता, पक्षी भी पर नहीं मारते, और दरवाजे पर आदमी भिक्षा-पात्र लिए खड़ा है! फिर भी तेरी आंख नहीं खुलती? दे आ!
वह उसको देकर आ गई, लौटकर आई। मोहम्मद ने, कहते हैं, चादर ओढ़ी; और उनकी अंतिम सांस निकल गई।
जो जानते हैं, वे कहते हैं कि मोहम्मद की सांस अटकी रही, उन पांच दीनार
की वजह से। वह अड़चन थी, वह बोझ था, वह पत्थर की तरह जमीन से उन्हें खींचे रहा। वह पत्थर जैसे ही हटा गर्दन से, उन्होंने पंख पसार दिए और किसी दूसरी यात्रा पर चले गए।
योग-क्षेम मैं ही सम्हाल लेता हूं, कृष्ण कहते हैं।
उतने भाव से, फिर जो भी हो, वही क्षेम है, ध्यान रखना आप! इसका यह मतलब नहीं है कि वैसे व्यक्ति को कभी मुसीबत न आएगी। इसका यह मतलब भी नहीं है कि

उसे रोज सुबह चेक उसके हाथ में आ जाएगा! ऐसा कोई मतलब नहीं है। अगर इसे ठीक से समझेंगे, तो इसका मतलब यह है कि सुबह जो भी हाथ में आ जाएगा, वही उसका क्षेम है। जो भी उसे आ जाएगा हाथ में--भूख, तकलीफ, सुख, दुख--जो भी, वही परमात्मा के द्वारा दिया गया क्षेम है। वह उसे ही अपना क्षेम मानकर आगे चल पड़ेगा।
और योग और भी कठिन बात है। कृष्ण कहते हैं, वह भी मैं सम्हाल लेता हूं। उसका मतलब? ऐसे उपासक को न साधना की जरूरत है, न साधन की जरूरत है; न तप
की जरूरत है, न यज्ञ की जरूरत है; न किसी विधि की जरूरत है, न किसी व्यवस्था की जरूरत है। ऐसे व्यक्ति को परमात्मा से मिलने के लिए कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। अगर निष्काम उपासना उसका भाव है, तो मैं उसे मिल ही जाता हूं। वह मिलने का काम मैं सम्हाल लेता हूं।
ऐसी बहुत कथाएं हैं, बड़ी मीठी, और मनुष्य के अंतरतम के बड़े गहरे रहस्यों को लाने वाली, जब परमात्मा उपासक को खोजता हुआ उसके पास आया है। ये प्रतीक कथाएं हैं; और इनको समझने में भूल हो जाती है। इन प्रतीक कथाओं का अर्थ यह होता है कि वे एक इंगित करती हैं एक तथ्य की ओर।
अगर उपासक निष्काम भाव में जीता हो, तो उसे परमात्मा को खोजने भी जाना नहीं पड़ता, परमात्मा ही उसे खोजता चला आता है। आ ही जाएगा। जैसे जब कोई गड्ढा होता है, तो वर्षा का पानी भागता हुआ गड्ढे में चला आता है। पहाड़ पर भी गिरता है, लेकिन पहाड़ वंचित रह जाते हैं। वे अपने से पहले से ही भरे हुए हैं। उनका अहंकार मजबूत है। गड्ढा खाली है, निरहंकार है, पानी भागता हुआ आकर गड्ढे में भर जाता है। ठीक ऐसे ही, जहां निष्काम भाव है उपासना का, परमात्मा भागता चला आता है, और हृदय को घेर लेता है।
लेकिन इतनी भी वासना की जरूरत नहीं है--इतनी भी--कि वह आए, कि वह मुझे मिले। यह आखिरी कठिन बात है, जो ख्याल में ले लेनी चाहिए। क्योंकि भक्त अगर यह भी कहे कि तू मुझे मिल, तो भी वासना है।
भक्त तो यह कहता है कि तू है ही चारों तरफ। बस, मैं निर्वासना हो जाऊं,
तो तू यहीं है। तू मुझे यहीं दिखाई पड़ जाएगा। मेरी आंख खुल जाए, तो तू यहीं है। सिर्फ मैं आंख बंद किए बैठा हूं, इसलिए तू दिखाई नहीं पड़ता है। भक्त यह नहीं कहता है कि तू आ। इतनी भी वासना नहीं है। इतना ही कि अपने को मिटा देता है। वासना के खोते ही मिट जाता है।
वासना ही हमारे अहंकार का आधार है। जब तक हम कुछ मांगते हैं, तभी तक मैं हूं। जब मैं कुछ भी नहीं मांगता, तो मेरे होने का कोई कारण नहीं रह जाता। मैं न होने के बराबर हो जाता हूं। एक खालीपन, एक शून्यता घटित हो जाती है। वही शून्यता उपासना है, वही शून्य परमात्मा की सन्निधि है।
यह जो व्यक्ति के भीतर वासना से छूटकर शून्य का निर्मित होना है, इस
पर ध्यान दें। इस पर ध्यान दें, तो कोई कारण नहीं है, कोई कारण नहीं है कि जो हमारे लिए बड़े-बड़े शब्द मालूम पड़ते हैं, खाली और व्यर्थ, वे सार्थक और जीवंत न हो जाएं।
परमात्मा एक खाली शब्द है हमारे लिए। इस शब्द में हमारे लिए कुछ भी मालूम नहीं पड़ता कि क्या है। अगर कोई कहता है दरवाजा, तो दरवाजे में कोई अर्थ है; कोई कहता है पानी, तो पानी में कोई अर्थ है; कोई कहता है वृक्ष, तो वृक्ष में कोई अर्थ है; जब मैं कहता हूं परमात्मा, तब कोई भी अर्थ नहीं है। वृक्ष कहते से वृक्ष की तस्वीर घूम जाती है। वृक्ष कहते से वृक्ष का एहसास हो जाता है। दरवाजा कहते से दरवाजे की प्रतीति हो जाती है। घोड़ा कहते से घोड़ा खड़ा हो जाता है। लेकिन परमात्मा कहते से कुछ भी तो निर्मित नहीं होता!
परमात्मा हमारा अनुभव ही नहीं है, इसलिए शब्द खाली है! घोड़ा हमारा अनुभव है, इसलिए शब्द आते से अनुभव भी सामने आ जाता है। परमात्मा हमारा अनुभव नहीं है, इसलिए परमात्मा शब्द खाली है। सुन लेते हैं; बार-बार सुनने से ऐसा वहम भी पैदा हो जाता है कि अर्थ हमें मालूम है।
अर्थ अनुभव में होता है, शब्दकोश में नहीं। शब्दकोश में लिखा हुआ है अर्थ, लेकिन अर्थ अनुभव में होता है। और जब तक अनुभव न हो, तब तक हम कितनी

ही बार सुनें परमात्मा, परमात्मा, परमात्मा, कुछ होगा नहीं। अर्थ कहां से प्रकट होगा?
इसलिए परमात्मा को छोड़ें, उपासना पर ध्यान दें। उपासना से अर्थ निकलेगा। उपासना असली चीज है। जैसे अंधे आदमी से हम कहें कि तू प्रकाश की फिक्र छोड़, तू आंख का इलाज करवा। प्रकाश की फिक्र ही छोड़ दे। जिस दिन आंख ठीक हो जाएगी, उस दिन प्रकाश प्रकट हो जाएगा। ऐसे मैं आपसे कहूं कि आप फिक्र छोड़ दें परमात्मा की, फिक्र कर लें उपासना की। उपासना आंख है। आंख जिस दिन खुल जाएगी, उस दिन परमात्मा प्रकट हो जाएगा। वह यहीं मौजूद है। उपासना का अर्थ क्या है? उपासना का अर्थ है, हम उसकी उपस्थिति को प्रतिपल स्मरण करते रहें, अनुभव करते रहें। कुछ भी घटित हो, वही हमें याद आए। कुछ भी घटित हो, पहली खबर हमें उसकी ही मिले। कुछ भी हो जाए चारों तरफ, नंबर दो पर दूसरी याद आए, पहली याद उसकी आए। रास्ते पर एक सुंदर चेहरा दिखाई पड़े, तो सुंदर चेहरा नंबर दो हो, पहले उसकी खबर आए। एक फूल खिलता हुआ दिखाई पड़े, फूल नंबर दो हो, पहले उसकी खबर आए। कोई गाली दे, गाली देने वाला बाद में दिखाई पड़े, पहले उसकी खबर आए।
आपकी जिंदगी बदलनी शुरू हो जाएगी, उसकी खबर को प्राथमिक बना लें। इसको ही मैं स्मरण कहता हूं। उसकी खबर को प्राथमिक बना लें। रास्ते पर पागल की तरह अगर राम-राम, राम-राम कहते हुए गुजरते रहें, तो कुछ भी न होगा।
बहुत लोग गुजर रहे हैं। राम-राम कहने का सवाल नहीं, स्मरण का है।
जो भी हो, पहले राम, फिर दूसरी बात। सारी जिंदगी बदल जाएगी। अगर किसी
ने गाली दी, और पहले राम का स्मरण आया, तो फिर गाली का उत्तर गाली से देना मुश्किल हो जाएगा। कैसे? राम बीच में आ गया, अब गाली देना असंभव हो जाएगी। मौत भी आ जाए, पहले राम का स्मरण आए। फिर मौत में भी दंश न रह जाएगा। कुछ भी हो, राम पहले खड़ा हो जाए।
इसको ही मैं उपासना कह रहा हूं। चौबीस घंटे--उठते, बैठते, सोते--राम का, प्रभु का, परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव होता रहे। धीरे-धीरे यह सघन हो जाता है। यह इतना सघन हो जाता है कि सब चीजें पिघलकर बह जाती हैं, यही सघनता रह जाती है। धीरे-धीरे सब चीजें ओझल हो जाती हैं, परमात्मा की चारों तरफ उपस्थिति हो जाती है।
फिर आप चलते हैं, तो परमात्मा आपके साथ चलता है। आप उठते हैं, तो परमात्मा आपके साथ उठता है। आप हिलते हैं, तो परमात्मा आपके साथ हिलता है। आप सोते हैं, तो उसमें सोते हैं। आप जागते हैं, तो उसमें जागते हैं। फिर चारों तरफ वही है। श्वास-श्वास में वही है। हृदय की धड़कन में वही है।
यह उपासना है। और मांग कुछ भी नहीं है। उससे चाहना कुछ भी नहीं है। और मजा यह है, जो उससे कुछ भी नहीं चाहता, उसे सब कुछ मिल जाता है। और जो उससे सब कुछ चाहता रहता है, उसे कुछ भी नहीं मिलता है।
वासना से भरा हुआ व्यक्ति दरिद्र ही मरता है; उपासना से भरा हुआ व्यक्ति सम्राट हो जाता है, इसी क्षण। वासना भिक्षा-पात्र है; मांगते रहो, मांगते रहो, वह कभी भरता नहीं। उपासना भिक्षा-पात्र को तोड़कर फेंक देना है। उपासना इस बात की खबर है कि वह हमारा ही है, उससे मांगना क्या है! वह मुझमें ही है, उससे मांगना क्या है! और जो भी उसने दिया है, वह सब कुछ है, अब और उसमें जोड़ना क्या है!
उपासना का अर्थ है, स्वयं के भीतर छिपी हुई परम संपदा का अनुभव। और वासना का अर्थ है, स्वयं के भीतर एक भिक्षा-पात्र की स्मृति कि मैं एक भिखारी का पात्र हूं, मांगता रहूं, मांगता रहूं!
स्वामी राम अमेरिका गए; वे अपने को बादशाह कहते थे। उन्होंने किताब लिखी है, बादशाह राम के छः हुक्मनामे--बादशाह राम की छः आज्ञाएं। अमेरिका में पहली दफा तो जिन लोगों ने उन्हें देखा, वे थोड़े हैरान हुए कि दिमाग कुछ ढीला मालूम पड़ता है! फकीर हैं, लंगोटी लगाए हुए हैं, और अपने को बादशाह कहते हैं! और राम तो बोलते नहीं थे बिना बादशाह के! वे तो कहते थे, राम बादशाह यहां गए। बादशाह राम वहां गए, बहुत लोग वहां मिले।
एक व्यक्ति ने पूछा कि आप अपने को बादशाह कहते हैं! क्या कारण? आपके पास कुछ दिखाई तो नहीं पड़ता। बादशाहत का कोई लक्षण नहीं है। भिखारी हैं।

राम ने कहा, कुछ दिन मेरे पास रहो, तो दिखाई पड़ेगा। क्योंकि बादशाहत बहुत गहरी चीज है और बाहर से दिखाई नहीं पड़ती।
वह आदमी कुछ दिन राम के पास रहा। धीरे-धीरे उसे अनुभव हुआ कि यह आदमी
है तो कुछ अदभुत! यह आदमी कभी किसी से कुछ मांगता नहीं! इस आदमी की कोई चाह नहीं दिखती! यह ऐसे जीता है, जैसे सारी दुनिया इसकी है! यह मांगे किससे? मांगे क्यों? यह ऐसे जीता है, जैसे सारी दुनिया इसकी है। यह सुबह सूरज की तरफ ऐसे देखता है, जैसे इसकी ही आज्ञा से सूरज निकला है। यह फूलों की तरफ ऐसे देखता है, जैसे इसकी ही आज्ञा से फूल खिल रहे हैं। यह लोगों की तरफ ऐसे देखता है, जैसे इसकी ही आज्ञा से वे श्वास ले रहे हैं।
उस आदमी ने सातवें दिन कहा कि मुझे लगता है! पहले तो मैं सोचता था कि आपका दिमाग कुछ खराब है। सात दिन रहकर मुझे ऐसा लगता है कि अगर ज्यादा मैं आपके साथ रहा, तो कहीं मेरा दिमाग खराब न हो जाए! आप बिल्कुल सच में ही बादशाह मालूम पड़ते हैं! और है आपके पास कुछ भी नहीं! इसका राज क्या है? व्हाट इ.ज दि सीक्रेट?
राम ने कहा, इसका एक ही राज है, हमने अपनी भिक्षा का पात्र तोड़ दिया, हमने मांगना बंद कर दिया। और जिस दिन से हमने मांगना बंद किया, यह सारी दुनिया हमारी हो गई। और मैं तुमसे कहता हूं कि भिक्षा-पात्र तोड़ने से मुझे पता चला कि ये चांद-तारे मैंने ही बनाए हैं। और जिसने पहली दफा इन चांद-तारों को अंगुली से इशारा किया था, वह मैं ही हूं।
लेकिन राम ने कहा, तुझे जो मैं दिखाई पड़ रहा हूं, उसकी मैं चर्चा नहीं
कर रहा हूं! मुझे जो भीतर दिखाई पड़ता है, जो मुझसे भी पार है, मैं उसकी ही बात कर रहा हूं। उसी ने चलाए सब चांद-तारे। वही है मालिक। अब मुझे भीतर के मालिक का पता चल गया, अब मांगना किससे है!
उपासना परमात्मा की इतनी सघन प्रतीति करा देती है! वासना धीरे-धीरे दीन बना देती है; दीन से दीनतर बना देती है। वासना में जीने वाला सिकंदर भी दीन ही मरता है। वासना में जीने वाला बड़े से बड़ा धनपति भी निर्धन ही मरता है। वासना आखिर में भिखारी को और बड़ा कर जाती है।
मांगें मत! यह प्रार्थना शब्द है हमारे पास। हमने इतना मांगा है प्रार्थना के साथ कि प्रार्थना का मतलब ही लगने लगा मांगना! हम प्रार्थना के साथ सदा मांगते हैं, इसलिए प्रार्थना का मतलब ही मालूम पड़ने लगा, कुछ मांगना। प्रार्थना करो, इसका मतलब ही होता है, मांगो।
प्रार्थना का मतलब मांगना जरा भी नहीं है। प्रार्थना का मतलब है, उस तान में एक हो जाना, उस तान के साथ डोलने लगना, उस तान के साथ नाचने लगना, जो कि चारों तरफ मौजूद है। प्रार्थना एक लीनता है। उपासना उसकी उपस्थिति को अनुभव करने का नाम है।
और बिना मांगे जो उसे अनुभव करने को तैयार है, कृष्ण कहते हैं, वह फिर लौटता नहीं। वह फिर चक्कर के बाहर हो जाता है। वह चाक से छलांग लगाकर बाहर निकल जाता है। फिर यह चाक घूमता रहे, वह नहीं घूमता।
कभी आपने देखा हो अगर, तोतों को पकड़ने वाले शिकारी जंगल में जाकर तोतों को जिस ढंग से पकड़ते हैं। तो जरूर देखना चाहिए, न देखा हो तो। रस्सी बांध देते हैं एक, दोहरी रस्सियों को ऐंठाकर, उसमें लकड़ियां बांध देते हैं। रस्सियों की ऐंठन में लकड़ियां अटका देते हैं। तोता लकड़ी पर बैठता है, उसके वजन से उलटा होकर नीचे लटक जाता है। जब बैठता है, तो लकड़ी ऊपर मालूम पड़ती है, दोनों तरफ रस्सी से बंधी। जब बैठ जाता है, तो वजन से नीचे लटक जाता है, लकड़ी उलटी हो जाती है। फिर घबड़ा जाता है और लकड़ी को जोर से पकड़ लेता है। अब उलटा लटका है, अब उसको डर लगता है कि अगर मैंने लकड़ी को छोड़ा तो गिरा। और पकड़ने वाला उसको आकर पकड़ लेता है।
लकड़ी उसको पकड़े नहीं होती, वही लकड़ी को पकड़े होता है। छोड़ दे, तो अभी
उड़ जाए। लेकिन अब उसे डर लगता है कि अगर मैंने छोड़ा, तो कौन सम्हालेगा! अगर मैंने छोड़ी लकड़ी, तो उलटा लटका हूं, जमीन पर गिरूंगा, सिर टूट जाएगा। वह लटका रहता है। घंटों लटका रहता है। फंसाने वाला अगर देर से आए, तो कोई चिंता नहीं। वह जब भी आएगा, वह लटका हुआ मिलेगा।

करीब-करीब वासना में हम ऐसे ही लटके होते हैं। और जिसे हम पकड़े होते हैं, हम सोचते हैं, अगर छोड़ा तो मर जाएंगे! कौन सम्हालेगा? वह कृष्ण कहते हैं, कहते होंगे! अर्जुन से कुछ नाता-रिश्ता रहा होगा। इसलिए कहा कि तेरा योग-क्षेम मैं सम्हाल लूंगा। इधर तो हमने छोड़ी अपनी लकड़ी, कि मरे! सिर के बल गिरेंगे, सब टूट-फूट जाएगा। कोई सम्हालने वाला नहीं मिलेगा। अपना पकड़े रहो जोर से!
प्रार्थना कभी-कभी करते हैं कि हे परमात्मा! लकड़ी को जरा बड़ी कर दे, ताकि ठीक से पकड़े रहें; कि मेरे हाथों को जरा मजबूत कर, कि लकड़ी छूट न जाए! ये हमारी प्रार्थनाएं हैं।
हमारी प्रार्थनाएं हमारे बंधन को और मजबूत करने वाली हैं। हमारी प्रार्थनाएं हमारे संसार को और गहरा करने वाली हैं।
आज इतना ही।
लेकिन उठें न। पांच मिनट संन्यासी कीर्तन करते हैं, उसमें सम्मिलित होकर जाएं। बीच में कोई उठे न! एक भी उठता है, तो बाकी लोगों को अड़चन होती है।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
दसवां प्रवचन

खोज की सम्यक दिशा

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। 23।।
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।। 24।।
यान्ति देवव्रता देवान पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।। 25।।
और हे अर्जुन, यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरे को ही पूजते हैं। किंतु उनका यह पूजना अविधिपूर्वक है, अर्थात अज्ञानपूर्वक है।
क्योंकि संपूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूं। परंतु वे मुझ अधियज्ञ-स्वरूप परमेश्वर को तत्व से नहीं जानते हैं, इसी से गिरते हैं, अर्थात पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।
कारण यह है कि देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं, और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं। इसलिए मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं होता।

मनुष्य की खोज चाहे हो कुछ भी, चाहे मांग हो कोई, चाह हो कोई, किसी भी दिशा में दौड़ता हो, कुछ भी पाना चाहता हो, लेकिन अंततः मनुष्य परमात्मा को ही पाना चाहता है। उसकी सब चाहों में परमात्मा की ही चाह छिपी होती है। उसकी सब वासनाओं में उस प्रभु की तरफ पहुंचने की ही आकांक्षा का बीज छिपा होता है। और जरूरी नहीं है कि यह उसे ज्ञात हो; इसका ज्ञान न भी हो। नहीं होता है। तो भी बीज परमात्मा की ही तलाश का है।
हम एक बीज को बोते हैं जमीन में, उस बीज को पता भी नहीं होगा कि वह किस लिए टूट रहा है और किस लिए अंकुरित हो रहा है। उसे यह भी पता नहीं होगा कि इस अंकुरण की प्रक्रिया का अंतिम रूप क्या होने को है। उसे यह भी पता नहीं है कि यह जो आकाश की तरफ उसकी दौड़ चल रही है, यह जो आकाश में शाखाओं को फैला देने का आयोजन चल रहा है, यह किस लिए है? वह किसे पाना चाहता है? उसे उन फूलों का तो कोई भी स्मरण न होगा, कोई भी स्वप्न भी नहीं होगा, जो फूल उसकी शाखाओं पर खिलेंगे। और उन बीजों की उसे कोई खबर नहीं हो सकती है, जो उसके ऊपर लगने वाले हैं। उस जीवन का भी उसे कोई अंदाज नहीं हो सकता, जो कि वृक्ष का जीवन होगा।
ठीक, आदमी भी बीज की तरह परमात्मा की तरफ बढ़ता है, अनजाने। उसे पता भी नहीं कि वह क्या खोज रहा है! क्यों खोज रहा है! उसकी सब खोजों में अंतर्निहित खोज क्या है! इसे हम थोड़ा आदमी की इच्छाओं को समझें, तो समझना आसान हो जाएगा।
एक आदमी है, जो धन चाहता है; धन के पीछे दौड़ रहा है। उससे अगर हम कहें
कि वह भी परमात्मा को खोज रहा है, तो वह भी मानने को राजी नहीं होगा, दूसरे तो राजी होंगे ही नहीं। एक आदमी पद की तलाश कर रहा है, प्रतिष्ठा की, यश की। अगर हम कहें कि वह भी प्रभु को खोज रहा है, तो कौन तैयार होगा इस असंगत बात को स्वीकार करने को? एक आदमी प्रेम को खोज रहा है, और हम कहें परमात्मा को खोज रहा है, तो कोई तालमेल नहीं मालूम पड़ता। लेकिन अगर थोड़ा गहरे उतरें, तो सीढ़ियां दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी,शृंखला साफ होने लगेगी।
एक आदमी धन खोजता है, किस लिए? और धन से क्या उसका प्रयोजन है?
धन खोजता है तीन कारणों से। पहला, सुरक्षा के लिए, फार सिक्योरिटी। कल
की कोई सुरक्षा नहीं है। अगर धन पास में है, तो कल की सुरक्षा हो जाएगी। अगर धन पास में है, तो कल के लिए निश्चिंत हो सकता है। अगर धन पास में है, तो कल की फिक्र छोड़ी जा सकती है।

इसका अर्थ हुआ कि धन खोज रहा है इसलिए कि एक ऐसा जीवन मिल जाए, जहां फिक्र न हो, चिंता न हो। एक ऐसा जीवन मिल जाए, जहां सुरक्षा हो, असुरक्षा न हो; जहां भय न हो; जहां मैं असहाय अनुभव न करूं अपने को। वह एक ऐसा जीवन खोज रहा है। लेकिन धन खोज रहा है इस जीवन के लिए। धन से यह जीवन नहीं मिलेगा, लेकिन आकांक्षा यही है।
एक आदमी जब धन खोज रहा है, तो वह भी ऐसा धन खोजता है--दूसरी बात--जो छीना न जा सके। इसलिए तो इतना इंतजाम करता है तिजोड़ियों का, बैंकों का, सेफ्टी का; सारा इंतजाम करता है कि छीना न जा सके। आकांक्षा यह है कि धन हो तो ऐसा, जो कोई छीन न सके। हालांकि जो भी धन हम इंतजाम करते हैं, वह छीना जा सकता है। छीना जाता है। अब तक आदमी कोई उपाय नहीं कर पाया कि ऐसा धन खोज ले, जो छीना न जा सके। सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं।
लेकिन आदमी की आकांक्षा को खोजें, तो वह जरूर ऐसा धन खोजना चाहता है,
जो फिर उसका ही हो; और फिर कभी भी ऐसा न हो कि पराया हो जाए। हर आदमी एक ऐसी संपदा खोजना चाहता है, जो सदा-सदा के लिए शाश्वत उसकी अपनी हो। परमात्मा के सिवाय ऐसी कोई संपदा हो नहीं सकती, जो छीनी न जा सके। सिर्फ वही है, जो छीना नहीं जा सकता।
आदमी जब धन खोजता है, तो--तीसरे नंबर पर--भीतर वह खालीपन अनुभव करता है, रिक्तता अनुभव करता है; उसे भर लेना चाहता है। पूरी जिंदगी दौड़कर भी, धन की राशि लग जाती है, भीतर का खालीपन नहीं भरता। लेकिन आदमी खोजता इसीलिए है कि भीतर भर जाए, एक आंतरिक फुलफिलमेंट हो; एक भीतर तृप्ति हो जाए, भरापन आ जाए; ऐसी कोई कमी न मालूम पड़े, कोई अभाव न मालूम पड़े; संतुष्ट हो जाए भीतर, तृप्ति आ जाए; क्षणभर को भी ऐसा न लगे कि मुझे कुछ और चाहिए। यह तीसरी बात है।
आदमी धन इसलिए खोजता है कि ऐसी अवस्था आ जाए कि कुछ उसे मांगने को न बचे, कुछ चाहने को न बचे; ऐसा न रहे उसे कि फलां चीज मेरे पास नहीं है; अभाव न खटके, खालीपन न खटके; सब मेरे पास है, ऐसी तृप्ति हो। लेकिन कितना ही धन मिल जाए, ऐसी तृप्ति होती नहीं। ऐसी तृप्ति तो केवल उसी को होती है, जिसे परमात्मा का धन मिल जाता है।
तो धन की भी खोज कितनी ही गलत हो, दिशा कितनी ही भ्रांत हो, आकांक्षा बिल्कुल सही है। वह जो भीतर बीज है, वह बिल्कुल सही है। मार्ग चाहे अंकुर का कितना ही विकृत हो जाए, लेकिन उसकी अनजानी खोज बिल्कुल प्रामाणिक है। एक आदमी पद चाहता है। पद चाहता है तीन कारणों से, किसी से हीन न मालूम पडूं, किसी से नीचा न मालूम पडूं। लेकिन कितना ही कोई पद खोजे, सदा कोई न कोई आगे मौजूद रहता है। अब तक ऐसा एक भी आदमी किसी पद पर नहीं पहुंच पाया, जहां जाकर वह कह सके, अब मेरे आगे कोई भी नहीं है। कुछ भी हो जाए, कितनी ही बड़ी सीढ़ी चढ़ जाए, जितनी बड़ी सीढ़ी चढ़ता है, पाता है कि आगे और सीढ़ियों पर लोग पहले से चढ़े हुए हैं।
और ऐसा सभी को अनुभव होता है। अनुभव होने के कई जटिल कारण हैं। एक तो जिंदगी इकहरी सीढ़ी नहीं है, अनेक सीढ़ियों का जोड़ है। अगर आप एक सीढ़ी पर चढ़ जाते हैं, तो अनेक बार उसी में चढ़ने की वजह से दूसरी सीढ़ी पर नीचे उतर जाते हैं। अगर दो सीढ़ियों पर चढ़ जाते हैं, तो चार पर नीचे उतरना पड़ता है। वह कीमत चुकानी पड़ती है।
एक आदमी अगर एक बड़े पद पर पहुंच जाता है, तो पद पर पहुंचने के लिए जो बेचैनी और परेशानी उठानी पड़ती है, उसमें स्वास्थ्य खो देता है। तब एक दिन देखता है कि सड़क पर एक फकीर जा रहा है, जिसके पास स्वास्थ्य की अपार संपदा है, तब मन ईर्ष्या से भर जाता है। एक सीढ़ी पर कोई चढ़ा हुआ है, जहां वह नीचे पड़ गया है।
एक आदमी पद की दौड़ में प्रतिभा को खो देता है। असल में पद की दौड़ अगर पूरी करनी हो, तो प्रतिभा की जरूरत भी नहीं है। प्रतिभा हो, तो खतरा है। उतनी दौड़ में जाना मुश्किल होगा। एक गहरी मूढ़ता चाहिए, तो पद की दा.ैड में आदमी अंधा होकर लग जाता है। वह योग्यता है। प्रतिभा खो देता है। इधर प्रतिभा खो जाती है, जिस दिन पद पर पहुंचता है, उस दिन पाता है कि चारों ओर प्रतिभा के दीए जल रहे हैं, और सीढ़ियों में वह पिछड़ गया है।

जिंदगी अनेक सीढ़ियां हैं। अगर कोई एक सीढ़ी पर चढ़ता है, दूसरों पर नीचे उतर जाता है। और किसी भी सीढ़ी पर कितना भी चढ़ जाए, फिर भी पाता है कि उससे भी ऊपर सीढ़ियों पर लोग चढ़े हुए हैं!
लेकिन आदमी की आकांक्षा सही है। आदमी चाहता है ऐसी अवस्था, जहां वह किसी से नीचा न रह जाए।
सिवाय परमात्मा को पाए और कोई उपाय नहीं है।
लेकिन एक मजे की बात है। आदमी चाहता है कि मैं किसी से नीचे न रह जाऊं, इसलिए दूसरों को नीचा करने में लग जाता है! पर उसे पता नहीं है कि जो वह कर रहा है, वही सारे लोग भी कर रहे हैं! मैं एक आदमी हूं; तीन अरब आदमी जमीन पर हैं। मैं भी इस कोशिश में लगा हूं कि किसी से नीचे न रह जाऊं। और इसके लिए दूसरों को नीचा करने में लगा हूं। तीन अरब आदमी, इसी कोशिश में वे भी लगे हैं! वे भी दूसरों को नीचा करने में लगे हैं, ताकि वे ऊपर हो जाएं। एक-एक आदमी तीन-तीन अरब आदमियों के खिलाफ लड़ रहा है! हारेगा नहीं, तो क्या होगा? तीन अरब आदमी मुझे नीचा करने में लगे हैं; मैं तीन अरब आदमियों को नीचा करने में लगा हूं! एक पागलों की भीड़ है, जिसमें कोई कहीं पहुंच नहीं सकता। लाओत्से ने कहा है कि मैंने तो शांति का सूत्र इसी में जाना कि उस जगह बैठ जाओ, जिससे नीची कोई जगह न हो, अन्यथा उठाए जाओगे। उस गड्ढे में गिर जाओ, जिससे नीचा कोई गड्ढा न हो, अन्यथा लतियाए जाओगे। लाओत्से ने कहा, मैंने तो शांति और संतुष्टि इसमें पाई, जब मैंने दूसरे को नीचा करना तो दूर, अपने को सबसे नीचा स्वीकार कर लिया। उस दिन के बाद मुझे कोई नीचा नहीं कर सका है।
जीसस ने कहा है, जो आदमी पंक्ति में सबसे अंतिम खड़े होने को राजी है, वही प्रथम हो जाएगा।
लेकिन हमारा क्या होगा, जो पंक्ति में प्रथम खड़े होने के लिए आतुर हैं! हम संघर्ष करेंगे, लड़ेंगे, परेशान होंगे और आखिर में पाएंगे, आगे नहीं पहुंच पाए हैं। संभवतः पंक्ति सीधी नहीं है, सर्कुलर है; गोल घेरे में है। इसीलिए तो कोई आदमी अनुभव नहीं कर पाता कि मैं आगे आ गया। कितना ही दौड़ता है, लेकिन क्यू के आगे नहीं पहुंच पाता। क्यू गोलाकार है, अन्यथा कोई न कोई पहुंच जाता। कोई सिकंदर, कोई नेपोलियन, कोई हिटलर, कोई स्टैलिन कहीं न कहीं पहुंच जाता, और एक दिन कह देता कि ठीक है, मैं क्यू के आखिरी हिस्से में आ गया, नंबर एक हो गया! लेकिन कहीं भी कोई पहुंच जाए, वह पाता है कि उसके आगे लोग मौजूद हैं।
इसका एक ही मतलब हो सकता है कि जिंदगी सीधी रेखा में नहीं चल रही है; वर्तुलाकार है, सर्कुलर है। इसलिए आप एक गोल घेरे में अगर दस-बारह लोग खड़े हैं, उनमें से कोई कितना ही दौड़े, और कितनी ही कोशिश करे, जिंदगी गंवा दे नंबर एक होने के लिए, कभी नंबर एक नहीं हो पाएगा। क्योंकि गोले में कोई नंबर एक होता ही नहीं। हमेशा कोई आगे होता है, कोई पीछे होता है। कहीं भी जाए; हमेशा कोई आगे होता है, कोई पीछे होता है।
लेकिन आकांक्षा ठीक है और आकांक्षा उचित खबर देती है। वह खबर यह है कि
जब तक कोई व्यक्ति अपने को परमात्मा के साथ एक न समझ ले, तब तक हीनता नहीं मिटती। और जब तक हीनता, इनफीरिआरिटी नहीं मिटती है, तब तक ईर्ष्या भी नहीं मिटती। और जब तक हीनता और ईर्ष्या नहीं मिटती है, तब तक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश भी नहीं मिटती। और इस सबका अंतिम परिणाम चिंता और संताप के सिवाय और कुछ भी नहीं होता है। लेकिन आदमी चाहता है परम पद। वह परमात्मा को चाहता है। इसका उसे बोध न हो, इसका उसे होश न हो, यह हो सकता है।
एक और तरफ से देखें।
हर आदमी मृत्यु से भयभीत है, कंपित है। हर आदमी डरा हुआ है। चाहे कितना ही सुरक्षित हो, मौत कहीं किनारे पर खड़ी हुई मालूम पड़ती है, और किसी भी क्षण गर्दन को दबा ले सकती है। हर व्यक्ति डरा हुआ है मृत्यु से।
छोटा-सा बच्चा पैदा होता है, वह भी डरता है, डरता हुआ पैदा होता है।
जोर की खटके की आवाज हो जाए, कंप जाता है। अंधेरा हो, भयभीत होने लगता है।

कोई पास न हो, अकेला हो, चीखने-चिल्लाने लगता है। पहले दिन से ही भय में जन्मा हुआ है।
पूरा जीवन एक भय से कंपता हुआ पत्ता है। हम उपाय करते हैं, हम कई तरह
के उपाय करते हैं, ताकि मृत्यु से बच सकें। आकांक्षा बिल्कुल ठीक है, लेकिन अब तक कोई मृत्यु से बच नहीं पाया, और बच भी नहीं पाएगा।
और अक्सर तो यह होता है, जो मृत्यु से बचने का जितना इंतजाम करते हैं, उतने ही जल्दी अपने ही इंतजाम में दबकर मर जाते हैं। ऐसी हालत हो जाती है, जैसे कोई आदमी मौत न आए, तो अपने चारों तरफ लोहे का एक बख्तर बनाकर पहन ले; लोहे के कपड़े पहन ले, कहीं से मौत न घुस जाए! तो अभी मर जाएगा। कल के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। हम सब अपनी जिंदगी को चारों तरफ से इतना सुरक्षित कर लेते हैं कि जिंदगी मर जाती है।
जिंदगी असुरक्षा में है। जिंदगी तो असुरक्षा में है, अनसर्टेंटी में, अनिश्चय में। हम सब निश्चित करके, सब व्यवस्था ठीक से बिठाकर, उसके भीतर मुर्दे की तरह बैठ जाते हैं। मौत से केवल मुर्दा बच सकता है; जो मर ही चुका है, वह भर बच सकता है। जो जिंदा है वह तो मरेगा ही।
इसलिए कितना ही हम उपाय करें, उपाय करने में मौत तो नहीं रुकती, जिंदगी गंवा बैठते हैं। उपाय में ही जिंदगी खो जाती है। मौत से बचने का उपाय करते-करते, करते-करते जिंदगी का समय चुक जाता है। घड़ी का कांटा घूम जाता है और मौत आ जाती है। और हम तब घबड़ाकर कहते हैं कि अभी तो हम सिर्फ मौत से बचने का इंतजाम कर रहे थे! यह समय तो हमने मौत से बचने में गंवा दिया! अभी हम जीए कहां थे?
जीना समाप्त हो जाता है जीने के इंतजाम में। जीने का मौका ही नहीं मिलता; अवसर नहीं मिलता; सुविधा नहीं मिल पाती। लेकिन आकांक्षा दुरुस्त है। मौत से बचने की आकांक्षा दुरुस्त है, लेकिन दिशा गलत है।
मौत से बचने का एक ही उपाय है कि हम उसे जान लें, जो अमृत है; हम उसे पहचान लें, जो मरता ही नहीं; हम उसके साथ अपनी एकता को खोज लें, जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। यह तो ठीक दिशा होगी। हम इंतजाम करते हैं मौत से बचने का, और उससे जुड़े रहते हैं, जो मरेगा ही! शरीर से जुड़े रहते हैं, जो कि मरेगा ही; मृत्यु जिसमें अंतर्निहित है, मृत्यु जिसका हिस्सा है। उसका हम इंतजाम करते हैं बचाने का! इंतजाम में समय व्यतीत हो जाता है और मौत आ जाती है। उसकी खोज नहीं कर पाते, जो कि कभी मरा ही नहीं है और कभी मरेगा ही नहीं। वह भी मौजूद है।
अगर यह आकांक्षा ठीक हो, तो अमृत की खोज बनेगी; अगर यह आकांक्षा गलत हो, तो मृत्यु से बचाव बनेगी। अगर धन की खोज ठीक हो, तो उस परम धन की खोज बन जाएगी, परम संपदा की। अगर गलत हो, तो हम धातु के ठीकरे इकट्ठे करने में जिंदगी व्यतीत कर देंगे। अगर पद की खोज सही हो, तो परमात्मा के सिवाय और कोई पद नहीं है। अगर गलत हो, तो हम आदमियों को नीचे-ऊंचे बिठालने में अपनी सारी शक्ति को व्यय कर देंगे।
यह मनुष्य की... ।
(बीच से उठकर किसी ने कुछ पूछा।)
लिखकर कुछ भी दे दें, इतनी दूर से सुनाई नहीं पड़ेगा। लिखकर दे दें, और लोगों को बाधा न डालें। लिखकर पहुंचा दें।
कृष्ण ने कहा है इस सूत्र में कि हे अर्जुन, यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरे को ही पूजते हैं। चाहे पूजा किसी की भी हो रही हो, अंततोगत्वा पूजा मेरी ही होती है, कृष्ण कहते हैं। पूजने वाले को भी पता न हो कि वह किसकी पूजा कर रहा है, लेकिन पूजा मेरी ही हो सकती है। कारण? पूजा करने वाले को भी जब पता नहीं है, तो कृष्ण किस अर्थ में कह रहे होंगे कि पूजा मेरी ही होती है?
वे इसी अर्थ में कह रहे हैं कि तुम्हारी वासनाएं कहीं भी दौड़ें और तुम्हारी पूजा किन्हीं चरणों में पड़े, और तुम श्रद्धा से कहीं भी सिर रखो, तुम मेरी ही तलाश में हो। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि कहां तुम्हारी आंख जा रही है। अंततः तुम्हारी आंख मुझे ही खोज रही है। तुम कहीं भी खोजो, तुम्हारी आंख की आत्यंतिक शरण मैं ही हूं।

किंतु उनका वह पूजना अविधिपूर्वक है, अज्ञानपूर्वक है।
पूजते वे मुझे ही हैं, फिर भी ज्ञानपूर्वक नहीं। क्योंकि उन्हें स्वयं ही पता नहीं है कि वे क्या खोज रहे हैं। उन्हें स्वयं ही पता नहीं है।
सकाम पूजा का अर्थ है, धन के लिए, पद के लिए, जीवन के लिए की गई पूजा; सुख के लिए की गई पूजा। मंदिर में खड़ा कोई मांग रहा है परमात्मा से कुछ, किसी भी देवता के सामने मांग रहा है; हजार उनके नाम हैं, हजार उनकी शक्लें हैं, हजार उनके पूजास्थल हैं; लेकिन जब भी किसी पूजास्थल पर और किसी भी देवता की प्रतिमा के समक्ष कोई कुछ मांग रहा है, तब वह अज्ञान से भरा हुआ है। क्योंकि जिसके पास होने से ही सब मिल जाता है, अगर उससे भी मांगना पड़े, तो उसका अर्थ है कि हमें पास होना ही पता नहीं है। जिसके निकट होने से ही सब मिल जाता है, उसके पास भी जाकर मांगना पड़े, तो उसका अर्थ है, हम पास पहुंचे ही नहीं, उपासना हुई ही नहीं।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, अविधिपूर्वक है। उसे विधि का भी पता नहीं है कि
वह क्या कर रहा है!
अगर सूरज के सामने कोई हाथ जोड़कर खड़ा हो और कहे कि हे सूरज मुझे प्रकाश दे। तो एक बात पक्की है कि वह आदमी अंधा होगा। क्योंकि सूरज के सामने आंख खोलकर खड़े होने से प्रकाश मिलता ही है; अब इसकी मांग की कोई जरूरत न रही। लेकिन अगर कोई आदमी मांग रहा है सूरज के सामने हाथ जोड़कर, गिड़गिड़ा रहा है, रो रहा है, घुटने टेके खड़ा है; और कह रहा है कि हे सूरज, मुझे प्रकाश दे! तो एक बात तय है कि वह आदमी अंधा है। उसे यह भी पता नहीं है कि वह सूरज के सामने खड़ा है। और सूरज के सामने होने का मतलब ही प्रकाश का मिल जाना हो जाता है। और कुछ मांगने की जरूरत नहीं।
तो जो व्यक्ति परमात्मा के सामने भी कुछ मांगता हुआ पहुंचता है, एक बात पक्की है, उसे पता नहीं है कि जहां वह मांग रहा है, वहां परमात्मा है।
उसकी मांग ही बता रही है कि उसे परमात्मा के पास होने का ख्याल भी नहीं है।
वह अपनी मांग में ही घिरा हुआ चल रहा है। चारों तरफ मांग ही उसको घेरे हुए है। उपासना संभव नहीं है उसे। वासना में ही दबा हुआ है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, चाहे वह कितनी ही विधि करता हो... ।
विधि बहुत करता है। सच तो यह है कि जो विधि बिल्कुल नहीं जानता है, वह बहुत विधि करता है। कितनी विधियां नहीं पूजा और प्रार्थना करने वाले लोग करते हैं! सकाम विधियां हजार हैं, लाख हैं। कितना-कितना उपाय करना पड़ता है! क्या-क्या सामग्री जुटानी पड़ती है! एक-एक व्यवस्था से एक-एक कदम उठाना पड़ता है।
पूजा एक पूरा रिचुअल है, एक क्रिया-कांड है; उसमें जरा भी भूल-चूक नहीं होनी चाहिए; गणित की पूरी व्यवस्था है। जब कोई भी उपासक सकाम वासना से भरकर पूजा में लगता है, तो रत्ती-रत्ती हिसाब रखता है; पूरी विधि का पालन करता है। और कृष्ण कहते हैं, अविधिपूर्वक! हालांकि वे खुद ही कह रहे हैं कि हे अर्जुन, यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरे को ही पूजते हैं, किंतु उनका वह पूजना अविधिपूर्वक है।
विधि तो उन्हें भी पता है। विधि की कोई कठिनाई नहीं है। एक-एक चरण विधि का ज्ञात है, और चरण पूरा किया जाता है। लेकिन फिर भी कृष्ण अविधिपूर्वक कहते हैं!
अविधिपूर्वक कहने का कारण है। परमात्मा के पास, सिर्फ पास होना ही पर्याप्त विधि है, और किसी विधि का अर्थ नहीं है। बाकी सब विधियां स्वयं को दिए गए धोखे हैं। उसके पास होने की कला ही आ जाए, उसकी मौजूदगी को अनुभव करने का द्वार खुल जाए, तो पर्याप्त विधि हो गई। लेकिन विधि तो वे करते हैं!
कृष्ण कहते हैं, अज्ञानपूर्वक।
अज्ञान भी विधि कर सकता है, अक्सर करता है, करेगा ही; और उसको कुछ उपाय
भी नहीं होता। हम सारे लोग अज्ञानपूर्वक न मालूम कितनी विधियों को विकसित कर लिए हैं! बड़ा जटिल जाल निर्मित किया है।

बुद्ध को हम चलते देखते हैं, उठते देखते हैं, बैठते देखते हैं--हम विधि
का निर्माण कर लेते हैं। हम सोचते हैं, अगर ऐसे ही हम उठे, ऐसे ही हम चले, ऐसे ही हम बैठे, तो बुद्ध को जो हुआ है, वह हमें भी हो जाएगा।
हम मीरा को नाचते देखते हैं, गीत गाते देखते हैं, आनंद से विभोर देखते हैं। हम सोचते हैं, मीरा ने जैसे कपड़े पहने, मीरा ने जैसा तिलक लगाया, मीरा जिस मंदिर के सामने खड़ी है, मीरा ने जो कृष्ण की मूर्ति बनाई, मीरा का जो पूजा का ढंग है, अगर वही ढंग हमने भी पूरा-पूरा पाला, तो जो मीरा को मिला है, वह हमें भी मिल जाएगा!
और यह हो सकता है कि हम मीरा की विधि का पूरा-पूरा अनुगमन कर लें, लेकिन जो मीरा को मिला है, वह हमें इससे नहीं मिल जाएगा। क्योंकि जो दिखाई पड़ रहा था, वह तो केवल ढांचा था, आत्मा नहीं थी; जो नहीं दिखाई पड़ रही है-- विधि, उपासना, निकट होने की क्षमता--वह ढांचा नहीं है। वह दिखाई नहीं पड़ता। वह आंतरिक है। वह भीतरी है।
रामकृष्ण को पुजारी के पद पर रखा था दक्षिणेश्वर में, तो आठ दिन बाद
ही ट्रस्टियों की कमेटी को रामकृष्ण को बुलाना पड़ा। शिकायतें बहुत आईं कि रामकृष्ण को पूजा करने की विधि नहीं आती। रामकृष्ण से ज्यादा गहरा पुजारी खोजना मुश्किल है पूरे मनुष्य के इतिहास में। लेकिन ट्रस्टियों की कमेटी ने, जो केवल चौदह रुपया महीना रामकृष्ण को तनख्वाह देते थे--निश्चित ही, वे मालिक थे--उन्होंने रामकृष्ण को बुला लिया अदालत में। ट्रस्टियों की अदालत बैठ गई। और उन्होंने कहा कि तुम्हें हमें निकालना पड़ेगा, क्योंकि पता चला है कि तुम्हें पूजा की विधि नहीं आती।
रामकृष्ण ने कहा, पूजा और विधि का संबंध क्या है? पूजा आती है, विधि की फिक्र क्या है? और विधि आती हो, पूजा न आती हो, तो विधि का करोगे क्या? लेकिन ट्रस्टियों को समझ में नहीं आया। आने की बात भी न थी। यह कोई बात हुई! शिकायत गहरी थी। ट्रस्टियों ने कहा कि इतनी ही नहीं है; शिकायत थोड़ी ऐसी है कि अपराधपूर्ण है। खबर हमें मिली है कि फूल पहले तुम सूंघ लेते हो और फिर चढ़ाते हो! और खबर हमें मिली है कि भोग पहले तुम लगा लेते हो, फिर भगवान को लगाते हो!
रामकृष्ण ने कहा, अपनी नौकरी सम्हालो; मैं तो ऐसे ही पूजा करूंगा। क्योंकि मेरी मां जब कुछ बनाती थी, तो पहले खुद चख लेती थी। अगर मेरे खाने योग्य ही न हो, तो मुझे नहीं देती थी। मैं भगवान को बिना चखे नहीं लगा सकता हूं। अगर खाने योग्य न हो, तो फेंक दूंगा, फिर बनाऊंगा। लेकिन यह असंभव है कि मैं पहले उन्हें चढ़ा दूं और मुझे पता ही न हो कि मैं क्या चढ़ा रहा हूं! अब यहां विधि तो पूरी टूट गई। निश्चित ही, फूल सूंघकर कैसे चढ़ाना! लेकिन रामकृष्ण कहते हैं, बिना सूंघे मैं चढ़ा ही नहीं सकता हूं। अगर फूल में सुगंध ही न हो? मुझे कैसे पता चले? और मैं तो भगवान को वही चढ़ाऊंगा, जो मुझे प्रीतिकर हो। तो मुझे पहले पता लगा लेना होगा कि प्रीतिकर मुझे है या नहीं?
रामकृष्ण ने कहा, या तो मैं पूजा ऐसी ही करूंगा और या अपनी नौकरी आप सम्हाल ले सकते हैं, क्योंकि नौकरी के लिए पूजा नहीं छोड़ी जा सकती।
अब यह जो आदमी है, कृष्ण इसको कहेंगे, विधिपूर्वक है। हालांकि विधि सब टूट गई। लेकिन फिर भी इसकी विधि में एक आत्मीयता है, और इसकी विधि में एक रस है, और इसकी विधि में एक हार्दिक प्रेम है, और इसकी विधि में फूल महत्वपूर्ण नहीं रहा, भोजन महत्वपूर्ण नहीं रहा, बाहरी औपचारिकता महत्वपूर्ण न रही, अंतस का निवेदन महत्वपूर्ण हो गया है। यह जब खड़ा है सामने भगवान के, तो सब मिट गया बाहर का। इसके भीतर का आंतरिक लगाव ही सब कुछ है।
एक दिन ऐसा हुआ कि रामकृष्ण खड़े हुए रो रहे हैं। पूजा के फूल कुम्हला
गए, पूजा के लिए जलाया गया दीप बुझ गया, और रामकृष्ण खड़े रो रहे हैं, पूजा शुरू ही नहीं हुई है। जो पूजा देखने चले आए थे, वे थोड़ी देर में ऊबकर जाने लगे कि यह किस भांति की पूजा है! दीया बुझ गया, फूल कुम्हला गए, भोग भी रखा- रखा ठंडा हो गया, रामकृष्ण खड़े होकर आंख बंद किए रो रहे हैं। यह कब तक चलेगा!

लोग चले गए, मंदिर खाली हो गया, आधी रात हो गई। रामकृष्ण ने आंखें खोलीं, और काली के सामने लटकी थी तलवार, उसको खींचकर निकाल लिया। और कहा चिल्लाकर कि बहुत चढ़ाए फूल और बहुत चढ़ाया भोग, अब तक कुछ हुआ नहीं उससे, आज अपने को ही चढ़ाता हूं!
तलवार गर्दन के पास आ गई एक झटके में, और जैसे बिजली कौंध गई। किसने हाथ से तलवार छीन ली, पता नहीं! कैसे तलवार नीचे गिर गई, पता नहीं! सुबह रामकृष्ण बेहोश मिले। बेहोश तो थे, लेकिन चेहरे पर उनके जो स्वर्ण-आभा आ गई थी, वह कभी-कभी सदियों में एकाध आदमी के चेहरे पर आती है।
तीन दिन लगे होश में आने में। तीन दिन बाद जब होश में आए, तो लोगों ने पूछा, क्या हुआ? रामकृष्ण ने कहा, पूजा हुई। पूजा पूरी हो गई।
उस दिन के बाद रामकृष्ण ने फूल नहीं चढ़ाए, उस दिन के बाद भोग नहीं लगाया, उस दिन के बाद दिनों बीत जाते थे, मंदिर के भीतर भी नहीं जाते थे। फिर तो दूसरा पुजारी रख लेना पड़ा, जो जब वे नहीं आते थे, तो पूजा कर देता था। कभी-कभी रामकृष्ण जाते थे, और जाकर ऐसी बातचीत कर लेते थे, जैसी मित्रों के बीच होती है। कोई पूछता कि आपने पूजा बंद कर दी? रामकृष्ण कहते कि अपने को ही चढ़ा दिया; अब बचा नहीं वह, जो पूजा करे।
पूजा की आत्यंतिकता तो तब है, जब कोई अपने को ही समर्पित कर देता और चढ़ा देता है। लेकिन विधियां औपचारिक हैं, फार्मल हैं, बाहर हैं। कृष्ण जानते हैं भलीभांति कि यह जो देवताओं की पूजा चलती है, विधिपूर्वक चलती है, लेकिन उसे वे अविधि कहते हैं। इसलिए, क्योंकि अज्ञान में अविधि ही हो सकती है। ज्ञान में ही विधि का जन्म होता है। और वह विधि विधियों जैसी नहीं होती; वैयक्तिक होती है, निजी होती है, एक-एक व्यक्ति की अपनी होती है।
क्योंकि संपूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूं।
चढ़ाओ तुम कहीं से फूल, मुझ तक पहुंच जाते हैं; और गाओ तुम गीत कहीं, वह मेरे पास चला आता है; और करो तुम कुछ, सभी कुछ मुझे समर्पित हो जाता है। कृष्ण यह कह रहे हैं कि मैं केंद्र हूं अस्तित्व का। तुम कहीं भी कुछ करोगे--तुम्हारा बुरा भी, तुम्हारा भला भी; तुम्हारा ठीक भी, तुम्हारा गलत भी--सब मुझ तक पहुंच जाता है, तुम्हें पता हो या न पता हो। फर्क पड़ेगा, अगर तुम्हें पता हो। तो तुम्हारी जिंदगी में क्रांति हो जाएगी।
परंतु वे मुझ अधियज्ञ-स्वरूप परमेश्वर को तत्व से नहीं जानते हैं।
वे जो सारा जीवन मेरे आस-पास घूमते हैं, उन्हें तत्व से पता नहीं है कि
वे किसकी परिक्रमा कर रहे हैं? किसका परिभ्रमण कर रहे हैं? किसके आस-पास घूम रहे हैं? घूमते रहते हैं पागल की तरह, पर उन्हें पता नहीं कि जहां वे घूम रहे हैं, वह प्रभु का मंदिर है, उसकी परिक्रमा है।
इसी से गिरते हैं, अर्थात पुनर्जन्म को उपलब्ध होते हैं।
इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं, जो कि भारतीय चिंतन के आधार कहे जा सकते हैं।
एक, भारतीय चिंतन सदा से विकासवादी है, एवोल्यूशनरी है। भारतीय चिंतन मानता है कि व्यक्ति को लौट-लौटकर उसी अवस्था में बार-बार नहीं गिरना चाहिए, क्योंकि उसका अर्थ हुआ कि उसके जीवन में कोई विकास नहीं हो रहा है। कल मैंने जो किया था, अगर वही भूल मैं आज भी करता हूं और कल भी करता हूं, तो मेरी चेतना में कोई विकास नहीं हो रहा है। अगर जिंदगीभर मैं एक सर्किल में घूमता रहता हूं, बार-बार वही करता हूं, बार-बार वही भोगता हूं, तो मेरी जिंदगी विकासमान नहीं है, मेरी जिंदगी वर्तुलाकार है और चाक की भांति घूमती चली जाती है। विकासमान तो वह है, जो नए को उपलब्ध होता है और पुराने को पुनरुक्त नहीं करता। रिपीटीशन नहीं करता पुराने का, तो आगे जाता है। एडीसन ने अपने एक पत्र में किसी को लिखा है कि रोज सांझ को सूरज से यह प्रार्थना करता हूं कि जहां तूने सुबह मुझे पाया था, वहां सांझ मुझे मत पाना; रात यह प्रार्थना करके सोता हूं कि सूरज, सांझ तू मुझे जहां छोड़ गया है, कुछ ऐसा हो कि सुबह तू मुझे वैसा ही न पाए, कुछ बदल जाए, कुछ नया हो जाए। लेकिन जैसा हमारा मन है, वह पुनरुक्त करता है। मन रिपिटीटिव है। मन की कुछ बातें मैंने आपसे पीछे कही हैं। यह बात भी आप ख्याल में ले लें कि मन

एक रिपीटीशन, एक पुनरुक्ति है। वही-वही रोज करता है। एक घेरा बना लेता है। जैसे छोटे बच्चों की रेलगाड़ी होती है, एक गोल पटरी पर चलती है। चाबी भर दी, पटरी का चक्कर लगा लेती है। चाबी चुक गई, फिर चाबी भर दी, फिर पटरी का चक्कर लगा लेती है। हमारी चाबी चुकती रहती है। रोज हम भरते रहते हैं भोजन से। चक्कर रोज पूरा होता रहता है। फ्यूल डाल दिया, ईंधन डाल दिया शरीर में, वह अपना रोज का चक्कर पूरा कर लेता है।
कभी आप अपने चौबीस घंटे के वर्तुल का अध्ययन करें, तो आप बहुत चकित हो जाएंगे कि रोज-रोज आप वही करते हैं। रोज-रोज!
मेरा मतलब यह नहीं है कि रोज आप अलग-अलग दफ्तर में जाएं। यह भी मतलब नहीं है कि रोज-रोज नई दुकान खोलें। दुकान तो वही रहेगी, दफ्तर वही रहेगा। नहीं, लेकिन रोज-रोज आपके मन की जो चित्त-दशाएं हैं, वे भी वही होती हैं। चौबीस घंटे में आपको कितनी बार क्रोध करना है, उतनी बार आप रोज कर लेते हैं। कितनी बार उत्तेजित होना है, आप उतनी बार उत्तेजित हो लेते हैं। कितनी बार दुखी होना है, आप उतनी बार दुखी हो लेते हैं। कई बार आप चकित भी होते हैं कि अभी तो दुख का कोई कारण नहीं था, मैं दुखी क्यों हो रहा हूं? वक्त आ गया! जैसे वक्त पर चाय पीनी पड़ती है, या सिगरेट पीनी पड़ती है, वैसे ही वक्त पर दुखी भी होना पड़ता है। वक्त आ गया। भीतर से दशा लौट आई। मन चौबीस घंटे दोहराए चला जाता है यंत्रवत। इस मन के दोहराने को अगर
हम लंबा फैलाएं पूरे जीवन के विस्तार पर, तो इसके कई वर्तुल हैं। रोज घूमता है, वर्ष प्रतिवर्ष घूमता है, फिर जीवन से दूसरे जीवन में घूमता चला जाता है। इसको पुनर्जन्म कहता है भारत।
भारत कहता है कि आदमी जैसा है, अगर वह अपने को रोज-रोज विकासमान न करे,
तो वह फिर पूरा का पूरा जीवन वापस दोहर जाएगा। जन्म के बाद हम मृत्यु तक जहां तक पहुंचे हैं, मृत्यु हमें वापस पुरानी जगह पर खड़ा कर देगी; हम फिर से जन्म शुरू कर देंगे; फिर वही का वही, फिर वही का वही।
बुद्ध और महावीर ने एक अनूठा प्रयोग अपने साधकों के लिए खोजा था। वे
तब तक किसी व्यक्ति को साधना में नहीं ले जाते थे, जब तक उसको पिछले जन्मों का स्मरण न करा दें।
बुद्ध से कोई पूछता है कि पिछले जन्म को स्मरण करने से क्या प्रयोजन है? मैं तो अभी शांत होना चाहता हूं, उसका मुझे कोई रास्ता बताइए। बुद्ध ने कहा कि इसलिए, कि पहले भी पिछले जन्मों में तू यह बात किन्हीं और बुद्धों से कह चुका है कि मैं शांत होना चाहता हूं, मुझे कोई रास्ता बताइए। और रास्ते तुझे पिछले जन्मों में भी बताए गए हैं, कभी तूने उनका पालन नहीं किया। तो तू मेरा समय नष्ट मत कर। मैं तुझे रास्ता बताऊंगा; पहले भी दूसरे बुद्धों से तूने रास्ते इसी तरह पूछे हैं, कभी तूने उनका पालन नहीं किया। तू सिर्फ अपनी आदत दोहरा रहा है। तू वही करेगा, जो तूने पीछे किया था। इसलिए पहले मैं तुझे याद दिला दूं। तू अपने दो-चार जन्मों का पहले स्मरण कर ले, ताकि तुझे साफ हो जाए कि तू उसी वर्तुल को फिर से तो नहीं दोहरा रहा है!
उस आदमी को बात समझ में पड़ी। एक वर्ष तक वह बुद्ध के पास पिछले जन्मों
के स्मरण के लिए रुका। हैरान हुआ। पिछले जन्म में भी जब उसकी पत्नी मरी थी, तभी वह एक बुद्धपुरुष के पास गया था! उसके पहले भी उसकी पत्नी जब मरी थी, तब वह एक बुद्धपुरुष के पास गया था! और अभी भी इस जन्म में उसकी पत्नी मर गई थी, तो वह फौरन बुद्ध के पास आ गया था, कि मेरा मन बड़ा अशांत है, मुझे शांति चाहिए! और मजा यह है कि पहले जन्म में भी शांति की तलाश करते-करते नई स्त्री के मोह में पड़ गया था। और दूसरे जन्म में भी शांति की तलाश करने गया था और एक भिक्षुणी के प्रेम में पड़ गया था।
तब वह बहुत घबड़ाया। उसने बुद्ध से कहा कि यह क्या है? यह मैं कर रहा हूं या मुझसे जबरदस्ती करवाया जा रहा है?
बुद्ध ने कहा, अगर तू जानता नहीं है, तो तू करता ही चला जाएगा। क्योंकि तुझे पता ही नहीं है कि तू सिर्फ दोहर रहा है, तू सिर्फ पुनरुक्ति कर रहा है। लेकिन स्मरण नहीं है, इसलिए हम बार-बार वही दोहरा लेते हैं; बार-बार वही दोहरा लेते हैं।

छोड़ें, पिछले जन्म का स्मरण तो थोड़ा कठिन पड़ेगा, लेकिन रोज का तो स्मरण है; बीता कल तो आपको पता है। कल भी आपने जिस बात पर क्रोध किया था, और पछताए भी थे कि अब क्रोध नहीं करूंगा, आज भी उसी बात पर क्रोध किया है और आज भी पछताए हैं कि क्रोध नहीं करूंगा! और आज भी आप सोच रहे हैं कि अब कल क्रोध नहीं होगा, क्योंकि मैं पछता लिया हूं। लेकिन पछताए तो आप कल भी थे, परसों भी थे।
आप सिर्फ पुनरुक्त कर रहे हैं। क्रोध भी करते हैं, पछता भी लेते हैं। फिर क्रोध करते हैं, फिर पछता लेते हैं।
एक मित्र मेरे पास आते हैं; क्रोधी हैं। ऐसे तो कौन नहीं है; थोड़े ज्यादा हैं। कहते हैं कि किसी तरह मेरा क्रोध छूट जाए। बहुत पछताते हैं, रोते हैं, छाती पीटते हैं--जब क्रोध कर लेते हैं।
मैंने उनसे कहा, क्रोध की फिक्र छोड़ो; तुम पछताना बंद कर दो। एक काम करो। तुम जिंदगीभर से क्रोध छोड़ने की कोशिश कर रहे हो, वह तो नहीं छूटा; तुम मेरी मानो, क्रोध की फिक्र छोड़ो, तुम पछताना बंद कर लो। एक बात पक्की कर लो कि अब क्रोध होगा, तो पछताऊंगा नहीं।
उन्होंने कहा, आप कैसे खतरनाक आदमी हैं! मैं आया हूं क्रोध छोड़ने, आप मेरा पछतावा भी छुड़ा देना चाहते हैं! फिर तो मैं महानर्क में पड़ जाऊंगा। मैंने उनसे कहा, कोई भी तो आदत तोड़ो। अगर क्रोध की नहीं टूटती, पछतावे
की तोड़ो; सर्किल टूट जाएगा; पछतावा ही तोड़ो। तो दूसरे क्रोध को आने का मौका नहीं रहेगा, क्योंकि बीच की एक सीढ़ी हट गयी। अब तक की व्यवस्था यह है तुम्हारी--क्रोध, पछतावा; क्रोध, पछतावा; क्रोध। यह तुम्हारा सर्किल है। कहीं से भी सर्किट तोड़ो, कहीं से भी तार को अलग खींच लो। क्रोध से नहीं खींच सकते, पछतावे से खींच लो। अगर पछतावा नहीं कर पाए, तो मैं वचन देता हूं कि दूसरा जो क्रोध इसके पीछे आना चाहिए, उसके लिए रास्ता नहीं मिलेगा। यह आप चकित होंगे जानकर कि आप इसलिए नहीं पछताते हैं कि आप जानते हैं
कि क्रोध बुरा है। आप इसलिए पछताते हैं, ताकि क्रोध की पहली अवस्था फिर से पा ली जाए, और फिर से आप क्रोध करने में समर्थ हो जाएं।
पछतावा जो है, वह क्रोध की ट्रिक है। पछतावा जो है, पश्चात्ताप जो है,
वह क्रोध की होशियारी है; वह अहंकार की उस्तादी है, चालाकी है। जब आप क्रोध कर लेते हैं, तो आपको लगता है, उतना अच्छा आदमी नहीं हूं, जितना मैं अपने को समझता था। पछतावा करके आप फिर समझते हैं कि उतना ही अच्छा आदमी हूं, जितना अपने को समझता था। अहंकार अपना पुराना लेबल फिर से पा लेता है; वहीं पहुंच जाता है, जहां क्रोध के पहले था।
क्रोध के कारण एक गड्ढे में पड़ गए थे, क्रोध के कारण थोड़ी दीनता आ गई थी। क्रोध के कारण मन को लगा कि उतना अच्छा आदमी नहीं हूं, जितना दावा करता था। पछतावा करके वापस अपनी जगह खड़ा हो गया, उसी जगह, जहां क्रोध के पहले था। अब आप फिर क्रोध कर सकते हैं, क्योंकि उसी जगह से आपने क्रोध किया था। मन एक पुनरुक्ति है। और मन के आधार पर जीने वाला आदमी अपने पूरे जीवन
को एक पुनरुक्ति बना लेता है, जस्ट ए रिपीटीशन, ए मैकेनिकल रिपीटीशन; यंत्रवत घूमते चले जाते हैं। इसका जो बड़े से बड़ा वर्तुल है, वह पूरा जीवन है। सिर्फ भारत को इस बात का ख्याल आ पाया।
भारतीय धर्मों के अतिरिक्त दुनिया का कोई धर्म पुनर्जन्म का ख्याल नहीं करता, रि-बर्थ का ख्याल नहीं करता। क्योंकि भारत के अलावा दुनिया के किसी धर्म ने मनुष्य के मन की इस कीमिया को ठीक से नहीं समझा कि अगर मनुष्य का मन पुनरुक्त करता है, तो पूरा जीवन भी एक वृहदकाय वर्तुल होगा और आदमी फिर पुनरुक्त करेगा! और हमने बार-बार किया है!
हम बार-बार उसी तरह लोभ में पड़े हैं, अनेक जन्मों में। बार-बार उसी तरह वासना में गिरे हैं, अनेक जन्मों में। बार-बार मकान बनाए, धन कमाया, पद कमाया। बार-बार असफल हुए, अनेक जन्मों में। और हर बार फिर वही, हर बार फिर वही!
कृष्ण कहते हैं कि ऐसे जो देवताओं को भजते हैं, बिना मुझे जाने, अर्थात जो अपनी वासनाओं को ही उपासना बना लेते हैं, जो किसी मांग से

प्रार्थना करते हैं, वे बार-बार गिरते हैं और पुनर्जन्म को उपलब्ध होते हैं। कारण यह है कि देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं।
यह बहुत कीमती सूत्र है।
कारण यह है कि पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं।
कारण यह है कि भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं। कारण कि व्यक्ति जो भी पूजता है, अंततः वही हो जाता है। और व्यक्ति जो भी पूजता है, अंततः उससे ऊपर नहीं जा सकता। कोई भी व्यक्ति अपने श्रद्धेय से ऊपर नहीं जा सकता।
इसे थोड़ा हम समझ लें।
आप जिसको श्रद्धा करते हैं, वह आपका मैक्सिमम, आपका श्रेष्ठतम, अंतिम बिंदु हो गया। श्रद्धा जरा सोचकर करना, क्योंकि श्रद्धा आपके भविष्य की लकीर हो जाएगी। जिसको आप श्रद्धा करते हैं, उससे ऊपर आप कभी नहीं जा सकते हैं। आपकी श्रद्धा आपका अंतिम बिंदु बन जाती है। वह आपके व्यक्तित्व के विकास का लक्ष्य हो जाती है। तो आदमी जिसको पूजता है, अनजाने तय कर रहा है कि यही मैं होना चाहता हूं।
ध्यान रखें, आज अगर सड़क से एक संन्यासी जा रहा हो, तो कोई भीड़ नहीं लग जाती उसके आस-पास। कभी लगती थी। आज से दो हजार साल पीछे, बुद्ध अगर गांव से गुजरते, संन्यासी गांव से गुजरता, तो भीड़ लग जाती थी। सारा गांव इकट्ठा हो जाता था। क्योंकि चाहे कोई दुकान कर रहा हो, चाहे कोई खेती कर रहा हो, अंतिम श्रद्धा यही थी कि एक दिन मुझे भी संन्यासी हो जाना है। चाहे न हो पाए; तो इसकी पीड़ा रह जाएगी, दंश रह जाएगा। लेकिन आज संन्यासी को देखकर कोई भीड़ इकट्ठी नहीं होती। हां, अभिनेता निकलता हो, तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। वह हमारी श्रद्धा है। वही हम होना चाहते हैं। भला न हो पाएं, भला न हो पाएं, होना वही चाहते हैं।
जो हम होना चाहते हैं, वह हमारा श्रद्धा-पात्र हो जाता है। श्रद्धा- पात्र का अर्थ है, वह मेरे भविष्य की तस्वीर है; यही मैं होना चाहता हूं। और जो व्यक्ति जिसको श्रद्धा करता है, धीरे-धीरे वैसा ही हो जाता है। हो ही जाएगा, क्योंकि श्रद्धा से हमारी आत्मा निर्मित होती है, और श्रद्धा हमारी आत्मा का गठन करती है, और श्रद्धा हमारी आत्मा को रूपांतरित करती है। श्रद्धा सोचकर करना! बहुत होशियारी से, बहुत बुद्धिमानी से। क्योंकि श्रद्धा ढांचा बनेगी, जिसमें अंततः आप ढल जाएंगे।
तो कृष्ण कहते हैं, जो देवताओं को पूजते हैं, वे देवताओं को प्राप्त होते हैं।
लेकिन देवता तो स्वयं ही वासनाओं से घिरे हुए जीते हैं! चाहे इंद्र हो, तो भी वासनाओं से भरा हुआ जीता है! हम सबको कथाएं पता हैं कि अगर पृथ्वी पर कोई आदमी बहुत तपश्चर्या करे, तो इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है। इसका मतलब यह है कि ईर्ष्या से वह भर जाता है, क्योंकि उसे डर होता है कि कोई दूसरा समर्थ आदमी इंद्र होने की स्थिति में आया जा रहा है। अगर यह सफल हो गया तपश्चर्या में, तो मुझे पद से हट जाना पड़ेगा, और यह आदमी मेरे पद पर बैठ जाएगा।
तो इंद्र बेचारा चौबीस घंटे अपने सिंहासन को बचाने में ही लगा हुआ है! कहीं कोई तपश्चर्या करे, कठिनाई उसे होती है! भेजता है उर्वशियों को, अप्सराओं को कि जाकर भ्रष्ट करो! इस आदमी को डांवाडोल करो! यह थोड़ा डांवाडोल हो जाए, तो मेरा सिंहासन स्थिर हो जाए।
जो भी सिंहासन पर है, वह सदा डरा हुआ रहेगा ही; घबड़ाया रहेगा।
मैंने सुना है, इटली में एक बहुत पुराना मंदिर है; अभी भी है। उसकी बड़ी पुरानी कथा है और बड़ी हैरानी की है। उस मंदिर का इतिहास अनूठा है। एक पहाड़ की तलहटी में एक छोटी-सी झील के पास वह मंदिर है, एक बड़े वृक्ष के नीचे। उस मंदिर का जो पुजारी है, वह दुनिया के इतिहास में अनूठे ढंग का पुजारी है। उस मंदिर का पुजारी बनने का एक ही उपाय है; अगर कोई व्यक्ति मौजूद पुजारी की हत्या कर दे, तो ही वह व्यक्ति वहां का पुजारी बन सकता है।
तो तलवार लिए पुजारी खड़ा रहता है चौबीस घंटे। क्योंकि पूरे वक्त सोना मुश्किल हो जाता है। सो नहीं सकता। सोए, कि गए! जिंदगी हराम हो जाती है;

क्योंकि पूरे वक्त... । और कोई नहीं है उस जंगल में, उस वृक्ष के नीचे एक पुजारी अपनी तलवार लिए अपनी रक्षा करता रहता है। और आज नहीं कल, उसे पता है कि मौत तो होगी ही। क्योंकि वह भी इसी तरह पुजारी बना है! वह भी किसी को इसी तरह मारा है, तभी पुजारी बना है। और यह सतत परंपरा है। कोई उसे मारेगा और पुजारी बनेगा। और जो बनेगा पुजारी, वह भलीभांति जानता है कि वह जिस जगह जा रहा है, वहां तलवार लिए खड़े रहना है, और कोई उसकी हत्या करेगा।
यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है! सभी पदों की हालत ऐसी ही है। जो भी वहां पहुंचता है, किसी को मारकर, हटाकर, परेशान करके पहुंचता है। पहुंचते से ही फिर उसको चौबीस घंटे तलवार लिए खड़े रहना पड़ता है; क्योंकि जिस रास्ते से वह आया है, उसी रास्ते से दूसरे भी आएंगे। और उसे पक्का मालूम है कि वह सदा वहां नहीं रह सकता; कोई आएगा पीछे। क्योंकि अगर सदा वहां कोई रह सकता होता, तो वह खुद भी वहां नहीं पहुंच सकता होता। कोई और ही रहा होता। वह पहुंच गया; कोई और पहुंच जाएगा।
हर पद के पास, हर धन के पास, हर प्रतिष्ठा के, हर सिंहासन के पास मौत की घबड़ाहट है। इंद्र घबड़ाया हुआ है; देवता घबड़ाए हुए हैं। वासना से भरे हुए हैं, इच्छाओं से भरे हुए हैं।
कृष्ण कहते हैं कि देवताओं को पूजकर ज्यादा से ज्यादा अगर कोई आदमी पूरी तरह सफल हो गया, तो देवता हो जाएगा, इससे ऊपर नहीं जा सकता!
लेकिन देवता कोई बहुत ऊंची अवस्था नहीं है। यह भी बहुत हैरानी की बात
है कि भारत अकेला देश है, जो देवताओं की अवस्था को बहुत ऊंची अवस्था नहीं मानता! और यह भी मानता है कि देवताओं को भी अगर मुक्त होना हो, तो उन्हें पहले मनुष्य होना पड़ेगा। मनुष्य चौराहा है। देवता का एक रास्ता है, मनुष्य से जाता है आगे। मालूम पड़ता है, आगे जाते। लेकिन अगर देवता को भी मुक्त होना है, तो उसे वापस चौराहे पर लौटकर मुक्ति का रास्ता पकड़ना पड़ेगा।
मनुष्य चौराहा है, क्रास-रोड है। पशु को भी अगर मुक्त होना है, तो मनुष्य होना पड़ेगा; देवता को भी मुक्त होना है, तो मनुष्य होना पड़ेगा। एक अर्थ में देवता ऊपर मालूम पड़ सकता है, क्योंकि ज्यादा सुख में है। लेकिन एक अर्थ में नीचे है, क्योंकि देवता की स्थिति से अंतिम ट्रांसफार्मेशन, अंतिम क्रांति नहीं हो सकती; उसे मनुष्य तक वापस लौटना पड़ेगा।
मनुष्य से ही कोई क्रांति संभव है। इस अर्थ में भी भारत ने... देवताओं
के पास मनुष्य से ज्यादा शक्ति है, ज्यादा उम्र है, ज्यादा इच्छाओं की पूर्ति का साधन है, ज्यादा सुख है--सब कुछ है--लेकिन आत्मक्रांति का उपाय नहीं है। उन्हें वापस लौट आना पड़ेगा।
इसलिए भारत ने मनुष्य को एक अर्थ में चरम माना है। मनुष्य की इतनी गरिमा दुनिया में कहीं भी नहीं है। इस अर्थ में चरम माना है कि सिर्फ मनुष्य की ही आत्मा में मुक्त होने की आत्यंतिक घटना घट सकती है; परम स्वतंत्रता और प्रभु का दर्शन मनुष्य के साथ ही घटित हो सकता है। पशु के साथ नहीं हो सकता, क्योंकि वे भी अज्ञान में हैं; और देवताओं के साथ भी नहीं हो सकता, क्योंकि वे भी अज्ञान में हैं। पशु दुख में होगा, देवता सुख में होंगे; लेकिन दोनों अज्ञान में हैं। मनुष्य के साथ घटना घट सकती हैं तीनों।
भारत कहता है कि मनुष्य नीचे गिरना चाहे, तो पशुओं से नीचे गिर सकता है; ऊपर उठना चाहे, तो देवताओं से पार जा सकता है; और मुक्त होना चाहे, तो समस्त घेरे के बाहर छलांग लगा सकता है।
कृष्ण कहते हैं, जो पूजा करेगा पितरों की, वह पितरों को प्राप्त हो जाएगा। जो भी पूजा होगी, अगर सफल हो गए, तो वही हो जाओगे।
और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसलिए मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं है। मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं! जो मुझे भजता है, वह धीरे-धीरे, धीरे-धीरे मुझमें ही एक हो जाता है।
सिर्फ परमात्मा की पुनरुक्ति नहीं होती, बाकी सब चीजें पुनरुक्त होती हैं। सिर्फ परमात्मा का कोई रिपीटीशन नहीं होता, बाकी सब चीजें दोहरती हैं। जो शाश्वत है, वही पुनरुक्त नहीं होता।

इसे समझना कठिन पड़ेगा; पर दो-तीन बातें ख्याल में लें, तो शायद समझ में
आ जाए।
दुनिया में सब चीजें नई होती हैं, क्योंकि सभी चीजें पुरानी पड़ जाती हैं। जो भी नई है, वह कल पुरानी हो जाएगी। जो आज पुरानी है, ध्यान रखना, वह कल नई थी। सिर्फ परमात्मा न नया है और न पुराना। वह सिर्फ है। वह कभी पुराना नहीं पड़ेगा, क्योंकि वह कभी नया नहीं था।
जो चीज नई है, वही पुरानी हो सकती है। जो नई नहीं है, उसके पुराने होने
का कोई उपाय न रहा। तो परमात्मा न नया है, न पुराना। इसलिए हमने एक अलग शब्द गढ़ा है; वह है सनातन, वह है शाश्वत, वह है अनादि, अनंत। इस भाषा में हमने उसे कहा है कि वह सदा है। परमात्मा पुराना नहीं होता, नया नहीं होता; बस होता है।
जो चीज नई है, वह कल पुरानी हो जाएगी। और जब पुरानी हो जाएगी, तो फिर नए होने के लिए संभावना शुरू हो जाएगी। जो चीज पुरानी है, वह कल पुरानी हो- होकर नष्ट हो जाएगी, खो जाएगी; फिर नए होने का मौका मिल जाएगा।
दुनिया में सब चीजें दोहरती रहती हैं। कई दफे बहुत हैरानी की बातें होती हैं। अगर आप दुनिया के फैशन का इतिहास देखें, तो बहुत चकित हो जाएंगे! दस-पांच साल में फैशन वापस आ जाते हैं। जिन कपड़ों को दस-पांच साल पहले पुराना समझकर छोड़ दिया, दस-पांच साल बाद वे लौट आते हैं। जिन बालों के ढंग को दस-पांच साल पहले पुराना समझकर छोड़ा था, दस-पांच साल बाद वे वापस लौट आते हैं!
दस-पांच साल काफी वक्त है। पुरानी चीजें भूल जाती हैं, फिर नई हो जाती हैं। और आदमी की स्मृति इतनी कमजोर है कि वह देख ही नहीं पाता, वह ख्याल भी नहीं कर पाता कि हम क्या कर रहे हैं! फिर वही चुनकर ले आता है, फिर वही चुनकर ले आता है। आदमी के मन के साथ नए और पुराने का खेल चलता रहता है, पुनरुक्ति चलती रहती है।
कृष्ण कहते हैं, जो मुझे उपलब्ध होता है, वह पुनर्जन्म को उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि वह शाश्वतता के साथ एक हो गया।
इसका दूसरा अर्थ भी है। पुनर्जन्म तो उसका ही होता है, जो समझता हो कि मेरा जन्म होता है। और जो समझता है कि मेरा जन्म होता है, फिर उसे मृत्यु की भी पीड़ा भोगनी पड़ती है। परमात्मा को जो जानने लगता है, वह तो जानता है कि न मेरा जन्म होता है और न मेरी मृत्यु होती है। तो जन्म और मृत्यु साधारण घटनाएं रह जाती हैं, हवा के बबूलों की तरह। और वह तो जन्म के भी पहले होता है और मृत्यु के भी बाद होता है। अब उसका कोई जन्म और मृत्यु नहीं होती।
बुद्ध से कोई पूछता है, मरने के दिन, कि क्या आप मृत्यु के बाद कहीं होंगे या बिल्कुल खो जाएंगे? तो बुद्ध कहते हैं, अगर मैं मृत्यु के पहले कहीं था, तो रहूंगा। अगर पहले ही खो गया, तो पीछे भी बचेगा क्या?
सुनने वाले की समझ में नहीं आया है, उसने फिर दूसरी तरह से पूछा। उसने पूछा कि छोड़ें, यह जरा कठिन है। मैं यह पूछता हूं, जन्म के पहले आप कहीं थे या जन्म के बाद ही आप हुए?
बुद्ध ने कहा, अगर जन्म के पहले मैं कहीं था, तो जन्म के बाद भी कहीं रहूंगा; और अगर जन्म के बाद भी कहीं नहीं था, तो जन्म के पहले भी कहीं नहीं था।
पर उस आदमी की समझ में नहीं आया। उसने कहा, पहेली में मत जवाब दें। मुझे सीधा-सीधा कहें। तो बुद्ध ने कहा, जिसे तुम देखते हो, वह तो जन्म के साथ पैदा हुआ है और मृत्यु के साथ मर जाएगा। लेकिन जिसे मैं देखता हूं, वह कभी पैदा नहीं हुआ और कभी मरेगा भी नहीं। लेकिन वह देखना आंतरिक है, वह देखना भीतर है। वह सिर्फ मैं ही देख सकता हूं; तुम्हें वह दिखाई नहीं पड़ेगा। तुम भी देख सकते हो, अगर तुम अपने भीतर देखने में समर्थ हो जाओ। लेकिन हम सबका देखना बाहर है। बाहर जो हमें दिखाई पड़ता है, वह तो जन्म
और मृत्यु का घेरा है। भीतर कोई हमारे जरूर छिपा है, जो न जन्मता है और न मरता है। उसकी अगर पहचान हो जाए, तो फिर कोई पुनर्जन्म नहीं है, फिर कोई लौटना नहीं है।

लौटने को एक तीसरी तरह से भी समझें।
अगर कुछ बच्चे एक क्लास में पढ़ रहे हों, और हर साल उन्हें वापस परीक्षा के बाद उसी क्लास में भेज दिया जाए, तो इसका क्या मतलब होगा? इसका एक ही मतलब होगा कि पढ़ा-लिखा उन्होंने बहुत होगा, लेकिन गुना बिल्कुल नहीं; पढ़ा-लिखा बहुत होगा, लेकिन समझा बिल्कुल नहीं; पढ़ा-लिखा बहुत होगा, मेहनत बहुत की होगी, लेकिन कोई ग्रोथ, कोई विकास, कोई बढ़ती उनके भीतर नहीं हुई। वापस उसी क्लास में लौटा दिए गए।
जीवन तभी हमें वापस भेजता है किसी स्थिति में, जब हम उससे बिना कुछ सीखे गुजर जाते हैं। जिस स्थिति से आप बिना सीखे गुजर जाएंगे, आपको वापस लौटना पड़ेगा। सिर्फ उसी स्थिति में आप वापस नहीं लौटेंगे, जिससे आप सीखकर गुजर जाएंगे।
लेकिन हम हर चीज से बिना सीखे गुजर जाते हैं! कितनी बार क्रोध किया-- सीखा क्या? कितनी बार प्रेम किया--सीखा क्या? कितनी बार कामवासना में डूबे--सीखा क्या? कितनी बार ईर्ष्या की--सीखा क्या? कितना लोभ किया-- जिंदगी में बहुत कुछ किया--सीखा क्या? संपत्ति क्या है? सार क्या है? हाथ में निचोड़ क्या है?
अगर निचोड़ कुछ भी नहीं है, तो आपको लौटना पड़ेगा। जिंदगी किसी को क्षमा नहीं करती, जिंदगी फिर अवसर देगी। जिंदगी फिर कहेगी कि वापस उसी जगह लौट जाओ!
और हम ऐसे हैं कि बार-बार लौटकर हम पुख्ता होते चले जाते हैं। धीरे- धीरे हमको लगता है कि इस क्लास में वापस आना, यह तो अपना घर है! उसमें हम वापस आए चले जाते हैं। सीखना शायद और मुश्किल होता चला जाता है। हम अभ्यासी हो जाते हैं। हम अभ्यासी हो जाते हैं। और हममें जो अभ्यासी हैं, वे कभी-कभी आगे निकल जाते हैं। मैं जानता हूं।
मैं एक क्लास में नया-नया पहुंचा; बाकी सब विद्यार्थी तो एक ही उम्र
के थे, एक विद्यार्थी बहुत उम्र का था। तो मैंने शिक्षक को पूछा, तो उन्होंने कहा कि यह छः साल से इसी क्लास में हैं; लेकिन अब कैप्टन हो गए हैं। क्लास के कैप्टन हैं! और वह लड़का अकड़कर खड़ा था। निश्चित ही। छः साल वापस उसी क्लास में लौटने का चुकता परिणाम इतना हुआ है कि वे अब कैप्टन हो गए हैं! अब वे उस क्लास से शायद जाना भी न चाहें; क्योंकि दूसरी क्लास में कैप्टन वे न हो पाएंगे।
इस जिंदगी में भी जो बहुत तरह के कैप्टन दिखाई पड़ते हैं--राजनीति में,
धन में, यहां-वहां--उनमें अधिक लोग इसी तरह के हैं, जो पुख्ता हो गए हैं, मजबूत हो गए हैं, दोहर-दोहरकर जिंदगी में इतने यंत्रवत मजबूत हो गए हैं, कि जो नए बच्चे आ रहे होंगे जिंदगी में, उनके सामने, कोई राष्ट्रपति, कोई प्रधानमंत्री, कोई कुछ होकर खड़ा हो जाता है। उनसे अगर कहो भी कि जन्म-मरण से छुटकारा, वे कहेंगे कि नहीं, हम तो बार-बार किसी तरह इसी पद पर लौटते रहें, यही आकांक्षा है!
जिंदगी में जो कई बार सफल दिखाई पड़ते हैं, उनका एक ही कारण हो सकता है गहरे में कि जिंदगी के असली लक्ष्य से वे असफल हो गए हैं। मगर यह बड़ा कठिन है समझना। जो जिंदगी में तथाकथित सफलता दिखाई पड़ती है, सो-काल्ड सक्सेस, इसके पीछे जिंदगी की बड़ी गहरी असफलता कारण हो सकती है!
बहुत बार लौट-लौटकर इसी जगह वे काफी ज्ञानी और अनुभवी हो गए हैं! इसी क्लास में उन्हें सब रट गया है, सब कंठस्थ हो गया है; कुशल, चालाक हो गए हैं। यद्यपि अनुभव उन्हें कुछ भी नहीं हुआ, क्योंकि अनुभव हो जाए तो लौटने का कोई उपाय नहीं है।
जिस चीज को हम जान लेते हैं, हम उसको ट्रांसेंड कर जाते हैं; उसके पार निकल जाते हैं। लेकिन जो आदमी परमात्मा को ही जान लेगा, फिर तो उसके कहीं भी लौटने का कोई उपाय न रहा, क्योंकि जीवन की अंतिम शिक्षा पूरी हो गई। परमात्मा का अर्थ है, जीवन का अंतिम निष्कर्ष, अस्तित्व का सार, अस्तित्व का केंद्र; अस्तित्व का आखिरी कमल खिल गया; अस्तित्व ने आखिरी गीत गा लिया; अस्तित्व ने आखिरी नृत्य देख लिया; अस्तित्व की जो गहनतम संभावना थी, वह अभिव्यक्त हो गई; अब लौटने का कोई उपाय न रहा।

तो परमात्मा जो है, वह प्वाइंट आफ नो रिटर्न है। वहां से आप वापस नहीं गिर सकते। और जहां से भी आप वापस गिर सकते हैं, वहां तक जानना कि परमात्मा नहीं है, वहां तक संसार है। और जहां से भी आप वापस गिर सकते हैं, तो समझ लेना कि आप छलांग लगाकर उचकने की कोशिश किए होंगे, लेकिन वह नई अवस्था आपके लिए सहज नहीं थी। आप अपनी पुरानी अवस्था में गिर गए हैं।
एक आदमी छलांग लगाए आकाश में, तो क्षणभर के लिए उचक सकता है। फिर जमीन खींच लेगी। अपनी जगह फिर खड़ा हो जाएगा। अगर आकाश में छलांग ही लगानी हो, तो फिर जमीन का गुरुत्वाकर्षण तोड़ने का कोई उपाय करना पड़ेगा। हवाई जहाज कोई उपाय करता है, तो जमीन के गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाता है, या जमीन के गुरुत्वाकर्षण के रहते भी आकाश में सदा रह जाता है।
हम सब ऐसे हवाई जहाज हैं, जिनको यह पता ही नहीं है कि हम जमीन के गुरुत्वाकर्षण से ऊपर उठ सकते हैं। और हमारा उपयोग लोकवाहक की तरह, पब्लिक कैरियर की तरह किया जा रहा है! समान ढो रहे हैं, जमीन पर ही। हवाई जहाज से हम चाहें तो ठेले का काम भी ले सकते हैं, लारी का, ट्रक का। और अगर हवाई जहाज के पायलट को ख्याल ही न हो कि यह हवाई जहाज जमीन को छोड़कर भी उड़ सकता है, तो बेचारा जमीन पर ही ट्रक का काम करता रहेगा; जमीन पर ही सामान ढोता रहेगा!
ध्यान रहे, ट्रक तो आकाश में नहीं उड़ सकता, लेकिन हवाई जहाज जमीन पर चल सकता है। श्रेष्ठ में निकृष्ट तो समाया होता है, लेकिन अगर आप निकृष्ट के आदी हो जाएं, तो श्रेष्ठ का ख्याल ही मिट जाता है।
परमात्मा के स्मरण का इतना ही अर्थ है, उसकी पूजा का इतना ही अर्थ है,
कि तुम्हीं हो मेरे गंतव्य, कि जब तक मैं तुम्हीं न हो जाऊं, तब तक मेरे लिए कोई भी ठहराव नहीं है; तुम्हीं हो मुकाम, और जब तक तुम्हीं न मिल जाओ, तब तक मेरे लिए कोई पड़ाव पड़ाव नहीं है। रुकूंगा, रातभर ठहरूंगा, सिर्फ इसलिए कि सुबह चल सकूं! रुकूंगा, विश्राम कर लूंगा, सिर्फ इसलिए कि पैर थक गए; और पैरों की ताकत लौट आई तो फिर चल पडूंगा।
लेकिन हम भी, चलते तो हम भी बहुत हैं, लेकिन हमारा चलना ऐसा है कि जिस जमीन पर हम बार-बार चल चुके हैं, हम उसी पर लौट-लौटकर चलते रहते हैं। एक ही जगह को हम कई बार पार करते रहते हैं। हमारी जिंदगी गति नहीं करती; जैसे कि मालगाड़ी के डब्बे शंटिंग करते हैं स्टेशन पर, वैसी हमारी जिंदगी है, वहीं- वहीं शंटिंग करते रहते हैं। कहीं कोई अंतिम मुकाम नहीं आता। बस, दौड़-धूप में, आखिर में यह शंटिंग होते-होते हम टूटते और चुक जाते हैं।
पुनर्जन्म का अर्थ है, शंटिंग। उसका अर्थ है कि यात्रा पर नहीं निकल
पा रहे हैं आप। फिर वहीं लौट आने का अर्थ है कि आगे कोई गति नहीं सूझ रही है आपको।
कृष्ण कहते हैं, लेकिन जो मुझे भजता है, वह फिर नहीं लौटता है। क्योंकि वह भजन अंतिम है।
परमात्मा अंतिम निष्कर्ष है--आखिरी, दि अल्टिमेट, परम। उसके पार कुछ नहीं है। या हम ऐसा कहें, जिसके पार हमारी कोई समझ नहीं जाती, वही परमात्मा है। जिसके पार हम सोच भी नहीं सकते; जिसके अतीत और जिसके पार की कल्पना भी नहीं बनती, वही परमात्मा है।
इस परमात्मा के भजने, इस परमात्मा के पूजने का क्या अर्थ? कैसे कोई पूजेगा?
तीन बातें अंत में आपसे कहूं।
एक, जीवन को पुनरुक्ति न बनने दें; स्मरणपूर्वक पुनरुक्ति से बचें। डोंट गो ऑन रिपीटिंग; दोहराए मत चले जाएं। कहीं से भी ढांचे को तोड़ें। और कहीं से भी इस दोहरती हुई यांत्रिक प्रक्रिया के बाहर हो जाएं। छोटे-मोटे प्रयोग से भी आदमी बाहर होना शुरू हो जाता है; बहुत छोटे-मोटे प्रयोग से! हमारी सबकी प्रतिक्रियाएं बंधी हुई हैं। अगर मैंने आपको गाली दी, तो प्रेडिक्टेबल है कि आप क्या करोगे! जो आपको जानते हैं, वे भलीभांति बता सकते हैं कि आप क्या करोगे! एक पत्नी बीस साल पति के साथ रहकर भलीभांति जानती है कि अगर वह यह कहेगी, तो पति यह जवाब देगा! आदमी प्रेडिक्टेबल हो जाता है।

पति भलीभांति जानता है कि घर पहुंचकर पत्नी क्या पूछने वाली है! उत्तर भी रास्ते में तैयार कर लेता है कि वह यह कहेगी, यह उत्तर हो जाएगा! और यह भी जानता है कि इस उत्तर को वह मानने वाली नहीं है। पत्नी भी जानती है कि मैं यह पूछूंगी, तो क्या उत्तर मिलेगा! जानते हुए भी कि यह उत्तर मिलेगा, वह पूछेगी; उत्तर पाएगी, मानेगी नहीं। लेकिन कहीं से भी हम अपनी यंत्रवत व्यवस्था को तोड़ेंगे नहीं।
कहीं से भी तोड़ें। कोशिश करें अनप्रेडिक्टेबल होने की। कोशिश करें कि आपके बाबत भविष्यवाणी न हो सके। कोई यह न कह सके कि अगर हम चांटा मारेंगे, तो वे क्या करेंगे!
जिस दिन आप अनप्रेडिक्टेबल हो जाते हैं, जिस दिन आपके बाबत कोई प्रतिक्रिया को पूर्व-घोषित नहीं किया जा सकता, आप पहली दफा मनुष्य होते हैं। उसके पहले आप यंत्रवत होते हैं।
कुछ नहीं कहा जा सकता, अगर जीसस के गाल पर आप चांटा मारें, तो जीसस क्या करेंगे, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अगर बुद्ध को आप पत्थर मारें, तो बुद्ध क्या करेंगे, कुछ भी नहीं कहा जा सकता।
एक आदमी ने बुद्ध के ऊपर आकर थूक दिया था; तो वह आदमी सोच भी नहीं सकता
था कि बुद्ध क्या करेंगे। बुद्ध ने अपनी चादर से उस आदमी के थूक को पोंछ लिया और उस आदमी से कहा, तुम्हें कुछ और भी कहना है?
उस आदमी ने कहा, आप क्या कह रहे हैं? मैंने थूका है, कुछ कहा नहीं!
बुद्ध ने कहा, मैं समझ गया। कई बार ऐसा हो जाता है कि आदमी इतने भाव से
भर जाता है कि शब्दों में नहीं कह पाता, तो किसी चेष्टा से कहता है। तुम शायद ज्यादा क्रोध से भर गए हो कि गाली भी कम पड़ती होगी; तुमने थूककर कहा। मैं समझ गया। अब तुम बोलो, तुम्हें और क्या कहना है?
अब यह अनप्रेडिक्टेबल है। इस आदमी को हम यांत्रिक नहीं कह सकते। इस आदमी को यांत्रिक कहना मुश्किल है। यह आदमी दोहरा नहीं रहा है।
लेकिन वह दूसरा आदमी तो मुश्किल में पड़ गया। रातभर उसने सोचा, सो नहीं पाया। अगर ये बुद्ध उसको गाली दे देते, या उसके ऊपर थूक देते, तो ज्यादा दया होती। एक अर्थ में वह रात सो सकता। अगर ये भी नाराज हो जाते, तो वह रात निश्चिंत सो जाता; क्योंकि दिक्कत ही खतम हो गई थी। सर्किल पूरा हो जाता। घटना पूरी हो जाती। बुद्ध ने पोंछकर पूछ लिया कि और कुछ कहना है? तो अटक गई बात अधूरी। मन रातभर बेचैन रहा कि यह आदमी कैसा है? फिर मन को यह भी होने लगा कि मैंने गलत आदमी के ऊपर थूक दिया! यह ठीक नहीं किया मैंने थूककर! ऐसे आदमी पर तो कम से कम नहीं थूकना था!
रातभर जागता रहा। बेचैन रहा। सुबह ही भागा हुआ आया। बुद्ध के पैर पर गिर पड़ा। पैर पर उसके आंसू टपकने लगे। बुद्ध ने उसे उठाया, चादर से पैर के आंसू पोंछे और पूछा, और कुछ कहना है? क्योंकि आज तुम फिर उसी हालत में आ गए। कुछ कहना चाहते हो, नहीं कह पा रहे, शब्द ओछे पड़ते हैं; आंसू टपकाकर कहते हो। बोलो, क्या कहना है?
उस आदमी ने कहा, मैं क्षमा मांगने आया हूं।
बुद्ध ने कहा, छोड़ो भी। कल तो कब का बह गया, तुम किससे क्षमा मांगने आए हो? वह आदमी अब तुम्हें कहां मिलेगा, जिसके ऊपर तुमने थूका था?
उस आदमी ने कहा, क्या आप वह आदमी नहीं हैं? क्या कह रहे हैं? क्यों मुझे मुसीबत में डाल रहे हैं! आप ही वे आदमी हैं, जिन पर मैं थूक गया था। बुद्ध ने कहा, लेकिन चौबीस घंटे में, जानते हो, गंगा का कितना पानी बह जाता है? चौबीस घंटेभर बाद अगर तुम उसी गंगा से क्षमा मांगने जाओगे, जिसमें थूक गए थे, तो वह गंगा कहेगी, मुझे पता ही नहीं। किस में तुम थूक गए थे? पानी कितना बह गया चौबीस घंटे में! छोड़ो भी। भूलो भी। क्यों रुक गए हो उस पर? थूककर जितनी गलती की थी, उससे बड़ी गलती यह कर रहे हो कि अब उसी पर रुके हुए हो, रातभर खराब की! छोड़ो।
लेकिन वह आदमी कैसे छोड़ दे? वह दूसरे दिन फिर आता है कि मुझे क्षमा कर दो। वह तीसरे दिन फिर आता है कि मुझे क्षमा कर दो। वह चौथे दिन फिर आता है कि मुझे क्षमा कर दो!

वह पुनरुक्त कर रहा है; एक घेरे में घूम रहा है। वह एक घेरे में घूम रहा है। और बुद्ध आनंद से कहते हैं कि अगर इसे मैं क्षमा कर दूं, तो यह फिर थूक सकता है। यह प्रेडिक्टेबल है, इसकी घोषणा की जा सकती है। यह बेचैन हो रहा है सिर्फ इसीलिए कि एक क्रिया पूरी नहीं हो पा रही है। इसको बेचैनी मालूम हो रही है।
मन पूरा करना चाहता है कोई भी काम; पूरा हो जाए तो निश्चिंत हो जाता है। इनकंप्लीट, कोई चीज अधूरी रह गई, तो मन ऐसे ही बेचैन होता है, जैसे दांत गिर जाए आपका एक, तो जीभ वहां बार-बार जाती है; खाली जगह को बार-बार छूती है। लाख कोशिश करो कि मत छुओ; पता तो है कि गिर गया दांत, फिर जीभ वहीं चली जाती है। वह जीभ यह कहती है, समथिंग इनकंप्लीट; कोई चीज अधूरी है; इसको पूरा करो, भरो।
ठीक, मन ऐसे ही पूरे समय कोशिश करता है भरने की। लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्ति अघोष्य हो जाते हैं; अनप्रेडिक्टेबल हो जाते हैं। उनके बाबत कुछ कहा नहीं जा सकता। इतने ज्यादा हो जाते हैं... ।
एक आदमी सुबह बुद्ध से पूछता है, ईश्वर है? बुद्ध कहते हैं, नहीं है। दोपहर दूसरा आदमी पूछता है, ईश्वर है? बुद्ध कहते हैं, है। तीसरा आदमी शाम पूछता है, ईश्वर है? बुद्ध कुछ भी नहीं कहते; चुप रह जाते हैं।
रात आनंद घबड़ा जाता है। उनके साथ था वह दिनभर। वह रात पूछता है कि मेरी मुश्किल कर दी। मैं सो न सकूंगा। पहले मुझे समझा दो। सुबह एक आदमी से कहा ईश्वर नहीं है; दोपहर एक आदमी से कहा है; सांझ बिल्कुल चुप रह गए, कुछ भी न कहा!
बुद्ध ने कहा, जो उत्तर तुझे दिए नहीं गए, वे तूने लिए क्यों? वे जिनको दिए गए थे, उनके और मेरे बीच का मामला है।
आनंद ने कहा, लेकिन मैं बहरा तो नहीं हूं! मुझे सुनाई पड़ गए। और अब मैं सोच रहा हूं कि सही बात क्या है?
बुद्ध ने कहा, सही बात तो तीनों में ही नहीं है। तू सो जा।
उसने कहा, अब मैं बिल्कुल न सो सकूंगा। वह सही बात क्या है? रातभर मेरे
मन में यही दोहरता रहेगा कि वह सही बात क्या है?
बुद्ध ने कहा, सही बात कुल इतनी है कि जो आदमी सुबह आया था और पूछता था, ईश्वर है? वह आस्तिक था; पर वैसा ही आस्तिक, जैसे अक्सर आस्तिक होते हैं। उसका अपना कोई अनुभव नहीं था, सिर्फ मान्यता थी। और वह इसलिए नहीं आया था कि ईश्वर को जानना चाहता था। सिर्फ इसलिए आया था कि बुद्ध और उसके मत और विश्वास के सहायक हो जाएं। वह अपने विश्वास को मजबूत करने आया था, जानने नहीं। जानने की उसकी कोई तैयारी न थी। वह तो सिर्फ यह कहने आया था कि किसी दिन वह कह सके कि मैं तो मानता ही हूं, बुद्ध भी मानते हैं! वह मुझे भी अपनी कतार में खड़ा करने आया था!
तो उससे मुझे कहना पड़ा कि नहीं; ईश्वर नहीं है। उसके अहंकार को तोड़ना जरूरी था। और उससे कहना जरूरी था कि ऐसे मानने से कुछ भी न होगा। है ही नहीं, मानकर क्या करेगा! देखा तूने कि वह कैसे कंप गया, जैसे झंझावात में कोई वृक्ष की जड़ें कंप जाएं। देखा तूने, उसका चेहरा कैसा लाल आग से भर गया! देखा तूने कि उसके अहंकार को कैसी भयंकर चोट लगी! अब वह किसी से अपने अहंकार की पुष्टि में मेरा नाम नहीं ले पाएगा। और अब एक बेचैनी की तरह मैं उसका पीछा करूंगा। अब उसे पता तो है नहीं कि ईश्वर है या नहीं? बुद्ध ने कहा कि नहीं है। अब उसे खोजना ही पड़ेगा। इसके पहले अब वह हिम्मत से कभी न कह सकेगा कि है।
दोपहर जो आदमी आया था, वह नास्तिक था। वह मेरे से गवाही लेने आया था कि मैं भी कह दूं कि नहीं है, ताकि वह जाकर लोगों से कहे कि मैं ही नहीं कहता, बुद्ध भी कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। उससे मुझे कहना पड़ा कि है। उसे भी हिलाना जरूरी था।
झूठी श्रद्धाएं जब तक हिलें न, तब तक सच्ची श्रद्धाएं पैदा नहीं होतीं। थोथे विश्वास जब तक उखाड़ें न जाएं, तब तक आत्मगत भरोसों का जन्म नहीं होता।

और सांझ जो आदमी आया था, वह सीधा, सरल, निर्दोष आदमी था। उसकी कोई मान्यता न थी। न वह मानता था कि है, न वह मानता था कि नहीं है। वह बच्चों की तरह भोला था। उसे कोई भी उत्तर देना उचित न था। चुप रह जाना उचित था। वह मेरी बात समझ गया। वह आनंदित वापस लौट गया। वह समझ गया कि ईश्वर के संबंध में चुप होने से ही उसका पता चलेगा। मौन रह जाने से ही। कुछ मत कहो। है और नहीं में उसे नहीं कहा जा सकता। वह मेरी चुप्पी को समझ गया, वह मेरे पैर छूकर गया है। आनंद, तूने देखा! वह पैर छूकर गया है। पैर छूते वक्त तूने उसकी आंखें देखी थीं? वे जैसे शांत झील की तरह हो गई थीं। और वह आदमी जल्दी ही प्रभु को पा लेगा।
अब ऐसे आदमी से अगर आप जाकर पूछें, तो उत्तर तक निश्चित नहीं है कि वह क्या कहेगा! स्पांटेनियस होगा, रिपिटीटिव नहीं होगा। सहज होगा; पुनरुक्ति नहीं होगी। वह वही कहेगा, जो उस क्षण में उसकी पूरी अंतरात्मा से निकलेगा। वह वही करेगा उस क्षण में, जो उसके पूरे प्राणों से जन्म लेगा। वह किसी चीज को दोहराएगा नहीं। और अगर हमें दोहराता हुआ भी दिखाई पड़े, तो वह हमारी ही भूल होगी।
हमको रोज लगता है कि सुबह सूरज निकलता है, वही सूरज। लेकिन जो सूर्योदय को देखते हैं, वे जानते हैं कि दुबारा एक सूर्योदय फिर नहीं होता; न तो वैसे बादल होते, न वैसे रंग होते; न वैसी सुबह होती, न वे गीत होते, न वह आकाश होता। हर रोज सुबह नया सूरज उगता है। नए सूरज का मतलब, सब नया होता है।
ऐसा व्यक्ति प्रतिपल नया होता है।
तो एक बात ध्यान रखें, पुनरुक्ति को तोड़ें। दूसरी बात ध्यान रखें, जो कुछ भी चाहें, गहरे खोजें; तो हर चाह में परमात्मा की चाह छिपी हुई मिलेगी। अपनी हर चाह में अंततः परमात्मा को खोजने का उपाय करें। तो धीरे-धीरे चाहें गिर जाएंगी और परमात्मा की मौलिक चाह ही शेष रह जाएगी; ऊपरी चाहें गिर जाएंगी और भीतरी चाह प्रकट हो जाएगी।
और तीसरी बात, अंतिम को ही लक्ष्य बनाएं, बीच का कोई पड़ाव मंजिल नहीं
हो सकता। परमात्मा से कम को लक्ष्य मत बनाएं। क्योंकि जो लक्ष्य है, अंततः आपकी चेतना का तीर उसी लक्ष्य में बिंध जाएगा, और उसी के साथ एक हो जाएगा। इसलिए छोटे लक्ष्य मत बनाएं।
हम सबकी जिंदगी बहुत छोटी-छोटी रह जाती है, छोटे-छोटे लक्ष्यों के कारण। हम क्षुद्र रह जाते हैं, क्षुद्र लक्ष्यों के कारण।
अब एक आदमी की जिंदगी का लक्ष्य अगर रुपया ही इकट्ठा करना है, तो इस आदमी के पास जो आत्मा होगी, वह आत्मा बहुत बड़ी नहीं हो सकती। कैसे होगी? इसकी आत्मा इसकी अभीप्सा ही तो है। यह धन इकट्ठा करना ही इसकी कुल जमा दौड़ है। तो इसकी आत्मा ज्यादा से ज्यादा एक लोहे की तिजोड़ी हो सकती है। और क्या हो सकती है? इसकी आत्मा का और क्या होगा मूल्य? इसकी आत्मा रुपए से भी छोटी होगी। तभी तो रुपए के प्रति इतनी आकर्षित और आंदोलित है।
एक आदमी बड़ी कुर्सी पर पहुंचना चाहता है, तो पहुंच जाएगा एक दिन। लेकिन इसकी आत्मा एक मुर्दा कुर्सी से ज्यादा बड़ी नहीं हो सकती!
अंतिम को लक्ष्य बनाएं, क्योंकि अंततः वही आप हो जाएंगे। उस पर श्रद्धा रखें जो आखिरी है, चाहे वह असंभव ही क्यों न मालूम पड़े। क्योंकि संभव को जो चुनता है, वह क्षुद्र हो जाता है। असंभव को चुनें।
और ईश्वर से ज्यादा असंभव कुछ भी नहीं है। अदृश्य, अरूप, निराकार असंभव मालूम पड़ता है। उसे चुनें। उसकी तरफ उपासना को बढ़ाते चलें। एक दिन पाएंगे कि वह तो मिल गया; आप खो गए। एक दिन पाएंगे, आप तो नहीं बचे, वही रह गया। एक दिन पाएंगे, आप वही हो गए हैं।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट रुकें। कोई बीच में उठे न। कीर्तन पूरा हो जाए, फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
ग्यारहवां प्रवचन

कर्ताभाव का अर्पण

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। 26।।
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।। 27।।
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।। 28।।
तथा हे अर्जुन! मेरे पूजन में पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कुछ कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र, पुष्प, फल आदि मैं ही ग्रहण करता हूं।
इसलिए हे अर्जुन, तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरण रूप तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर।
इस प्रकार कर्मों को मेरे अर्पण करने रूप संन्यास-योग से युक्त हुए
मन वाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबंधन से मुक्त हो जाएगा और उनसे मुक्त हुआ मेरे को ही प्राप्त होवेगा।

परमात्मा की पूजा भी करनी हो, तो भी हमारे पास ऐसा कुछ भी नहीं है उसे देने को, जिसे हम अपना कह सकें। और जो हमारा ही नहीं है, उसे देने का भी क्या अर्थ है? जो कुछ भी है, उसका ही है। तो पूजा में उसके द्वार पर भी हम जो रखेंगे, उसका ही उसे लौटा रहे हैं।
मनुष्य के पास ऐसा क्या है जो परमात्मा का दिया हुआ नहीं है? अगर उसकी
ही चीजें उसे लौटा रहे हैं, तो बहुत अर्थ नहीं है। कुछ ऐसा उसे दें, जो उसका दिया हुआ न हो, तो ही पूजा में चढ़ाया, तो ही पूजा में हमने कुछ अर्पित किया। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। बड़ी कठिनाई होगी खोजने में। क्योंकि क्या है जगत में जो उसका नहीं है? अगर वृक्षों से तोड़कर फूल मैं चढ़ा आता हूं उसके चरणों में, वे फूल तो उसके चरणों में चढ़े ही हुए थे! और अगर नदी का जल भरकर उसके चरणों में ढाल आता हूं, तो वह नदी तो सदा से अपना सारा जल उसके चरणों में ढाल ही रही थी! मैं इसमें क्या कर रहा हूं? और इस करने से मेरे जीवन का रूपांतरण कैसे होगा?
लेकिन एक बात जरूर मनुष्य के पास ऐसी है, जो परमात्मा की दी हुई नहीं है। एक ही बात ऐसी है। कर्ता का भाव, मैं कुछ कर रहा हूं, यह परमात्मा का दिया हुआ नहीं है; यह आदमी का अपना अर्जित है। यह अहंकार कि मैं कुछ कर रहा हूं, आदमी की अपनी खोज है। यह आदमी का अपना आविष्कार है। और जब तक कोई आदमी इस भाव को उसके चरणों में न चढ़ा दे, तब तक वह रूपांतरण घटित नहीं होता, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं।
इसलिए वे कहते हैं कि तू खाए तो, तू चले तो, बैठे तो, हवन करे तो, तू जो कुछ भी करे, वह सब मेरे अर्पण कर। कर्मों को मेरे अर्पण कर। कर्ता होने के भाव को मुझे अर्पण कर। और जिस क्षण तू यह कर पाएगा, उसी क्षण तू संन्यस्त हो गया।
यह बहुत अदभुत बात है। क्योंकि संन्यास का अर्थ होता है, कर्म को छोड़ देना, कर्म का त्याग। कृष्ण कर्म के त्याग को नहीं कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, कर्म तो तू कर, लेकिन मुझे अर्पित होकर। कर्म को छोड़ नहीं जाना है, करते जाना है। लेकिन वह जो करने वाला है, उसे छोड़ देना है; वह जो भीतर मैं खड़ा हो जाता है, उसे विसर्जित कर देना है।
अहंकार अकेली चीज है आदमी के हाथ में, जो पूजा में चढ़ाई जा सकती है। वह आदमी की अपनी है, बाकी तो सब परमात्मा का है। लेकिन दो-तीन बातें और इस संबंध में समझ लेनी जरूरी होंगी। कठिन भी है उसे ही चढ़ाना। धन आदमी चढ़ा

सकता है। जोश में हो, तो जीवन भी चढ़ा सकता है। गर्दन भी काटकर रख सकता है। इतना कठिन नहीं है। ऐसे भक्त हुए हैं, जिन्होंने गर्दन काटकर चढ़ा दी, अपना जीवन समर्पित कर दिया। वह उतना कठिन नहीं है, क्योंकि जीवन भी उसी का ही है। लेकिन जिसने गर्दन चढ़ाई है, वह भी भीतर समझता रहता है कि मैं गर्दन चढ़ा रहा हूं! याद रखना, स्मरण रखना, भूल मत जाना, मैं गर्दन चढ़ा रहा हूं!
गर्दन जब कटती है, तब भी भीतर मैं खड़ा रहता है। मैं को बचाकर भी गर्दन चढ़ाई जा सकती है। और अगर मैं बच गया, तो जो हम चढ़ा सकते थे, वह बच गया; और जो चढ़ा ही हुआ था, वही वापस लौट गया। धन कोई चढ़ा दे, जीवन कोई चढ़ा दे, पद-प्रतिष्ठा कोई चढ़ा दे, सब कुछ चढ़ा दे, लेकिन पीछे मैं बच जाए, तो जो चढ़ाना था, वह बच गया और जो चढ़ा ही हुआ था, वह हमने चढ़ा दिया। और चढ़े ही हुए को चढ़ाकर हम और अपने मैं को मजबूत कर लेते हैं कि मैंने इतना चढ़ाया है। चढ़ाने वाले भी हिसाब रखते हैं!
एक आदमी कुछ दिन पहले मेरे पास आया था। उसने मुझे कहा कि मैं इतने लाख दफा राम का नाम स्मरण कर चुका हूं। वह हिसाब रखे है, कापी बनाए हुए है! सारा हिसाब है कि कितने लाख दफा उसने राम का नाम लिया। यह आदमी राम के पास भी जाएगा, तो कापी लेकर जाने वाला है। और कहेगा कि याद है? कितना मैं चिल्लाया! कितने मैंने नाम लिए! यह सब हिसाब मेरे साथ है।
लोग प्रेम में भी गणित को ले आते हैं! लोग प्रार्थना में भी हिसाब, बही-खाते रख लेते हैं! सब व्यर्थ हो गया। क्योंकि यह हिसाब-किताब जो रख रहा है, वह अहंकार है। यह जो कह रहा है कि मैंने इतने नाम लिए, अब यह नाम भी संपत्ति हो गई। अब ये करोड़ों सिक्के हो गए मेरे पास। अब इन करोड़ों सिक्कों के साथ मैं उसके पास पहुंचूंगा।
कीर्कगार्ड ने, एक ईसाई फकीर ने और एक अदभुत विचारक ने अपनी डायरी में
एक वक्तव्य लिखा है। उसने लिखा है कि मैंने सब उसके लिए चढ़ा दिया; समस्त बुरे कर्म छोड़ दिए; सब पापों से अपने को बचा लिया; सब तरह की अनीति से अपने को दूर कर लिया। एक दुर्गुण मुझ में न रहा। और तब मुझे एक दिन ऐसा पता चला कि मुझ में गुण ही गुण हैं! और मैंने पाया कि मेरे भीतर अहंकार लपट की भांति खड़ा हो गया है। और तब मुझे पता चला कि ये मेरे गुण भी मेरे अहंकार का ही भोजन बन गए हैं। यह मेरा सदाचरण भी, यह मेरा नैतिक जीवन भी, मेरे अहंकार का ही पोषण बन गया है। और उस दिन मैं रातभर रोया, उसने लिखा है, कि हे परमात्मा, इससे तो बेहतर था कि मैं पापी था, बुरा था; कम से कम यह अहंकार तो खड़ा नहीं होता था। बुराई से मैं छूट गया, अब भलाई से तू मुझे छुड़ा। यह भलाई नया कारागृह बन गई।
और ध्यान रहे, बुरे आदमी के पास जो अहंकार होता है, दीन होता है; और भले आदमी के पास जो अहंकार होता है, बड़ा सबल हो जाता है। इसलिए बुरे आदमी की बुराइयां बाहर हैं और भले आदमी की बुराई भीतर हो जाती है।
बुरा आदमी चोरी करता है, बेईमानी करता है, धोखा देता है। उसकी बुराइयां बाहर हैं। भला आदमी न चोरी करता, न बेईमानी करता। समय पर पूजा करता है, प्रार्थना करता है। नियम का पालन करता है। मर्यादा से जीता है। बाहर उसकी कोई बुराई नहीं है। लेकिन सब के मुकाबले भीतर एक बुराई खड़ी हो जाती है कि मैं भला आदमी हूं। जहां भी वह चलता है, वह भले आदमी का अहंकार साथ चलता है। इसलिए भला आदमी जब दूसरे की तरफ देखता है--तो गहरे में छान-बीन करना, तो पता चलेगा--वह ऐसे देखता है, जैसे दूसरा आदमी कीड़ा-मकोड़ा हो! यह तो बुरे आदमी से भी बुरा होना हो गया। यह तो बुराई गहरी हो गई। और बुरे आदमी ने दूसरों के साथ बुरा किया, इस भले आदमी ने अपने साथ भी बुरा कर लिया है। और बुरे आदमी ने दूसरों को धोखा दिया था, इस भले आदमी ने अपने को भी धोखा दे लिया है।
पूजा और प्रार्थना करने वाले का भी बड़ा सात्विक अहंकार मजबूत हो जाता है। और ध्यान रहे, जब अहंकार सात्विक होता है, तो बहुत जहरीला हो जाता है। कृष्ण कह रहे हैं कि तू सब छोड़ दे। बुरा-भला सब मुझ पर छोड़ दे। तू जो भी
कर रहा है, उसमें तू करने वाला मत रह। तू जान कि मैं तेरे भीतर से कर रहा हूं। तू ऐसा अर्पित हो जा।

कर्म छोड़ने को वे नहीं कह रहे हैं। इसलिए कृष्ण ने जो बात कही है, वह अति क्रांतिकारी है। कर्म छुड़ा लेने में बहुत कठिनाई नहीं है। आदमी कर्म छोड़कर जंगल जा सकता है। लेकिन कर्ता छुड़ा लेना असली कठिनाई है। और आदमी जंगल भी चला जाए कर्म को छोड़कर, तो यह अकड़ साथ चली जाती है कि मैं सब कर्मों को छोड़कर चला आया हूं। कर्ता पीछे साथ चला जाता है।
कर्म तो बस्ती में छूट जाएंगे, कर्ता नहीं छूटेगा। कर्ता आपके साथ जाएगा। वह आपकी भीतरी दशा है। आप मकान छोड़ देंगे, घर-दुकान छोड़ देंगे, काम-धाम छोड़ देंगे, सब तरफ से निवृत्त होकर भाग जाएंगे जंगल में, लेकिन वह जो भीतर कर्ता बैठा है, वह इस निवृत्ति के ऊपर भी सवार हो जाएगा। निवृत्ति भी उसी का वाहन बन जाएगी। और जाकर जंगल में, वह अकड़ से कहेगा कि सब छोड़ चुका हूं। यह छोड़ना कर्म हो जाएगा। यह छोड़ना कर्म हो जाएगा, यह त्यागना कर्म हो जाएगा। और अहंकार इससे भी भर लेता है।
इसलिए कृष्ण ने कहा, कर्म छोड़कर कुछ भी न होगा अर्जुन, कर्ता को छोड़ दे!
यह दुरूह है, यह अति कठिन है। क्योंकि कर्म तो बाहर हैं। और जो भी बाहर है, उसको पकड़ना भी आसान है, छोड़ना भी आसान है। जो भीतर है, उसे पकड़ने में भी जन्मों-जन्मों लग जाते हैं; उसे छोड़ना भी उतना ही कठिन है।
मेरे हाथ में कोई चीज है, उसे मैं छोड़ दूं, आसान है। मेरी खोपड़ी में जब कोई चीज होती है, तो छोड़नी मुश्किल हो जाती है। खोपड़ी में हो, उसे भी छोड़ा जा सकता है। लेकिन जो मेरी चेतना में प्रवेश कर जाए, उसे फिर छोड़ना और भी मुश्किल हो जाता है।
यह अहंकार, हमारे भीतर गया गहरे से गहरा संसार है। संसार का तीर हमारे भीतर जो गहरे से गहरे में चला गया है, उसका नाम अहंकार है; उस घाव का नाम अहंकार है। वह हमारे भीतर है। वह हमारे भीतर है। और हमारा मजा ऐसा है कि हम उस तीर को और दबाए चले जाते हैं, ताकि अहंकार और भीतर चला जाए। खाज हो जाती है न किसी को, तो खुजलाने से भी आनंद मालूम पड़ता है।
अहंकार आत्मिक खाज है; उसे खुजलाने से भी आनंद मालूम पड़ता है। पीछे कितनी ही पीड़ा हो, लेकिन जब खुजाते हैं, तब लगता है, बड़ा सुख मिल रहा है! जिसको भी कभी खाज हुई हो, उसे पता होगा। लेकिन अहंकार तो सभी को हुआ है, सभी को पता होगा। उसे खुजलाने में सुख मिलता है। हालांकि सभी दुख उसी खुजलाने से पैदा होते हैं।
खाज को खुजलाने से लहूलुहान हो जाता है शरीर, पीछे पीड़ा आती है। और अहंकार को खुजलाने से आत्मा लहूलुहान हो जाती है, और जन्मों-जन्मों तक पीड़ा की सततशृंखला बन जाती है। लेकिन फिर भी हम खुजलाए चले जाते हैं, और तीर को भीतर धंसाए चले जाते हैं। घाव में भी तीर लगता है, तो हमें रस आता है।
कृष्ण कहते हैं, इसको ही छोड़ दे। यह मैं कर रहा हूं, इस भाव को छोड़ दे।
इस भाव को छोड़ना हो, तो दो अनिवार्य शर्तें हैं।
कहा है कृष्ण ने, उस शुद्ध बुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ सभी कुछ मैं ग्रहण करता हूं।
दो शब्दों का उपयोग किया है, शुद्ध बुद्धि और निष्काम प्रेमी।
बुद्धि कब शुद्ध होती है? और प्रेम कब पवित्र होता है? बुद्धि तब शुद्ध होती है... जैसा हम आमतौर से सोचते हैं, तब नहीं। हम सब सोचते हैं कि अगर बुद्धि में शुद्ध विचार हों, तो बुद्धि शुद्ध हो जाती है। इससे ज्यादा भ्रांति की कोई दूसरी बात नहीं है। इसलिए यह समझना थोड़ा कठिन पड़ेगा। हम समझते हैं कि बुद्धि के शुद्ध होने का अर्थ है, शुद्ध विचार, अच्छे विचार, सात्विक विचार; सद विचार हों तो बुद्धि शुद्ध हो जाती है। लेकिन बुद्धि तब तक शुद्ध नहीं होती, जब तक विचार हों, चाहे वे सद विचार ही क्यों न हों। जब विचार ही नहीं रह जाते, तभी बुद्धि शुद्ध होती है।
जैसे एक आदमी के हाथ में लोहे की जंजीरें हैं। वह कारागृह में पड़ा है।
कल हम उसे सोने की जंजीरें पहना दें। शायद वह खुश हो कि अब मैं स्वतंत्र हो गया, क्योंकि जंजीरें अब सोने की हो गईं। अच्छी जंजीरें, हीरे-जवाहरात जड़े

हों! लेकिन वह स्वतंत्र नहीं हो गया। स्वतंत्र तो वह तभी होता है, जब जंजीरें अच्छी नहीं, जंजीरें होती ही नहीं!
ध्यान रखें, विचार की तीन अवस्थाएं हैं। एक विचार की अवस्था है, जिसको
हम अशुद्ध विचार कहें। अशुद्ध विचार का अर्थ है, जो वासना के पीछे दौड़ता हो, वृत्तियों के पीछे दौड़ता हो; शरीर को मालिक मानता हो, खुद गुलाम हो जाता हो! जहां वासना मालिक है और विचार गुलाम है, वहां बुरा विचार है, असद विचार है, अशुभ विचार है।
इसे हम बदल सकते हैं। बदलने का अर्थ यह है कि विचार मालिक हो गया, वासना गुलाम हो गई। अब वासना के पीछे विचार नहीं चलता, विचार के पीछे ही वासना को चलना पड़ता है। यह शुभ विचार हुआ, सद विचार हुआ, अच्छा विचार हुआ। लेकिन विचार भी मौजूद है और वासना भी मौजूद है; सिर्फ संबंध बदल गया। कल वासना मालिक थी, विचार गुलाम था; अब विचार मालिक है, वासना गुलाम है। लेकिन ध्यान रहे, आप गुलाम के मालिक भी हो जाएं, तो भी उससे बंधे रहते हैं। आप गुलाम की छाती पर भी बैठ जाएं, तो भी गुलाम आपको बांधे रखता है। आप छोड़कर हट नहीं सकते। गुलाम तो हट ही नहीं सकता, क्योंकि आप उसकी छाती पर चढ़े हैं। आप भी नहीं हट सकते, क्योंकि आप हटे कि छाती से उतरे। आपको गुलाम को दबाकर बैठे रहना पड़ेगा। शायद आप सोचते होंगे, गुलाम मुझसे बंधा है। गुलाम भी जानता है कि आप उससे बंधे हैं, हट नहीं सकते।
सुना है मैंने कि एक आदमी एक गाय को बांधकर अपने घर लौट रहा है। फकीर हसन उसे रास्ते में मिल गया और हसन ने पूछा कि मेरे मित्र, मैं एक बात जानना चाहता हूं। तुम गाय से बंधे हो कि गाय तुमसे बंधी है?
उस आदमी ने कहा, तू पागल मालूम होता है! यह भी कोई पूछने की बात है? जाहिर है कि गाय मुझसे बंधी है; मैं गाय को बांधकर ले जा रहा हूं।
तो फकीर हसन ने कहा, एक काम कर। अगर गाय तुझसे बंधी है, तो तू छोड़कर बता। तू छोड़ दे। फिर अगर गाय तेरे पीछे चले, तो हम समझें।
उस आदमी ने कहा, अगर मैं छोड़ दूंगा, गाय भाग खड़ी होगी, मुझे उसके पीछे भागना पड़ेगा।
तो फकीर हसन ने कहा, फिर तू ठीक से समझ ले। यह हाथ में जो रस्सी लिए है,
इस धोखे में मत पड़ना। अगर गाय भागे, तो तू उसके पीछे भागेगा, गाय तेरे पीछे नहीं भागेगी। अगर तू गाय को छोड़ दे, तो गाय तेरा पता लगाती हुई नहीं आने वाली है; तू ही उसका पता लगाता हुआ जाएगा। तो तू इस भ्रम में है कि तू गाय को बांधे हुए है।
जिसे हम बांधते हैं, उससे हम बंध भी जाते हैं; जीवन का यह एक अनिवार्य नियम है। इसलिए जो मुक्त होना चाहता है, वह किसी को बांधेगा नहीं। बांधा कि आप फिर मुक्त नहीं हो सकते।
अगर आपकी वासना को आपने दबा लिया और अच्छा विचार आप ऊपर ले आए, तो भी वासना नीचे कुलबुलाती रहेगी, भभकती रहेगी; लपटें उसकी उठती रहेंगी। आपको रोज-रोज दबाना पड़ेगा। जिसे एक दिन दबाया है, उसे रोज-रोज दबाना पड़ेगा। और दबाने से कोई वासना मिटती नहीं है, भभक भी सकती है और तेजी से, क्योंकि दमन से रस भी पैदा होता है। और जिसे हम दबाते हैं, उसमें आकर्षण भी बढ़ जाता है। और जिसे हम दबाते हैं, उसकी शक्ति भी इकट्ठी होती चली जाती है। फिर यह संघर्ष सतत है।
इसलिए जिसे हम बुरा आदमी कहते हैं, वह बाहर लोगों से लड़ता रहता है; जिसे हम अच्छा आदमी कहते हैं, वह भीतर अपने से लड़ता रहता है। जिसे हम बुरा आदमी कहते हैं, वह दूसरों को सताने की कोशिश में लगा रहता है; जिसे हम अच्छा आदमी कहते हैं, वह खुद को सताने की कोशिश में लगा रहता है। जिसे हम बुरा आदमी कहते हैं, वह इसीलिए बुरा है कि उसको वासना के पीछे भागना पड़ता है; जिसको हम अच्छा आदमी कहते हैं, उसे इसीलिए अच्छा कहते हैं कि वह अपनी वासना की छाती पर सवार होकर बैठ जाता है। लेकिन यह बैठ जाना भी स्टैटिक है। यह बैठ जाना भी मर जाना है। यह बैठ जाना भी रुक जाना है।
एक तीसरी भी अवस्था है बुद्धि की, जब विचार और वासना दोनों नहीं होते।
उस स्थिति का नाम शुद्ध बुद्धि है। शुद्ध बुद्धि का अर्थ है कि संघर्ष गया; जो लड़ने वाले थे, वे रहे ही नहीं। न बांधने वाला है अब, और न वह जिसे

बांधना था। न अब कोई मालिक है और न अब कोई गुलाम है। क्योंकि जहां मालिक और गुलाम हैं, वहां एक अंतर्संघर्ष जारी रहेगा ही।
चाहे समाज हो, जब तक समाज में मालिक और गुलाम हैं, तब तक समाज में एक संघर्ष जारी रहेगा ही। मार्क्स उसे क्लास स्ट्रगल कहता हैं। तो वर्ग-संघर्ष जारी रहेगा।
ठीक ऐसी ही घटना भीतर भी घटती है। जब तक भीतर भी मालिक और गुलाम में बंटावट है, जब तक बंटावन है भीतर, विभाजन है, तब तक भीतर भी एक संघर्ष, एक अंतर्संघर्ष जारी रहेगा, एक इनर कांफ्लिक्ट, एक अंतर्द्वंद्व भीतर भी बना रहेगा। शुद्ध नहीं है वह स्थिति।
कृष्ण कहते हैं, शुद्ध बुद्धि।
उसका अर्थ है, जिसकी बुद्धि इतनी शुद्ध हो गई कि अब वहां विचार की कोई तरंग भी नहीं है। एकदम निर्मल झील की तरह हो गई। बुरा विचार तो चला ही गया, गंदी लहर तो चली ही गई, वह लहर भी अब नहीं है, जिसको हम निर्मल लहर कहें, वह भी नहीं है। लहर ही न रही। मन झील की तरह मौन हो गया, जिस पर कोई भी तरंग नहीं है।
यहां ठीक से समझ लें।
नीति का संबंध सिर्फ इतने से है कि आपकी बुद्धि इस अर्थ में शुभ हो जाए कि अशुभ दब जाए और शुभ ऊपर आ जाए। नीति की दौड़ इतनी है। इसलिए नीति धर्म नहीं है। धर्म और बड़ी बात है! एक अधार्मिक आदमी भी नैतिक हो सकता है; कोई अड़चन नहीं है। एक नास्तिक भी नैतिक हो सकता है; कोई अड़चन नहीं है। नैतिकता का मतलब ही इतना है कि आप अपनी वासना को अपने विचार के नियंत्रण में कर लिए हैं। एक संयम उपलब्ध हुआ है। अब आपकी वासना आपको खींच नहीं पाती। अब आप उसे रोक पाते हैं। वासना की लगाम आपके हाथ में आ गई। घोड़ा जिंदा है, लगाम से आप उसे चला लेते हैं। लेकिन चौबीस घंटे उसको चलाने में ही व्यय होता है, और घोड़ा पूरे समय तलाश में होता है कि कब उसे मौका मिल जाए और वह छूटकर निकल भागे। उसके पीछे चौबीस घंटे आपको सजग चेष्टा में रत रहना पड़ता है।
और इसलिए कोई भी आदमी चौबीस घंटे तो सतत चेष्टा नहीं कर सकता, हर चेष्टा का अनिवार्य रूप विश्राम है। कोई भी आदमी चौबीस घंटे चेष्टारत नहीं हो सकता, विश्राम तो करना ही पड़ेगा। जो दिनभर जागा है, उसे रात सोना भी पड़ेगा। और जिसने दिनभर गड्ढा खोदा है, उसे हाथ-पैर को आराम भी देना पड़ेगा।
इसलिए नैतिक आदमी को बीच-बीच में विश्राम भी लेना पड़ता है। उसी विश्राम में उसकी अनीति प्रकट होती है। नैतिक आदमी को भी बीच-बीच में विश्राम लेना पड़ता है। कई बहाने खोजकर विश्राम लेता है। कभी कहता है, होली का उत्सव मना रहे हैं, तब वह गालियां बक लेता है। जो बेहूदगियां उसने सालभर नहीं कीं, अब वह मजे से कर लेता है।
नैतिक आदमी को भी बहाने खोज-खोजकर अपनी अनीति को छुट्टी का अवसर देना पड़ता है। क्योंकि थक जाएगा; विश्राम जरूरी है, छुट्टी का दिन जरूरी है। और अगर जागने में नहीं दे पाता, तो नींद में छुट्टी देनी पड़ती है। तो सपनों में सब बुरे कर्म कर लेता है; जो दिनभर दबाए रखे, वह रात सपनों में प्रकट हो जाते हैं।
अगर हम अच्छे आदमी के सपने देखें, तो वे अनिवार्य रूप से बुरे होते हैं। बुरे आदमी के सपने इतने बुरे नहीं होते। कारण नहीं है। बुरा आदमी दिन में ही बुरा कर लेता है, रात मजे से सो जाता है। अक्सर तो ऐसा होता है कि बुरा आदमी रात में बड़े अच्छे सपने देखता है। कांप्लिमेंट्री है। दिनभर बेचैन रहता है। कई दफा मन में उसके भी आता है कि अच्छा आदमी हो जाऊं। हो नहीं पाता, वह वासना अतृप्त रह जाती है। बुरा तो वह कर लेता है, जो करना है उसे। अच्छे की वासना अतृप्त रह जाती है, रात सपना बन जाती है।
अच्छा आदमी रात बुरे सपने देखता है। दिनभर तो अच्छा कर लेता है सम्हालकर, लेकिन भीतर बुरे का रंग और राग बजता रहता है; भीतर बुरे की ध्वनि बजती रहती है। वह मांग करती रहती है कि छुट्टी थोड़ी मुझे दो, बहुत ज्यादा लगाम मत खींचो। थोड़ा मुझे फुर्सत दो, मैं दौड़ सकूं। हवाएं अच्छी हैं,

रास्ता साफ है, सुबह का वक्त है, थोड़ा मुझे दौड़ लेने दो। नहीं देता, तो रात जब सो जाता है, लगाम छूट जाती है ढीली, तब मन दौड़ना शुरू हो जाता है।
एक मजे की बात है कि आदमी ने दिन में जो दबाया हो, वही रात उसके सपनों में प्रकट होता है। जो-जो दबाया हो, वही प्रकट हो जाता है। सपने सहयोगी हैं। फ्रायड कहता है, सपने सहयोगी हैं।
अगर अच्छा आदमी सो न सके, तो पागल हो जाएगा। अगर बुरा आदमी न सो सके, वह
भी पागल हो जाएगा। क्योंकि विश्राम चाहिए। वह जो दूसरा हिस्सा मांग कर रहा है, जिसको आप दबाकर बैठ गए हैं, उसको भी मौका चाहिए। वह भी आपका हिस्सा है।
कृष्ण इस आदमी को शुद्ध बुद्धि नहीं कहेंगे। वे कहेंगे कि ये दोनों
एक जैसे हैं। सिर्फ एक चीज नीचे थी, वह ऊपर आ गई; जो ऊपर था, वह नीचे आ गया। लेकिन टोटल, जोड़ वही है।
मैंने सुना है कि एक सर्कस में बंदरों की एक जमात है। और बंदरों को सम्हालने वाला जो आदमी है, वह रोज सुबह उन्हें चार रोटी देता है और सांझ को तीन रोटी देता है। एक दिन रोटी की कुछ कमी थी, तो उसने यह व्यवस्था बदल दी। उसने बंदरों को बुलाकर कहा कि आज से नियम बदलता है; सुबह तुम्हें तीन रोटी मिलेंगी और शाम तुम्हें चार रोटी मिलेंगी।
बंदरों ने बगावत कर दी। बंदर बहुत नाराज हुए। उन्होंने कहा, यह नहीं चलेगा। यह हो ही नहीं सकता। सुबह चार रोटी ही चाहिए और शाम को तीन रोटी ही चाहिए।
उस आदमी ने बहुत समझाया कि तुम बिल्कुल पागल हो, जोड़ तो करो। जोड़ तो सात ही होता है। बंदरों ने कहा, जोड़-वोड़ से हमें मतलब नहीं है। चार रोटी सुबह चाहिए, तीन रोटी शाम चाहिए। सुबह तीन रोटी दे दी जाएं, शाम चार रोटी दे दी जाएं; बंदर बड़े नाराज हुए।
लेकिन बंदर जोड़ नहीं जानते; क्षमा किए जा सकते हैं। आदमी भी जोड़ नहीं जानता है! नीचे को ऊपर कर लेते हैं, ऊपर को नीचे कर लेते हैं। सोचते हैं, सब ठीक हो गया। सिर्फ जोड़, जोड़ तो वही रहता है।
अच्छे और बुरे आदमी का जोड़ बराबर है। यह जरा कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, अच्छे और बुरे आदमी का टोटल, जोड़ बराबर है; ऊपर और नीचे का फर्क है। एक में चार रोटी सुबह हैं, तीन रोटी शाम हैं; एक में तीन रोटी सुबह हैं, चार रोटी शाम हैं।
इसका यह मतलब नहीं है कि मैं आपसे यह कह रहा हूं कि अगर आप अच्छे आदमी हों, तो बुरे आदमी हो जाएं। इसका यह मतलब नहीं है। इसका यह मतलब है कि आप अगर अच्छे आदमी हैं, तो अच्छे आदमी ही मत रह जाना।
क्योंकि अच्छे आदमी की उपयोगिता है। जहां तक समाज का संबंध है, समाज
का काम पूरा हो गया। उसे आपके भीतर से कोई मतलब नहीं है कि जोड़ क्या है। समाज का काम पूरा हो गया। आपका अच्छा चेहरा ऊपर आ गया, बुरा चेहरा आपके भीतर चला गया। वह आपकी बात हो गई। उसका कोई सामाजिक अर्थ नहीं है। समाज जानता है कि आप अच्छे आदमी हैं। आप समाज के लिए अच्छे आदमी हो गए, समाज की बात पूरी हो गई।
समाज को इससे ज्यादा चिंता नहीं है कि अब आप और कुछ हों। अच्छे आदमी
से समाज राजी है। पर्याप्त है। समाज चाहता है, बुरे आदमी आप न हों। आपका बुरा पहलू आपके भीतर हो, अच्छा पहलू बाहर हो। क्योंकि समाज का मतलब ही है कि हमारे बाहरी पहलुओं का जो मिलन है, उसका नाम समाज है।
मेरी आत्मा गंदी है, इससे आपको मतलब नहीं; मैं नहा-धोकर, साफ कपड़े पहनकर आपके पास आऊं, पर्याप्त है। क्योंकि आपका जो मिलन होने वाला है, वह मेरे शरीर से और मेरे कपड़ों से होने वाला है, मेरी आत्मा से नहीं। अगर मैं यह कहूं कि मेरी आत्मा बहुत पवित्र है, लेकिन मैं सब गंदगी ओढ़कर आपके पास आऊंगा; तो आप कहेंगे, आत्मा आप जानें, कृपा करके यह गंदगी मेरे पास न लाएं। समाज का अर्थ है, हमारे बाहरी व्यक्तित्व के मिलन का स्थल। समाज को इससे चिंता है कि आपका बाहर का पहलू ठीक हो जाए, भीतर की आप जानें। वह आपकी निजी समस्या है।

लेकिन धर्म इतने पर नहीं रुकता। धर्म कहता है कि असली, निजी समस्या को
ही हल करना है। अच्छा है कि आप अच्छे आदमी हैं, बुरे नहीं हैं। बेहतर है।
लेकिन धर्म कहता है, यह पर्याप्त नहीं है। जरूरी है, पर्याप्त नहीं है।
अच्छे हैं, बहुत अच्छा है। लेकिन अच्छे पर ही रुक गए, तो धोखे में हैं।
अच्छे से भी पार जाना होगा।
शुद्ध बुद्धि का अर्थ है, जहां न वासना रही, न विचार रहा; जहां दोनों
खो गए। तब सिर्फ शुद्ध चेतना रह जाती है।
तो एक शर्त तो कृष्ण ने कही कि शुद्ध बुद्धि हो और दूसरी बात कही कि निष्काम प्रेमी हो। प्रेम भी उसका निष्काम हो।
बुद्धि अशुद्ध होती है विचार से; प्रेम अशुद्ध हो जाता है वासना से, कामना से। ऐसा समझें कि बुद्धि से अर्थ है आपके चिंतन की क्षमता का, और प्रेम से अर्थ है आपके हृदय के अनुभव की क्षमता का। आपका मस्तिष्क अशुद्ध होता है विचार से, और आपका हृदय अशुद्ध होता है कामना से, वासना से। और जब तक हृदय और बुद्धि दोनों शुद्ध न हों, तब तक भक्त का जन्म नहीं होता। तब तक भक्त का जन्म नहीं होता।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि भक्त को आप ऐसा मत समझना कि वह सरल बात है। ऐसा लोग अक्सर समझाते हुए सुने जाते हैं कि भक्ति बड़ी सरल चीज है; ज्ञान तो बड़ा कठिन है।
लेकिन ध्यान रहे, ज्ञान की एक ही शर्त है कि बुद्धि शुद्ध हो। और भक्ति की शर्त दोहरी है, कि बुद्धि शुद्ध हो और हृदय निष्काम हो। इसलिए जो आपको समझाते हैं कि भक्ति सरल है, मैं नहीं समझ पाता कि वे कैसे समझाते हैं? क्योंकि बुद्धि तो शुद्ध हो ही, जितनी ज्ञान मांग करता है, उतनी तो मांग भक्ति करती ही है, उससे थोड़ी ज्यादा मांग भी करती है। हृदय भी, प्रेम की क्षमता भी वासनारहित हो।
तो भक्त सरल मामला नहीं है। लेकिन सरल इसलिए दिखाई पड़ने लगा कि भक्ति
से हमने जो कुछ जोड़ रखा है, वह सब ऐसा बचकाना है, ऐसा चाइल्डिश, जुवेनाइल है, कि लगता है कि सरल है! एक आदमी माला फेर रहा है, तो हम सोचते हैं, भक्त हो गया। एक आदमी जाकर मंदिर की घंटी बजा लेता है, हम सोचते हैं, भक्त हो गया। एक आदमी दीया भगवान के सामने घुमा लेता है, तो हम सोचते हैं, भक्त हो गया।
अगर भक्ति इतनी ही है, तो मैं आपसे कहता हूं, भक्ति से फिर आप कभी पहुंच ही न सकेंगे। इतना सस्ता यह रास्ता नहीं हो सकता। भक्ति अति जटिल है, अति कठिन है।
इसलिए दुनिया में अगर हम ठीक से खोजने जाएं, तो ज्ञानी जितनी बड़ी मात्रा में हुए हैं, उतनी बड़ी मात्रा में भक्त नहीं हुए हैं। यह सुनकर आपको हैरानी होगी। इसलिए ज्ञानियों के जगत में जो नाम हैं ऊंचाई पर, उतनी ऊंचाई पर भक्तों के नाम आप खोजकर न बता सकेंगे। बुद्ध हैं, कि महावीर हैं, कि शंकर हैं, कि याज्ञवल्क्य हैं--इनकी कोटि में, इस ज्वलंत कोटि में भक्तों को रखना मुश्किल पड़ जाएगा। और उसका कारण यह है कि भक्त होना दुरूह है, कठिन है। दोहरी शर्त है वहां।
और बुद्धि को शुद्ध कर लेना आसान भी है, हृदय को शुद्ध करना और भी जटिल है; क्योंकि बुद्धि ऊपर है, हृदय गहरे में है। और बुद्धि तो मैनिपुलेट की जा सकती है; हाथ से उसमें कुछ किया जा सकता है। लेकिन हृदय तो इतना अपना मालूम पड़ता है कि उसमें दूरी ही नहीं होती है; उसमें कुछ करना बहुत मुश्किल हो जाता है।
इसे ऐसा समझें। अगर मैं आपसे कहूं कि फलां व्यक्ति को आप कोशिश करें प्रेम करने की, तब आपको पता चलेगा कि कितना कठिन मामला है! कैसे कोशिश करेंगे प्रेम करने की? क्या कभी भी कोई कोशिश से प्रेम कर पाया है? कौन कर पाया है कोशिश से प्रेम कभी? जितनी कोशिश करेंगे, उतना ही पाएंगे, प्रेम मुश्किल हुआ चला जाता है!
आपसे बुद्धि का कोई भी सवाल हल करवाना हो, कोशिश से हल हो सकता है। कोई
भी विचार कितना ही जटिल हो, कोशिश से हल हो सकता है। किसी भी विचार को

समझने में कितनी ही अड़चन हो, कोशिश से हल हो सकती है। प्रेम कोशिश से हल नहीं होता; प्रयत्न बिल्कुल ही व्यर्थ है।
इसलिए प्रेमी को हम अंधा कहते हैं। इसीलिए कहते हैं कि है तो है, नहीं
है तो नहीं है। और कोई उपाय नहीं है। प्रेम है तो है, और नहीं है तो नहीं है, उपाय नहीं है। इसलिए प्रेमी एकदम असहाय मालूम पड़ता है, किसी विराट शक्ति के हाथों में पड़ गया; अपना कोई वश नहीं चलता मालूम पड़ता। खिंचा चला जा रहा है। भागा चला जा रहा है। खुद का नियंत्रण नहीं मालूम पड़ता।
इसलिए भक्त होना दुरूह बात है। पर अगर बुद्धि शुद्ध हो और प्रेम निष्काम हो, तो वह महान घटना भी घटती है और भक्ति का फूल भी खिलता है। खिलता है; कभी किसी चैतन्य में, कभी किसी मीरा में खिलता है। लेकिन बहुत रेयर फ्लावरिंग है, बहुत कठिनाई की बात है।
इसलिए मैं कहता हूं कि बुद्ध होना या महावीर होना कितना ही कठिन हो, फिर भी बहुत कठिन नहीं है। एक ही शर्त है कि बुद्धि पूरी शुद्ध हो जाए। लेकिन मीरा का होना थोड़ा अनूठा है, चैतन्य का होना थोड़ा अनूठा है। इस अनूठे में एक तत्व और जुड़ता है, एक दिशा और जुड़ती है, कि हृदय भी निष्काम हो।
इसलिए बुद्ध शांत होंगे, शांति उनमें गहरी होगी, निर्विकार होंगे, शुद्ध होंगे, लेकिन एक अर्थ में निगेटिव, नकारात्मक मालूम पड़ेंगे। यह तो हम कह सकते हैं, उनकी अशांति मिट गई; यह भी हम कह सकते हैं, उनका दुख मिट गया; यह भी हम कह सकते हैं कि उनकी सब पीड़ा, संताप खो गया; यह भी कह सकते हैं, चिंता अब न बची--लेकिन यह सब नकार है। क्या-क्या नहीं रहा, वह हम कह सकते हैं; लेकिन यह बताना मुश्किल है कि क्या हुआ!
मीरा में हमें सिर्फ यही नहीं दिखाई पड़ता है कि उसकी अशांति मिट गई, चिंता मिट गई, संताप मिट गया, दुख मिट गया; साथ में उसमें नाचता हुआ आनंद भी दिखाई पड़ता है, विधायक, पाजिटिव। क्या हुआ है, वह भी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। क्या खो गया है, वह तो दिखाई ही पड़ता है; लेकिन क्या हुआ है, क्या मिल गया है, उसकी भी प्रत्यक्ष झलक मालूम होती है।
बुद्ध को जो भी हुआ है, वह भीतर है; वह बाहर नहीं आ पाता। क्योंकि हृदय
के बिना कोई भी चीज बाहर नहीं आ सकती। हृदय अभिव्यक्ति का द्वार है। बुद्ध को जो हुआ है, वह भीतर हुआ है; जो नहीं हो गया है, वह बाहर गिरा है। हमने देखा है उनको पहले अशांत, अब अशांति गिर गई है। हमने देखा है पहले उन्हें चिंतित, अब चिंता नहीं है। हमने देखा है उन्हें पहले, उनके माथे पर सलवटें--दुख की, पीड़ा की, संताप की। वे खो गई हैं। लेकिन यह सब निषेध है।
उनके भीतर क्या हुआ है, यह वे ही जानें।
लेकिन मीरा का नृत्य बाहर भी फूट रहा है। बाहर भी बह रही है यह धारा।
जो भीतर हुआ है, वह बाहर भी तोड़कर आ रहा है। उसकी तरंगें दूर तक जा रही हैं।
निश्चित ही, कुछ और भी बात हुई है। वह, दूसरी शर्त पूरी हो, तब होती है।
हम सोच भी नहीं सकते बुद्ध को नाचता हुआ। जब बुद्धि पूरी तरह शुद्ध हो जाती है, तो जो अनुभूति होती है, वह आंतरिक है; अत्यंत आंतरिक है; उसको बाहर तक ले जाने का द्वार नहीं है। और जब हृदय भी कामना से मुक्त हो जाता है, तो वह द्वार भी खुल जाता है, जो बाहर ले जाता है।
इसे आप ऐसा समझें कि जब तक आपके पास हृदय नहीं होता है, तब तक आप दूसरे
से संबंधित हो ही नहीं सकते। सब संबंध हार्दिक हैं। जितना बड़ा हृदय होता है, उतना संबंधों का विस्तार होता है। असल में हृदय के द्वारा ही हम दूसरे को संवादित कर पाते हैं। दूसरे से जो हम जुड़ते हैं, कम्युनिकेट होते हैं, वह हृदय के द्वारा होते हैं।
मीरा जब नाचती है, तो जो बुद्ध नहीं कह पाते, वह उसके घूंघर की झनकार
से कहा जाता है। और जब चैतन्य कीर्तन में डूब जाते हैं, तो जो बुद्ध नहीं बता पाते, चेष्टा करते हैं, समझाते हैं पूरे जीवन, फिर भी पाते हैं कि असमर्थता है कोई, चैतन्य असमर्थ नहीं मालूम पड़ते। आंसू से भी कह देते हैं। नाचकर भी कह देते हैं। दौड़कर भी कह देते हैं। अभिव्यक्ति चैतन्य को सरल मालूम पड़ती है।

लेकिन भक्ति के साथ एक वहम जुड़ गया, इसलिए कठिनाई हो गई। हमने भक्ति
को बहुत सस्ती समझा। और समझा कि ज्ञान तो सबके वश की बात नहीं है, भक्ति सबके वश की बात है। इससे भ्रांति हो गई। मैं आपसे कहता हूं, ज्ञान थोड़े ज्यादा लोगों के वश की बात है, भक्ति थोड़े कम लोगों के वश की बात है। क्योंकि अच्छी बुद्धि पा लेना बहुत कठिन नहीं है; अच्छा हृदय पाना बहुत कठिन है। और बुद्धि की शिक्षा के तो बहुत उपाय हैं जगत में; हृदय की शिक्षा का अब तक कोई उपाय नहीं है।
बुद्धि के लिए विश्वविद्यालय हैं, शिक्षक हैं, शिक्षा-पद्धतियां हैं। हृदय के लिए कोई विश्वविद्यालय नहीं है, कोई शिक्षक नहीं है, कोई शिक्षा-पद्धति नहीं है। हृदय अब तक अछूता पड़ा है। हृदय अब तक एक अंधेरा महाद्वीप है, जिसमें कभी-कभी कोई उतरता है।
लेकिन अगर यह दूसरी शर्त पूरी हो सके कि प्रेम हो, और कामनारहित हो। बड़ी कठिन शर्त है। बड़ी कठिन शर्त है। कठिन शर्त ऐसी है, जैसे मैं आपसे कहूं, नदी से तो गुजरें, लेकिन पानी में पैर न छुए; आग से तो गुजर जाएं, लेकिन जलन जरा भी न हो। आप कहेंगे, बिना आग से गुजरे जलन नहीं होती, तो मैं बिना आग से गुजर जाऊं, जलन नहीं होगी। लेकिन शर्त यह है, आग से गुजरें और जलन न हो।
ध्यान रहे, कोई अगर चाहे तो प्रेम को छोड़ दे, तो वासना छूट जाती है। यह कठिनाई है। अगर आग में न जाएं, तो जलने का कोई सवाल नहीं है। अगर पानी में न जाएं, तो भीगने का कोई सवाल नहीं है। बहुत लोग हैं, जो प्रेम से इसीलिए भयभीत हो जाते हैं कि प्रेम में गए, तो जले; भीगे; प्रेम में गए, तो वासना रहेगी ही।
इसलिए जो ज्ञान की दिशा में चलने वाले लोग रहे, उन्होंने कहा, प्रेम
से सावधान रहना। प्रेम में पड़ना ही मत। सावधान करने का कारण इतना ही था कि आशा बहुत कम है कि प्रेम में पड़ें और वासना में न पड़ जाएं। प्रेम और वासना के बीच इतना गहरा संबंध है कि प्रेम में गए, तो वासना में चले ही जाएंगे। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि वासना से तो बचना जरूरी है। प्रेम से बच जाना, तो वासना से बच जाओगे।
भक्त की शर्त बड़ी कठिन है। कृष्ण कहते हैं, प्रेम में तो जाना, वासना
से बच जाना; आग में चलना, जलना मत; पानी में उतरना, भीगना मत।
इसलिए मैं कहता हूं, भक्ति थोड़ी कठिन बात है। लेकिन बड़ी क्रांति भी है।
अब इसे हम थोड़ा समझें कि प्रेम अनिवार्य रूप से वासना क्यों बन जाता है? क्या यह अनिवार्यता प्रेम में है कि प्रेम वासना बनेगा ही?
अगर ऐसा अनिवार्य हो, तो फिर कृष्ण यह शर्त नहीं लगाएंगे। यह अनिवार्यता प्रेम में नहीं है। यह अनिवार्यता कहीं मनुष्य की बुनियादी समझ की भूल का हिस्सा है।
असल में जब भी हम प्रेम करते हैं, तो वासना के कारण ही करते हैं। वासना पहले आ जाती है, प्रेम पीछे आता है। वासना पहले हमारे द्वार को खटखटा जाती है और तब प्रेम प्रवेश करता है। हमने जो भी प्रेम जाना है, वह वासना के पीछे जाना है। हमने जो भी प्रेम जाना है, वह वासना की छाया की तरह जाना है। इसलिए हमारे प्रेम के अनुभव में वासना छा गई है। और हमने जन्मों-जन्मों तक जब भी प्रेम जाना है, वासना के पीछे जाना है। हमारा प्रेम जो है, वह हमारी कामवासना की छाया से ज्यादा नहीं है। इसलिए हमें डर लगता है कि जब भी हम प्रेम में पड़ेंगे, तो कामवासना पीछे आ जाएगी।
एक और भी प्रेम है, जो वासना की छाया की तरह नहीं जाना जाता, वरन एक अंतर्निहित दशा की तरह जाना जाता है।
इसे थोड़ा समझ लें।
जब भी मैं कहता हूं प्रेम, तो मेरा मतलब होता है किसी से। और जब भी मैं कहता हूं ज्ञान, तो मतलब होता है मुझमें। और जब भी मैं कहता हूं प्रेम, तब तीर किसी और की तरफ झुक जाता है, इशारा किसी और की तरफ हो जाता है। जब भी मैं कहता हूं ज्ञान, तो दूसरे की तरफ तीर नहीं जाता; ज्ञान होता है मेरा।

तो जब भी मैं कहता हूं प्रेम, तब दूसरा भीतर प्रवेश कर गया; प्रेम शब्द कहते ही मैं अकेला नहीं रह जाता, दूसरा आ जाता है।
इसका मतलब हुआ कि हमारा समस्त प्रेम का अनुभव किसी आंतरिक अवस्था का अनुभव नहीं है, केवल व्यक्तियों के बीच जो वासना के संबंध हैं, उनका ही अनुभव है। इसी वजह से प्रेम शब्द का उपयोग करते ही... अगर मैं अपने कमरे में अकेला बैठा हूं, और आप आएं, और मैं कहूं कि मैं ज्ञान में था, तो आप कमरे में चारों तरफ नहीं देखेंगे कि कोई मौजूद है या नहीं! अगर मैं कहूं, मैं बड़े प्रेम में था, तो आप चारों तरफ कमरे के देखेंगे कि कोई मौजूद है! आप अकेले प्रेम में थे! तो फिर शायद सोचेंगे, आंख बंद करके कोई कल्पना कर रहे होंगे। लेकिन दूसरा जरूरी मालूम पड़ता है, चाहे कल्पना में ही सही।
जिस प्रेम की कृष्ण बात कर रहे हैं, वह ज्ञान की तरह ही बात है, ध्यान
की तरह ही बात है। दूसरे से उसका संबंध नहीं है; स्वयं का ही आविर्भाव है। इसे आप ऐसा समझें कि जैसे ध्यान की साधना होती है, ऐसे ही प्रेम की साधना होती है।
बैठे हैं कमरे में, प्रेम अनुभव करें; अपने चारों तरफ प्रेम फैलता हुआ अनुभव करें; भीतर प्रेम भरा हुआ अनुभव करें। लोक-लोकांतर तक आपका प्रेम फैल जाए, लेकिन दूसरे की अपेक्षा को मौजूद न करें। एक घंटा रोज दूसरे की अपेक्षा को बीच में न लाएं।
प्रेम दूसरे से संबंध नहीं, वरन मेरे भीतर एक घटना है, जो चारों तरफ फैलती चली जाती है, जैसे दीए से प्रकाश फैलता है। ऐसा बैठ जाएं घंटेभर। और मुझसे प्रेम फैल रहा है चारों तरफ। कमरे की दीवालों को पार करके नगर की दीवालों में भर गया है। और नगर की दीवालों को पार करके राष्ट्र, और राष्ट्र की दीवालों को पार करके पूरी पृथ्वी को उसने घेर लिया है। और दूर चांद-तारों तक फैलता जा रहा है। सारा आकाश मेरे प्रेम से भर गया है।
इसको अगर एक घंटा रोज आप फिक्र करते रहें, तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, प्रेम दूसरे से संबंध है, यह आपकी धारणा टूट जाएगी। और एक घड़ी आपके भीतर आ जाएगी, जब आपको लगेगा, प्रेम मेरी अंतर-दशा है। तब आप प्रेम करेंगे नहीं, प्रेम हो जाएंगे। तब प्रेम करने के लिए दूसरे की अपेक्षा नहीं होगी। दूसरा हो या न हो, आप प्रेम में रहेंगे ही। तब आप चलेंगे, तो आपका प्रेम आपके साथ चलेगा; उठेंगे, तो आपका प्रेम आपके साथ उठेगा; बैठेंगे, तो आपका प्रेम आपके साथ आएगा।
कभी-कभी किसी व्यक्ति के पास जाकर आपको अचानक लगता है कि इस व्यक्ति
को न आप जानते, न आप पहचानते; न इसका कुछ बुरा जाना है, न इसके किसी दुराचरण की खबर है। लेकिन पास जाकर अचानक आपको लगता है रिपल्शन, विकर्षण, हट जाओ, दूर हट जाओ। किसी व्यक्ति के पास जाकर अचानक, अजनबी के पास, लगता है कि गले मिल जाओ। न उसे जाना, न उसे पहचाना; न कोई संबंध है! आकर्षण।
जिस व्यक्ति के पास आपको जाकर लगता है कि कोई आकर्षण, कोई मैग्नेटिज्म खींच रहा है, समझना कि उस व्यक्ति के पास प्रेम की एक क्षमता, एक मात्रा है। छोटी ही है, लेकिन एक मात्रा है। जिस व्यक्ति के पास आपको विकर्षण मालूम होता है, हट जाओ, कोई शक्ति जैसे दूर हटाती है, बीच में कोई शक्ति खड़ी हो जाती है और पास नहीं आने देती, तो समझना कि उस व्यक्ति के पास प्रेम का बिल्कुल अभाव है; जो खींच सकता है, उसका बिल्कुल अभाव है। तो आप धकाए जा रहे हैं। और यह भी हो सकता है अभ्यास से कि प्रेम का अभाव तो हो ही, साथ में घृणा का आविर्भाव हो गया हो; घृणा एक स्थिति बन गई हो, एक दशा बन गई हो।
अभी तो वैज्ञानिकों ने चित्त की इस दशा को नापने के लिए यंत्र भी निर्मित किए हैं। यह जानकर आप चकित होंगे। और अब तो ऐसे यंत्र हैं, जिनके सामने खड़े होकर हम कह सकते हैं कि यह व्यक्ति खींचता है लोगों को कि हटाता है। क्योंकि वह जो भीतर प्रेम की ऊर्जा है, मैग्नेटिक है। अगर प्रेम से भरा हुआ व्यक्ति उस यंत्र के सामने खड़ा होगा, तो यंत्र का कांटा खबर देता है कि यह आदमी लोगों को अपनी तरफ खींच लेता है। अगर यह आदमी घृणा से भरा हो, तो कांटा उलटा घूमता है और खबर देता है कि इस आदमी से जो ऊर्जा निकल रही है, वह लोगों को धकाती है और हटाती है।

अब तो इसे मापा भी जा सकता है। लेकिन धर्म सदा से जानता रहा है कि प्रेम संबंध नहीं है, अंतर-ऊर्जा है, इनर एनर्जी है।
जब मैं कहता हूं, प्रेम शक्ति है, एनर्जी है, ऊर्जा है, तब उसका अर्थ यह हुआ कि दूसरे से उसका संबंध करने से वह ऊर्जा वासनाग्रस्त हो जाती है।
दूसरे से संबंधित बनाने से, दूसरे से बांध लेने से अशुद्ध हो जाती है।
दूसरे से बांध लेने से विकृत हो जाती है, कुरूप हो जाती है।
निष्काम प्रेम का अर्थ है, प्रेम की ऊर्जा हो और किसी से बंधी न हो, किसी कामना के लिए न हो।
तो कृष्ण कहते हैं, बुद्धि हो शुद्ध, विचार का कंपन न हो; हृदय हो प्रेम से भरा, वासना की जरा-सी भी झलक न हो, तो भक्त का जन्म होता है।
और ऐसा भक्त ही अपना सब कुछ परमात्मा के चरणों में छोड़ पाता है, अपना कर्तापन छोड़ पाता है।
अब इस सूत्र को हम पूरा देख लें।
हे अर्जुन! मेरे पूजन में पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कुछ भी कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र, पुष्प, फल आदि मैं ही ग्रहण करता हूं।
ऊपर से देखने में तो बहुत सीधा लगेगा। पत्र, पुष्प, फल, जल--हम सब जानते हैं, हम सबने चढ़ाया है। जल चढ़ाया है, फूल चढ़ाया है, पत्ते चढ़ाए हैं, हम सबको पता है। लेकिन कृष्ण जैसे लोग इस तरह की क्षुद्र बातें करते नहीं हैं। क्या मतलब है पत्र, पुष्प, फल चढ़ाने का?
एक मतलब आपको पता है, वह मतलब नहीं है। जो मतलब आपको पता नहीं है, वही मतलब है। वह मैं आपसे कहता हूं।
पत्र, पुष्प, फल व्यक्तित्व के खिलावट की तीन अवस्थाएं हैं। कृष्ण कहते हैं कि तू जैसा भी है, अगर अभी सिर्फ पत्ता ही है, अभी फूल तक नहीं पहुंचा, तो भी कोई फिक्र नहीं, पत्ते को ही चढ़ा दे। अगर तू पत्ते से आगे निकल गया है और फूल बन गया है, तो फल की फिक्र मत कर कि जब फल बनूंगा, तब परमात्मा को चढूंगा। फूल ही चढ़ा दे। अगर तू फल हो चुका है, तो फल ही चढ़ा दे। लेकिन तब शायद उन्हें खयाल आया होगा कि ऐसे लोग भी तो हैं, जो अभी पत्ते भी नहीं हैं, अभी पानी ही हैं। तो उन्होंने कहा, अगर तू अभी जल ही है... ।
जल जो है, बिल्कुल प्राथमिक है। उससे नीचे फिर और कुछ नहीं हो सकता।
जल ही बनता है पत्ता। फिर बढ़ता है, तो पत्ता बन जाता है फूल। फिर बढ़ता है, तो फूल बन जाता है फल।
तो कृष्ण ने कहा कि तू हो चाहे पत्ता, चाहे फूल, चाहे फल; तू जो भी हो, चढ़ा दे; तू जो भी हो, वैसा ही चढ़ जा।
हममें से बहुत लोग कहते हैं--ये सब हमारी बेईमानी के हिस्से हैं-- हममें से बहुत लोग कहते हैं कि अभी तो कुछ है ही नहीं मेरे पास, तो अभी परमात्मा को चढ़ाऊं भी क्या?
कभी भी नहीं होगा आपके पास, जिस दिन आप अनुभव कर सकें कि परमात्मा को चढ़ाने योग्य कुछ मेरे पास है। आप पोस्टपोन करते जा सकते हैं।
ये तीन अवस्थाएं हैं, या चार। जल की अवस्था का अर्थ है कि आप में किसी तरह का विकास नहीं हुआ है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, उसे भी मैं स्वीकार कर लूंगा। मैं तो, जो भी चढ़ाया जाता है, उसे स्वीकार कर लेता हूं। सवाल यह नहीं है कि क्या चढ़ाया, सवाल यह है कि चढ़ाया, अर्पित किया। अगर तू पत्ता है, तो पत्ते की तरह आ जा; अगर फूल हो गया है, तो फूल की तरह आ जा; अगर फल हो गया है, तो फल की तरह आ जा। जिस भी अवस्था में हो।
ये चार अवस्थाएं हैं चेतना की। पानी उस अवस्था को कहेंगे, जल उस अवस्था को कहेंगे, जिसमें चेतना आपकी बिल्कुल ही प्रिमिटिव है, बिल्कुल प्राथमिक है। पत्र उस अवस्था को कहेंगे, जिसमें आपकी चेतना ने थोड़ा विकास किया, रूप लिया, आकार लिया। फूल उस चेतना को कहेंगे, जिसमें आपकी चेतना ने न केवल रूप-आकार लिया, बल्कि सौंदर्य को उपलब्ध हुई। फल उस अवस्था को

कहेंगे, जिसमें आपकी चेतना सौंदर्य को ही उपलब्ध नहीं हुई, और चेतनाओं को जन्म देने की सामर्थ्य को भी उपलब्ध हुई; पक गई।
नीत्शे ने कहा है, राइपननेस इ.ज आल--पक जाना सब कुछ है।
लेकिन कृष्ण नहीं कहेंगे यह। कृष्ण कहेंगे, पक जाना सब कुछ नहीं है,
चढ़ जाना सब कुछ है।
नीत्शे ठीक कहता है, क्योंकि नीत्शे की दृष्टि में कोई ईश्वर नहीं है। तो नीत्शे कहता है, आदमी पक जाए, पूरा पक जाए। उसकी बुद्धि, उसकी प्रतिभा, उसका व्यक्तित्व एक पका हुआ फल हो जाए, तो सब है। राइपननेस इ.ज आल। बात पूरी हो गई। सुपरमैन पैदा हो गया। महामानव पैदा हो गया। पक गया मनुष्य।
कृष्ण नहीं कहेंगे कि राइपननेस इ.ज आल। वे कहेंगे, सरेंडर इ.ज आल; पक जाना नहीं, समर्पित हो जाना। और तब वे यह कहते हैं कि समर्पित होने के लिए फल के तक रुकने की भी कोई जरूरत नहीं है। फल ही चढ़ेगा, ऐसा नहीं; पत्ता भी चढ़ जाएगा; पानी भी चढ़ जाएगा; फूल भी चढ़ जाएगा। जो जहां है, वहीं से अपने को अर्पित कर दे; कल की प्रतीक्षा न करे; कल के लिए बात को टाले न; स्थगित न करे। यह तो अर्थ है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप जो पत्ते-फूल चढ़ा आते हैं, वह बंद कर देना। मैं इतना ही कह रहा हूं कि जब फूल चढ़ाएं, तब याद रखना कि इस फूल के चढ़ाने से संकेत भर मिलता है, हल नहीं होता। जब पत्ता चढ़ाएं, और जब पानी ढालें परमात्मा के चरणों में, जरूर ढालते चले जाना, लेकिन याद रखना, यह पानी ढालना केवल प्रतीक है, सिंबल है। ध्यान रखना कि कब तक इस पानी को ढालते रहेंगे? एक दिन अपने पानी को ढालने की तैयारी करनी है; एक दिन अपना फूल चढ़ा देना है; एक दिन अपना फल समर्पित कर देना है।
उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ
सब कुछ मैं ही ग्रहण करता हूं!
यह तो हम देखते हैं कि फल हम चढ़ा आते हैं, पुजारी ग्रहण करता है। पक्की तरह पता है। यह भी हम देखते हैं कि फूल हम चढ़ा आते हैं, वे फिर बाजार में बिक जाते हैं।
एक मंदिर की दुकान को मैं जानता हूं, क्योंकि दुकानदार मेरे परिचित हैं। उन्होंने मंदिर नया बना था, तब वह दुकान खोली थी। कोई पंद्रह वर्ष पहले। तब उन्होंने पहली बार जो नारियल खरीदे थे, वह दुकान उनसे ही चल रही है। क्योंकि वे नारियल रोज चढ़ जाते हैं; रात दुकान में वापस लौट आते हैं। फिर दूसरे दिन बिक जाते हैं, फिर चढ़ जाते हैं; रात फिर वापस लौट आते हैं! उन्होंने दुबारा नारियल नहीं खरीदे, क्योंकि पुजारी रात बेच जाता है। नारियल के सारी दुनिया में दाम बढ़ गए, उनकी दुकान पर अभी तक नहीं बढ़े। सस्ते से सस्ते में वे देते हैं। नारियल के भीतर अब कुछ बचा भी नहीं होगा! हमें पता है कि फूल हम चढ़ा आएंगे, तो वह उसको नहीं मिल सकता। जब तक कि चेतना का फूल न चढ़ाया जाए, तब तक परमात्मा का भोजन नहीं हो सकता। जब तक हम स्वयं को ही न चढ़ा दें, तब तक हम उसके हिस्से नहीं बनते।
कृष्ण कहते हैं कि मैं उस सबको ग्रहण कर लेता हूं, सबको, जो भी मुझे चढ़ाया जाता है; वह सब मेरा ही अंग हो जाता है।
इसलिए हे अर्जुन, तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरणरूप तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर। इस प्रकार कर्मों को मेरे अर्पण करने रूप संन्यास-योग से युक्त हुए मन वाला तू शुभ-अशुभ फल रूप कर्मबंधन से मुक्त हो जाएगा, और उससे मुक्त हुआ मेरे को ही प्राप्त होगा।
इस सूत्र में अंतिम दो-तीन बातें और खयाल ले लेने जैसी हैं। जो व्यक्ति अपना सब समर्पित कर देगा, अपने को पीछे बचाए बिना, विद नो विदहोल्डिंग, पीछे अपने को जरा भी बचाए बिना जो अपने को अशेष भाव से, सब कुछ, पूरा का पूरा, समग्रीभूत रूप से समर्पित कर देगा, वह परमात्मा का हिस्सा हो जाता है। हिस्सा कहना भी ठीक नहीं, भाषा की भूल है, वह परमात्मा ही हो जाता है। क्योंकि परमात्मा में कोई हिस्से नहीं होते, कोई विभाग नहीं होता।

जब एक नदी सागर में गिरती है, तो सागर का हिस्सा नहीं हो जाती, सागर हो जाती है। सागर का हिस्सा तो हम तब कहें, जब कि उसका कोई अलग-थलग रूप बना रहे। खोजने जाएं और मिल जाए--कि यह रही गंगा। सागर में उसकी धारा अलग बहती रहे। कहीं नहीं बचती; सागर हो जाती है, फैल जाती है; एक हो जाती है।
तो ध्यान रखना, जब कोई परमात्मा से एक होता है, तो वह उसका अंश नहीं होता, परमात्मा ही हो जाता है; पूरा सागर हो जाता है; फैल जाता है; एक हो जाता है। हम परमात्मा के हिस्से नहीं हो सकते, क्योंकि परमात्मा कोई यंत्र नहीं है, जिसके हम हिस्से हो सकें। परमात्मा सागर जैसे चैतन्य का नाम है। उसमें कोई दीवालें और विभाजन नहीं हैं। उसमें हम होते हैं, तो हम पूरे ही हो जाते हैं। हम उसके साथ पूरे एक हो जाते हैं।
इसलिए कृष्ण अगर इतनी हिम्मत से अर्जुन से कह सके कि मैं ही हूं वह, तो उसका कारण है। अगर इतनी हिम्मत से कह सके कि छोड़ अर्जुन तू सब, और मुझ पर ही समर्पित हो जा! तो यह कृष्ण उस व्यक्ति के लिए नहीं कह रहे हैं, जो अर्जुन के सामने खड़ा था; यह उस व्यक्ति के लिए कह रहे हैं कृष्ण, जो उस सागर में गिरकर हो गए हैं। यह सागर की तरफ से कही गई बात है। लेकिन अब चूंकि नदी अलग नहीं बची है, इसलिए नदी सीधी बात कहती है कि मेरे साथ एक हो जा। क्योंकि नदी अब सागर हो गई है। कृष्ण इतना भी नहीं कहते कि तू परमात्मा के साथ एक हो जा। कहते हैं, मेरे साथ एक हो जा।
अनेक लोगों को कृष्ण का यह वक्तव्य अहंकार से भरा हुआ मालूम पड़ता रहा
है, सदियों-सदियों से। और जो लोग नहीं समझ पाते, उन्हें लगता है--थोड़ी अड़चन मालूम पड़ती है--कि कृष्ण भी कैसा आदमी है? थोड़ा तो संकोच खाना था! अर्जुन से सीधे ही कहे चले जाते हैं, छोड़ दे सब मुझ पर! सब धर्म-वर्म को छोड़ दे, मेरी शरण में आ!
जरूर कृष्ण किसी और चैतन्य से बोलते हैं। यह उस नदी की आवाज है, जो सागर में गिर गई। अब नदी अगर यह भी कहे कि सागर में गिर जा, तो झूठ होगा। अब तो नदी यही कहती है कि मुझ सागर में मिल जा।
और अर्जुन को कठिनाई नहीं हुई इस बात से। गीता जिन्होंने भी पढ़ी है, उनको कभी न कभी कठिनाई होती है। गीता के बड़े भक्त हैं, उनको भी भीतर थोड़ा- सा खयाल आता है कि बात क्या है? कृष्ण को ऐसा नहीं कहना था, कोई और तरकीब से कह देते। यह सीधा क्या कहने की बात थी? क्या कृष्ण को भी अहंकार है? वह क्यों बार-बार इस मैं शब्द का उपयोग करते हैं? अर्जुन को तो कहते हैं, तू सब छोड़! और खुद अपना मैं जरा भी नहीं छोड़ते हैं!
संदेह उठता ही रहा है। लेकिन अर्जुन के मन में जरा भी नहीं उठा। अर्जुन ने बहुत सवाल पूछे, यह सवाल जरा भी नहीं पूछा कि यह क्या बात है? मेरे मित्र हो, मेरे सखा हो, फिलहाल तो मेरे सारथी हो, ड्राइवर हो, थोड़ा तो खयाल करो कि मैं तुमसे ऊपर बैठा हूं, तुम मुझसे नीचे बैठे हो; केवल मेरे रथ को सम्हालने के लिए तुम्हें ले आया हूं, और तुम कहे जाते हो कि सब छोड़ और मेरी शरण आ!
जब कृष्ण ने कहा होगा, मेरी शरण आ, तो अर्जुन भी उनकी आंखों में उस सागर को देख सका होगा। नदी उसे भी दिखाई पड़ती, तो वह भी पूछ लेता। उसे नदी नहीं दिखाई पड़ी होगी।
लेकिन यह बड़ा आत्मीय संबंध था। एक शिष्य और एक गुरु के बीच था, दो मित्रों के बीच था। अगर भीड़-भाड़ वहां भी खड़ी होती, तो जरूर भीड़ में से कोई चिल्लाता कि बंद करो! यह क्या कह रहे हो? अपने ही मुंह से कह रहे हो कि मेरी शरण आ! मैं भगवान हूं!
बड़ा आत्मीय नैकट्य का वास्ता था। यह अर्जुन और कृष्ण के बीच निजी संबंध की बात थी। अर्जुन समझा होगा। देखी होगी उसने आंख, कि भीतर कोई मैं नहीं है। मैं सिर्फ भाषा का प्रयोग है।
सब छोड़ दे, तो मेरे साथ एक हो जाएगा। और इसे ही वे कहते हैं, इस अर्पण
को ही वे कहते हैं संन्यास। इतनी हिम्मत की परिभाषा संन्यास की किसी और ने नहीं की है।
अर्जुन संसारी है पक्का। इससे पक्का और संसारी क्या होता है? संसार में भेज रहे हैं उसे युद्ध में, और कहते हैं कि इसे मैं कहता हूं संन्यास

से युक्त हो जाना! तू युद्ध में जा और कर्ता को मेरी तरफ छोड़ दे। लड़ तू और जान कि मैं लड़ रहा हूं। तलवार तेरे हाथ में हो, लेकिन जानना कि मेरे हाथ में है। गर्दन तू काटे, लेकिन जानना कि मैंने काटी है। और गर्दन तेरी कट जाए, तो भी जानना कि मैंने काटी है। कर्म और कर्तृत्व को सब मुझ पर छोड़ देना, तो तू संन्यास से युक्त हुआ।
अर्जुन संन्यासी होना चाहता था, लेकिन पुराने ढब का संन्यासी होना चाहता था। वह भी संन्यासी होना चाहता था। वह यही कह रहा था कि बचाओ मुझे। और बड़े गलत आदमी से पूछ बैठा। उसे कोई ढंग का आदमी चुनना चाहिए था। जो कहता कि बिल्कुल ठीक! यही तो ज्ञान का लक्षण है। छोड़! सब त्याग कर! चल जंगल की तरफ!
गलत आदमी से पूछ बैठा। उसे पूछने के पहले ही सोचना था कि यह आदमी जो परम ज्ञानी होकर बांसुरी बजा सकता है, इससे जरा सोचकर बोलना चाहिए! पूछ बैठा। लेकिन शायद वहां कोई और मौजूद नहीं था, और कोई उपाय नहीं था; पूछ बैठा। सोचा उसने भी होगा कि कृष्ण भी कहेंगे कि ठीक है। यह संसार सब माया- मोह है, छोड़कर तू जा! कैसा युद्ध? क्या सार है? कुछ मिलेगा नहीं। और सीधी- सी बात है कि हिंसा में पड़ने से तो पाप ही होगा। तू हट जा।
इसी आशा में उसने बड़ी सहजता से पूछा था। लेकिन कृष्ण ने उसे कुछ और ही संन्यास की बात कही; एक अनूठे संन्यास की बात कही; शायद पृथ्वी पर पहली दफा वैसे संन्यास की बात कही। उसके पहले भी वैसे संन्यासी हुए हैं, लेकिन इतनी प्रकट बात नहीं हुई थी। कहा कि तू सब कर्म कर, सिर्फ कर्ता को छोड़ दे, तो तू संन्यास से युक्त हो गया। फिर तुझे कहीं किसी वन-उपवन में जाने की जरूरत नहीं। किसी हिमालय की तलाश नहीं करनी है। तू यहीं युद्ध में खड़े-खड़े संन्यासी हो जाता है।
पहली दफा आंतरिक रूपांतरण का इतना गहरा भरोसा! बाहर से कुछ बदलने की चिंता मत कर; बाहर तू जो है, वही रहा आ। भीतर से तू बदल जा। भीतर की बदलाहट एक ही बदलाहट है!
भीतर का केंद्र या तो अहंकार हो सकता है, या परमात्मा। बस, दो ही केंद्र हो सकते हैं। भीतर दो तरह के केंद्र संभव हैं, या तो परमात्मा केंद्र हो सकता है, या मैं--अहंकार--केंद्र हो सकता है। और जिनका भी परमात्मा केंद्र नहीं होता, वे भी बिना केंद्र के तो काम नहीं कर सकते, इसलिए अहंकार को केंद्र बनाकर चलना पड़ता है।
अहंकार जो है, सूडो सेंटर है, झूठा केंद्र है। असली केंद्र नहीं है, तो उससे काम चलाना पड़ता है। वह सब्स्टीट्यूट सेंटर है, परिपूरक केंद्र है। जैसे ही कोई व्यक्ति परमात्मा को केंद्र बना लेता है, इस परिपूरक की कोई जरूरत नहीं रह जाती, यह विदा हो जाता है।
इसलिए कृष्ण का जोर है कि तू सारे कर्ता के भाव को मुझ पर छोड़ दे। और
जो ऐसा कर पाता है, वह समस्त कर्म-फल से मुक्त हो जाता है, शुभ और अशुभ दोनों से। उसने जो बुरे कर्म किए हैं, उनसे तो मुक्त हो ही जाता है; उसने जो अच्छे कर्म किए हैं, उनसे भी मुक्त हो जाता है।
बुरे कर्म से तो हम भी मुक्त होना चाहेंगे, लेकिन अच्छे कर्म से मुक्त होने में जरा हमें कष्ट मालूम पड़ेगा। कि मैंने जो मंदिर बनाया था, और मैंने इतने रोगियों को दवा दिलवाई थी, और अकाल में मैंने इतने पैसे भेजे थे, उनसे भी मुक्त कर देंगे? वह तो मेरी कुल संपदा है!
बुरे से छोड़ दें! मैंने चोरी की थी, बेईमानी की थी। क्योंकि बेईमानी न करता, तो अकाल में पैसे कैसे भिजवा पाता? और अगर चोरी न करता, तो यह मंदिर कैसे बनता? तो चोरी की थी, बेईमानी की थी, कालाबाजारी की थी, उनसे मेरा छुटकारा करवा दो! लेकिन कालाबाजारी करके जो मंदिर बनाया था, और अकाल में जो लोगों की सेवा की थी, और रोटी बांटी थी, और दवा-दारू भेजी थी, उसको तो बचने दो!
लेकिन कृष्ण कहते हैं, दोनों से, शुभ अशुभ दोनों से!
क्योंकि कृष्ण भलीभांति जानते हैं कि शुभ करने में भी अशुभ हो जाता है। शुभ भी करना हो, तो अशुभ होता रहता है। वे संयुक्त हैं। अगर शुभ भी करना हो, तो अशुभ होता रहता है। अगर मैं दौड़कर, आप गिर पड़े हों, आपको उठाने

भी आऊं, तो जितनी देर दौड़ता हूं, उतनी देर में न मालूम कितने कीड़े-मकोड़ों की जान ले लेता हूं! न मालूम कितनी श्वास चलती है, कितने जीवाणु मर जाते हैं!
मैं कुछ भी करूं इस जगत में, तो शुभ और अशुभ दोनों संयुक्त हैं। दोनों संयुक्त हैं। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि कालाबाजारी करके मंदिर बनाया है, ऐसा नहीं। कुछ भी करिएगा, तो आप पाएंगे कि अशुभ भी साथ में हो रहा है। इस जगत में शुद्ध शुभ नहीं किया जा सकता; शुद्ध अशुभ भी नहीं किया जा सकता। अशुभ करने भी कोई जाए, तो शुभ होता रहता है; शुभ करने भी कोई जाए, तो अशुभ होता रहता है। वे संयुक्त हैं; वे एक ही चीज के दो छोर हैं। विभाजन मन का है; अस्तित्व में कोई विभाजन नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, शुभ-अशुभ दोनों से मुक्त हो जाता है। और उनसे मुक्त हुआ मुझको ही प्राप्त होता है। क्योंकि परमात्मा, अर्थात मुक्ति। इसलिए जिन्होंने मुक्ति को बहुत जोर दिया, उन्होंने परमात्मा शब्द का उपयोग भी नहीं करना चाहा। महावीर ने परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं किया। क्योंकि महावीर ने कहा, मुक्ति पर्याप्त है, मोक्ष पर्याप्त है। मोक्ष शब्द काफी है। मुक्त हो गए, सब हो गया। अब और चर्चा छेड़नी उचित नहीं है।
लेकिन महावीर के लिए मोक्ष का जो अर्थ है, वही हिंदुओं के लिए, मुसलमानों के लिए, ईश्वर का अर्थ है। ईश्वर का और कोई अर्थ नहीं है, परम मुक्ति, दि अल्टिमेट फ्रीडम।
क्योंकि जब तक अहंकार मौजूद है, तब तक मैं कभी मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि अहंकार की सीमाएं हैं, कमजोरियां हैं। अहंकार की सुविधाएं- असुविधाएं हैं। अहंकार कुछ कर सकता है, कुछ नहीं कर सकता। बंधन जारी रहेगा। सीमा बनी रहेगी।
सिर्फ परमात्मा ही जब मेरा केंद्र बनता है, मेरी सब सीमाएं गिर जाती हैं। उसके साथ ही मैं मुक्त हो जाता हूं। उसके साथ ही मुक्ति है। वही मुक्ति है।
आज इतना ही।
पांच मिनट बैठेंगे। जल्दी न करेंगे। पांच मिनट कीर्तन में सम्मिलित हों। और बीच में पांच मिनट कोई भी न उठे, अन्यथा बैठे लोगों को तकलीफ होती है।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
बारहवां प्रवचन

नीति और धर्म

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।। 29।।
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। 30।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। 31।।
मैं सब भूतों में सम-भाव से व्यापक हूं; न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है। परंतु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे में और मैं भी उनमें प्रकट हूं।
यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को निरंतर भजता है, वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है।
इसलिए वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली शांति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन, तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

जीवन के संबंध में एक बहुत बुनियादी प्रश्न इस सूत्र में उठाया गया है। और जो जवाब है, वह आमूल रूप से क्रांतिकारी है। उस जवाब की क्रांति दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि गीता का हम पाठ करते हैं, समझते नहीं। हम उसे पढ़ते हैं, दोहराते हैं, लेकिन उसकी गहनता में प्रवेश नहीं हो पाता। बल्कि अक्सर ऐसा होता है, जितना ज्यादा हम उसे दोहराते हैं, और जितना हम उसके शब्दों से परिचित हो जाते हैं, उतनी ही समझने की जरूरत कम मालूम पड़ती है। शब्द समझ में आ जाते हैं, तो आदमी सोचता है कि अर्थ भी समझ में आ गया!
काश, अर्थ इतना आसान होता और शब्दों से समझ में आ सकता, तो जीवन की सारी पहेलियां हल हो जातीं। लेकिन अर्थ शब्द से बहुत गहरा है। और शब्द केवल अर्थ की ऊपरी पर्त को छूते हैं। लेकिन शब्द को हम कंठस्थ कर सकते हैं। और शब्द की ध्वनि बार-बार कान में गूंजती रहे, तो शब्द परिचित मालूम होने लगता है। और परिचय को हम ज्ञान समझ लेते हैं!
इस सूत्र में कृष्ण ने कहा है कि आचरण महत्वपूर्ण नहीं है। कृष्ण के मुंह से ऐसी बात सुनकर हैरानी होगी। कृष्ण कहते हैं, आचरण महत्वपूर्ण नहीं है, अंतस महत्वपूर्ण है।
सब धर्म, जैसा हम सोचते हैं ऊपर से, आचरण पर जोर देते मालूम पड़ते हैं।
वे कहते हैं, यह करो और यह मत करो! और अगर तुम्हारा सदाचरण होगा, तो तुम प्रभु को उपलब्ध हो जाओगे। सदाचरण की बात ठीक ही मालूम पड़ती है। और कौन होगा जो कहेगा कि सदाचरण के बिना भी परमात्मा उपलब्ध हो सकता है! कौन है जो कहेगा कि अनैतिक जीवन भी परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है!
नीति तो आधार है, ऐसा हम सभी को लगता है। लेकिन नीति आधार नहीं है। और स्थिति बिल्कुल ही विपरीत है। सदाचरण से कोई परमात्मा को उपलब्ध होता हो, ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। हां, परमात्मा को जो उपलब्ध हो जाता है, वह जरूर सदाचरण को उपलब्ध हो जाता है। वह जो परमात्मा की प्रतीति है, वह प्राथमिक और मौलिक है; आचरण गौण है, द्वितीय है।
होना भी यही चाहिए; क्योंकि आचरण बाहरी घटना है और प्रभु-अनुभूति आंतरिक। और आचरण तो अंतस से आता है; अंतस आचरण से नहीं आता। मैं जो भी करता हूं, वह मुझसे निकलता है; लेकिन मेरा होना मेरे करने से नहीं निकलता। मेरा अस्तित्व मेरे करने के पहले है। मेरा होना, मेरे सब करने से ज्यादा गहरा है। मेरा सब करना मेरे ऊपर फैले हुए पत्तों की भांति है; वह मेरी जड़ नहीं है, वह मेरी आत्मा नहीं है।

इसलिए यह भी हो सकता है कि मेरा कर्म मेरे संबंध में जो कहता हो, वह मेरी आत्मा की सही गवाही न हो। कर्म धोखा दे सकता है; कर्म प्रवंचना हो सकता है; कर्म पाखंड हो सकता है, हिपोक्रेसी हो सकता है। मेरे भीतर एक दूसरी ही आत्मा हो, जिसकी कोई खबर मेरे कर्मों से न मिलती हो।
यह तो हम जानते हैं कि मैं बिल्कुल साधु का आचरण कर सकता हूं पूरी तरह असाधु होते हुए। इसमें कोई बहुत अड़चन नहीं है। क्योंकि आचरण व्यवस्था की बात है। मेरे भीतर कितना ही झूठ हो, मैं सच बोल सकता हूं; अड़चन होगी, कठिनाई होगी, लेकिन अभ्यास से संभव हो जाएगा। मेरे भीतर कितनी ही हिंसा हो, मैं अहिंसक हो सकता हूं। बल्कि दिखाई ऐसा पड़ता है कि जिसको भी अहिंसक होना हो इस भांति, उसके भीतर काफी हिंसा होनी चाहिए। क्योंकि स्वयं को भी अहिंसक बनाने में बड़ी हिंसा करनी पड़ती है; स्वयं को भी दबाना पड़ता है; स्वयं की भी गर्दन पकड़नी पड़ती है!
यह हो सकता है कि मेरे बाहर क्रोध प्रकट न होता हो और मेरे भीतर बहुत क्रोध हो। संभावना यही है कि मैं इतना क्रोधी आदमी हो सकता हूं कि क्रोध मेरे लिए इतना खतरा हो जाए कि या तो मैं क्रोध करूं या मैं जी सकूं। और जीना हो, तो मुझे क्रोध को दबाना पड़े।
इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि छोटे-मोटे क्रोधी कभी क्रोध को नहीं दबाते। इतना महंगा नहीं है उनका क्रोध। उतने क्रोध के रहते भी जिंदगी चल सकती है। लेकिन बड़े क्रोधी को तो क्रोध दबाना ही पड़ता है; क्योंकि जिंदगी असंभव हो जाएगी; जीना ही मुश्किल हो जाएगा। वह आग इतनी ज्यादा है कि जला डालेगी सब। कोई संबंध संभव नहीं रह जाएंगे।
तो बड़े क्रोधी को क्रोध को दबाना पड़ता है। दबाने में भी क्रोध की जरूरत पड़ती है। क्योंकि दबाना क्रोध का एक कृत्य है; चाहे दूसरे को दबाना हो, चाहे स्वयं को दबाना हो। तो यह हो सकता है। यह होता है। यह कठिन नहीं है। यह बहुत ही सहज घटता है कि बाहर जो आचरण में दिखाई पड़ता है, वह भीतर नहीं होता है। हम आचरण में धोखा दे सकते हैं।
लेकिन आचरण से जो धोखा दिया जाता है, वह लोगों की आंखों को हो सकता है, लेकिन वह धोखा स्वयं को नहीं दिया जा सकता। नीति का संबंध है दूसरे को धोखा न देने से, धर्म का संबंध है स्वयं को धोखा न देने से। नीति का संबंध है समाज की आंखों में शुभ होने से; धर्म का संबंध है परमात्मा के सामने शुभ होने से।
नैतिक होना आसान है। सच तो यह है कि अनैतिक होने में इतनी कठिनाइयां होती हैं कि आदमी को नैतिक होना ही पड़ता है। लेकिन धार्मिक होना बड़ा कठिन है; क्योंकि धार्मिक न होने से कोई भी अड़चन नहीं होती, कोई भी कठिनाई नहीं होती। बल्कि सच तो यह है कि धार्मिक होने से ही कठिनाई शुरू होती है और अड़चन शुरू होती है।
धार्मिक होकर जीना बड़े दुस्साहस का काम है। धार्मिक होकर जीने का अर्थ है कि अब मेरे जीवन का नियम मेरे भीतर से निकलेगा; अब इस जगत का कोई भी नियम मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं है; अब मैं ही अपना नियम हूं। और अब चाहे कुछ भी परिणाम हो, चाहे कितना ही दुख हो, और चाहे नर्क में भी पड़ना पड़े, लेकिन अब मेरा नियम ही मेरा जीवन है।
धार्मिक होकर जीना अति कठिन है। धार्मिक होकर जीने का परिणाम तो भुगतना पड़ता है। किसी जीसस को सूली लगती है, किसी सुकरात को जहर पीना पड़ता है। यह बिल्कुल अनिवार्य है। धार्मिक होकर जीना बहुत कठिन है।
ध्यान रहे, अनैतिक होकर भी जीना बहुत कठिन है; क्योंकि अनैतिक होते ही
आप समाज के संघर्ष में पड़ जाते हैं--कानून, अदालत, पुलिस। अनैतिक होते ही आप समाज से संघर्ष में पड़ जाते हैं। अनैतिक होकर जीना बहुत मुश्किल है। धार्मिक होकर जीना भी बहुत मुश्किल है; क्योंकि धार्मिक होते ही आप स्वतंत्र जीवन शुरू कर देते हैं। अनैतिकता से इसलिए कठिनाई आती है कि जब आप दूसरों के हितों को नुकसान पहुंचाते हैं, तो आप कठिनाई में पड़ेंगे। धार्मिक होने से इसलिए कठिनाई आती है कि आप दूसरों को मानना ही बंद कर देते हैं। आप ऐसे जीने लगते हैं, जैसे पृथ्वी पर अकेले हैं, जैसे पृथ्वी पर

कोई भी नहीं है। आपका समस्त नियम आपके भीतर से निकलने लगता है। तब भी कठिनाई होती है।
ध्यान रहे, अनैतिक होना कठिन है; धार्मिक होना कठिन है। नैतिक होना कनवीनिएंट है; नैतिक होना बड़ा सुविधापूर्ण है, पार्ट आफ रिस्पेक्टिबिलिटी है। वह जो हमारा चारों तरफ सम्मानपूर्ण समाज है, उसमें नैतिक होकर जीना सबसे ज्यादा सुविधापूर्ण है। इसलिए जितना चालाक आदमी होगा, उतना नैतिक होकर जीना शुरू करेगा।
नैतिकता अक्सर चालाकी का हिस्सा होती है। धर्म भोलेपन का परिणाम है, निर्दोषता का; नैतिकता चालाकी का, हिसाब का, कैलकुलेशन का; अनैतिकता नासमझी का परिणाम है, अज्ञान का।
समझ लें। अनैतिकता नासमझी का परिणाम है, अज्ञान का; नैतिकता होशियारी का, चालाकी का, गणित का; धर्म निर्दोष साहस का।
लेकिन समाज जोर देता है कि जो नैतिक नहीं है, वह धार्मिक नहीं हो सकेगा। इसलिए अगर परमात्मा तक जाना है, तो नैतिक बनो!
समाज का जोर ठीक है। समाज इस जोर को दिए बिना जी नहीं सकता। समाज को जीना हो, तो उसे नैतिकता की पूरी की पूरी व्यवस्था कायम करनी ही पड़ेगी। वह नेसेसरी ईविल है, जरूरी बुराई है। जब तक कि सारी पृथ्वी धार्मिक न हो जाए, तब तक नैतिकता की कोई न कोई व्यवस्था करनी ही पड़ेगी; क्योंकि अनैतिक होकर जीना इतना असंभव है। तो नैतिकता की व्यवस्था करनी पड़ेगी।
अगर दस चोर भी चोरी में कोई संगठन कर लेते हैं, तो भी अपने भीतर एक नैतिकता की व्यवस्था उन्हें निर्मित करनी पड़ती है। दस चोरों को भी! समाज के साथ वे अनैतिक होते हैं, लेकिन अपने भीतर, उनके गिरोह के भीतर अतिनैतिक होते हैं। और यह मजे की बात है कि चोर जितने नैतिक होते हैं अपने मंडल में, उतने साधु भी अपने मंडल में नैतिक नहीं होते!
उसका कारण है। उसका कारण है कि चोर भलीभांति समझता है कि अनैतिक होकर
जब समाज में जीना इतना असंभव है और मुश्किल है, तो अगर हम अनैतिक भीतर भी हो गए, तो हमारा जो आल्टरनेटिव समाज है, जो वैकल्पिक समाज है, वह भी मुश्किल हो जाएगा। हम पूरे समाज के खिलाफ तो जी ही रहे हैं, वह मुश्किल हो गया है। अब अगर हम दस लोग भी, जो खिलाफ होकर जी रहे हैं, हम भी अगर अनैतिक व्यवहार करें; और रात में हम भी एक-दूसरे की जेब काट लें; और वायदा दें और पूरा न करें, तो फिर हमारा जीना असंभव हो जाएगा।
इसलिए चोरों की अपनी नैतिक व्यवस्थाएं होती हैं। उनका अपना मारल कोड है। और ध्यान रहे, साधुओं से उनका मारल कोड हमेशा श्रेष्ठतर साबित हुआ है। उसका कारण है। उसका कारण है कि साधु तो समाज के साथ नैतिक होकर जीता है। उसे कोई अलग समाज नैतिक बनाकर जीने की जरूरत नहीं पड़ती। इसलिए दो साधुओं को इकट्ठा करना मुश्किल मामला है। दो साधुओं को इकट्ठा करना मुश्किल मामला है। सौ-पचास साधुओं को इकट्ठा करना उपद्रव लेना है! लेकिन सौ चोरों को इकट्ठा करें, तो एक बहुत नैतिक समाज उनके भीतर निर्मित हो जाता है। बुरे आदमी की अपनी नैतिक व्यवस्था है; क्योंकि वह यह समझता है कि बिना
उस व्यवस्था के जीना असंभव है। बाहर तो वह लड़ ही रहा है, अगर भीतर अपने गिरोह में भी लड़े, तो अति कठिनाई हो जाएगी।
समाज को नैतिकता की व्यवस्था जारी रखनी ही पड़ेगी, क्योंकि आदमी इतना अज्ञानी है। लेकिन समाज यह भी जोर देता है कि जब तक कोई नैतिक न होगा, तब तक वह धार्मिक नहीं हो सकता। यह वक्तव्य जरूरी है, लेकिन खतरनाक है और असत्य है। सचाई उलटी है। सचाई यह है कि जब तक कोई धार्मिक न होगा, तब तक उसकी नैतिकता आरोपित, थोपी हुई, ऊपर से लादी हुई होगी, अस्थाई होगी; आंतरिक नहीं होगी, आत्मिक नहीं होगी।
धार्मिक होकर ही व्यक्ति के जीवन में नीति का आविर्भाव होता है। उस नीति का, जो किसी भय के कारण नहीं थोपी गई होती। न किसी प्रलोभन, न किसी पुरस्कार के लिए, न स्वर्ग के लिए; न नर्क के डर से, न स्वर्ग के लोभ से; न प्रतिष्ठा के लिए, न सम्मान के लिए, न सुविधा के लिए, बल्कि इसलिए कि भीतर अब नैतिक होने में ही आनंद मिलता है और अनैतिक होने में दुख मिलता है। लेकिन ऐसी नैतिकता का जन्म धर्म के बाद होता है।

तो कृष्ण ने इस में एक सूत्र कहा है, और वह सूत्र समझने जैसा है। वह कहा है, अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ, मुझे निरंतर भजता है, वह साधु मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है।
यहां साधु की परिभाषा में कृष्ण ने हैरानी की बात कही है। साधु से सामान्यतया हम समझते हैं, सदाचारी। साधु का अर्थ होता है, सदाचारी; असाधु का अर्थ होता है, दुराचारी। यहां कृष्ण कहते हैं, अतिशय दुराचारी भी यदि मेरी भक्ति में अनन्य भाव से डूबता है, तो वह साधु है।
यहां साधु की पूरी परिभाषा बदल जाती है। साधु का अर्थ ही होता है, सदाचारी। यहां कृष्ण कहते हैं, अतिशय दुराचारी भी साधु कहा जाने योग्य है! फिर साधु की क्या परिभाषा होगी?
कृष्ण कहते हैं, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है--ए फर्म डिटरमिनेशन।
एक यथार्थ निश्चय यहां साधु की परिभाषा है। और वह यथार्थ निश्चय क्या है? वह यथार्थ निश्चय है, प्रभु के स्मरण का। वह यथार्थ निश्चय है, प्रभु के प्रति समर्पण का। वह यथार्थ निश्चय है, उसकी अनन्य भक्ति का।
यहां दो-तीन बातें हम समझ लें। एक तो यथार्थ निश्चय वाले को साधु कहना बड़ी नई बात है। आपको इस सूत्र को पढ़ते वक्त ख्याल में न आई होगी। क्योंकि यह तो कृष्ण यह कह रहे हैं कि असाधु भी साधु है, अगर वह यथार्थ निश्चय वाला है। असाधु का मतलब होता है, दुराचारी। असाधु को भी साधु जानना, अगर वह यथार्थ निश्चय वाला है, और उसका निश्चय मेरी तरफ गतिमान हो गया है।
तो दो बातें। यथार्थ निश्चय का क्या अर्थ है? यथार्थ निश्चय के दो अर्थ हैं। एक, समग्र हो, उसके विपरीत कोई भी भाव मन में न हो, तो ही यथार्थ होगा, अन्यथा डांवाडोल होता रहेगा। पूरे मन से लिया गया हो, पूरे प्राणों ने हामी भर दी हो। अगर पूरे प्राणों ने हामी भर दी हो, तो वह निश्चय यथार्थ हो जाएगा। और अगर पूरे प्राणों ने हामी न भरी हो, तो निश्चय काल्पनिक रहेगा, वास्तविक नहीं होगा। और मन डोलता रहेगा; और हम ही बनाएंगे और हम ही मिटाते रहेंगे; एक हाथ से निश्चय की ईंटें रखेंगे, दूसरे हाथ से निश्चय की ईंटों को गिरा देंगे। दोनों तरफ से हम काम करते रहेंगे, एक तरफ निर्णय लेंगे, एक तरफ निर्णय को तोड़ने का उपाय करते रहेंगे। कहीं पहुंचेंगे नहीं। यथार्थ निश्चय का अर्थ हुआ कि पूरे चित्त से लिया गया हो।
एक सूफी फकीर हसन एक गांव में आया है। रात आधी हो गई है, कहीं ठहरने को कोई जगह नहीं है; अजनबी, अपरिचित आदमी है। सराय के मालिक ने कहा कि कोई गवाह ले आओ, तब मैं ठहरने दूंगा।
आधी रात, गवाह कहां खोजे? अनजान, अपरिचित गांव है। कोई पहचान वाला भी नहीं है। परेशान है। एक झाड़ के नीचे सोने को जा रहा है कि तब एक आदमी उसे पास से गुजरता हुआ दिखाई पड़ा। उसने उस आदमी से कहा कि पूरी बस्ती सो गई है; किसी को मैं जानता नहीं हूं। क्या आप मेरे लिए थोड़ी सहायता करेंगे कि चलकर सराय के मालिक को कह दें कि आप मुझे जानते हैं!
उस आदमी ने कहा--पास आकर हसन को देखा कि फकीर है--हसन को कहा कि पहले तो मैं तुम्हें अपना परिचय दे दूं, क्योंकि मैं एक चोर हूं, और रात में अपने काम पर निकला हूं। एक चोर की गवाही एक साधु के काम पड़ेगी या नहीं, मैं नहीं जानता! सराय का मालिक मेरी बात मानेगा, नहीं मानेगा। मेरी गवाही का बहुत मूल्य नहीं हो सकता। लेकिन मैं एक निवेदन करता हूं कि मेरा घर खाली है। मैं तो रातभर काम में लगा रहूंगा, तुम आकर सो सकते हो।
हसन थोड़ा चिंतित हुआ। और उसने कहा कि तुम एक चोर होकर भी मुझ पर इतना भरोसा करते हो कि अपने घर में मुझे ठहराते हो?
उस चोर ने कहा, जो बुरे से बुरा हो सकता है, वह मैं करता हूं। अब इससे बुरा और कोई क्या कर सकेगा? चोरी ही करोगे न ज्यादा से ज्यादा! यह आम अपना काम है। तुम घर आकर रह सकते हो।
सराय में जगह नहीं मिली। सराय अच्छे लोगों ने बनाई थी। एक चोर ने जगह दी! और उसने कहा, अब और बुरा क्या हो सकता है! लेकिन फिर भी हसन डरा कि चोर के घर में रुकना या नहीं रुकना! या झाड़ के नीचे ही सो जाना बेहतर है!

बाद में हसन ने कहा कि उस दिन मुझे पता चला कि मेरा साधु उस चोर से कमजोर था। साधु डरा कि चोर के घर रुकूं या न रुकूं! और चोर न डरा कि इस अजनबी आदमी को घर में ठहराऊं या न ठहराऊं! चोर को यह भी भय न लगा कि यह साधु है, अपना दुश्मन है, अपने को बदल डालेगा! साधु को यह भय लगा कि चोर के साथ रहने से कहीं मेरी साधुता नष्ट न हो जाए!
हसन ने बाद में कहा कि उस दिन मुझे पता चला कि मेरे साधु का जो निश्चय था, वह चोर के निश्चय से कमजोर था। वह ज्यादा दृढ़ निश्चयी था।
गया, चोर के घर रात रुका। कोई सुबह, भोर होने के पहले चोर आया; हसन ने दरवाजा खोला। हसन ने पूछा, कुछ मिला? चोर ने हंसते हुए कहा, आज तो नहीं मिला, लेकिन फिर कोशिश करेंगे।
उदास नहीं था, परेशान नहीं था, चिंतित नहीं था; आकर मजे से सो गया! दूसरी रात भी गया। और हसन एक महीने उसके घर में रहा, और रोज ऐसा हुआ कि रोज वह खाली हाथ लौटता और हसन उससे पूछता कि कुछ मिला? और वह कहता, आज तो नहीं, लेकिन फिर कोशिश करेंगे!
फिर बरसों बाद हसन को आत्म-ज्ञान हुआ। दूर उस चोर का कोई पता भी न था कहां होगा। जिस दिन हसन को आत्म-ज्ञान हुआ, उसने पहला धन्यवाद उस चोर को दिया और परमात्मा से कहा, उस चोर को धन्यवाद! क्योंकि उसके पास ही मैंने यह सीखा कि साधारण-सी चोरी करने यह आदमी जाता है और खाली हाथ लौट आता है; लेकिन उदास नहीं है; थकता नहीं; निश्चय इसका टूटता नहीं। कभी ऐसा नहीं कहता कि यह धंधा बेकार है, छोड़ दें; कुछ हाथ नहीं आता!
और जब मैं परमात्मा को खोजने निकला, उस परम संपदा को खोजने निकला, तो न मालूम कितनी बार ऐसा लगता था कि यह सब बेकार है; कुछ मिलता नहीं। न कोई परमात्मा दिखाई पड़ता है, न कोई आत्मा का अनुभव होता है। पता नहीं इस सब बकवास में मैं पड़ गया हूं, छोडूं। और जब भी मुझे ऐसा लगता था, तभी मुझे उस चोर का ख्याल आता था कि साधारण-सी संपदा को चुराने जो गया है, उसका निश्चय भी मुझसे ज्यादा है; और मैं परम संपदा को चुराने निकला हूं, तो मेरा निश्चय इतना डांवाडोल है!
तो जिस दिन उसे ज्ञान हुआ, उसने पहला धन्यवाद उस चोर को दिया और कहा कि मेरा असली गुरु वही है। हसन के शिष्यों ने उससे पूछा कि उसके असली गुरु होने का कारण? तो उसने कहा, उसका दृढ़ निश्चय!
दृढ़ निश्चय का अर्थ है कि पूरे प्राण इतने आत्मसात हैं कि चाहे हार हो, चाहे जीत; चाहे सफलता मिले, चाहे असफलता, निर्णय नहीं बदलेगा। दृढ़ निश्चय का अर्थ है, चाहे असफलता मिले, चाहे सफलता, चाहे जन्मों-जन्मों तक भटकना पड़े, निर्णय नहीं बदलेगा। खोज जारी रहेगी। सब खो जाए बाहर, लेकिन भीतर खोजने वाला संकल्प नहीं खोएगा। वह जारी रहेगा। सब विपरीत हो जाए, सब प्रतिकूल पड़ जाए, कोई साथी न मिले, कोई संगी न मिले, कोई अनुभव की किरण भी न मिले, अंधेरा घनघोर हो, टूटने की कोई आशा न रहे, तब भी।
कीर्कगार्ड ने इस दृढ़ निश्चय की परिभाषा में कहा है, वन हू कैन होप अगेंस्ट होप। जो आशा के भी विपरीत आशा कर सके, वही दृढ़ निश्चय वाला है। दृढ़ निश्चय का अर्थ है, जब सब तरह से आशा टूट जाए, बुद्धि कोई जवाब न दे
कि कुछ होगा नहीं अब; रास्ता समाप्त है, आगे कोई मार्ग नहीं है; शक्ति चुक गई; श्वास लेने तक की हिम्मत नहीं है; एक कदम अब उठ नहीं सकता और मंजिल कोसों तक कोई पता नहीं है, तब भी भीतर कोई प्राण कहता चला जाए कि मंजिल है, और चलूंगा; और चलता रहूंगा। यह जो आत्यंतिक संकल्प है, इसका नाम दृढ़ निश्चय है।
और कृष्ण कहते हैं, दृढ़ निश्चय साधु का लक्षण है।
दुराचरण-आचरण की चिंता छोड़ देते हैं। अब इसे थोड़ा हम गहरे में समझेंगे, तो हमें ख्याल में आएगा कि उनके छोड़ने का कारण क्या है?
क्योंकि ध्यान रहे, दुराचरण का मौलिक कारण क्या है? सदाचरण की आकांक्षा सभी में पैदा होती है, लेकिन निश्चय ही कभी दृढ़ नहीं हो पाता, तो दुराचरण पैदा होता है। दुराचरण गहरे में निश्चय की कमी है।
ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने न चाहा हो कि क्रोध से छुटकारा मिल जाए, जिसने न चाहा हो कि झूठ बोलना बंद करूं। क्योंकि झूठ स्वयं को भी गहरे

में पीड़ा देता है; और क्रोध खुद को ही जलाता है; और निंदा अपने ही मन को गंदा कर जाती है; और अनीति जिसे हम कहते हैं, वह भीतर एक कुरूपता को, एक कोढ़ को पैदा करती है। तो कौन है जिसने न चाहा हो?
लेकिन चाह से कुछ भी नहीं होता, क्योंकि चाह संकल्प नहीं बन पाती। चाहते हैं बहुत, चाहते हैं बहुत, और समय पर सब बिखर जाता है। भीतर संकल्प नहीं होता है, तो चाह सिर्फ चाह रह जाती है, निश्चय नहीं बन पाती।
तो कृष्ण कहते हैं कि अगर कोई दुराचारी भी हो, तो चिंता नहीं है; असली सवाल यह है कि उसके पास एक दृढ़ निश्चय है या नहीं है।
और यह बड़े मजे की बात है कि बुरे आदमियों के पास एक तरह का निश्चय होता है, जो भले आदमियों के पास नहीं होता। बुरे आदमी अपनी बुराई में बड़े जिद्दी होते हैं। और बुरे आदमी अपनी बुराई में बड़े पक्के होते हैं। और बुरा आदमी अपनी बुराई का इस तरह पीछा करता है, जैसा कोई भला आदमी अपनी भलाई का कभी नहीं करता। और बुरा आदमी अपनी बुराई से सब तरह के कष्ट पाता है, फिर भी बुराई में अडिग बना रहता है; और भला आदमी कष्ट नहीं भी पाता, फिर भी डांवाडोल होता रहता है!
कहीं ऐसा तो नहीं है, जिसे हम भला आदमी कहते हैं, वह सिर्फ भय के कारण भला होता है; उसके पास दृढ़ निश्चय नहीं होता? ऐसा तो नहीं है कि जो चोरी नहीं करता, वह इसलिए चोरी न करता हो, क्योंकि पकड़े जाने का डर है। ऐसा तो नहीं है कि इसलिए चोरी न करता हो कि नर्क में कौन भुगतेगा! ऐसा तो नहीं है कि इसलिए चोरी न करता हो कि बदनामी हो जाएगी। कहीं ऐसा तो नहीं है कि चोरी न करना, केवल गहरे में कायरता हो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह आदमी अहिंसक बनकर बैठ गया है। वह कहता है, हम किसी को मारना नहीं चाहते; क्योंकि गहरे में वह जानता है कि मारोगे तो पिटने की तैयारी होनी चाहिए। क्योंकि कोई भी आदमी मारने जाए और मार खाने की तैयारी न रखता हो, तो कैसे जाएगा? तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि सारी अहिंसा केवल भीतर की कायरता का बचाव हो; कि न मारेंगे, न मारे जाएंगे। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मार खाकर भी अपने को बचा लेने की तरकीब हो, कि तुम कितना ही मारो, हम तो अहिंसक हैं, हम जवाब न देंगे।
भला आदमी जिसे हम कहते हैं, सौ में नब्बे मौके पर कमजोरी के कारण भला होता है। इसीलिए तो भलाई इतनी कमजोर है दुनिया में और बुराई इतनी मजबूत है। और बुरे आदमी को दो सजाएं, और बुरे आदमी को अपराध में दंड दो, जेलखानों में रखो, फांसियां लगाओ। और बुरा आदमी है कि परसिस्ट करता है, अपनी बुराई पर मजबूत रहता है। एक बात का तो आदर करना ही पड़ेगा कि उसकी मजबूती गहरी है; उसकी बुराई बुरी है, लेकिन उसकी मजबूती बड़ी गहरी है और बड़ी अच्छी है।
तो कृष्ण कहते हैं कि अगर कोई आदमी दृढ़ निश्चय वाला है और दुराचारी भी है, तो भी उसे साधु समझना; क्योंकि अगर वह अपने दृढ़ निश्चय को मेरी ओर लगा दे, तो सब रूपांतरण हो जाएगा।
इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि कोई वाल्मीकि, सब तरह से बुरा है; हत्यारा है, चोर है, लुटेरा है, डाकू है; और फिर अचानक महर्षि हो जाता है! जरा-सी घटना, इतनी-सी घटना से इतनी बड़ी क्रांति कैसे होती होगी? क्योंकि आचरण जन्मों-जन्मों का बुरा हो, तो क्षणभर में सदाचरण कैसे बन जाएगा?
एक ही बात हो सकती है कि उस दुराचरण के पीछे जो दृढ़ संकल्प था, वह दृढ़ संकल्प अगर अब सदाचरण के पीछे लग जाए, तो क्षणभर में क्रांति हो जाएगी। क्योंकि वह दुराचरण भी उस संकल्प के कारण ही चलता था। बुरे आदमी मजबूत होते हैं; पागल होते हैं; जो करते हैं, उसको बिल्कुल पागलपन से करते हैं। हिटलर जैसा साधु खोजना अभी भी मुश्किल है। बहुत मुश्किल है। स्टैलिन जैसा साधु खोजना अभी भी मुश्किल है। अगर स्टैलिन को एक धुन सवार थी, तो एक करोड़ आदमियों की हत्या वह कर सकता है! अगर हिटलर को एक ख्याल सवार था, तो सारी दुनिया को आग में डाल सकता है; खुद जल सकता है, सारी दुनिया को जला डाल सकता है। इतना बल, बुराई के लिए, जिससे कि अंततः दुख के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आता है, निश्चित ही एक गहरी बात है। कहना चाहिए, इस तरह के व्यक्तियों के पास एक तरह की आत्मा है; एक पोटेंशियल, एक बीज-रूप आत्मा है!

हिटलर के पास बड़ी आत्मा है बजाय उस आदमी के, जो डर के मारे साधु बना बैठा है। क्योंकि भय तो आत्मा को जंग मार देता है। हिटलर बुरा है, बिल्कुल बुरा है; शैतान; जितना शैतान हो सकता है, उतना शैतान है। लेकिन इस शैतान के पास भी एक आत्मा है, एक संकल्प है। और यह संकल्प जिस दिन भी बदल जाए, उस दिन यह आदमी क्षणभर में क्रांति से गुजर जाएगा। किसी भी जन्म में, कहीं भी, इस हिटलर को किसी दिन जब संकल्प का रूपांतरण होगा, तो इसकी आत्मा से एक बहुत महान तेजस्वी व्यक्तित्व का जन्म हो जाएगा एक क्षण में। क्योंकि यह धारा कोई पतली धारा नहीं है, कोई नदी-नाला नहीं है। यह महासागर की धारा है। अगर बुराई की तरफ जाती थी, तो बुराई की तरफ सारा जगत बहेगा इसके साथ। अगर भलाई की तरफ जाएगी, तो इतना ही बड़ा प्रचंड झंझावात भलाई की तरफ भी बहने लगेगा। कृष्ण कहते हैं, दुराचार असली सवाल नहीं है, असली सवाल यह है कि वह जो भीतर संकल्प की क्षमता है, दृढ़ निश्चय है। एक। और दूसरी बात; अकेला दृढ़ निश्चय ही हो, तो काफी नहीं है; क्योंकि दृढ़ निश्चय से आप बुरा भी कर सकते हैं, भला भी कर सकते हैं। दृढ़ निश्चय तो तटस्थ शक्ति है। इसलिए दूसरी शर्त है, अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ निरंतर मुझे भजता है; वह साधु मानने योग्य है। और शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाएगा। शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाएगा।
यह जो दृढ़ निश्चय की चेतना है, इसका क्या अर्थ है? अगर हम अपनी चेतना
को समझें, तो हमारी चेतना ऐसी है, जैसे किसी कुएं में बाल्टी डालें, और छेद ही छेद वाली बाल्टी हो। फिर कुएं से खींचें पानी को, तो पानी भरेगा तो जरूर, पहुंचेगा नहीं। भरेगा तो जरूर; और जब तक बाल्टी पानी में डूबी रहेगी, पूरी भरी मालूम पड़ेगी, लबालब; और जैसे ही पानी से खींचना शुरू हुआ कि बाल्टी खाली होनी शुरू हो जाएगी। बड़ा शोरगुल मचेगा कुएं में, क्योंकि सब धाराओं से पानी नीचे गिरेगा। आवाज बहुत होगी, हाथ कुछ भी न आएगा। हाथ खाली बाल्टी लौट आएगी।
हमारी चेतना ऐसी है। इतने छिद्र हैं हमारे संकल्प में कि कई बार भर लेते हैं बिल्कुल, और ऐसा लगता है कि सब ठीक हो गया। बस, पानी में डूबी रहे, तभी तक। पानी में डूबी रहने का अर्थ, जब तक कल्पना में डूबी रहे, तब तक। तब तक सब ठीक हो जाता है। आज सांझ तय कर लेते हैं, तब लगता है कि बिल्कुल साधु हो गया मैं अब, अब कुछ कारण नहीं रहा। रात बिल्कुल साधु की तरह सो जाता हूं। और सुबह हाथ खाली बाल्टी! बड़ा रातभर शोरगुल होता है, बड़ी आवाजें आती हैं कि भरकर बाल्टी आ रही है।
ध्यान रहे, जब भरकर बाल्टी आती है, तो आवाज बिल्कुल नहीं होती; और जब खाली बाल्टी आनी होती है, तो आवाज बहुत होती है।
हमारे मन में कितनी आवाज चलती है! रोज-रोज निर्णय करते हैं, रोज-रोज बिखर जाते हैं। और धीरे-धीरे हम भलीभांति जान जाते हैं कि हमारे निर्णय का कोई भी मूल्य नहीं है। जिस दिन हमें यह अनुभव हो जाता है कि हमारे निर्णय का कोई भी मूल्य नहीं है, हमारे संकल्प की कोई क्षमता नहीं है, उसी दिन समझना आपकी मृत्यु हो गई। शरीर कुछ दिन चलेगा, वह अलग बात है, आप मर गए, आत्मिक रूप से आप मर गए। लाशें जी सकती हैं, जीती हैं; मुर्दे चल सकते हैं, चलते हैं; लेकिन जिस दिन पता आपको चल गया कि आपके पास कोई संकल्प नहीं है, उसी दिन आप मर गए।
तो हम अपने को धोखा देते रहते हैं; यह भी पता नहीं चलने देते। रोज-रोज
नए संकल्प करते रहते हैं। और क्षुद्रतम संकल्प भी कभी पूरे होते नहीं दिखाई पड़ते। बहुत क्षुद्र संकल्प करिए, और आपकी छिद्रों वाली बाल्टी उसको बहाकर रख देगी!
हमारी चेतना ऐसी है, बहुत छिद्रों वाली। जितने ज्यादा छिद्र होंगे, उतना ही संकल्प मुश्किल हो जाएगा। दृढ़ संकल्प का अर्थ है, जिस बाल्टी में कोई छिद्र नहीं है। उसका अर्थ हुआ कि जो चेतना अपने संकल्प से अपने को भर लेती है, तो बिखर नहीं पाती, बिखराव नहीं होता। क्या करें कि ऐसा हो जाए? यह तो हम जानते हैं कि छिद्रों वाली हमारी चेतना है। क्या करें? क्या करें कि ये छिद्र बंद हो जाएं? इनसे हमारा छुटकारा हो जाए!
पहली बात, कभी भी बड़े संकल्प मत करें। बचपन से ही हम हर आदमी को बड़े संकल्प करवाने की शिक्षा देते हैं, उससे असफलता हाथ लगती है। बहुत छोटे

संकल्प करें। असली सवाल संकल्प का बड़ा होना और छोटा होना नहीं है, असली सवाल संकल्प का सफल होना है। बहुत छोटे संकल्प करें, लेकिन संकल्पों को सफलता तक पहुंचाएं। बड़े संकल्प मत करें। क्योंकि अगर असफलता मिलती है, तो धीरे-धीरे भीतर हीनता गहरी होती चली जाती है। हर असफलता एक छिद्र बन जाती है। हर असफलता एक छिद्र बन जाती है। हर सफलता छिद्रों का रुकना बन जाती है। बहुत छोटे संकल्प करें, बड़े संकल्प का कोई सवाल नहीं है।
तिब्बत में, जब कोई साधु प्रवेश करता है किसी आश्रम में, तो बड़े छोटे संकल्पों की शिक्षा देते हैं, बहुत छोटा संकल्प। साधु को कह देते हैं, बाहर दरवाजे पर बैठ जाओ। आंख बंद रखना, और जब तक गुरु आकर न कहे, तब तक आंख मत खोलना।
यह कोई बड़ा संकल्प नहीं है। कौन-सा बड़ा संकल्प है! आप कहेंगे, आंख बंद
रख लेंगे। लेकिन बंद रखकर जब बैठेंगे दो-चार घंटे, तब पता चलेगा! कई बार बीच में धोखा देने का मन आएगा। कई बार जरा-सी आंख खोलकर देख लेने का मन होगा कि अभी तक गुरु आया कि नहीं आया? कौन गुजर रहा है? नहीं तो कम से कम घड़ी का जरा-सा ख्याल आ जाएगा कि कितना बज गया? कितनी देर हो गई? और मन इतना बेईमान है कि आपको पता भी नहीं चलेगा और आप कर गुजरेंगे।
बहुत छोटा-सा संकल्प है, लेकिन बैठा हुआ है व्यक्ति, आंख बंद किए हुए बैठा है। छः घंटे बीत गए हैं, वह आंख बंद किए हुए बैठा है। कोई बड़ा काम नहीं करवाया गया है। लेकिन छः घंटे भी अगर उसने ईमानदारी से, आथेंटिकली, प्रामाणिक रूप से आंख बंद रखी है, तो छः घंटे के बाद उस आदमी की बाल्टी के कई छेद बंद हो गए होंगे। यह छोटा-सा प्रयोग है। कोई बहुत बड़ा प्रयोग नहीं है। बहुत छोटा-सा प्रयोग है।
सब धर्मों के पास छोटे-छोटे प्रयोग हैं। वे छोटे-छोटे प्रयोग धर्म के लिए नहीं हैं, संकल्प के लिए हैं। समझ लें, कोई धर्म कहता है कि आज उपवास कर लें। कोई धर्म कहता है, आज यह नहीं खाएंगे। कोई धर्म कहता है, आज यह नहीं पहनेंगे। कोई धर्म कहता है, आज रात सोएंगे नहीं। कोई धर्म कहता है, दिनभर खाना नहीं खाएंगे, रात खाना खाएंगे। इनका धर्म से कोई भी सीधा संबंध नहीं है। इन सबका संबंध संकल्प के, वह जो छिद्रों वाली बाल्टी है, उसको भरने से है।
लेकिन जैसा मैंने कहा कि आंख खोलकर धोखा देने का मन होगा, वह तो समझ में भी आ जाएगा, क्योंकि आंख खोलनी पड़ेगी। अगर आपने एक दिन का उपवास किया है, तो वह उपवास उसी वक्त टूट जाता है, जिस वक्त भोजन का ख्याल आ जाता है और आप कल्पना में भोजन करना शुरू कर देते हैं। उसी वक्त टूट जाता है। फिर उपवास रखने का कोई मूल्य नहीं रह गया। कोई मूल्य नहीं रह गया।
और आमतौर से साधक, जो उपवास करते हैं, वे क्या करते हैं? जैसे जैनों में उपवास के संकल्प का बहुत प्रयोग किया गया है। तो जब वे उपवास करेंगे उनके पर्युषण में, तो उपवास करके मंदिर में पहुंच जाएंगे! साधु की चर्चा सुनेंगे, शास्त्र सुनेंगे, मंदिर में बैठे रहेंगे। न भोजन दिखाई पड़ेगा, न भोजन की चर्चा होगी, न उसकी याद आएगी। इसलिए बचाव करेंगे वहां जाकर।
यह धोखा है। भोजन करने या नहीं करने का मूल्य नहीं है; मूल्य तो संकल्प को जगाने का है। तो मैं आपसे कहता हूं कि जिस दिन उपवास करें, उस दिन तो चौके में ही अड्डा जमा दें; उस दिन चौका छोड़ना ही नहीं है। और जितनी अच्छी चीजें आपको पसंद हों, सब बनवाकर अपने चारों तरफ रख लें, और बीच में ध्यानस्थ होकर बैठ जाएं। एक-एक चीज पर ध्यान दें, और भीतर भी ध्यान जारी रखें कि भोजन करने का ख्याल उठे... ।
और आप हैरान होंगे कि मंदिर में भोजन का ख्याल आ जाएगा, चौके में नहीं आएगा! और ऐसा कोई नियम न बनाएं कि करेंगे ही नहीं। अगर ख्याल आता है, तो ख्याल करने की बजाय भोजन कर लेना बेहतर है। क्योंकि ख्याल ज्यादा गहरे जाता है, भोजन उतना गहरा नहीं जाता। भोजन शरीर में जाता है, शरीर से निकल जाता है; ख्याल संकल्प में चला जाता है, और संकल्प में छेद कर जाता है। छोटे-छोटे संकल्पों की साधना से गुजरना जरूरी है। बड़े संकल्प मत करें। जो पूरे न हो सकें, उनको छुएं ही मत; जो पूरे हो सकें, उनको ही छुएं।

मेरे एक मित्र हैं, सिगरेट से परेशान हैं। चेन स्मोकर हैं। दिनभर पीते रहेंगे! भले आदमी हैं, साधु-संन्यासियों के पास जाते हैं। न मालूम कितनी बार कसमें खा आए। सब कसमें टूट गईं। कई बार तय कर लिया, घंटे दो घंटे नहीं में भी चलाई हालत। लेकिन फिर नहीं चल सका! कभी दिन दो दिन भी खींच लिया। लेकिन तब खींचना इतना भारी हो गया कि उससे तो सिगरेट पी लेना ही बेहतर था। सब काम-धाम रोककर अगर इतना ही काम करना पड़े कि सिगरेट नहीं पीएंगे, तो भी जिंदगी मुश्किल हो जाए।
रात नींद न आए, दिन में काम न कर सकें, चिड़चिड़ापन आ जाए, हर किसी से झगड़ने और लड़ने को तैयार हो जाएं! तो मैंने कहा, इससे तो सिगरेट बेहतर थी। यह झगड़ा-झांसा चौबीस घंटे का! हरेक के ऊपर उबल रहे हैं। जैसे उन्होंने कोई भारी काम कर लिया है; क्योंकि सिगरेट नहीं पी है! और हरेक की गलतियां देखने लगें। जब भी वे सिगरेट छोड़ दें दिन दो दिन के लिए, तो सारी दुनिया में उनको पापी नजर आने लगें! स्वभावतः, उन्होंने इतना ऊंचा काम किया है, तो उनको ख्याल में आएगा ही।
बहुत उपाय करके वे थक गए। फिर उन्होंने मान लिया कि यह नहीं छूटेगी। लेकिन बड़ी दीनता छा गई मन पर कि एक छोटा-सा काम नहीं कर पाए। मुझसे वे पूछते थे कि क्या करूं? मैंने कहा कि मुझसे तुम मत पूछो। कितनी सिगरेट पीते हो, मुझे संख्या बताओ!
उन्होंने कहा कि मैं अंदाजन कोई तीस सिगरेट तो हर हालत में दिनभर में
पी जाता हूं।
तो मैंने कहा, कसम खाओ कि साठ पीएंगे कल से, लेकिन एक कम नहीं।
उन्होंने कहा, आप पागल हैं!
मैंने कहा कि तुमने जो संकल्प किया, वह हमेशा टूट गया, उससे बड़ा नुकसान पहुंचा। एकाध तो पूरा करके दिखाओ। साठ पीयो कल से। लेकिन एक कम अगर पी, तो ठीक नहीं; फिर मेरे पास दुबारा मत आना।
उन्होंने कहा, क्या कहते हैं! चित्त उनका बड़ा प्रसन्न हो गया। ऊपर से
तो कहने लगे कि आप क्या कहते हैं! लेकिन उनकी आंखें, उनका चेहरा, सब आनंदित हो गया। कि आप आदमी कैसे! आप कहते क्या हैं! साठ!
लेकिन आप साठ से अगर एक भी कम हुई, तो दुबारा मेरे पास मत आना।
उन्होंने साठ सिगरेट पीनी शुरू की। कठिन था मामला। कठिन था मामला, क्योंकि जबर्दस्ती उनको तीस सिगरेट और पीनी पड़ती थीं। नहीं पीनी थीं और पीनी पड़ती थीं। और जब भी कोई चीज न पीनी हो और पीनी पड़े, तो अरुचि बढ़ जाती है; और जब पीनी हो और न पीनी पड़े, तो रुचि बढ़ जाती है। आदमी का मन बहुत अदभुत है।
तीन-चार दिन बाद आकर मुझसे बोले कि यह संकल्प कब तक पूरा करना पड़ेगा? मैंने कहा कि यह मेरे हाथ में है, तुम जारी रखो। यह, जब मैं कहूंगा, तब इसको तुड़वा देंगे।
उन्होंने कहा, यह बहुत मुश्किल मामला मालूम पड़ता है।
जारी रखो! एक काम तो जिंदगी में मुश्किल करके दिखाओ। सातवें दिन वे हाथ-पैर जोड़ने लगे। उन्होंने कहा कि मैं बिल्कुल, मुझे ऐसा पागलपन लगता है कि मुझे पीना नहीं है और मैं पी रहा हूं! और आपने मेरी बाकी तीस सिगरेट भी खराब कर दीं। अब ये साठों ही बेकार लग रही हैं!
अभी पीयो! और एक-दो सप्ताह चलने दो। यह बिल्कुल जब नर्क हो जाए; और जैसा तुम पहले छोड़कर लोगों पर चिड़चिड़ाते थे, जब इसको पीकर चिड़चिड़ाने लगो और झगड़ने लगो और उपद्रव करने लगो, तब देखेंगे।
तीन सप्ताह में उनकी हालत पागलपन की हो गई। तीन सप्ताह बाद वे आए। मैंने कहा कि अब कोई दिक्कत नहीं है, छोड़ दो। मैंने उनसे कहा कि इस समय तुम्हें कैसा लगता है? छोड़ पाओगे?
उन्होंने कहा, क्या आप कह रहे हैं! किसी तरह भी छुटकारा हो जाना चाहिए इससे।
छूट गई सिगरेट। वह मुझसे अब पूछते हैं--वर्षभर बाद मुझे मिले, तो मुझसे पूछते हैं--इसका राज क्या है? मैंने कहा, राज कुछ भी नहीं है। एक संकल्प जीवन में तुम्हारा पूरा हुआ। तुम्हारी आत्म-ऊर्जा जगी। तुम्हें

लगा, मैं भी कुछ पूरा कर सकता हूं! गलत ही सही, पूरा तो कर सकता हूं। तुमने जिंदगी में कभी कुछ पूरा नहीं किया था।
ध्यान रहे, जो भी संकल्प लें, वह पूरा हो सके, तो ही लें; अन्यथा मत लें;
न लेना बेहतर है। एक दफा उनका टूटना, खतरनाक छेद छूट जाते हैं। और हर बच्चे की जिंदगी में जो इतने छेद बन जाते हैं, उसके लिए हम जिम्मेवार हैं; शिक्षक, मां-बाप, समाज, सब जिम्मेवार हैं। न मालूम क्या-क्या उनको करवाने की कोशिश करते हैं, जो वे नहीं कर पाएंगे। उनका संकल्प टूट जाएगा। छेद-छेद आत्मा हो जाएगी। फिर दृढ़ संकल्प होना बहुत मुश्किल है।
और दूसरी बात; दृढ़ संकल्प बनाने की दिशा में बढ़ें। छोटे-छोटे संकल्प करें, उन्हें पूर्ण करें। धीरे-धीरे आप पाएंगे कि आप भी कुछ कर सकते हैं। और कोई जरूरत नहीं है कि बहुत बड़े-बड़े काम में लगें, बहुत छोटे-से काम में लगें, कि एक मिनट तक मैं इस अंगुली को ऊपर ही रखूंगा, नीचे नहीं गिराऊंगा। अब इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन आप पाएंगे, एक मिनट में पच्चीस दफे मन होगा कि क्या कर रहे हो? नीचे कर लो! क्या फायदा? कोई देख न ले कि यह अंगुली ऊंची क्यों रखे हुए हो! कोई यह न समझ जाए कि पागल हो गए हो!
मेरे पास लोग आते हैं संन्यास के लिए, वे कहते हैं कि गेरुआ कपड़ा न पहनें तो? माला बाहर न रखें तो? मैं उनसे कहता हूं, बाहर ही रखना। माला का मतलब नहीं है। लेकिन किसके डर से भीतर कर रहे हो? इतना भी काफी है कि तुम माला पहनकर, गेरुआ कपड़ा पहनकर बाजार में निकल जाओगे, तो भी तुम्हारा संकल्प बड़ा होगा।
ये सब छोटी बातें हैं, लेकिन इनका मूल्य है। मूल्य इनका संकल्प के लिहाज से है, और कोई मूल्य नहीं है। और कोई मूल्य नहीं है।
एक अमेरिकी युवती पिछले माह मेरे पास थी। उसे मैंने लिखा था... तीन बार मेरे पास आकर गई है। दो वर्ष से निरंतर उसका आना-जाना हुआ है, लेकिन संकल्प की क्षीणता तकलीफ दे रही थी। उतने दूर से आती है; फिर जो मैं कहता हूं, वह नहीं कर पाती; फिर सब द्वंद्व में पड़ जाती है; वापस लौट जाती है। इस बार उसने मुझे लिखा, तो मैंने उसे लिखा कि इस बार एक बात पक्की करके आना, जो भी मैं कहूं, उसमें नो, नहीं नहीं कह सकोगी; उसमें यस ही कहना पड़ेगा; जो भी मैं कहूं! यह बेशर्त है। अन्यथा आना मत। जो भी मैं कहूं, उसमें हां कहने की तैयारी हो, तो आना।
स्वभावतः, उसे सोचना पड़ा कि पता नहीं मैं क्या कहूंगा? उसे ख्याल आया
कि जिस मकान में मैं रहता हूं, वह छब्बीस मंजिल मकान है। कहीं मैं छब्बीसवीं मंजिल से कूदने के लिए कहूं, तो मेरी क्या तैयारी है? उसने तय किया कि अगर मैं कूदने के लिए कहूंगा, तो कूद जाऊंगी। हां कहूंगी। उसे ख्याल आया, स्त्री है, उसे ख्याल आया कि मैं अगर कहूं कि जाओ, भरे बाजार नग्न, चौपाटी का एक चक्कर लगा आओ, तो मैं लगाऊंगी? उसने तय कर लिया कि लगाऊंगी। वह तय करके आई। तय करने से ही बदल गई। मुझे न उसे छब्बीस मंजिल मकान से कुदवाना पड़ा और न चौपाटी पर नग्न चक्कर लगवाना पड़ा। यह जो निर्णय है--कि ठीक--यह निर्णय ही बदल गया।
ध्यान रखें, बदलने के लिए और कुछ भी नहीं करना पड़ता है; एक गहरा निर्णय, और बदलाहट हो जाती है।
कृष्ण कहते हैं, ऐसा गहरा संकल्प जिसका हो, और इस संकल्प को वह मेरे भजन में लगा दे, मेरे स्मरण में लगा दे; यह जो संकल्प की धारा है, यह मेरी तरफ बहने लगे।
एक दूसरे प्रतीक से हम समझ लें।
हम ऐसी नदी हैं, जो कई दिशाओं में बह रही है। तो सागर तक हम नहीं पहुंचते; हर जगह रेगिस्तान आ जाता है। अगर गंगा भी कई दिशाओं में बहे, तो सागर तक नहीं पहुंचेगी; सब जगह रेगिस्तान में पहुंच जाएगी। जहां भी पहुंचेगी, वहीं रेगिस्तान होगा। सागर तक पहुंचती है, क्योंकि एक दिशा में बहती है।
दूसरा ध्यान रख लें कि आपकी चेतना अगर बहुत दिशाओं में बहती रहे, तो आपकी जिंदगी एक मरुस्थल हो जाएगी, एक रेगिस्तान। सब सूख जाएगा, और सब जगह

मार्ग खो जाएगा। लेकिन अगर एक दिशा में बह सके, तो किसी दिन सागर पहुंच सकती है।
अनन्य भाव से जो मुझे स्मरण करता है, अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ... ।
इसका केवल इतना ही अर्थ है कि चाहे वह कुछ भी करता हो, लेकिन उसकी चेतना की धारा मेरी ओर उन्मुख बनी रहती है। वह कुछ भी करता हो।
कभी आप देखें किसी घर में, मां अंदर खाना बना रही है; खाना बनाती है, बर्तन मल रही है, बुहारी लगा रही है, लेकिन उसकी चेतना की धारा उसके बच्चे की तरफ लगी रहती है। शोरगुल हो रहा हो, तूफान हो, बाहर आंधी हो, हवा चल रही हो, बैंड-बाजे बज रहे हों, बादल गरज रहे हों, बिजली कड़क रही हो, लेकिन बच्चे की जरा सी रोने की आवाज उसे सुनाई पड़ जाती है। रात मां सोई हो--मनसविद भी बहुत हैरान हुए हैं--मां सोई हो, तो आकाश में बादल गरजते रहें, उसकी नींद नहीं टूटती! और बच्चा जरा-सा कुनमुन कर दे, और उसकी नींद टूट जाती है! बात क्या होगी? क्या होगा इसका कारण?
इसका एक ही कारण है, एक अनन्य धारा, एक प्रेम का अनन्य भाव बहा जा रहा है।
अभी एक डच महिला मेरे पास थी। वह किसी आश्रम में संन्यासिनी है। बच्चा उसको है छोटा। वह मेरे पास आई, उसने कहा कि जब से यह बच्चा हुआ है, तब से मैं ध्यान नहीं कर पाती। कितना ही ध्यान लगाकर बैठूं, बस मुझे इसका ही ... । जब ध्यान लगाती हूं, तो और इसका ख्याल आता है कि पता नहीं, कहीं बाहर न सरक गया हो; कहीं झूले से नीचे न उतर गया हो; कहीं गाय के नीचे न आ जाए; कहीं कुछ हो न जाए! तो मेरा सब ध्यान नष्ट हो गया है। दो साल से आश्रम में हूं, इस बच्चे की वजह से मेरा सब ध्यान नष्ट हो गया है। तो अब मैं क्या करूं? मैंने उससे कहा, ध्यान को छोड़; बच्चे पर ही ध्यान कर। अब ध्यान को बीच में क्यों लाना! बच्चा काफी है।
मैं क्या करूं?
ध्यान मत कर, जब बच्चा झूले में लेटा हो, तो तू पास बैठ जा और बच्चे पर
ही आंख से ध्यान कर। बच्चे को ही भगवान समझ। अच्छा मौका मिल गया। बच्चे पर इतना ध्यान दौड़ रहा है सहज, बच्चे में भगवान देखना शुरू कर।
पंद्रह दिन में उसे लगा कि मैंने वर्षों ध्यान करके जो नहीं पाया, वह
इस बच्चे पर ध्यान करके पा रही हूं। और अब बच्चा मुझे दुश्मन नहीं मालूम पड़ता; बीच में जब मुझे ध्यान में बाधा पड़ती थी, बच्चा दुश्मन मालूम पड़ता था। अब बच्चा मुझे सच में ही भगवान मालूम पड़ने लगा है; क्योंकि इसके ऊपर मेरा ध्यान जितना गहरा हो रहा है, उतना किसी भी प्रक्रिया से कभी नहीं हुआ था।
अनन्य भाव का अर्थ है, जहां भी आपका भाव दौड़ता हो, वहीं भगवान को स्थापित कर लें।
दो उपाय हैं। एक तो यह है कि कहीं भगवान है, आप सब तरफ से अपने ध्यान को खींचकर भगवान पर ले जाएं। यह बहुत मुश्किल है; इसमें आप हारेंगे; इसमें जीत की संभावना न के बराबर है। कभी हजार में एक आदमी जीत पाता है सब तरफ से खींचकर भगवान की तरफ ले जाने में। कठिन है। शायद नहीं हो पाएगा।
पर एक बात हो सकती है, जहां भी ध्यान जा रहा हो, वहीं भगवान को रख लें। अगर वेश्या के घर भी आपके पैर जा रहे हैं, और ध्यान वेश्या की तरफ जा रहा है, तो चूकें मत मौका; वेश्या को भी भगवान ही समझ लें। और आपके पैर की धुन बदल जाएगी, और आपकी चेतना का भाव बदल जाएगा, और एक न एक दिन आप पाएंगे कि वेश्या के घर गए थे, लेकिन मंदिर से वापस लौटे हैं!
यह जो क्रांति की संभावना है, यह अनन्य भाव से उसकी भक्ति में है।
तो कृष्ण कहते हैं कि वह दुराचारी भी हो, कोई फिक्र नहीं। लेकिन मुझे देखने लगे अपने कर्मों में, चारों तरफ मुझे अनुभव करने लगे, सब ओर मेरी प्रतीति उसमें गहरी होती चली जाए, मेरे स्मरण का तीर उसमें गहरा होता चला जाए, तो शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है।
सदाचारी नहीं कहते वे। कहते हैं, धर्मात्मा। सदाचार से बड़ी ऊंची बात है। धर्मात्मा का अर्थ है, जिसकी आत्मा धर्म हो जाती है। आचरण तो अपने आप ठीक हो जाता है। आचरण तो गौण है; आदमी के पीछे छाया की तरह चलता है। चूंकि

भीतर हम कुछ भी नहीं हैं, इसलिए बाहर सब अस्तव्यस्त है। जिस दिन भीतर हम कुछ हो जाते हैं, बाहर सब सुव्यवस्थित हो जाता है। भीतर के मालिक को सिंहासन पर बिठा दें, बाहर के सब नौकर-चाकर हाथ जोड़कर सेवा में रत हो जाते हैं। भीतर का मालिक बेहोश पड़ा है। सिंहासन से नीचे औंधा पड़ा है। मुंह से उनके फसूकर निकल रहा है। भीतर के मालिक इस हालत में हैं, बाहर सब नौकर-चाकर गड़बड़ में हो जाते हैं।
जिसको हम अनीति कहते हैं, वह हमारी इंद्रियों के ऊपर मालिक का अभाव है, अनुपस्थिति है। वहां मालिक मौजूद ही नहीं है, बेहोश पड़ा है। तो ठीक है, जिसको जो सूझ रहा है, वह कर रहा है। इसमें इंद्रियों की कोई गलती भी नहीं है। इंद्रियों को दोष देना मत, इंद्रियों की कोई भी गलती नहीं है। इंद्रियों को कोई देखने वाला ही नहीं है, दिशा देने वाला नहीं है, सूचन देने वाला नहीं है। और तब इंद्रियों से जो बनता है, वह करती हैं।
और सब इंद्रियां अलग-अलग हैं, उनके बीच कोई एकसूत्रता नहीं रह जाती। कैसे रहेगी? एकसूत्रता जिससे मिल सकती है, वह सोया हुआ है। तो जब सोया हुआ है सूत्र मूल, जो सबको जोड़ता है, तो कान कुछ सुनते हैं, आंखें कुछ देखती हैं, हाथ कुछ खोजते हैं, पैर कहीं चलते हैं, मन कहीं भागता है, सब अस्तव्यस्त हो जाता है। नदी कई धाराओं में बंट जाती है। फिर एक दिशा नहीं रह जाती।
धर्मात्मा हो जाता है वह व्यक्ति। उसकी आत्मा ही धर्म हो जाती है। फिर आचरण तो अपने आप बदल जाता है। सदा रहने वाली शांति को उपलब्ध होता है। अनैतिक व्यक्ति शांति को उपलब्ध नहीं होता। कैसे होगा? बुरा करेगा दूसरों के साथ, दूसरे उसके साथ बुरा करेंगे। नैतिक व्यक्ति भी शांति को उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि बुराई को दबाता है; बुराई भीतर धक्के मारती है कि मुझे मौका दो। भीतर अशांति हो जाती है।
अनैतिक व्यक्ति को अशांति झेलनी पड़ती है, दूसरों और स्वयं के बीच में; नैतिक व्यक्ति को झेलनी पड़ती है, अपने ही भीतर। अनैतिक डरा रहता है कि बाहर कहीं फंस न जाए। नैतिक डरा रहता है कि भीतर जिसको दबाया है, कहीं वह निकल न आए। दोनों ही अशांत होते हैं।
केवल सदा रहने वाली शांति को वही उपलब्ध होता है, जो भीतर धर्मात्मा
हो जाता है। धर्मात्मा का अर्थ है, जिसकी आत्मा प्रभु में स्थापित हो जाती है। प्रभु की तरफ दौड़ते-दौड़ते बहकर नदी सागर में गिर जाती है। जिस दिन सागर और नदी का मिलन होता है, जहां सागर और नदी का संगम होता है, वहीं धर्मात्मा का जन्म होता है। जिस दिन आत्मा परमात्मा से मिलती है, वह जो संगम-स्थल है, वहीं धर्मात्मा का जन्म है। फिर कोई अशांति नहीं है, न बाहर, न भीतर।
हे अर्जुन, तू निश्चयपूर्वक जान, मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता है।
नष्ट होने का कोई कारण ही न रहा। नष्ट तो वे ही होते हैं, जो अशांत हैं। बिखरते तो वे ही हैं, जो भीतर टूटे हुए हैं। जो भीतर एक हो गया, संयुक्त हो गया, उसके नष्ट होने का कोई कारण नहीं है।
और अब हम पहले सूत्र को लें।
मैं सब भूतों में सम-भाव से व्यापक हूं। न कोई मेरा अप्रिय है और न कोई प्रिय। परंतु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे में और मैं उनमें प्रकट हो जाता हूं।
सब भूतों में सम-भाव से हूं।
ऐसा नहीं है कुछ, जैसा लोग कहते हैं अक्सर कि फलां व्यक्ति पर परमात्मा की बड़ी कृपा है। परमात्मा की कृपा किसी पर भी कम-ज्यादा नहीं है। भूलकर इस शब्द का उपयोग दोबारा मत करना। एक आदमी कहता है कि प्रभु की कृपा है। उसका मतलब कहीं ऐसा तो नहीं है कि कभी उसकी अकृपा भी होती है? या एक आदमी कहता है कि मुझ पर अभी प्रभु की कोई कृपा नहीं है। तो उसका अर्थ हुआ कि उसकी अकृपा होगी!
नहीं, उसकी अकृपा होती ही नहीं। इसलिए उसकी कृपा का कोई सवाल नहीं है।
वह सम-भाव से सबके भीतर मौजूद है। यह कहना भी भाषा की कठिनाई है, इसलिए; अन्यथा सब में वही है, या सब वही है। जरा भी, रत्तीभर फर्क नहीं है। कृष्ण

में या अर्जुन में, मुझ में या आप में, आप में या आपके पड़ोसी में, आप में या वृक्ष में, आप में या पत्थर में, जरा भी फर्क नहीं है।
लेकिन फर्क तो दिखाई पड़ता है! कोई बुद्ध है। कैसे हम मान लें कि बुद्ध में वह ज्यादा प्रकट नहीं हुआ है! कैसे हम मान लें कि बुद्ध में वह ज्यादा नहीं है, और हम में, हम में भी उतना ही है! कठिनाई है। साफ दिखाई पड़ता है। गणित कहेगा, नाप-जोख हो सकती है कि बुद्ध में वह ज्यादा है, कृष्ण में वह ज्यादा है। इसीलिए तो हम कहते हैं, कृष्ण अवतार हैं, बुद्ध अवतार हैं, महावीर तीर्थंकर हैं, जीसस भगवान के पुत्र हैं, मोहम्मद पैगंबर हैं, आदमियों से अलग करते हैं उन्हें। उनमें वह ज्यादा दिखाई पड़ता है।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं सम-भाव से व्यापक हूं। फिर भेद कहां पड़ता होगा? न मेरा कोई अप्रिय है और न मेरा कोई प्रिय।
प्रेम जब पूर्ण होता है, तो न कोई अप्रिय रह जाता है, और न कोई प्रिय। क्योंकि जब तक मैं कहता हूं, कोई मुझे प्रिय है, तो उसका अर्थ है कि कोई मुझे अप्रिय है। और जब तक मैं कहता हूं, कोई मुझे प्रिय है, उसका यह भी मतलब है कि जो मुझे प्रिय है, वह कल अप्रिय भी हो सकता है; क्योंकि आज जो अप्रिय है, वह कल प्रिय हो सकता है। जब प्रेम पूर्ण होता है, तो न कोई अप्रिय होता, न कोई प्रिय होता। और न आज प्रिय होता और न कल अप्रिय होता। ये सारे भेद गिर जाते हैं। परमात्मा पूर्ण प्रेम है, इसलिए कोई उसका प्रिय नहीं है और कोई अप्रिय नहीं है।
परंतु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं, वे मेरे में और मैं उनमें प्रकट हूं।
यह फर्क है, यहीं भेद है। यहीं बुद्ध कहीं भिन्न, महावीर कुछ और, और हम कुछ और मालूम पड़ते हैं।
जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं, मैं उनमें प्रकट हो जाता हूं; जो मुझे नहीं भजते हैं, उनमें मैं अप्रकट बना रहता हूं।
व्यापकता में भेद नहीं है, लेकिन प्रकट होने में भेद है।
एक बीज है। बीज को माली ने बो दिया, अंकुरित हो गया। एक बीज हम अपनी तिजोड़ी में रखे हुए हैं। दोनों बीजों में जीवन समान रूप से व्यापक है! और दोनों बीजों में संभावना पूरी है। लेकिन एक बीज बो दिया गया और एक तिजोड़ी में बंद है। जो बो दिया गया, वह अंकुरित हो जाएगा। जो अंकुरित हो जाएगा, उसमें फूल लग जाएंगे। कल हम अपने तिजोड़ी के बीज को निकालें, और उस वृक्ष के पास जाकर कहें कि तुम दोनों समान हो, हमारा तिजोड़ी का बीज मानने को राजी नहीं होगा।
वह कहेगा, कैसे समान? कहां यह वृक्ष, जिस पर हजारों पक्षी गीत गा रहे हैं। कहां यह वृक्ष, जिसके फूलों की सुगंध दूर-दूर तक फैल गई है। कहां यह वृक्ष, जिससे सूरज की किरणें रास रचाती हैं। कहां यह वृक्ष और कहां मैं, बंद पत्थर की तरह! कुछ भी तो मेरे पास नहीं है। मैं दीन-दरिद्र, मेरे पास कोई आत्मा नहीं है; कोई फूल, कोई सुवास नहीं है। मुझे इस वृक्ष के साथ एक कहकर क्यों मजाक उड़ाते हो? क्यों व्यंग करते हो?
लेकिन हम जानते हैं, उन दोनों में वृक्ष सम-भाव से व्यापक है। पर एक में प्रकट हुआ, क्योंकि खाद मिली, जमीन में पड़ा, पानी पड़ा, सूरज के लिए मुक्त हुआ, उठा, हिम्मत की, साहस जुटाया, संकल्प बनाया, आकाश की तरफ फैला, अज्ञात में गया, अनजान की यात्रा पर निकला, तो वृक्ष हो गया है।
कृष्ण कहते हैं, जो मुझे प्रेम से भजते हैं!
यह प्रेम से भजना ही बीज को जमीन में डालना है। प्रेम से भजने का अर्थ
है कि जो आदमी दिन-रात प्रभु को सब तरफ स्मरण करता है, उसके चारों तरफ प्रभु की भूमि निर्मित हो जाती है--चारों तरफ। उठता है तो, बैठता है तो, खाता है तो, प्रभु को स्मरण करता रहता है। चारों तरफ धीरे-धीरे, उसकी चेतना के बीज के चारों तरफ प्रभु की भूमि इकट्ठी हो जाती है। उसी भूमि में बीज अंकुरित होता है।
निश्चित ही, जमीन में बीज को गाड़ना पड़ता है। तो प्रकट बीज है, प्रकट जमीन है। यह जो चेतना का बीज है, अप्रकट है; अप्रकट ही इसकी जमीन होगी। उस

जमीन को पैदा करना पड़ता है। चारों तरफ मिट्टी इकट्ठी करनी पड़ती है उस जमीन की। वही प्रभु की भक्ति है।
और तब वे मेरे में और मैं उनमें प्रकट होता हूं।
यह प्रकट होना भी दोहरा है। जब एक वृक्ष आकाश में खुलता है, तो दोहरी घटना घटती है। यह वृक्ष तो आकाश में प्रकट होता ही है, आकाश भी इस वृक्ष में प्रकट होता है। यह वृक्ष तो सूरज के समक्ष प्रकट होता ही है, सूरज भी इस वृक्ष के भीतर से पुनः प्रकट होता है। यह वृक्ष तो हवाओं में प्रकट होता ही है, हवाएं इस वृक्ष के भीतर श्वास लेती हैं और प्रकट होती हैं। यह वृक्ष तो प्रकट होता ही है, इस वृक्ष के साथ जमीन भी प्रकट होती है; इस वृक्ष के साथ जमीन की सुगंध भी प्रकट होती है। यह वृक्ष ही प्रकट नहीं होता, वृक्ष के साथ सारा जगत भी इसके भीतर से प्रकट होता है।
तो जब कोई एक भक्त बीज बन जाता है और अपने चारों तरफ परमात्मा के स्मरण की भूमि को निर्मित कर लेता है, तो दोहरी घटना घटती है, भक्त परमात्मा में प्रकट होता है और परमात्मा भक्त में प्रकट होता है। वे दोनों प्रकट हो जाते हैं। वे आमने-सामने हो जाते हैं। एनकाउंटर।
हम सब ने सदा भगवान से साक्षात्कार का मतलब ऐसा ही सोचा है कि आमने- सामने खड़े हो जाएंगे। वे मोर-मुकुट बांधे हुए खड़े होंगे, हम हाथ जोड़े, उनके घुटनों में पैर टेके खड़े होंगे!
ऐसा कहीं नहीं होने वाला है। यह तो कवि का काव्य है; और मधुर है, प्रीतिकर है, लेकिन काव्य है। वस्तुतः जो अभिव्यक्ति होगी प्रकट होने की, वह ऐसी नहीं होगी। वह तो ऐसी होगी कि जब हम अपने भीतर के बीज को तोड़ने में समर्थ हो जाएंगे, तो जो अभिव्यक्ति होगी, वह दो व्यक्ति आमने-सामने खड़े हैं ऐसी नहीं, बल्कि दो दर्पण आमने-सामने रखे हैं।
दो दर्पण अगर आमने-सामने रखे हैं, तो पता है क्या होगा? एक दर्पण दूसरे में दिखाई पड़ेगा, दूसरा दर्पण पहले में दिखाई पड़ेगा। और फिर अनंत दर्पण, एक के भीतर, एक के भीतर, एक के भीतर दिखाई पड़ते जाएंगे। वह जो इनफिनिटी, वह जो अनंत दर्पण दिखाई पड़ेंगे, और हर दर्पण फिर उसको दिखाएगा, और फिर वह दर्पण इसको दिखाएगा। और यह अनंत होगा।
दो दर्पण एक-दूसरे के सामने हों, तो जो होगा, वही जब हमारी चेतना परमात्मा की चेतना के सामने होती है, तो होता है। अंतहीन हो जाते हैं हम। और वह तो अंतहीन है ही। अनंत हो जाते हैं हम, वह तो अनंत है ही। अनादि हो जाते हैं हम, वह तो अनादि है ही। अमृत हो जाते हैं हम, वह तो अमृत है ही। और दोनों एक-दूसरे में झांकते हैं। और यह झांकना अनंत है। इस झांकने का फिर कोई अंत नहीं होता। यह फिर कभी समाप्त नहीं होता।
तो ध्यान रखें, परमात्मा से मिलन होता है, फिर बिछुड़न नहीं होती। फिर
वह मिलन अनंत है। और फिर उस मिलन की रात का कोई अंत नहीं है। उस सुहागरात का फिर कोई अंत नहीं है। वहां से फिर कोई वापस नहीं लौटता। वहां से पुनरागमन नहीं है।
पर इसका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा किसी को प्रेम करता है और उसे दर्शन दे देता है, और किसी को प्रेम नहीं करता और उसको चकमा देता रहता है कि दर्शन नहीं देंगे!
नहीं, इससे कोई संबंध नहीं है। परमात्मा के प्रेम का सवाल नहीं है, आपके श्रम का सवाल है। उसकी कृपा का सवाल नहीं है, आपके संकल्प का सवाल है। उसकी कृपा प्रतिपल बरस रही है, लेकिन आप अपने मटके को उलटा रखकर बैठे हैं। आप चिल्ला रहे हैं कि कृपा नहीं है। पास का मटका भरा जा रहा है। वह मटका सीधा रखा है, आप अपने मटके को उलटा रखे बैठे हैं। और अगर कोई आकर कोशिश भी करे आपके मटके को सीधा रखने की, तो आप बहुत नाराज होते हैं। आप कहते हैं, यह हमारा ढंग है; यह हमारी मान्यता है; यह हमारा दृष्टिकोण है; यह हमारा धर्म है; यह हमारा मत है; यह हमारे शास्त्र में लिखा है!
आप हजार दलीलें देते हैं अपने मटके को उलटा रखे रहने के लिए। और जब भी कोई अगर जोर-जबर्दस्ती आपके मटके के साथ सीधा करने की करे, तो कष्ट होता है, पीड़ा होती है, झंझट होती है; सुखद नहीं मालूम पड़ता। मटका उलटा रखा है सदा से। हमें लगता है, यही इसके रखे होने का ढंग है। फिर पास का मटका भर

जाता है, तो हम चिल्लाते हैं, परमात्मा किसी पर ज्यादा कृपालु मालूम हो रहा है और हम पर कृपालु नहीं है।
परमात्मा की वर्षा निरंतर हो रही है; जो भी अपने मटके को सीधा कर लेता है, वह भर जाता है। और कोई बाधा नहीं है। आपके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। आपके अतिरिक्त और कोई आपका शत्रु नहीं है। आपके अतिरिक्त और किसी ने कभी कोई विघ्न नहीं डाला है।
अगर आप परमात्मा से नहीं मिल पा रहे हैं, तो इसमें आपका ही हाथ है। अगर
आप मिल पाएंगे, तो यह आपकी ही आपके ऊपर कृपा है। परमात्मा की कृपा का इसमें कुछ लेना-देना नहीं है। उसका प्रेम सम है। उसका अस्तित्व हमारे भीतर समान है। उसकी क्षमता, उसकी बीज-क्षमता हमारे भीतर एक-सी है। लेकिन फिर भी हम स्वतंत्र हैं। और चाहें तो उस बीज को वृक्ष बना लें, और चाहें तो उस बीज को बंद रख लें।
हम सब तिजोड़ियों में बंद बीज हैं। और सब अपनी-अपनी तिजोड़ियों पर ताले डाले हुए हैं मजबूत कि कोई खोल न दे! कहीं बीज बाहर न निकल जाए! इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।
दो-तीन प्रश्न रोज मुझसे लोग पूछ रहे हैं, एक-दो मिनट उनके संबंध में आपसे कह दूं। कुछ प्रश्न तो ऐसे हैं, जिनका कोई भी संबंध नहीं है। उनको उत्तर नहीं दिया जाता, तो वे तकलीफ अनुभव करते हैं। क्योंकि किसी के प्रश्न का उत्तर न मिले, तो उसके अहंकार को चोट लग जाती है। उसको इसकी फिक्र ही नहीं होती कि उसका प्रश्न क्या था।
एक मित्र ने पूछा है कि चंद्रमा पर आदमी पहुंच गया, लेकिन हिंदू शास्त्रों में लिखा है कि वहां देवताओं का वास है! इसका उत्तर दीजिए।
इधर गीता चल रही है, उससे इसका कोई प्रयोजन नहीं है। इस पर अगर मैं चर्चा करने बैठ जाऊं, तो गीता बंद कर देनी पड़े। फिर चर्चा का दूसरा रुख, वह मेरी आदत नहीं है। जो मैं बात कर रहा हूं, उससे इतर बात करना मुझे पसंद नहीं है। इस तरह के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जाता है, तो उनको लगता है कि भारी नुकसान हो गया।
फिर मुझे यह भी समझ में नहीं पड़ता कि साधक को क्या प्रयोजन कि चांद पर देवता रहते हैं कि नहीं रहते। आपके भीतर कौन रहता है, इसकी फिक्र करनी उचित है। चांद पर न भी रहते हों, तो कुछ हर्जा नहीं है। और रहते भी हों, तो मजे से रहें! आपको कुछ लेना-देना नहीं है। इन सब बातों का साधक के लिए कोई अर्थ नहीं होता।
मैं उतनी ही बातें आपसे कहना पसंद करता हूं, जो किसी तरह आपकी साधना
के लिए उपयोगी हों। व्यर्थ की बातों में प्रयोजन मुझे नहीं है। आपका प्रश्न गलत है, यह नहीं कहता। किसी के लिए सार्थक हो सकता है; वह खोज में लगे।
एक मित्र छपा हुआ पर्चा रोज यहां बांटकर मुझे दे जाते हैं। पोस्ट से
भी मुझे घर भेजा है। भारी नाराज हैं। वे जो मित्र रोज शोरगुल करके खड़े हो जाते हैं, उनका पर्चा है। उस पर्चे में है कि राजस्थान में किसी आदमी ने कोई किताब लिखी है, जिसमें उसने लिख दिया है कि दशरथ नपुंसक थे, या लक्ष्मण व्यभिचारी थे।
मुझे पता नहीं है! मैंने वह किताब पढ़ी नहीं। जिन्होंने पर्चा छापा है, उन्होंने भी नहीं पढ़ी है। किसी अखबार में उन्होंने यह पढ़ा है कि ऐसा किसी आदमी ने लिखा है। वे बार-बार मुझे यहां चिट्ठी लिखकर भेजते हैं कि मैं जवाब दूं।
मेरी समझ में नहीं आता! मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। और दशरथ नपुंसक थे
या नहीं, इस रिसर्च में जाने का भी मुझे कोई अर्थ नहीं समझ में आता। हों, तो कोई फर्क नहीं पड़ता; न हों, तो कोई प्रयोजन मुझे नहीं है। जिसको प्रयोजन हो, वह खोजबीन में लगे। लेकिन इधर उस सवाल को उठाने का कोई कारण नहीं है। लेकिन हमारे मन न मालूम कहां-कहां के सवाल उठाते हैं! हम सोचते हैं, भारी काम हो रहा है। वह मित्र कल मुझे चिट्ठी लिखकर दे गए हैं, दो दिन से रोज चिट्ठी लिखकर देते हैं, कि वे यहां आधा घंटा मंच पर आकर एक बात सिद्ध करना चाहते हैं। वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं मूर्ख हूं।

इसे सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं बिना सिद्ध किए इसे मान लेता हूं। इसे सिद्ध तो तब करना पड़े, जब मैं कहूं कि मैं नहीं हूं या उनकी बात को गलत कहूं। मैं मूर्ख हूं। क्योंकि अगर मैं मूर्ख न होऊं, तो उन जैसे बुद्धिमान जनों को समझाने की कोशिश ही क्यों करूं। सहज-साफ ही है। इसको सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि सिद्ध करने में समय व्यय करना है। मैं मान ही लेता हूं।
कृष्ण के वक्त में अगर वे होते, तो कृष्ण ने एक सूत्र अर्जुन से और कहा होता। उन्होंने कहा होता, हे कौन्तेय, जिनके दिमाग के स्क्रू थोड़े ढीले हैं, उनमें भी मैं हूं। वह कृष्ण नहीं कह पाए, यह एक नुकसान हुआ। उनकी मौजूदगी जरूरी थी। गीता ज्यादा समृद्ध हुई होती। उसमें एक सूत्र और उपलब्ध हो जाता। लेकिन यह बात पक्की है, स्क्रू ढीले हों कि ज्यादा कसे हों, मैं उनके भीतर हूं। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है।
इस तरह की बातें हमारे मुल्क के मन में न मालूम कैसे-कैसे घूमती रहती हैं! इन सारी बातों ने हमारे मुल्क को एकदम क्षुद्रतम हालत में खड़ा कर दिया है।
सोचें विराट को, खोजें विराट को; व्यर्थ की बातों में समय जाया न करें। लेकिन हम समझते हैं कि भारी संकट आ गया। किसी ने लिख दिया कि दशरथ नपुंसक थे। अब वह बेचारा कुछ खोज-बीन कर रहा होगा। गलत होगा, सही होगा। किन्हीं को उत्सुकता हो, वे सिद्ध करने में लगें।
पर बड़ा मुश्किल मामला है सिद्ध करना कि थे कि नहीं थे। बहुत कठिन है।
पर मुझे तो प्रयोजन भी नहीं है। जिनको प्रयोजन है, वे भी क्यों इतने आतुर हैं; कुछ समझ में नहीं आता! इस तरह की बातों को जरा भी मूल्य देने की जरूरत नहीं है। कोई लिखे, तो भी देने की जरूरत नहीं है। उसको तूल देने की भी जरूरत नहीं है कि शोरगुल मचाओ। उस शोरगुल से और प्रचार होता है कि यह क्या मामला है! इन सबमें पड़ने की जरा भी जरूरत नहीं है।
धार्मिक आदमी का यह लक्षण नहीं है। धार्मिक आदमी को एक ही चिंता है कि किसी भांति उसके जीवन का एक-एक पल रीता जा रहा है, उस रीतते हुए जीवन में वह खाली हाथ ही लौट जाएगा? या कि उस रीतते हुए जीवन में प्रभु की कोई झलक मिलनी संभव है?
मैं उसी दृष्टि से सब बोल रहा हूं। आप पूछ लेते हैं, आवश्यक नहीं है कि मैं जवाब दूं। आप पूछ लेते हैं, आपका काम पूरा हो गया। मुझे लगेगा कि इससे आपकी साधना में कोई सहायता मिलेगी, तो ही जवाब दूंगा।
कुछ ऐसे सवाल लोग पूछते हैं, जो उनके निजी, वैयक्तिक हैं। अब एक व्यक्ति पूछ लेता है। यहां तीस-चालीस हजार आदमी बैठे हों, इनके तीस हजार घंटे खराब करना एक व्यक्ति के निजी प्रश्न के लिए बेमानी है। तीस हजार घंटे बहुत बड़ा वक्त है। अगर एक आदमी की जिंदगी, तो दस साल की जिंदगी एक आदमी की खतम होती है, चालीस हजार घंटे अगर हम खराब करें तो।
तो एक आदमी कुछ पूछ लेता है, उसकी व्यक्तिगत रुचि है, उसे मेरे पास आ जाना चाहिए। यहां जोर देने की जरूरत नहीं है।
और एक बात पक्की समझ लें कि आपने पूछा, मैंने जवाब नहीं दिया, उसका कुल कारण इतना है कि मैं नहीं समझता कि इतने लोग जो यहां इकट्ठे हैं, इनके लिए उस जवाब की कोई भी जरूरत है।
आज इतना ही।
लेकिन पांच मिनट बैठेंगे। कीर्तन में सम्मिलित हों और फिर जाएं।

गीता दर्शन, भाग चार
गीता दर्शन अध्याय 9
तेरहवां प्रवचन

क्षणभंगुरता का बोध

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। 32।।
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।। 33।।
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।। 34।।
क्योंकि हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शूद्रादिक तथा पाप योनि वाले भी जो कोई हों, वे भी मेरे शरण होकर परम गति को ही प्राप्त होते हैं।
फिर क्या कहना है कि पुण्यशील ब्राह्मणजन तथा राजऋषि भक्तजन परम गति
को प्राप्त होते हैं। इसलिए तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस लोक को प्राप्त होकर निरंतर मेरा ही भजन कर।
केवल मुझ परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से अचल मन वाला हो, और मुझ परमेश्वर को ही निरंतर भजने वाला हो, तथा मेरी श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से विह्वलतापूर्वक पूजन करने वाला हो और मुझ परमात्मा को ही प्रणाम कर।
इस प्रकार मेरे शरण हुआ तू आत्मा को मेरे में एकीभाव करके मेरे को ही प्राप्त होवेगा।

इस सूत्र को सुनकर आधुनिक मन को बहुत धक्का लगेगा। चाह होगी कि यह सूत्र न होता तो अच्छा था। आज का विचार इस सूत्र को बड़ी कठिनाई पाएगा समझने में।
कृष्ण ने कहा है, क्योंकि हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शूद्र आदि तथा पाप योनि वाले भी जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं।
बहुत अजीब मालूम पड़ेगा। बहुत कड़वाहट भी मालूम पड़ेगी। स्त्री को, वैश्य को, शूद्र को, पाप योनि को समझने में हमें कई तरह की कठिनाइयां हैं। पहली कठिनाई कि हमने इन शब्दों से जो कुछ समझा है, वह इन शब्दों से अभिप्रेत नहीं है। और इन शब्दों का हमारे मन में जो अर्थ है, वह कृष्ण का अर्थ नहीं है। तो इन शब्दों की ठीक से व्याख्या में प्रवेश करना जरूरी होगा, तभी इस सूत्र को समझा जा सके।
मनुष्य की आत्मा तो एक है, लेकिन उसके मन अनेक हैं। और मनुष्य की परम स्थिति तो एक है, लेकिन उसकी बीच की स्थितियां भिन्न-भिन्न हैं। मनुष्य आत्यंतिक रूप से तो समान है, लेकिन अलग-अलग स्थितियों में बहुत असमान है। मनुष्य का विभाजन जो भारतीय बुद्धि ने किया है, वह पहला विभाजन है स्त्री और पुरुष में। लेकिन ध्यान रहे, स्त्री से अर्थ है स्त्रैण। स्त्री से अर्थ स्त्री ही हो, तो यह वचन बहुत बेहूदा है। स्त्री से अर्थ है स्त्रैण। और जब मैं कहता हूं, स्त्री से अर्थ है स्त्रैण, तो उसका अर्थ यह है कि पुरुषों में भी ऐसे व्यक्ति हैं, जो स्त्री जैसे हैं, स्त्रैण हैं; स्त्रियों में भी ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो पुरुष जैसे हैं, पौरुषेय हैं। पुरुष और स्त्री प्रतीक हैं, सिंबालिक हैं। उनके अर्थ को हम ठीक से समझ लें।
गुह्य विज्ञान में, आत्मा की खोज में जो चल रहे हैं, उनके लिए स्त्रैण
से अर्थ है ऐसा व्यक्तित्व, जो कुछ भी करने में समर्थ नहीं है; जो प्रतीक्षा कर सकता है, लेकिन यात्रा नहीं कर सकता; जो राह देख सकता है, लेकिन खोज नहीं कर सकता। इसे स्त्रैण कहने का कारण है।
स्त्री और पुरुष का जो संबंध है, उसमें खोज पुरुष करता है, स्त्री केवल प्रतीक्षा करती है। पहल भी पुरुष करता है, स्त्री केवल बाट जोहती है। प्रेम में भी स्त्री प्रतीक्षा करती है, राह देखती है। और अगर कभी कोई स्त्री प्रेम में पहल करे, इनिशिएटिव ले, तो आक्रामक मालूम होगी, बेशर्म

मालूम होगी। और अगर पुरुष प्रतीक्षा करे, पहल न कर सके, तो स्त्रैण मालूम होगा।
लेकिन विगत पांच हजार वर्षों में, गीता के बाद, सिर्फ आधुनिक युग में कार्ल गुस्ताव जुंग ने स्त्री और पुरुष के इस मानसिक भेद को समझने की गहरी चेष्टा की है। जुंग ने इधर इन बीस-पच्चीस पिछले वर्षों में एक अभूतपूर्व बात सिद्ध की है, और वह यह कि कोई भी पुरुष पूरा पुरुष नहीं है और कोई भी स्त्री पूरी स्त्री नहीं है। और हमारा अब तक जो खयाल रहा है कि हर व्यक्ति एक सेक्स से संबंधित है, वह गलत है। प्रत्येक व्यक्ति बाइ-सेक्सुअल है, दोनों यौन प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद हैं। जिसे हम पुरुष कहते हैं, उसमें पुरुष यौन की मात्रा अधिक है, स्त्री यौन की मात्रा कम है। ऐसा समझें कि वह साठ प्रतिशत पुरुष है और चालीस प्रतिशत स्त्री है। जिसे हम स्त्री कहते हैं, वह साठ प्रतिशत स्त्री है और चालीस प्रतिशत पुरुष है। लेकिन ऐसा कोई भी पुरुष खोजना संभव नहीं है, जो सौ प्रतिशत पुरुष हो;
और ऐसी कोई स्त्री खोजनी संभव नहीं है, जो सौ प्रतिशत स्त्री हो। यह है भी उचित। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का जन्म स्त्री और पुरुष से मिलकर होता है। इसलिए दोनों ही उसके भीतर प्रवेश कर जाते हैं। चाहे स्त्री का जन्म हो, चाहे पुरुष का जन्म हो, दोनों के जन्म के लिए स्त्री और पुरुष का मिलन अनिवार्य है! और स्त्री-पुरुष दोनों के ही कणों से मिलकर, जीवाणुओं से मिलकर व्यक्ति का जन्म होता है। दोनों प्रवेश कर जाते हैं। जो फर्क है, वह मात्रा का होता है। जो फर्क है, वह निरपेक्ष नहीं है, सापेक्ष है।
इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति ऊपर से पुरुष दिखाई पड़ता है, उसके भीतर भी कुछ प्रतिशत मात्रा स्त्री की छिपी होती है; जो स्त्री दिखाई पड़ती है, उसके भीतर भी कुछ मात्रा पुरुष की छिपी होती है। और इसलिए ऐसा भी हो सकता है कि किन्हीं क्षणों में स्त्री पुरुष जैसा व्यवहार करे और किन्हीं क्षणों में पुरुष स्त्री जैसा व्यवहार करे। ऐसा भी हो सकता है कि किन्हीं क्षणों में जो भीतर है, वह ऊपर आ जाए; और जो ऊपर है, नीचे चला जाए।
आप पर एकदम से हमला हो जाए, घर में आग लग जाए, तो आप कितने ही बहादुर व्यक्ति हों, एक क्षण में अचानक आप पाएंगे, आप स्त्री जैसा व्यवहार कर रहे हैं। रो रहे हैं, बाल नोंच रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, घबड़ा रहे हैं! अगर एक मां के बच्चे पर हमला हो जाए, तो मां भी खूंख्वार हो जाएगी, और ऐसा व्यवहार करेगी, इतना कठोर, इतना हिंसात्मक, जैसा कि पुरुष भी न कर पाए। यह संभावना है, क्योंकि भीतर एक मात्रा निरंतर छिपी हुई है। वह किसी भी क्षण प्रकट हो सकती है।
जुंग ने स्त्री और पुरुष के नए अर्थ को फिर से प्रकट किया है। कृष्ण
का भी अर्थ वही है। जब वे कहते हैं, स्त्रियां भी मुझे उपलब्ध हो जाती हैं, तो उनका अर्थ यह है कि वे, जो एक कदम भी नहीं चलते हैं, मात्र प्रतीक्षा करते हैं, वे भी मुझे पा लेते हैं अर्जुन! जिनके मन में आक्रमण ही नहीं है; परमात्मा की खोज में भी जो आक्रामक, एग्रेसिव नहीं हो सकते, वे भी मुझे पा लेते हैं। जो इंचभर भी नहीं चलते, सिर्फ मेरा स्मरण ही करते हैं, सिर्फ अनन्य भाव से मुझे पुकारते ही हैं, जो बदले में कुछ भी चुकाने को तैयार नहीं होते, जो मुकाबले में कुछ भी दांव पर नहीं लगाते, अगर मैं उनके दरवाजे पर भी खड़ा हूं, तो वे दरवाजे तक उठकर भी नहीं आते, मुझे ही उन तक जाना पड़ता है, वे भी मुझे पा लेते हैं।
स्त्रैण से अर्थ है, ऐसा मन, जो कुछ भी करने में समर्थ नहीं है; ज्यादा
से ज्यादा समर्पण कर सकता है; ग्राहक मन, रिसेप्टिविटी, द्वार खोलकर प्रतीक्षा कर सकता है।
अगर हम स्त्री के मन को ठीक से समझें, तो वह किसी ऐसे प्रतीक में प्रकट होगा, द्वार खोलकर दरवाजे पर बैठी हुई, किसी की प्रतीक्षा में रत; खोज में चली गई नहीं, प्रतीक्षा में। और पुरुष अगर दरवाजा खोलकर और किसी की प्रतीक्षा करते दीवाल से टिककर बैठा हो, तो हमें शक होगा कि वह पुरुष कम है। उसे खोज पर जाना चाहिए।

जिसकी प्रतीक्षा है, उसे खोजना पड़ेगा, यह पुरुष चित्त का लक्षण है।
जिसकी खोज है, उसकी प्रतीक्षा करनी होगी, यह स्त्री चित्त का लक्षण है।
स्त्री और पुरुष से इसका कोई संबंध नहीं है।
कृष्ण कहते हैं, जो स्त्रैण हैं, वे भी अर्जुन, मुझे पाने में समर्थ हो जाते हैं।
फिर कहते हैं, वैश्य और शूद्र भी। ये दो शब्द भी समझ लेने जैसे हैं।
मैंने कहा, हमारे मन अलग-अलग हैं, हमारी आत्माएं एक हैं। और मन के अलग-अलग होने के कारण हमारे शरीर भी अलग-अलग हैं। क्योंकि शरीर मन के द्वारा ही निर्मित होता है, शरीर को हम पाते हैं मन के द्वारा ही।
चार प्रकार के व्यक्तित्व भारत ने विभाजित किए हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चारों का भी कोई संबंध आपके जन्म से नहीं है। इन चारों का भी गहरा संबंध आपके व्यक्तित्व के ढांचे से है। हमने यह भी कोशिश की थी कि व्यक्तित्व का ढांचा और जन्म की व्यवस्था में ताल-मेल हो जाए। हमने अकेले ही इस जमीन पर यह प्रयोग किया था कि जन्म में और व्यक्तित्व के ढांचे में कोई एक इनर हार्मनी, एक आंतरिक संबंध खोज लिया जाए। हम थोड़ी दूर तक सफल भी हुए थे। लेकिन वह प्रयोग पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाया। वह टूट गया। टूट जाने के कारण थे, उनकी मैं आपसे पीछे बात करूं। पहले आपको यह कह दूं कि ये चार शब्द व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। चार तरह के व्यक्तित्व होते हैं।
शूद्र हम उस व्यक्ति को कहते हैं, जो शरीर के इर्द-गिर्द जीता है। शरीर से ज्यादा जिसे अस्तित्व में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। शरीर ही जिसका परमात्मा है। शरीर सुख में रहे, तो वह प्रसन्न है; शरीर दुख में हो जाए, तो वह दुखी है। शरीर की मांग पूरी हो जाए, तो सब मांगें समाप्त हो गईं; शरीर की मांग पूरी न हो, तो उसके जीवन में व्यथा और संताप है। उसके व्यक्तित्व का केंद्र शरीर है।
बहुत अनूठी बात भारतीय शास्त्रों ने कही है कि सभी व्यक्ति जन्म से शूद्र होते हैं! एक अर्थ में सही है। सभी व्यक्ति जन्म से शरीर के इर्द-गिर्द होते हैं, बाकी ऊंचाइयां तो क्रमशः पानी पड़ती हैं। ध्यान रहे, सभी व्यक्ति शरीर से शूद्र जैसे पैदा होते हैं, यह दुर्भाग्य नहीं है। दुर्भाग्य तो यह है कि अधिक लोग शूद्र ही मरते हैं, अधिक लोग मरते क्षण में भी शरीर के पास ही होते हैं।
ध्यान रहे, अगर आपके भीतर से शूद्र विलीन हो गया हो, तो मृत्यु की आपको पीड़ा नहीं होगी; क्योंकि मृत्यु की पीड़ा शरीर के मरने की पीड़ा है। और जिसके भीतर से शूद्र विलीन हो गया है, उसका शरीर का दृष्टिकोण ही बदल गया! अब वह भलीभांति जानता है कि शरीर मैं नहीं हूं।
संक्षिप्त में कहें, तो जो ऐसा मानता है कि मैं शरीर ही हूं, वह शूद्र है। मैं शरीर ही हूं, सब कुछ शरीर है, शरीर पर मैं समाप्त हो जाता हूं। शरीर ही मेरा जन्म है, शरीर ही मेरा जीवन, शरीर ही मेरी मृत्यु है। शरीर के पार मैं नहीं हूं, शरीर से भिन्न मैं नहीं हूं। शरीर में मैं समाप्त हूं, शरीर मेरी सीमा है, यह शूद्र का अर्थ है।
शूद्र को इसलिए निम्नतम कहा है। निम्नतम कहने का कारण? कारण इतना ही
कि शूद्र होना सिर्फ जीवन की बुनियाद है, और भवन उठाया जा सकता है। और भवन न उठे, तो बुनियाद बेकार है। शरीर पर ही कोई समाप्त हो जाए, तो उसका जीवन व्यर्थ गया। लेकिन हमारी दृष्टि ही शरीर पर है।
तो कृष्ण कहते हैं कि शूद्र भी, जो केवल अपने को शरीर में ही जिलाए रखते हैं, शरीर के आस-पास ही घूमते रहते हैं; वे भी अगर अनन्य भाव से मेरा स्मरण कर लें, तो अर्जुन, वे भी मुक्त हो जाते हैं।
कृष्ण, बिल्कुल निम्नतम जो चित्त की दशा हो सकती है, उसके लिए भी कह रहे हैं कि उस दशा में भी, उस अंधकार में पड़ा हुआ भी अगर मेरा स्मरण करे, तो प्रकाश की किरण उस तक भी पहुंच जाती है। खाई में पड़ा है, गहन अंधकार में पड़ा है कोई, चारों ओर अंधकार है, लेकिन अगर मुझे स्मरण करे, तो मेरी किरण वहां भी पहुंच जाती है। स्मरण ही मेरी उपस्थिति बन जाती है। शूद्र को भी, वे कहते हैं, यह हो जाएगा।

वैश्य दूसरी कोटि है। शूद्र उसे कहते हैं, जो शरीर के आस-पास जीता है। वैश्य उसे कहते हैं, जो मन के आस-पास जीता है। इसलिए शूद्र की जो भी वासनाएं हैं, आकांक्षाएं हैं, बहुत सालिड, बहुत स्थूल होंगी। वैश्य की जो कामनाएं और वासनाएं और आकांक्षाएं हैं, वे मानसिक होंगी, सूक्ष्म होंगी। वैश्य धन के लिए जीएगा। धन सूक्ष्म बात है; और धन से मिलने वाला रस मन
को मिलने वाला रस है। वैश्य यश के लिए जीएगा, पद के लिए जीएगा। उनसे मिलने वाला रस, मन के लिए मिलने वाला रस है। और वैश्य धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए शरीर को भी गंवाने को तैयार हो जाएगा। शूद्र पद के लिए, धन के लिए, प्रतिष्ठा के लिए शरीर को गंवाने को तैयार नहीं होगा। शरीर उसके लिए मौलिक मूल्य है। शरीर के लिए वह सब कुछ कर सकता है। लेकिन वैश्य शरीर को गंवाने को तैयार हो जाएगा।
एक लिहाज से शूद्र शरीर से स्वस्थ होगा, वैश्य अस्वस्थ होने लगेगा।
एक लिहाज से शूद्र के पास प्रकृति के संपर्क का द्वार बहुत स्पष्ट होगा, संवेदनशील होगा; वैश्य प्रकृति के साथ संवेदना खोने लगेगा। लेकिन प्रकृति से संवेदना उसकी कम होगी, लेकिन परमात्मा की तरफ वह एक कदम ऊपर उठ जाएगा। क्योंकि शरीर से आत्मा तक जाने में बीच में मन के पड़ाव को पार करना जरूरी ही है। मन से गुजरना ही पड़ेगा। शूद्र को आत्मा की यात्रा में किसी न किसी क्षण वैश्य होना ही पड़ेगा।
सभी शूद्र की तरह जन्मते हैं; कुछ लोग वैश्य तक पहुंच जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। वह भी पड़ाव है, मंजिल नहीं है। मन मूल्यवान हो जाएगा शरीर से ज्यादा, और मन के रस शरीर के रस से ज्यादा कीमती मालूम पड़ने लगेंगे। भोजन उतना मूल्यवान नहीं रहेगा अब, कामवासना उतनी मूल्यवान नहीं रहेगी, जितना मन के रस मूल्यवान हो जाएंगे। पद है, प्रतिष्ठा है, यश है, गौरव है, गरिमा है, ये ज्यादा मूल्यवान होने लगेंगे।
कृष्ण कहते हैं, वैश्य भी अगर मुझे स्मरण करें, तो वे भी मुझे उपलब्ध
हो जाते हैं, अर्जुन! वे जो अभी मन में ही घिरे हैं और आत्मा तक जिनका कोई कदम नहीं उठा है, वे भी अगर मुझे स्मरण करें, तो उन तक भी मेरी किरण पहुंच जाती है।
तीसरी कोटि है क्षत्रिय की। क्षत्रिय का अर्थ है, जो शरीर और मन दोनों
के पार उठकर आत्मा में जीना शुरू करे। शूद्र और वैश्य की कोटि को भारत ने नीचा माना है। वह एक पलड़ा है, दो वर्गों का। क्षत्रिय और ब्राह्मण को श्रेष्ठतर माना है, वह दूसरा पलड़ा है। जो आत्मा में जीने की चेष्टा करे। शरीर का भी मूल्य नहीं है, मन का भी मूल्य नहीं है, सिर्फ आत्मगौरव का ही मूल्य है।
इसलिए क्षत्रिय धन पर भी लात मार देगा, शरीर पर भी लात मार देगा, मन की
भी चिंता छोड़ देगा, लेकिन आत्मगौरव उसके लिए सबसे ज्यादा कीमती हो जाएगा। वह उसके आस-पास ही जीएगा। आत्मगौरव के लिए वह सब कुछ गंवा सकता है, लेकिन आत्मगौरव नहीं गंवा सकता है।
चौथी कोटि है ब्राह्मण की। ब्राह्मण से अर्थ है, जो आत्मा से भी पार
हट जाए और ब्रह्म में जीए। उसके लिए अब न शरीर का कोई मूल्य है, न मन का कोई मूल्य है, न आत्मा का कोई मूल्य है, उसके लिए सिर्फ परमात्मा ही मूल्यवान रह गया।
ये चार टाइप हैं, इनका जाति से फिलहाल कोई संबंध न जोड़ें। ये चार मनस-प्रकार हैं।
कृष्ण कहते हैं कि पहले दो प्रकार वाले लोग भी मुझे उपलब्ध हो जाते हैं, तो बाद के दो प्रकार वाले लोगों का क्या कहना! अगर वे मेरा स्मरण करें, तो वे मुझे उपलब्ध हैं ही।
अगर मन के प्रकार की तरह समझें, तो इस सूत्र में कोई कठिनाई न रह जाएगी। लेकिन भारत ने यह प्रयोग भी किया था। कि ये जो मन के प्रकार हैं, इनको जन्म से जोड़ने की एक अभूतपूर्व चेष्टा की थी। असफल गया वह प्रयोग, लेकिन बड़ा प्रयोग था। और इतना बड़ा था कि सफल होना संभव नहीं मालूम पड़ता था। जितनी बड़ी बात हो, उतनी असफलता की संभावना ज्यादा हो जाती है। और जब कोई बहुत बड़ी बात असफल होती है, तो बड़े गड्ढे में गिरा जाती है।

हमने एक अनूठा प्रयोग किया था। वह प्रयोग यह था कि न केवल व्यक्ति का
मन अलग-अलग है, न केवल उसकी चेतना के ढांचे अलग-अलग हैं, क्या यह नहीं हो सकता कि प्रत्येक चेतना के ढांचे के व्यक्ति को जन्म भी इस भांति मिले कि वह जन्म से ही अपने ढांचे के अनुकूल पैदा हो सके?
एक व्यक्ति मरता है, तो उसकी आत्मा भटकती है नए जीवन की तलाश में। हर कहीं आकस्मिक जन्म नहीं होता। आत्मा खोजती है अपने अनुकूल, अपने अनुकूल गर्भ को खोजती है। और जब अपने अनुकूल गर्भ मिलता है, तो जन्म लेती है।
तो जन्म की घटना में दो घटनाएं घटती हैं, मां और पिता का गर्भ निर्माण करना और उस निर्मित गर्भ में एक चेतना का प्रवेश। वह चेतना का प्रवेश उस चेतना के अपने समस्त कर्मों का फल है। उसके अनुकूल वह खोजती है। यह खोज बहुत सचेतन नहीं है, कांशस नहीं है, अनकांशस है।
अनकांशस खोज का मतलब यह है कि जैसे हम पानी को बहाते हैं, तो वह गड्ढे
को खोज लेता है। भाषा में हम कहेंगे, पानी गड्ढे को खोज लेता है। लेकिन पानी कोई सचेतन रूप से खोजता नहीं, सिर्फ स्वभाव अनुसार वह गड्ढे की तरफ बहता है, जहां नीचाई है, वहां बहता है। पानी ऊपर की तरफ नहीं बह सकता, गड्ढे की तरफ बह सकता है। इसलिए जो सबसे बड़ा गड्ढा है, वहां पहुंच जाता है। कमरे में जहां गड्ढा है, पानी पहुंच जाता है। यह खोज अचेतन है। पानी के स्वभाव से हो जाती है।
ठीक ऐसे ही, प्रत्येक आत्मा अचेतन खोज करती है। जहां उसके अनुकूल गर्भ होता है, वहीं गड्ढा बन जाता है, वहीं आत्मा प्रवेश कर जाती है। भारत ने यह कोशिश की कि क्या यह नहीं हो सकता कि शूद्र आत्माओं के लिए हम एक वर्ग ही नियत कर दें, जहां शूद्र आत्माएं पैदा हो जाएं! क्या यह नहीं हो सकता कि ब्राह्मण आत्माओं के लिए हम ब्राह्मण का एक वर्ग ही नियत कर दें, जहां ब्राह्मण आत्माएं पैदा हो जाएं!
यह बड़ा कठिन प्रयोग था, बहुत मुश्किल प्रयोग था। शायद भविष्य में बायोलाजी कुछ इस तरह के प्रयोग करना शुरू करे। लेकिन वे किसी दूसरे ढांचे पर होंगे। क्योंकि विज्ञान अब यह कह रहा है कि हम इस बात की कोशिश जरूर करेंगे आज नहीं कल, कि ज्यादा सुंदर लोग पैदा किए जा सकें, और निर्णायक बना जा सके कि ज्यादा सुंदर व्यक्ति पैदा हों। विज्ञान यह भी कह रहा है कि अब यह कठिनाई नहीं रही कि हम अगर पुरुष पैदा करना चाहें, तो पुरुष पैदा करें; और स्त्री पैदा करना चाहें, तो स्त्री पैदा करें। विज्ञान अब यह भी कह रहा है कि हम यह भी तय कर लेंगे कि जो बच्चा पैदा हो, उसका बुद्धि अंक, उसका आई.क्यू. कितना हो, यह हम पहले तय कर लेंगे। हम यह भी तय कर लेंगे कि उसके शरीर का रंग कैसा हो, उसकी उम्र कितनी हो। हम ये सारी बात तय करेंगे।
यह तय करेंगे, तो हमें ब्रीडिंग को नियत करना पड़ेगा। फिर हर कोई, हर किसी से संबंध नहीं बना सकेगा। तब संबंध हमें सीमित करने पड़ेंगे, ताकि वे ही लोग संबंधित हों, जो नियमानुसार एक व्यक्ति को जन्म दे सकें।
ठीक वैसे ही प्रयोग भारत ने किसी और दिशा से किए थे, और समाज को चार हिस्सों में बांट दिया था। इन चार हिस्सों में बांटने का प्रयोजन यह था कि शूद्र शूद्र से ही विवाह करे; और यह पीढ़ी दर पीढ़ी ब्राह्मण ब्राह्मण से ही विवाह करे। तो पचास पीढ़ियों के गुजरने के बाद, यह दो ब्राह्मणों का जो विवाह होगा और इन ब्राह्मणों से जो गर्भ निर्मित होगा, वह निर्मित गर्भ किसी ब्राह्मण आत्मा को आकर्षित करने में ज्यादा संभव होगा, बजाय किसी और गर्भ के। यह बिल्कुल वैज्ञानिक है और तर्कयुक्त है। अगर यह हो सकता है, तो यह बिल्कुल तर्कयुक्त है।
यह प्रयोग एक महत प्रयोग किया गया। हर प्रयोग के खतरे भी होते हैं। खतरा हुआ। यह प्रयोग तो संभव नहीं हो सका; समाज चार हिस्सों में बंट गया। यह प्रयोग तो टूटा; लेकिन समाज चार शत्रुओं के हिस्सों में टूट गया। और धीरे-धीरे शूद्र व्यक्तित्व का विचार न रहा, जाति का लक्षण हो गया। और तब कोई आदमी ब्राह्मण पैदा हो गया, तो चाहे वह बिल्कुल शूद्र के व्यक्तित्व का हो, तो भी सिर पर बैठ गया। और तब कोई अगर शूद्र घर में पैदा हुआ और अगर वह ब्राह्मण की योग्यता का था, तो भी उसे किसी मंदिर में पूजा की जगह न मिली! यह खतरा हुआ।

हर प्रयोग का खतरा है। वैज्ञानिकों ने अणु बम की खोज की, तब सोचा नहीं
था कि अणु बम का परिणाम हिरोशिमा और नागासाकी होगा। तब उन्होंने सोचा था कि अणु की ऊर्जा हमारे हाथ में लग जाएगी, तो हम सारी जमीन को खुशहाल कर देंगे; कोई भूखा नहीं होगा, कोई गरीब नहीं होगा। इतनी बड़ी शक्ति हमारे हाथ में लगेगी कि हम सारे जीवन को रूपांतरित कर डालेंगे; पृथ्वी स्वर्ग हो जाएगी।
लेकिन यह नहीं हुआ। यह हो सकता था, लेकिन यह नहीं हुआ। हुआ--हिरोशिमा
और नागासाकी कब्रगाह बन गए! एक लाख आदमी एक क्षण में जलकर राख हो गए। और अभी सारी दुनिया के पास अणु बम और हाइड्रोजन बम इकट्ठे हैं। किसी भी दिन पूरी दुनिया राख की जा सकती है!
आइंस्टीन मरते वक्त कहकर मरा है कि हमने सोचा भी नहीं था कि इतनी महान ऊर्जा का ऐसा महान दुरुपयोग हो सकेगा। लीनियस पालिंग ने, जो कि अणु की खोज में बड़े वैज्ञानिकों में एक था, आखिरी वक्त सारी दुनिया के वैज्ञानिकों से अपील की कि अब दुबारा कोई बड़ी शक्ति आदमी के हाथ में खोजकर मत देना! क्योंकि हम खोजते हैं पता नहीं किसलिए और आदमी उसका क्या उपयोग करता है! इस मुल्क में इस मुल्क के मनीषियों ने भी एक बहुत अदभुत सूत्र खोजा था। और वह सूत्र यह था कि प्रत्येक आत्मा को हम उसके जीवन के चुनाव में भी मार्ग-निर्देश कर सकें। आत्मा ऐसे ही भटककर कहीं भी, किसी भी तरह पैदा न हो। हम उसे सुनिश्चित मार्ग दे सकें, व्यवस्थित मार्ग दे सकें; ताकि ज्यादा से ज्यादा उपयोग थोड़े से थोड़े जीवन का किया जा सके।
और अगर एक व्यक्ति पिछले जन्म में ब्राह्मण था, समझें, और उसने ब्राह्मण की एक ऊंचाई पाई। लेकिन इस बार जन्म की खोज करते वक्त उसे एक शूद्र के घर में ही योग्य मौका मिला, वह शूद्र के घर पैदा हो जाता है। तो उसे ब्राह्मण की पूरी शिक्षा नहीं मिल सकेगी, उसे ब्राह्मण का पूरा वातावरण नहीं मिल सकेगा। हो सकता है, वह पचास वर्ष का हो जाए, तब इस योग्य हो, जिस योग्य का वह ब्राह्मण के घर में पैदा होकर पांच वर्ष में हो जाता! ये पैंतालीस वर्ष उसके व्यर्थ खो जाएंगे।
भारत ने एक जीवन की गहरी इकॉनामिक्स की चिंता की थी, समय कम से कम उपयोग में लाया जा सके और अधिक से अधिक परिणाम हो सकें; और व्यक्ति में जो गहनतम छिपा है, वह प्रकट हो सके। उसे मां-बाप भी, परिवार भी, वातावरण भी, सब कुछ ब्राह्मण का मिल सके। शूद्र को शूद्र का मिल सके, वैश्य को वैश्य का मिल सके। इसलिए जातियां विभाजित हुईं।
लेकिन यह महान प्रयोग नहीं हो सका। जिन्होंने किया था, वे खो गए। और जिनके हाथ में यह महान प्रयोग दे गए, उन्होंने केवल समाज को विभाजित करके शोषण का एक उपाय किया।
तब शूद्र शोषित हो गया। तब ब्राह्मण छाती पर बैठ गया। तब क्षत्रिय ने तलवार हाथ में ले ली और लोगों के ऊपर प्रभुसत्ता कायम कर ली। और तब वैश्य धन इकट्ठा करके बैठ गया। और इन चारों वर्गों ने एक-दूसरे के साथ गहरी शत्रुता ठान ली। जो फायदा होता, वह तो नहीं हुआ, नुकसान यह हुआ कि शूद्र के घर अगर कोई पैदा हो गया, तो उसके विकास का उपाय ही न रहा।
पांच हजार साल में, अगर डा.अंबेदकर को छोड़ दें, तो शूद्रों में एक भी बुद्धिमान आदमी पैदा नहीं हो सका। और ये डाक्टर अंबेदकर भी हमारी वजह से पैदा नहीं हुए। यह एक आदमी है, जिसको ब्राह्मण की हैसियत का कहा जा सके। इसलिए ब्राह्मणों से नाराज भी थे वे। ब्राह्मणों से नाराज होना बिल्कुल स्वाभाविक था, क्रोध स्वाभाविक था।
पांच हजार वर्षों में शूद्रों की कितनी प्रतिभाएं खो गईं, इसका हमें कोई पता नहीं है! प्रयोग गलत निकल गया, गलत आदमियों के हाथों में पड़ गया। और कितने शूद्र जैसे ब्राह्मण हमारे मुल्क की छाती पर छाए चले गए और कितना गहन नुकसान पहुंचा गए, उसका भी अब हिसाब लगाना मुश्किल है।
यह मैंने इसलिए कहा, ताकि आपको कृष्ण का अर्थ साफ हो सके। कृष्ण के समय में यह महान प्रयोग गतिमान था, यह प्रयोग चल रहा था, इस प्रयोग की आधारशिलाएं रखी जा रही थीं। कृष्ण को पता भी नहीं है कि इस प्रयोग का क्या परिणाम आज हो गया!

जो लोग हिरोशिमा के पहले मर गए अणु बम बनाकर, उनको पता भी नहीं है। वे इसी खुशी में मरे हैं कि वे मनुष्य-जाति को एक महान शक्ति देकर विदा हो गए हैं। अभागे तो वे वैज्ञानिक थे, जिन्होंने अपने हाथ से अपने सामने आदमीयत को जलते हुए देखा--अपनी ही खोज का यह परिणाम!
कृष्ण ने जब यह सूत्र कहा था, तब मनुष्य के प्रकार का यह महान प्रयोग गतिमान था, स्वस्थ था, विकसित हो रहा था, अंकुरित हो रहा था, सड़ नहीं गया था।
कृष्ण कहते हैं, शूद्र हो, कि वैश्य हो, कि स्त्री हो, कोई भी हो, वे भी मेरी शरण को पाकर परम गति को उपलब्ध हो जाते हैं।
यहां कोई निंदा का स्वर नहीं है; यहां केवल तथ्य की सूचना है। सिर्फ
इस तथ्य की कि जो शरीर के पास जी रहे हैं, वे भी; जो मन के पास जी रहे हैं, वे भी; वे भी शरण आकर मुझे पा लेते हैं।
शरण आने का मूल्य समझाया जा रहा है। आप क्या हैं, यह मूल्यवान नहीं है;
आप कौन हैं, यह मूल्यवान नहीं है; अच्छे हैं, बुरे हैं, यह मूल्यवान नहीं है। शरण जाने की क्षमता आपकी है, तो आप परमात्मा को उपलब्ध हो जाएंगे। ऐसी शर्त कृष्ण कहते हैं, शरण, सरेंडर की, उसके सामने समर्पण कर देने की, अपने अहंकार को उसके सामने छोड़ देने की।
पुण्यशील ब्राह्मणजन और राजऋषि भक्तजनों का तो परमगति को प्राप्त होना सुनिश्चित है। अगर वे भी अपने को शरण में लगा पाएं। इसलिए तू सुखरहित ओर क्षणभंगुर इस लोक को प्राप्त होकर निरंतर मेरा ही भजन कर।
केवल मुझ परमात्मा में अनन्य प्रेम से अचल मन वाला हो, और मुझ परमेश्वर को ही निरंतर भजने वाला हो। और मेरा श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से विह्वलतापूर्वक पूजन करने वाला हो, मुझ परमात्मा को प्रणाम कर। इस प्रकार मेरे शरण हुआ तू आत्मा को मेरे में एकीभाव करके मुझ को ही प्राप्त हो सकेगा।
यहां तीन-चार बातें खयाल में लेने जैसी हैं।
पहली बात, कृष्ण कहते हैं, सुखरहित और क्षणभंगुर लोक में!
जहां हम जी रहे हैं, वहां सुख का आभास बहुत होता है, सुख मिलता नहीं। मिलता है दुख, आभास होता है सुख का। हाथ में आता है दुख, आशा बनती है सुख की। दूर से दिखाई पड़ता है सुख, पास पहुंचकर उघड़ जाता है और पता चलता है, दुख ही है। दूर से सुख दिखाई पड़ता था। दूरी की भूल है। दूर से जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा पास पाया नहीं जाता।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, सुखरहित संसार में!
ध्यान रहे, कृष्ण यह भी कह सकते थे, इस दुख से भरे संसार में। यह नहीं कहा। ज्यादा उचित होता, ज्यादा जोर वाला होता, कहते कि इस दुख भरे संसार में। लेकिन कृष्ण ने यह नहीं कहा कि इस दुख भरे संसार में। बुद्ध ने कहा है, यह संसार दुख है। कृष्ण ने कुछ दूसरा शब्द उपयोग किया है, और ज्यादा विचारपूर्वक है।
कृष्ण ने कहा है, इस सुखरहित संसार में!
क्यों? क्योंकि दुख तो पैदा ही इसलिए होता है कि हम इस जगत में सुख मान लेते हैं। इसलिए यह कहना कि जगत दुख है, ठीक नहीं है। हम सुख मानते हैं, इसलिए दुख पाते हैं। जगत दुख है, यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि अगर हम सुख न मांगें, तो जगत बिल्कुल दुख नहीं देता। हम सुख मानते हैं, इसलिए दुख मिलता है। जगत दुख नहीं देता।
मैं आपसे आशा करता हूं कि मेरा सम्मान करेंगे, मेरा आदर करेंगे। फिर
आप मेरा आदर न करें, सम्मान न करें, तो मुझे दुख हो। दुख आपने मुझे दिया नहीं। आपका कोई हाथ ही नहीं है। आप बिना नमस्कार किए निकल गए। आपको पता भी नहीं होगा कि आपने मुझे दुख दिया। लेकिन मुझे दुख मिला, बिना आपके दिए!
यह दुख कहां से पैदा हुआ? यह दुख मेरी अपेक्षा से जन्मा। मैंने चाहा
था नमस्कार हो, प्रणाम करें मुझे, आदर दें मुझे। नहीं दिया, मेरी अपेक्षा टूटी। टूटी हुई अपेक्षा दुख बन जाती है। बिखरा हुआ सुख, दुख बन जाता है। न मिला सुख, दुख बन जाता है।

तो जगत दुख है, यह कहना ठीक नहीं है। बुद्ध से कृष्ण का वचन ज्यादा गहन है। बुद्ध सीधा कहते हैं, जगत दुख है। ठीक नहीं है। कृष्ण कहते हैं, जगत सुखरहित है। वे यह कहते हैं कि जगत में कोई सुख नहीं है। और अगर कोई मनुष्य ऐसा जान ले कि जगत सुखरहित है, तो फिर उसे इस जगत में दुख नहीं हो सकता। उसे इस जगत में कोई दुख नहीं दे सकता।
मुझे आप दुख देने में उसी सीमा तक समर्थ हैं, जिस सीमा तक मैं आपसे सुख मांगने में आतुर हूं। मेरे सुख मांगने की मात्रा ही आपकी क्षमता है मुझे दुख देने की। अगर मैं कुछ भी मांग नहीं रहा हूं, तो आप मुझे दुख नहीं दे सकते।
तो दुख स्वअर्जित है; जगत सुखरहित है और दुख स्वअर्जित है। इसलिए शब्द पर खयाल करें! कृष्ण कहते हैं, सुखरहित है जगत। दूसरी बात कहते हैं, क्षणभंगुर। एक-एक क्षण में नष्ट हो जाने वाला है।
हमें खयाल नहीं आता। हमें ऐसा लगता है कि जगत बहुत थिर है। हम सबको यही खयाल होता है कि हम एक थिर जगत में जी रहे हैं। लेकिन जगत प्रतिपल बदलता चला जाता है--प्रतिपल! लेकिन बदलाहट इतनी तीव्र है कि दिखाई नहीं पड़ती।
नदी के किनारे खड़े हैं; नदी बही जा रही है, हम सोचते हैं वही नदी है। फिर भी नदी में तो दिखाई पड़ता है। पहाड़ के किनारे खड़े हैं, तब तो बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता कि पहाड़ बहा जा रहा है। पहाड़ भी बह रहे हैं! उनके बहने का समय जरा लंबा है। नदी के बहने का समय जरा तीव्र है; इसलिए नदी दिखाई पड़ रही है। पहाड़ भी बह रहे हैं। क्योंकि कल जो पहाड़ थे, आज नहीं हैं; और आज जो पहाड़ हैं, कल नहीं थे। कल जो पहाड़ होंगे, उनका हमें अभी कोई पता नहीं है।
पहाड़ बह रहे हैं। वे भी बदल रहे हैं। उनका काल-माप बड़ा है। करोड़ों वर्ष में बदलते हैं। नदी घड़ी में बदल जाती है। बस काल-माप, टाइम पीरियड का फर्क है, बाकी पहाड़ भी बह रहे हैं।
और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रत्येक चीज बह रही है। प्रत्येक चीज लयमान है, गतिमान है। प्रत्येक चीज दौड़ रही है। प्रत्येक चीज एक बहाव है। और यहां हर क्षण सब बदला जा रहा है। यहां कुछ भी एक क्षण से ज्यादा नहीं टिकता। बाहर भी कुछ नहीं टिकता, भीतर भी कुछ नहीं टिकता।
आपने कभी खयाल किया है कि आपका मन एक क्षण भी वही नहीं रहता, जो एक क्षण पहले था। एक क्षण पहले सुख मालूम हो रहा था, और जरा भीतर झांककर देखें, सुख तिरोहित हो गया है! एक क्षण पहले दुख मालूम हो रहा था, दुख खो गया है! एक क्षण पहले चिंता मालूम हो रही थी, चिंता चली गई! एक क्षण पहले बड़े शांत थे, अशांत हो गए हैं! एक क्षण भी मन दोहरता नहीं, वही नहीं होता। दो क्षण भी मन एक जैसा नहीं रहता।
भीतर मन बदल रहा है, बाहर संसार बदल रहा है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है।
और जहां कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, वहां हमारी ठहराने की आकांक्षा से दुख पैदा होता है। हम ठहराना चाहते हैं, हम हर चीज को ठहराना चाहते हैं। हम जगत के, जीवन के नियम के विपरीत कोशिश में लगते हैं। फिर हार जाते हैं। फिर दुखी होते हैं।
एक आदमी जवान रहना चाहता है, तो जवान ही रहना चाहता है। उसे पता नहीं
है कि उसके रहने की कोशिश भी उसको बूढ़ा कर रही है, रहने की कोशिश में भी जो समय और ताकत लगा रहा है, वह भी बूढ़ा, वह भी बूढ़ा होता जा रहा है! एक आदमी मरना ही नहीं चाहता है। वह जो कोशिश कर रहा है, उसमें ही मर जाएगा। जीवन के प्रवाह के विपरीत हम थिर को खोजना चाहते हैं। हम चाहते हैं, कुछ ठहर जाए। मैं किसी को प्रेम करता हूं, तो सोचता हूं, यह प्रेम बह न जाए, बचे, सदा बचे। सिर्फ कवियों की कविताओं में बचता है। और अक्सर उन कवियों की, जिनको प्रेम का कोई अनुभव नहीं है। सच तो यह है कि जिनको प्रेम का अनुभव है, वे कविता लिखने की झंझट में नहीं पड़ते। जिनको कोई अनुभव नहीं है, वे कविता से तृप्ति खोजते रहते हैं।
सिर्फ कविताओं में प्रेम अमर है। जीवन में कहीं भी अमर नहीं है। हो नहीं सकता। ऐसा नहीं कि प्रेमी का कोई कसूर है। नहीं, जीवन का नियम नहीं है। क्षणभंगुर है।

इसीलिए प्रेमी बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं। जब प्रेम के बहाव में होते हैं और प्रेम अपनी ऊंचाई पर होता है, तो उनको लगता है कि शाश्वत है, इटरनल है। अब तो इसका कोई अंत नहीं होगा। उन्हें पता नहीं है कि शाश्वत तो बहुत दूर की बात है, कल का, सुबह का भी कोई भरोसा नहीं है।
और फिर कल सुबह जब गंगा बह जाती है, और हाथ से पानी की धाराएं गिर जाती हैं बाहर, और हाथ में कुछ नहीं रह जाता, तब बड़ी कठिनाई शुरू होती है। फिर अपने ही किए हुए वचन--कि चाहे मर जाऊं, लेकिन प्रेम करूंगा; चाहे कुछ भी हो जाए, प्रेम करूंगा। लेकिन प्रेम बह गया। क्योंकि प्रेम आपके वचनों को नहीं मानता। प्रेम जगत के नियमों को मानता है। उसके अपने नियम हैं। मैं कितना ही कहूं, मेरे कहने का कोई सवाल नहीं है। जीवन के नियम अपवाद नहीं करते।
प्रेम बह जाएगा, तब फिर मुझे प्रेम का धोखा सम्हालना पड़ेगा। फिर मैं
एक डिसेप्शन को पालकर रखूंगा। फिर मैं कहता रहूंगा कि प्रेम करता हूं और भीतर प्रेम नहीं पाऊंगा। और जारी रखूंगा। अपने को भी धोखा दूंगा, दूसरे को भी धोखा दूंगा। और तब प्रेम से पीड़ा निकलेगी, कष्ट आएगा, ऊब मालूम पड़ेगी, घबड़ाहट मालूम होगी, धोखा मालूम पड़ेगा। लेकिन अब मैं क्या कर सकता हूं! वचन जो मैंने दिया था, उसे खींचना पड़ता है।
प्रेम थिर नहीं हो सकता। कोई चीज थिर नहीं हो सकती। सिर्फ एक चीज थिर
है, वह है परिवर्तन। सिर्फ एक चीज नहीं बदलती है, वह है बदलाहट। और सब बदल जाता है।
तो कृष्ण कहते हैं, क्षणभंगुर है यह।
और इस क्षणभंगुर में हम कोशिश करते हैं बचाव की, ठहराव की। उस लड़ने में ही हम मिट जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं।
ज्ञान का अर्थ होता है, जीवन के नियम को जानकर जीना। अज्ञान का अर्थ होता है, जीवन के नियम के विपरीत चेष्टा में लगे रहना। एक आदमी को पता ही नहीं है कि जमीन में गुरुत्वाकर्षण है, वह छलांग लगा-लगाकर आकाश छूने की कोशिश करते हैं, गिर-गिरकर हाथ-पैर तोड़ लेते हैं। नियम का उन्हें पता नहीं है कि जमीन खींच रही है, और जितने जोर से तुम उछाल मारोगे, उतने ही जोर से खींचे जाओगे। हाथ-पैर तोड़ लेंगे, तो शायद वह कहेंगे कि जीवन ने उनके साथ धोखा किया! जमीन को कितना कहा कि धरती माता है तू, और यह व्यवहार किया मां होकर!
नहीं, धरती माता का कोई लेना-देना नहीं है इसमें। आपको नियम का पता नहीं है। नियम के विपरीत आदमी दुख पैदा कर लेता है।
तो कृष्ण कहते हैं कि क्षणभंगुर इस लोक में तू निरंतर मेरा ही भजन कर। क्योंकि तभी तू उसे पा सकेगा, जो कभी नहीं खोता है। बाकी तू कुछ भी पा लेगा, तो खो जाएगा। चाहे यश, चाहे कीर्ति, चाहे धन, चाहे राज्य--कुछ भी--इस संसार में तू कुछ भी पा लेगा, तो तू ध्यान रखना कि पा भी नहीं पाएगा कि खोना शुरू हो जाएगा।
यहां हम जीत भी नहीं पाते हैं कि हार शुरू हो जाती है। पहुंच भी नहीं पाते हैं कि भटकना शुरू हो जाता है। मंजिल हाथ में आती नहीं कि छीनने वाले मौजूद हो जाते हैं। उसका कारण, जीवन क्षणभंगुर है।
इसमें कुछ निराशा नहीं है। पश्चिम के लोगों ने पूरब के संबंध में निरंतर ऐसा सोचा है कि पूरब के लोग बिल्कुल निराश हो गए हैं। इन्होंने जीवन की आशा छोड़ दी है। तभी तो ये कहते हैं, कोई सुख नहीं है, दुख ही दुख है। कोई आशा नहीं, कोई अपेक्षा नहीं है। कुछ नहीं होगा।
लेकिन पश्चिम के लोगों को ठीक खयाल नहीं है। पूरब के लोग निराशावादी नहीं हैं। लेकिन पूरब के लोग नासमझ भी नहीं हैं।
अगर एक आदमी जमीन पर कूद-कूदकर हाथ-पैर तोड़ रहा है और मैं उससे कहूं कि पागल, तुझे पता नहीं कि जमीन का स्वभाव खींच लेना है! तो खींचने के खिलाफ तू जो भी कर रहा है, सोच-समझ के कर! अन्यथा हाथ-पैर टूट जाएंगे। और हाथ-पैर टूटें, तो जमीन को दोष मत देना, अपनी नासमझी को दोष देना। तो मैं निराशावादी नहीं हूं। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि जीवन से व्यर्थ लड़ने की कोशिश में मत पड़! उसमें तू टूट जाएगा। तब मैं यह भी कह रहा हूं कि

यह शक्ति, जो तू जीवन से लड़कर नष्ट कर रहा है, यह शक्ति एक और दिशा में भी लगाई जा सकती है। और जो तू पाना चाहता है, वह पाया जा सकता है।
एक ऐसा प्रेम भी है, जो शाश्वत है; लेकिन वह परमात्मा का प्रेम है। वह पाया जा सकता है। आदमी-आदमी के प्रेम को शाश्वत करने की कोशिश मत कर! वह नहीं हो सकता। इसका कोई उपाय ही नहीं है। इसका कभी कोई उपाय नहीं हो सकेगा। लेकिन एक प्रेम है, जो शाश्वत भी है। आदमी-आदमी के बीच के प्रेम की परेशानी में मत पड़! और अगर आदमी-आदमी के बीच भी प्रेम करना है, तो आदमी के भीतर से भी परमात्मा को खोज। प्रेम उसको ही कर। आदमी को भी बीच का द्वार बना, जस्ट ए पैसेज, एक मार्ग। लेकिन उसके भीतर भी परमात्मा को देख।
इसलिए हमने चाहा था कि पति में परमात्मा देखा जा सके। क्योंकि अगर पति ही देखा जा सके, तो जिस प्रेम की आशा है, वह कभी संभव नहीं हो सकता। पश्चिम में प्रेम टूटेगा, विवाह भी टूटेगा, परिवार भी बिखरेगा। बिखरना ही पड़ेगा। वह एक ही आधार पर बन सकता था और थिर हो सकता था, कि किसी दिन पति में परमात्मा की झलक मिल जाए या पत्नी में कभी उस दिव्यता का बोध हो जाए। तो ही। जिस दिन किसी दिन पत्नी में मां दिखाई पड़ जाए गहरे में कहीं, पति में प्रभु दिखाई पड़ जाए गहरे में कहीं, उस दिन हम शाश्वत के नियम में प्रवेश कर गए।
ऐसा समझें, आज हमने जमीन के पार जाने के उपाय कर लिए, अब हम चांद पर जा सकते हैं। अब तक नहीं जा सकते थे। न जा सकने का कारण जमीन का ग्रेविटेशन था। दो सौ मील तक जमीन का गुरुत्वाकर्षण पकड़े हुए है। दो सौ मील के भीतर कोई भी चीज फेंको, जमीन उसे खींच लेगी। और या फिर उसको इतनी तीव्र गति में रखना पड़ेगा, जैसे हवाई जहाज को रखना पड़ता है। इतनी तीव्र गति में रखना पड़ेगा कि यहां की जमीन खींच पाए, इसके पहले वह यहां की जमीन से आगे हट जाए। वहां की जमीन खींच पाए, उसके पहले आगे हट जाए।
तो या उसे तीव्र गति में रखना पड़ेगा, तो जमीन उसे नहीं खींच पाएगी। क्योंकि जमीन के खींचने में समय लगेगा। मेरा हाथ यहां है, जमीन के खिंचाव का असर पड़ा, तब तक हाथ आगे हट गया। यह खिंचाव बेकार चला गया। तब तक उस पर असर पड़ा, आगे हाथ हट गया। तो या तो हवाई जहाज की गति से घूमते रहो वर्तुलाकार, तो जमीन से बच जाओगे। लेकिन जमीन का कर्षण खींचता ही रहेगा। हां, दो सौ मील के पार अगर हम किसी भी चीज को फेंक दें, तो फिर जमीन खींचने में असमर्थ हो जाती है। दूसरा नियम शुरू हो गया। जमीन के घेरे के बाहर दो सौ मील की जमीन का फील्ड है, एनर्जी फील्ड है। उसके बाहर फिर जमीन नहीं खींचेगी। फिर एक छोटा-सा कंकड़ भी छोड़ दो, तो जमीन की ताकत उसे खींचने की नहीं है। फिर वह कंकड़ अनंत में घूम सकता है।
ठीक ऐसे ही, जीवन के आंतरिक नियम भी हैं। जब तक हम क्षणभंगुर के घेरे में ही सब कुछ खोजेंगे, शाश्वत को खोजेंगे, तब तक हम क्षणभंगुर से खिंचते रहेंगे, टूटते रहेंगे, परेशान होते रहेंगे। वह स्थिर हमें उपलब्ध नहीं होगा, शाश्वत की प्रतीति नहीं होगी।
एक और दिशा भी है, आदमी के पार। जैसे जमीन के पार दो सौ मील के पार उठने
की, ठीक ऐसे ही, आदमी के प्रेम, वस्तुओं के आकर्षण के पार, परमात्मा के प्रेम की तरफ उठने की भी एक आंतरिक दिशा है। उस दिशा में उठते ही सारे नियम दूसरे हो जाते हैं। यहां सब क्षणभंगुर है, वहां कुछ भी क्षणभंगुर नहीं है। यहां सब सुखरहित है, वहां सब दुखरहित है।
मैं नहीं कहूंगा कि वहां सुख है। क्योंकि आप नहीं समझ पाएंगे। क्योंकि सुख तो आपने जाना नहीं कभी। अगर मैं कहूं, वहां सुख है, तो आपकी समझ में कुछ भी न आएगा। और अगर आएगा भी, तो वही सुख समझ में आएंगे, जो आप यहां जानना चाह रहे थे।
नहीं। मैं कहूंगा, यह संसार सुखरहित है; और वह संसार, परमात्मा का, दुखरहित है। दुखरहित इसलिए कि आप दुख को भलीभांति जानते हैं। आपका दुख वहां कोई भी नहीं होगा। स्वभावतः, आपका कोई भी सुख वहां नहीं होगा।
क्योंकि आपके सब दुख इन्हीं सुखों से पैदा हुए हैं।
यह क्षणभंगुर है, वह शाश्वत है। यहां हर चीज क्षण में बदल जाती है, वहां कुछ भी कभी नहीं बदला है।

निश्चित ही, जहां बदलाहट बिल्कुल नहीं है, वहां समय नहीं हो सकता, वहां टाइम नहीं हो सकता। क्योंकि समय तो बदलाहट का माध्यम है। जहां भी समय होगा, वहां बदलाहट होगी। जहां बदलाहट नहीं होगी, वहां समय नहीं होगा। यहां, जहां हम जीते हैं, वहां हम समय में जीते हैं। समय की प्रक्रिया
को हम समझ लें, तो क्षणभंगुर का दूसरा अर्थ समझ में आ जाए।
समय में, कभी आपने खयाल किया कि आपको वर्ष, माह, जीवन इकट्ठा नहीं मिलता, एक-एक क्षण एक-एक बार मिलता है! कभी आपने खयाल किया कि दो क्षण इकट्ठे आपके हाथ में कभी नहीं होते! एक क्षण, और जब वह छिन जाता है, तभी दूसरा आपके हाथ में उतरता है।
एक क्षण से ज्यादा आपके हाथ में कभी नहीं होता। कोई आदमी कितनी ही कोशिश करे कि दो क्षण मेरे हाथ में हो जाएं, तो नहीं हो सकते। एक ही क्षण हाथ में होता है। जब वह खिसक जाता है हाथ से, तब दूसरा आता है। अगर आपने रेत से चलती हुई घड़ी देखी है, तो एक-एक दाना रेत का गिरता रहता है। बस, एक दाना ही गुजरता है छेद से। जब एक गुजर जाता है, तब दूसरा दाना गुजरता है। दो दाने साथ नहीं गुजरते।
समय का भी एक दाना हमें मिलता है, एक क्षण। क्षण समय का एटम है, आखिरी
कण है। उसके आगे विभाजन नहीं हो सकता। एक क्षण हमें मिलता है। वह खोता है, तो दूसरा हाथ में आता है।
इसका अर्थ हुआ कि हमारे पास एक क्षण से ज्यादा जिंदगी कभी नहीं होती! चाहे बच्चा हो, चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा हो; चाहे गरीब हो, चाहे अमीर हो; चाहे ज्ञानी हो, चाहे अज्ञानी हो--एक क्षण से ज्यादा जिंदगी किसी के पास नहीं होती।
क्षणभंगुर का यह भी अर्थ है कि पूरा जीवन क्षण से ज्यादा हमारे पास नहीं होता।
और क्षण कितनी छोटी चीज है आपको पता है? आपको पता नहीं होगा। जिसे हम सेकेंड कहते हैं घड़ी में, वह बहुत बड़ा है। बहुत बड़ा है। अब तक समय की ठीक-ठीक जांच-पड़ताल नहीं हो सकी; क्योंकि बड़ा सूक्ष्म मामला है समय का।
लेकिन क्षण, आप ऐसा ही समझें, डेमोक्रीट्स या वैशेषिक भारत के आज से तीन-चार हजार साल पहले परमाणु की जो कल्पना करते थे, परमाणु का जो खयाल करते थे, तो उनका खयाल था कि परमाणु आखिरी टुकड़ा है, उससे ज्यादा नहीं टूट सकता। लेकिन फिर परमाणु भी टूट गया और अब इलेक्ट्रान हमारे हाथ में है। अब इलेक्ट्रान जो है, वस्तु का आखिरी टुकड़ा है। वह कितना बड़ा है, यह कहना मुश्किल है; वह कितना छोटा है, यह कहना मुश्किल है। और जो भी बातें कही जाती हैं, वे सब अंदाज हैं, अनुमान हैं।
इसे ऐसा समझें कि एक पानी की बूंद--स्याही का ड्रापर होता है, आप स्याही के ड्रापर से एक पानी की या स्याही की बूंद गिरा लें। तो वैज्ञानिक कहते हैं, एक बूंद में जितने इलेक्ट्रांस हैं, अगर पूरी पृथ्वी के लोग--तीन अरब लोग हैं अभी--तीन अरब लोग उन इलेक्ट्रांस की गिनती करने लग जाएं, तो छः करोड़ वर्ष लगेंगे! एक पानी की बूंद में, जमीन पर जितने लोग हैं, तीन अरब लोग हैं अभी, अगर ये गिनती करने लग जाएं--खाएं न, पानी न पीएं, उठें न, सोएं न, बैठें न--कुछ भी न करें, चौबीस घंटे गिनती ही करें, तो छः करोड़ वर्ष! एक पानी की बूंद में उतने इलेक्ट्रांस हैं!
कहना मुश्किल है कि एक सेकेंड में कितने क्षण हैं, कहना मुश्किल है। इलेक्ट्रांस से तो छोटे किसी हालत में नहीं होंगे। बहुत बारीक है मामला। उतना बारीक हमारे पास होता है! हमें पता भी नहीं चल पाता। बारीक इतना है कि जब आपको पता चलता है, तब तक क्षण आपके हाथ से जा चुका होता है। पता चलने में जितना वक्त लगता है, उतने में वह जा चुका होता है। आपको पता लगता है कि आपको लगा, बारह बजकर एक मिनट, जब आपको पता लगता है, तो बारह बजकर एक मिनट अब नहीं रहा। क्षण सरक गए।
इसका मतलब यह हुआ कि क्षण भी हमारे हाथ में है, यह भी हमें पता नहीं चल पाता। इतना छोटा है क्षण और इतना क्षणभंगुर है जीवन कि हमारे हाथ से कब गुजर जाता है, हमें इसका भी पता नहीं चलता। इस बदलती हुई, भागती हुई समय की

धारा में जो जीवन के शाश्वत भवन बनाने की कोशिश करते हैं, वे अगर दुख में पड़ जाते हैं, तो कसूर किसका है?
तो कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, इस क्षणभंगुर और सुखरहित संसार में तू मुझ को स्मरण कर। और स्मरण के लिए कुछ बातें कहते हैं।
अनन्य प्रेम से अचल मन वाला हो, मुझ परमेश्वर को निरंतर भज। श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से विह्वलतापूर्वक पूजन कर। मुझ परमात्मा को प्रणाम कर। मेरे शरण हुआ, मेरे में एकीभाव करके मेरे को ही प्राप्त हो जाएगा।
इन सब बातों का सार तीन शब्दों में आपसे कहना चाहूं।
एक, दृष्टि संसार पर मत रखो। वहां कुछ भी हाथ में आएगा नहीं। निराश होने का कोई कारण नहीं; क्योंकि जहां कुछ हाथ में आ सकता है, वह बिल्कुल किनारे ही है। संसार से बहुत दूर नहीं, बस जस्ट बाई दि कार्नर। एकदम किनारे, नुक्कड़ पर ही है। जरा मुड़ने की बात है और वह दिखाई पड़ जाएगा। संसार पर ध्यान मत दो; उसकी तलाश करो, जिसमें संसार बह रहा है, जिसमें संसार उठ रहा है, जिसमें संसार खो रहा है, जिसमें संसार बना है और जिसमें संसार लीन हो जाएगा। उसकी थोड़ी फिक्र करो। आदमी से आंख थोड़ी ऊपर उठाओ; आदमी के थोड़े पार देखो।
नीत्शे ने कहा है, अभागा होगा वह दिन, जिस दिन आदमी अपने से तृप्त हो जाएगा। और लगता है कि वह अभागा दिन हमारे आस-पास है कहीं। आदमी अपने से तृप्त मालूम पड़ता है।
धर्म का अर्थ है, आदमी का अपने से अतृप्त हो जाना, ए बेसिक डिसकंटेंट,
एक आधारभूत प्राणों में असंतुष्टि, कि आदमी होना काफी नहीं है, और संसार पा लेना पर्याप्त नहीं है--कोई और खोज! वही खोज परमात्मा की तरफ उठाती है। तो पहली बात, संसार से तृप्त मत हो जाना, संसार में खो मत जाना, डूब मत जाना, स्मरण रखना कि पार भी कोई है।
एक मित्र ने पूछा है कि उस पार का हमें कोई पता ही नहीं है, तो हम उसका स्मरण कैसे करें?
वे ठीक कहते हैं। उसका कोई भी पता नहीं है। उसका स्मरण कैसे करें?
बच्चा पैदा होता है। आपने कभी खयाल किया है, बच्चा पैदा होकर पहला काम क्या करता है? रोता है। इस बच्चे को रोने का भी कोई पता नहीं था। रोता क्यों है? शायद आपको खयाल में भी न हो! रोता इसलिए है, ताकि सांस ले सके; क्योंकि मां के पेट में उसे सांस नहीं लेनी पड़ती। मां की सांस से ही काम चलता है। मां के पेट में नौ महीने बच्चे के फेफड़े काम नहीं करते। पैदा होते से ही फेफड़ों को काम करना पड़ता है। पता कुछ भी नहीं है बच्चे को कि फेफड़े कैसे काम करें? कैसे श्वास लें? लेकिन एक बेचैनी है। उसका जो पता नहीं है, उसकी भी एक बेचैनी तो है। पूरा यंत्र मांग करता है, तो एक विह्वलता पैदा होती है।
कृष्ण ने उसी विह्वलता की बात कही है। रो उठता है, चीख उठता है। उसी चीखने में सांस भीतर-बाहर हो जाती है, हृदय की धड़कन शुरू हो जाती है। इसलिए अगर बच्चा न रोए, तो डाक्टर चिंतित हो जाते हैं, नर्सें घबड़ा जाती हैं, किसी तरह रुलाओ बच्चे को। अगर बच्चा नहीं रोया, तो गया! अगर बच्चा न रोए, तो उसका मतलब है कि वह बचेगा नहीं, मर जाएगा। मरा ही हुआ होगा। रो भी नहीं सकता, तो मरा ही हुआ है।
तो दूसरी बात आपसे कहता हूं, परमात्मा का तो आपको पता नहीं है, लेकिन
एक बात तो आपको पता चल सकती है कि जिस जगत में आप जी रहे हैं, वहां कुछ भी नहीं है। तो फिर रो तो सकते हैं। जहां खोज रहे हैं, वहां कुछ भी नहीं मिल रहा है। उसका कोई पता नहीं है, माना मैंने। उसका कोई पता नहीं है, जो मिले। लेकिन जहां हैं, वहां कुछ भी नहीं मिल रहा है, तो छाती पीटकर रो तो सकते हैं! हृदयपूर्वक चीख तो सकते हैं! आंसू तो बह सकते हैं!
कृष्ण ने उसे ही विह्वलता कहा है। वह विह्वलता इस बात का ही सबूत है
कि जो सामने है, उसमें कुछ मिलता नहीं; और तुम, जिनमें मुझे मिल सकता है, तुम दिखाई नहीं पड़ते! इस क्षण में जो पीड़ा पैदा होती है, उसका नाम विह्वलता है। जो है, वह पाने योग्य नहीं मालूम पड़ता; जो पाने योग्य है, उसका कोई पता नहीं है! तो मैं क्या करूं? लेकिन मैं रो तो सकता हूं।

भक्तों ने रोने का अभूतपूर्व उपयोग किया है। भक्तों ने रोने को योग बना लिया है। रोने का उन्होंने वही उपयोग किया है, जो बच्चा मां से पैदा होकर करता है अनजान जगत में प्रवेश करने के लिए। भक्तों ने रोकर परमात्मा में प्रवेश करने के लिए वही उपयोग किया है। और जो व्यक्ति उस अनजान के लिए रुदन से भर जाता है और उसके प्राणों में आंसू भर जाते हैं, अचानक वह पाता है कि उसके हृदय ने नई श्वास लेनी शुरू कर दी है। वह किसी दूसरे लोक में प्रवेश कर गया है। कोई दूसरा जगत सामने खड़ा हो गया है। द्वार खुल गए हैं। उन मित्र का पूछना ठीक है कि जिस भगवान को हम नहीं जानते, उसका स्मरण कैसे करें?
मत करो स्मरण! लेकिन जिसे तुम जानते हो, उससे पूरी तरह असंतुष्ट तो हो जाओ। जहां तुम खड़े हो, उस जमीन को तो व्यर्थ समझ लो। तो तुम्हारे पैर आतुर हो जाएंगे उस जमीन को खोजने के लिए, जहां खड़ा हुआ जा सके। जिस नाव पर तुम बैठे हो, उसे तो देख लो कि वह कागज की है। कोई फिक्र नहीं कि दूसरी नाव का हमें कोई पता नहीं है। और हमें कोई पता नहीं है कि कोई किनारा भी मिलने वाला है। हमें कोई पता ही नहीं है कि कोई और खिवैया भी हो सकता है। लेकिन यह नाव, जिस पर तुम बैठे हो, कागज की है या सपने की है, जरा नीचे इसकी तलाश कर लो।
और जिस आदमी को पता चल जाए कि मैं कागज की नाव में बैठा हूं, पता है वह क्या करेगा? कम से कम चीखकर रोएगा, चिल्लाएगा तो! पता है कि कोई सुनने वाला नहीं है, तो भी मैं कहता हूं, वह चिल्लाएगा और रोएगा। कोई किनारा हो या न हो, और कोई निकट हो या न हो, उस एकांत निर्जन में भी उसका रुदन तो सुनाई ही पड़ेगा, उसके प्राण तो चिल्लाने ही लगेंगे, कि मैं कागज की नाव में बैठा हूं, अब क्या होगा? इस घटना से ही, इस विह्वलता से ही अचानक हृदय का एक नया यंत्र शुरू हो जाता है।
हृदय में दो यंत्र हैं। वैज्ञानिक से पूछने जाएंगे, तो वह कहेगा, फेफड़े के अतिरिक्त हृदय में और कुछ भी नहीं है; फुफ्फुस है। पंपिंग सेट के सिवाय वहां कुछ भी नहीं है। वह सिर्फ श्वास को फेंकने और खून को शुद्ध करने का काम करता है। एक पंपिंग की व्यवस्था है। वैज्ञानिक से पूछने जाएंगे, तो हृदय जैसी कोई भी चीज नहीं है, फेफड़ा है; फुफ्फुस है, लेकिन शब्द हम सदा हृदय का उपयोग करते हैं; हालांकि हमारे पास भी फुफ्फुस है अभी, अभी हृदय नहीं है।
हृदय उस फेफड़े का नाम है, जो दूसरे संसार में श्वास लेना शुरू करता है। यह फेफड़ा तो इसी संसार में श्वास लेता है, यही आक्सीजन और कार्बन डायआक्साइड के बीच चलता है। एक और भी आक्सीजन है, एक और प्राणवायु है, एक और प्राणवान जीवन है, जब वह शुरू होता है, तो इसी फुफ्फुस के भीतर एक और हृदय है, जिसमें नई श्वास और नई धड़कन शुरू हो जाती है। वह धड़कन अमृत की धड़कन है।
तो दूसरी बात है, विह्वलता। और तीसरी बात है, समर्पण।
पहली बात है, यह जो चारों तरफ है, यह व्यर्थ हो जाए, तो ही आंख उठेगी। आंख उठे, कुछ दिखाई न पड़े; जो था, वह छूट जाए; जो मिलने को है, वह मिले नहीं; बीच में आदमी अटक जाए, तो विह्वलता पैदा होगी; घबड़ाहट पैदा होगी; एक बेचैनी पैदा होगी। कीर्कगार्ड ने कहा है, एक ट्रेंबलिंग, एक कंपन पैदा होगा। एक चिंता पैदा होगी कि अब क्या होगा? जो नाव थी वह छूट गई, नई नाव पर पांव नहीं पड़े, अब तो लहर पर ही खड़े हैं, अब क्या होगा?
इस विह्वलता में घटना घटेगी।
और तीसरी बात है, समर्पण। समर्पण का अर्थ है, जब उस नए हृदय की धड़कन शुरू हो जाए, तो समग्र भाव से, अत्यंत श्रद्धापूर्वक, पूरे ट्रस्ट से, भरोसे से उस नए जीवन में प्रवेश कर जाना। उस नए जीवन को सौंप देना अपनी बागडोर। कहना कि तू मुझे खींच ले।
दो तरह से एक आदमी नाव में जाता है। एक तो नाव होती है, जिसमें हाथ से खेना पड़ता है। एक नाव होती है, जिसमें पाल लगा होता है। हवा बहती है पूरब की तरफ और पाल खोल देते हैं, तो हवा ही नाव को खींचकर ले जाती है।

ध्यान रहे, संसार का जो जगत है, वहां जिस नाव से हमें चलना पड़ता है, वहां खेना होता है; वहां प्रत्येक आदमी को मेहनत उठानी पड़ती है, पतवार चलानी पड़ती है। तब भी चलता नहीं कुछ, कहीं पहुंचते नहीं। पतवार चलती है बहुत, परेशान बहुत होते हैं, दौड़-धूप, पूरी जिंदगी डूब जाती है, किनारा- विनारा कभी मिलता नहीं। वही सागर की लहरें ही कब्र सिद्ध होती हैं। लेकिन मेहनत करनी पड़ती है। यहां इंचभर अगर आप रुके, तो डूब जाएंगे। कारण, पूरे वक्त लगे रहना पड़ता है बचने में। यहां क्षणभंगुर है सब। यहां पूरे वक्त लगे रहेंगे, तब भी डूबेंगे! लेकिन जितनी देर बचे रहे, उतनी देर बचे रहेंगे। एक दूसरा लोक है, जिसकी मैं बात कर रहा हूं, जिसकी कृष्ण बात कर रहे हैं। उस लोक में आपको पतवार नहीं चलानी पड़ती। वहां पतवार लेकर पहुंच गए, तो आप मुश्किल में पड़ेंगे। वहां तो उस परमात्मा की हवाएं ही आपकी नाव को ले जाने लगती हैं। आपको सिर्फ छोड़ देना पड़ता है।
लेकिन जिसको पतवार चलाने की आदत है और कभी उस पाल वाली नाव में नहीं बैठा है, वह पाल वाली नाव में बैठकर बहुत घबड़ाएगा कि पता नहीं कहां जाऊंगा? क्या होगा, क्या नहीं? उतर जाऊं? क्या करूं? या पतवार भी चलाऊं? समर्पण का अर्थ है, तुम अपनी पतवार मत चलाना। वह तुम्हें जहां ले जाए, तुम वहीं चले जाना। छोड़ देना अपने को।
तो कृष्ण कहते हैं, ऐसा जो छोड़ देता है सब, वह मुझे उपलब्ध हो जाता है।
इन दिनों में जो कुछ आपसे कहा है, मेरा कोई प्रयोजन नहीं है कि कोई सिद्धांत आपको साफ हो जाएं। सिद्धांतों के साफ होने से कुछ होता नहीं। कोई मार्ग साफ हो जाए, तो कुछ होता है। मार्ग भी साफ हो जाए, तो भी बहुत कुछ नहीं होता, जब तक कि चलने की उमंग और लहर न आ जाए। चलने की उमंग और लहर भी आ जाए, तो भी बहुत कुछ नहीं होता, जब तक कि उस अज्ञात पर भरोसा न आ जाए। तो फिर वह चलाता है और खे लेता है।
इतने दिन इन बातों को इतनी शांति से सुना है, तो यह आशा की जा सकती है
कि कोई बात इनमें से आपके जीवन में बीज बन जाए, कोई परिणाम ले आए। परिणाम तो कुछ आते हैं, लेकिन वे परिणाम अक्सर वैसे नहीं होते, जैसे आने चाहिए। अनुभव करता हूं मैं, सुनते हैं आप मुझे, परिणाम एक आता है कि आप सोच-विचार में पड़ जाते हैं। वह कोई बहुत गहरा परिणाम नहीं है। या आपके मन में और अनेक प्रश्न उठ आते हैं और उनकी चर्चा में आप पड़ जाते हैं। वह भी कोई बहुत गहरा परिणाम नहीं है। ऐसे तो अनेक जीवन आदमी सोचकर, विचारकर, प्रश्न उठाकर, जवाब खोजकर व्यय कर सकता है। किए ही हैं हमने।
कुछ चलें। एक कदम भी चलें, तो हजार कदमों की चर्चा करने से बेहतर है। परिणाम तो आते हैं, लेकिन हितकर नहीं मालूम होते।
कल मैंने जिन मित्र के लिए कहा था कि वे मुझे मूर्ख सिद्ध करने के लिए यहां आना चाहते हैं, तो मैंने स्वीकार कर लिया कि मैं मूर्ख हूं, अब कोई सिद्ध करने की जरूरत नहीं है। तो आज वे मेरे ऊपर हमला ही कर दिए! उन्होंने कहा, जब विवाद से सिद्ध नहीं होना है, तो अब हमले से सिद्ध होना है!
परिणाम उन पर भी आया! जो मैंने कहा, उसका परिणाम आया। पर परिणाम यह आया
कि अब विवाद की जगह हमला करना है।
हमारा मन कैसे परिणाम लेता है! मैंने अगर स्वीकार ही कर लिया, तो बात समाप्त हो जानी चाहिए। लेकिन बात समाप्त नहीं हुई है। उनको और भी ज्यादा चेष्टा करनी पड़ेगी मुझे मूर्ख सिद्ध करने की। वह चेष्टा यह है कि मुझ पर हमला किए! उनको खयाल भी नहीं हो सकता कि वे क्या कर रहे हैं! खयाल ही होता, तो क्यों करेंगे!
जब आदमी मन के एक ढांचे में फंस जाता है, तो उसी में आगे बढ़ा चला जाता है। हर मन के ढांचे में आगे बढ़ने की तरकीब होती है, पीछे लौटने की तरकीब नहीं होती। पहले दिन वे चिल्लाकर व्यवहार किए। दूसरे दिन गाली देकर व्यवहार किए। आज हमला करके मारकर व्यवहार किए। वे एक ढांचे में फंस गए। तो अब वे ढांचे में बढ़ते चले जाएंगे। अब उनको कोई उपाय नहीं सूझेगा कि कैसे पीछे लौट जाएं!

उनका तो मैंने उदाहरण दिया। हम सब भी मन के ढांचों में फंसे हुए लोग हैं। और हमारे मन का ढांचा हमें आगे ही धकाए चला जाता है। तो जो हमने कल किया है, वही हमसे और आगे करवाए चला जाता है।
धार्मिक आदमी वही हो सकता है, जो मन के इस ढांचे को किसी जगह कहकर बाहर निकल सके कि बहुत चला तुम्हारे साथ, अब मैं लौटता हूं। अब बंद! अब तुम्हारा तर्क नहीं सुनूंगा; तुम्हारी व्यवस्था नहीं सुनूंगा; तुम्हारा हिसाब नहीं मानूंगा। बहुत माना। अब मैं हटता हूं, तुम्हारी लीक से ही हटता हूं। लीक से ही आप हट जाएं, तो शायद वह घटना घट सके, जिसकी कृष्ण अर्जुन से बात कर रहे हैं। और वह घटना न घटे, तो जीवन व्यर्थ है। और वह घटना न घटे, तो जीवन सार्थक नहीं है। और वह घटना न घटे, तो हम जीए भी, मरे भी, उसका कोई भी मूल्य नहीं है।
आपके जीवन में यह मूल्य का फूल खिल सके, इस आशा से यह अध्याय पूरा करता हूं।
पांच मिनट आप बैठेंगे। कोई उठेगा नहीं। पांच मिनट कीर्तन में सम्मिलित होंगे, फिर हम विदा होंगे।